कुछ लोगों का मत है कि उपर की मलाई हटा कर दही को कपड़े मे बांधकर तीन चार घण्टे तक लटका देना चाहिए ताकि उसमे जो पानी हो, निकल जावे। तत्पश्चात् उसमे चतुर्थांश जल डालकर रई से खूब मथकर प्रयोग मे लाना चाहिये।

आयुर्वेद मतानुसार दही पाक और रस मे अम्ल, ग्राही, भारी, उष्ण, वायुनाशक, मेद व शुक्र-वर्धक, बलदायक, कफप्रद, पित्त और रक्त को बढ़ाने वाला, अग्निवर्धक और सूजन को उत्पन्न करने वाला है। दही का प्रयोग अरुचि मे, वातप्रधान विषम ज्वर मे, प्रतिश्याय (जुकाम) मे और मूत्र-कृच्छ्र मे हितकर है। जिस दही मे से चिकनाई दूर कर दी गई है यानी दही से नवनीत निकाला जा चुका हो ऐसे तक्र का उपयोग ग्रहणी रोग मे अधिक उपयोगी है।

ग्रहणी रोग की आरम्भिक अवस्था में कपर्द भस्म के साथ दधि का उपयोग सदैव ही उपादेय प्रमाणित हुआ है। जब कि ग्रहणी इतनी निर्बल हो जाती है कि अल्प मात्रा मे भी कोई वस्तु नहीं धारण कर सकती उस अवस्था मे नवनीतरहित दधि ही का प्रयोग उत्तम है। हिंगुल रसायन के साथ दधि का उपयोग ऐसी अवस्था मे भी किया जाता है जब मल का रंग सफेद और अत्यन्त बदबूदार और मात्रा मे अधिक होता है। कभी कभी तो रोगी इतना दुर्बल हो जाता है कि करवट भी नहीं बदल सकता। आंखे अन्दर धॅस जाती है, नाड़ी क्षीण व पतली पड जाती है, आवाज भी क्षीण हो जाती है और खाने के लिये कुछ भी नहीं लेता। ऐसी अवस्था मे भी हिंगुल रसायन का उपयोग दधि के साथ कराया जाता है। दधि २ तोला से लेकर धीरे धीरे बढ़ाते हुए जितना हजम होता जाय सेवन कराया जाता है। उस कल्प मे १२ सेर प्रतिदिन तक पहुँच जाता है। ६१ दिन के प्रयोग से रोगी बिलकुल स्वस्थ हो जाता है। दही का प्रयोग रात्रि मे वसन्त, ग्रष्म व शरद ऋतुओं में तथा रोग की शोथ अवस्था मे वर्जित है अतः इसका ध्यान रखते हुए दधि कल्प की शरण लेनी चाहिए।

दही पूर्णरूप से जमा हुआ हो खट्टा न हो इसका ध्यान रखे। गाय के दूध का या बकरी के दूध का ही दही उपयोगी माना जाता है।

तक्र कल्प

तक्रं तु ग्रहणी दोषे दीपन ग्राहि लाघवात्।
श्रेष्ठं मधुरपाकित्वान्न च पित्तंप्रकोपयेत्॥
कषायोष्ण विकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम्।
वाते स्वाद्वम्ल सान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत्॥

ग्रहणी विकार वाले के लिए मट्ठा (तक्र) लघुपाकी होने से अग्निदीपक, पतले मल को बांधने वाला और पथ्य है। इसका विपाक मधुर होता है इसलिए पित्त को प्रकुपित नहीं करता। कषाय, गरम, विकासि और रूक्ष होने से कफ विकारो मे तथा स्वादु, खट्टा और सान्द्र होने से वातज विकार मे लाभप्रद है। मट्ठे को ताजा बना कर ही उपयोग मे लाया जाय तभी वह अविदाही होता है।

दही मे बिना जल डाले मंथन किया जाय उसे घोल, दही की मलाई निकाल कर जल मिला कर घोला जाय उसे मथित, दही से चौथाई जल डाल कर मथा जाय उसे तक्र, आधा जल डालकर मथा जाय उसे उदश्वित कहते है। और अधिक जल डालकर मथा जाय और उसमे से मक्खन निकाल लिया जाय उसे छाछ संज्ञा दी है। ये सब तक्र उत्त-रोत्तर लघु होते है। मक्खन निकाल लेने पर दही दोषघ्न और हलका होजाता है।

तक्र के गुण—

लघु, कषैला, खट्टा, मीठा, उष्ण वीर्य, रूक्ष अग्निदीपन तथा कफ वातनाशक है। शोथ, उदर, अर्श, ग्रहणी रोग, वस्तिशूल, मूत्रावरोध, अरुचि, प्लीहा, गुल्म, अधिक घृत सेवन के विकार, कृत्रिम विष,

विकार सेन्द्रियविष प्रकोप तृषा वमन शूल मेदवृद्धि आदि रोगों में हितकर है।

मट्ठे के सेवन से आमाशय और अन्त्रादि पचन संस्थान सबल होकर भोजन का परिपाक नियमित और सत्वर होता है। लघु अंत्र मे स्थित रसांकुरिकाओं की शोषण क्रिया सम्यक् हो जाती है। यकृत् और मूत्रपिण्ड की क्रिया उत्तेजित होती है। रक्ताभिसरण क्रिया बलवती बनती है। रक्त विशुद्ध और लाल बन जाता है। अंत्र में रहे हुए सेन्द्रिय विष, सूक्ष्म कीटाणु और मल मे उत्पन्न दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है तथा स्रोतों का शोधन होता है।

मट्ठे मे लेक्टिक एसिड, म्यूरियाटिक एसिड और साइट्रिक एसिड होते हैं। इनमे लेक्टिक एसिड के योग से अन्त्रस्थ रसांकुरिकाओं को उत्तेजना मिलती है। सूक्ष्म कीटाणु नष्ट होते हैं। म्यूरियाटिक एसिड के अस्तित्व से पित्तस्राव नियमित होता है, यकृत् और बृहदंत्र सबल बनते है और इन्द्रियां अपनी क्रिया भली भांति करने लगती है। साइट्रिक एसिड रक्तशुद्धि, रक्ताभिसरण क्रिया मे उत्तेजना, कीटाणुनाश तथा आमाशय और ग्रहणी आदि की शक्ति में वृद्धि करता है।

प्राचीन आचार्यों ने तक्र की स्तुति में कहा है—

दुःसाध्यो ग्रहणी रोगो भेषजैर्नैव शाम्यति।
सहस्रशोऽपि विहितैर्विना तक्रस्य सेवनात्॥
दोषधातुबला पेक्षा ग्रहण्यां तक्रमापिवेत्॥
न तक्र सेवीव्यथते कदाचिन्न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति रोगाः॥

मानव पर तक्र का प्रभाव—

शरीर मे रक्त वाहिनी की शिराओं मे धीरे धीरे कई प्रकार के क्षार द्रव्य जमा होते रहते हैं जिससे रक्त वाहिनी शिरायें रक्त का संचालन बराबर ठीक तरह से नहीं कर पाती। रक्त का संचालन ठीक ठीक न होने से शरीर की पुष्टि भी नहीं होती। परिणाम यह होता है कि मनुष्य युवा होते हुए भी वृद्ध हो जाता है, बाल सफेद हो जाते है, शरीर में झुर्रियां पड़ जाती हैं, युवावस्था में ही स्फूर्ति जाती रहती है।

जब यह क्षार हड्डियों में प्रवेश करता है तब सन्धिवात गठिया आदि उपद्रव उत्पन्न होने लगते है। तक्र उस जमे हुए क्षार को मूत्र द्वारा निकालने की क्षमता रखता है। इसका प्रभाव मूत्रपिण्ड पर होता है। साथ ही यह विषनाशक भी है जो अन्न के अपक्कांश से उत्पन्न होता रहता है उसे नष्ट करता आमाशय को निर्मल करता है, भूख बढाता है, पाचन क्रिया के कार्य को उत्तेजित करता है। गहरी नींद लाता है।

दही जमने से पहले बनाई हुई तक्र वायुकारक, रूक्ष, अभिष्यन्दी और दुर्जर होने से उपयोग मे नहीं लानी चाहिये।

यदि रोगी को पीनस श्वास कास हो और ग्रहणी मे तक्र का कल्प चल रहा हो तो गर्म जल डाल कर मट्ठे का मथन करना चाहिए।

विद्वानों की राय है कि दही को तक्र बनाने के लिए जितना अधिक मंथन किया जायगा उतना ही लाभप्रद होता है। पानी भी नहीं मिलाना चाहिए।

दूध काली गाय का यदि न हो तो दूसरे रंग की गाय का जिसका बछडा जीता हो, उसी का लेना चाहिए। १ या १॥ महिने से अधिक की व्याही न हो। उसके दूध को गरम करें, एक उफान आने पर ठंडा कर, गुन गुना रहने पर थोड़ा सा दही डालकर जमाना चाहिए।

जिस पात्र मे दही जमाया जाय उसमे पहले चित्रक के कल्क का लेप कर देना चाहिए। साथ ही हींग और कपूर की धूप भी देनी चाहिए, तब दही जमाना चाहिए।

यदि एक ही पात्र मे दूध जमाया जायगा और एक बार या ३–४ बार उसमे से दही निकाल कर मट्ठा तैयार किया जायगा तो वह खट्टा हो जायगा। इसलिए एक मात्रा का दूध प्रथक प्रथक बर्तनों मे, कांच पात्र मे या मिट्टी के पात्र मे जमाना चाहिए। उसका

उपयोग एक बार में ही करना चाहिए।

शीत काल से अधिक शीत से गर्मी में अधिक गर्मी से दही व मट्ठे को बचाना चाहिए। अन्यथा उसमें ऋतुजनित विकार उत्पन्न होते हैं।

तक्र बनाते समय दही से तीन गुणा तक जल मिलाया जाता है, मक्खन निकाल लेना चाहिए। दूसरे सप्ताह में प्रकृति के अनुकूल होने पर आधा मक्खन निकालें। वह भी हज्म होने लगे तब तीसरे व चौथे सप्ताह में मक्खन नहीं निकालना चाहिए। वातज रोग में चौथाई मक्खन, पित्तज रोग में आधा मक्खन, कफज रोग में पौन मक्खन, मल दुर्गन्धित और आमयुक्त हो तो पूरा मक्खन निकाल लेना चाहिए।

प्रकृति, अग्निबल, और सहन शक्ति को—लक्ष करके जल कम ज्यादा जैसा उचित समझे मिलाना चाहिए। यही बात मक्खन निकालने न निकालने के सम्बन्ध में भी है।

जब मल बंधा हुआ आये, मल फटा हुआ और आमयुक्त न हो तब थोड़ा थोड़ा मक्खन रहने देना चाहिए। ग्रहणी में कब्ज अधिक हो उस समय भी मक्खन रखा जाता है। पतले और दुर्गन्धित मल वाले को मक्खन नहीं पचता।

मट्ठा एक एक घूंट मुंह में खूब चबाकर धीरे धीरे पीना चाहिए। मट्ठे में सेंधा नमक, भुना जीरा, सोंठ या काली मिर्च, भुनी हींग या लवण भास्कर चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये जिससे वह स्वादिष्ट लगे।

कल्प—

जिस रोगी को तक्र कल्प कराना हो, उसे अन्न जल बिल्कुल नहीं देना चाहिये। क्षुधा तृषा दोनों की निवृत्ति मट्ठे से ही करनी चाहिये। यहां तक कि शौच क्रिया व हाथ प्रक्षालन भी तक्र से ही करें।

प्रथम दिन रोगी को ४ बार दिन में मट्ठा देवें। तृषा लगने पर २-३ बार जल भी ले सकता है क्योंकि अभी पेट में पुराना अन्न रहता है। ३-४ दिन के बाद जल देना भी बन्द कर देना चाहिए केवल मट्ठा ही देवे। जठराग्नि बल के अनुसार शनैः शनैः बढ़ाते जांय। इस प्रकार केवल मट्ठे पर ही रहने से रोगी ४०-५० दिनों में ही नीरोग हो जाता है, आंतें बलवान बन जाती हैं, मल बंधकर आने लगता है, मल में दुर्गन्ध व आंव आना बन्द हो जाती है और बंधा हुआ मल नियत समय पर आने लगता है। निद्रा मर्यादित हो जाती है, शरीर सबल और तेजस्वी बन जाता है, मन में स्फूर्ति और प्रसन्नता आ जाती है। जब पूर्ण स्वस्थ प्रतीत होने लगे तब पथ्य में भोजन यथानियम करना आरम्भ करें। यदि ४०-५० दिन मट्ठे पर रहने पर भी रोग पूर्णतया निर्मूल न हुआ हो तो कल्प को बढ़ा देना चाहिए। बिना पूर्ण आरोग्यता के तक्र कल्प के बन्द नहीं करना चाहिए। रोगबल शरीरबल और देश कालादि भेद से समय न्यूनाधिक हो जाता है।

जो रोगी कल्पारम्भ के समय सत्वर अन्न नहीं छोड़ सकते या वे यह भय खाते है कि शरीर निर्बल पड़ जायगा उन्हें विश्वास दिलाना चाहिये कि अन्न छोड़ने पर अधिक अशक्ति न आयेगी प्रत्युत शक्ति बढ़ जायगी। यदि वह तैयार न हो तो उन्हें धीरे धीरे अन्न का त्याग कराकर मट्ठे पर ही ले आना चाहिए।

जो व्यक्ति चाय तमाखू बीड़ी पीते हैं और चटपटे मसालेदार भोजन के बिना नहीं रहते ऐसे रोगियों के लिये व्यसन और भोजन धीरे धीरे छुड़वाना चाहिए। एक दम मट्ठे पर नहीं रखना चाहिए। थोडा थोड़ा अन्न देते रहे। भोजनोपरांत मट्ठा पिलाते रहे। शनैः शनैः भोजन घटाते रहे और मट्ठा बढ़ाते रहे।

कल्प काल में दिन में ४ बार पंचामृत पर्पटी या स्वर्ण पर्पटी या इतर पर्पटी, ग्रहणी कपाट या हिंगुल रसायन जैसा उचित हो सेवन कराना चाहिए। आमनाश के लिये लाई चूर्ण,

मन्दाग्नि हो तो लवणभास्कर तक्र के साथ देवें। पतले दस्त अधिक होते हो तो उनकी मात्रा कम करने के लिए कपित्थाष्टक या दाडिमाष्टक चूर्ण दे सकते हैं, अफरा हो तो हिंग्वाष्टक दे दें।

मूत्र मे पीलापन, थोड़ा थोड़ा पेशाव बार-बार होते रहना, पेशाब साफ न होता हो, ऐसा उपद्रव हो, तो सौंफ, छोटी इलायची, धनियां के बीज, मट्ठा पिलाने के पश्चात् दिन मे ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा देते रहे। रात्रि मे मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिए।

प्रवाहिकाजन्य ग्रहणी, क्षय के कीटाणुजन्य संग्रहणी, तथा बालको को गौ के दही से बनी तक्र की अपेक्षा बकरी के दही से बनी तक्र अधिक उपयोगी है। उसमे जल नहीं मिलाना चाहिए। दूध को लोहे की कढ़ाई मे गर्म करना चाहिए। एक ही उफान आवे, तब उसे नीचे उतार ले, गुनगुना रहने पर उसे जमा देवे।

जिनके मूत्र मे प्रतिक्रिया क्षारीय होती हो, ज्वर, उरःक्षय, मूर्च्छा रोगी, पित्त प्रकोप, अम्ल-पित्त, शोथ या रक्तपित्त न हो, सुजाक या उपदंश रोग पहले कभी न हुआ हो उन्हे ही तक्र कल्प अधिक उपयोगी रहता है। इस तक्र कल्प से पुरानी संग्रहणी नवीन संग्रहणी रोग निश्चय ही नष्ट होजाता है। चाहे जितनी निर्बलता आजाय शरीर अस्थि पंजर मात्र रह जाय, देह कृश होजाय, क्षुधानाश, अन्न-अपचन, उदरशूल, आमवृद्धि, आंतो मे गुड-गुड़ाहट, पतले और दुर्गन्धमय दस्त, उनकी अधिक संख्या होने पर भी तक्र कल्प से रोगी स्वस्थ हो जाता है। तारीफ यह कि इससे गया हुआ रोग पुनः प्रकट नहीं होता।

आम्र-कल्प

इसके कल्प से क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्तविकार, निर्बलता, नपुंसकता तक नष्ट होते देखे गये है। इसके मीठे मे विटामिन 'ए' तथा 'बी' प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है। विटामिन 'ए' से रोगी बाहर के विषो से बचता है। विटामिन 'बी' चर्म रोगो को नष्ट करता है। पके हुए फलो का रस अत्यन्त पौष्टिक और बलवर्धक है। यदि इसे दूध के साथ सेवन किया जाय तो इसके गुणो मे विशेष वृद्धि हो जाती है तथा दूध का पाचन भी सम्यक प्रकार से हो जाता है।

आम्र में रेचक गुण भी होता है। जिन्हे कब्ज रहती है उनके लिए तो यह पथ्यरूप है। आमाशय और शॉक (Shock) सम्बन्धी रोगो मे भी लाभ-प्रद है। इसके प्रयोग से संग्रहणी, श्वासादि रोगो मे बडा लाभ मिलता है। यह रक्त, मांस, वीर्य और ओज तथा शक्तिवर्धक है।

आम्र कल्प का प्रारम्भ—

अन्न जल छोड कर आम पाल के पके या वृक्ष के पके, रसदार, मीठे, पतले रस वालो को ही सेवन करना चाहिए। साथ मे गाय का दूध लेना चाहिए। बकरी का दूध भी लिया जा सकता है। जैसा दुग्ध-कल्प मे बताया गया है उसी विधि से दुग्ध का पान कराना चाहिए।

आम खट्टे न हो, अधिक पके न हो जो गल गये हो। आम को सेवन करने से पूर्व जल में या वर्फ मे ठंडे कर लेना चाहिए जिससे उनकी गर्मी शान्त हो जाय, फिर उन्हे अच्छी तरह धोकर साफ कर धीरे धीरे रस चूसे। बाहर निकालकर रस पीने से उतना लाभ नहीं होता जितना चूसने से होता है।

यदि आम के सेवन काल मे कुछ पेट मे वायु का विकार मालूम हो तो अदरख छीलकर सैंधा नमक लगाकर सेवन करे। साधारणतया एक बार ही दिन में इसका सेवन करना चाहिए। यदि पाचन क्रिया आज्ञा दे तो दो बार भी लिया जा सकता है। साथ ही दूध का भी सेवन करना चाहिए। इस प्रकार एक मास से दो मास तक इसका कल्प किया जा सकता है।

यह फल वर्षा होने से पूर्व तथा वर्षाकाल के आरम्भ में ही होता है। इसका सेवन आषाढ़ श्रावण मास में ही अधिक उपयोगी है। इन दो महीने के कल्प से ही रोगी लम्बे कब्ज से, मन्दाग्नि, क्षय, दमा, हृदरोग से प्रायः छुटकारा पा जाता है। शरीर में नव जीवन मालूम होता है, खून बढ़ता है, शक्ति आती है और चेहरा सुर्ख हो जाता है।

वर्षाकाल में वैसे ही पाचन क्रिया निर्बल हो जाती है। ऐसे समय में आम ही पाचन क्रिया को पुनः सक्षम बना सकता है।

जिन्हें आम के सेवन से उलटी होती है आम्रकल्प नहीं करना चाहिये।

प्रथम दिन ५ आम प्रात तथा ५ आम सूर्यास्त से पूर्व चूसे। बीच बीच में भुना जीरा, हींग, सोंठ, सैंधानमक का चूर्ण या चटनी चाटे। आम चूसने के ३ घंटे बाद दूध पीना चाहिये। आरम्भ में ४-५ दिन तक थोड़ा चावल सेवन कर सकता है। आम प्रतिदिन तक एक एक बढ़ता रहे। सुखपूर्वक पचने पर ही बढ़ाना चाहिये। इसी प्रकार दूध भी बढ़ावे।

तीन समय आम सेवन करने से पाचन क्रिया सम्यक् नहीं रहती। तृषा व क्षुधा लगे तो दूध ले सकता है, जल का सेवन नहीं करना चाहिये। प्यास के समय दुग्धार्क (दुग्ध को फाड़कर निकाला पानी) पी सकता है। कल्पकाल में विश्राम आवश्यक है, धूप में घूमना हानिकर है।

विधिवत् एक दो महीने आम्र, दुग्ध के सेवन से संग्रहणी समूल नष्ट हो जाती है। इस कल्प के साथ स्वर्ण पर्पटी प्रातः सायम्, मध्याह्न लाही चूर्ण या कपर्द भस्म का सेवन करे।

विशेष सम्पादक—श्री मुन्नालाल गुप्त B I.M S
५६/१३२ पुरानी दाल मंडी नयागंज, कानपुर

पांच पहेलियां

लवण बिना सब रस हों जिसमें, स्वादु पाक में औषधि जो।
सर्व रोग हारिणी दीपना, सरा सप्तधा होती जो ॥१॥

कटी हुई जिस वल्ली में भी, कल्ली कल्लित होती हो।
कटुका लघ्वी स्वादु पाक में, सुधा सुता कहलाती जो ॥२॥

उत्कट कटु जो होय महौषधि, भद्रगण्य जो कटु गण में।
वातादनी भग में हरती, आमवात दुख जो क्षण में ॥३॥

मेद कुष्ठ हृद्रोग वातजित, बल कृद्वस्ति विशोधक जो।
[illegible]ानल स्वादु कंट युत् फल हो, जिह्मिय छिद्र चिरकारत हो ॥४॥

हेम समान कुसुम हों जिसके, पीत अरु तिक्त क्षीर वाली।
हरे कण्ड्वादि कुष्ठ विष कफ को, शोणित से शोषण वाली ॥५॥

नोट—इनके उत्तर अक्टूबर मास के अङ्क में पढ़िये।

—वैद्य श्री वेदमित्र आर्य आयुर्वेद भास्कर,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ग्रहणी रोग पर अनुभव

[१]

श्री रामचन्द्र गौनियाल 'निर्मोही'

नाम रोगी—होशियारसिंह, आयु—६ वर्ष स्थान—बगेली ढाइज्यूली (पौडीगढ़वाल)

दौह्रदा जननी का पीयूष पान करने से शिशु अतिसार रोग से ग्रसित हुआ। रोग शनैः शनैः बढ़ते हुए एक साल पश्चात् अपनी चरमसीमा तक पहुँच गया। प्राचीन महर्षियों के कथनानुसार "अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशनः। भूय. संदूषितो वह्निग्र्हणीमभिदूषयेत्।" ग्रहणी का प्रादुर्भाव होने लगा। निकट के प्रसिद्ध नामधारी वैद्य एवं डाक्टरों को रोगी दिखाया गया किंतु सारा प्रयास विफल रहा। सब जगह से निराश होकर अन्त मे १ अप्रैल १९५८ को अस्थिचर्मावशेष रोगी मुझे दिखाया गया। रोगी का निदान 'आममेव विमुञ्चति, पक्कं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम्" से स्पष्ट प्रतीत होने लगा। आम एवं पक्व मल की जल द्वारा परीक्षा की गई। उचित परीक्षा करने के पश्चात् क्षीणकाय जीर्ण-शीर्ण, भक्तद्वेष से पीड़ित रोगी को असाध्य बतलाकर मैंने चिकित्सा करने की अनुमति दी। माधव निदान के "बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता। वृद्धेत्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम्॥" धन्वन्तरि के इस वाक्य को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित क्रमानुसार औषधि प्रयोग कराई गई।

बेलगिरी एवं आम की गुठली की गिरी समभाग लेकर उसमे चौथाई भाग शङ्खभस्म मिलाई। कूट पीसकर औषधि तैयार हो जाने पर ३ अप्रैल १९५८ को औषधि की ४ रत्ती की मात्रा बनाकर दिन मे चार बार गो दुग्ध के साथ प्रयोग कराई गई। भोजन बन्द ही था औषधि का क्रम चलता ही गया। तीसरे दिन से रोगी पाव पाव भर दुग्ध पीने लगा। इच्छानुसार कुछ कुछ तक्र भी लेता था। २० अप्रैल तक औषधि इसी क्रम से दी गई। रोगी की हालत काफी सुधर गई, मल मे काफी परिवर्तन होकर दिन में केवल ७ या ८ बार टट्टी उतरने लगी। रोगी आध आध सेर धारोष्ण दुग्ध सुबह शाम पीने लगा। समयानुसार तक्रारिष्ट का भी प्रयोग किया गया। २१ अप्रैल से मध्य की दो मात्राऐं बदल दी गईं, उसके स्थान पर गन्धक वटी (लोलिम्बराज की लसुनादि वटी) तालीसपत्रादि चूर्ण एवं लवण भास्कर चूर्ण (शा० सं०) समभाग लेकर १ माशे की पुड़िया बनाकर तक्र के साथ दी गई। औषधि का यह क्रम १० मई तक चलता रहा। रोगी की दशा दिन प्रतिदिन सुधरती गयी। परिवार वालो के मुख में भी प्रसन्नता की झलक प्रतीत होने
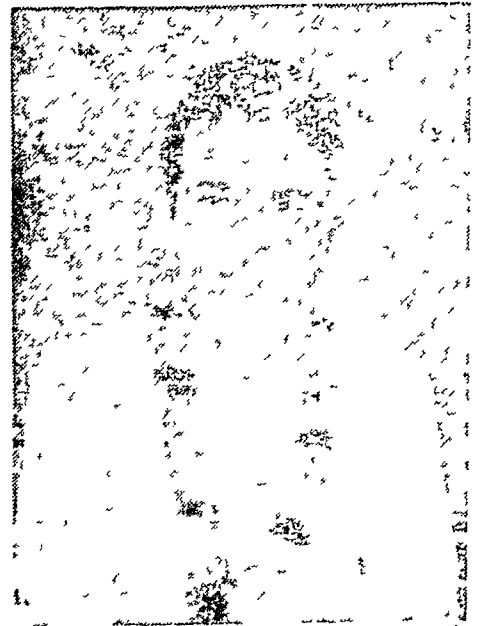
लगी। अब रोगी केवल दिन मे तीन बार मल त्यागता था। अन्न मे रुचि हुई, औषधि की एक मात्रा मध्यान्ह की कम कर दी गई। १५ मई को गेहूँ का दलिया बनाकर रोगी को खिलाया गया, वह अच्छी तरह हजम हो गया। यह क्रम तीन दिन तक चलता रहा। २० मई से औषधि बन्द करदी गई। अब बेल का मुरब्बा सुबह को दुग्ध के साथ दिया जाने लगा। सुबह शाम भोजन के पश्चात् आधा तोला मृद्वीकासव समभाग पानी मिलाकर दिया जाता था। पथ्य मे चांगेरी की भाजी एवं कच्चे केलों की सब्जी, चने की रोटी और गेहूँ की रोटी दी जाती थी। रोगी की इच्छानुसार दलिया, दुग्ध भी दिया जाता था। ३० मई को रोगी स्वस्थ होकर चलने फिरने लग गया। पुनः रोग का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। शुष्क चर्मास्थियों में नव रक्त संचार होकर पुन. स्फूर्ति आई, रोगी का चेहरा दमक उठा, परिवार वालों की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही।

—श्री रामचन्द्र गौनियाल 'निर्मोही'
भोला आयु औष., सीली खाटली
जिला गढ़वाल

[२]

श्री वैद्य मोहरसिंह जी यादव।

नाम रोगी—ओमप्रकाश आयु—४ वर्ष

रोगकाल—८ मास

इस काल मे अनेको डाक्टरो से इलाज करा चुका था किन्तु रोग तनिक कम न हुआ। जब रोगी मेरे पास लाया गया तब निम्न लक्षण विद्यमान थे—

प्रतिदिन १०-१२ पतले आमयुक्त तथा रक्त मिश्रित दस्त आते थे। दस्त मरोड और पीडा के साथ होते थे, उदर मे बेचैनी, मामूली दर्द तथा कुछ आध्मान रहता था, पेट को दबाने से नाभि प्रदेश मे दर्द होता था। पूँछने से विदित हुआ कि दस्त आरम्भ हुए तब १ मास तक कभी गाढ़ा कभी पतला दस्त होता था। एक मास बाद दस्तो का कुछ पता नहीं होता था हर समय पानी चूता रहता था। दस्त का रङ्ग काला होता था।

चिकित्सा—
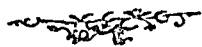
मृदु विरेचन—प्रथम दिन रोगी को ६ माशा एरण्ड तैल, १० तोला गो दुग्ध के साथ प्रात. काल दिया गया। ऐसी एक मात्रा दोपहर को दी गई। इससे कुछ मल निकल गया। दूसरे दिन ईसबगोल की भुसी १॥ माशा पानी मे फुलाकर दिन मे तीन बार दी गई।

तीसरे दिन प्रात काल वत्सकादि क्वाथ पिलाया गया। सायकाल भी यही काढ़ा दिया गया। चौथे दिन पञ्चामृत पर्पटी ¼ रत्ती, बिल्वादि चूर्ण २ रत्ती मिला १ मात्रा अनुपान वत्सकादि क्वाथ के साथ दी।

रात्रि को सोते समय प्रतिदिन ३ माशा कच्ची बेलगिरी का चूर्ण जल से दिया गया। इस उपचार से १० दिन मे २-३ दस्त आने लगे। बच्चे को कुछ शान्ति मिली। २० दिन मे ही बालक स्वस्थ हो गया।

पथ्य—साठी चावल प्रातःकाल तक्र के साथ दिये जाते थे। दिन मे तक्र भुना जीरा तथा सेधा-नमक मिलाकर दिया जाता था

जल—सदैव ऋत शीत जल दिया जाता था।
फल—केला, शाक-कच्चा केला

—वैद्य श्री मोहरसिंह यादव, हितैषी दवाखाना,
मिसरी, चरखी दादरी, महेन्द्रगढ़।

कविराज श्री राम सुरेश मिश्र आयुर्वेदाचार्य

आज से नौ माह पूर्व की घटना है। मेरे चिकित्सालय में ३२ वर्षीय एक पुरुष आतुर आया जो अति ही क्षीणकाय था। उसके पूर्ववृत्त का इतिहास लेने पर पता चला कि यह रोग उसे चार साल से था। उसमे निम्न लक्षण पाये गये पेट मे हमेशा गुड़गुड़ाहट बनी रहती थी और पेट फूल जाता था और पाखाना पतला शब्द के साथ होता था। कमर में शौच के समय प्राय. मीठा मीठा दर्द रहता था। शरीर मे सुस्ती बहुत ज्यादा बढ़ गई थी, पेट निकला हुआ था और पेट पर हरी-हरी नसें उभड़ आयी थी। जो भोजन करता, उसी रूप मे पाखाने के रास्ता से निकल जाता था। पाखाना कभी-कभी बहुत ही पिच्छिल लबाबदार तथा कड़ा हुआ करता था। मन्दाग्नि प्रधान थी। बिना भोजन के भी उर्ध्व वात अधिक होता था बीच-बीच मे स्वयं शान्त हो जाता था। नाड़ी बहुत ही क्षीण, परन्तु भीतर की तरफ दबी हुई चलती थी। मैंने उसे संग्रहणी संज्ञा दी और मेरी चिकित्सा शुरू हुई।

प्रथम ६ दिन तक मैंने स्वकृत योग उदरामृत रस ३-३ गोली प्रत्येक मात्रा ४-४ घंटा पर निम्न सहपान के साथ दिया—

सहपान—बेलपत्र ४ तोला सिल पर चटनी के समान महीन पीसकर ७ तोला तालमिश्री मिलाकर २ छंटाक जल में घोल ले और ३ गोली चबाकर ऊपर से उक्त कथित जल को पी जांय।

पथ्य मे—चावल का गलाया हुआ भात गाय की दही का घोल, हींग, जीरा, नमक के साथ दिया और तरकारी मे पपीता और केला दिया गया। रोग मे कुछ तब्दीली नजर आने लगी और कुछ भूख बढ़ने लगी।

६ दिन के बाद यह क्रम शाम सुबह कर दिया गया और ६ बजे दिन तथा ३ बजे दिन में रामबाण रस की २-२ गोली जीरा की बुकनी २ आना भर तथा अठन्नी भर शहद के साथ चटाता रहा और भोजन के बाद रात दिन मे २ बार १ औंस दवा तथा उतना ही ताजा कूंआ का जल मिलाकर पिलाता रहा। दवा का नाम तथा माप, जीरकाद्यरिष्ट ½ औंस + कुटजारिष्ट ½ औंस = १ औंस

उक्त दवाओं के १ माह के प्रयोग से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया, परन्तु फिर भी दवा २५ दिन और चालू रखी गई। उक्त सभी कथित लक्षणो मे बिलकुल परिवर्तन आ गया और आज रोगी बिलकुल स्वस्थ है। यहां तक कि अभी तक उसे मन्दाग्नि की भी शिकायत नहीं हुई।

उदरामृत योग—शुद्ध पारा ½ तो० शु० गन्धक १ तो० की कज्जली निश्चन्द्र बनायी। उसके बाद कच्चे बेल की गुद्दी १ तो०, सुगन्ध वाला १ तोले, अतीस १ तो०, नागर मोथा १ तो०, कुरैया की छाल १ तो० सभी को कूट कपड़छान कर उक्त कज्जली मे मिला कुटज स्वरस या स्वरसवत् क्वाथ से ३ दिन भावना दी। तत् पश्चात् बेल पत्र के स्वरस से ३ दिन भावना दे कर घोंट कर मटर के समान गोली बनाकर व्यवहार करे। वैद्य बन्धु रोगी, अवस्था, रोग, काल आदि पर ध्यान दे कर मात्रा निर्धारित करे।

—कविराज श्री राम सुरेश मिश्र,
आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद बृहस्पति,
शेरमारी (पीरपैंती)

ग्रहणी रोग पर स्वानुभूत उत्तम प्रयोग

पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य 'अमृतधारा'।

भारत विख्यात 'अमृतधारा' के जन्म दाता पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य के नाम से कौन अपरिचित होगा। एक ग्रामीण हकीम से लब्ध आपने अपना एक योग जिसे आप पिछले चालीस वर्षों से निरन्तर उपयोग में ला रहे हैं इस अंक में प्रकट किया है। योग की उपादेयता में सन्देह की गुंजाइश नहीं। वैद्यों को इसका उपयोग करके देखने का अनुरोध है।

—वि० स०

इस योग को मैं बराबर चालीस वर्ष से बरत रहा हूं और सदा ही उपयोगी पाया है। ऐसे रोगी जो दस दस वर्ष से बीमार थे और एलोपैथिक होम्योपैथिक तथा देशी चिकित्सा करके भी पूर्ण स्वस्थ न हो सके थे—प्रभु कृपा से कभी पहिले और कभी दूसरा कोर्स लेने पर स्वस्थ हो गये।

यह योग एक बहुत पुराने ग्रामीण हकीम से मिला था यह ग्रहणी रोग का विशेष चिकित्सक था। मैंने दुग्धवटी का दुग्धकल्प के साथ भी प्रयोग किया है परन्तु उसका लाभ इस योग के बराबर नहीं देखा। यह प्रयोग मैंने आज तक किसी पुस्तक या पत्रिका में नहीं लिखा था, इस को आज लिख रहा हूँ। धन्वन्तरि कार्यालय का यह प्रयास सफल हो।

प्रयोग यह है

४ सेर रसोत उत्तम लेवे। फिर भी उसमें मिट्टी कंकर होते हैं इस वास्ते इसको साफ पानी में शनैः शनैः घोल देवे और साफ पानी निथार लेवे। दो तीन बार और पानी डालकर घोल कर साफ पानी लेलें और नीचे की गाद को फेंक दें।

फिर इसको कड़ाही में डाल कर इस का घन बनावे। गाढ़ा होने पर इलायचीदाना ३२ तोला, काली मिर्च ३२ तोला सुहागा सफेद केवल ८ माशा अलग-अलग पीसकर उसमें मिला दें। इतना गाढ़ा न करे कि रसोत जलकर उडका असर कम हो जावे। दवाएं मिलाकर आग से उतार लें और २-४ दिन धूप में रख कर हिलाते रहें। जब गोली बनने के योग्य हो जावे तब गोली बना लें। इसकी एक दिन की मात्रा लगभग ४ माशा है। हकीम साहब ने बड़े बेर की बराबर गोली कही थी और वह गोली को कूट कर केवल एक समय खिला देते थे। मैंने ऐसा कर दिया कि एक एक माशा की ४ गोलियां बनाई जावें और दो गोली प्रातः तथा दो गोली सायं खिलाई जावें।

गोली को दही के मट्ठे से खाना है। मट्ठे में जीरा, काली मिर्च, नमक मिला लेना है। सब गोली एक समय भी खा सकते हैं और आधी-२ प्रातः सायम् भी खा सकते हैं। भोजन में सिवाय दही के मट्ठे के और कुछ न दिया जावेगा। तीसरे दिन से लाभ होना प्रारम्भ हो जावेगा। यदि लाभ न हो तो दो चार दिन और इसी प्रकार खावे। इसके बाद दही के मट्ठे के साथ एक दो ग्रास चावल खाना प्रारम्भ कर दें। दिन में मट्ठा चावल दें खुराक पूरी हो जावेगी। अब एक एक ग्रास रोटी का इस प्रकार प्रारम्भ करे कि प्रातः एक ग्रास-रात्रि को दो ग्रास, अगले दिन प्रात ३ ग्रास और रात्रि को चार ग्रास। इस प्रकार चावल कम होते जावेंगे और रोटी बढ़ती जावेगी। लगभग १२ दिन में केवल रोटी दही के मट्ठे के साथ खावेंगे। जो लोग चावल व रोटी दोनों खाते हैं वह जब आधा चावल आधी चपाती पर आ जावें तो फिर शनैः शनैः तरकारी

—शेषांश पृष्ठ ६४६ पर।

ग्रहणी रोग पर स्वानुभूत उत्तम प्रयोग

प० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य 'अमृतधारा'।

भारत विख्यात 'अमृतधारा' के जन्म दाता पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य के नाम से कौन अपरिचित होगा। एक ग्रामीण हकीम से लब्ध आपने अपना एक योग जिसे आप पिछले चालीस वर्षों से निरन्तर उपयोग मे ला रहे है इस अंक मे प्रकट किया है। योग की उपादेयता मे सन्देह की गुंजाइश नहीं। वैद्यों को इसका उपयोग करके देखने का अनुरोध है।

—वि० स०

इस योग को मैं बराबर चालीस वर्ष से बरत रहा हूं और सदा ही उपयोगी पाया है। ऐसे रोगी जो दस दस वर्ष से बीमार थे और एलोपैथिक होम्योपैथिक तथा देशी चिकित्सा करके भी पूर्ण स्वस्थ न हो सके थे—प्रभु कृपा से कभी पहिले और कभी दूसरा कोर्स लेने पर स्वस्थ हो गये।

यह योग एक बहुत पुराने ग्रामीण हकीम से मिला था। यह ग्रहणी रोग का विशेष चिकित्सक था। मैंने दुग्धवटी का दुग्धकल्प के साथ भी प्रयोग किया है परन्तु उसका लाभ इस योग के बराबर नहीं देखा। यह प्रयोग मैंने आज तक किसी पुस्तक या पत्रिका मे नहीं लिखा था, इस को आज लिख रहा हूँ। धन्वन्तरि कार्यालय का यह प्रयास सफल हो।

प्रयोग यह है

४ सेर रसोत उत्तम लेवे। फिर भी उसमें मिट्टी कंकर होते है इस वास्ते इसको साफ पानी मे शनैः शनैः घोल देवे और साफ पानी निथार लेवे। दो तीन वार और पानी डालकर घोल कर साफ पानी लेलें और नीचे की गाद को फेंक दें।

फिर इसको कड़ाही मे डाल कर इस का घन बनावे। गाढ़ा होने पर इलायचीदाना ३२ तोला, काली मिर्च ३२ तोला सुहागा सफेद केवल ८ माशा अलग-अलग पीसकर उसमें मिला दे। इतना गाढ़ा न करे कि रसोत जलकर उसका असर कम हो जावें। दवाएं मिलाकर आग से उतार ले और २-४ दिन धूप मे रख कर हिलाते रहे। जब गोली बनने के योग्य हो जावे तब गोली बना ले। इसकी एक दिन की मात्रा लगभग ४ माशा है। हकीम साहब ने बड़े बेर की बराबर गोली कही थी और वह गोली को कूट कर केवल एक समय खिला देते थे। मैंने ऐसा कर दिया कि एक एक माशा की ४ गोलियां बनाई जावे और दो गोली प्रातः तथा दो गोली सायं खिलाई जावे।

गोली को दही के मट्ठे से खाना है। मट्ठे में जीरा, काली मिर्च, नमक मिला लेना है। सब गोली एक समय भी खा सकते है और आधी-२ प्रातः सायम् भी खा सकते है। भोजन मे सिवाय दही के मट्ठे के और कुछ न दिया जावेगा। तीसरे दिन से लाभ होना प्रारम्भ हो जावेगा। यदि लाभ न हो तो दो चार दिन और इसी प्रकार खावे। इसके बाद दही के मट्ठे के साथ एक दो ग्रास चावल खाना प्रारम्भ कर दे। दिन में मट्ठा चावल दें खुराक पूरी हो जावेगी। अब एक एक ग्रास रोटी का इस प्रकार प्रारम्भ करे कि प्रातः एक ग्रास-रात्रि को दो ग्रास, अगले दिन प्रातः ३ ग्रास और रात्रि को चार ग्रास। इस प्रकार चावल कम होते जावेगें और रोटी बढ़ती जावेगी। लगभग १२ दिन मे केवल रोटी दही के मट्ठे के साथ खावेगे। जो लोग चावल व रोटी दोनो खाते है वह जब आधा चावल आधी चपाती पर आ जावे तो फिर शनैः शनैः तरकारी

—शेषांश पृष्ठ ६४६ पर।

ग्रहणी रोग चिकित्सा

श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी

वैसे तो ग्रहणी रोग पर 'तक्र-कल्प" "दुग्ध-कल्प" तथा "पर्पटी-कल्प" का अमित असीम-प्रभाव है ही परन्तु मेरे अनुभव में निम्न-लिखित औपधियों को उपयुक्त सूझ-बूझ से प्रयोग किया गया तो ये कल्प-चिकित्सा से कहीं कम क्रिया शील नहीं रहीं। ग्रहणी की प्राथमिक दशा मे नीचे लिखी व्यवस्था के अनुसार औषधियां दें—

व्यवस्था-पत्र नं० १

(१) नृपति बल्लभ—प्रातः काल १ गोली भुना हुआ जीरा (पिसा हुआ) तथा मधु के साथ। अगर पतले दस्त अधिक होने लगते हों तो मोथा का काढ़ा या स्वरस और मधु से दे। मलबिवन्धता का लक्षण दिखाई दे तो हरीतकी चूर्ण, सैन्धव लवण के साथ देना चाहिए।

(२) चित्रकादि चूर्ण—दोनो समय भोजनो-परान्त २ से तीन आने के परिमाण में उष्ण जल के साथ दे।

(३) अग्निकुमार रस—सन्ध्या समय एक गोली भुना हुआ जीरा और मधु के साथ दें।

उपरोक्त व्यवस्था द्वारा आशातीत लाभ न होने पर व्यवस्थापत्र नं० २ वाली औपधियों का प्रयोग करें। लाभ होगा।

व्यवस्था-पत्र नं० २

(१) महाराज नृपति बल्लभ—प्रातःसमय १ गोली भुने हुये जीरे (चूर्ण) मधु के साथ दिया करे।

(२) मृत संजीवनी सुधा अथवा सुरा—पूर्वाह्न नौ बजे दो ड्राम के परिमाण मे सम परिमाण जल के साथ सेवन करायें।

(३) चित्रक गुटिका—दोनो समय भोजनो-परान्त उष्णोदक से। मात्रा—१२ से १८ रत्ती।

(४) सर्वाङ्ग सुन्दर रस—समय-सन्ध्या, मात्रा—१ गोली, मल की अपक्वावस्था में मोथा के स्वरस तथा मधु के साथ और मल की पक्वावस्था मे भुने हुये जीरे (चूर्ण) व मधु से देनी चाहिए।

चित्रक गुटिका—ग्रहणी की प्राथमिक दशा में लाभदायक। मात्रा -१२ रत्ती से २४ रत्ती तक। अनुपान—उष्णोदक।

स्वल्प गंगाधर चूर्ण—इसके प्रयोग से सभी प्रकार के अतिसार, शूल आदि मे आरोग्य लाभ होता है। रोगी के उल्लिखित लक्षण समूह यदि इस प्रयोग से विनष्ट न हुए तो रोग के गुरुत्व और पक्वा-वस्था पर बृ० गंगाधर चूर्ण का प्रयोग करे।

महागंधक—ग्रहणी रोग पर, खास करके बाल-ग्रहणी मे विशेष लाभकरता है। पूर्ण मात्रा-१ गोली बच्चो को आयु के अनुसार। अनुपान-भुना हुआ जीरा चूर्ण और मधु।

महाराज नृपति बल्लभ—सोने-चांदी आदि भस्मों से बने इस योग से ग्रहणी रोग समूल नष्ट होजाता है। ग्रहणी के अतिरिक्त अम्लपित्त उदरामय और अम्लाजीर्ण पर भी आश्चर्य-जनक लाभ करता है। मात्रा-१ गोली, अनुपान—भुना हुआ जीरा (चूर्ण) और मधु।

पीयूषबल्ली रस—यह अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी खास कर इन उपसर्गों की पक्वावस्था में हित-कर है। मात्रा-१ गोली, धान्यपंचक क्वाथ के साथ।

ग्रहणी गजेन्द्र वटी—ज्वरातिसार, ग्रहणी, गुदभ्रंश (Prolapse of the anus) आदि उपसर्गों पर लाभ दिखाता है। मात्रा-१ गोली। अनुपान-काली मिर्च चूर्ण व मधु।

यह ग्रहणी कपाट रस—इसके प्रयोग से णी, अतिसार, ज्वरातिसार, क्षय, अर्श,

धातु परिपोषण क्रम और मनो देश को लाभ पहुंचाती है।

अनुपान —

(१) नानावर्ण अठाणी—मधु और घृत से। (२) अरुचि—मधु और घृत से, (३) कुष्ठ अर्श—सूरणकन्द स्वरस से, (४) वमन—मधु से, (५) चिरकालीन अतिसार—सिंघाड़े के पत्तों के रस से या अनार पत्र स्वरस से, (६) ज्वर—जल से, (७) रक्त पित्त—गुलाब पत्र स्वरस से, (८) यक्ष्मा (आंत्रिक क्षय)—मधु और घृत से, (९) बलीपलित—भृगराज स्वरस से, (१०) नेत्र रोग—मधु से, (११) अम्ल-पित्त—द्राक्षादि चूर्ण से।

हिंगुल रसायन का एक प्रयोग—

श्री पं० गंगानारायण शर्मा वैद्य ने आरोग्य प्रकाश में संग्रहणी प्रकरण में लिखा है कि यह दवा संग्रहणी की बहुत परीक्षित है। मैंने भी बहुत बार परीक्षा की है। १ रत्ती दवा से आरम्भ करके ६ रत्ती तक इस दवा की मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिये। संग्रहणी वाले रोगी को कपड़े द्वारा जल निकाले हुए ५ तोले दही के साथ दवा लेनी चाहिये। मन्दाग्नि, अम्लपित्त और कब्जियत की बीमारी में एक छटांक से एक पाव तक दही (बगैर जल निकाला हुआ) के साथ सेवन कराना चाहिये। रोज प्रातः काल एक ही खुराक दवा सेवन करनी चाहिये। दो तीन दिन के बाद ही भूख खुल जायगी। परन्तु यदि इस नई भूख से भर पेट भोजन कर लिया जायगा तो दवा से कुछ फायदा नहीं होगा। भूख लगने पर ज्यादातर मट्ठा ही सेवन करना चाहिये। अन्न खाना एकदम छोड़ देना चाहिए। दवा से गर्मी ज्यादा मालूम हो तो सन्तरा और अनार का सेवन करें, तुरंत शान्ति आ जायगी। पूरे फायदे के लिए इस दवा को ४० दिन तक खाना चाहिए।

—डा० लक्ष्मणराव आर्य वैद्य शास्त्री
आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि, भिषग्रत्न H.M.B.
बीरकूर, पो० नन्दीपेट (निजामाबाद) आंध्र

:: पृष्ठ ६४४ का शेषांश ::

रोगी के बलाबल और परिस्थिति का ध्या रखते हुए रस पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, विजय पर्प स्वर्ण पर्पटी आदि के प्रयोग से आशातीत ला होता है। इन सबकी मात्रा १ रत्ती से क्रम १२ रत्ती तक बढ़ाकर फिर घटाकर १ रत्ती ले आना चाहिए।

पथ्यापथ्य —

मल की अत्यधिक तरलता रहने पर बाल दून, मट्ठा, शटी फूड, दूध का फाड़, बेल का मुरब्ब बेल को भून कर उसका गूदा मिश्री के सा पुराने चावल का भात, आम, दूध, परवल, प केले की फलियों का साग, गूलर का साग आदि दे गरिष्ट मसालेदार, विदाही, अम्ल, घृत-प भोजन, अधिक जलपान, मिठाई तेल, सरसों त तेल, मिर्च आदि का सेवन न करें।

—श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी आयुर्वेदाचा
दोगवां, पो० कसेर कलां, (बुलन्दशह

:: पृष्ठ ६४२ का शेषांश ::

और थोड़ी दाल भी प्रारम्भ कर सकते हैं। औष तो १५ दिन खाई जाती है परन्तु यह पथ्य ती या चार सप्ताह तक रहता है। शौच समय पर हो लगता है। बहुत लम्बे रोगियों को एक मास र ४० दिन के बाद एक और कोर्स की आवश्यक होती है। ९० प्रतिशत एक कोर्स से ही लाभ ह जाता है। आगे जो प्रभु भावे।

नोट—इतनी औषधि में ८ माशा सुहागा देरें आश्चर्य तो होता है परन्तु औषधियों का विचि प्रभाव तो इसके निर्माण करने वाले को ज्ञात हो जात है कि किस प्रकार यह थोड़ी मात्रा सब के गुण व बढ़ा देती है। दूध में जामन भी तो जरा सी लग जाती है।

पंडित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य
अमृतधारा देहरादून

संग्रहणी में तक्र कल्प

श्री उमाशंकर दाधीच

जिस रोगी को अन्न बिलकुल न पचता हो, पतले दस्त लगते हों, ज्वर शोथ एवं कास श्वास न हों, उसको तक्र कल्प करवाना चाहिए। नीचे मैं जो योग तक्र कल्प के लिए लिख रहा हूं केवल मात्र उसी के प्रयोग से संग्रहणी पर चमत्कारिक रूप से सफलता प्राप्त की जा सकती है। मैं तो जीर्ण अतिसार प्रवाहिका अग्निमांद्य में भी इसका कल्प करवा कर सफलता प्राप्त करता रहा हूँ। इस औषधि से कल्प करवाते समय दोषादि के विवेचन की प्रायः आवश्यकता नहीं और न बार बार औषधि सेवन का झंझट ही रहता है। अपने दैनंदिन कृत्य को यथावत् करते हुए व्यक्ति को भी कल्प कराया जा सकता है।

हिंगुल रसायन—

उत्तम रूमी हिंगुल की डलिया, जायफल, जावित्री, लौंग प्रत्येक २०-२० तोला, भिलावा अशुद्ध, एरण्ड तैल, शहद, शु० घृत, प्रत्येक ६०-६० तोला।

निर्माण विधि—प्रथम एक लोहे की कढ़ाई में भिलावों का कल्क रख दे। कल्क के मध्य में हिंगुल इस प्रकार रखे कि हिंगुल कल्क से ढक जावे। फिर घी शहद एरण्ड तैल डाल दे। कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर सामान्य आंच जलावे। दो घण्टे बाद आंच को तेज करदे। लगभग १ घंटे में कढ़ाई में आग लग जावेगी। यदि आग न लगे तो लगा देवे। कढ़ाई में आग लग जाने पर चूल्हे की आग सर्वथा निकाल लें अन्यथा पारद उड़ जाता है। कढ़ाई की आग शीतल होने पर घृत या वेसलीन के साथ मलहम बनाकर फोडा फुंसी पर लगावे। पाक काल में भिलावों का धुवां शरीर पर न लगने दें।

पिसे हुए हिंगुल में जायफल जावित्री लौंग का चूर्ण मिलाकर खूब खरल करके रखले।

मात्रा व कल्प विधि—रोगी को यदि बिलकुल क्षुधा न लगती हो तो प्रथम दिन से ही तक्र पर रखना चाहिए अन्यथा छाछ के प्रमाण को प्रति दिन क्रमशः बढ़ाते हुए अन्न का सेवन बन्द करदें। फिर कल्पावधि में मात्र तक्र का ही सेवन भूख प्यास लगने पर करे। जब तक रोगी अन्न का सेवन करे मेथी दाना चूर्ण व पंचकोल चूर्ण समान भाग ३ माशा की मात्रा में २४ घंटे में ३ बार गर्म जल से लिया करे। जिस दिन तक्र कल्प प्रारंभ किया जावे उस दिन उक्त औषधि १ रत्ती प्रमाण एक छटांक दही के अनुपान से प्रातः काल देवे। इस प्रकार रोग रोगी की स्थिति के अनुसार औषधि की मात्रा बढ़ाकर ६ रत्ती तक दी जा सकती है। औषधि सेवन प्रातःकाल केवल एक बार ही करना चाहिए। औषधि सेवन काल में भूख प्यास लगने पर केवल छाछ ही पिये। छाछ में सैंधव लवण, काली मिर्च, अधभुना जीरा रुचि के अनुसार मिलाया जा सकता है। यदि पंचकोल चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण या बाढवानल चूर्ण इनमें से कोई एक चूर्ण १॥ माशा से ३ माशा प्रमाण में प्रति बार तक्र सेवन के पूर्व फाक लिया जावे तो चमत्कारी लाभ होता है। प्यास लगने पर मौसंबी का रस, अनार का रस, नारियल का पानी सेवन करे। यदि बिलकुल न रहा जावे तो स्वल्प प्रमाण में (एक दो बूंट) जल ले लें।

कल्प की अवधि—इस औषधि के द्वारा किये जाने वाले कल्प की अवधि ४० दिन से ३ माह तक की है। कल्पांत में प्रथम लाजामंड, मुद्ग-यूष, आदि तरल पदार्थों का आहार दे और क्रमशः सुपाच्य भोजन दे। औषधि १-१ रत्ती के प्रमाण में दिन में ३ बार शहद के साथ देवे। यह क्रम लगभग २ माह चलने दे।

तक्र कल्प की इस पद्धति का प्रयोग करने से रोगी का प्रथम दिन से ही मल बंध जाता है, धीरे धीरे सब लक्षण मिट कर रोगी स्वस्थ हो जाता है तथा अन्नाहार करने पर रक्त कण व वजन इतनी शीघ्रता से बढ़ते हैं कि आश्चर्य होने लगता है।

—श्री उमाशंकर दाधीच "साहित्यायुर्वेद विशारद"
सनावद (उज्जैन)

कतिपय अनुभूत प्रयोग

१–ग्रहणी रोग मे कुटज का प्रयोग—

४ तोला कुटज की छाल को छाया में सुखा कर कूट पीस छानकर सात मात्रा बनाकर प्रतिदिन दही के साथ खिलाना चाहिए। इस बीच में भोजन का सर्वथा त्याग करा दे। दही अधिक से अधिक मात्रा मे दें। यदि रोगी को दही नहीं रुचता हो तो मट्ठा का प्रयोग करावे। यदि रोगी भूख से व्याकुल हो जाय तो पुराने चावलो का भात दही के साथ दे, अवश्य लाभ होगा।

२—चित्रक, चव्य, वेलगिरि, सोंठ।

विधि—सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। मात्रा–३ माशा (बच्चो के लिये आधा माशा)

समय—प्रातःकाल एवं सायंकाल। अनुपान–छाछ (मट्ठा), रोग–ग्रहणी।

एक अनुभूत अनुपान—

लौंग, जावित्री, जायफल, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करले। अनुपान तैयार है। इस अनुपान के साथ किसी भी ग्रहणी रोगनाशक औषधि का सेवन करने से सद्यः लाभ होता है।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदा.
श्री ब्रह्मकुटी शिलौटी, भीमताल (नैनीताल)

त्रिदोष संग्रहणी हर—

छोटे शङ्ख की भस्म ३ रत्ती, जायफल १॥ रत्ती, ईसबगोल १॥ रत्ती, सैंधानमक १॥ माशा। शहद मे दोनों समय अवलेह जैसा बना कर चाटे।

भोजन के मध्य मे कुटजारिष्ट, लोहासव, द्राक्षासव, तीनो का संमिश्रण। मात्रा २ तोला औषध, २ तोला जल ले।

ताजा तक्र (छाछ) मे शुंठी, जीरा १-१ माशा साधारण सी भुनी हींग डालकर पीवे। असाध्य मे असाध्य रोग मे शतप्रतिशत लाभ होता है।

—डा० जती चन्द्रशेखर आयुर्वेदाचार्य
एल० एम० एस० एम० डी०
वोलिया (मध्य प्रदेश)

ग्रहणी में मल्ल का प्रयोग—

धन्वन्तरि के प्रवर्तक वैद्यराज 'श्री राधावल्लभ जी करेला के रस मे मर्दन किया हुआ श्वेत-मल्ल घोटकर डमरू यन्त्र मे ऊर्ध्वपातन करते थे और उसमें से १ चावल भर मल्ल का योग पर्पटियों में करते थे। इससे बारम्बार मल की प्रवृत्ति कम हो जाती थी एवं दही अच्छा चढ़ता था। साथ ही फिरङ्ग (सिफिलिस) आदि के कारण दूषित रक्त विकार भी शान्त होते थे। मैं बहुत दिन (करीब ५० वर्ष) से इसका प्रयोग करता हूँ। बड़ी सफलता मिली है। जिनकी चिकित्सा मल्ल योग के सम्मिश्रण से की है, उनको पुनः इस रोग का पुनराक्रमण होते नहीं देखा। एक बार मथुरा में आर्य समाज भवन मे मेरे मित्र बिजकौली बटेश्वर निवासी पं० बाबूदेव जी चतुर्वेदी राधावल्लभ जी के साथ ठहरे थे। दैवात मैं भी पहुँच गया। चौबे जी ने मुझसे कहा पंडित जी आज सेठ जी से एक तमाशा करायेगे। उन्होंने कहा देखो इस खरल मे श्वेत मल्ल है और करेले के रस मे २ दिन घुटाया है। वह सूख चुका था। उसे डमरू यन्त्र मे रखकर लकड़ियो की आंच देते रहे। ४-५ घण्टे बाद खोलकर देखा तो मल्ल भस्म हो चुका था और नाम मात्र को भी ऊर्ध्वपातन नहीं हुआ था। इसी प्रकार के योग हरताल के भी उन्होंने हमे बताये थे। यह योग मथुरा निवासी प्रात. स्मरणीय श्री बालकृष्ण जी सारस्वत से सेठ जी को मिले थे। उनके प्रिय शिष्य श्री विदुर देव जी ८६ वर्ष की अवस्था मे अभी हाल मे मरे है। हम लोगो की औषध निर्माण मे बडी स्पृहा थी। किसी काम को चटपट करके अनुभव करते थे। दुःख है कि आज उनमे से मेरे सिवाय कोई भी शेष नही।

—श्री लीलाधर शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य.
हनुमान जी लेन, बड़ा बाजार,
कलकत्ता।

हिस्टेरिया की चिकित्सा

श्री वैद्य शेषराव जैन

चिकित्सा सूत्र लिखने के पूर्व यह लिखना अतीव आवश्यक है कि हिस्टीरिया एक मानसिक रोग है। अतः औषधि चिकित्सा से भी अधिक इसमें मन को वलवान वनाकर दूसरी ओर मोड़ देने, सांत्वना देने, प्रोत्साहित करने एवं स्नेह प्रदान कर उसका विश्वास सम्पादन करने की अधिक आवश्यकता है। "मन के हारे हार है मन के जीते जीत" के अनुसार यदि रुग्णा को विश्वास हो जाय कि आपके द्वारा वह अवश्य अच्छी हो जावेगी तो निश्चय जानिये कि कौड़ियों की दवा क्या आपके हाथ की मिट्टी भी उसके लिये अमृत हो जावेगी। यह चिकित्सक की सूझ बूझ एवं मनोविज्ञान पर है कि वह रोगी के प्रत्येक कार्य का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन कर तदनुसार कार्य करे। यदि प्रारंभ से ही वालकों को आत्म निर्भर साहसी, निर्भय, एवं परिश्रमशील वनाने का प्रयत्न किया जाय तो यह रोग उत्पन्न ही नहीं हो सकता। आवश्यक है कि स्त्रियां अपने घर का कार्य स्वयं करे। चौका वर्तन, चक्की, चूल्हा, चरखा तकली, आदि कार्यो में फंसे रहने से उनका ध्यान रोग की ओर नहीं जा पाता। साथ ही व्यायाम होने से पाचन संस्थान मे विकृति नहीं हो पाती। व्यायाम के द्वारा मन एवं मस्तिष्क दोनो सवल होते है। इस प्रकार कार्यों मे फंसाये रख अनेक रुग्णाओं के दौरे के आवेगो को टाला जा सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धात है कि मन शक्ति को दूसरी ओर मोडकर यदि संलग्नता उत्पन्न कर दी जाय तो सर्वाधिक सफलता विना औषधोपचार के भी मिल सकती है। यदि रुग्णा शिक्षित है तो उसे रामायण, महाभारत आदि धार्मिक, ऐतिहासिक (महारानी लक्ष्मीवाई, राजपूताने की वीर नारियां) सामाजिक उच्च पुरुषो एवं नारियो के जीवन चरित्र संबंधी पुस्तकें पढ़ने को दी जांय। एवं यदि वह अशिक्षित है तो प्रभावशाली वक्ता द्वारा उसे पढ़ कर सुनाया जाय। प्रसंग का आश्रय ले उसके हृदय मे दया, धैर्य, शांति, सहिष्णुता, वीरता, उदारता आदि भावों को जाग्रत किया जाय। ताकि वह अतिरिक्त समय मे भी रोग विचार छोड़ एक मात्र इन्हीं भावो मे डूबी रहे अथवा कार्यरत रहे।

आवेग के समय मुंह पर शीतल जल के छींटे देना चाहिये। प्रातः वायु सेवन का निर्देश अतीव लाभदायक है। मूर्च्छा की दशा मे श्वासकुठार, कल्पतरु, कट्फलादिनस्य, नकछिकनीचूर्ण मे से किसी एक की नस्य देना चाहिये। किवा शुद्ध नृसार, चूना, कपूर तीनो सम मात्रा मे मिश्रित कर शीशी मे सुदृढ़ कार्क लगाकर दौरे के समय कार्क खोलकर सुंघाना चाहिये। अथवा चावलों को अर्क दुग्ध मे १२ घंटे तक रख पश्चात् पीस कर छाया शुष्क कर शीशी मे रख लेना चाहिये। आवश्यकता पर इसकी नस्य दी जा सकती है। उन्मत्त रस भी नस्य प्रयोग मे लिया जा सकता है। प्रबोधाजंन का गोमूत्र मे पीस आंखो मे अंजन करने से भी मूर्च्छितावस्था से जागृत किया जा सकता है।

(२) चिकित्सारम्भ के पूर्व शुद्ध एरण्ड तैल १ औंस, गोदुग्ध सुखोष्ण १ पाव रात्रि काल में देकर विरेचन कराना चाहिए। विरेचन के लिये अन्य अश्वकंचुकी, परगोलेक्स, केस्टोफिन आदि औषधियां भी ली जा सकती है। विरेचनोपरान्त पेया पिलाकर मदनादि वमन चूर्ण अथवा मात्र नमक ही उष्ण जल मे घोल पीकर गले मे अंगुलियां डाल वमन करा देना चाहिए। वमनोपरात पतली खिचड़ी मे पर्याप्त घृत मिश्रण कर खिला कर तब दूसरे दिन से निम्न प्रकार चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए—

१-(अ) सिंहनाद गुग्गुल २ गोली, उन्मादगज केशरी २ गोली, चतुर्भुज रस २ गोली, मुकुटेश्वरी वटी २ गोली। ४ मात्रा-प्रति ४-४ घंटे पर बच चूर्ण १॥ माशा एवं गो घृत ३ माशा से दें।

(ब) सारस्वतारिष्ट २ तोला, अश्वगन्धारिष्ट २ तोला। २ मात्रा। भोजनोपरान्त समान भाग जल से दें।

(स) सिर मे ब्राह्मी तैल, किंवा महा. लक्ष्मीविलास तैल तथा सम्पूर्ण शरीर मे चन्दनबलालाक्षादि तैल का मर्दन प्रतिदिन करे।

(द) त्रिफला चूर्ण १॥ माशा, गुलकन्द आधा तोला। १ मात्रा। रात्रि काल शयन करते समय सुखोष्ण गोदुग्ध अथवा केवल जल से दे।

२-(अ) त्रैलोक्य चिन्तामणि रस २ रत्ती। २ मात्रा। प्रातः ६ बजे, सायं ६ बजे अदरख स्वरस एवं शहद से दें।

(ब) स्मृतिसागर रस २ रत्ती, वातकुलान्तक २ रत्ती, अभयादि गुग्गुल २ गोली। २ मात्रा। प्रातः ६ बजे एवं सायं ४ बजे ब्राह्मी घृत अथवा पुराण गोघृत से दें।

(स) दशमूलारिष्ट १॥ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १॥ तोला, सारस्वतारिष्ट १ तोला। २ मात्रा।

३-(अ) चिन्तामणि चतुर्मुख २ रत्ती, चतुर्भुज २ रत्ती, बृ० भूत भैरव २ रत्ती, रजत भस्म २ रत्ती ४ मात्रा। सारस्वत चूर्ण प्रति मात्रा १॥ माशा, गोघृत ३ माशा से लेकर ऊपर से गोदुग्ध पीवें।

(ब) अश्वगन्धारिष्ट, सारस्वतारिष्ट, दशमूलारिष्ट का उपरोक्त प्रकार मिश्रण भोजनोपरान्त समान भाग जल से दे।

नोट—क्रम १ के खण्ड स' तथा 'ड' वाली क्रियाऐं प्रत्येक योग के साथ करे।

यदि योषापस्मार मे जैसा कि बहुधा देखा जाता है, रुग्णा मे गर्भाशय विकृति किंवा मासिक धर्म मे विकृति हो तो यथा विकृति रजः प्रवर्तिनी वटी, नष्ट पुष्पांतक रस, कन्यालोहादि गुटिका, चन्द्रांशु रस, चन्द्रप्रभावटी, पुष्पधन्वारस, रत्नभागोत्तर रस, त्रिवङ्ग भस्म, लोहभस्म, कुमारी आसव, लोहासव, लोध्रासव, अशोकारिष्ट आदि औषधियों का भी यथा दोष चुनाव कर उल्लखित चिकित्सा के साथ साथ ही दे। भोजनोपरांत वाले आसव मिश्रण मे लोहासव, कुमारी आसव का भी मिश्रण कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में सबको समान भाग मे मिश्रण कर २ तोले की मात्रा में ही जल के साथ लेना चाहिए। रज प्रवर्तिनी एवं नष्टपुष्पांतक सर्वदा सेवनीय नहीं है। अनुमानिक महिना आने के १० से १४ दिन पूर्व से अवस्थानुसार १-१ किंवा २ गोली गर्म जल तिल, गुड़ क्वाथ आदि लेने से ७ से १४ दिन के अन्दर ही मासिक स्राव होने लगता है। यदि रुग्णा में रक्ताल्पता आदि कारणो से आर्तव विकृति हो तो भी उल्लखित योग लाभकारी है। वैद्य को रुग्णा की परिस्थिति के अनुसार औषधि एवं उनके अनुपान चुन लेने चाहिए।

आयुर्वेदीय सूचीवेधनों मे मैंने प्रताप आयु० फार्मेसी देहरादून के "शांता" एवं मार्तण्ड फार्मेसी बड़ौत के "स्मृतिदा" सूचीवेधन का प्रयोग किया। स्मृतिदा प्रथम एवं शांता द्वितीय किंतु दोनो सफल रहे।

यद्यपि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस रोग के सम्बन्ध मे आयुर्वेद से किंचित भी आगे नहीं है।

फिर भी पाठकों के जिज्ञासार्थ उसके कुछ योग सादर प्रेषित हैं।

१. अ–टिं० वलेरियन अमोनियेटा ½ ड्राम, स्प्रिट अमोनियां एरोमेटिकस २० बूंद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूंद, टिं० हायोसायमस २० बूंद, मैगसल्फ १½ ड्राम, जल १औंस=३ मात्रा प्रातः मध्यान्ह सांय।

ब–केल्सिमा ३ गोली ३मात्रा–उपरोक्त मात्राओं के मध्य मे गोदुग्ध अथवा मात्र जल दें।

स—एमिल नाइट्रेट केप्सूल। १ केप्सुल तोड़ रूई मे डाल मूर्च्छितावस्था में सुंघाने से रुग्णा जाग्रत हो जावेगी।

२. अ–ब्रोमाइड्स एवं वलेरियन के अन्य शामक योग यथा–एलिक्जिर ब्रोमोवाल, एले० ब्रोमोवेरियन, वैलोल, एल्ब्रोमाल, ब्रोमोरालफिन आदि पेय जल के साथ एक से दो चम्मच मात्रा मे ३–४ समय दिये जा सकते है।

ब–केल्सि वियोन, अथवा केल्सि ब्रोनेट सूची–वेधन शिरामार्ग द्वारा प्रतिदिन अथवा तीसरे दिन दिये जा सकते हैं।

स–ल्युपाट, केलिसमा, वेलाल, एल्फिडीन, सार्पेसील आदि गोलियो का प्रयोग भी उपरोक्त योगों के साथ साथ कराया जा सकता है।

ड—दौर्बल्य, ग्लानि एवं रक्ताल्पता नाशार्थ जीवतिक्ति B 12, जवितिक्ति B १ आदि के मिश्रित किंवा अलग अलग सूचीवेधन, पेय किंवा गोलियों का प्रयोग किया जा सकता है।

ई—गर्भाशय विकृति एवं मासिक विकृति पर किसी फालिक्यूलर ल्यूटियल इस्ट्रीन किंवा प्रोजेस्टीन आदि हारमोन के सूचीवेधन पेय किंवा गोलियों का भी प्रयोग कर सकते है।

समान भाग जल से भोजनोपरान्त।

पथ्यापथ्य—विलासप्रियता, गुरू अभिष्यन्दी भोजन, क्रोध, चिन्ता, मैथुन, मद्यपान, दूषित जलपान, गुड़ एवं गुड़ निर्मित वस्तुएं सदैव त्याज्य हैं। दिवाशयन, रात्रिजागरण, अतिनिन्द्रा, मानसिक चिन्तन, वेगावरोध, अम्ल मधुर, अचार चटनी एवं लवण रस प्रधान तथा तैलीय पदार्थ, सेव चूडा आदि पदार्थ नहीं देना चाहिए। स्थान परिवर्तन, शुद्ध वायु सेवन, अतीव लाभप्रद है। गेहूं, जौ की पतली रोटियां, दाल, शाक, दुग्ध, घी, खिचड़ी खाने को दिया जाना चाहिए। दाल और शाक मे सैंधव और काली मिर्च डालकर घृत एवं लहसुन जीरा से बघारना (छौंकना) चाहिए। इस रोग मे इस बात का अधिक ध्यान रखना चाहिए कि रोगी को पेशाब अधिक होता रहे। कारण पेशाब के द्वारा रोग का विष शरीर से निष्काषित होता है। २४ घण्टे में ६ सेर तक मूत्र भी हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं। किंतु इससे अधिक होने पर इसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। सर्वदा इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि रोगी प्रसन्न मुद्रा मे रहे

—श्री वैद्य शेषराव जैन,
सरकारी आयु० औषधालय दासगांव, भंडारा।
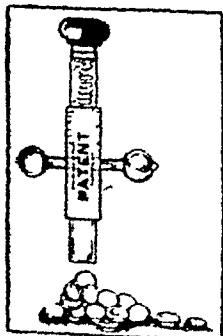
(29)

गोस्वामी तुलसीदास और आचार्य चरक

श्री वैद्य जानकीप्रसाद जी अग्रवाल

लोक नायक श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का मानस गृहस्थ, वैराग्य, भक्ति, नीति, तत्वज्ञान का अमूल्य महाकाव्य है। गोस्वामी जी महान भक्त तो थे ही परन्तु वह ज्ञान और दूर दृष्टि मे महान प्रवीण थे। भारतीय परम्परा की दृष्टि से उनका महाकाव्य मानस आदर्श स्वरूप है। गोस्वामी जी ने लोक संघर्ष के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को प्रमुख व्याधिजन्य विकार के रूप मे माना है। मानस मे सुखी समृद्धि तथा आरोग्यमयी जीवन के लिये अनकूल मार्ग प्रशस्त है। तुलसीदास जी की रामायण मे मनुष्य की रोगोत्पति का कारण तथा उसकी चिकित्सा के सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययन का दिग्दर्शन होता है। मानस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अनेक रोगो की उत्पत्ति दूषित मन से उत्पन्न लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या आदि ही से है। इसलिए गोस्वामी जी ने सर्व प्रथम दूषित मन की चिकित्सा का ही उपाय बतलाया है। मानस मे दूषित मन की चिकित्सा का सुलभ उपाय केवल राम भजन ही बतलाया है। मन की एकाग्रता द्वारा ही तथा उसकी शुद्धि से ही रोग स्वत नष्ट होजाने का उपदेश गोस्वामी जी ने किया है। मन की शुद्धि के विषय मे आचार्य चरक भी स्पष्ट शब्दो मे कहते है—

येषा द्वन्दे परासक्तिरहंकार पराश्रये।
उदय प्रलयो तेषा न तेषा येत्वतोऽन्यथा॥

अर्थात् सुख दुख इच्छा द्वेष आदि के विषय मे जिनकी अधिक अनुरक्ति होती है एवं जो अहंकार परायण है उन्हे ही बारम्बार जन्म मृत्यु का दुख होता है। इसके विपरीत जिनकी द्वन्दो मे अनासक्ति है उन्हे बार बार जन्म मरण का दुख नहीं होता। आचार्य चरक फिर कहते है कि धर्म के अविरोधी जो भी जीवन यात्रा के उपाय हो उनका अनुसरण करना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य है। आचार्य की मान्यता है कि श्रम और अध्ययन से मनोनिवेश करें एवं स्वास्थ्य लाभ मे समर्थ हों। श्री गोस्वामी तुलसीदास का मानस भी रोगोत्पत्ति सिद्धांत मे चरक से अभिन्न है। जैसा कि गोस्वामी जी ने उत्तर कांड मे कहा है--

मोह सकल व्याधिन कर मूला।
तेहि ते पुनि उपजहि बहुशूला॥
काल बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

गोस्वामी जी कहते है कि आसक्ति ही सर्व व्याधियो का मूल है। अनेक प्रकार के शूल इसी व्याधि से उत्पन्न हो जाते है। वात पित्त कफ जब कुपित होजाते है तब अत्यन्त दुखदाई सन्निपात होता है, स्वाभाविक ही है। क्रोध के समय मनुष्य का श्वास वेगपूर्वक निकलता है एवं मनुष्य शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जैसा कि गोस्वामी जी ने कहा है—

प्रीति करहि जो तीनिहु भाई।
उपजहि सन्निपात दुखदाई॥

आचार्य चरक के कथानुसार दूषित मन ही सब रोगो का कारण है। मानसिक भय, क्रोध, लोभ, शोक आदि से ही त्रिदोष प्रकुपित होकर शरीर को क्लांत कर देते है। त्रिदोषो का कुपित होना ही सन्निपात का लक्षण होना कहा गया है। आगे गोस्वामी जी फिर सूचित करते है—

ममता दाद कडू इरपाई।
हरष विषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देख जरनि सो छई।
कुष्ट दुष्टतामनकुटिलई॥
अहंकार अतिदुखदडमरूवा।
दम्भ कपट मद मान नहरूवा॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी।
त्रिविध ईषना तरून तिजारी॥

अर्थात्—ममता ही दाद और ईर्षा ही खजली है जो हमेशा ही मानसिक खुजलाहट उत्पन्न करता है। बारम्बार आनन्दित और दुखित होना ही गले के रोगों की अधिकता है। पर सुख को देख कर जलना ही तपेदिक की बीमारी है। मन की कुटिलता ही कोढ़ का स्वरूप है जो शरीर के अन्तर और बाहरी आवरण को दूषित कर देता है। अनेक प्रकार का अहंकार दुख देने वाली बद गांठ के समान है। पाखण्ड, छल, कपट, मद नहरूवा जैसी बीमारी है। अति तृष्णा ही जलोदर की व्याधि है जिससे उदर मे जल भर जाने से महान कष्ट प्राप्त होता है और तीन प्रकार की (पुत्र, धन और मान) की प्रबल इच्छाएं ही तीन प्रकार के मलेरिया ज्वर (इकतरा, तिजारी और चौथैया) का स्वरूप हैं।

जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका।
कह लग कहौं करोग अनेका ॥

मत्सर (डाह) और अविवेक दो प्रकार के ज्वर है। तुलसीदास जी कहते है कि इस प्रकार के अनेको रोग है जिन्हें कहां तक कहा जाय। वे कहते हैं—

एक व्याधि वस नर मरहि, ये असाध वहु व्याधि।
पीडहि संतत जीव कहु, से किमि लहे समाधि ॥

संसारी जीव सिर्फ एक ही रोग (पेट की भूख) से मर जाता है फिर यह असाध्य व्याधिया मनुष्य को निरन्तर कष्ट देती है। ऐसी दशा में मनुष्य शांति और स्वास्थ्य लाभ को कैसे प्राप्त हो।

आचार्य चरक रोग निवारण का उपाय बताते है—

नगरी नगरस्वेव रथस्वेव रथी सदा।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्यव बहितो भवेतु।

जिस प्रकार नगर का रक्षक नगर की रक्षा मे जागरूक रहता है एवं रथी अपने रथ के प्रति सतर्क रहता है उसी प्रकार मेधावी पुरुष इस शरीर रूपी रथ के सम्बन्ध मे उसके प्रति पूर्ण कर्त्तव्यवान होता है। आगे आचार्य ने सत्संग के विषय मे कहा है कि सत्यवादी, अक्रोधी, अहिंसक, प्रियवादी, देवता और आचार्य की सेवा मे निरत अहंकार शून्य सदाचारी, आस्तिक और जितेन्द्रिय और धर्म-शास्त्र पारायण पुरुष स्वयं रसायन होता है। ऐसे लोगों को कोई रसायन सेवन करने की आवश्यकता नहीं।

श्री तुलसीदास जी भी अपने मानस मे इसी का दिग्दर्शन कराते है—

जाने ते छीजहिं कछु पापी।
नाश न पावहिं जन परतापी ॥

इन रोगो का कुछ ज्ञान हो जाने से रोग कुछ क्षीण हो जाते हैं परन्तु पूर्णरूप से नाश को प्राप्त नहीं होते और तुलसीदास जी सद्गुरु (सत्संग) के बचनो पर विश्वास करने का परामर्श देते है—

राम कृपा नासंहि सब रोगा।
जो यह भांति बने संजोगा ॥
सद्गुरु वेद वचन विस्वासा।
सजमं यह न विषय के आशा ॥

यदि राम की कृपा से कोई संयोग बन जाये तो सारे रोग नष्ट हो जाये। इसके लिये सत्संग रूपी वैद्य तथा श्रद्धा रूपी औषधि की आवश्यकता है और विषयो की आशा ही इसका कुपथ्य है।

राम भगत संजीवन मूरी।
अनुपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि विधि भलहि सो रोग नसाही।
नहि ते जतन कोटि नहिं जाही ॥

तुलसीदास जी की राम भजन रूपी संजीवनी बूटी का कैसा प्रभाव होता है एव शरीर को कैसी स्वस्थता प्राप्त होती है इसके लिये ये कहते है—

जानिए तब मन विरूज गुसाई।
जब उर बल, विराग अधिकाही ॥

:: शेषांश पृष्ठ ८०३ पर ::

(22)

शीत ज्वर और उसकी चिकित्सा

श्री० महेश्वर प्रसाद जी

भारतवर्ष में लगभग सत्तर प्रतिशत मनुष्य शीत ज्वर के प्रकोप से पीडित रहते हैं। आजकल शायद ही कोई ऐसा घर होगा जिसमे प्रतिवर्ष कोई न कोई व्यक्ति शीत ज्वर का शिकार न होता हो। यह भारतवर्ष का सबसे प्राचीन रोग है। आयुर्वेद के प्राय: सभी ग्रन्थों मे इसका वर्णन विस्तार के साथ मिलता है। इस रोग में बड़े वेग के साथ ज्वर चढ़ आता है और कुछ समय के पश्चात् पसीना देकर उतरता है। ज्वर के वेग की विषमता के कारण आयुर्वेदज्ञ इसे विषम ज्वर भी कहते है। विषम ज्वर के प्रकार एवं वर्णन आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे वर्णित मिलते हैं यथा--

प्रायश.सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषम ज्वरा: ।
सन्वत: सततश्चैव अन्येद्युष्कस्तृतीयक : ।।
ज्वराश्च विषमा. सर्वे सन्निपातसमुद्भवा. ।
चातुर्थिकश्च पञ्चत कीर्तिता विषमज्वर: ।।

शीत ज्वर के होने के विषय में भिन्न २ लोगो का भिन्न २ मत है। कुछ लोगों के विचार से वर्षा काल मे पित्त सञ्चय होता है जो शरत् ऋतु के आरम्भ मे कुपित होता है। इसी पित्त कोप से अन्य दोष सयुक्त हो इस ज्वर का कारण बनते है । कुछ को ऐसा विश्वास है कि भूत-बाधा आदि के कारण शीत ज्वर होता है जिसकी चिकित्सा मन्त्र, तन्त्र, बलि, होमादि द्वारा बतलायी गई है। यथा-'केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रूयते विषम ज्वरम् ।' कुछ लोगो का कहना है कि अल्प दोष कोप के कारण मनुष्य शरीर मे यह ज्वर पूर्वकाल से ही कुछ रूप में बना रहता है और ऐसी स्थिति मे जब कि अहित आहार-विहार होता है तो उन दोषो के अधिक कुपित होने के लिए बल मिल जाता है। फलस्वरूप रस रक्तादि के आश्रित हो कर दोष एकाएक वेगवान ज्वर उत्पन्न करता है। ऐसे ज्वर अपने प्राथमिक काल मे विषम ज्वर ही होते है जो पुन: दोष कोप के साथ रस रक्तादि धातुओं का आश्रय ले लेते हैं। यथा—

दोषोऽल्पोऽहि सम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्यवापुन:।
धातुमन्यतम प्राप्य करोति विषमज्वरम् ।।

प्राचीन समय में आज की तरह इतने वैज्ञानिक यंत्रो की प्रचुरता नहीं थी जिसके द्वारा एक विशेष कीटाणु के शरीर मे प्रवेश करने से शीत ज्वर होने का कारण जाना जा सकता।

शीत ज्वर की जानकारी की यह त्रुटि केवल हमारे देश मे ही न थी प्रत्युत पाश्चात्य देश वालो मे भी थी। वे तो इसे गन्दी हवा से होने वाला रोग समझते थे। इसी हेतु वहां के लोगों ने इस रोग का "मलेरिया" नामकरण किया जिसका अर्थ है दूषित वायु। "मेलेरिया" इटानियन शब्द है जिसका शब्द खण्ड और अर्थ करने पर गन्दी हवा का तात्पर्य निकलता है।

आज से कुछ समय पूर्व जब व्याधिजनक अणुजीवो (Pathogenic Organisms) का पता चला तो भारतीय एवं पाश्चात्य चिकित्सको ने हवा मे उड़ने वाले व पानी मे पाए जाने वाले मच्छरो के शरीर मे प्रविष्ट जीवाणुओ से शीत ज्वर का सम्बन्ध जोड़ा। यद्यपि अभी तक पाश्चात्य चिकित्सक शीत ज्वर को 'मलेरिया' नाम से ही पुकारते है फिर भी अब लोग उसे दूषित वायु से होने वाला रोग नहीं मानते हैं।

वास्तव मे शीत ज्वर का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म एककोशीय (Unicellular) परिजीवी है जो मलेरियाणु (Plasmodium प्लाजमोडियम) नाम से पुकारा जाता है। इस परिजीवी मच्छरों की एक विशेष जाति,जिसे एनाफिलीस (Anapheles) कहते है, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य मे पहुँचाया करती है। केवल मादा एनाफिलीस मच्छर (Female Anapheles Mosquito) के पेट

में ही यह जीवाणु देखे जाते हैं क्योंकि वह ही मानव रक्त का प्रचूषण करती है और विषम ज्वर के कीटाणुओं को फैलाती है। नर एनाफिलीस तो प्रायः फल–फल के पराग, रस आदि पर ही निर्वाह करता है। परन्तु मादा एनाफिलिस को सन्तानोत्पत्ति के लिए अंडरोपण के समय प्राणिओं के रक्त की बुभुक्षा बनी रहती है। इसलिए वह रक्त की चाह में मनुष्यों को काटता और उनके रक्त का चूषण करता है। रक्त प्रचूषण के समय रक्त को द्रव रूप में बनाये रखने के लिए यह अपने भीतर से एक लाला रस (Salivary Fluid) दंश स्थान में छोड़ता है। उसी लाला रस मे शीत ज्वर के असंख्य जीवाणु होते हैं जो शरीर में पहुँचकर रक्त कोशाओं पर धावा बोलते हैं। वे रक्त कोशाओं से चिपटकर उनके अन्दर प्रवेश करते हैं तथा अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं।

मानव शरीर में शीत ज्वराणु का प्रवेश—ऊपर के वर्णन से पाठक समझ चुके होंगे कि जब मादा एनाफिलीस मनुष्य के शरीर का रक्त प्रचूषण करती है तो रक्त के आतंचन (clotting) न होने के लिए वह उस दंश स्थान में एक द्रव पदार्थ छोड़ देती है और उसी द्रव के साथ साथ शीत ज्वर के हजारों जीवाणु सामान्य रुधिर प्रवाह मे पहुंच जाते हैं। अब यहां से चल कर वे जीवाणु बीज के रूप में यकृत् तथा प्लीहा मे प्रवेश करते हैं जहां इनका पारस्परिक गुणन होता है। सभी जीवाणु बीज यकृत् में पहुंचते ही पैरेनकायमेटस कोषों (Parencbymatous cells) में प्रवेश कर बड़ी ही तीव्र गति से बढ़-कर गुणनपूर्व (Schizont) का निर्माण करते है। अब गुणनपूर्व (Schizont) जीवाणु का विभाजन होता है जिसके फलस्वरूप लगभग एक सहस्र गुणनपश्च (merozoites) उत्पन्न होते हैं। ये गुणनपश्च शीघ्र ही विशिष्ट प्रकार की याकृत् केशिकाओं में पहुँच जाते है तथा गुणन-पूर्व जीवाणु के अवशेष को एक विशेष प्रकार की भक्ष कोषाएें नष्ट कर देती है। इस गुणन खण्ड के परिणामस्वरूप शीत ज्वराणु की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है।

जो गुणनपश्च याकृत् केशिकाओं में पहुंचते हैं वे या तो यकृत् के बाहर रुधिर प्रवाह मे पहुँच जाते हैं अथवा फिर यकृत् कोशाओं में प्रवेशकर उनके भीतर रक्त कोशा खण्ड गुणन आरम्भ कर देते हैं। सामान्य रुधिर प्रवाह मे पहुँच जाने वाले गुणन पश्च (merozoites) रक्त रुधिर कणि-काओं को भेदकर उनके भीतर पहुंच जाते हैं। इसमे प्रवेश करने के बाद उनकी आकृति गोलाकार हो जाती है। इस प्रावस्था को वर्तुलावस्था कहते हैं जहां से गुणनपश्च की वृद्धि का प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में उनमें एक असंकोचि रसधानी बन जाती है जिसके कारण वे नगदार अंगुठी की भांति दृष्टिगोचर होते हैं। यह अवस्था मुद्रिका-वस्था कहलाती है। कुछ और विकसित होने पर रसधानी लुप्त हो जाती है और उसमें अंगुली सदृश आकार के प्रक्षेप एक कोषीय जीव अमीबा के कूटपाद की तरह निकलने लगते हैं। उस अवस्था में यह अपने कूटपादों द्वारा रक्त के हीमोग्लोबिन का अन्तर्ग्रहण करने लगता है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के बाद वर्धावस्थक (trophozoite) गोल हो जाता है और रक्त रुधिर कोशाओं मे पूर्ण रूप से फैल जाता है।

अलैङ्गिक प्रजनन (Asexual repoduc-tion) के लिये पूर्ण रूप से तैयार इस अवस्था मे गुणन पूर्व का प्रजनन बहु विखण्डन के फल-स्वरूप होता है। इसमे एक केन्द्र बीज (nucleus) होता है जिसके कई बार विभाजित होने के फलस्वरूप ६ से २४ तक केन्द्र बीज (nuclei) बन जाते हैं। इसके बाद गुणन पूर्व के कोशारस की कुछ कुछ मात्रा सभी केन्द्र बीजों (nuclei) के चारो ओर इकट्ठा हो जाती है और इस प्रकार खण्ड जीवों का निर्माण होता है। अब रक्त रुधिर कोशाओ की भित्ति फट जाती है और खण्ड जीव (Schizoites) प्ररस (plasma) में निकल आते है।

इसके पश्चात् प्रत्येक खण्ड जीव किसी नवीन रुधिर कोशा मे प्रवेश करता है और इस प्रकार खण्ड गुणन की पुनरावृत्ति होती है।

जिस समय मादा एनाफिलीस अपने थूक के साथ मनुष्य के शरीर मे शीत ज्वराणु के जीवाणु डालती है, उसी समय से ज्वर का आना प्रारम्भ होता है।

चूंकि शीत ज्वर के जीवाणुओं का जीवनचक्र मानव शरीर के रक्तकणिकाओ मे पूर्ण होता है, इस लिए इनके रक्तवासी होने के कारण इस ज्वर मे रक्त कणिकाओं का क्षय बहुत अधिक होता है। इस कारण जैसे जैसे इस ज्वर की वेगवृद्धि होती जाती है वैसे वैसे मनुष्य रक्तहीन, पीला, कान्तिहीन और निर्बल होता जाता है।

अवधि के अनुसार शीत ज्वर के प्रकार—

शीत ज्वर के जीवाणु के मनुष्य शरीर मे प्रवेश करने तथा ज्वर आने के बीच की अवधि को सम्प्राप्तिकाल (Incubation period) कहते है। यह २४ से ७२ घण्टे तक है। आधुनिक चिकित्सक के मतानुसार शीत ज्वर के तीन प्रकार हैं। इन तीनों के नाम ज्वर आने के बीच की अवधि पर निर्धारित है। इन तीनो प्रकार के ज्वरो का उत्तरदायित्व भिन्न भिन्न प्रजाति के शीत ज्वराणु (plasmodium) पर होता है। आयुर्वेदीय शास्त्रो मे शीत ज्वर के संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक मुख्यतया पाच भेद वर्णित है। कुछ लोगों के मत से चातुर्थिक विपर्यय को लेकर छः भेद माने गये है।

आयुर्वेदीय शास्त्रानुसार जब रस और रक्त का आश्रय लेकर दोप कुपित होते हैं तो सन्तत ज्वर होता है। केवल रक्त का आश्रय लेकर जब दोप कुपित होते है तो सतत होता है और जब मासपेशियों (muscles) का आश्रय लेकर दोप कुपित होते हैं तो अन्येद्युष्क ज्वर होता है। इसी प्रकार जब मेद धातु का आश्रय लेकर दोप कुपित होते हैं तो तृतीयक ज्वर होता है तथा अस्थि मज्जा का आश्रय लेकर जब दोप कुपित होता है तो चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है। यथा—

सन्ततो रसरक्तस्थः। रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम्। अन्येद्युष्कः पिशिताश्रितः। मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि। अस्थिमज्जगत पुन कुर्याच्चातुर्थिकं घोरम्।

किन्तु आधुनिक मतानुसार शीत ज्वर के निम्न प्रकार माने गये है—

(१) तृतीयक ज्वर (Tertian fever)—इसमें तीसरे दिन ज्वर आता है। वैज्ञानिक मतानुसार यह मनुष्य शरीर में प्लाज्मोडियम वाइवेक्स (Plasmodium vivax), प्लाजमोडियम ओवेल (Plasmodium Ovale) तथा प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम (P. Falciparum) की उपस्थिति के कारण होता है। तृतीयक ज्वर के भी दो भेद है—

(अ) मृदु तृतीयक ज्वर (Benign tertian)—यह प्लाज० ओवेल और प्लाज० वाइवेक्स की उपस्थिति के कारण होता है। इसमे ज्वर कभी कभी १०६ डिग्री से १०७ डिग्री फारेनहाइट तक पहुँच जाता है। परन्तु शीघ्र उतर भी जाता है। इस ज्वर मे रोगी की जान यद्यपि अधिक संकट मे नहीं रहती, फिर भी इसका प्रभाव अधिक समय तक बना रहता है।

(ब) साघातिक तृतीयक ज्वर (Malignant tertian)—यह प्लाज० फैल्सीपेरम की उपस्थिति से होता है। इसमे ज्वर बहुत तेज नहीं आता। फिर भी रोगी को सरसाम, पेचिस, आंव शूल आदि हो जाते है।

जिन रक्त रुधिर कोशाओं मे ये शीत ज्वर के जीवाणु रहते है, वहां यह एकत्रित हो गुच्छे बनाकर रक्त की लघु वाहिनियो को रोक देते है और इस प्रकार अपनी अवरोध शक्ति द्वारा अनेक अङ्गो को हानि पहुंचाते है।

(२) चातुर्थिक ज्वर (Quartan fever)—इसे चौथैया ज्वर भी कहते है। इसमे ज्वर चौथे

दिन आता है। यह शरीर में प्लाजमोडियम मैलेरी की उपस्थिति के कारण होता है।

(३) मिश्रित ज्वर (Quotodian fever)—एक ही रोगी को एक ही समय मे मृदु तृतीयक तथा सांघातिक तृतीयक- दोनों प्रकार के ज्वर हो सकते है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि एक व्यक्ति के शरीर मे मृदु तृतीयक के कुछ जीवाणुओं का प्रवेश सायंकाल के समय हुआ हो और कुछ जीवाणुओं का प्रवेश मध्य रात्रि मे। प्रवेशकाल में जितने समय का अन्तर होगा उन दोनो का जीवन चक्र भी उतने ही अन्तर से नियत समय में पूर्ण होगा। इसी प्रकार तृतीयक और चतुर्थक ज्वर भी मिलकर मिश्रित ज्वर उत्पन्न कर सकते है। ऐसी परिस्थिति में ज्वर प्रतिदिन आ सकता है।

एनाफिलीस मच्छर मे शीत ज्वराणु का प्रवेश—

शीत ज्वर के जीवाणुओं को अपने जीवन-चक्र को पूर्ण करने के लिये दो अलग अलग पोषिताओं (Hosts) की आवश्यकता होती है। इनमे से प्रथम पोषिता (host) मनुष्य जिसका वर्णन पाठक ऊपर पढ़ चुके है, होता है और द्वितीय पोषिता (host) जिसे हम माध्यमिक पोषिता भी कह सकते हैं, मादा एनाफिलीस होता है। इन्हीं दो पोषिताओं में शीत ज्वर के जीवाणुओं के जीवन-चक्र की दो अवस्थाऐ पूर्ण होती है।

(अ) अमैथुनावस्था—मानव शरीर में पूर्ण होती है।

(आ) मैथुनावस्था—मादा एनाफिलीस मे पूर्ण होती है।

अमैथुनावस्था मे खण्ड गुणन की अनेकानेक पुनरावृत्ति के फलस्वरूप मनुष्य के रक्त में शीत ज्वर के जीवाणु की संख्या बड़ी ही तीव्र गति से बढ़ती है। शीघ्र ही इनकी संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि इनके समक्ष केवल दो मार्ग रह जाते है। या तो जीवाणु के आधिक्य के कारण रक्त रुधिर कोशाओ का संहार, जिससे पोषिता का जीवन खतरे में होना अथवा पोषिता के शरीर मे प्राकृतिक रोग विरोध क्षमता (Natural immunity) के बहुत ही प्रबल हो जाने के कारण शीत ज्वर के जीवाणु का संहार ही आरम्भ हो जाना। ऐसी दशा मे शीत ज्वर के जीवाणु के लिये किसी दूसरे पोषिता को ढूंढ़ना आवश्यक हो जाता है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में मलेरियाणु के खण्ड जीव रक्त रुधिर कोशाओं में प्रवेश करके जन्युमाताओं (gametocytes) का निर्माण करती हैं। यह बड़ी और छोटी दो प्रकार की होती है। बड़ी जन्युमाताओं का केन्द्र बीज (nucleus) छोटा और ठोस होता है तथा इसके कोशारस मे खाद्य सामिग्री की मात्रा अधिक होती है। परन्तु लघु जन्युमाताओ का केन्द्रबीज (nucleus) अपेक्षाकृत बडा और मध्य में स्थित होता है।

ऐसे समय में जब कि मनुष्य के शरीर में जन्युमाताएं पूर्ण विकसित रहती है, मादा एनाफिलीस यदि उसके रक्त का प्रचूषण करती है तो उसके पेट मे रक्त के साथ साथ जन्युमाता एवं खण्डजीव (Schizozoites) भी पहुंच जाते हैं। मच्छरी के पेट में प्रचूषित रक्त रुधिर कोशाऐं, खण्डजीव इत्यादि का तो पाचन हो जाता है किन्तु जन्युमाताओं के श्लिष्ट एवं अपाच्य होने के कारण उनका पाचन नहीं हो पाता।

यहां पहुंचकर जन्युमाताऐं अपनी वृद्धि आरंभ कर देती है तथा रक्त रुधिर कोशाओं से बाहर निकल आती है। इसके पश्चात् लघु जन्युमाताऐं सक्रिय हो जाती है और तब उसके केन्द्र-बीज के विखण्डन के फलस्वरूप सामान्यतः छः छोटे-छोटे किन्तु लम्बे केन्द्र बीजाणु (nuclei) बन जाते है। अब प्रत्येक केन्द्र बीज (nuclei) लघु जन्युमाता की आन्त्रिक भित्ति के समीप आजाता है। इसके केन्द्र बीज के समीप कोशारस एक कशा (Flagellum) के आकार का उभार बनाता है, जिसमे केन्द्र बीज (nucleus) खिसक जाता है।

बड़ी जन्युमाता में केन्द्रबीज दो भागों में विभक्त हो जाता है जिसमें से एक भाग कोशारस के बाहर निकल जाता है। इस प्रकार अर्ध केन्द्रबीज के निष्कासन के पश्चात् जन्युमाताएं मादाजन्यु का रूप ग्रहण करते है।

कशा सदृश नर जन्यु सक्रिय होते हैं और इनमें से एक मादा जन्यु से संयुक्त हो पुनः उसमें प्रविष्ट हो जाता है। परिणामस्वरूप दोनों के कोशा रस और केन्द्रबीजों का संयुग्मन होता है और इस प्रकार एक संयुक्त कोशा (*Zygote*) का प्रादुर्भाव होता है। यह संयुक्त कोशा कुछ समय के लिए तो निष्क्रिय रहता है किन्तु शीघ्र ही उसमें एक स्वच्छ प्रक्षेप स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

यह प्रक्षेप क्रमशः बढ़कर संयुक्त कोशा को कृमिवत् (*worm-like*) बना देता है। यही कारण है कि इस अवस्था में संयुक्त कोशा को कृमिरूप (*vermicule*) कहते हैं। इसके कृमि सदृश प्रचलन के कारण इसे चलयुक्ता (*Ookinete*) भी कह सकते हैं। चलयुक्ता मादा एनाफिलीस के आमाशय के आन्तर तल पर रेंगती रहती है और अन्त में उसका भेदन करके श्लेष्मकला (*mucous membrane*) तथा अन्य ऊतियों (*Other tissues*) के बीच पहुंच कर यहां यह वर्तुलाकार हो जाती है। तत्पश्चात् यह अपने चारों ओर एक कोष्ठभित्ति का निर्माण करती है। इस दशा में यह बीजाणु-पूर्व कहलाती है। अपनी कोष्ठभित्ति द्वारा आमाशय में एकत्रित रक्त का अचूषण करके वृद्धि को प्राप्त होती है। ये कोष्ठ फफोलों के सदृश मच्छरी के आमाशय की वाह्य भित्ति पर उभरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। एक सप्ताह में प्रत्येक कोष्ठ के केन्द्र बीज का विखण्डन होता है और हरेक केन्द्रबीज के चारों ओर कोशा रस एकत्रित हो जाता है तथा इस प्रकार हरेक कोष्ठ के अन्दर बहुत से बीजाणुघट (*Sporoblasts*) तैयार होते हैं। इन बीजाणुघट के परिपक्व होने पर इनकी ऊपरी सतह से अनेक लघु-तर्कु-रूप प्ररसीय उभार (*many small spindle shaped protoplasmic processes*) निकलते हैं। तत्पश्चात् उनके केन्द्रबीजों (*nuclei*) का विखण्डन होता है तथा एक एक केन्द्रबीज प्रत्येक उभार में समाविष्ट हो जाता है। अब प्रत्येक कोष्ठ के अन्दर बहुत तर्क्वाकार दात्रबीजों (*sporozoites*) का निर्माण होता है जो अपने अपने कोष्ठभित्ति (*Cyst wall*) के फटते ही मादा एनाफिलीस की शोण गुहा (*hacmocoel*) में निकल पड़ते हैं। वहां से ये रक्त प्रवाह द्वारा लाला ग्रन्थि में पहुँच जाते हैं। इस क्रिया में लगभग बारह दिवस लगते हैं।

इस अवस्था में मच्छर में शीत ज्वर के कीटाणुओं को फैलाने की क्षमता आजाती है। मानव रक्त प्रचूषण के समय जब वह मच्छरी लार शुंड (*Proboscis*) द्वारा शरीर से रक्त चूपती है तो इस क्रिया के समाप्त होते ही रक्त में बहुत से दात्रबीज कुछ ही क्षणों में पहुंच जाते हैं और फिर वहां उनका जीवन-चक्र चलने लगता है। इस प्रकार मादा एनाफिलीस एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में शीत ज्वर के कीटाणुओं को पहुंचाकर शीत ज्वर का शीघ्र ही प्रसार कर देती है। इस रोग प्रसारिका (*femal vector*) एनाफिलीस मच्छर के काटने एवं रक्त प्रचूषण के लगभग १५ दिन पश्चात् ही शीत ज्वर के स्पष्ट लक्षण यथा ज्वर, कंपकपी, शारीरिक तापक्रम की वृद्धि, थकावट आदि लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। ऐसे समय में यदि रोगी की यथोचित चिकित्सा नहीं की गई तो वह दुर्बल, रक्तहीन और जर्जर होकर अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः शीत की रोकथाम प्रारम्भ से ही करनी चाहिये। फिर भी यदि जीर्ण हो गया हो तो उसका औषधोपचार इन्जेक्शन आदि विशिष्ट विधियों द्वारा करना चाहिये। सिनकोना वृक्ष की छाल से निर्मित औषधि द्वारा मलेरियाणु के गुणनपूर्व (*Schizont*) तो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं परन्तु उनकी जन्युमाताओं (*Gametocytes*) पर इसका कोई प्रभाव नहीं

पड़ता। अतः निम्नलिखित औषधियां निर्माण कर यदि प्रयोग में लाया जाय तो रोगी के शरीर में प्रविष्ट मलेरियाणु के गुणन-पूर्व के साथ साथ जन्तुमाताएं भी शीघ्र नष्ट हो जायंगे। यह मेरा परीक्षित और सफल प्रयोग है जिसके द्वारा चिकित्सक बन्धु लाभ उठा सकते हैं।

मौखिक प्रयोग के लिए—

सिनकोना की छाल ५ तोला, चिरायता ५ तोला, कुचला ½ माशा, कुटकी ५ तोला, नीम की अन्तर छाल १ तोला

निर्माण विधि—उपरोक्त सभी द्रव्यों को कूटकर उसमे ०।। सेर पानी डाल दें और क्वाथ बनावे। जब १२ छँटाक जल अवशेष रहे तो पहले स्वच्छ कपड़े से छान लें और फिर यदि चाहे तो निस्यन्दक पत्र (*Filter Paper*) से छान ले। यह तरल औषधि शीत ज्वर के लिए अत्युत्तम है।

मात्रा—अवस्थानुसार ½ से १½ तोला बराबर जल के साथ दें।

सावधानी—इस औषधि का प्रयोग ज्वर आने के ३-४ घंटे पहले ही करना चाहिये। ज्वर रहने की अवस्था में इसे कदापि व्यवहार न करे।

विशेषता—इसकी दो तीन खुराक के प्रयोग से ही ज्वर का आना एकदम रुक जाता है।

ज्वर की अवस्था मे प्रयोग करने योग्य मौखिक प्रयोग निम्न हैं—

चिरायता २।। तोला, कुटकी २ तोला, मुण्डी २।। तोला, खाने का सोडा (*Soda-bi-car*) १० तोला, घृतकुमारी का गूदा २ तोला।

निर्माण विधि— उपरोक्त सभी को कूट कर पीस लें और दो-दो रत्ती की टिकिया बनावे। ३-३ घंटे पर विशुद्ध जल (*water*) के साथ दिन में तीन बार दे।

शीघ्र-आशुफलकारिता के लिए एम० ए० बी० निर्मिता 'शीत कल्प' नामक सूचिकाभरणौषधि का प्रयोग करें। इससे अतीव लाभ होगा यह धर के निजी अनुभव है। मैने स्वयं अपने कई पर इसकी परीक्षा करके देखी है।

—डा० महेश्वर प्रसाद, एम० बी० एस० ए०,
आयुर्वेदाचार्य, नारायणी आयुर्वेद फार्मेसी,
मंगलगढ़ (दरभंगा)

:: शेषांश पृष्ठ ७६८ का ::

सुमति सुधा बाढई नित नई।
विषय आस दुर्बलता गई॥

मन स्वस्थ जब समझिये जब हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो जाये, और विवेक रूपी भूख बढ़ने लगे, विषयों की आशा रूपी दुर्बलता का अन्त हो जाये। तुलसीदास जी की भक्ति रूपी संजीवन बूटी आयुर्वेदीय मृत संजीवन वटी और मृत संजीवन सुरा से कोटानु गुना अधिक गुणकारी है। तुलसीदास जी कहते है।

नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग जप दान॥
भैपज पुनि कोटन्ह, नहिं रोग जाहि हरिजान॥

आचार तप ज्ञान यज्ञ दान रूपी करोड़ों औषधियां है परन्तु बिना रामभक्ति के यह रोग समूल नष्ट नहीं होते। महाऋषि चरक का भी स्पष्ट कथन है उपधा ही दुःखो का उत्पादक कारण है अतएव सभी द्वन्दात्मक इच्छा द्वैपादिको का त्याग ही व्याधियो का अन्त है।

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयपदः।
त्यागः सर्वोपधानाञ्च सर्व. दुखव्यपोहकः॥

—वैद्य श्री जानकीप्रसाद अग्रवाल
दादुल कार्यालय, झांसी

नेत्र सुरक्षा के सफल उपाय

लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल शास्त्री

—

> ... मनुष्यै-
> ... जीविते यावदिच्छा ।
> व्यर्थो लोकोऽय तुल्य रात्रिन्दिवाना,
> पुंसामन्धाना विद्यमानेऽपि वित्ते ॥
> (शार्ङ्गधर संहिता)

आयुर्वेद मे विविध रोगो के विनाशार्थ विभिन्न उपचारों के उल्लेख के पश्चात् सर्वसुखकारी स्वस्थ्य-वृत्त का संकेत सर्वविदित ही है। शास्त्रोक्त स्वास्थ्य परिपालक नियमो के आचरण से ही रोग-रक्षा पूर्वक सच्चा स्वास्थ्य-मार्ग अपनाया जा सकता है। शरीर के प्रत्येक अङ्ग की रक्षा एक शास्त्रादिष्ट आवश्यक कृत्य है। समस्त अङ्गो मे नेत्रो की प्रधानता तो सभी ने स्वीकार की है। महर्षि चरक ने अपने स्वस्थ्य-वृत्त मे 'अतऊर्ध्वं शरीरस्य कार्यमक्ष्य-ञ्जनादिकम्' कह कर आँख को समस्त अङ्गों मे मुख्य माना है। बात भी ऐसी ही है क्योंकि कहा है कि

> चक्षु : प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधा. ।
> घननीहार युक्तानां ज्योतिषामिव भास्कर. ॥

नेत्रो को स्वस्थ रख कर सभी सांसारिक सुख अनुभव किये जा सकते है। नेत्र वास्तव मे मूक वाणी है जिनके द्वारा अपने मनोभावो को दूसरो से व्यक्त किया जा सकता है। तीव्र मन शक्ति का प्रभाव नेत्रो के ही माध्यम से आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाता है। प्रत्येक शारीरिक व मानसिक स्थिति का प्रभाव अवश्य नेत्रो पर कुछ न कुछ पडता ही है यह बात सभी शरीर शास्त्रज्ञ एक स्वर से स्वीकार करते है। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि नेत्रो का शरीर व मन से गहरा सम्बन्ध है।

ऐसे उपयोगी अङ्ग की सुरक्षा मे अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। सम्प्रति अधिकांश व्यक्ति नेत्र रोगो से आक्रान्त दिखाई देते है। बहुत से तो नवयुवक एवं बालक चश्मे के इतने आदी है कि वे उसके बिना नेत्रविहीन की सी भांति हैं। नेत्रों मे होने वाले रोग और उनके रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ ही रही है। उसका मूल कारण एक मात्र जीवन मे कृत्रिमता और कामुकता का आधिक्य ही है। यदि उससे बचा जाय तो निश्चय ही नेत्र रोगो से सुरक्षित रख कर सशक्त बनाये जा सकते है। निम्न विषय नेत्रों के सुधार मे पर्याप्त सहायक सिद्ध हो चुके हैं।

ब्रह्मचर्य की व्यवस्था—

ब्रह्मचर्य और दृष्टिबल का बहुत गहरा सम्बन्ध है। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करने से नेत्रों को पर्याप्त शक्ति प्राप्त होती रहती है जिससे इनमें किसी भी विकृति की संभावना नहीं रह जाती। कहा भी गया है कि 'दृष्टि. तेजोमयी प्रोक्ता शुक्रं तेजश्च केवलम। तस्मात्दृष्टि बलापेक्षी तेजो बृद्धि समाचरेत्' ॥ हमने कुछ रोगियो को ऐसा देखा है जिनके पिल्ल रोग अधिक शुक्रक्षय से होना लगा था किन्तु उचित ब्रह्मचर्य की व्यवस्था से उनकी स्थिति में संतोषजनक सुधार हुआ। आचार्य सुश्रुत ने नेत्र रोगो के निदान मे अति मैथुन का उल्लेख किया है। कामुकता का आधिक्य नेत्रो के लिये अत्यन्त घातक है। अतएव नेत्र सुरक्षा के लिये समुचित ब्रह्मचर्य की सुव्यवस्था सर्वथा श्रेयस्कर सिद्ध हुई है।

त्रिफला का प्रयोग—

नेत्र रोगो मे त्रिफला का प्रयोग अतीव गुणकारी है। इसका व्यवहार विभिन्न प्रकार से कर के विकृत नेत्रो को लाभ पहुँचाया जा सकता है। त्रिफला के बने हुये हिम से आखे धोने से उनकी विकृति दूर हो निर्मलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार हिम से यदि नित्य ही शिर धोया जाय तो बार बार पित्त तथा रक्त से पैदा होने वाले नेत्राभिष्यन्द मे पर्याप्त लाभ पहुँचता देखा गया है। सोते समय त्रिफला के सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण को घी व शहद के साथ खाने से दृष्टि-

मान्द्य दूर हो अन्यतोवात, रक्तस्राव, अर्जुन (नाखूना), शुक्तिका, और पोथकी प्रभृति रोगों में निश्चय ही आराम मिलता है। 'सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सर्वं नेत्रामयाञ्जयेत्'। तथा 'त्रिफला मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्र बलायच' यह शास्त्रोक्त वचन सर्वथा सत्य है। किन्तु यह बात स्मरणीय है कि उपर्युक्त विधि से त्रिफला का सेवन तभी पूर्ण फलप्रद है जब कि जठराग्नि निर्विकार हो और पेट में कब्ज न रह कर शौच खुलकर होता हो। यदि पाचन क्रिया में कोई गड़बड़ी हो तो प्रथम त्रिफला को सेंधा नमक के साथ भोजन में उपयोग करे। पुनः उदर शुद्धि होने पर घी व शहद का क्रम रक्खे। त्रिफला परम चक्षुष्य द्रव्य है। उसके एक मात्र उपयोग से अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

पादाभ्यङ्ग और मार्जन—

'पादाभ्यङ्गस्तु चक्षुष्यो निद्राकृत्पाद रोगहा'। पैरों के तलवों में शुद्ध तैल की मालिश रात्रि को सोते समय व प्रातः सो चुकने के पश्चात् नेत्रों के लिये अमृत तुल्य हितकर है। इसी प्रकार पैरों को सम्मार्जित रखना भी अतीव गुणप्रद है। अधिक उष्ण भूमि पर चलने से नेत्रों को बाधा पहुँचती है। अतएव नंगे पैर गरम भूमि पर चलना नेत्रों की शक्ति खोना है। वाग्भट्ट में पैरों को उचित रूप से धोना, तेल लगाना और जूते पहनना नेत्र रक्षा के लिए आवश्यक माना है जैसा कि इन श्लोकों से स्पष्ट है—

> द्वे पादमध्ये पृथु सन्निवेशे सिरे गतेते बहुधा च नेत्रे।
> ता म्रक्षणोद्वर्त्तन लेपनादीन् पाद प्रयुक्तान्नयन नयन्ति ॥
> मलोष्ण सङ्घट्टन पीडनाद्यैस्तादूष्यन्ते नयनानि दुष्टा।
> भजेत्सदा दृष्टि हितानितस्मादुपानदभ्यञ्जन धावनानि ॥

कुछ अन्य आवश्यक कृत्य—

प्रति दिन प्रातः मध्याह्न एवं सायं मुख में शीतल पानी भर कर आंखों में छींटे मारने से नेत्र सशक्त रह निर्विकार बने रहते हैं। जैसा कि [illegible]धर के इस वचन से स्पष्ट है—

> शीताम्बु पूरित मुखः प्रति वासरं
> यः काले त्रयेण नयन द्वितयं जलेन।
> आसिञ्चतिध्रुवमसौ न कदाचिदाक्षि
> रोगव्यथा विधुरता भजते मनुष्यः ॥

इस विषय में यह सदा ध्यान रक्खें कि जल स्वच्छ और शीतल ही हो।

अत्यधिक क्षार पदार्थों का सेवन आंख की शक्ति के लिये बाधक है। इसी प्रकार विरुद्ध पदार्थों का प्रयोग भी दृष्टिमान्द्यकारक है। अतएव इनसे बचाव रक्खे। पेट की सफाई अत्यावश्यक है। विजातीय दूषित मल पेट साफ न होने के कारण रक्त में मिल कर दृष्टि को निर्बल बना देते हैं। मुख और दांतों की स्वच्छता दृष्टि साबल्य में परम सहायक है।

सदैव रूक्ष पदार्थों का सेवन, वनस्पति घृत, कटु एवं उष्ण द्रव्य तथा मादक चाय, कहवा आदि के प्रचुर प्रयोग से रक्त दुष्ट हो कर शिरोरोग जन्य नेत्र विकार उत्पन्न हो जाते हैं अतः प्रकृति, देश और बलाबल का विचार कर निज आहार की व्यवस्था करनी चाहिये। उत्तम आहार विहार से नेत्रों में कभी कोई शिकायत उत्पन्न ही नहीं होती।

अहित आहार तथा अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाशयुक्त व चलायमान पदार्थों के अवलोकन का त्याग दृष्टि रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में अष्टाङ्ग हृदय का यह श्लोक सदास्मरणीय है:—

> 'अहितादशनात्सदा निवृत्ति
> र्भृशभास्वचल सूक्ष्मवीक्षणाच्च।
> मुनिनानिभिनोपदिष्टमेतत्
> परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥

—श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल आयुर्वेदाचार्य,
मन्धना (कानपुर)

सर्पदंश और बूटियों द्वारा चिकित्सा

श्री श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०

वर्षा ऋतु में सर्प अधिक निकलते हैं क्योंकि यह बिलों में रहते हैं और वर्षा में इनके बिलों में पानी भर जाता है अतः इन्हें बाहर आना पड़ता है। सर्पों की अनेक जातियां हैं जिनमें कुछ विषधर हैं और कुछ निर्विष। परन्तु पांव के नीचे आने पर सभी सर्प काट लेते हैं। रहा विष का प्रश्न जिन सर्पों में विष नहीं होता उनके काटने से भी मनुष्य के भयभीत होने से दिल (हार्ट) कमजोर होकर विष प्रभाव होने लगता है क्योंकि चोर और सांप की दहशत (डर) ही प्रसिद्ध है। कितने ही एसे उदाहरण हैं कि मनुष्य कई कई वर्ष बाद केवल डर के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए।

एक दिन एक घर में रात को चारपाई के नीचे सांप था। स्त्री जो चारपाई पर बैठी थी उसने शोर मचाया। घर वालों ने सर्प को मार दिया। सर्प ने स्त्री को छुआ भी नहीं था परन्तु स्त्री उसी दिन से ऐसी पागल सी होगई कि उसे उसी सर्प का ध्यान रहने लगा। घर वालों ने बहुत यत्न किये परन्तु उस स्त्री की मृत्यु होगई। केवल डर के कारण हृदय पर बुरा प्रभाव पडा और वह मर गई।

जंगलों में अनेक प्रकार की बूटियां हैं जिनके द्वारा सर्प विष की चिकित्सा की जाती है। परन्तु हर जगह हर एक बूटी का मिलना सुलभ नहीं। जितनी भी बूटियां सर्प विष को दूर करती हैं वह स्वयं विष ही होती हैं और सर्प उन बूटियों के पत्तों या जड को चाटते रहते हैं। सर्पों में उन्हीं बूटियों से विष उत्पन्न होजाता है और वही बूटियां उस विष को समाप्त कर देती हैं। बहुत सी बूटियां ऐसी हैं जिनसे वमन विरेचन हो कर विष शांत होता है और खिलाई जाती हैं। कई ऐसी हैं जिनके केवल अंजन की भांति आंख में लगाने से सर्प विष नष्ट हो जाता है जैसे जमालगोटे का योग।

वह बूटियां जो सर्प विष को नष्ट करने में शत प्रतिशत लाभप्रद हैं यह हैं—

श्वेत निर्विसी, काली निर्विसी, गोलाकर कन्द, अनन्त मूल (सारिवा), बांझ ककोड़े की जड (कन्द), द्रोण पुष्पी (गोमा या गुम्मा), कसोंधी, सफेद पुनर्नवा या विसखपरा, जमालगोटा, जीव धारियों में मुर्गी का चूजा, दो मुंहे वाला सांप जिसे दुमुहीं कहते हैं सर्प विष की अचूक औषधि हैं।

हमारे अनुभव में दो वस्तुओं ने शत प्रतिशत सफलता दिखाई है और लोगों की जान बचा कर पुनः जीवन प्रदान किया है। हम नीचे वह प्रयोग लिखते हैं–

१–आंखों में लगाने की दवा–

जमालगोटे की गिरी एक तोला, काली मिर्च एक तोला चार कागजी नीबू के रस में खरल करें। जब गोली बनाने योग्य हो जावे तब जंगली बेर के बराबर गोली बना लें। छाया में सुखाकर शीशी में रखलें। जिसको सर्प ने काटा हो गोली पानी में घिस कर या मनुष्य या घोड़े की लार में घिस कर उसकी आंख में लगावें। विष उतर जायेगा। परन्तु इस योग को सर्प काटते ही जल्दी आंखों में लगा देना चाहिए। इस योग में जमालगोटा अशुद्ध ही डालना पड़ता है। बाजार से जमालगोटा लाकर छील कर कार्य में लाओ। गोबर में पचाने या जीभी निकालने की जरूरत नहीं। यदि शुद्ध जमालगोटा डालोगे तो लाभ नहीं होगा।

शार्ङ्गधर-संहिता में जमालगोटे के बीजों का योग इसी प्रकार दिया है। परन्तु नींबू की पुट देने को लिखा है। वह योग भी अच्छा है। हम पच्चीस वर्ष से अपना दिया हुआ योग तैयार करके जनता की मुफ्त सेवा कर रहे हैं। पूर्ण लाभ-

दायक है।

योग नं० २—श्वेत निर्बिसी

पहचान—यह बूटी कैर की जड के आस पास मिलती है। पत्ते कुछ लम्बे हरे रंग के होते है, पत्तों मे मामूली धारी होती हैं। इसका पौधा एक फुट तक ऊँचा होता है। खोदने पर मूली सी निकलती है। रंग बादामी होता है। इस मूली सी का रंग अन्दर से श्वेत या पीला होता है। जो पौधा बहुत दिन का हो उस का रंग पीला पड जाता है।

बूटी को फावड़े से खोद कर निकाल लें और पानी से धो कर उस मूली के आकार की जड़ को चाकू से छील कर छिलका दूर करे। काट कर टुकड़े बनालें और छाया मे सुखा कर शीशी मे रख ले।

विधि—जब किसी को सर्प काट ले तो एक तोला चिलम का टीटा (जो चिलम में अन्दर जमा रहता है) और एक तोला या छः माशे यह जड़ मिला कर सिल पर पानी डाल कर चटनी की तरह बारीक पिसवा ले। और खूब बारीक हो जाने पर आधी दवा चीनी के प्याले मे रख दें और आधी दवा को १ छटांक पानीमे घोल कर रोगी को पिलादे। और पांच सात मिनट बाद असली घी जितना रोगी पी सके पिलादे। बाकी बची हुई दवा तीन घंटे के बाद एक छटांक पानी मे घोल कर फिर पिलादें। और खाने को कुछ न दें। यदि भूख लगे तो घी पिलाएं। रात को या दिन को रोगी को नींद आये तो सोने न दें। यदि नींद आये तो रोगी को तमाचा मार कर भी चेतन्य करे। यदि रोगी सो गया तो जहर शरीर में फैल जायगा और मृत्यु हो सकती है। अगले दिन सवेरे रोगी की हालत देखे और दवा की आवश्यकता नहीं होगी।

खिलाने की दवा के साथ साथ रोगी के दंश स्थान को भी गुड के शर्वत से नीम की टहनी से आठ दस घंटे तक निम्न प्रकार से झारते रहे—

अक्सर सांप हाथ या पांव मे काटता है। यदि हाथ की अंगुली या हाथ में काटे तो इस प्रकार झारना चाहिये—
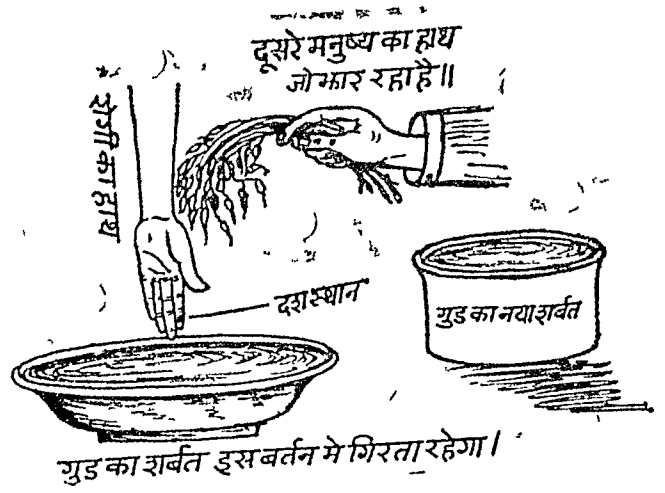
गुड का शर्वत इस बर्तन मे गिरता रहेगा।

यदि हाथ मे काटा हो तो इस प्रकार झारो

आध सेर गुड़ लेकर तीन सेर पानी मे डाल कर घोल लो। एक परात या किसी और चौड़े मुंह के बर्तन मे शर्वत को रख कर नीम की टहनी से झारो और शरबत को घंटे दो घंटे के बाद फैंक दो तथा नया शर्वत ले लो।
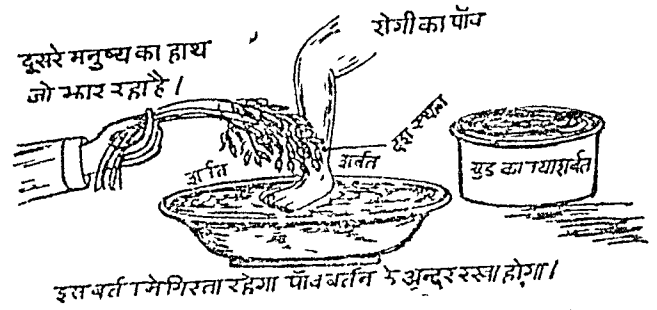
इस बर्तन मे गिरता रहेगा पॉव बर्तन के अन्दर रखा होगा।

यदि पॉव मे काटा हो तो इस प्रकार झारो

क्योंकि विष के कारण शोथ अधिक होती है और हाथ या पॉव विष की अधिकता से फटने के सदृश हो जाते है इसीलिए झारना चाहिए। शोथ बढ़ती रहे कोई चिन्ता नहीं।

२५ घंटें तक रोगी को घी के अतिरिक्त कोई वस्तु खाने को न दे। तीसरे दिन प्रात. यदि रोगी स्वस्थ है तो वेसन की रोटी अलोणी घी में भिगो कर दे।

रोगी खीर न खाये। खीर का परहेज साल भर तक रख ले तो अच्छा है। हम रोगी को स्वस्थ हो जाने पर वेसन की रोटी तथा घी खिलाते हैं या प्याज कच्ची रोटी से खिला दिया करते हैं।

घी का प्रयोग रोगी को कुछ दिन तक अधिक रखना चहिए।

श्वेत निर्विसी हमारे पास हर समय रहती है। वैद्य बन्धु अपने आस पास तलाश करके जनता की सेवा करे। यदि आप बूटी भी तलाश नहीं कर सकते तो इतना तो अवश्य करें कि जमालगोटे वाला योग बनालें और मुफ्त दिया करे। आँख मे अंजन करायें। विष दूर होगा। उपरोक्त अनुभवो के अतिरिक्त और भी ऐसे योग है जिनसे वैद्य वन्धु लाभ उठाले। और समय पर जो भी औषधि मिल जाये उसी से रोगी की जान बचावें।

शारिवा (अनन्तमूल) की जड़–

विधि–शारिवा की जड़ एक तोला, काली मिर्च २१। एक छटांक पानी मे पीस कर दो तीन वार पिलाओ और ऊपर से घी पिलाओ। नींद न आने दो।

द्रोणपुष्पी (गुम्मा–गोमा-धुर्की)

गॉव के लोग इसे गुम्मा कहते हैं। संस्कृत नाम द्रोणपुष्पी है। इसे गाय भैंस खाले तो पेट पर अफरा आ जाता है। किसान लोग सभी जानते है। इसका फूल इस्फंज की तरह होता है।

गुम्मे का रस दो–दो तोले तीन चार बार पिलाना चहिए।

पुनर्नवा(विप खपरा, श्वेत गदहपुरना)–

अनन्त मूल की भॉति काली मिर्च के साथ एक तोला घोट कर पिलाओ।

बॉझ ककोड़े का कन्द (जड़)–

यह शकरकन्दी की भांति लाल से रंग की जड़ होती है। कई बार इस के नीचे सर्प मिलते है।

एक तोला जड़ पानी मे पीस कर पिलाओ। घंटे २ बाद पिलाते रहो विष उतर जायेगा। घी प्रत्येक योग पर पिला देना चहिये।

दो मुँह वाला सांप (दुमुँही) (सर्पविष की अचूक औषधि)–

दुमुँही लेकर उस के टुकड़े छोटे छोटे करके छाया मे सुखालो और शीशी के बर्तन में रख लो।

जब किसी को सर्प काटे तो दंश स्थान पर एक टुकड़ा लगा दो। उसमें जहर भर कर टुकड़ा फूल जायेगा। उसे उतार कर दूसरा लगा दो जब टुकड़ा फूलना वन्द हो जाये तो समझलो कि शरीर में विष नहीं रहा। जिन टुकड़ों मे जहर भर गया है उन्हें पृथ्वी मे गढ़ा खोद कर दवा दो।

मुर्गी के चूज़े–

मुर्गी के चूजे की गुदा के बाल तोड़ कर दंश स्थान पर लगा दो वह दंश स्थान पर चिपट जायगा और विष को खेंच लेगा। विष भर जाने पर नीचे गिर जायेगा। पश्चात् दूसरा चूजा लगा दो। उसमें भी विष भर जाये तो तीसरा लगा दो। जब विष नहीं रहेगा तो चूजा नहीं मरेगा। मनुष्य स्वस्थ हो जायगा।

—श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०,
१५५६/२६ नाई वाला करौल बाग, दिल्ली

एक्जिमा के लिये--

अजवायन २ तोला, नीला थोथा ½ तोला, कबीला ½ तोला, रस कपूर १ माशा एवं गाय का शुद्ध घृत २ तोला।

विधि—अजवायन को आक के दुग्ध में भिगो-कर उसे छाया में सुखादे, जब वह अच्छी तरह सूख जावे तब उसे तवे या किसी बर्तन में जलाकर निर्धूम करले और बाद में पीसकर चूर्ण करले।

इसके बाद घृत को १५ बार कांसी की थाली में पानी के साथ धोलें तथा पानी को अलग कर उसमें अजवायन, नीला थोथा, कबीला व कपूर को पीस कर चूर्ण सहित घृत में मिलादें।

इसको जहां एक्जिमा हो उसको साबुन से धोकर १५ दिन तक लगाने से अवश्य फायदा होगा।

दाद के लिए अचूक दवा—

गूलर के दूध को जहां दाद हो उस पर अरण्यो-पल द्वारा रगड़ कर तीन दिन तक लगाने से दाद जड़ से नष्ट हो जाता है।

इसके लगने से जलन बड़ी तीव्र होती है उसे सहन कर तीन दिन तक लगातार प्रयोग करते रहना चाहिए।

—श्री श्रीगोपाल गुप्ता अध्यापक
गोठड़ा (बूंदी)

× × × ×

संग्रहणी पर—

१—जिसमे दस्तो मे रक्त न आता हो—

औषधि—अफीम, हींग हीरा (घी में भुना हुआ आधा कच्चा) भांग, जायफल सब वस्तुएं १-१ माशे।

विधि--हींग भुना, भांग, जायफल को कूट कर कपड़े में छान ले। पश्चात् दो छुहारे लेकर उनकी गुठली निकाले और दोनो छुहारों मे आधी आधी दवा भर दे। ऊपर से गुंधा हुआ आटा लपेट दे और भूभल (तेज गर्म राख) मे दबा दें। जब आटा पक कर लाल हो जायें तो उसे आग से निकाल कर रख दे। ठंडा होने पर बारीक पीस कर कनक के बराबर गोलियां बनालें।

प्रयोग विधि—बड़े आदमी को पूरी गोली और बच्चे को आधी गोली देनी चाहिए।

मात्रा—दिन मे तीन बार लस्सी से दे। दस्तो मे खून न आता हो तो ऊपर वाली दवा देनी चाहिए।

२—दस्तों के साथ रक्त आता हो तो यह दवा दें—

औषधि—छुहारा एक, अफीम एक माशा।

विधि—छुहारे की गुठली निकाल कर अफीम उसमें भर दे। और आटा लपेट कर दीये की लौ पर (या गर्म राख मे) भूनलें। जब आटा लाल हो जावे तब ठंडा होने पर खोलो। पीस कर कनक के दाने के बराबर गोलियां बनालो। दिन मे तीन खुराक सवेरे दोपहर और शाम को लस्सी के साथ। खाने को मकई की रोटी, लस्सी दही के साथ खानी चाहिए। यदि ज्वर भी हो तो यह दवा लस्सी से नहीं देनी चाहिए बल्कि चौअर्के के साथ देनी चाहिए। लस्सी मे नमक मामूली सा डाल देना चाहिए। दिन मे लस्सी कितनी ही बार पीवे अच्छी है। तपेदिक वाले को दस्त हो और संग्रहणी

हो तो चौअर्क से गोली देनी चाहिए।

मरहम-रसौली पर—

औषधि-राल एक पाव, चूहे की मेंगनी आध पाव (जंगली चूहे की हो तो और भी अच्छा) गन्दा बिरोजा सूखा दो तोला। नील थोथा १। तोला।

बनाने की विधि—सब बस्तुओ को कूट कर कपडे में से छान कर तैल सरसो आधा पाव या डेढ़ छटाक में डाल दो और हाथ से घोटो। हल्वा जैसा हो जावेगा पश्चात् एक कडाही लेकर इस हल्वे को डालकर मथो और पानी डाल कर धोओ। जैसे घी धोते है। बीस पचीस बार धोओ यहां तक कि धोते-धोते रंग सफेद हो जाये। फिर पानी निकाल कर कड़ाही को आग पर रखो। और पलटे से पलटते रहो। नीचे आग मन्दी हो। जब पकते पकते नसवारी रंग हो जावे तब उतारो। अन्त में कड़ाई में जब मरहम तय्यार होने पर आयेगी तो यह पहचान है कि उसमे से सफेद नीले रंग के बुलबुले निकलने लगेंगे। उबाल नहीं आने देना चाहिये। अगर उबाल आने से पहले न उतारा तो मरहम खराब हो जायेगा। पश्चात् डिबियो में भर कर रखलो।

सेवन विधि—रसौली किसी भी प्रकार की हो एक कपड़े पर मरहम लगाकर रसौली पर लगाओ। प्रात. सायं लगाते रहो। रसौली अपने आप निकल जावेगी पता नहीं लगेगा।

—श्री श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०
१५५६/२१ नाई वाला, करौल बाग, दिल्ली।

× × × ×

पौष्टिक पाक—

कौच के बीज ६ तोला, कनेर बीज, विदारीकन्द, अश्वगन्धा, विधारा, कटेरी, लाजवन्ती के बीज, काली मूसली, सफेद मूसली, हरड, बहेडा, आवला, काली मिरच, सोंठ, गोखुर, कमल के बीज, इमली के बीज, जमीरी नीबू के बीज, ककड़ी के बीज सभी १-१ तोला लें। उपरोक्त द्रव्यों में से बीजों को पानी में भिगोकर उनकी मिंगी निकाल ले। फिर सभी चीजों को कूट पीस कपडछन करलें। फिर आधा सेर गेहू का आटा मिला कर आधा सेर गौघृत में भून ले। पश्चात् २ सेर मिश्री की चासनी मिलाकर ५-५ तोला के मोदक बनाले। एक पाव दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करें। यह अनुभूत पाक है। अत्यन्त पौष्टिक है।

—वैद्य श्री सियाराम शर्मा
एधिया पो० कलसन (फरुखाबाद)

× × × ×

लिङ्ग की शैथिल्यता नाशक—

काली मिरच नग ११, काली तुलसी बीज ११ नग, लवङ्ग ११ नग, भीमसैनी कपूर १ माशा। इनको कूट-पीस कर कपडछन करले। इसी हिसाब से चाहे जितना बनाले। पानी मे मिला लिङ्ग पर लेप करने से लिङ्ग की शैथिल्यता दूर होकर कडापन आता है प्रयोग करे।

दाद खाज नाशक—

पीपल की छाल, बादाम छिलका, गैहूं के दाने, नारियल के गोले के ऊपर की लकड़ी, शीशम की छाल प्रत्येक एक छटांक ले। तुत्थ ६ माशा ले। इनका पाताल यन्त्र से तैल निकाल ले। अथवा सभी सामग्री लेकर एक मिट्टी की हडिया मे भर ले। उसके तले मे पैंसिल के बराबर का छिद्र कर छोड़े। छिद्र पर एक प्याला रख कर ऊपर सामग्री युक्त हड़िया रखदे। हांडी का सन्धि बन्धन पूर्व कर लेना चाहिये। पश्चात् एक गड्ढा खोद के उसमे रखदें। गड्ढा वराह पुट के समान होना चाहिये। ऊपर अग्नि जला दी जाय शान्त होने पर नीचे श्याम रङ्ग का स्निग्ध पदार्थ होगा। उसका पिचु दाद पर लगावे। यह लगेगी किन्तु लाभ अच्छा करती है।

प्रवाहिका हर—

सौंठ, सौंफ, हरड, छोटी पोस्त के डोडा—प्रत्येक एक-एक छटांक ले।

निर्माण विधि—प्रथम सोंठ को कुछ कुचलें। पश्चात तवे पर जरा घृत छोड भूनलें। इसी प्रकार तवे पर हरड़ और सौफ भी भूनले। हरड़ फूल जावेगी सौफ का रंग परिवर्तन हो जावेगा। अधिक न भूनें। पश्चात् सभी को चूर्ण कर चलनी से छान कर बोतल मे रख छोड़े।

मात्रा—एक से तीन माशा।

पथ्य—चावल मूंग की दाल खिचड़ी दही खाने को दे।

— श्री जगदीशचन्द्र भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य
राजकीय औषधालय, जोधका (हिसार)

× × ×

सूखा रोग पर मेरे दो अनुभूत प्रयोग--

१—एक बंगला पान पर चूना तथा कत्था डाल कर २॥ पत्ती कंघी का मिला कर सिल पर महीन पीस कर कमर के नीचे रीढ़ पर उंगली से १५ मिनट धीरे २ मालिस करें। बाद मे कपड़े से पोछने पर सूत के समान महीन कीड़े प्रगट होगे उन्हे हटादेवे। एक सप्ताह इसी प्रकार लेप करने से सूखा रोग के कीडे मर जायगें, बच्चा सुखी होगा। माता नीम के फूल ६ माशे, सौफ ६ माशे, काली मिर्च ½ माशे सुबह बट कर एक सप्ताह तक पिये तो विशेष लाभ होगा। सूखा रोग न होगा तो कीड़ा नहीं प्रगट होगा।

सूखा रोग पर सूखा संहार तैल—

काला तिल का तैल ऽ॥ भृंगराज (भंगरा) ऽ॥ कुकरौंधा रस ऽ॥ लह चिचिरा रस ऽ॥। सबसे प्रथम तैल मे क्रमानुसार रस डाल कर सिद्ध करें। बाद मे कछुवा के रीढ़ की हड्डी आधी छटांक कपड़ छान कर डालें। जब जल जावे तब उतार कर अफीम ४॥ माशे और असली संदल सफेद तैल ७॥ माशे डाल दें बाद खूब हिलाकर मालिस करे। सूखा रोग शर्तिया, दूर होगा। माता कब्जकारक पथ्य भोजन न करे। बचा सुखी होगा।

—श्री पं० सत्यशरण मिश्र वैद्य
धनवां (गौण्डा)

अनुभवी सफल चिकित्सक ध्यान दें

१—आप अनेक रोगियो की चिकित्सा करते है तथा उनको रोग मुक्त करते है। किसी कष्टसाध्य रोग से पीड़ित रोगी की यदि आपने सफल चिकित्सा की है तो उसका विवरण धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ अवश्य भेजें। निम्न शीर्षकों के आधार पर लेख संक्षेप मे लिखे—

१. रोगी का नाम व पता। २. उसके रोग का पूर्व इतिहास (संक्षेप मे)
३. उस समय का विवरण जब कि वह आपकी चिकित्सा मे आया (संक्षेप मे)
४. आपने क्या चिकित्सा की और उसका क्या परिणाम हुआ।
५. चिकित्सा से प्रयुक्त औषधियों के प्रयोग।

२—किसी भी शास्त्रीय प्रयोग के विषय मे, अपने चिकित्सा काल मे यदि आपने विशेष अनुभव किए हैं तो उनको अवश्य लिखियगा तथा प्रकाशनार्थ भेजियेगा।

उक्त दोनों प्रकार के आपके अनुभवो से आयुर्वेद समाज को लाभ होगा, पीडित जन समुदय को वे लाभ पहुंचावेगे तथा आयुर्वेद का प्रचार होगा। हमको विश्वास है कि आयुर्वेद जगत के सफल चिकित्सक अपने व्यस्त जीवन का कुछ समय अपने सहकर्मी आयुर्वेद चिकित्सको को अपने अनुभव प्रदान करने के लिए अवश्य देगे।

— सम्पादक।

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद खण्ड की स्थापना —

नई दिल्ली, १३ जुलाई। आयोजन आयोग ने योजना मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता में आयुर्वेद खण्ड की स्थापना की है।

यह खण्ड आयुर्वेद के विकास सम्बन्धी चालू कार्यक्रमों की प्रगति पर विचार करेगा और तीसरी योजना के लिए आयुर्वेद कार्यक्रम के बारे में सुझाव देगा। श्री नन्दा के अलावा खंड में ३४ अन्य सदस्य हैं।

× × × ×

आयुर्वेद कालेज के मामले में कानूनी कार्यवाई का निर्णय—

ज्ञात हुआ है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की कार्यकारिणी समिति ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज को एक एलोपैथिक मेडीकल कालेज में परिवर्तित करने के निर्णय के विरुद्ध आवश्यक कानूनी कार्रवाई करने का निश्चय किया है।

× × × ×

उड़ीसा आयुर्वेदिक औषधि विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति

नयी दिल्ली २६ जून। राष्ट्रपति ने उड़ीसा आयुर्वेदिक औषधि विधेयक १९६० पर स्वीकृति दे दी है। विधेयक में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के विकास और पढ़ाई तथा प्रैक्टिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था की गयी है।

विधेयक के अन्तर्गत एक परिषद और विभाग का संगठन किया जायेगा जिसे प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बनाने, योग्यता निर्धारित करने आदि का अधिकार होगा। विभाग चिकित्सा पद्धति का उच्च स्तर बनाये रखने का कार्य भी करेगा। विधेयक में आयुर्वेदिक चिकित्सकों के रजिस्ट्रेशन के बारे में नियम बनाये गए हैं।

× × × ×

उ. प्र. इण्डियन मैडीसिन बोर्ड की सूचना—

बोर्ड के रजिस्ट्रार ने उन समस्त स्नातकों से अनुरोध किया है कि जिन्होंने सन् १९५७-५८ और ५९ की वार्षिक परीक्षायें उत्तीर्ण करली हैं और अब तक उन्होंने प्रमाण पत्र इस बोर्ड से प्राप्त नहीं किये हैं ऐसे समस्त स्नातकों को ५) शीघ्र ही रजिस्ट्रार उ० प्र० इण्डियन मेडीसिन बोर्ड लखनऊ को मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी अपनी उपाधियों के प्रमाण पत्र तुरन्त मंगा लेने चाहिए

× × × ×

काश्मीर में आयुर्वेदिक कालेज —

पता चला है कि जम्मू-काश्मीर में शीघ्र ही एक आयुर्वेदिक कालेज विशाल पैमाने पर खोला जायेगा। राज्य सरकार ने आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए एक समिति भी बनाई है जो कि इस सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देगी।

× × × ×

बिहार में आयुर्वेद उपसंचालक—

बिहार सरकार पहले आयुर्वेद का संचालक नियुक्त करना चाहती थी किन्तु अब उसने उपसंचालक आयुर्वेद रखने का निश्चय किया है। इसके लिये आवेदन पत्र मांगे गये हैं। अन्तिम तिथि २७ जून थी। शीघ्र ही प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिये आमन्त्रित किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार १ मिलिलिटर से भी सूक्ष्म आयतन का मान निम्न तालिका से ज्ञात किया जा सकता है—

१००० मिलिमाइक्रोलिटर—१ माइक्रोलिटर।
१००० माइक्रोलिटर —१ मिलिलिटर।

द्रष्टव्य—कुछ समय पहले द्रव पदार्थ (Liquid matter) का आयतन वैज्ञानिक लोग सी० सी० (घन सेण्टीमीतर, Cubic centimeter) में मापते थे परन्तु कुछ असुविधाएँ देख कर अब विदेशी वैज्ञानिक जन उसे मिलिलिटर एवं लीटर में मापने लगे हैं। आज वैज्ञानिक जगत में द्रव के आयतन-मापन के लिए बहुत दिनों तक प्रचलित घन सेण्टीमीटर या क्यूबिक सेण्टीमीटर (c c. सी० सी०) के बदले में मिलिलिटर की इकाई को क्यों अपनाया गया, इसके भी कई कारण हैं जिनको लेख के विस्तार भय से मैं यहाँ नहीं दे सका हूँ।

क्षेत्रफल या लम्बाई मापने के लिए

१० मिलिमीटर—१ सेण्टीमीटर
१० सेण्टीमीटर—१ डेसीमीटर
१० डेसीमीटर—१ मीटर
१० मीटर—१डेकामीटर
१० डेकामीटर—१ हेक्टोमीटर
१० हेक्टोमीटर—१ किलोमीटर
१० किलोमीटर—१ मिरियामीटर

तापमान मापने के लिए

तापमान (Temperatur) मापने के लिए यों तो तीन प्रकार की पद्धतियाँ यथा—(१) फार्नहाइट (Fahrenheit), (२) सेण्टीग्रेड (Centigrade) तथा (३) रिओमर (Reaumur) प्रचलित हैं। परन्तु वैज्ञानिक जगत ने सेण्टीग्रेड (Centigrade) को ही प्रामाणिक तापमान मापने की पद्धति के रूप में स्वीकार किया है। सेण्टीग्रेड मापक तापमान यन्त्र (Centigrade Thermometer) पर मापन की खुदाई पारदवाले घुण्डी से कुछ ऊपर ०° अंश से प्रारम्भ हो कर क्रमश दूसरे किनारे पर १००° अंश के अंक तक और किसी-किसी में क्रमश १५०°, २००°, २५०°, ३००°, ३५०°, ४००°, ४५०°, ५००°, ५५०°, ६००°, ६५०°, ७००°, ७५०° तक या इससे भी ऊँचे तापक्रम के अङ्क तक की हुई रहती है। इस यन्त्र के अनुसार सामान्य जल का तापक्रम ४° से० (४°) तथा उबलते हुए जल का तापक्रम १००° से० (१००°) होता है। चिकित्सा कार्य में जो तापमापक यन्त्र (Clinical Thermometer) व्यवहार में लाया जाता है, वह वास्तव में सेण्टीग्रेड नहीं, बल्कि छोटा 'फार्नहाइट थर्मामीटर' है जिसमें ९४° (94°F) से ले कर ११०° फा० (100°F) तक अंक खुदे रहते हैं। इस फार्नहाइट के तापक्रम को सेण्टीग्रेड के तापक्रम में लाने के लिए यदि हम पठित फार्नहाइट तापक्रम में ३२ अंक घटा कर ५।९ से गुणा करें तो हमें सेण्टीग्रेड में तापक्रम प्राप्त होगा।

उपरोक्त मेट्रिक मान-पद्धति के अतिरिक्त विश्व में विविध मान-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, परन्तु वैज्ञानिक जगत मेट्रिक मान-पद्धति के आगे उनका कोई महत्व नहीं देता। अर्थात् समस्त वैज्ञानिक जन मेट्रिक मान-पद्धति को ही प्रधान रूप से अपनाए हुए हैं जिसके आदि कर्त्ता यथार्थत भारतीय महर्षि ही थे, भले ही वह आधुनिक आडम्बरयुक्त वस्त्राभूषण पहन कर एक नवीन-सा ही क्यों न दीख पड़े। (क्रमश)
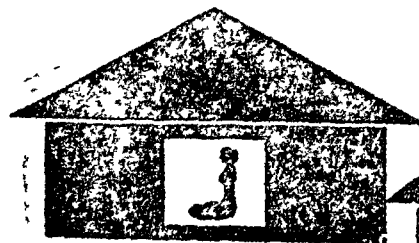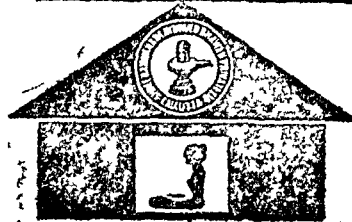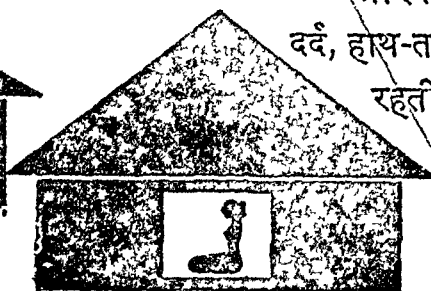
कुछ सफल मुष्टियोग

वैद्य शरत्कुमार व्यास, आयुर्वेद विशारद

(१) कुकर खाँसी

सामान्य परिचय बडी खाँसी, 'हूपिंग कफ', कुकर खाँसी इत्यादि नामो से प्रख्यात यह खाँसी प्राय बालको को पीडित करती है। यदा-कदा वयस्को मे भी दृष्टिगोचर होती है। इसका वेग २ से ५ मिनट तक चालू रहता है। फलस्वरूप बालक का मुखमण्डल रक्तवर्ण हो जाया करता है, आँखो से पानी बहता है, परन्तु आरम्भ मे छर्दि (उलटी) नही होती। कुछ काल पश्चात् खाँसी के बाद छर्दि होना प्रारम्भ होता है और खाँसी के साथ एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि आने लगती है जिससे अग्रेजी मे इसका नाम 'हूपिंग कफ' पडा है। प्राय खाँसी के वेग रात्रि को अधिक आते है। परिणामतया बालक की निद्रा का नाश होता है। इस कारण और इस विशिष्ट कास के कारण बालक के मुख और आँखो पर शोथ आ जाता है तथा नेत्रो मे रक्त उभर आता है जो कभी-कभी सर्वदा के लिए रह जाता है।

जनसाधारण की मान्यता है कि चाहे जो भी उपचार किया जाय, पर यह खाँसी ६ से ८ मास के पूर्व शान्त नही होती।

चिकित्सा (१) काले तमाखू के पत्र के मध्य की बडी सिरा तथा सैन्धव लवण समभाग ले एक मिट्टी की हाँडी मे भर, निर्धूम जला, मसी (भस्म) बना ले और कपडे से छान कर शीशी मे भर लें। यह मसी (भस्म) आधा से २ वल्ल (१ वल्ल—३ रत्ती) तक मधु से दी जा सकती है। कुकर खाँसी मे एक पके बेवली पान और एक छोटी इलायची को साथ पीस कर रस निकाले। इस रस को सुहाता गरम कर औषध को मधु मे मिला उसमें उपर्युक्त गरम किया हुआ रस मिला, पिला दे। दिन मे ऐसी तीन-चार मात्रा दें। कुछ दिन देने से अच्छा गुण होता है। यह योग सर्व प्रकार के कास मे भी उपयुक्त है।

(२) सूखी हल्दी और मिसरी समभाग ले वस्त्रपूत चूर्ण बना ले। इस रजनी-शर्करा चूर्ण को कुकर कास मे अकेला या सितोपलादि चूर्ण या उपर्युक्त तमाखू योग के साथ मिला मधु से दे। यह चूर्ण किसी भी खाँसी में दे सकते है। तदुपरान्त घरेलू वैद्यकानुसार चोट आदि लगने पर इस चूर्ण के फाँकने से धनु स्तम्भ (टिटेनस) नही होता। इसका उपयोग जनता मे प्रचलित है।

(३) फुलाई हुई सौराष्ट्री (फिटकरी) भी मधु से देने से कुकर कास मे अच्छा गुण होता देखा गया है। यह कास शास्त्रीय सम्प्राप्ति का विचार करे तो लीन कफ से वायु का आवरण हो कर तन्मूलक प्रकोप होने से होता है। सौराष्ट्री (फिटकरी) अपने कषाय रस के कारण स्रोतो को सकुचित कर उनमे लीन कफ को बाहर निकाल देती है। उन्मुक्त हुआ यह कफ कास के वेग से बाहर निकल जाता है या आमाशय मे पहुँच जाता है। इसका आवरण न रहने से वायु का कोप भी शान्त होता है। और कास के वेग नष्ट होते है।

(४) साधारण कास में भी उपर्युक्त सर्व उपचार किए जा सकते है। कुकर खाँसी से भिन्न कास में निम्न लिखित कल्प भी हमारे अनुभव मे गुणकारी सिद्ध हुए है। यथा—

(१) सितोपलादि चूर्ण,
(२) सितोपलादि चूर्ण तथा अमृता सत्त्व,
(३) सितोपलादि चूर्ण तथा अग्नि रस,
(४) सितोपलादि चूर्ण तथा त्रिफला चूर्ण;
(५) सितोपलादि चूर्ण तथा उपर्युक्त रजनी-शर्करा चूर्ण
(६) सितोपलादि चूर्ण तथा वासा चूर्ण,
(७) सितोपलादि चूर्ण तथा मधुयष्टि चूर्ण,
(८) त्रिफला चूर्ण तथा पिप्पली चूर्ण,

(९) अर्क पुष्प के अन्दर की लवग तथा समभाग सैन्धव मिला कर अतिसूक्ष्म पीस ले। पश्चात् चने के बराबर गुटिका बना सुखा ले। १ से ३ गुटिका मधु से दिन मे तीन बार देने से श्वास-कास मे उत्तम लाभ होता है।

(२) कृमि, अतिसार, अर्श इत्यादि

त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीय यवानिका।
कम्पिल्लक विडङ्ग च गुडश्च समभागक ॥

तक्रेण कल्कमेतेषा पिबेत्क्रिमिगणापहम् ॥—शार्ङ्गधर

त्रिवृत् (निशोथ), पलाश बीज, पारसीक यवानी, कम्पिल्लक तथा विडङ्ग समभाग ले, वस्त्रपूत चूर्ण बना, समभाग गुड मे मिला, तक्र के साथ दिया जाय, तो कृमि का नाश होता है। इस योग मे गुड आता है। गुड मे मिला कर रख छोडने से वर्षा ऋतु मे इसमे कृमि पडने की आशङ्का रहती है। अत हम औषध द्रव्यो का चूर्ण बना अनुपान-रूप मे गुड और तक्र बता देते है। इस योग से कृमि रोग मे अच्छा लाभ होता देखा गया है।

विडङ्ग तथा इन्द्रयव समभाग ले वस्त्रपूत चूर्ण वना मधु मे मिला मटर के बराबर गुटिका वना ले। वयानुसार १ से ३ गुटिका दिन मे तीन वार जल, ताजे दही की छाछ या तण्डुलोदक के साथ देने से कृमि, अतिसार, रक्तातिसार, अजीर्ण, अजीर्णातिसार, रक्तार्श, कृमिजन्य छर्दि तथा ज्वरातिसार प्रभृति रोगो मे सुन्दर कार्य करती है।

(३) कामला, प्लीहावृद्धि, विषमज्वर इत्यादि

सुवर्ण गैरिक, मरिच तथा पकाया हुआ नवसादर (जो कलई करने में प्रयुक्त होता है। 'राधेलो नवसार' नाम से गुजरात मे पनसारियो के यहाँ मिलता है) समभाग और इन तीनो के समान फुलाई हुई सौराष्ट्री ले सव का सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बना ले। मूल पाठ मे गुड मे मिला कर गुटिका बनाने का विधान है। परन्तु गुड मिला गुटिका बना कर रख छोडने से कृमि से दूषित होने की सम्भावना सदा बनी रहती है। इस कारण इसे भी हम चूर्ण रूप मे ही रखते है और अनुपान मे गुड का पानी बता देते है।

कामला मे यह सस्ती एव रामवाण औषध है। इसके अतिरिक्त तृतीयक आदि सर्व विषम ज्वर, प्लीहावृद्धि एव प्लीहोदर के लिए भी यह औषध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका उल्लेख सूरत के **स्व० वैद्यराज श्री तलकचन्द ताराचन्द** ने अपनी आयुर्वेद निवन्धमाला (गुजराती) मे प्लेग के विशिष्ट औषध के रूप मे किया है।

(४) रक्तार्श, प्रदर, जीर्ण प्रवाहिका, विवन्ध इत्यादि

(१) ईसवगोल की भूसी (सत ईसवगोल) तथा मिसरी समभाग ले, हो सके उतना सूक्ष्म चूर्ण बना ले। 'हो सके' इसलिए कि ईसवगोल की भूसी का वस्त्रपूत चूर्ण दुष्कर, अशक्यवत् होता है। वयानुसार रसेद वल्ल या अशक्यवत् होता है। वयानुसार २ से ६ वल्ल या प्रयोजनानुसार अधिक भी दिन मे ३-४ वार उपयोग करे। केवल इस चूर्ण का भी उपयोग किया जा सकता है। दही मे देने से प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्शादि रोगो मे अच्छा लाभ होता है। रक्तार्श मे जङ्गली सूरण का वस्त्रपूत चूर्ण और उपर्युक्त चूर्ण दही के साथ देने से अर्श मे स्राव तथा अर्श की वेदना शान्त होती है। श्वेत एव रक्त प्रदर मे उपर्युक्त चूर्ण और गोदन्ती भस्म अथवा और अमृता सत्त्व दूध के साथ सेवन कराने से अवश्य लाभ होता है। विवन्ध मे केवल इस चूर्ण को दूध या पानी के साथ सेवन कराना चाहिए। उष्णवात (मूत्र प्रवृत्ति के समय दाह) मे केवल यह चूर्ण अथवा इसके साथ सर्जरस चूर्ण या उपर्युक्त चूर्ण, सर्जरस चूर्ण और अमृता सत्त्व तीनो को मिला कर, दूध पानी समभाग मिला कर, इसके साथ सेवन कराना चाहिए। इससे अच्छा लाभ होता देखा गया है। गुद भ्रंश मे भी ईसवगोल तथा सितोपलादि चूर्ण अतिहितावह है।

(२) 'खपरिया की खाप' (प्रचलित खर्पर, हमारी ओर पनसारियो के यहाँ इसी नाम से मिलती है। यह रक्तवर्ण तथा बन्द मुट्ठी के आकार की खपरैल जैसी एक विशिष्ट प्रकार की मिट्टी होती है) १ सेर ला कर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना, लोहे की कढाई में ले उसमे निम्बू का १ सेर रस डाल, मन्दाग्नि पर पकाएँ। रस सूख जाने पर, नीचे उतार, उसमे हरडेवल १ सेर तथा सूक्ष्म एला छिलके सहित १।२ सेर डाल सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बना ले। इस चूर्ण के साथ सर्जरस चूर्ण और गोदन्ती भस्म प्रत्येक समभाग मिला दूध या तण्डुलोदक के साथ देने से श्वेत प्रदर में अच्छा लाभ होता है। यही मिश्रण दही के साथ देने से अतिसार ठीक होता है। उपर्युक्त चूर्ण गोदन्ती भस्म के साथ दूध या मधु के साथ देने से सूतिका ज्वर शान्त होता है और शरीर पुष्ट होता है। केवल यह चूर्ण अथवा इसके साथ गोदन्ती भस्म और अमृता सत्त्व दूध या मधु से देने से वालको को होनेवाला वालशोष (जो रिकेट्स नाम से प्रख्यात है) का रामवाण उपाय है। वालक का शरीर कृश रहता हो तो उपर्युक्त चूर्ण १ तोला, अमृता सत्त्व १ तोला, वादाम १ तोला और अच्छा घृत १ तोला ले कर प्रथम वादाम को सूक्ष्म पीस, उसमे घृत मिला, थोडा मर्दन कर पश्चात् दोनों

(शेषांश ७९३ पृष्ठ पर)

सेव

वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा

N O pomeae (सेवादि वर्ग)।

नाम—हिं०—सेव, सेब। स०—मुष्टि प्रमाण, वदर सेव, सिचितिकाफल। गु०—सफरजन। म०—मोठे वोर, सफरचद। का०—सूत। सि०—सुफ। शि०—पालो। सर०, अफ०—शेव। ओ०—सेव। क०—सेवु। अ०—तुफ्फाह। फा०—सेव, कतल। क०—सेवु (वु)। व०—सेव। अ०—एपल (Apple), ले०—Malus sylvestris Mill syn—Pyrus malus linn,

उत्पत्तिस्थान—मूल यूरोप और एशियाके शीतल पहाडी प्रदेश। जैसे—काश्मीर और कावुल। हाल मे पृथ्वी के अनेक शीतल पहाडो पर वोया जाता है। भारतवर्ष मे विशेषत काश्मीर, कुमाऊँ, गढवाल, महावलेश्वर, कॉगडा, पञ्जाव, नीलगिरी आदि स्थानो के पहाडो मे इसके वृक्ष लगाये जाते है। अव यह सिंध, मध्यभारत और दक्षिण तक फैल गया है। काश्मीर और उत्तर पश्चिम–हिमालय मे यह कही-कही ९००० फीट की ऊँचाई पर जगली भी देखा जाता है। काश्मीर का सेव वहुत मधुर होता है और कावुल का खट्टा होता है।

वानस्पतिक वर्णन—यह एक प्रसिद्ध, सुगधित और स्वादिष्ट फल है, जिसकी वहुत-सी किस्मे है। इसका पतनशील पातयुक्त छोटा वृक्ष ३० फीट तक ऊँचा होता है। सव नूतन अङ्ग सफेद-पतले रेशम जैसे होते है। पात अण्डाकार, ऊपर नोकदार, २-३ इन्च लम्वे, दॉतेदार तथा पात के अन्त का हिस्सा सफेद और रोएँदार होता है। वृन्त सामान्य पात से आधा लम्वा। पुष्प-लाल छीटेसहित सफेद या गुलावी, १-२ इच चोडे, प्राय गुच्छ मे। पुष्प-वृन्त १ से १॥ इच लम्वा, रोएँदार। पुष्प वाह्यकोप नलिका घण्टाकार। पखडियाँ नखयुक्त।

फल—चिकना, गोलाकार, दोनो सिरे पुष्पवाह्यकोप नलिका के खण्ड से दृढ लगा हुआ, २-३ इच व्यास का, छोटे वृन्त सह। फल–कच्चा होने पर हरा, पकने पर हल्का पीला और कुछ भाग लाल। कच्चा फल तुरस याने खट्टापन युक्त फीका होता है। पकने पर इसका स्वाद मीठा और विशेष स्वादिष्ट हो जाता है।

नैसर्गिक उत्पन्न फल—वहुत खट्टे, कपैले और छोटे होते है, वे कच्चे नही खाये जाते, उनका उपयोग मुरव्वे मे अच्छा होता है। जो अभी खाया जाता है, उसकी उत्पत्ति अति परिश्रम से हुई है। जगल की अनेक अच्छी-अच्छी जातियो को एक दूसरे के साथ कलम कर अनेक वर्षो तक—वोने पर सेव फल स्वादु वनता है। पाइनी ने लिखा है कि जगल की २२ जातियो का शोध किया है, उनमें से इस समय मिश्र हुई उप जातियाँ लगभग २००० ससार में वोयी जाती है।

रासायनिक सगठन—इसमे अत्यधिक जल (८०%) अल्व्युमेन, शर्करा, निर्यास, हरित रजन द्रव्य, सेवाम्ल, सुधा, विपुल प्रमाण मे फॉस्फेट्स प्रभृति उपादान होते है।

उपयुक्त अङ्ग—फूल, फल और मूलत्वक्।

औषधि-सग्रह काल—देहरादून मे फूल मार्च से मई तक और पञ्जाव मे अप्रैल से जून तक आते है। फल—दिसम्वर-जनवरी मे पक जाते है। यही समय इनके सग्रह का है।

प्रकृति—मीठा पहले दर्जे मे गरम और तर। खट्टा—पहले दर्जे मे सर्द और खुश्क है।

गुण-कर्म—भारत मे उत्पन्न होनेवाले वढिया फलो मे सेव का स्थान वहुत ऊँचा है। वास्तव मे सेव अमृत के समान हितकारी है। भारत के वाजारो मे सेव कई तरह के दिखाई देते है। जैसे—काश्मीरी, पेशावरी, पहाडी, देशी आदि। इनमे काश्मीरी का मीठा सेव सवसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

सेव का रस और विपाक मधुर, शीतवीर्य, रुचिकर-कामोत्तेजक, वृहण, गुरु, शुक्र-वर्धक, कफ-कारक और वात-पित्तहर है। चरक-सुश्रुत मे सेव को कपाय, मधुर और ग्राही कहा है।

सेव का फल—ठण्डा, सुपाच्य, तृप्तिकारक, हृदय को अत्यन्त प्रिय, मस्तिप्क शक्ति की वृद्धि करनेवाला, शरीर मे नवीन रुधिर का सचार करनेवाला तथा रक्त-पित्त, क्षत

सेव का वृक्ष-पुष्प-फल युक्त

क्षय, क्षय, शोप, दुर्वलता आदि रोगो को दूर करता है। शरीर मे विशेष रूप से प्राणवायु का सचय करता है। इसके सिवाय सेव खाने से उदर-सम्वन्धी रोगो मे वहुत लाभ पहुँचता हे, विशेपकर वच्चो की उदर-सम्वन्धी शिकायतो के लिए यह वहुत ही उपयोगी वस्तु हे। राजयक्ष्मा रोग मे सेव का सेवन चमत्कारिक प्रभाव दिखलाता है। सेव खाने से राजयक्ष्मा रोगी का ज्वर कम हो जाता है, वल और क्षुधा की वृद्धि होती हे। राजयक्ष्मा रोगी को विशेपकर वच्चो के क्षय रोग मे यदि नित्य सेव का सेवन कराया जाय, तो विशेष उपकार होता है।

करता है। छर्दि एव तृष्णा को शमन करता है, पित्त प्रकृति के लोगो के लिए सात्म्य है। यह पित्तज अतिसार मे खिलाया जाता है।

जीर्ण रोग जव दीर्घकाल से त्रास देता रहता है,पाचन-क्रिया विगड जाती हे, वार-वार थोडा २ दस्त रहता है तथा अधिक से अधिक निर्वलता आती जाती हे और आलस्य वना रहता है, तव अनाज वन्द करा'सेव कल्प' कराया जाय, तो थोडे ही दिनो मे सव विकार दूर हो जाते है, पचन-क्रिया सवल वन जाती हे, स्फूर्ति आती है और मुख मडल तेजस्वी वन जाता हे। थोड़े-थोडे दिनो मे बुखार उलट कर आता

सेव में प्रथिन आदि का प्रति औंस में परिमाण

सेव प्रकार	प्रथिन ग्राम	कर्वोदक ग्राम	खट मि० ग्रा०	लोह मि० ग्रा०	नमक	उष्मैकं
वृक्षपक्व	० १	३ ०	१	० १	×	१२
सूखाकच्चा	० ६	१२·५	८	० ६	१०	५२
पकाया हुआ	० १	२ ५	१	० १	×	१०

सेव में नवीन सत्व का प्रति औंस में परिमाण।

प्रकार	अ० यूनिट	व १ यूनिट	व २ यूनिट	निको० मि० ग्रा०	क० मि० ग्रा०
वृक्षपक्व	११ (c)	४	×	० १	१
कच्चासूखा	२८ (c)	×	(० ०१)	(० ४)	×
पकाया हुआ	११ (c)	३	×	० १	×
उवाले हुए	९ (c)	३	×	० १	×

सेव के भीतर मौलिक और टार्टरिक अम्ल अवस्थित है। अत यह आमाशय मे १।। घण्टे मे पच जाता है और दूसरे खाये हुए अन्न को भी पचा देता है। सेव के भीतर नासपाती की अपेक्षा स्फुर (फॉस्फरस) की मात्रा दूनी और लोह का परिमाण डेढ गुना होने से रक्त और मस्तिष्क की निर्वलता वालो के लिए यह अधिक हितावह है। निद्रा-नाश से पीडितो को रात्रि मे खिलाने पर शान्त निद्रा आ जाती है।

उपयोग—मीठा सेव पथ्य रूप से अतिसार, अर्श, प्रवाहिका, मलावरोध, मोतीझरा, पित्तज्वर, जीर्ण ज्वर, प्लीहा वृद्धि, अरुचि, अजीर्ण, शारीरिक निर्वलता, उन्माद, शिर दर्द, स्मरण-शक्ति का ह्रास, घवराहट, यकृत्-वृद्धि, हृदय विकार, अश्मरी, मेद-वृद्धि, रक्त विकार, शुष्क कास और वात विकारो मे हितकारी है। खट्टा सेव भी मन प्रसादकर, हृद्य तथा यक्रदामाशय वलवर्धक है, कब्ज़ पैदा

रहता हो, पथ्य का पालन होते हुए थोडी वायु, ठण्डी या गर्मी लग जाने या थोडा परिश्रम होने पर बुखार आ जाता हो, तो रक्तादि धातुओ के भीतर रहे लीन विप को जलाने के लिए अनाज वन्द करा सेव-कल्प कराया जाय, तो थोडे ही समय मे ज्वर-रूपी रोग से सदा के वास्ते छुटकारा मिल जाता है और फिर शरीर धीरे-धीरे वलवान वन जाता है।

जिन रोगियो की अग्नि अतिमन्द हो, पतले दस्त होते हो, दस्त मे कुछ कच्चा आहार भी जाता हो, उदर मे भारीपन वना रहता हो, उदर पर दवाने से पीडा होती हो, उन रोगियो के लिए तक्र-कल्प नही करा सकते। ऐसी अवस्था मे केवल सेव पर रख दिया जाय, तो रोग का शनै -शनै दमन हो जाता हे, ज्वर दूर होता हे। फिर और सव का सेवन हो सकता हे।

रक्त-विकार होने से वार-वार फोडे निकलते रहते हो, या त्वचा रोग जीर्ण हो जाने से त्वचा शुष्क हो गई हो, कण्डू

रात्रि को अधिक सताती हो, पामा के पीले-पीले फोडे अगुलियो पर और नितम्व पर त्रास देते हो, शान्त निद्रा न मिलती हो, तो अन्न वन्द करा सेव-कल्प का सेवन कराना चाहिए।

जिन रोगियो के पेशाव मे यूरिक एसिड (मूत्राम्ल) अधिक मात्रा मे जाता हो और सधियो मे दर्द होता हो, पचन-क्रिया दूषित रहती हो, उनको सेव-कल्प पर रखने से थोडे ही दिनो मे यकृद क्रिया सुधरती है। फिर मूत्राम्ल का परिमाण कम हो जाता है।

मेद-वृद्धि होने पर थोडा-सा परिश्रम भी सहन नही होता। क्षुधा-तृषा का वेग भी सहन नही होता। प्यास लगने पर तुरन्त जल पीना ही पडता है। अन्यथा घवराहट उत्पन्न हो जाती है। थोडा-सा चलने पर श्वास भर जाता है। ऐसे रोगियो को अपनी देह सवल बनानी हो, तो अन्न छोडकर सेव का कल्प करना चाहिए।

आमातिसार जीर्ण वनने पर मल में आम वहुत गिरता है। योग्य औषधि से थोडे दिन स्वस्थ होने का भास होता है, पुन आमातिसार का आक्रमण होकर पाँच-सात दस्त हो जाते हैं। प्रारम्भावस्था मे एरण्ड तैल से लाभ हो जाता ह, किन्तु अन्त्र निर्वल वनने पर एरण्ड तैल भी सहन नही होता। ऐसी रुग्णा या रोगियो को सेव-कल्प कराने पर अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

सेव कल्प मे याद रखने योग्य वातें—

(१) सेव कल्प के रोगी को दूध अनुकूल रहता हो, तो सुवह और रात्रि को दूध देवे, एव दोपहर को सेव देते रहे। दूध और सेव के वीच मे तीन घण्टे का अन्तर रहना चाहिए। एव दूध और सेव एक समय में उतना लेना चाहिए कि तीन घण्टे के भीतर-भीतर उस पर आमाशय की पचन-क्रिया पूरी हो जाय।

(२) जिन रोगियो को दूध अनुकूल नही है, उनको गाय के ताजे मधुर दही का मट्ठा दे सकते हैं। यदि दस्त में मल का रङ्ग सफेद हो, तो दही की मलाई निकाल कर मट्ठा बनाना चाहिए। शोथ हो, तो मट्ठे में नमक नही मिलाना चाहिए।

सेव का रोगो पर होने वाला प्रभाव

ज्वर—सेव वृक्ष की छाल ४ माशे और थोडी चाय को २० तोले उबलते जल मे डालकर ढक दें। दस मिनट वाद जल को छान लें। फिर उसमे नीवू का टुकडा निचोड, १-२ तोले शक्कर मिलाकर पिलाने से घवराहट, तृषा, थकावट और दाह दूर होते हैं; ज्वर का ह्रास होता है और मन प्रसन्न हो जाता है।

विषम ज्वर मे सेव मूल सत्व तत्काल लाभ पहुँचाता है।

सेव मूल सत्व या क्षार निर्माण-विधि—ताजे मूल की छाल को जल के साथ दो घण्टे उवाल क्वाथ छानकर अलग रक्खे। फिर उसी छाल को नये जल मे मिला दो घण्टे तक जल मे उवाल कर छान ले। इस दूसरे क्वाथ को शीतल स्थान मे रखने से लगभग २० घण्टे पश्चात् तल में रवेदार सत्व बैठ जाता है। इसे इकट्ठा कर शीतल जल से धोकर सुखा लेने से शुद्ध सत्व वन जाता है। यह सत्व लगभग ३ प्रतिशत होता है।

पहले क्वाथ मे सुरा मिलाकर १२ घण्टे तक रहने देवें। फिर सुरा को छान अर्क को वाष्प यत्र द्वारा सुखा लेने पर ५% सत्व सगृहित होता है। इन दोनो सत्वो को एकत्र कर ले। यह सत्व मैले सफेद रङ्ग का और वहुत कडवा होता है। इसमे रवे या कण सुई की नोक के समान या पतले होते हैं। यह शीतल जल मे मिश्रित नही होता। यह विषम ज्वर पर क्विनाईन के समान गुणदायक है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती। (डॉ० देसाई)

मस्तिष्क के रोग—सेव के फलो का सेवन दिमाग के लिए बलदायक है और उसको फुर्तीला बनाता है। आधुनिक शोध के अनुसार इसमे फासफोरस विशेष मात्रा मे है। इसलिए इसका सेवन करने से मस्तिष्क के मानस केन्द्र को वल और हड्डियो को ताकत मिलती है। यह दिल को प्रफुल्लित करता है।

आँखो के रोग—सेव का पुटपाक बना पीसकर आँखो पर वाँधने से नेत्र के रोगो को मिटाता है। इसका असर तुरन्त होता है।

हृदय के रोग—सेव हृदय को ताकतवर और पुष्ट करता है। यह हृदय, मस्तिष्क और प्राण-शक्ति (रूह हैवानी) को वलवान बनाता है। क्रोध को शान्त कर स्वभाव को सौम्य बनाकर उसमें शक्ति और स्फूर्ति विशेष रूप से पैदा करता है।

आमाशय के रोग—यह मैदे को वलदायक है। मैदे की सूजन को मिटाता है तथा उसकी शिथिलता को दूरकर उसको वलवान बनाता है। सेव का शरवत या मुरव्वा ज्यादा लाभदायक है।

खट्टा सेव पित्त से उत्तेजित आमाशय को बल देता है। वमन को रोकता है। दूषित पित्त और खून के जोश को कम करता है।

यदि सेव को पुटपाक बनाकर सेवन किया जाय, तो क्षुधा की वृद्धि होती है और मैदे को बलवान बनाता है।

आँतो के रोग—भुना हुआ सेव आँतो के कीडे और जलन को दूर करता है। सेव का सत्तु बनाकर खाने से वमन और अतिसार रुक जाते है।

वायु के रोग—इसका अर्क सेवन करने से वायु का असर नही होता।

चर्म रोग—सेव और उसके पत्तो का लेप व्रण-शोथ को मिटाता है। आग से जले हुए स्थान पर इसके पत्तो का लेप मुफीद है।

विष पर—ये विषो का तिर्याक है। बिच्छू दश के विष का नाशक है। अफीम और शराब की आदत छुडाने के लिए—इसका सेवन बहुत ही उम्दा है।

प्रयोग

(१) अर्क-सेव—उम्दा पके हुए मीठे सेव का छिलका और बीज अलग किये हुए ५ सेर लेकर पत्थर के खरल मे कूट ले और २० सेर गुलाब जल के साथ भपके में डाले और जटामासी, गावजवा, बिल्लीलोटन, अगर, स्याहजीरा, सफेद चन्दन, जावित्री प्रत्येक २ तोला को कपडे की थैली मे बाँधकर डेग मे डाल दें। अम्बर ३ माशा के टुकडे कपडे मे बाँध नली के पास नली के यत्र मे रख दे और अर्क निकाल लें। मात्रा—५ तोला।

गुण—दिल, दिमाग को बलकारी और काम शक्ति का वर्धक है।

(२) रुब्ब (रस क्रिया) सेव—१ सेव का रस निचोड कर नरम आँच पर गरम करे जिससे चाशनी के योग्य हो जाय उसे चीनी के बरतन मे सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—८ माशा।

गुण—मीठे सेव का रुब्ब दिल को बलकारी और बेहोशी को मिटाने वाला है।

खट्टे सेव का रुब्ब दूषित पित्त और खून, पित्त के वमन और अतिसार तथा उदासी को मिटाने वाला एव वातोन्माद के लिए लाभकारी है।

मात्रा—८ माशा।

(३) रुब्ब सेव २ मीठे सेव का छिलका और बीज दूर करके पत्थर के खरल मे कूट कर १ सेर स्वरस निकाल कर छान लें फिर आध पाव खाँड मिला कर शरबत तैयार करे, और घन पाक करके रख ले।

मात्रा—१/२ से १ तोला तक दे।

गुण—यह रुब्ब दिल, दिमाग को बल देता है।

रुब्ब-सम्बन्धी जानकारी—यूनानी चिकित्सा मे 'रुब्ब' का अर्थ उस औषधि के घन शरबत से है,जो कि उस औषध का क्वाथ तथा शीत कषाय मे खाण्ड डालकर बनाया जाता है। उसका लाभ यह है कि हर ऋतु मे प्रत्येक औषधि का मिलना कठिन होता है, इस तरह से बनाकर रख लिया जाता है, शरबत तो शीघ्र ही दूषित हो जाते है, परन्तु रुब्ब अधिक समय तक रह सकता है।

(४) सिकजबीन सेव—मीठे सेव का रस १ सेर एनामल की डेगची मे आग पर रक्खे, जब चार उबाल आ जावे तब इस पर से झाग उतार ले और नीचे उतारकर रख दे और ढक दे, ठण्ढा होने पर ऊपर से निथरा हुआ जल उतार ले और इसम १ सेर मिश्री सफेद और ३ तोला गुलाब जल मिलाकर जोश दे। झाग उतारते रहे जबतक कि झाग का आना बन्द हो जावे फिर चूल्हे से उतार कर इसमे सिरका अगूरी खालिस एक पाव मिला दे और नरम आँच पर पकावे जब चाशनी बन जावे तो सिरका ३ तोला और डालकर दो-तीन उबाल लेकर आग से उतार ले। ठण्डा होने पर बोतलो मे डालकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—३ तोला।

अनुपान—कुलफा के बीजो के चूर्ण ८ माशे के साथ।

गुण—हृद्द्रव, हृत्स्पन्दन (दिल की धडकन) के वास्ते बहुत लाभकारी है।

(५) शरबत-सेव-१—मीठे सेव का छिलका और बीज दूर करके जरा कूट ले और दश गुने पानी के साथ जोश दे। जब चतुर्थाश शेष रहे, साफ करे और षष्ठमाश नीबू का रस मिला कर के मिश्री के साथ चाशनी बना ले।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल, दिमाग, प्राणशक्ति (ओज) को बल देता है और चित भ्रम को दूर करता है। दिल की घबराहट और भय, वमन एव जहर का नाशक है।

(६) शरबत सेव मधुर-२—मधुर सेव के स्वरस मे त्रिगुण खण्ड मिलाकर पाक करे।

(७) शरबत सेव-३—मधुर सेव का रस आधा सेर, इसमें ६ सेर जल डालकर उबाले, चौथाई भाग शेष रहने

पर जल को अग्नि पर से उतार कर छान लें, छठा भाग नारंगी स्वरस वा नीबू स्वरस डाले और हर आधा सेर स्वरस के पीछे अनीसून १ तोला ५।। माशा, मस्तगीरूमी १४ माशा, छोटी एला के बीज जावित्री, लौंग प्रत्येक ७ माशा का बारीक चूर्ण पोटली मे बाँधकर जल मे डाल दे, और पाक होते समय पोटली को कुरछी से मलते रहे, ताकि इन औषधियो का गुण भी आ जावे, पाक हो जाने पर पोटली को फेंक दे।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—हृदय को बल देता है।

(८) शरबत सेब-४ उत्तम सेब छिलके और बीज रहित का स्वरस २।। सेर, गुलाब के फूल १ सेर, अगर, दालचीनी, लौंग प्रत्येक २ तोला, केसर १ तोला। सेब के सिवाय सब दवाइयो को यवकूट कर ५ सेर गुलाब जल में भिगो देवे। १६ घण्टे बाद नरम अग्नि पर अर्क खीच ले। इस अर्क और रस से दूनी मिश्री मिलाकर शरबत की चाशनी ले ले।

मात्रा—२ तोला। प्रात, साय।

गुण—हृद्द्रव, हृत्स्पन्दन को मिटाता है, स्मरण-शक्ति की वृद्धि करता है। दमा, सूजन, मन्दाग्नि, प्लीहा-वृद्धि पीलिया और विषैले प्रभाव को भी नष्ट करता है तथा मूत्राशय को बलवान बनाता है। स्त्रियो के रुके हुए मासिक धर्म को जारी करता है एव स्तनो में दूध की वृद्धि करता है।

(९) शरबत सेब सादा–न० ५ उम्दा मीठे पके हुए सेब के छिलके और बीज दूर किये हुए लेकर पत्थर के खरल मे कूट रस निकाल ले और इस रस को थोडा उबाल ले और झाग को उतारते जावे। झाग आना बन्द होने पर अग्नि से नीचे उतार ले जिससे ठण्डा हो जावे। ऊपर से निथरा हुआ जल अलग कर ले और इससे दूनी मिश्री मिला—शरबत की चाशनी ले ले।

मात्रा—२ तोला से ४ तोला तक।

गुण—दिल और मैदे के रोगो के लिए लाभकारी है, भूख बढाता है, पित्तोत्पन्न वमनातिसार को रोकता है, उत्क्लेश (मितली) और उबकाइयो का नाशक है।

(१०) मुरब्बा सेब न० १–मीठे सेब को छिलके तथा बीजरहित कर गोल काशें (फाँके) काट ले और एक एनामल के देग में आधा भाग तक जलभर कर देग के मुख पर साफ कपडा बाँधे, और उस कपडे पर काशे रखकर किसी ढक्कन से बन्द करके नीचे आग जलावे, ताकि जलीय वाष्प से काशे नरम हो जायें, इन काशो को खाण्ड के पाक मे डाल दे, यदि दूसरे दिन पाक पतला हो, तो काशो को पृथक करके फिर पाक कर लें, और काशे डाल दे।

मात्रा—२ तोला।

गुण—दिल, दिमाग को विशेषकर बल देता है।

(११) सेब का मुरब्बा न २ आवश्यकतानुसार सेब मगवा ले। उनको छील ले और बीच का बीजवाला भाग निकाल दे। छीले हुए सेबो को नमकीन पानी में डालते जाएँ, जो पानी में जरा-सा नमक घोलकर तैयार किया हो वरना सब भरे हो जाएँगे और मुरब्बे का रग बिगड जायगा। अब प्रति सेर सेब के टुकडो के लिए डेढ सेर के हिसाब से खाण्ड तोल ले और चाशनी बना ले और उसमें सेबके टुकडे डाल दें। जब टुकडे नरम हो जाएँ तो उतार लें और अण्डा होने पर कीटाणु से साफ किये हुए अमृतबान या काँच की बरनी मे डाल दें।

मात्रा—२ से ४ तोला।

गुण—हृद्य है।

(१२) मुरब्बा सेब न ३ सेब उम्दा अधपके लेकर इनका छिलका लकडी की छूरी से दूर करे और बाँस की नोकदार सलाई से उनका बीज निकाल डालें फिर इनको गुलाब जल मे जोश देकर नरम होने पर निकाल ले और साफ कपडे से पोछकर सुखा लें। बाद मे उस पानी को जिसमे सेब को जोश दिया गया है मिश्री डालकर चाशनी बना ले और सेब उसमे डालकर एक और जोश देकर उतार लें। ठण्डा करके काँच की बरनी में रख दे। दो तीन दिन के बाद देखे, अगर चाशनी पतली हो गई हो तो उसमें से सेब को निकाल करके चाशनी को गाढी कर ले और सेब डाल कर रख दे। साथ ही मिश्री से आधा शहद भी मिलाकर अन्त मे कुछ कस्तूरी, गुलाब जल मे घोटकर मिला दे।

मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—दिल को शक्ति देता है, मुँह की बदबू को मिटाता है। यह मुरब्बा चाँदी के वरको मे लपेट कर सेवन करे।

(१३) गुलकन्द सेब—सेब के फूलो की पत्तियाँ एक सेर, मिश्री दो सेर। मिश्री को दरदरा बनाकर फिर पत्तियाँ और मिश्री को हाथो से अच्छी तरह मलकर काँच या चीनी बरनी मे डालकर ४० दिन धूप मे रख दे और प्रतिदिन हिला दिया करें।

मात्रा—१ तोला।

गुण—दिल, दिमाग को स्फूर्ति देता है और वाजि-करण है।

(१४) हलवा सेब—उम्दा सेब लेकर उनका छिलका और बीज अलग करे और पानी में उबाले। उबालते वक्त गुलाब जल भी उसमे डाल दे। जब नरम हो जावे तो मिश्री या मधु मिलाकर पकावे, जब करीब बननेके हो उसमे पिश्ते छिले व कतरे हुए जरूरत के अनुसार मिला ले और चीनी के थाल मे फैला दे।

मात्रा—बलानुसार।

गुण—दिल, दिमाग और मैदे को बलदायक है।

मूत्राशयाश्मरी

(STONE IN THE BLADDER)

डॉ० अनन्तराम शर्मा

अश्मरी शब्द "अश्म" शब्द से बना है। जिसका अर्थ है पत्थर (अश्मनो सघट्टन कर्णमूले–च० शा० ८-४७)। इस नामकरण का हेतु अश्मरी का प्राय पाषाण की तरह कठोर होना है।

अश्मरी की रचना—यदि अश्मरी को मध्य से दो भागो मे विभक्त किया जाय तो निम्नलिखित तीन भाग दिखाई देते है—

(१) **केन्द्र**—अश्मरी निर्माण किसी पदार्थ को केन्द्र बना कर होता है। ये पदार्थ कई प्रकार के होते है। आयुर्वेद के अनुसार केन्द्रीभूत पदार्थो मे श्लेष्मा का स्थान प्रमुख है (प्राय श्लेष्माश्रया सर्वा'–माधव , 'श्लेष्म समवायिकारणा'–श्री विजय रक्षित) इसके अतिरिक्त स्कन्दित रुधिर का कोई भाग, पूय, गवीनियो द्वारा मूत्राशय मे आनेवाली वृक्काश्मरी (Renal calculus) और मूत्रनाडी (Catheter) के टुकडे आदि विजातीय पदार्थ भी केन्द्र बन जाते हैं।

(२) **गात्र**—अश्मरी मुख्य रूप से जिस पदार्थ की बनी होती है उसका गात्र भी उसी पदार्थ से निर्मित हुआ होता है, जैसे—यूरिक अम्ल (पैत्तिक), लाइम के आक्जालेट (वातिक) आदि।

(३) **आवेष्टन**—इसमे विभिन्न मात्रा मे मृदु और भगुर फ़ास्फेटिक पदार्थ होता है। इस पदार्थ की मात्रा अश्मरी द्वारा उत्पन्न जीर्ण-उष्णवात (Chronic cystitis) की मात्रा की सूचक होती है, अर्थात् यदि वह पदार्थ अल्प है तो जीर्ण उष्ण वात भी अल्प होता है।

आयुर्वेद मे मुख्य रूप से मूत्राशयाश्मरी का ही उल्लेख मिलता है, किन्तु "तूनी" आदि वृक्कशूल सदृश लक्षणोवाले विकारो का वर्णन भी यत्र-तत्र उपलब्ध होता है।

अश्मरी निर्माण-प्रक्रिया

वस्तिगत वायु जब सशुक्र या सपित्त मूत्र को अथवा कफ को सुखा देता है तो पित्ताशय मे गोरोचन की क्रमश उत्पत्ति की तरह अश्मरी की भी उत्पत्ति होती है—**चरक**। इस उत्पत्तिक्रम को और अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से सुश्रुत ने स्वच्छ जल का उदाहरण दिया है। स्वच्छ जल भी जिस प्रकार कालान्तर से सूख जाने मे उसमे उपस्थित पदार्थो के कारण वह पक रूप हो जाता है उसी प्रकार अश्मरी का निर्माण भी होता है (अप्सु स्वच्छास्वपि *यथा* निषिक्तासु नवे घटे। कालान्तरेण पक स्यादश्मरी सभवस्तथा–सुश्रुत) स्वच्छ से स्वच्छ जल मे भी लवण आदि पदार्थ घुले रहते है। जब वाष्प द्वारा जल का तरलाश समाप्त हो जाता है तो उसमे उपस्थित पदार्थ तलछट के रूप मे नीचे बैठ जाते हैं। इसी प्रकार जब मूत्र में यूरिक अम्ल, यूरेट्स, आक्जालेट्स, फास्फेट्स आदि पदार्थ निश्चित परिमाण से अधिक होते हैं तो वृक्क, गवीनी या मूत्राशय मे कण के रूप मे बैठ जाते है। ये कण ही परस्पर मिल कर बडा आकार बना लेते हैं (शर्करा स्युर्विवृद्धा स्ता अश्मर्यं सभवन्त्यथ–काश्यप सहिता-मूत्रकृच्छ्र) और अश्मरी कहलाते हैं। कभी-कभी ये कण शुष्क श्लेष्मा, स्कदित रुधिर आदि को केन्द्र बना कर भी एकत्रित होते है।

मूत्र मे उपस्थित उपर्युक्त लवणो की अवक्षेपण क्रिया मे मूत्र की प्रतिक्रिया भी सहायक सिद्ध होती है। यदि यह प्रतिक्रिया विशेष रूप से अम्ल हो तो यूरिक अम्ल तथा उसके लवण अवक्षित होते है और ऐसी अवस्था मे पैत्तिक अश्मरी का निर्माण होता है और क्षारीय प्रतिक्रिया अधिक होने पर फास्फोट्स अवक्षिप्त होते है तथा श्लैष्मिक अश्मरी निर्मित होती है।

अश्मरी सख्या—एक समय मे प्राय एक ही अश्मरी पायी जाती है। कभी-कभी एक साथ अनेको अश्मरियाँ भी पायी जाती है। छोटी-छोटी अश्मरियाँ सैकडो की सख्या मे भी देखी गयी हैं। ऐसी अवस्था मे उनके पार्श्व परस्पर टकराने से श्लक्ष्ण हुए होते है।

जब कभी अश्मरी मूत्र की दीवार से सटी रहती है तो कई बार वह श्लैष्मिक कला से आच्छादित हो जाती है

और रोगी की शारीरिक स्थिति के अनुसार गति नही कर पाती। यह "आवेष्टित (Encysted) अश्मरी" कहलाती है।

अश्मरी के भेद—आयुर्वेद मतानुसार अश्मरियाँ चार प्रकार की होती है (चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति–सुश्रुत) जो इस प्रकार है —

(१) वातिक-अश्मरी (Oxalate of lime calculus)

(२) पैत्तिक-अश्मरी (Uric acid calculus)

(३) श्लैष्मिक-अश्मरी (Phosphatic calculus)

(४) शुक्राश्मरी (Spermolith—calculus in the spermatic duct)

इसके अतिरिक्त यूरेट आव अमोनियम, सिस्टीन, जेन्थीन आदि पदार्थो से निर्मित अश्मरियाँ भी पाई जाती है।

कारण—सुश्रुत ने मूत्राशयाश्मरी के सम्पूर्ण कारणो को दो भागो मे विभक्त किया है (असशोधन शीला पथ्य-कारिण –सु० नि० ३-३)—

(१) असशोधनशीलता, अर्थात् –समय-समय (आयुर्वेद निर्देशानुसार) पर पञ्चकर्मो द्वारा शरीर की शुद्धि न करना। इससे अश्मरी-निर्माण के अनुकूल शारीरिक धातुओ मे परिवर्तन आ जाता है और अश्मरी निर्मित नही हो पाती। दूसरा कारण है—

(२) **अपथ्यकारिता**—अर्थात्–इस प्रकार के आहार-व्यवहार का सेवन करना जो अश्मरी-निर्माण का कारण हो। अपर्याप्त खाद्योजयुक्त विशेषकर खाद्योज "ए" रहित, अपूर्ण आहार अश्मरी के प्रति विशेष कारण है। यूरोप आदि सम्पन्न देशो मे यह विकार निरन्तर कम होता जा रहा है, किन्तु, एशिया भूखण्ड मे जहाँ निर्धनता आज भी व्याप्त है, अश्मरी के रोगी अधिक सख्या मे पाए जाते है। जीर्ण उष्णवात अथवा मूत्राशय मे किसी प्रकार का अवरोध हो तो भी अश्मरी के होने की सम्भावना होती है।

कैलशियम, कैलशियम कार्बोनेट आदि चूने के लवणो की अधिकता वाले जल का अधिक सेवन, अधिक गरमी मे काम करना और जल कम पीना, चाय आदि मादक द्रव्यो का अति सेवन, शाक-लवण और क्षारीय पदार्थो का अल्प सेवन अश्मरी की उत्पत्ति मे अपथ्यकारिता के उदाहरण है।

मूत्राशयाश्मरी अधिकतर बालको में पाई जाती है (एता भवन्ति बालानाम्–वाग्भट) ये स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होती है जिसका कारण स्त्रियो के मूत्र प्रसेक का अपेक्षाकृत छोटा और अधिक विस्तृत होना है। शीतल देशो की अपेक्षा उष्ण देशो मे अश्मरी के अधिक पाए जाने का कारण मानव शरीर मे वाष्पीभवन की अधिकता (उष्ण देशो मे) भी है। चरक ने [illegible] स्त्रियो की सन्तान मे भी अश्मरी का होना बताया है (च० शा० ८-२२)

पूर्वरूप—अश्मरी के पूर्वरूप मे वस्ति पीडा, अरोचक, मूत्रकृच्छ्, आदि विकारो के साथ-साथ यह भी वर्णित उपलब्ध होता है कि जिस व्यक्ति के अश्मरी होनेवाली हो उसके मूत्र में मस्त बकरे की-सी गध भी आती है। (मूत्रे वस्त मगधत्वम्–वाग्भट) अश्मरी मे न्यूनाधिक मात्रा म फास्फेटिक स्तर प्राय पाए जाते है और विशुद्ध फास्फेटिक अश्मरी बाहर निकालने पर तीव्र दुर्गन्धयुक्त होती है। सम्भव है कि अश्मरी के होने की सूचना गन्ध द्वारा जानने की कोई प्राचीन विधि रही हो।

लक्षण—मूत्राशयाश्मरी के सामान्य लक्षण भिन्न-भिन्न व्यक्तियो में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते है। ये लक्षण अश्मरी के आकार तथा श्लैष्मिककला की सहिष्णुता के अनुसार भी भिन्न-भिन्न होते है। बालको और वयस्को मे शरीर के अत्यधिक सवेदनशील होने के कारण श्लक्ष्ण अश्मरी भी तीव्र लक्षणो को जन्म देती है, किन्तु वृद्ध व्यक्ति आकार मे बडी अश्मरी को भी बिना किसी विशेष असुविधा के आसानी से सहन कर लेते है। पैत्तिक अश्मरी की अपेक्षा वातिक अश्मरी सर्वदा अधिक कष्टप्रद होती है। अत्यन्त छोटे आकार की अश्मरी मे लक्षण साधारणत अल्प होते है, किन्तु मध्यम आकार की अश्मरी द्वारा लक्षण तीव्र होते है। यदि अश्मरी का आकार बहुत बडा हो तो वह मूत्राशय की दीवारो के कारण स्वतन्त्रतापूर्वक फिर नही सकती अत इससे लक्षण अपेक्षाकृत कम होते है।

अश्मरी के सामान्य लक्षणो का वर्णन इस प्रकार है —

(१) सामान्यलिङ्ग रुड्नाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु[1] वा० ३-६

१–तुलना कीजिए—They consist of pain in the perineum and neck of the bladder (वस्ति-मूर्धसु–सु०), which radiate to back and down the thighs, but is especially noticed at the end of the penis immediately after micturition—R & C.

अर्थात्—अश्मरी का सर्वप्रमुख लक्षण वेदना है जो मलाधार (सेवनी), मूत्राशय ग्रीवा (वस्तिमूर्धसु) और पीछे की ओर होती हुई उरु की ओर जाती है, विशेष रूप से यह मूत्रत्याग के शीघ्र बाद ही शिश्न के अग्रभाग पर प्रतीत होती है।

इस वेदना की एक विशेषता यह है कि दौडने, छलाग लगाने आदि सभी प्रकार के व्यायामो द्वारा यह बढ जाती है क्योकि इनसे अश्मरी मे क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे—"आयासाच्चाति रुग्भवेत्"–वाग्भट ३-९, "लघन प्लवन पृष्ठयानाध्वगमनै श्चास्य वेदना भवन्ति"–सु० नि० ३-६ इसी कारण ये वेदनाएँ रात्रि की अपेक्षा दिन मे अधिक होती है।

(२) तत्सक्षोभात्क्षतेसास्रम्–वाग्भट ३-९।

अर्थात्—आयास आदि के द्वारा अश्मरी के क्षुब्ध होने पर मूत्राशय की श्लैष्मिककला मे व्रण उत्पन्न हो जाते है जिससे "सरुधिरमूत्रता" होती है अर्थात् रुधिरमिश्रित मूत्र आने लगता है। सरुधिरमूत्रता का लक्षण सदा उपस्थित नही होता, अत यह अपेक्षाकृत कम महत्व का है।

(३) मूत्रधारा सग–सु० नि० ३-६।

रोगी इस लक्षण का स्वत. ही उल्लेख करता है कि मूत्र-त्याग के समय मूत्राशय के रिक्त होने से पूर्व ही मूत्र सहसा रुक जाता है और यदि वह अपनी शारीरिक स्थिति बदलता है तो मूत्रप्रवाह पुन. हो जाता है। इस लक्षण का सुश्रुत द्वारा किया गया सुन्दर तथा विस्तृत अर्थ इस प्रकार है—

मूत्रवेग निरस्तासु तासु शाम्यतिवेदना।
यावदन्या पुनर्नैति गुडिका स्रोतसोमुखम्॥
—सु० उ० ५-१२

अर्थात्—यदि अश्मरी मूत्र मार्ग मे से हो कर निकल जाती है तो वेदना शान्त हो जाती है और यदि पुन मार्गावरोध हो जाय तो यथापूर्व लक्षण होने लगते है। वाग्भट ने इस लक्षण का वर्णन "विशीर्ण धार मूत्रम्" से किया है और स्पष्ट लिखा है कि मूत्रमार्ग से अश्मरी के हट जाने से मूत्र सुखपूर्वक आने लगता है—"विशीर्ण धार मूत्र स्यात्तदा मार्गे निरोधिते। तद्व्यवायात्सुख मेहेत्"–वा० ३-९। "विशीर्णं सविच्छेदम्"–अरुणदत्त।

जब अश्मरी द्वारा मूत्रद्वार का अवरोध अपूर्ण होता है तो मूत्रधारा छिन्नभिन्न हो जाती है और मूत्र थोडा-थोडा करके आने लगता (मुहुर्मेहति विन्दुश)–वा० ३-९। "मूत्रविकिरणम्"–सु० नि०, "विकिरण विक्षेप. इतश्चेतश्चगमन्"–डल्लन) **यह अश्मरी का निश्चित लक्षण है किन्तु सदा उपस्थित नही होता।**

(४) ससिकत मूत्र विसृजति–सु० नि० ६।

मूत्र द्वारा अश्मरी के छोटे-छोटे कणो का बाहर आना अश्मरी की उपस्थिति का सूचक होता है। यह अवस्था आयुर्वेद मे "शर्करा" नाम से वर्णित हुई है और इसका कारण वायु द्वारा अश्मरी का छोटे-छोटे कणो मे विभक्त होना बताया है (अश्मर्येव च शर्करा–वाग्भट तथा "अण्डशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननलोमगे। निरेतिसहमूत्रेण–वा० ३-९)

इन लक्षणो के साथ-साथ रोगी मूत्राशय के क्षोभ और निरन्तर आयास के परिणामस्वरूप होनेवाले विकारो से भी पीडित होता है। मलाशय की सहक्षुब्धता (Sympathetic irritability) से कुन्थन विशेषकर बालको मे, और अत्रवृद्धि का होना असाधारण नही है।

बालको मे अश्मरी की उपस्थिति से विशिष्ट लक्षण होते है, जैसे—मलाशय की क्षुब्धता से रात्रि मे शय्या मे मूत्र-त्याग का हो जाना (शय्यामूत्र) और शिश्न की अग्र-त्वचा को खीचना आदि (गृह्णाति मेहन नाभि पीडयत्यनिश क्वणन्–वा०, मेढ्र गृह्णाति–सु०, गृह्णाति मेढ्र सतु-वेदनार्त–च० चि० २६-३८)

वातादि चार प्रकार की अश्मरियो के पृथक्-पृथक् विशिष्ट लक्षण इस प्रकार है—

(१) वातिक अश्मरी की आकृति परुष, खर, विषम और कण्टकाचित होती है (अश्मरी चात्र विषमा खरा . कण्टकाचिता–सु०)। सुश्रुत ने इसकी आकृति को अधिक स्पष्ट करने के लिये जिस प्रकार कदम्ब पुष्प की उपमा का सहारा लिया है (कदम्बपुष्पवत्कण्टकाचिता–सु०) उसी प्रकार पाश्चात्य वैद्यक के शल्यग्रन्थो मे भी आक्जालेट की अश्मरी के स्वरूप वर्णन के लिये भी शहतूत की उपमा का सहारा लिया है और इस अश्मरी का दूसरा नाम "मलबरी कैलक्युलस" रखा है।

कण्टकाचित होने से इस अश्मरी मे रुधिर-स्राव अधिक होता है, अत यह वर्ण मे श्यावारुण होती है (श्यावारुणाऽश्मरीचास्य–वा०) इसकी वृद्धि अत्यन्त धीमी होने से यह आकार मे प्राय बडी नही होती। इस अश्मरी मे

रोगी को अत्यन्त वेदना होती है तथा वह बेचैन हो जाता है (तन्नवाताद् भृश चार्तोदन्तारवादति वेपते—वाग्भट ३-९)

(२) **पैत्तिक-अश्मरी** की आकृति अण्डाकार अथवा भल्लातक की अस्थि के सदृश अल्पविषम और लबाई लिये हुए कुछ गोल होती है (भल्लातकास्थि सस्थाना—वा०) रग में यह मधु वर्ण (मधुवर्णा—सु०) सदृश होती है।

पैत्तिक अश्मरी से पीडित व्यक्ति की वस्ति मे दाह, चोष, पच्यमान आदि पैत्तिक लक्षण भी होते हैं।

(३) **श्लैष्मिक** अश्मरी की आकृति श्लक्ष्ण, बडे आकार की और रग मे श्वेत तथा मुर्गी के अण्डे के सदृश होती है (अश्मरी महती श्लक्ष्णा—वा०, कुक्कुटाण्ड प्रतीकाशा—सु०) विशुद्ध फास्फेटिक अश्मरी बहुत कम पाई जाती है। यह मृदु और भगुर होती है।

(४) **शुक्राश्मरी** केवल वयस्को और प्रौढो मे पाई जाती है (शुक्राश्मरी तु महता जायते शुक्रधारणात्—वा०) जो दबाने पर विलीन हो जाती है (प्रविलयमापद्यते—सु०) इसमें मूत्रकृच्छ्र, वस्तिरुक् और वृषणशोथ हो जाते हैं (वस्तिरुक् मूत्रकृच्छ्रत्व मुष्कश्वयथुकारिणी—वा०)

रोगनिर्णय मूत्राशय की अश्मरी का रोगनिर्णय तीन विधियो द्वारा होता है—

(क) ध्वनि परीक्षण, (ख) क्ष-किरण परीक्षण, और (ग) मूत्राशयान्तर्दर्शन।

(क) **ध्वनि परीक्षण**—एतदर्थ रोगी को शैय्या पर इस प्रकार लिटाया जाता है कि जिससे उसका शिर नीचे की ओर और नितम्ब भाग तकिये पर ऊँचा उठा हो। मूत्राशय मे कुछ औंस तरल होना चाहिये जिससे उसकी शिथिल श्लैष्मिककला की पर्तें खुली रहे और इससे यत्र प्रयोग में सुविधा भी होती है। तदनन्तर उपयुक्त आकार की विसक्रमित ध्वनि शलाका को किसी उष्ण कृमिघ्नयोग से स्निग्ध कर मूत्र प्रसेक मे मर्दन के साथ प्रविष्ट किया जाता है। इसके वृत्त को दोनो टागो के मध्य ला कर इस प्रकार दबाते हैं कि जिससे यत्र का अग्र भाग मूत्राशय मे प्रविष्ट हो जाता है। शलाका का वृत्त वर्तुलाकार होना चाहिये तथा उस पर कोई चिह्न और नम्बर भी हो जिससे यह पता चल सके कि शलाका के अग्र भाग का रुख किस ओर को है। वृत्त को तर्जनी और अगुष्ठ के मध्य पकड कर शलाका को एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर को घुमाते हैं और साथ ही उसे सामने और पीछे की ओर भी करते रहते हैं। इस प्रकार मूत्राशय के प्रत्येक भाग की जाँच कर ली जाती है। तदनन्तर शलाका के चचु भाग को नीचे की ओर को करते हैं, जिससे सावकाश भाग की देखभाल भी की जा सके। यह सावकाश भाग अधिकतर बढी हुई पौरुष ग्रथि के पीछे निर्मित हुआ होता है। यदि मूत्राशय में अश्मरी उपस्थित हो तो शलाका के उससे टकराने से धातविक ध्वनि उत्पन्न होती है, जो अनुभव की जा सकती है तथा कभी-कभी सुनाई भी देती है। कभी-कभी इस ध्वनि से अश्मरी के आकार तथा घनता का ज्ञान भी हो जाता है। मध्य रेखा के दोनो ओर बारी-बारी से शलाका के टकराने से अथवा अश्मरी भञ्जक से एक अश्मरी को पकड कर उसको दूसरी अश्मरी से टकराने से दो अश्मरियो की उपस्थिति का ज्ञान होना है। शल्य चिकित्सक को यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि परिवृद्ध मूत्राशय के उभरे हुए पेशी तन्तुओ से, विशेप कर जब वे फास्फेटिक पदार्थ के स्तर से युक्त हो, शलाका के टकराने से भी अश्मरी की उपस्थिति का भान हो सकता है। ऐसा बहुत कम होता है कि अश्मरी किसी एक अल्पकोप मे छिपी रह जाय और उपरोक्त विधि से जानी न जा सके। आवेष्टित अश्मरी एक ही स्थान पर पाई जाती है। सदिग्धावस्था मे ध्वनिशलाका के प्रयोग से भी अधिक उपयोगी विगेलो का आचूपक है। इसके मध्यम आकार के ट्यूब को मूत्राशय मे प्रविष्ट कर उसका प्रक्षालन करते हैं। इससे अल्प कोपो मे फँसी हुई अश्मरी भी निकल आती है अथवा वह ट्यूब के अग्रभाग से टकराती है।

(ख) **क्ष-किरण परीक्षण**—यह भी साधारणत किया जाता है। इसमे इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि मलाशय रिक्त हो। ट्यूब को रोगी के उदर पर रखते हैं और किरण नीचे तथा पीछे की ओर को निक्षिप्त की जाती है, प्लेट पीछे होती है। अश्मरी छाया के रूप मे भगास्थि के ठीक ऊपर दिखाई देती है।

(ग) **मूत्राशयान्तर्दर्शन**—मूत्राशय की परीक्षा इसके द्वारा अनिवार्यत की जाती है। इससे अश्मरी के आकार-प्रकार के अतिरिक्त मूत्राशय के अल्पकोष आदि परिवर्तनो का ज्ञान भी हो जाता है।

रोग की अवधि—मूत्राशय की अश्मरी से पीडित व्यक्ति मे शीघ्र वा विलम्ब से जीर्ण उष्ण वात के लक्षणो का होना निश्चित होता है जिसमे वेदना का दिन-रात तीव्र होना,

और मूत्र में पूय तथा जीवाणु उपस्थित होते हैं। मूत्राशय परिवृद्ध होता है और यदि अश्मरी को न निकाला जाय तो श्लैष्मिककला व्रणयुक्त हो जाती है तथा शोथ वृक्कों तक फैल जाता है। इस प्रकार वृक्क-सक्रमण से रोगी का जीवन सकटग्रस्त हो जाता है।

सुश्रुत ने अश्मरी से होनेवाले उपद्रवों का वर्णन निम्न-लिखित प्रकार से किया है —

दौर्वल्य सदन कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम्।
पाण्डुत्वमुष्णवात च तृष्णा हृत्पीडन वमिम्॥
—सु० नि० ३॥

अर्थात्—यदि अश्मरी न निकाली जाय तो दौर्वल्य, पीडा (निरन्तर) कृशता, कुक्षिशूल (वृक्क सक्रमण से) अरुचि, रक्तन्यूनता, उष्णवात, तृष्णा, हृत्पीडन (विष-सचार से) और वमन (वृक्कशूल से)—ये लक्षण होते हैं।

यदि मूत्राशय से सक्रमण शुक्रवाहिनी और मुष्कवह स्रोतो द्वारा वृषणो मे पहुँच जाय तो वहाँ शोथ हो जाता है और यदि मूत्र अवरूद्ध हो जाय तो रोगी की मृत्यु हो जाती है (वा० शा० ५-८५)।

चिकित्सा—अश्मरी की चिकित्सा दो प्रकार की होती है—(१) औषध चिकित्सा और (२) अनौषध चिकित्सा।

(१) **औषध चिकित्सा**—यद्यपि सुश्रुत ने औषध चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु उपलब्ध वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे भी आजकल की तरह अश्मरी में औषध-चिकित्सा द्वारा सफलता की तभी आशा की जा सकती थी यदि वह आकार मे अल्प और रोग नवीन हो। अन्यथा वढ जाने पर शस्त्र कर्म ही एकमात्र उपाय था जैसा कि निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट है—

"औषधैस्तरुण साध्य प्रवृद्धच्छेदमर्हति–सु० चि०७-१"

अर्थात्—यदि रोग नवीन हो तो यह औषध चिकित्सा द्वारा साध्य होता है किन्तु, वढ जाने के उपरान्त इसकी शस्त्र-चिकित्सा ही करनी होती है।

अश्मरी की औषध-चिकित्सा के प्रसग मे अनेको अश्मरीहर योगो का उल्लेख करने के वाद, असफलता होने पर, शस्त्र द्वारा छेदन कर अश्मरी-निर्हरण का निर्देश किया है (यदि नोपराम गच्छेच्छेदस्तत्रोत्तरोविधि –सु० चि० ७-२४)

औषध द्वारा अश्मरी की चिकित्सा का उद्देश्य मूत्र मे उपस्थित अश्मरी-निर्माण के अनुकूल अवस्था मे परिवर्तन लाना है। जैसा कि निदान के प्रसग मे उल्लेख किया गया है कि मूत्र की क्षारीय प्रतिक्रिया होने पर श्लैष्मिक अश्मरी और अम्लीय प्रतिक्रिया होने पर पैत्तिक या वातिक अश्मरी आदि के होने की सभावना होती है। इसी हेतु आयुर्वेदीय अश्मरीहर योग वातादि दोषो के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। ये योग मूत्रल होने के साथ-साथ अश्मरी-नाशक भी हैं। पाषाण वज्ररस, वरुणासव, गोक्षुर वीजो को मधु और अवि (भेड) क्षीर से सेवन करना आदि का अधिक प्रयोग किया जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक मे मूत्र की क्षारीयता को (श्लैष्मिक अश्मरी में) दूर करने के लिय अमोनियम क्लोराइड, सोडियम एसिड फास्फट तथा पैत्तिक आदि अश्मरियो मे मूत्र की अम्लता को दूर करने के लिय पोटशियम साइट्रेट, सोडियम एसिटेट और सोडियम वाई कार्वोनेट उत्तम औषध हैं।

अश्मरी के रोगी का आहार भी ऐसा होना चाहिये जिसमे खाद्योज प्रचुर मात्रा मे हो और फल वनस्पति शाक तथा जल की मात्रा भी अधिक हो। चाय, काफी आदि मादक द्रव्य त्याज्य हैं। मास, अण्डे आदि प्रोटीन वहुल पदार्थ भी अहितकर होते हैं।

अश्मरी की ओषध-चिकित्सा मे मास या उससे बने योगो का आयुर्वेद मे उल्लेख नही के बराबर है। यव आदि मूत्रल द्रव्यो, मूत्र की प्रतिक्रिया मे परिवर्तन लाने वाले क्षार, शिलाजतु, औषधसिद्ध घृतो तथा दुग्धो का व्यापक रूप से वर्णन किया गया है, जैसे —

क्षरान्यवागूर्यूषाश्च कपायाणि पयासि च।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् दोपनाशने॥—सुश्रुत

अर्थात्—दशमूलादि वातनाशन, चन्दनादि पित्तनाशन और न्यग्रोधादि श्लेष्मनाशन द्रव्यो से सिद्ध क्षार, यवागू, यूष, कषाय, दुग्ध तथा भोजनो का दोषानुसार अश्मरी की चिकित्सा मे प्रयोग करे।

(२) **अनौषध चिकित्सा**—यन्त्रशस्त्रादि के प्रयोग से की जानेवाली अश्मरी की चिकित्सा अनौषध चिकित्सा कहलाती है। एतदर्थ तीन विधियाँ प्रयुक्त होती हैं —

(क) अश्मरीभजन
(ख) भगसधानोपरि भेदन

(ग) मूलाधार भदन

(क) अश्मरी भजन--

क्षीर वृक्ष कषायतु पुष्पनेत्रेण योजितम् ।
निर्हरेदश्मरी चूर्णं रक्त वस्तिगत च यत् ।।
--सु० चि० ७-३४

अर्थात्--क्षीर वृक्षो के कषाय को उत्तर वस्ति द्वारा मूत्राशय मे प्रविष्ट कर उसके साथ अश्मरी चूर्ण (चूर्णित की हुई अश्मरी) और वस्ति मे सचित रुधिर को वाहर निकाल ले ।

यदि मूत्राशय मे अश्मरी के सूक्ष्म कण उपस्थित हो तो वे इस उपराक्त विधि द्वारा निकल आते है, अन्यथा अश्मरी-भजक द्वारा अश्मरी को सूक्ष्म कणो मे विभक्त कर उन्हे विशेष प्रकार की उत्तर वस्ति द्वारा निकाल लिया जाता हे । इस विधि का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है --

आरम्भ मे यह समझा जाता था कि अश्मरी को अश्मरी भजक द्वारा एक ही समय मे चूर्णित कर निकालने की अपेक्षा कुछ-कुछ समय वाद निकालते रहना अधिक उपयुक्त होता हे । किन्तु, इस प्रकार से अधिक समय लगता हे और रोगी को नितान्त तीव्र वेदना होने के साथ-साथ यह विधि उसके लिये हानिकर भी हो सकती हे । विगेलो के आचूषक का आविष्कार हो जाने पर एक ही समय मे अश्मरी चूर्ण को वाहर निकालने की क्रिया सम्पूर्ण हो जाती हे ।

भजन-पद्धति--रोगी का सज्ञाहरण कर उसका शिर नीचे की ओर और नितम्वो के नीचे तकिया रख कर उसकी श्रोणि को कुछ ऊँचा उठा दिया जाता है । तदनन्तर वोरिकघोल सदृश किसी मृदु कृमिघ्न घोल से मूत्राशय का भली-भाँति प्रक्षालन कर उसमे कुछ औस घोल रहने दिया जाता हे । उससे यह लाभ होता है कि श्लैष्मिककला निर्व्यलीक रहती हे और अश्मरी को पकडने मे सुविधा होती है तथा इस कार्यकाल में मूत्राशय की दीवार को क्षति नही पहुँचती (निर्व्यलीक मनागतमविषम च वस्ति सन्निवेश्य--सु० चि० ७-२६)

तत्पश्चात् अश्मरी-भजक को प्रविष्ट किया जाता हे । इस यत्र के अग्र भाग मे दो व्लेड होते है जिनमे से एक को आसानी से ऊपर-नीचे किया जा सकता हे । इसके वृन्त भाग पर ऐसी व्यवस्था होती हे कि दोनो व्लेडो के मध्य जव अश्मरी आ जाती है तो उसे मूत्राशय के केन्द्र भाग मे ला कर वृन्त मे स्थित पेच घुमाया जाता है । इस प्रकार दोनो व्लेड परस्पर वलपूर्वक निपीडित होते है जिससे अश्मरी खण्ड-खण्ड हो जाती हे । यह नितान्त आवश्यक हे कि यन्त्र उत्तम लोह धातु का वना हो जिससे कार्यकाल में उसके टूटने का भय न हो । अश्मरी की स्थिति का ज्ञान यत्र को चारो ओर घुमा कर किया जाता हे और इससे ध्वनि शलाका की तरह कार्य होता है । अश्मरी को पकडने के लिये यत्र को पूर्णतया ऊर्ध्वाधर रेखा मे मूत्राशय की पश्चिम भित्ति के सामने, व्लेडो को खोल कर पकडा जाता है और इस प्रकार अश्मरी इनके मध्य आ जाती हे । यदि अश्मरी अच्छी तरह पकड मे आ गई हो तो यत्र के वृत्त मे लगे पेच को घुमा कर अश्मरी को अनेको खण्डो में विभक्त कर दिया जाता है । इसी क्रम को अनेक वार दुहराने से अश्मरी का सूक्ष्म चूर्ण वन जाता है । यदि अश्मरी का कोई एक भाग ही पकड मे आया हो तो वह पेच घुमाते ही फिसल सकती है । ऐसी अवस्था मे अश्मरी के पुनर्ग्रहण का प्रयास सावधानीपूर्वक करना चाहिये । जव शल्यक को यह विश्वास हो जाता है कि अश्मरी सूक्ष्म कणो मे विभक्त हो गई हे तो अश्मरी-भजक को निकाल कर सव से वडे आकार के आचूषक टचूव को जो आसानी से प्रविष्ट हो जाय, मूत्राशय मे प्रविष्ट किया जाता हे । ऐसा करने के लिये कभी-कभी मूत्र प्रसेक के वहिर्द्वार का वृद्धि पत्र से भेदन करना आवश्यक होता हे । तदनन्तर आचूषक भाग को टचूव से जोड कर उसके रवर को वारी-वारी से दवा कर तथा ढीला कर मूत्राशय को पूर्णतया प्रक्षालन कर दिया जाता है । इस प्रकार अश्मरी के सूक्ष्म कण यन्त्र के शीशे के वने भाग मे एकत्रित होते जाते है । मूत्राशय का प्रक्षालन तव तक जारी रखा जाता है जव तक कि वह पूर्णतया कणरहित न हो जाय तथा यन्त्र के अग्रभाग द्वारा अश्मरी के किसी खण्ड की मूत्राशय मे रह जाने की अनुभूति न हो । किसी वडे अश्मरी खण्ड की उपस्थिति मे अश्मरी भञ्जक का पुन प्रयोग आवश्यक हो सकता है । इस प्रकार अश्मरी चूर्ण को पूर्णतया वाहर निकाल देने के वाद मूत्राशयान्तर्दर्शक द्वारा मूत्राशय का अन्तर्निरीक्षण कर किसी भी प्रकार के अश्मरी-खण्ड की अनुपस्थिति का निर्णय कर लेना चाहिये । इस प्रकार की हस्तक्रिया मे निश्चित मात्रा मे रुधिर-स्राव होना स्वाभाविक हे, किन्तु अनुभवी हाथो द्वारा इसकी तीव्रता कभी नही होती । यदि रुधिर स्राव हो तो उसके स्कन्दन से मूत्राशय विस्तृत हो जाता है, इसको वाहर निकालने के लिये वडे नेत्रवाली मूत्रनाडी का प्रयोग किया जाता है

(स्त्यानशोणित चोत्तरवस्तिभिरुपाचरेत्–सु० चि० ७)

(ख) भगसधानोपरि भेदन—इस पद्धति को पहिले मृत्यु-सख्या की अधिकता के कारण भयानक समझा जाता था, किन्तु, आजकल यह नितान्त सफल शल्य कर्म है। मूत्राशय का प्रक्षालन कर उसमे ८-१० औस घोल रहने दिया जाता है, कुछ शल्यक रिक्त मूत्राशय के भेदन को महत्व देते हैं। शल्यकर्म के समय रोगी को निम्न शिरोमुद्रा में लिटाया जाता है जिससे गुरुत्वाकर्षण के कारण अन्त्र ऊपर के पश्चिमोर्ध्व भाग मे स्थित होती है। तदनन्तर मध्य रेखा मे भगसधान से ऊपर की ओर को २-३ इच लवा भेदन किया जाता है तथा उदरसीवनी को विभक्त कर भगसधान के पश्चिम भाग मे स्थित (Retropubic) कोपीय ततुओ (Cellular tissue) का भी भेदन किया जाता है। ऐसी अवस्था में सिरायुक्त मूत्राशय के पृष्ठ को आसानी से पहिचाना जा सकता है। इसका नीचे से ऊपर की ओर को मध्यरेखा मे भेदन करते है। भेदन से उत्पन्न मूत्राशय के छिद्र मे तर्जनी को प्रविष्ट कर अश्मरी की खोज की जाती है। तत्पश्चात् उपयुक्त आकार के अश्मरी-सदश (Litho tomy forceps) को प्रविष्ट कर अश्मरी को वाहर निकाल लेते है (अग्रवक्त्रेणाददीत–सु० चि० ७-३०)। तत मूत्राशय का भली-भाँति परीक्षण किया जाता है जिससे अन्य कोई अश्मरी या अश्मरी खण्ड उपस्थित हो तो उसे भी निकाला जा सके अन्यथा उसी को केन्द्र वना कर पुन वडी अश्मरी हो जाने की सम्भावना होती है। सुश्रुत के वर्णनानुसार अश्मरी का सूक्ष्म कण भी यदि मूत्राशय मे अवशिष्ट रह जाय तो उससे वडी अश्मरी वन जाती है (चूर्णमल्पमवक्षिप्त हि पुन परिवृद्धिमेति–सु०) उसी समय पौरुष ग्रन्थि का परीक्षण भी कर लेना चाहिये। यदि वह वढी हुई हो तो उसे भी कभी-कभी निकाल देना उपयुक्त होता है। शस्त्रकर्म की पश्चात् चिकित्सा मूत्राशय की अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, यदि वह सक्रमणग्रस्त हो तो विस्रावण नाडी (Drainage Tube) प्रविष्ट की जाती है और साइफन सिद्धान्त से मूत्र के निकलते रहने की व्यवस्था की जाती है, व्रण का रोहण अकुरोत्पादन (Granulation) द्वारा तीन से छ सप्ताह में होता है। यदि मूत्राशय स्वस्थ और सक्रमणरहित हो तो व्रण को कैटगट द्वारा सीवन कर्म कर वन्द कर दिया जाता है। मूत्राशय के सन्मुखीन स्थान का ३६ घटे तक सदा विस्रावण किया जाता है, एतदर्थ रवर टयूव को उपयोग मे लाते हैं। मूत्रनाडी द्वारा मूत्र प्रसेकीय विस्रावण (Urethra Drainage) ५-६ दिन तक करते है।

शल्यकर्म का चयन—वर्तमान काल मे अश्मरी-भजन पद्धति इतनी उत्कृष्ट प्रमाणित हुई है कि यदि कोई अनुपयुक्त अवस्था न हो तो सभी मूत्राशयाश्मरी के रोगियो मे इसीके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

अश्मरी भञ्जन पद्धति के लिये अनुपयुक्त[1] अवस्थाऍ–इस प्रकार है —

(१) अश्मरी की दशा—यदि अश्मरी का व्यास डेढ इच से अधिक हो तो इस पद्धति का प्रयोग नही करना चाहिये अन्यथा मूत्राशय की दीवारो को हानि पहुँच सकती है, यन्त्र की पकड मे न आनेवाली वडे आकार की अश्मरी के भजन के लिये निरर्थक प्रयास नही करने चाहिये, कुछ अश्मरियाँ जैसे—वातिक अश्मरियाँ, इतनी कठोर होती है कि अश्मरी-भजन उन्हे तोड नही सकता और दूसरी ओर श्लैष्मिक अश्मरी इतनी मृदु होती है कि यत्र के व्लेड्स आपस मे फॅस जाते हैं तथा भजन असभव हो जाता है। एक ही स्थान मे स्थित होने के हेतु आवेष्टित अश्मरी का भजन भी इस पद्धति द्वारा नही किया जा सकता। अनेक अश्मरियाँ हो तो भी भजन पद्धति को अपनाया जा सकता है, नितान्त छोटे आकार की अश्मरियो को तो आचूषक द्वारा वैसे ही निकाला जा सकता है। ऐसी अश्मरियाँ जो किसी विजातीय द्रव्य, जैसे—मूत्रनाडी या रवर को केन्द्र वना कर निर्मित हुई हो उन्हे सदा भगसधानोपरि भेदन द्वारा ही निकालना चाहिये।

(२) मूत्रप्रसेक की दशा—निरुद्धता या वढी हुई पोरुष ग्रन्थि की उपस्थिति मे भी अश्मरी भजन पद्धति अव्यवहार्य होती है क्योकि किसी वडे आकार के टयूव को प्रविष्ट करना ऐसी अवस्था मे कठिन होता है, साथ ही प्रवेश के समय अप्राकृत मार्ग वन जाने की सभावना भी होती है। मूत्रप्रसेक की अत्यधिक क्षुब्धता मे भी जैसा कि यत्र प्रयोग के वाद रोगी के तीव्र शैत्य से प्रतीत होता है, अश्मरी भजक पद्धति अपनाना असभव होता है।

(३) मूत्राशय की दशा—तीव्र उष्णवात या अल्प कोषो (Sacculi) की उपस्थिति मे जिनका ज्ञान मूत्राशयान्तर्दर्शक से होता है, मूत्राशय भेदन पद्धति ही उपयोगी होती

१–अनुपयुक्त अवस्थाएँ—Contra indications

है, क्योकि सकुन्चित मूत्राशय मे अश्मरी भजक का प्रयोग कठिन होता है।

(४) **वृक्को की दशा**—वृक्को के तीव्र सक्रमण मे भी अश्मरी भजन अनुपयुक्त होता है।

भगसधानोपरि भेदन—यह शस्त्रकर्म निम्न अवस्थाओ मे किया जाता है—(१) जहाँ अश्मरी का वडे आकार की होने के कारण उसका भजन असभव हो, (२) आवेष्टित अश्मरी और (३) जहाँ निरुद्धता तथा वडे आकार की पौरुष ग्रन्थि उपस्थित हो। अश्मरी को निकालने के साथ-साथ वढी हुई पौरुष ग्रन्थि को भी निकाला जा सकता है।

वालको में अश्मरी—का पाया जाना अतिसाधारण है (एता भवन्ति वालानाम्–माधव) यह वात ध्यान मे रखनी चाहिये कि वालको का मूत्राशय श्रोणि प्रदेश का अग होने की अपेक्षा उदर का अग अधिक है, अत इनमे भगसधानोपरि भेदन विशेष रूप से किया जाता है। वालको मे अश्मरी भजन पद्धति भी अपनाई जाती है, एतदर्थ विशेष प्रकार के यत्रो की आवश्यकता होती है।

स्त्रियो में अश्मरी—का पाया जाना जैसा कि पूर्व ही वताया गया है, वहुत कम देखा जाता है, क्योकि इनमे मूत्र प्रसेक ह्रस्व और विस्तृत होना है जिससे अल्प आकार वाली अश्मरी वृक्को से मूत्राशय मे आ कर वाहर निकल जाती है। फिर भी श्लैष्मिक अश्मरियो का स्त्रियो मे पाया जाना असाधारण घटना नही है। ये विजातीय द्रव्यो को केन्द्र वना कर निर्मित होती हैं जो स्वय रोगी द्वारा अन्त प्रविष्ट किये गये होते हैं।

चिकित्सा—साधारणत अश्मरी-भजन पद्धति का प्रयोग होता है, किन्तु, वडे आकार तथा विजातीय द्रव्य पर निर्मित अश्मरी की उपस्थिति मे भगसधानोपरि भेदन उत्तम विधि है। अश्मरी को निकालने के लिये योनि की सन्मुखीन भित्ति (Anterior vaginal wall) मे से मूत्राशय का भेदन कभी नही करना चाहिये क्योकि इससे मूत्राशय-योनि भगन्दर होने का भय होता है जैसा कि सुश्रुत के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है —

"न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासा मूत्रस्रावी व्रणो भवेत्"

—सु० चि० ११-२४

तनस्तासा भगान्तर्गतो मूत्रस्रावी व्रण स्यात्—डल्हन

डल्हन ने स्त्रियो मे मूत्राशयाश्मरी के शल्यकर्म के प्रसग मे वैतरण के उद्धरण का उल्लेख किया है जिसमे यह वताया गया है कि गर्भाशय के अधोभाग मे मूत्राशय और ये दोनो महास्रोतस् से सवधित होते है। अत वस्ति प्रदेश को उन्नत कर नितम्व के सामने के भाग मे भेदन करे (स्फिगग्रे भेदन तासाम्–वैतरण)

सुश्रुत ने पुरुषो मे भी मूत्रस्रावी व्रण होने की सभावना का उल्लेख किया है। यह अवस्था शस्त्रकर्म के समय मूत्र-प्रसेक का भी भेदन हो जाने पर होती है (पुरुषस्य वा मूत्र-प्रसेक क्षतात् मूत्रक्षरणम्–सु० चि०) मूत्राशय का दो स्थानो पर भेदन करने से उत्पन्न अवस्था को सुश्रुत ने असाध्य वताया है (द्विधा भिन्न वस्ति रश्मरी को न सिध्यति–सु० , अश्मरी हेतु रपि यो वस्ति भदो द्विधोभयत सोऽपि न सिध्यति व्रण स्वभावात्–अष्टाग सग्रहे अरुणदत्त , चि० ११-५४)

(ग) मूलाधारीय अश्मरी भेदन—अठारहवी शताव्दि के अन्त तक अश्मरी निर्हरण का यह शस्त्रकर्म अत्यन्त उपयोगी समझा जाता था, किन्तु, अश्मरी भजक पद्धति का विकास हो जाने से यह आजकल कभी-कभी किया जाता है।

सुश्रुत ने इस पद्धति का विस्तार से उल्लेख किया है। वलिष्ठ परिचारक द्वारा सुगृहीत रोगी के गुदमार्ग मे शल्य चिकित्सक अपने वाम हस्त की मध्यागुलि और तर्जनी को प्रविष्ट कर तथा अश्मरी को मलद्वार और मूत्रेन्द्रिय के मध्य मे ला कर इतना दवाता है कि शल्य ग्रन्थि की तरह उन्नत हो जाता है। तदनन्तर सेवनी के किसी एक ओर भेदन कर अश्मरी को निकाल लेते हैं।

वस्ति (मूत्राशय) मे रुधिर सचय को रोकने के लिये उष्ण जलपूर्ण द्रोणी मे अवगाहन और सचित रुधिर को निकालने के लिये क्षीर वृक्ष कषाय की उत्तर वस्ति वताई गई है। मूत्रस्रावी व्रण ठीक न हो तो उसको दग्ध कर देना चाहिये–सुश्रुत।

यदि अश्मरी स्वत ही मूत्र प्रसेक मे आ कर कही अटक जाय तो उसे मूत्रप्रसेक से ही वाहर लाने का प्रयत्न करे अथवा वही भेदन कर वडिश से अश्मरी को पकड कर निकाल ले (विदार्य वा नाडी शस्त्रेण वडिशनोद्धरेत्–सु०)

व्रणरोहण से एक वर्ष तक स्त्रीगमन, अश्वारोहण, जल मे तैरना और गुरु भोजन का सेवन नही करना चाहिए–सु०

अश्मरी के इस शस्त्रकर्म मे निम्न अवयवो की रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिये —

(शेषाश ७७५ पृष्ठ पर)

उत्फुल्लिका

(Broncho Pneumonia)

वैद्य राधाकृष्ण नाथ, आयुर्वेदाचार्य

आध्मान वात सम्फुल्लोदक्ष कुक्षौ शिशोर्भवेत् ।
उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासश्वयथु सकुला ।।
—(वै० नि०)

उत्फुल्लिका आयुर्वेद-विज्ञानानुसार प्रकुपित कफ द्वारा अवरुद्ध वायु से—और अवस्थाओ की अपेक्षा वाल्यावस्था के प्रथम दो वर्षो मे सर्वाधिक उत्पन्न होने वाला घातक रोग हे तथा उत्फुल्लिका शब्द भी आयुर्वेद मे क्षीरपायी शिशुओ मे होने वाले विकार के लिये ही आया है। यथार्थत. शैशवावस्था मे श्वसन-सस्थान के रोगो से मृत्यु होती है उनमे यह विकार अपनी प्रधानता रखता है। ऊर्ध्व श्वसनपथ का सक्रमण पूर्ववर्ती कारण होने से शीतकाल मे इस रोग का आक्रमण अधिक देखा जाता है। ग्रामीण जनता इसे खल्ला, डव्वा, पसली मारना या वाख उठना कहती है। दुर्वल वच्चो, जिनमे अतिसार तथा वाल शोप जैसे रोग-क्षमता को न्यून करनेवाले रोग होते है, इसके होने की सम्भावना रहती है और उन दुर्वल-शिशुओ मे किसी प्रत्यक्ष चिह्न के विना ही इस रोग का आक्रमण हो सकता है, जिसमें शारीरिक तापमान भी प्राकृत से नीचे रह सकता हे। इसमें मृत्यूत्तर परीक्षा के विना फुफ्फुस के सघनन (Consolidation) को भी चिह्न नही मिलता। रोमान्तिका तथा कुक्कुरकास दो ऐसे सार्सगिक विकार है जिनमे उत्फुल्लिका का आक्रमण प्राय देखा जाता है और ऐसी दशा मे उचितोपचार के विना मृत्यु भी अधिक होती है। यही नही, फक्क रोग ग्रस्त वच्चो पर उत्फुल्लिका का आक्रमण सहज ही होता हे, यदि इसके साथ पूर्वोक्त विकार भी रहे तो इसे अरिष्ट-सूचक ही समझना चाहिए।

कारण और सम्प्राप्ति—स्वर्णपुञ्जगोलाणु (Staphylococcus Aureus) नवजातावधि मे फुफ्फुस-रोग-सञ्चार मे अपना विशेप महत्व रखता है पर सामान्यत माला-गोलाणु और फुफ्फुसगोलाणु इस रोग का उत्पादक होता है। इसके अतिरिक्त कुक्कुर कास के साथ होनेवाले रोग मे कुक्कुर कास के जीवाणु तथा ग्रथिक ज्वर मे ग्रथिक जीवाणु भी कारण होते है। इस रोग मे वात और कफ की प्रधानता रहती हे। जीवाणुओ के द्वारा फुफ्फुसान्तरालो मे स्थित श्वास नलिकाओ मे प्रदाह उत्पन्न होने से स्रावाधिक्य के कारण वायु का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से वायुकोपाये (श्वयथु) फूलती हैं। घनत्व के क्षेत्र पूर्व मे वहुधा इतने सूक्ष्म होते हैं कि परीक्षा से भी पता नही चलता, और वाद मे सव मिल कर उत्फुल्लिका का रूप ले लेते है। फलत सम्पूर्ण खण्डो मे सघनन मिलने लगते हैं, तव शिशु अत्यधिक श्वास से पीडित रहता है।

लक्षण—किसी-किसी मे सन्ताप, तीव्र श्वसन, श्यावता और कदाचित् आक्षेप के साथ शीघ्रता से रोगारम्भ होता है, किन्तु अधिकतर रोगियो मे दो-तीन दिनो पूर्व से ही कास के साथ श्वास-मार्ग मे प्रदाह के चिह्न मिलते है। रोग स्थापित हो जाने पर वच्चा व्यग्रता से श्वास लेता हे और गम्भीर रोगाक्रान्त मालूम पडता है। मुखाकृति फीकी, चिन्तायुक्त, आँखे मन्द, चेतनाहीन और जिह्वा शुष्क होती हे। मल-त्याग करते समय शिशु क्रुद्ध हो जाता हे और चिल्लाने मे कठिनाई का अनुभव करता हे। स्थिति मे हेर-फेर होने से कास के वेग वढते है। श्वसन-गति तीव्र और प्रति मिनट सख्या मे १०० पर्यन्त हो सकती हे। श्वसन चक्र मे विश्राम जो वहि श्वसन के अन्त मे होना चाहिए, अन्त श्वसन के अन्त मे होता हे। श्वसन मे घुरंघुर्राहट की ध्वनि के साथ-माथ नासा-पुट अधिक विस्तृत होता रहता हे। कास अस्थिर, क्षुद्र तथा वार-वार होता रहता है, परन्तु छोटे-छोटे शिशुओ मे नहीं भी हो सकता। तापक्रम १००° फै० से १०३° फै० तक होता हे और अशत दूर होता हे। यदि फुफ्फुम का नया क्षेत्र प्रभावित हुआ तो ज्वर पुन वढ सकता हे। इस प्रकार पुनरावर्तन तथा शान्ति दो-तीन सप्ताह पर्यन्त देखी जाती हे। नाडीगति भी श्वसन ज्वर की अपेक्षा तीव्र होती हे जिनकी गणना नन्हे-नन्हे शिशुओ मे नहीं की जा सकती। शैशवावस्था मे वक्ष प्राचीर के मृदु होने से अन्तर्पर्शुकीयावकाश

प्रत्याकर्पित होते रहते हैं। आकोठन के चिह्न प्राकृत या फुफ्फुसोत्फौल्य के कारण परम नि श्वसनता होती है। श्रवण परीक्षा विशेष महत्व की होती है। फुफ्फुसाधारो में कर्कश श्वसन का क्षेत्र मिलता है, अन्त श्वसन के समय सूक्ष्म चट-चट ध्वनि मिलती है जो इस रोग का निर्देशक चिह्न माना जाता है। कभी-कभी क्लोम नली प्रदाह की उपस्थिति में कठोर कर्करापन ध्वनि के आधिक्य से उपर्युक्त ध्वनि अस्पष्ट हो जाती है। शिशु के गहरा श्वास लेने पर नलिकीय श्वसन की ध्वनि भी मिलती है। श्रान्तोत्पादक उत्फुल्लिका के अन्त मे श्वसन एव हृद्गति अनियमित हो जाती है। श्वसन का लय (चेनस्ट्रोक) या वास्तविक अश्वसन (Apnoea) मिल सकता है जिसमे शिशु सीसक रग का हो जाता है तथा हृद्गति मन्द और नाडी क्षीण हो जाती है। कुछ हॉफते हुए श्वसन के बाद शिशु क्षणिक स्वस्थ दीख पडता है, किन्तु यह अवस्था बहुत भयानक होती है और कुछ घटो बाद शिशु की मृत्यु हो जाती है।

क्ष-रश्मि चित्रण से घनीभूत क्षेत्र मे चारो ओर धूमिल धब्बे मिलते हैं।

उपद्रव—मालागोलाणुज उत्फुल्लिका मे पूयो रस (Empyema) मिलता है। परन्तु न्यूमोनिया के समान यह प्रधान उपद्रव नही। फुफ्फुसो मे पूयोत्पत्ति हो कर कोथ (Gangrene) हो सकता है। विशेपत शिशुओ मे अतिसार कष्टप्रद होता है और इतना प्रबल होता है कि प्राथमिक रोग को समझने मे भी भूल हो जा सकती है। मध्यकर्ण शोथ, परिहृच्छद प्रदाह (Percarditis) या मस्तिष्कावरण प्रदाह (Meningitis) भी हो सकता है तथा सिरा-समवरोधन (Veinous thrombosis) से दुर्बल शिशुओ की मृत्यु भी हो सकती है।

रोगविनिश्चय—ज्वर के साथ गम्भीर रोगाक्रान्त मुखाकृति, तीव्र गुर्रगुर्राहट श्वसन, सूक्ष्म चटचट ध्वनि का एक या दोनो फुफ्फुसो में मिलना निदान मे सहायक है। शैशवावस्था मे कफकास से भेद करना कठिन कार्य है, किन्तु गम्भीर रोगाक्रान्त मुखाकृति, श्वसन और नाडीगति मे तीव्रता इसके पक्ष मे होते हैं। खण्डीय श्वसनक का आक्रमण छर्दि या मूर्च्छा के साथ अकस्मात् होता है। दूसरी ओर श्वसन पथ के ऊर्ध्व भाग मे प्रसेक से रोगारम्भ प्राय दुर्बल और किसी रोग के कारण क्षीण बच्चो पर एव अदारुण्य मोक्ष और पुनरावर्तन होना इसके पक्ष मे होता है, और स्वस्थ बच्चा का प्रभावित होना और सात दिनो के बाद प्राय दारुण्य मोक्ष (Crysis) के साथ रोग का हटना श्वसनक के पक्ष में होता है। कभी-कभी यक्ष्मा से भी विभेद करना पडता है, इस हालत मे ट्यूबरकुलिन परीक्षा से सहायता नही मिलती, मध्यान्त्रत्वचा मे श्यामक सम (Miliary) यक्ष्मकार्बुद को देखना चाहिए। कुक्कुर काम या रोमान्तिका का आरम्भ इस रोग के साथ हो सकता है तथा ऐसी दशा मे उनके प्रारूपिक लक्षणो मे न्यूनता भी हो सकती है।

फलाफल—यह रोग सर्वदा गम्भीर होता है। विशेपत प्रारम्भिक वर्षो मे समपातिक रोग जैसे—फक्क, हृद्विकार (सहज) और सार्सगिक रोगो मे हुआ तो कष्टसाध्य माना जाता है। पूर्णस्वस्थ होने मे महीनो लग जाते हैं। इसका पुनरावर्तन पॉच वर्षो तक हो सकता है। मैंने एक कन्या को देखा है, जिसे चौदह वर्षो तक इसका पुनरावर्तन होता रहा। कुछ अश मे स्थायी तन्तूत्कर्प (Fibrosis) भी देखा जाता है जो क्लोमनली विस्तृति (Bronchietcsis) का भी रूप धारण कर सकता है।

चिकित्सा सूत्र—

निस्सारयेज्जलौकाभि रक्त च जठरास्तथा।
कर्कोट नागरामेधककोलातिविपाभवम्॥
चूर्णं दुग्धेन सम्मिश्र पाय येन्मातर भिपक्।
धात्री वा पाययेत्सद्य क्षीर दोप निवारणम्॥
अग्निना स्वेदयेद्वापि दाहयेच्च शलाकया।
जठरे विन्दुकाकार पृष्ठभागे तथा ध्रुवम्॥१॥
पिप्पली अथिक विश्वा त्रायमाणा च दार्विका।
पथ्येभ पिप्पली भार्गी लवङ्ग टङ्कणस्तथा॥
कुमारी बालपथ्ये च सैन्धवस्त्वाजवारिणा।
घर्षित पाययेत्प्रार्तर्द्विटङ्क फुल्लिकापहम्॥२॥

नोट—दूसरा योग उत्तम है किन्तु मात्रा अधिक लिखी गयी है।

मुष्टियोग—गोबर के कीडे को मरिच के साथ मिला कर एक रत्ती की वटी बनावे। दिन मे तीन बार मधु से दे। यह मुष्टियोग स्वर्गीय पडित व्रजविहारी चतुर्वेदी जी अपने रोगियो पर व्यवहार कर लाभ उठाते थे।

कफशामक औषधो मे रसपिप्पली, कफचिन्तामणि, अष्टागावलेह, वृहत्कस्तूरीभैरव, अभ्रक भस्म के साथ विषाण-

विभूति आदि का प्रयोग अवस्थानुसार अनुपान-भेद से हितावह है। वातानुलोमन के लिए कच्छपास्थि को गरम कर पेट पर सेक देना या यवानिका-सैन्धव सेक लाभप्रद है। पुरातन घृत का अभ्यग वक्ष पर करना चाहिए। आधुनिक औषधों में कूर्चकि (Penicillin) तथा Sulpha groups की औषधियो मे Sulpha mejathin से आश्चर्यजनक लाभ होता है। इन औषधो का व्यवहार पूर्ण मात्रा मे करना चाहिए अन्यथा जीवाणु भेपजरोधी हो जाते हैं। प्रतिश्याय ज्वर के साथ रोग उत्पन्न होने पर इससे लाभ नही होता। यदि स्रावाधिक्य के साथ कास कष्टदायक हो तो शामक कास मिश्रण का व्यवहार अहिफेन के विना करना चाहिए। सुखोष्ण जल से अग-प्रक्षालन तीव्र ताप को न्यून ही नही करता अपितु निद्रादायक भी होता हे। नाडी की तीव्रता प्रथम हृच्छद मे मृदुता, श्यावता या यकृद्वृद्धि आरम्भमान हृदयावसाद के चिह्न है, जिन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मैंने अपने चिकित्सा-काल के भीतर एक छ वर्षीय वालिका देखी है, जिसके हृदय के निकट सीत्कार ध्वनि सायकाल मिली और उसकी मृत्यु हृदयावसाद से अचानक चार वजे रात्रि मे हो गयी। कफमिश्रण मे दो-चार वूँद टिंक्चर डिजिटेलिस मिला देने से या आयुर्वेद के योगो के साथ मृगमदासव देने से यह भय नही रहता।

यदि हृदयावसाद आरम्भ हो जाए तो शिरा द्वारा रक्तमोक्षण करा देने से लाभ होता है जो वहुधा व्यवहार मे नही आता। आचार्यो ने इसीलिए तो प्रारम्भ मे ही उदर से रक्तनिर्हरण का निर्देश किया है।

यथा—

निस्सारयेज्जलौकाभि रक्त च जठरात्तथा।
अग्निना स्वेदयेद्वापि दाहयेच्च शलाकया॥
जठरे विन्दुकाकार पृष्ठभागे तथा ध्रुवम्॥

ग्राम्य जीवन मे अभी तक ये कर्म किए जाते है और इनसे सफलता भी मिलती है। शिशुओ मे जारक (Oxygen) अधिक प्रभावकारी है। गम्भीर रोगियो मे अवसाद से वचाने के लिए उत्तेजक औषध की आवश्यकता पडती है। तदर्थ ऊष्ण सर्षप स्नान (आधा छटॉक सर्षप एक आढक १००° फै० का जल) पाँच मिनट तक कराने के वाद ऊष्ण कम्वल से लपेट दे। जव श्वसन-केन्द्र की विफलता से श्वसन अनियमित और तुच्छ हो तो ५% कार्वनद्विओषिद् मिश्रित जारक श्वास-मार्ग से दे। सूचीवेध द्वारा १/८ रत्ती Camphorin oil या १/२०० कुचेलक सत्व एक वर्षीय वच्चा के हेतु अस्थायी उत्तेजक होता है। उत्फुल्लिका की चिकित्सा फुफ्फुसो के पूर्ण स्वस्थ होने तक पर्याप्त नही मानी जाती। रोग निवृत्ति के वाद फेफडो का व्यायाम लाभदायक हे, परन्तु समुद्र के किनारे रहना फुफ्फुसो को स्वस्थ वनाने मे सर्वोत्तम है। यह विकार दीर्घकालानुवन्धी तथा दौर्वल्योत्पादक है। दक्ष परिचर्या नितान्तावश्यक है। श्वसन-क्रिया मे वाधा उपस्थिति नितान्तावश्यक है। श्वसन-क्रिया मे वाधा उपस्थित होने के भय से पुल्टिस,प्लास्टर का व्यवहार आजकल नही किया जाता। पोषणक सुपाच्य, वलकर देना चाहिए। शैशवावस्था मे स्तन्य, पाचायित दुग्ध उत्तम है। इसके वाद क्रमश यूप, मासरस, अडा, दुग्ध, वार्लीजल आदि दिए जा सकते है। पूर्णमात्रा मे जल देने से न रोका जाए।

दुग्धदोष निवारणार्थ स्तन्यदात्री के लिये निम्नाकित योग का विधान हे —

कर्कोटनागरामेध कङ्कोलाति विपाभवम्।
चूर्णं दुग्धेन सम्मिश्र पाचयेन्मातरु भिपक्॥
धात्री वा पाययेत्सद्य क्षीरदोप निवारणम्।

सम्भवत इससे धात्री का स्तन्यदोप दूर हो कर वालको मे रोग-क्षमता वढती हो।

आयर्वेदविभागाध्यक्ष, धर्मसमाज सस्कृत कालेज,
मुजफ्फरपुर।

शेषाश] मूत्राशयाश्मरी [७७२ पृष्ठ का

सेवनी शुक्रहरणी स्रोतसी फलेयार्गुदम्।
मूत्रप्रसेक मूत्रवह मूत्रवस्ति स्तथाप्टम॥
—सु० चि० ७-४२

अर्थात्—शस्त्रकर्म के समय सेवनी, शुक्र हरणी, दो मुष्कवहस्रोत, गुद, मूत्रप्रसेक, मूत्रवहस्रोत, और मूत्रवस्ति की रक्षा करनी चाहिये। शस्त्रकर्म के समय इनके क्षतिग्रस्त होने पर निम्नलिखित उपद्रव होते हैं —

(१) सेवनी के क्षतिग्रस्त होने पर तीव्र वेदना,
(२) शुक्रहरणी के क्षतिग्रस्त होने पर क्लैव्य,
(३-४) मुष्कवहस्रोत के क्षतिग्रस्त होने पर ध्वजभग,
(५) गुद के क्षतिग्रस्त होने पर मरण (मर्म होने से),
(६) मूत्रप्रसेक के क्षतिग्रस्त होने पर मूत्रप्रक्षरण,
(७) मूत्रवहस्रोत के क्षतिग्रस्त होने पर वस्ति प्रदेश मे मूत्र का अमार्ग प्रसरण।
(८) मूत्रवस्ति के क्षतिग्रस्त होने पर मरण हो हो जाता हे।

प्राध्यापक—ऋषिकुल आयुर्वेदिक
कालेज हरिद्वार

महापैशाचिक घृत के द्रव्यों के सन्दिग्ध पाठ

आयुर्वेद-बृहस्पति, वैद्य घनानन्द पन्त, विद्यार्णव

आयुर्वेद-ससार मे खर्पर के विषय मे बहुत समय से सन्देह था। मैं जब 'रसेन्द्रसार सग्रह' की टीका लिख रहा था, अकस्मात् यशद प्रकरण मे खर्पर का सत्त्व यशद है, यह विदित हुआ। ऊहापोह के बाद निश्चय हुआ कि यशद ही खर्पर के स्थान मे मालती वसन्तादि रसो मे डालना चाहिये। यदि अब भी खर्पर के विषय मे किसी को सन्देह हो तो मेरी रसेन्द्रसार सग्रह की टीका मे सप्रमाण देख सकते हैं। बहुत दिनो से महापैशाचिक घृत के सन्दिग्ध द्रव्यो पर सन्देह दूर करने का विचार था, क्योकि इसके गुण पाठो मे इसे अमृत तुल्य लिखा है। वह भेल सहिता की टीका करने मे आज सामने आया है। महापैशाचिक घृत के पाठ—वाग्भट, चरक, भावप्रकाश, भेल सहितादि मे हैं—

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचाम्।
त्रायमाणा जया वीरा चोरक कटुरोहिणीम्॥
वयस्था शूकरी छत्रामतिच्छत्रा पलङ्कपाम्।
महापुरुषदन्ता च कायस्था नाकुलीद्वयम्॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चाहृत्य तैर्घृतम्।
सिद्ध चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्॥
महापैशाचिक नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम्।
बुद्धिस्मृतिकर चैव बालाना चाङ्गवर्धनम्॥
इति महापैशाचिक घृतम्।

सो, वाग्भट मे जो अरुणदत्त की टीका है, उसमे **वयस्था-शूकरी**—इन दोनो पर विचार करना है। वहाँ वयस्था का अर्थ धात्री किया है, कोष और निघटुओ से वयस्था का अर्थ धात्री भी होता है। यहाँ गुणपाठ मे चातुर्थिक ज्वर का उल्लेख है, वयस्था के अर्थ गुडूची धात्री दोनो होते हैं। पर महापैशाचिक घृत मे धात्री नही गुडूची लेना चाहिये। गुडूची मेध्य रसायन और विशेष ज्वरघ्न है यथा—

मण्डूकपर्ण्याः स्वरस प्रयोज्य क्षीरेण यष्टी मधुकस्य चूर्णम्।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्या मेध्यानिचैतानि रसायनानि
(च० चि० अ० १ पा० ३-३०)

लोहितचन्दन पद्मकधान्यक छिन्नरुहा (शा० ध०) यहाँ गुडूची विशेष ज्वरघ्न भी है, अत वयस्था के स्थान मे धात्री न हो कर गुडूची ठीक है। एव शूकरी शब्द के अर्थ वृद्धदारुक और वाराहीकन्द दोनो हैं। अरुणदत्त ने वृद्ध-दारुक अर्थ किया है। परन्तु वाराहीकन्द रसायन है और वृद्धदारुक रसायन नही है, अत शूकरी के अर्थ मे वाराही-कन्द गृष्टि—गेठी-भाषा नाम उचित है। अब दीपिका कृत अर्थो पर ध्यान दीजिये—दीपिका मे **चारटी कुम्भी ब्राह्मणयष्टिका इत्यन्ये।** कोषो मे चारटी शब्द के पर्यायो मे कुम्भी और ब्राह्मणयष्टिका नही मिले, न कुम्भी ब्राह्मण-यष्टिका के पर्यायो मे चारटी शब्द मिला, परन्तु—अव्यथाऽतिचरा पद्मा चारटी पद्मचारिणी (अमरकोष) टीका इति पञ्च पद्माकस्य—इस कोष वाक्य से चारटी का अर्थ पद्माख होता है। अरुणदत्त ने भी चारटी का अर्थ पद्म-चारिणी किया है।

वीरा-क्षीरकाकोली,शालपर्णीत्यपरे—यहाँ भी शालपर्णी के पर्यायो मे वीरा शब्द नही मिला, न वीरा के पर्यायो मे शालपर्णी मिला। **वयस्था ब्राह्मी गुडूची वा** वयस्था के काकोली, क्षीरकाकोली, गुडूची, ब्राह्मी, हरीतकी, स्वादुफला, आमलकी—ये सात पर्याय हैं। यहाँ ज्वरघ्न, मेध्य-रसायन होने से गुणपाठ सगत गुडूची समझी जाती है। **छत्रा—मधुरिका**, यद्यपि छत्रा शब्द का अर्थ मधुरिका और धनिया दोनो होते हैं, परन्तु मधुरिका ज्वरघ्न नही है, धनिया विशेष ज्वरघ्न है (पद्मकधान्यक शा० ध०) अत छत्रा का अर्थ यहाँ धनिया लेना किंवा छत्रातिछत्रे द्रोणपुष्पी द्वयम्। द्रोणपुष्पी द्वय के पर्यायो मे छत्रातिछत्रा नही मिलते, इसलिए अतिछत्रा शतपुष्पा सौफ है।

पलङ्कषा—शब्द के दो अर्थ है—गूगल और लाख। यहाँ उक्त घृत का चातुर्थिक ज्वरघ्न होने से लाक्षा ज्वरघ्न है, लाक्षादि तैल का प्रधान द्रव्य लाक्षा ज्वरघ्न है, अत पलङ्कषा शब्द का अर्थ लाक्षा लेना उचित है; गूगल नही। **महापुरुष दन्ता शतावरीअन्ये तु विष्णुक्रान्ता वदन्ति**—यहाँ पर भी विष्णुक्रान्ता के पर्यायो मे महापुरुष दन्ता शब्द नही आता, न विष्णुक्रान्ता के पर्यायो मे शतावरी आता है।

जटिलां शतावरीमाह यहाँ भी जटिला पर्यायो मे शतावरी नही मिलता, न शतावरी के पर्याय मे जाटिला। यहाँ हमने लेख बढने के भय से निघटुओ के उद्धरण नही दिये हैं। और विद्वान भी इस पर विचार करे। भेल सहिता की टीका मे भी इसका अर्थ स्पष्ट कर दिया है। पुनश्च त्रायमाणा—गाफिस—इस नाम से ईरान से आती है। यूनानी औषध-विक्रेताओ के यहाँ इसी नाम से मिलती है। **मुहीते आजम** मे गाफिस का सस्कृत नाम त्रायमाण लिखा है। इस पर विशेष यादवजी कृत द्रव्यगुण विज्ञान से जाने।

२६ बाजार लेन, नई दिल्ली–१ }

अपामार्ग

श्री तारादत्त त्रिपाठी

यह एक भारत प्रसिद्ध अनेक रोग नाशक 'बूटी' है। वर्षा ऋतु में यह पर्वतीय स्थानो मे विशेष कर पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है-एक रक्त (लाल) दूसरा-श्वेत। श्वेत की डंडी, पत्ते हरे फूल श्वेत, एवं रक्त की डंडी, पत्ते फूल लाल ही होते है। केवल इन दोनो के बीज श्वेत होते हैं।

अपामार्ग के भाषान्तर नाम-संस्कृत में-अपामार्ग। हि० में चिरचिटा, लटजीरा, साजी ओंगा, पुठकंठा। वं०-अपांग, म०-अघाड़ा, क० उतरणे, चिरचिरा। इं०-रफचेफट्री (*Rough cheff tree*) लै. एफिरेथिस एस्पिरा (*Aphyrathis aspera*) फा०-खारवास गोता अ०-अत्कम। ऐसे ही निघण्टु में भी-

अपामार्ग नाम गुण—

अपामार्गस्तु शिखरी किणही खर मजरी।
अध शल्यः शैखरिकः प्रत्यक्पुष्पी मयूरका॥

अपामार्ग, शिखरी, किणही, खरमञ्जरी, अधः शल्य, शैखरिक, प्रत्यक्पुष्पी, मयूरका यह नाम श्वेत अपामार्ग के है।

अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनः कफवातजित्।
निहन्ति दद्रू सिध्मार्शः कण्डु शूलोदरा रुची.॥

अपामार्ग सारक है, तेज है, दीपन है, कफ, वात का मर्दन करता है। दाद, सिध्म, अर्श (बवासीर), (बवासीर), खाज, शूल, उदर रोग, अरुचि इनको नाश करता है।

रक्तापामार्ग नाम गुण—

अन्योरक्तवृन्त फलो वशिरः कपि पिप्पली।

वृन्तफल, वशिर, कपि पिप्पली ये नाम रक्त-अपामार्ग के हैं—

अपामार्गोऽरुणोवात विष्टम्भी कफ नाशनः।
ऊनःपूर्वं गुणै रूक्ष स्तत्पत्रं रक्तपित्तनुत्॥

यह वात एवं विष्टम्भ को करता है, कफ नाशक है, रूखा है, इसका पत्र (पत्ता) रक्तपित्त नाशक है। कहीं कहीं इसको वांगा, मागा, आधाझारा, पुठकंटा भी कहते है, यह प्राय सर्वत्र सुलभ है। यह क्षुप लगभग ३ या ४ फीट ऊंचा होता है। इसके पत्ते १/२ से ११/२ इञ्च तक चौड़े २ से २१/२ इञ्च तक लम्बे होते है। इसकी प्रत्येक शाखा वितस्ति (बालिस्त) मात्र में गांठ सी होती है। इन्हीं गांठों से शाखाये (त्रिशूलाकृति) एवं दो दो पत्ते निकलते हैं, उन्हीं पत्तों की जडों से छोटी छोटी कांटेदार बालियां निकलती हैं, कोई आध फीट तक लम्बी होती है। इसके बीज छोटे छोटे लम्बे लम्बे बाजरा के समान छोटे सफेद होते है। इनको एक तोला दूध मे पका कर खाने से २ दिन तक भूख नहीं लगती है। परन्तु स्वास्थ्य हानि नहीं होती है। यही इसकी

विलक्षणता है। यह प्रयोग रक्तार्श (खूनी बवासीर) के लिये अत्युत्तम है। इसका क्षार कास तथा यकृत् के लिए अति उपयोगी है।

निरन्तर एक वर्ष तक मौन रहकर इसकी जड़ की दातून की जावे तथा तब तक ब्रह्मचर्यावस्था मे रहे तो वह मनुष्य सिद्ध भाषी हो जाता है। अर्थात् वह जैसा कहे वैसा ही अवश्य होगा। यही नही कि अपामार्ग की जड़ को पानी मे घिसकर तिलक लगाके जिस कामना से जिसे देखा जाय तो यथेच्छ लाभ होगा परन्तु यह स्मरण रहे कि पहले सिद्ध की हुई बूटी (जड़ी) होनी चाहिए। कास, श्वास, जलोदर, कण्डू, अर्श, दद्रू, रतौन्धी, परवल, दन्तशूल, बहरापन आदि के लिए अत्यन्त गुणवर्द्धक है। जिस प्रसूता के दूध न हो तो यह दुग्धवृद्धि के लिये भी लाभदायक है। ऐसे ही सर्प, बिच्छू, चूहा, सियार (गीदड़), बाघ, भिड़ आदि विपैले जन्तुओं का विप नष्ट करने मे रामबाण है।

अपामार्ग के पत्ते १ तोला, काली मिरच १० दाने खरल करके शुद्ध (ताजे) जल के साथ २ घूंट प्रात: सन्ध्या एक सप्ताह तक प्रयोग करते रहे तो अर्श समूल नष्ट होजायगा। पथ्य मे रोटी, घी, दूध आवश्यक है। अथवा इसके पत्ते घीकुवार के साथ घोट कर झरवेरी प्रमाण वटिका (गोली) बनाकर एक गोली प्रतिदिन सेवन करने से अर्श (बवासीर) तथा जलन्धर रोग भी शान्त होजाता है।

मलहम—अपामार्ग के पत्रो का रस सेर भर, लहसन तथा प्याज का रस पाव भर, मैनसिल १ तोला, लाही का तेल पाव भर, मधुमक्खी का मोम एक छटांक, उक्त तीनों (अपामार्ग, लहसन प्याज) के रस को तेल मे मन्द मन्द २ आंच से पकाकर जब (रस जलकर) तेल मात्र शेष रहे, तब सूक्ष्म पिसा हुआ मैनसिल डाल कर खूब घोटे। ठंडे होने पर शीशियो मे भर दे। इस मरहम को अर्श के मस्सो पर निरन्तर २-३ सप्ताह तक लगाने से निःसन्देह आराम होजाता है। इसी से दाद, खुजली, लूता विष्फोटक को भी तत्काल लाभ होता है।

अपामार्ग के पत्तों के रस में फिटकरी का फूला बटकर बटी (गोली) बनाले। आवश्यकता होने पर उसे पानी में घिसकर लगाने से रतौन्धी, परबाल अच्छे हो जाते है। इसके तण्डुल (चावल) शहद में पीसकर प्रयोग करने से चूहे का विप नष्ट होजाता है। इसकी जड़ का चूर्ण १ तोला नीचू के बीज ½ तोला दोनों को खरल करके शहद के साथ चाटने से कुत्ते का विप दूर हो जाता है। इसका रस दांत पर लगाने से दंत पीड़ा नहीं होती है। अपामार्ग का पञ्चाङ्ग (जड़, शाखें, पत्ते, फूल, फल) भस्म करके राख बनाले। उस राख को उससे अठगुने पानी मे डालकर मन्थन करके छोड दें। तत्पश्चात् उस पानी को नितार एक कढ़ाही मे मन्द आंच से पकावे। जब सब पानी सूख जाय तो कढ़ाई मे जो सफेद वस्तु शेष रहे वही अपामार्ग क्षार है।

यह क्षार विष नाशक है। क्षार ही नहीं, इसका आसब भी अधिक गुणबर्धक होता है।

अपामार्ग समूल, वेरी जड की त्वचा (छाल), वांसा (अडूसा)पत्र, रम्भा (केला) पत्र समभाग अर्थात् २, २ सेर प्रमाण कूट कर ४ सेर गुड़ आठ सेर पानी मे कुचल कर इसी में उक्त वस्तु भी डालकर हांडी मे मिलाकर यों ही बन्द करके छोड़ दे। तदनन्तर दूसरे दिन पपड़िया खार ३ तोला, सज्जीखार १½ छ०, यव खार १½ छ० उसी मटके मे डाल कर उसका मुंह बन्द करके १५-२० दिन तक रहने दें। जब खमीर चढ़ जावे, तब कपड़छन करके बोतलों में भर के बन्द रक्खें। मात्रा ½ तोला से १½ तो० तक अवस्था-नुकूल प्रातः सायं सेवन करें। श्वास, कास के लिये अनुभूत है। अपामार्ग की जड़ कूटकर उसका रस निकालें। रस से आधा शुद्ध तिल तैल मिलाकर मन्द २ आंच पर पकावें। जब तैल शेष रह जाय तो छानकर वोतलों में बन्दकर रक्खें। समोष्ण तीन-तीन चार-चार बूंद प्रति दिन कान में दो मास तक टपकाने से बधिरता नष्ट होकर श्रवण शक्ति बढ़ जाती है।

अपामार्ग सिद्ध करने की विधि—कृष्ण चतुर्दशी रविवार को शुद्धाचरण से निराहार व्रत करके सन्ध्या समय पुनः स्नान कर पूर्वाभिमुख हो रक्तअपामार्ग को भी स्नान कराकर श्रद्धा पूर्वक मौन होकर कुङ्कुम रक्तक्षतादि से कपूर गुग्गुल की धूप दें। अपितु त्रिगुणित रक्त सूत्र तीन बार उस धूप (अपामार्ग) मे बांध कर अपनी कामना का (जो इच्छा हो) नाम लेकर आमन्त्रित करके रात्रिभर "शिवे सर्वार्थ साधिके" मन्त्र का कीर्तन करें। दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र वाली सोमवती अमावास्या को सूर्योदय से पूर्व स्नान करके मौन होकर किसी लकडी से सम्पूर्ण जड़ अखण्डित उखाडे। उखाडने के पश्चात् पीछे को को न देखे न किसी से बोले। बस यही सिद्ध अनुभूत योग है। इसको बाहु पर बांधने से शीत पूर्वी विषम ज्वर तथा विच्छू का भयंकर विष जादू की तरह नष्ट हो जाता है।

प्रसव काल मे अत्यन्त कष्ट होने पर स्त्री की कमर में यह जडी बांध देने से सुखपूर्वक (विना कष्ट के) शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसव होते ही यह जड़ी तत्काल खोल देनी चाहिये। मृतक गर्भ जो तुरन्त बाहर न निकल सके, न कोई डाक्टरी सहायता का ही साधन हो, ऐसी दशा मे माता की मृत्यु के अतिरिक्त जीवन की आशा किञ्चित मात्र भी नहीं हो? ऐसे दारुण समय मे यदि कोई जीवनदातृ (संजीवनी) है तो वह सिद्ध अपामार्ग की जड़ रेशमी त्रिगुणित (तेसूती) तागे मे बांधकर जननेन्द्रिय मार्ग के द्वार पर कुछ भीतर को रखदे, कोई हानि नहीं, मृतक गर्भ विना कष्ट के बाहर निकल आयगा। तत्काल वही बूंटी (जड़ी) बाहर को खींच लेनी चाहिये। विलम्ब करने से कहीं गर्भाशय भी बाहर को न आजावे। इस बूंटी मे (बाहर खींचने की) आक-र्षण शक्ति है। कभी चतुर दाई की भी आवश्यकता नहीं। यही नहीं इसकी जड़ का चूर्ण दांतो पर मलने से वीर्य स्तम्भन होता है। अनुभूत है। इसकी जड़ उबाल कर ऋतुकाल मे एक सप्ताह तक पीने से बन्ध्यत्व नष्ट होकर सन्तानोत्पत्ति होती है। इसके तण्डुल की खीर खाने से क्षुधाग्नि (भूख) शान्त हो जाती है।

—श्री तारादत्त त्रिपाठी,
श्री ब्रह्मकुटी शिलौटी, भीमताल (नैनीताल)

ऊंटकटारा बूटी

श्री आत्माराम बर्वे शास्त्री

ऊंटकाटारा प्राय: जङ्गलो तथा खेतो के किनारे पथरीले स्थानों पर अधिक पाया जाता है। कई स्थानो पर देखा जाता है कि ताल मखाना क्षुप को ही ऊंटकटारा मानते एवं प्रयोग मे लाते है। पर यह गलत है।

परिचय–पत्ते सत्यानाशी की पीली कटाई से मिलते जुलते लम्बे कांटेदार होते है। पुष्प, श्वेत रङ्ग के कुछ नीलिमा लिये हुए होते है। प्रथम फल के समान उत्पन्न होकर उसके चारो ओर फूल लगता है। फल, अखरोट के समान प्रत्येक शाखा के सिरे पर लगता है जिस पर लम्बे लम्बे कांटे होते है। पक कर सूख जाने पर उसमे से रूई के समान सफेद रङ्ग की वस्तु निकलती है। बीज छोटे छोटे होते है। फल, पत्र दूर से दीख जाने पर यह बूटी पहचान मे आ जाती है।

आयुर्वेदीय गुण-धर्म–कड़वा, चरपरा, गरम, कफ वात नाशक, हलका, रुचिकारक, वीर्यवर्धक एव मूत्रकृच्छ्र, पित्तवात, प्रमेह, तृष्णा, हृदय रोग तथा विस्फोटक को दूर करने वाला है। बीज शीतल वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक तथा मधुर है। जड़ गर्भ-स्रावक एवं कामोद्दीपक है।

यूनानी गुण-धर्म–कड़वा, अग्निवर्द्धक, ज्वर-नाशक, यकृत् को उत्तेजना देने वाली, क्षुधावर्द्धक है तथा नेत्रो की पीड़ा, जीर्ण ज्वर, संधिवात, मस्तिष्क रोग में लाभदायक है। जड़ कामोद्दीपक, पौष्टिक तथा मूत्र खोलने वाली है।

प्रयोग —

(१) ऊंटकटारा की जड़ ५ तोला, खारक की गुठली ४ तोला, पीपल का फल ३ तोला तीनों औषधियों को छाया में सुखाकर कूट कपड़छन करे तथा समभाग मिश्री मिला ले। मात्रा ६ माशा सुबह शाम ताजा जल के साथ सेवन करें। यह योग पाचन शक्ति के लिए अचूक है। इसके कुछ दिन सेवन से भूख खूब लगती है तथा निर्बलता दूर होकर शरीर पुष्ट होता है।

उत्कण्टक (ऊंटकटारा)
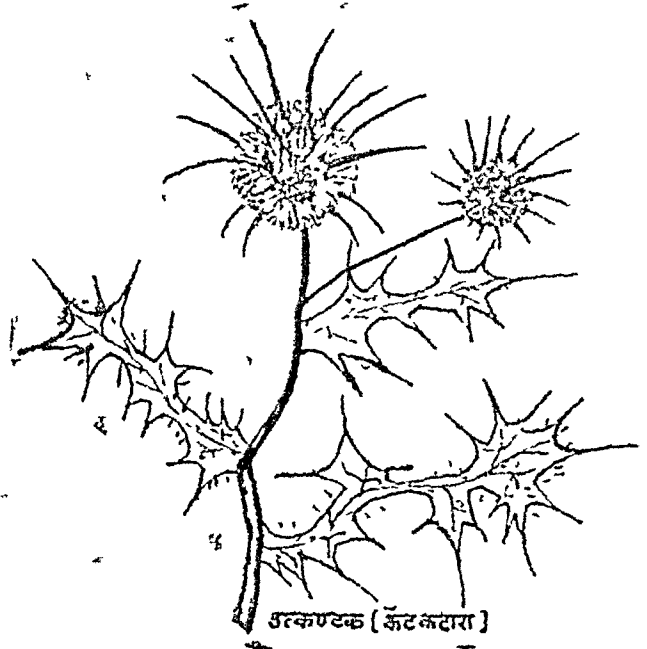
(२) ऊंटकटारा की जड़ की छाल १ तोला लें तथा छोटे छोटे टुकड़े करलें। बाद में १॥ पाव गाय के दूध में १॥ पाव पानी मिलाकर इसमें टुकड़ों को डालदें और आग पर पकने को रखदें। जब पकते पकते पानी जल जावे केवल दूध शेष रहे तब थोड़ी मिश्री मिलाकर छान ले। यह एक मात्रा है। सुबह शाम सेवन करे। इसके कुछ दिन सेवन करने से निराश नपुंसक रोगी पुंसत्व शक्ति प्राप्त कर सकता है। कई बार का अनुभव सिद्ध है।

(३) ऊंटकटारा की जड़ की, छाल ३ तोला, २ सेर पानी मे घोट छान कर तथा थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्र खुलकर उतर जाता है।

(४) ऊंटकटारा की जड़ को छाया मे सुखालें तथा बारीक पीसलें। ४ रत्ती पान में रख कर खाने से दमा खांसी एवं श्वास रोगों पर

अचूक गुणकारी है।

(५) ऊंटकटारा की जड़ को थोड़ी मात्रा में पीसकर स्त्री की नाभि के नीचे लेप करने से प्रसव सरलता से हो जाता है। तथा इस प्रयोग से प्रसव की पीड़ा भी दूर हो जाती है।

(६) ऊंटकटारा की जड़ पानी में घिसकर तोला भर पिला देने से तुरन्त प्रसव हो जाता है। इस प्रयोग को उस वक्त किया जाता है जबकि स्त्री भयङ्कर रूप से कष्ट मे पड़ी हो।

(७) ऊंटकटारा की जड़ अमावस्या के दिन या सूर्य ग्रहण के अवसर पर खोद कर लें।

नोट—कोई छुबटने न पावे, लाकर अपने पास रखलें। वक्त पर काम मे लावे।

गुण—जब स्त्री प्रसव मे हो तब उसकी चोटी मे यह जड़ रख दें। उसी समय बच्चा बाहर आ जावेगा चाहे जीता हो अथवा मर गया हो।

नोट—बच्चा बाहर आते ही यह बूटी तुरन्त चोटी से निकाल ले नहीं तो उस स्त्री का गर्भाशय बाहर निकल आवेगा। फिर जड़ी को दूध मे रखले। कई दिनों तक काम देगी।

(८) ऊंटकटारा की जड़ का छिलका ३ माशा, दालचीनी ४ रत्ती पानी के साथ खूब खरल करें तथा गुप्तांग पर लेप करे ऊपर से बंगला पान का पत्ता बाधे। यह योग ८-१० दिन तक लगातार करते रहें। इस प्रयोग से नसें ठीक हो जाती है। नुकसान कुछ भी नहीं होगा।

(९) ऊंटकटारा की जड़ का लेप करे तथा पीसकर अर्क पिलावें। सर्प, विच्छू का जहर उतर जाता है और रोगी ठीक हो जाता है।

(१०) सुरमा—ऊंटकटारा के फूलो के रस को काले या सफेद सुरमा मे खूब खरल करे। यहां तक कि १ तोला सुरमा मे १० तोला फूलो का रस समा जावे। फिर शीशियो मे सुरक्षित रखें। यह सुरमा नेत्रों के सभी रोगो के लिये उपयोगी है।

(११) ऊंटकटारा के फूलो का रस—ऊंटकटारा के छोटे छोटे फूलो को एकत्र कर छाया मे सुखाले और सुरक्षित रखें। आवश्यकता के समय ३ माशा फूल, २ तोला उत्तम गुलाबजल मे २४ घण्टे भिगोकर रखें। बाद में साफ मलमल के कपड़े से छान ले और शीशी मे भरलें। पिचकारी (ड्रापर) से एक एक बूंद नेत्रो मे डाला करे।

गुण—नेत्रों के जाला, फूला, धुन्ध, नक्तान्ध, लाली इत्यादि रोगों के लिये हितकारी है। एक दिन का बना हुआ कई दिनो तक चलता है।

(१२) ऊंटकटारा घृत—ऊंटकटारा की जड़ आधा सेर, सफेद संखिया की पूरी डली १ तोला दोनो को गाय के १० सेर दूध मे मिलाकर पकावें। जब बूटी का अर्क दूध मे उतर आवे तब उतार ले। दूध ठंडा होने पर दही (छाछ) थोड़ा सा डाल दे। दही जम जाने पर दूसरे दिन मथकर मक्खन निकाल लें। मक्खन को गरम कर घृत बनाले।

गुण—यह घृत कामोद्दीपक, मुख मण्डल को निखारने वाला, बाजीकरण, शक्ति को बढ़ाने वाला प्रमेह, स्वप्नदोष इत्यादि रोगो पर अकसीर है।

मात्रा—८ बूंद से १० बूंद तक एक चम्मच दूध में मिलाकर पिलादे। ऊपर से रुचि के अनुसार दूध पीलें।

(१३) प्रभावशाली लेप—ऊंटकटारा की जड की छाल, मदार की जड की छाल, सफेद कनेर की जड़ की छाल, धतूरा के जड की छाल चारो औषधि समभाग लेकर छाया मे सुखाले। बाद में कूट पीस चूर्ण करे। धतूरा के पत्तो के रस मे खूब घुटाई करे। बाद मे जङ्गली बेर के बराबर गोली बनाले। आवश्यकता के समय एक गोली शहद और भेड के दूध मे घोट कर गुप्तांग पर लेप करे। सूख जाने के बाद रति क्रीडा करे।

(१४) ऊंटकटारा चूर्ण—ऊंटकटारा की जड की छाल सुखाकर चूर्ण करे। मुगली दाना १ तोला, मिश्री २ तोला दोनो को पाव भर पानी मे रात्रि को भिगोकर रख दे। प्रातःकाल मलकर छान ले। ४ माशा चूर्ण इसमे मिलाकर सेवन करे।

गुण—इसके कुछ ही दिन सेवन करने से

पुराने से पुराना प्रमेह, सुजाक नष्ट हो जाते हैं।

(१५) ऊंटकटारा की जड़ की छाल ३ माशा, गेरू ३ माशा, मिश्री ६ माशा तीनों को चूर्ण कर लें। यह मात्रा एक है। प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग ठीक हो जाता है।

(१६) पौष्टिक चूर्ण—ऊंटकटारा की जड़ की छाल, शङ्खाहुली की जड़ की छाल, उड़द की छाल प्रत्येक २-२ तोला छाया में सुखाकर अलग अलग बारीक पीसकर बाद में मिलाले।

मात्रा—६ माशा दूध के साथ सेवन करें। यह योग शक्तिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक है।

(१७) शर्बत—ऊंटकटारा की जड १ सेर, शाखाऐं आधा सेर, पहाड़ी पोदीना १ पाव, तेजपत्र १ पाव, मुन्डी के फूल १ पाव, मुनक्का ½ पाव, प्रसिद्ध विधि के अनुसार शर्बत बनाले।

मात्रा—१॥ तोला। गुण—प्लीहा शोथ, यकृत्, पांडु आदि रोगों में अद्भुत गुणकारी है।

(१८) पौष्टिक चूर्ण नं० १—ऊंटकटारा के जड़ की छाल, केवाच के वीज, मूसली सफेद, तालमखाना, विदारी कन्द, शतावरी, बीजबन्द, मोचरस, गोखरू, सेमल के फूल, असगंध, जायफल, वंशलोचन, भांग, सोठ, उडद की दाल, गुरसुकलू की जड़। प्रत्येक ५-५ तोला। सर्वप्रथम उड़द की दाल को घी में भूंज लें। बाद में सभी औषधियों को कूट पीस छान चूर्ण तैयार करें तथा समभाग मिश्री मिलाले। मात्रा—३ माशा से ६ माशा तक सुबह शाम दूध के साथ सेवन करें।

गुण—यह चूर्ण अत्यन्त पौष्टिक रसायन है तथा प्रमेह को नाश करता है। स्वप्नदोष, शीघ्र वीर्य गिर जाना, वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ वीर्य का गिरना इत्यादि रोगों पर अमृत के समान गुणकारक है। यह चूर्ण शुक्र की विकृति को दूर कर वीर्य को गाढ़ा करता है तथा शरीर में बल बढ़ाता है।

—श्री वैद्य आत्माराम बर्वे शास्त्री
बल्देवगढ़ (टीकमगढ)

पाठकों की शंकाएँ

महोदय,

ब्रह्म वैवर्त पुराण गणेश खण्ड अध्याय ३२, श्लोक ४६ में जो वैष्णव ज्वर का वर्णन आया है उस ज्वर का वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थों में किस नाम से है तथा Medical term में उसका क्या नामकरण किया गया है? कृपया पूर्ण विवरण के साथ समाधान करने का कष्ट करें।

"सुदर्शन च शस्त्राणां व्याधीना वैष्णवोज्वरः।
तेजसा ब्रह्म तेजश्च वरेण्यं च नामम्यहम्॥

—वैद्य रुद्रदत्त मिश्र
पिपारा, पो० कुन्द (गया)

× × ×

महोदय,

धन्वन्तरि भाग ३४, अङ्क ५ पृष्ठ ६६० में प्राणायाम और आरोग्य सम्बन्धी लेख है जो योग्यतापूर्वक लिखा गया है। उसमें दो बातें और स्पष्ट हो जातीं तो बहुत सुन्दर था। खतरे का मार्ग दूर हो जाता।

(१) पृष्ठ ६६० कालम दूसरा १८ वीं लाइन में अब एक नथने से सांस खींचें और दूसरे से छोड़ें। यह क्रिया १०-१५ बार करनी चाहिये। यह स्पष्ट नहीं है कि एक ही नथने से खींचने दूसरे से छोड़ने का क्रम जारी रहेगा या छोडने वाले से सांस खींचना पड़ेगा और पहिले खींचने वाले से छोडना.......

(२) प्राणायाम पूरक कुम्भक रेचक करने के बाद यह स्पष्ट नहीं है कि अब दुबारा रेचक नथने से पूरक हो या जैसा पहिले किया गया है इससे बड़ी गलती हो सकती है। कृपया बहिर्द्वार स्पष्ट करिये ताकि समान सब लाभ उठा सकें।

—श्री केदारनाथ अवस्थी वैद्य
मु० पो० सेमरझील (कानपुर)

सीताफल

श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य

कहते है कि राम की प्रतीक्षा में अशोक वन मे बैठी सीता जी एक कंकड रोज बोती थीं। उनके सतीत्व-बल से वह कंकड़ बीज की तरह अंकुरित हो कर फलदार वृक्ष बन जाया करता था। सीता के हाथों उपजाये जाने के कारण यह वृक्ष 'सीताफल' कहलाया जाने लगा।

सीताफल के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते है। ये पेड़ प्रकृति की क्रूरता को किस हद तक सहन कर सकते है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि चट्टानो की दरारो मे भी इनके अंकुर विकास पा जाते हैं। और इनकी बहुतायत भारत मे किस कदर है यह इस बात से आँकी जा सकती है कि जंगली रूप मे बिना काश्त पैदा होने पर भी अकेले आंध्र मे सीताफल ने १ लाख एकड़ भूमि ले रखी होगी। इसको हिन्दी बोलने वाले सीताफल या शरीफा कहते है। इसके पेड़ मे चार पांच वर्ष के बाद मे फल आने लगता है।

इसके खाने से तृप्ति होती है, रक्त बढ़ता है। खाने मे स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक होता है। रक्त-पित्त और वात को शान्त करता है। बल को बढ़ाता है, कफ को उत्पन्न करता है। प्रकृति मे अत्यन्त शीतल और हृदय के लिए हितकारी है। मांस को बढ़ाता है एवं दाह को शान्त करता है।

कुन्नूर की रसायन शाला के परीक्षणों के अनुसार सीताफल मे विटामिन 'ए' और 'सी' तथा ग्लूकोज सेव से अधिक होते है।

भारत मे सीताफल की जाति के चार फल उप-लब्ध होते है—सीताफल, रामफल, लक्ष्मण फल जिसे तेलुगु में 'मुडंला' कहते हैं। इनमे से सीता-फल एवं लक्ष्मण फल अधिक प्रचलित दिखाई देते है। लक्ष्मणफल को आंध्र मे 'गरीबो का सेव' माना जाता है। सीताफल अधिकतर खाने के ही काम मे आता है। यह स्वास्थ्य और बल को बढ़ाने वाला है। इसके अलावा सीताफल का और कोई अधिक उपयोग नहीं होता है। सिर मे जुएं पड़ जाने पर सीताफल के बीजो को इकट्ठे करो। उन्हें बारीक पीस कर सिर मे लगाना चाहिये। रात को सोते समय एक मोटा कपड़ा सिर मे कस कर बांध कर सो जाना चाहिये। इससे सिर के जुऐ सब मर जाते हैं। स्मरण रहे यह दवा आंखो के लिए लिये नुक-सानदायक है अतः आंखो मे न लगने पावे, ध्यान रखना चाहिये? जलन को शान्त करने के लिए—सीताफल को रात मे ओस मे रख देना चाहिये और सवेरे इसके सेवन करने से शरीर की जलन और दाह शान्त हो जाती है।

बागवानी विशेषज्ञो द्वारा १५ वर्षों से सीताफल में बीजों की अधिकता को दूर करने के प्रयत्न हो रहे हैं। अन्त मे आंध्र के मेडक जिले मे सैंगरेड्डी-स्थित राजकीय फल अनुसंधानशाला के विशेषज्ञो ने सीताफल को अब बीजरहित स्वादिष्ट फल बना दिया है। उसी जाति के एक अन्य फल लक्ष्मण-फल के पौधे से संयोग कराकर इस नये फल को वैज्ञानिको ने उपजाया है। फल मे सीतफल सरीखा रसदार गूदा है और लक्ष्मण फल का जरा-सा खट्टापन है। इसका नामकरण 'ऐटीमोया' किया गया है। परन्तु यह नाम अन्य फलो सरीखा आकर्षक तथा भव्य नहीं है।

प्रायः लोगो का विश्वास है कि यह फल गोरी जातियो द्वारा अमेरिका से भारत लाया गया है, क्योंकि इसी जाति का एक फल अमेरिका मे पाया जाता है। परन्तु यह धारणा निर्मूल है। सीताफल भारतीय फल है। इसका सबसे बडा प्रमाण अजंता और एलोरा की प्राचीन गुफाऐं है जहां पर सीताफल के अंकित चित्र हमे उपलब्ध होते है।

—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य आयुर्वेदरत्न,
४५ शनि गली, जूनी, इन्दौर।

प्रवाहिका नाशक तीन योग--

१-बेलगिरी २ तोला, नागर मोथा २ तोला, इन्द्रजौ २ तोला, धाय के फूल, मोचरस, सोंठ प्रत्येक २-२ तोला। उपरोक्त दवाओ को कूट-चूर्ण कर बारीक बनाले तथा कपड़छन कर रखलें।

मात्रा—२ माशे से ४ माशे तक दिन में ३-३ बार सेवन करे।

अनुपान—दवा से आधी मिश्री मिलाकर फांक जाऐ तथा ऊपर से जल पी ले। पथ्य मे दही भात मिश्री खाऐ।

गुण—इस दवा के सेवन से आंव, खून के या सादा, पतले दस्त निःसंदेह तीन ही दिन मे ठीक हो जाते हैं।

२-एक सफेद प्याज को छुरी से खूब महीन-महीन काटले। तत्पश्चात् उसे गिनकर छै पानी से अर्थात् छः बार खूब मलमल कर धो डालें।

सेवन विधि—धोये हुए प्याज को एक कांसे या शीशे के बर्तन मे रखकर गाय का ताजा दही मिलाकर खा जाये। पथ्य में दही भात मिश्री खाये। उपरोक्त विधि से दिन में तीन बार दवा को सेवन करने से भयङ्कर से भयङ्कर आंव की बीमारी ३ दिन मे आराम हो जाती है।

३-संगजराहत,उजला चूना,बेलगिरी ५-५ तोला इन सारी दवाओ को कूट चूर्ण कर कपड़छन कर एक बोतल मे रखले।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक दिन मे तीन वार।

अनुपान—दवा मे दही मिलाकर सेवन करे।

गुण—इस दवा को सेवन करने से भयङ्कर से भयङ्कर आंव एवं दस्त की बीमारी ३ दिन में ही आराम हो जाती है। वेग को एक दो खुराक के सेवन से ही रोक देता है।

अर्श नाशक घृत—

कड़वे नीम (वकायन) २१ पत्ते, मूंग का आटा २ छटांक, गाय का घी १ पाव। वकायन के पत्ते को महीन महीन पीसकर मूंग से छिलका निकाली हुई दाल के वेसन (आटा) को मिलाकर सान दे और उसी की घी मे पूरी बनाले। तत्पश्चात् पूरी को फेंक दे और कढ़ाही मे बचे हुए घृत को एक सफेद बोतल में रखले।

सेवन विधि—दवा को सुबह के समय एक एक तोला खाना चाहिए। दवा सेवनकाल मे खट्टा, तीता, मीठा, तेल, दही नमक खाना बिलकुल निषेध है।

गुण—इस दवा को ४१ दिन तक नियमित रूप से सेवन करने पर खूनी बादी दोनों प्रकार के अर्श निश्चय ही जड़ से आराम हो जाते है।

व्रण नाशक मलहम—

तूतिया १॥ मासा, फिटकरी ३ माशा, चूना ६ माशा कडवा तेल १० तोला। सभी दवाओं को चूर्णकर बारीक बनाले। तदुपरांत कासे के थाल मे कड़वा तेल डालकर सभी दवाओ को उसमे छोड दे और पचने भर पानी देते जाऐ तथा हाथ से खूब मन्थन करे। करीब छः घण्टे तक इसी तरह करते रहे। सफेद मक्खन जैसा मलहम तैयार हो जायगा।

व्यवहार विधि—मलहम लगाने के पूर्व जख्म को अच्छी तरह नीम के पत्ते या छाल मिलाकर औटे हुए पानी से धो डाले। शीघ्र ही फायदा दिखलायेगा।

गुण—इस मलहम के सेवन से हरेक तरह का जखम फोड़ा फुंसी जला हुआ व्रण आदि भयङ्कर से भयङ्कर जख्म ठीक हो जाता है। दवा लगाने के पहले दिन जखम को अधिक बढ़ा देता है उसके बाद फायदा दिखलाता है अतः रोगी को घबड़ाना नहीं चाहिये। जब समझ जाए कि जखम दो चार रोज में बिलकुल भर जायगा तो मलहम लगाना छोड़ देना चाहिए नहीं तो मांस ऊपर तक उठ जावेगा।

आंख दुखने पर अनुभूत योग—

इमली के हरे पत्ते १ तोला, फिटकरी आधा तोला दोनों को पानी के साथ खूब महीन पीस लें। उसके बाद थोड़ा गरम करके आंख के चारों तरफ (पलकों के ऊपर भी) गाढ़ा लेप करदें।

गुण—दिन में ३ बार इस दवा के लेप करने से कैसी भी सूजन, लाली, दर्द क्यों न हो एक से दो दिन में निःसंदेह आराम हो जाता है। लाली को एक दो बार के लेप से ही काट देता है।

—श्री डा० अखिलेश्वरप्रसाद शर्मा आयु० शा०
श्री गांधी दातव्य औषधालय, मोदनगंज (गया)

× × ×

कृच्छ्रमेह (सुजाक) पर—

खाने की—कबावचीनी, मिश्री, नौसादर तीनों ५-५ तोला। सबको महीन पीस कर सुबह शाम ४-४ माशे, श्वेत चन्दन घिसे पानी से खा लेवें। २१ दिन सेवन करें।

पिचकारी—फिटकरी २ तोला, रसौत २ तोला पीसकर पिसी कबाबचीनी आधा तोला अफीम ३ माशा पिसा गेरू १ छटांक २ बोतल पानी में मिश्रण बना रख लें। सुबह शाम गुप्तेन्द्रिय में पिचकारी दें। लगता नहीं कष्ट नहीं होता खून मवाद बन्द करता है।

वृश्चिक दंश की सर्वोत्तम दवा—

अशुद्ध काली या सफेद या पीली किसी संखिया को पानी में रगड़कर पतला लेप लगादें, तुरन्त फायदा होगा।

खालित्य पर—

अगर कहीं के १ रुपया या २ रुपया भर बाल उड़ रहे हों तो अशुद्ध जैपाल (जमालगोटा) की गूदी पानी में पीसकर सिर्फ १ या २ बार लेप कर दें। वहां दाने पड़ कर पानी निकलेगा और जख्म हो जावेगा। बाद में नारियल का तेल लगाते रहें। प्रथम बाल भूरे निकलेंगे, बाद में काले हो जावेंगे। शतशोनुभूत है। अगर सारे बाल या शिर के आधे बाल झड़ चुके हों तो न लगावें क्योंकि तकलीफ अधिक होगी।

—श्री ब्रह्मेश्वर शर्मा वैद्य भास्कर, आयु०
ब्रह्मेश्वर वैदिक खोज मंडल,
नवतनवां बाजार (गोरखपुर)

× × ×

गर्भाशय विकृति पर—

माई छोटी, माई बड़ी, मोचरस, माजूफल, मैनफल, मकोय खुश्क, मजीठ, मौलश्री की छाल, वायविडङ्ग, वायखुम्भा, बबूल की फली, बाबूना, बालछड़, बहेड़ा, कत्था, कमरकस, कपूर, फिटकरी सफेद, फिटकरी लाल, हर्रा बकुली, अनार का छिलका, अजवाइन, आंवला, गूलर छाल, गुलधावा गोंद चूनियां, गोखरू छोटा, लोबान नाखूना, हर्राजङ्गी, पलंगतोड़, सुपारी चिकनी, इन सब औषधियों को समभाग लेकर वस्त्रपूत चूर्ण कर लेवें। पुनः देशी शराब में घोटकर झरबेरी के प्रमाण गोलियां बना लेवें। इन गोलियों को सर्षप तेल से चिकना कर योनि में प्रातः सायं धारण करें। यह योनिकन्द, योनि शिथिलता, गर्भाशय का नीचे झुक जाना, तथा गर्भाशय शोथ पर लाभदायक है।

—श्री कृष्ण कुमार स्वर्णकार,
कृष्णा दातव्य औषधालय, फखरपुर, बहिराइच।

—शेषांश पृष्ठ ८२८ पर

समाचार एवं सूचनाएँ

४३ वां अ. भा. आयु० महासम्मेलन दिल्ली—

दिनांक २६-६-१६६० (डाक से)—अ०भा०आयुर्वेद महासम्मेलन का चिर प्रतीक्षित ४३ वां वार्षिक अधिवेशन, जो कि गत दो वर्ष से स्थगित था, अब दि० २४, २५ और २६ दिसम्बर १६६० को दिल्ली मे होगा। यह निर्णय दि० १५-६-६० को स्वागताध्यक्ष कविराज श्री वैद्यनाथ सरकार के निवास स्थान पर सम्पन्न स्वागत समिति की कार्यकारिणी समिति तथा महासम्मेलन स्थायी समिति द्वारा गठित 'तिथि निर्धारण उप-समिति' की सम्मिलित बैठक मे किया गया है। इस बैठक मे महासम्मेलनाध्यक्ष कविराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा एवं प्रधान मन्त्री श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य की उपस्थिति उल्लेखनीय है।

स्वागत समिति के सदस्यो एवं कार्यकर्त्ताओ से सानुरोध प्रार्थना है कि तन-मन-धन से अधिवेशन की सफलता के लिये प्रयत्नशील होकर आयुर्वेदोन्नति के इस पुण्य कार्य मे सहयोग के भागी बने।

—स्वागत मंत्री

× × ×

भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ मानकपुरा दिल्ली का परामर्श मण्डल

भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक संघ आयुर्वेदानुसार ही जनता की सेवा कर रहा है। इसके कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए देश के विभिन्न भागो के १२ आयुर्वेदज्ञो का आगामी वर्षों के लिये परामर्श मण्डल बनाया गया है।

× × ×

किशनगढ़ वैद्य सभा का चुनाव—

दिनाक २६-६-६० को मदनगंज मे श्री महावीर औषधालय मे किशनगढ़ वैद्य सभा की एक सभा श्रीमान् वैद्य राधावल्लभ जी व्यास मदनगंज की अध्यक्षता में हुई। सभा का विधान पास हुआ व इसी समय सभा का निम्नाङ्कित चुनाव हुआ व एक ११ सदस्यों की कार्यकारिणी समिति का गठन हुआ। चुनाव इस प्रकार हुआ—

अध्यक्ष—वैद्य प० राधावल्लभ जी व्यास
उपाध्यक्ष—वैद्य श्री पुरुषोत्तमलाल जी शर्मा
मन्त्री—श्री वैद्य गोकुलचन्द्र जी शर्मा भिष०
उपमन्त्री—श्री वैद्य कल्याणसिंह जी
कोषाध्यक्ष—वैद्य मन्नालाल पाटनी ।

—मन्त्री

× × ×

सरदार शहर में पारद संस्कार की अभूतपूर्व योजना—

पारद संस्कार प्रेमियो की एक सभा १-६ ६० को परमहंस स्वामी बालकनाथ जी वैद्य की अध्यक्षता मे हुई जिसमे यह निर्णय किया गया कि जून के अन्तिम सप्ताह तक पारद के संस्कार प्रारम्भ कर दिये जाये। इस योजना द्वारा इन दोषों का प्रत्यक्ष रूप से निराकरण कर जनता जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत किया जावेगा। बाद में अठारह संस्कार सम्पादित किये जायेगे।

रस चिकित्सा प्रेमियो को इस पारद अनुसंधान सम्बन्धी स्वर्ण अवसर पर सत्परामर्श व सहयोग के लिए आमन्त्रित किया जाता है। यह वैज्ञानिक कार्य रसवैद्य पं० नीलकण्ठ जी शर्मा भीलवाड़ा निवासी के संरक्षण मे सम्पन्न होगा।

इस समिति के अध्यक्ष व मन्त्री क्रमशः आयुर्वेद सेवी सेठ श्री जयचन्दलाल जी सेठिया तथा वैद्य सोहनलाल दाधीच आयुर्वेदाचार्य और कार्य समिति के पांच अन्य सदस्य निर्वाचित हुए।

—मन्त्री

जलोदर (ASCITES)

वैद्य शिवचरण ध्यानी, बी. आइ एम, एस, आयुर्वेदाचार्य

'जलोदर' शब्द से स्पष्ट है कि इस व्याधि मे उदर मे जल भर जाता है। उदर एक व्यापक शब्द है। उदर मे कहाँ जल भर जाता हे, इस बात को स्पष्ट करने के लिए जल की उदर मे 'त्वग्मासाभ्यन्तर स्थिति' बतलाई है। अत स्पष्ट है कि जलोदर मे जल उदर के त्वचा और मास के बीच मे एकत्रित होता है। प्राकृत अवस्था मे जल वहाँ नही जाता और एकत्रित भी नही होता हे। जल का वहाँ जाना 'विमार्ग गमन' कहलाता है। 'विमार्ग गमन' स्रोतोदुष्टि का लक्षण है। क्योंकि इसमे उदक का विमार्ग-गमन होता है, अत तद्वह स्रोतस (उदकवह स्रोतस) की दुष्टि का अनुमान करते है। विमार्गगमनार्थ उदकवह स्रोतस की (या किसी भी स्रोतस की) दुष्टि दो प्रकार की हो सकती हे। (१) आघात से उदकवह-स्रोतस कट जाय या (२) उदकवह स्रोतस मे अवरोध हो। क्योकि जलोदर के कारणो मे आघात कोई कारण नही है, अत प्रथम सभावना का निराकरण हो जाता है। दूसरी सभावना मे 'सग' का प्रश्न हे। सग दो प्रकार से उत्पन्न हो सकता है। (१) स्रोतस मे रचना सम्बन्धी विकृति (Structural lesion आ जाय अथवा (२) उसमे कोई पदार्थ रुक जाय। आयुर्वेद का यह सामान्य नियम हे कि जिन व्याधियो मे रचना सम्बन्धी विकृति प्रधान घटना होती है, उनका नामकरण उन्ही अवयवो के आधार पर किया जाता है, यथा ग्रहणी, उर क्षत आदि। यत 'जलोदर' शब्द किसी अवयव या स्रोतस (उदकवह) का द्योतक नही हे, अत मान लेना चाहिए कि इसमें उदकवह स्रोतस और तन्मूल मे कोई रचना-सबधी विकृति नही आती हे। दूसरी सम्भावना है कि कोई पदार्थ उस स्रोतस मे रुक जाय। इसमे भी दो बाते हो सकती है—या तो उस स्रोतस मे प्रवाहित होनेवाला दूष्य विकृत होकर सग कर दे, या दोष वहाँ पहुँच कर सग कर दे। उदक किसी भी विकृति मे शरीर मे 'सग' उत्पन्न नही कर सकता, अत दूसरी सभावना सत्य सिद्ध होती हे—अर्थात् दोषो के सग। सग किसी गुरु दोष से अधिक हो सकता हे। दोषो में कफ सबसे गुरु है। परन्तु इसमे पिच्छिलता आदि वैकारिक गुण आने चाहिए जिससे वह अमुक स्रोतस से चिपक जाय और सग कर दे। कफ मे पिच्छिलता 'आम' से उत्पन्न होती हे और आम अग्निमाद्य का अनिवार्य परिणाम हे। परन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार निश्चित किए गए कफादि के स्थानो से उनको अन्यत्र ले जाना वायु का कर्म है, अत इसमे वायु का भी हाथ होना चाहिए।

उपरोक्त आधार पर ही जलोदर त्रिदोपज व्याधि निश्चित होती है। पूर्व लिखित पक्तियो के आधार पर यो कह सकते है कि—निदान से तीनो दोषो का प्रकोप होता है। पित्तदुष्टि से अग्निमाद्य और परिणामस्वरूप 'आम' की उत्पत्ति होती है। यह आम प्रदुष्ट कफ को अधिक पिच्छिल कर देता है, जिसे वायु उदकवह स्रोतस मे पहुँचाकर सग उत्पन्न कर देता हे और परिणामस्वरूप जल का विमार्ग-गमन होता हे जिससे वह जलोदर को उत्पन्न कर देता हे। इसी आधार पर इसकी सम्प्राप्ति को यूँ समझ सकते है

१.	दोप	त्रिदोप
२	दूष्य	उदक (रस)
३	स्रोतस	उदकवह
४	अधिष्ठान	उदर के 'त्वग्मासाभ्यन्तर'
५	स्रोतोदुष्टि लक्षण—सग—विमार्गगमन	

उदक ही रोककूपो से निकलने पर स्वेद और मूत्रमार्ग से निकलने पर मूत्र कहलाता है। साघटनिक विभिन्नता के कारण इसे भिन्न-भिन्न सज्ञायें दी गई है। लेकिन उदकभाव सब मे है। अत उदकवह स्रोतस की दृष्टि मे स्वेदवह तथा मूत्रवह स्रोतस की भी दुष्टि हो सकती हे और उनकी दुष्टि के लक्षण भी मिलते है।

यह तो जलोदर की सामान्य सम्प्राप्ति हुई। यहाँ पर इस बात का स्पष्टीकरण करना भी उचित है कि उदकवह स्रोतस की रचनासम्बन्धी विशेपता का अस्तित्व नही है। कुछ स्रोतसो का पृथक् परिगणन इसलिए किया गया है कि उनमे रहने वाले या उनमे कल्पित द्रव्यो (धातु—मलो) की विकृति से विशिष्ट रोग उत्पन्न होते है। यह शास्त्र-सम्मत तथ्य है कि रस की तरलता उदक से बनी हुई रहती

है। वस्तुत उदक के ले जाने वाले पृथक् स्रोतस न होकर रसवह (रक्तवह भी) स्रोतस ही रचना की दृष्टि मे उदकवह स्रोतस भी कहे जा सकते है। उदक का रस से पृथक् कार्य है तथा उसकी व्याधियाँ भी रसज व्याधियो से पृथक् है, अत क्रिया दृष्टया उदकवह स्रोतस की कल्पना की गई है।

जलोदर की उत्पत्ति मे तीन प्रमुख कारण भी हो सकते है --

१ प्राणदुष्टि--प्राणवायु की दुष्टि से कई व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती है। प्राणवायु की ऐसी दुष्टि, जिससे उदकवह स्रोतस पर प्रभाव पडे, जलोदर उत्पन्न कर सकती है। जैसी कि कहा जा चुका है कि उदकवह स्रोतस और रसवह स्रोतस रचना-दृष्टया एक है और रसवह स्रोतो का मूल हृदय है। हृदय को नियन्त्रित रखना--प्राणवायु का कर्म है। अत प्राणवायु की ऐसी दुष्टि, जिससे हृदय मे दुष्टि हो जाय, जलोदर उत्पन्न कर सकती है (Ascites dueto heart)

२ अग्निदुष्टि--अग्निदुष्टि से आम की उत्पत्ति और उसका जलोदर की उत्पत्ति मे भाग लेना तो सामान्य सम्प्राप्ति मे कहा ही जा चुका है। फिर पुन 'अग्निदुष्टि' को क्यो लिखा ? । इसलिए कि अग्नि और पित्त मे अभेदान्वय करके तथा पित्त का सम्बन्ध यकृत् मे स्थापित करके यकृत् की विकृति से रक्तवह स्रोतस (,अप्रत्यक्षतया उदकवह स्रोतस) मे विकृति मानकर जलोदर की उत्पत्ति मानना अभिप्रेत है। अत यकृत् की विकृति से भी जलोदर हो सकता है (Ascites dueto liver)।

३ अपान दुष्टि--अपान की ऐसी दुष्टि, जिससे उदक पर प्रभाव पडे, जलोदर उत्पन्न कर सकती है। अपान वायु का एक कार्य मूत्र (निर्माण तथा) विसर्जन भी है। यह मूत्रवह स्रोतस पर नियन्त्रण रखता है। अत इसकी ऐसी विकृति, जिससे मूत्रवह स्रोतस तथा तन्मूल वृक्को मे विकृति आ जाय, जलोदर उत्पन्न कर सकती है (Ascitis dueto kidneys)।

इन तीन कारणो के अतिरिक्त, प्राय सभी उदर रोग जलोदर मे परिवर्तित हो सकते है--ऐसा आचार्यो को मान्य है। इसमे यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, क्षतोदर आदि भी अन्त मे जलोदर मे परिवर्तित हो सकते है। सामान्य सम्प्राप्ति मे क्षत से जलोदर सिद्ध नही होता था। इस मान्यता से क्षत से भी जलोदर स्वीकार्य है। ऐसी अवस्था मे उदक का विमार्ग गमन उदकवह स्रोतस के कट जाने से मानना चाहिए, दोनो के द्वारा सग से नही।

प्रोफेसर, काय चिकित्सा,
आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर

इस प्रकार जलोदर के तीन प्रकार के विशिष्ट कारण और सम्प्राप्ति होती है।

१ सामान्यत दोषो द्वारा उदकवह स्रोतस मे सग और परिणामस्वरूप उदक का विमार्ग गमन। इसमे क्षत तथा स्रोतस मे रचना-सम्बन्धी विकृति कारण नही है।

२ प्राण, अग्नि और अपान की दुष्टि से क्रमश हृदय, यकृत् और वृक्को मे विकृति (रचनात्मक) और परिणामत जल का विमार्ग गमन।

३ अन्य उदर रोगो के उपद्रवस्वरूप जलोदर की उत्पत्ति। इसमे क्षत तथा किसी अवयव की रचना-सबधी विकृति (जैसा कि 'यकृद्दाल्युदर' नाम मे स्पष्ट है) भी सम्मिलित है।

जलोदर का निदान--जलोदर के निदान मे कोई कठिनाई नही होती है। जलोदर के कारण का पता लगाना अवश्य कठिन हो जाता है। प्रथम दृष्टि से ही रोगी का उन्नत-उदर दिखाई देता है। उन्नतोदरावस्था निम्नलिखित कारणो से उत्पन्न हो सकती है

१ वसा, २ बालक, ३ विट्, ४ वायु ५ वारि। प्रथम चार कारणो से उत्पन्न उन्नत-उदर मे 'परिवृत्त नाभि' तथा 'दृतिवत् क्षोभ और कम्प' नही मिलते है। परन्तु वारिज उन्नत-उदर मे ये आवश्यक रूप से मिलते है। इसके अतिरिक्त अन्य लक्षणो के आधार पर भी जलोदर का निदान किया जा सकता है। यह पता लगाना भी आवश्यक है कि किस विशिष्ट कारण से जलोदर उत्पन्न हुआ है--तभी सफल चिकित्सा सम्भव है। यदि अवयवो (हृदय, यकृत् और वृक्क) की विकृति से जलोदर उत्पन्न हुआ हो तो उनकी विकृति के अन्य लक्षण भी मिलते है तथा परीक्षा करने पर उनकी विकृति का ज्ञान हो जाता है। साथ ही हृद्-विकृति मे प्रथम पैरो पर सूजन दीखती है जबकि वृक्क-विकृति मे चेहरे पर। यकृत् विकृति मे प्रथम उदर मे और पश्चात् अन्यत्र। यदि जलोदर उपद्रव-स्वरूप उत्पन्न हुआ हो तो रोगी का इतिवृत्त और रोग का इतिहास महत्वपूर्ण सहायक होते है। जलोदर का सहसा उत्पन्न होना और वेदनाधिक्य का होना क्षत से उत्पन्न जलोदर की ओर सकेत करता है। अन्यथा जलोदर एक चिरकारी व्याधि है।

इस प्रकार पूर्वोक्त आधार पर जलोदर का तथा उसके कारणो का ज्ञान होता है।

वातरक्त में घृत-चिकित्सा

वैद्य अम्बालाल जोशी, आयुर्वेदाचार्य

वातरक्त रोग एक द्वि दोषज रोग है। इसकी उत्पत्ति के अनेक कारणो मे से एक कारण है भोजन की विविधता तथा रूक्ष भोजन की अतिमात्रा मे सेवन। यह रोग वात के विकृत होकर विवृद्ध होने पर तथा रक्त द्वारा अवरुद्ध वात के अति क्रुद्ध होने पर उत्पन्न होता है। जोडो मे अति पीडा होना इसका सामान्य लक्षण है। इस रोग मे सर्व-प्रथम वात का विकृत होना ही सिद्ध होता है। वात के विकृत होने के कुछ कारण हैं और वे शास्त्रो मे इस प्रकार है —

"व्यायाम, लघन, गिरना, अगादि के भग, क्षय, जागरण, वेग-धारण, अत्यन्त शोक, शीत, अति भय, क्षोभ, रूक्ष, कषाय, तिक्त और कटु पदार्थों के सेवन, क्रोध, वर्षा ऋतु में भोजन के पच जाने पर और दिन-रात्रि के उत्तर भाग मे वायु प्रकुपित होती है।"

उपरोक्त कारणो से दूषित हुआ वायु रक्त को भी दूषित कर उसके सयोग से स्वय और अधिक दूषित होकर शूल को बढाता है। उपरोक्त दोष-वृद्धि के परिणाम-स्वरूप परिपीडन की उग्रता और बढती है। निदान मे रक्त तथा वात दोनो के प्रकोप के लक्षण भासित होते हैं। **वात-प्रकोप के लक्षण निम्नलिखित हैं।**

प्रकुपित वायु शरीर मे अस्सी प्रकार के रोग उत्पन्न करता है और वह बल, वर्ण, सुख और आयु को नष्ट करने के लिए तत्पर रहता है। मन को क्षुब्ध करता हे तथा सारी इन्द्रियो को स्थान भेद से नष्ट करता हे। गर्भ को नष्ट या विकृत बना देता है अथवा अति काल तक रोके रखता है। भय, शोक, मोह, दैन्य, अतिप्रलाप आदि लक्षण उत्पन्न कर प्राणो को रोक देता है।

उपर्युक्त कारणो के अतियोग से कुपित हुआ वायु रक्त को दूषित कर स्वय भी अपेक्षाकृत अधिक प्रकोप को प्राप्त होता है। और उसके परिणाम की उग्रता भी अधिक बढ जाती है। निदान मे रक्त तथा वात दोनो के प्रकोप के लक्षण अलग-अलग या सयुक्त रूप से भासित होते हैं। वात द्वारा दूषित रक्त का स्वरूप चरक ने 'अरुणाभ भवेद् वाताद् विशद फेनिल तनु" (चरक सू० २४।२०।२१) कह कर वात से दूषित रक्त को वर्ण मे कृष्णारुण, पतला, रूक्ष, फेनयुक्त तथा शीघ्रगामी बताया है। सुश्रुत ने भी इसे "तत्र फेनिलमरुण कृष्णपरुप तनु शीघ्र अस्कन्दि च वातेन दुष्ट" कह कर उपरोक्त कथन का समर्थन किया है साथ ही न जमने वाला गुण अधिक बताया हे।

रक्त विकृत होने के कारणो का उल्लेख करते हुए सुश्रुत ने (सूत्र २१।२५ तथा सूत्र २१।२१ मे) क्रोध, शोक, चिन्ता, भय, श्रम, उपवास, मैथुन, अधिक चलना, अग्नि, आतप तथा वायु का अधिक सेवन, आघात, तीक्ष्ण, उष्ण, अतिलवण, क्षार, अम्ल, कटु, विदाही (देर से पचने वाला तथा अम्ल पाक को प्राप्त होने वाला), अतिद्रव, गुरु, स्निग्ध, प्रकृति विरुद्ध, मात्राधिक, विषम, सडे-गले पदार्थो का अतिसेवन, तिल तैल, खली, कुलथी, माष, सरसो, अलसी, अदरख, नीबू, मूली, तुलसी, अजवायन, बनतुलसी, सैंजना शालिधान, राई, गण्डीर, जलपीपल, तुम्बुरू, शृगवेरिका गन्धतृण, कृष्णजीरक, वनयवानी, गाजर, प्याज, लहसुन पिण्डालु, दही, सिरका, तक्र, छैना, सौवीरक, विविधमद्य खट्टे फल, गोद, मत्स्य, बकरी-भेड आदि, जलज, आनूपज विलेशय तथा प्रसहो के मास का अति सेवन, अध्यशन अजीर्ण, अति भोजन, खाकर दिन मे सोना, वमन का वेग रोकना, समय पर रक्त मोक्षण न करना तथा शरद्ऋतु इनसे रक्त प्रकोप को प्राप्त होता है। सक्षिप्तत जो कारण पित्त को प्रकुपित करते हैं वे ही रक्त को भी प्रकुपित किया करते है।

चरक ने—"विद्रधिरक्तमेहाश्च प्रदरो वातशोणितम्' कह कर वातरक्त रोग को रक्त-प्रकोपक रोगो मे स्थान दिया है। सुश्रुत ने भी चरक के इस कथन का समर्थन सूत्र स्थान अ २४।९ मे किया है।

इन रोगो की सप्राप्ति दोष के प्रकोपो की स्थिति पर निर्भर है। दोष जितने अशो मे प्रकोप को प्राप्त होता है तथा जिधर उस दोष के प्रकोप की प्रवृत्ति होती है वे ही लक्षण अधिक प्रकट होते हैं। सभी लक्षणो का प्रकार

होना आवश्यक नही है। अत वायु द्वारा प्रकुपित रक्त शूल आदि लक्षण प्रकट करता है। ये सम्पूर्ण प्रकोप आदि रोगी के आहार-विहार पर निर्भर है।

वातरक्त रोग दोष प्रधान रोग है न कि रक्त-प्रधान। वात द्वारा दूषित रक्त जिसके प्रकोपक लक्षण पित्त के समान है उस की चिकित्सा करते समय इन विकृतियो का ध्यान रखना आवश्यक है। इस रोग के उपचार मे चरक ने रक्तज रोगो मे रक्त और पित्त का शमन-विरेचन, उपवास तथा रक्तमोक्षण करने का निर्देश किया है तथा आगे सुश्रुत ने भी रक्ताल्पता की स्थिति मे रक्तवर्धनार्थ लघु, अनति शीत, स्निग्ध, क्वचिदम्ल किम्बा अनम्ल आहार का सेवन करने का निर्देश दिया है।

इस प्रकार उपरोक्त लक्षणो का अध्ययन करते हुए निदान के अनुरूप चिकित्सा करते समय घृत की उपयोगिता को नही भुलाना चाहिये। घृत का उपयोग इस रोग मे सर्वोत्तम सिद्ध हो सकता है। ऐसा शास्त्रो का भी मत है। वायु तथा रक्त अर्थात् पित्त की विकृति मे घृत की उपयोगिता शास्त्रो ने घृत के गुणो का वर्णन करते हुए इस प्रकार स्वीकार की है —

यथा—घृत वात, पित्त, विष, उन्माद, शोष, दीनता तथा ज्वर को नष्ट करता और आयुष्य को स्थिर रखने के लिए उत्तम स्नेह (घृत) है।

उपरोक्त गुणो के अनुसार घृत का वात-पित्त नाशक गुण सर्वथा सिद्ध होता है। चरक ने वातरक्त की सामान्य तथा विशेष चिकित्सा का उल्लेख करते हुए घृत की उपयोगिता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। यथा—

विरेच्य स्नेहयित्वा च स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः।
रूक्षैर्वा मृदुभि शस्तमसकृद्वस्तिकर्म च॥
सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्न स्नेहा प्रायोऽविदाहिन॥
वातरक्ते प्रशस्यते॥ च चि २९।४०

अर्थात् आदि मे स्नेहन करके स्नेह युक्त या रूक्ष-मृदु विरेचन से विरेचित कराना चाहिये तथा वार-वार वस्तीकर्म भी प्रशस्त है। सेक, अभ्यग, लेप, अन्न तथा स्नेहप्राय अविदाही वातरक्त मे प्रशस्त हैं। तथा इसके आगे चरक के मतानुसार ही गभीर वातरक्त मे—विरेचन आस्थापनवस्ती, स्नेहपान, विरेक, स्थापना आदि, वात प्रधान वातरक्त मे—घृत, तैल, चर्वी, मज्जा का सेवन तथा मालिश और वस्ति का प्रयोग, रक्तपित्त प्रधान वात रक्त मे—विरेचन, दुग्धपान, परिषेक तथा वस्तियो के साथ शीतल, दाहशामक उपचार, कफ प्रधान वातरक्त मे—हल्का वमन, हल्का स्नेहन, सेक, लघन तथा सुखोष्ण लेप करें।

इस प्रकार घृत-चिकित्सा समस्त प्रकार के वातरक्त मे प्रशस्त है। शास्त्रो के अनुसार आयुर्वेदोक्त औषधीय घृतो का प्रयोग इस रोग पर तीन प्रकार से किया जाता है। (१) मुख द्वारा (स्नेहन), (२) वस्ति द्वारा और (३) उपनाह या मालिश द्वारा (रोम कूपो के मार्ग से देह में प्रवेश)।

मुख द्वारा घृतो का प्रयोग—आयुर्वेदीय घृत के गुण सामान्य घृतो के गुणो से कुछ परिवर्धित तथा कभी-कभी परिवर्तित भी हो जाते है। इन औषधि कृत घृतो मे घृत के वे दुर्गुण (मेद वृद्धि आदि) अवशिष्ट नही रहते, इसीलिये तो आयुर्वद मे कर्षण चिकित्सा के लिये भी घृतो का प्रयोग किया गया है। यहा भी घृतो का कार्य इसी प्रकार का है। मुख द्वारा प्रयोग किये जाने वाले घृतो का पान दुग्ध के साथ या यो ही किया जाता है। यह स्नेहन क्रिया के नाम से प्रसिद्ध है। प्रधानतया यह क्रिया विरेचन के बाद ही की जाती है।

वस्ति द्वारा घृतो का प्रयोग—यह प्रयोग आयुर्वेद का एक बहुत प्राचीन प्रयोग है। विशेषतया असाध्य एव गभीर वातरक्त मे इसका प्रयोग प्रशस्त है। वार-वार वस्ति द्वारा घृतो या तैलो का प्रयोग करने का उल्लेख अपने शास्त्रो मे मिलता है। वैद्यो को अपनी इस शास्त्राज्ञा को सदैव याद रखना चाहिये विशेष कर वातव्याधियो की चिकित्सा करते समय। "नहि वस्ति सम किञ्चिद्वात-रक्तचिकित्सितम्" वात-नाशक प्रयोगो मे वस्ति-प्रयोग को आयुर्वेद सर्वोत्तम मानता है। ये वस्तियाँ घृत, दुग्ध, तैल तथा वातरक्त-नाशक क्वाथो की दी जा सकती है। इस क्रिया के द्वारा बृहद् तथा अन्य तत्तत् सम्बन्धी आतो के आचूषण की व्यवस्था की जाती है। यह क्रिया अत्यन्त ही वैज्ञानिक है। यह दो प्रकार की होती है। (१) निरूह तथा (२) अनुवासन। दोनो ही प्रकार की वस्तियाँ इस रोग मे हितकारी सिद्ध होती है।

मालिश द्वारा—यह प्रयोग भी इस रोग मे लाभप्रद है परन्तु तीव्र वेदना के समय इसका प्रयोग मालिश के रूप मे न कर अभ्यग के रूप मे किया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। सुखोष्ण घृत मे तीव्र वेदना युक्त अगो को रख दे

और थोड़ी देर प्रसेक होने दे। परन्तु वेदना के कुछ कम होने पर धीरे-धीरे हाथ से मालिश की जा सकती है। मालिश का प्रधान तात्पर्य रोमकूपो द्वारा स्नेह का देह सधियों मे प्रवेश करना मात्र होना चाहिये। यही सफल मालिश हे। जो वेदना-शामक तथा उपयोगी भी हे।

आयुर्वेद मे वेदनाशामक तथा दाह-नाशक स्नेहो का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है। जिनका दोप प्रावल्य परिकल्पना के अनुसार वैद्य स्वय उचित समझकर प्रयोग कर सकते है। उपरोक्त घृतो के अतिरिक्त इस रोग मे रक्तमोक्षण, प्रसेक आदि घृत-चिकित्सा के साथ ये उपचार सहायक रूप से स्वीकार किय जा सकते हैं। वास्तव मे आयुर्वेदीय घृत-चिकित्सा इस रोग पर अपना एक विशेप स्थान रखता है जिसकी सानी अन्यत्र नही है। अव हम कुछ औषधि सिद्ध घृतो का उल्लेख करते है जो इस रोग मे उपयोगी सिद्ध हुए है।

(१) **परूषक घृत**—त्रायमाणा, भूमि आवला, काकोली क्षीर काकोली, शतावरी, कसेरू, इसका विधिवत् क्वाथ बनावे, फिर क्वाथ जल के समान भाग फालसा का स्वरस, मुनक्का-स्वरस, गम्भारी के फलो का स्वरस, गन्ने का स्वरस, बिदारी कन्द-स्वरस मिलाकर चतुर्गुण दुग्ध के साथ पाक करे।

जीवनीय घृत—वृहत् पचमूल, लघुपचमूल, श्वेत पुनर्नवा, एरण्डमूल, लाल पुनर्नवा, मुद्‌गपर्णी, महामेदा, माषपर्णी, शतावरी, शखपुष्पी, सौफ, रास्ना, अतिवला, वला-प्रत्येक २-२ तोला लेकर एक द्रोण जल मे पकावे। चौथाई भाग जल शेप रहने पर १ आढक घी के साथ बरावर भाग दूध, आमलो का स्वरस, गन्ने का रस, वकरे के मास का रस मिलाकर दोनो मेदा, गम्भारी फल, नीलोफर वशलोचन, पिप्पली, मुनक्का, कमल, ब्राह्मी, पुनर्नवा, सोठ, क्षीरकाकोली, पद्‌माख, दोनो कटेरी, काकोली, सिघाडा, कमरख, खुवानी, चिलगोजा, खजूर, अखरोट, वादाम, फिन्दक तथा पिश्ता (सब मिलाकर घी से १/४ भाग कर) द्वारा एक आढक घृत शुद्ध करे। शीतल होने पर चौथाई भाग शहदमिला ले। अच्छे प्रकार से सिद्ध कर सुरक्षित रखे। मात्रा १ कर्प, ।

(३) मुलहठी, गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋपभक प्रत्येक समान भाग लेकर समान भाग दूध मे सिद्ध किया हुआ घी का प्रयोग करे।

(४) मुनक्का, मुलहठी, दोनो के क्वाथ मे सिद्ध घृत मिश्री मिलाकर पीवे।

(५) वला, अतिवला, काकोली, मेदा, कँवाचवीज, शतावर, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि के कल्क के साथ चार गुना घृत सिद्ध कर प्रयोग करे।

(६) जीवक, ऋषभक, दोनो मेदा, अतिवला, शतावर, मुलहठी, गिलोय, काकोली तथा क्षीरकाकोली, मुद्‌गपर्णी माषपर्णी, दशमूल, श्वेतपुनर्नवा, वला, गिलोय, विदारीकद, आमगध और पाषाण भेद के कषाय के साथ घृत को जागल तथा विष्किर पशु पक्षियो की वसा तथा मज्जा को चार गुने दूध के साथ सिद्ध करे।

(७) शालिपर्णी, गोखरू, वडी कटेरी, सारिवा, शतावर, गभारी, कवाँचवीज, श्वेतपुनर्नवा, वला ओर अतिवला के क्वाथ मे सिद्ध घृत को चार गुने दूध के साथ मेदा, शतावर, मुलहठी, जीवक, ऋपभक के कल्को मे पकाकर एक मात्रा तीन गुना दूध तथा डेढ गुनी मिसरी डालकर कौच मे मथ कर पीवे।

(८) **शतावरी घृत**—गव्य घृत ४ सेर, शतावर-स्वरस १६ सेर, गौ का दूध ३ सेर, कल्कार्थ-शतावरी १ सेर, यथा विधि घृत पाक करे।

(९) **गुडूची घृत**—गव्य घृत ४ सेर, गिलोय का क्वाथ १६ सेर, दूध ४ सेर, कल्कार्थ गिलोय १ सेर, विधिवत् पाक कर घृत सिद्ध करे। योगचिन्तामणिकार ने इस घृत मे सोठ का प्रयोग अधिक किया है।

(१०) **अमृतादि घृत**—आँवले का स्वरस २ प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ, कल्कार्थ—गिलोय, मुलहठी, द्राक्षा, त्रिफला, सोठ, वला, वासा, अमलतास, पुनर्नवाश्वेत, देवदारु, गोखरु, कुटकी, शतावर, पीपल, गम्भारी, रास्ना, तालमखाना, एरण्ड मूल, विधारा, मोथा, नीलोफर-मिलित ६४ तोला (सव समान भाग) लेकर यथा विधि पाक कर घृत सिद्ध करे।

(११) **महातिक्त घृत**—करजवीज, सतवन, पीप्पली-मूल, पीपल, मुलहठी, इन्द्रायण, जवासा, चिरायता, चन्दन, हल्दी, इन्द्रयव, विजयसार, अमलतास, मालती, कटेरी, कमल, त्रायमाणा, कुटकी, वच, पाठ, अतीस, दारुहल्दी, शतावर, पद्माख, पीला चदन, देवदारु, मोथा, अगर, नागकेशर, अडूसा, गिलोय, धात्रीपुष्प, वेतस, करेला की जड, पित्त-पापडा, यवासा, वाराहीकद, केवडे की जड, ब्राह्मी, मजीठ, ऋपभक, नेत्रवाला प्रत्येक ४-४ माशा, घृत २५६ पल, पानी २५६ पल, शेप ६४ पल, आमले का स्वरस ५१२ पल, मिलाकर घृतपाक विधि से घृत सिद्ध करे।

(१२) **कल्याण घृत**—इन्द्रायण ४ टक, त्रिफला ४टक, रेणुका, देवदारु, एलुवा, नेत्रवाला, शालिपर्णी, तगर, हल्दी, मारिवा, प्रियगू, नीलोफर, इलायची, मजीठ, चोक, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र, दोनो कटेरी, मालतीफूल वायविडग, पृश्णिपर्णी, कूठ, चदन, पद्माख—प्रत्येक ४-४ टक लेकर क्वाथ करे। २५६ टक घृत और घृत से चार गुणा दुग्ध डालकर इस क्वाथ मे सिद्ध करे।

(१३) **शुण्ठी घृत**—शुण्ठी के क्वाथ या कल्क को एक पल घृत मे पका कर सिद्ध करे। मतान्तर से इसमे सैधव भी मिलाते है।

(१४) **गधक घृत**—गौ दुग्ध ८ सेर को गरम कर ८ छटाक शुद्ध आँवलासार गधक उसमे मिलाकर उवाले, फिर विधिवत् जावन लगा कर दही जमा ले। फिर मथन कर घृत निकाल ले।

आयुर्वेद-शास्त्र मे वातरक्त रोग पर वर्णित अनेको घृतो मे से कुछ को यहाँ उद्धृत किया गया है। जो इस रोग के निवारण मे सहायक है। अब हम सक्षेप मे घृतो की निर्माण-विधि का उल्लेख कर देना उपयुक्त समझते है।

सर्वप्रथम स्नेह को कल्प रूप देने के पूर्व घृत के आमदोष को दूर करना आवश्यक है। आमदोप दूर करने का तात्पर्य हे उसके कच्चेपन को दूर करना। कई द्रव्य ऐसे हो सकते है जो कच्चे घृत मे मौजूद रहते हुए उसके गुणो मे अन्तर ला सकते है जैसे—छाछ, पानी आदि। परन्तु जब वे आमदोप रहित (परिपक्व) हो जाते है तब घृत अपने स्वाभाविक गुणो मे स्थित हो जाता हे। घृत को अपने स्वाभाविक गुणो मे स्थिर करने के लिये १ सेर शुद्ध गौ घृत को (महिषी या अन्य किसी का घृत नही) लेकर आग पर गरम करें। अच्छी तरह से पिघल जाने के बाद जब उसमे फेन आना बन्द हो जावे तब हरीतकी, आँवला, बहेडा, मोथा, हल्दी तथा विजोरे नीबू का स्वरस (विजोरा उपलब्ध न होने पर नीबू-स्वरस ही ले) प्रत्येक १ तोला का कल्क उसमे छोड दे। थोडी देर बाद गर्म घृत को निफेन देखकर उतार ले और गर्म को ही ध्यानपूर्वक छान ले।

फिर इस छने हुए घृत को जिन द्रव्यो से सिद्ध करना हो उन सबको सयुक्त तौल से ४ गुना पानी लेकर (मृदु चीजो की स्थिति में) तथा कठोर चीजो की स्थिति मे ८ या १६ गुना पानी लेकर क्वाथ करे। क्वाथ चतुर्थांश, अष्टमाश या षोडशाश शेप रह जाने पर छानकर क्वाथ-जल को एक वर्तन मे तैयार रख ले। फिर घृत पूरित वर्त्तन को चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें क्वथित जल धीरे-धीरे डालते रहे।

पानी के जल जाने पर केवल स्नेहमात्र शेप रहने पर उसे उतार ले। साफ कपडे से छान कर वर्त्तन में रख दे। स्नेह मे जल शेप हे या नही इसकी पहिचान के लिये निम्न बातो का ध्यान दे।

(१) वर्त्तन मे उवलता हुआ स्नेह-क्वथन वन्द हो जाय।

(२) स्नेह मे से फेन आदि निकलने बन्द हो जाये।

(३) स्याही सोख को डालकर सुखाने पर उसमे स्नेह के अलावा पानी की धारी न दिखे।

(४) टेष्ट ट्यूब मे डालकर रखकर थोडी देर मे देखे पानी ऊपर तैर कर न आवे।

इस प्रकार जल नि शेप रहने पर घृत पाक तैयार होता है। यह पाक चार प्रकार का वनता है। (१) मृदुपाक (२) मध्यमपाक (३) खरपाक, (४) दग्धपाक और आमपाक।

आमपाक—सर्वप्रथम आमपाक से बचने का पूरा वर्णन तथा परीक्षा हम ऊपर दिये है। पाक में जलीयाश का अवशिष्ट रहना ही आमपाक है। इस स्नेह का प्रयोग नही करना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्रानुसार यह स्नेह भारी कफ कारक, अभिष्यन्दी तथा अग्निमाद्य कारक होता हे।

मृदुपाक—परीक्षा करने पर जब अवशिष्ट कल्क की वर्ती वनाई जा सके, जलीयाश न रहे तथा शोपक पत्र पर जल का अस्तित्व न रहे तब यह समझने लेना चाहिये कि मृदुपाक हो चुका है। इसमे स्नेह जलता नही है। यह सेवन योग्य होता हे।

मध्यमपाक—इसमे द्रव जलीयाश से शून्य रहता है परन्तु घृत पर कुछ आँच का असर हो जाता है। अर्थात् उसमे पाक की गध आने लगती है। कुछ रग-परिवर्तन भी हो जाता है। यह नस्य तथा मर्दनार्थ प्रयोग मे लिया जा सकता है।

खरपाक—इस पाक मे द्रव का जलीयाश पूर्णतया समाप्त हो जाता है और कल्क द्रव अशत कठोर वन जाता है। इसमे पाक की गध अपेक्षाकृत तीव्र होती है। यह घृत सेवन योग्य नही होता। वस्ति तथा कर्णपूरक कार्य मे यह लिया जा सकता है।

(शेपाश ६९५ पृष्ठ पर)

अम्लपित्त

वैद्य जगदीशचन्द्र मिश्र, आयुर्वेदाचार्य

आमाशय-प्रदाह, आमाशय की दीवार मे क्षत, पित्ताश्मरी, चिरकारी पित्ताशय-प्रदाह, जीर्ण उपान्त्र-प्रदाह आदि कारणों से आमाशयिक रस मे अम्लता की वृद्धि हो जाती है। अम्लपित्त मे आमाशय गत द्रव्यो की परीक्षा करने से सेन्द्रिय अम्ल पाये जाते है। विदग्धाजीर्ण ही जीर्ण होने पर अम्लपित्त कहलाता है।

विदग्धाजीर्ण भी पित्त-प्रकोप से उत्पन्न होता हे—इसमें आमाशयिक अम्लरस का स्राव वढ जाता है—जिससे भुक्त पदार्थ अत्यम्ल हो अपाच्य हो जाता है—यथा दाह, तृषा आदि उत्पन्न करता हुआ ऊपर की ओर जाता है जिससे दन्तहर्ष, मुखपाक आदि भी सभाव्य हे। कभी-कभी वमन भी होता है—जिसमे अत्यन्त खट्टा, गरम-गरम अन्न-मिश्रित पतला और पीला पदार्थ निकलता है, कभी मलावरोध और कभी अतिसार होता है, प्राय मलावरोध अधिकतर पाया जाता है।

भोजन कर लेने पर तुरन्त वमन हो जाना, वार-वार वमन होना आदि पित्त प्रकोप जनित घोर लक्षण प्रतीत होते हैं। वमन मे वान्त द्रव्य पीतवर्णयुक्त और तिक्ताम्लरस सह हो तो वमन पित्तकृत ही समझना चाहिये।

आमाशयस्थ पित्त मे वृद्धि हो जाने पर जलन, खट्टी डकार, शिर शूल, चक्कर आदि लक्षण होकर खट्टा और कड़वा वमन हो, उसे अम्लपित्त कहते हैं। इस व्याधि मे पित्तस्राव आवश्यकता से अधिक होता हे या पित्त की तीव्रता वढ जाती है। यह अम्लपित्त रोग वढ जाने पर पित्त की तीव्रता और भोजन के विदाह से आमाशय की श्लैष्मिककला मे क्षोभ और दाह होते है, फिर क्वचित् सूक्ष्म-सूक्ष्म व्रणो की उत्पत्ति होती हैं। पित्ताशय में से निकलने वाला पित्त गाढा हो जाने पर उसमें से छोटे-छोटे पत्थर वन जाते है, फिर उसमे एक प्रकार का तीव्र कोष्ठ-शूल उत्पन्न होता है। ग्रहणी मे आनेवाले पित्तवह स्रोत मे से या पित्तशय मे ही यह शूल चलने लगता है। पित्ताश्मरी के कण चुभने पर या क्वचित् पित्त के तीक्ष्ण ज्वर के हेतु से यह शूलोत्पत्ति होती है।

तीव्र अम्लपित्त के योग से होने वाली कण्ठ की जलन, खट्टी डकार, उदर मे दाह, दिन जैसा-जैसा वढता है वैसा-वैसा उदर मे दर्द वढना, साथ-साथ कडवा और खट्टा वमन होना, कै होने पर कण्ठ, तालु, मुख, जिह्वा आदि पर दाह होना, कण्ठ और मुँह मे फोडे (पाक) होना तथा उदर की वेदना के साथ-साथ शिर दर्द का भी आरम्भ होना और भयकर व्याकुलता आदि लक्षण प्रतीत होते है। यथा—

"अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवै.।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्त वदेद्भिषक्॥"
माधव निदान

निदान

विरुद्ध, दूपित, खट्टे, विदाही तथा पित्त प्रकोपक अन्नपान का सेवन करने वाले का अपने कारणो से पूर्व मे सचित पित्त विदग्ध हो जाता है उसे अम्लपित्त कहा हे। यथा—

"विरुद्ध दुष्टाम्ल विदाहि पित्त प्रकोपि पानान्न भुजो विदग्धम्।
पित्त स्वहेतूपचित पुरा यत्तदम्लपित्त प्रवदन्ति सन्त॥
माधव निदान

सामान्य या अधिक ऊष्मा पित्त के विना नही हो सकती और ऊष्मा के विना ज्वर नही हो सकता, अत ज्वर का कारण भी पित्त ही है —"ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नात्यूष्णा विना"। (अ हृ चि १।१६)

पित्त और रक्त मे अग्निमहाभूत का आधिक्य है, अत जिन द्रव्यो मे अग्नितत्त्व की अधिकता होगी वे द्रव्य सेवन किये जाने पर पित्त और रक्त की वृद्धि करेगे। आतप जिस देश मे अधिक होती हे वहाँ पित्त की वृद्धि विशेष होती है। पित्त अपने कटु तथा उष्ण गुण से धातुओ तथा मलो का ह्रास करता हे।

चरकाचार्य ने ग्रहणी चिकित्ससिताध्याय मे पैत्तिक ग्रहणी मे ही अम्लपित्त को समाविष्ट कर दिया हे।

अम्लपित्त के दो भेद—एक अधोग अम्लपित्त और दूसरा ऊर्ध्वग अम्लपित्त कहलाता है।

अधोग अम्लपित्त के शास्त्रीय लक्षण—इसमें कभी-कभी तृष्णा, दाह, मुर्च्छा, भ्रम, मोह, हृल्लास, कोठ, अजीर्ण

हर्ष, स्वेद, तथा अगो मे पीलापन उत्पन्न करता हुआ विविध प्रकार से नीचे के भाग गुदा की ओर जाता है। यथा —

"तड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविध-प्रकारम्।
हृल्लासकोठानलसादहर्ष स्वेदागपीतत्वकर कदाचित्।"
माधव निदान

ऊर्ध्वग अम्लपित्त के शास्त्रीय लक्षण—वमन होने पर हरा, पीला, नीला, काला, कम या अधिक लाल, खट्टा, मास-जल सदृश, अम्ल, तिक्तादि अनेक प्रकार के रसो से युक्त होकर निकलता है। भोजन करने पर, भोजन विदग्ध होने पर या भोजन न करने पर भी कभी-कभी कडवा एव खट्टा वमन उत्पन्न करता है। इसी प्रकार डकार के साथ चढने पर कठ, हृदय-प्रदेश एव कुक्षि मे दाह और सिर मे पीडा उत्पन्न करता है। यह कफ, पित्त, हाथो एव पैरो मे दाह और उष्णता, अत्यधिक अरुचि एव ज्वर को उत्पन्न करता है तथा शरीर को खुजली, मण्डल (शीतपित्त) एव सैकडो पिडिकाओ से व्याप्त करके रोगो का सग्रह बना देता है। यथा—

"वान्तहरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मासोदकाभ त्वतिपिच्छिलाच्छ श्लेष्मानुजात विविध रसेन।
'रक्ते विदग्धे त्वथवाऽप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवविधमेवकण्ठहृत्कुक्षिदाह शिरसो रुजञ्च।
करचरणदाहमौष्ण्य महतीमरुचिं ज्वरञ्च कफ पित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डल पिडकाशत निचितगात्ररोगचयम्॥"
माधव निदान

नीचे चिकित्सित एक रुग्णा का विवरण दिया जा रहा है —

रुग्णा का नाम—श्रीमती कमलादेवी—पत्नी स्वर्गीय श्री कस्तूरचन्द काला। आयु ४० वर्ष। जाति जैन। निवास स्थान बधाल (जयपुर) राजस्थान।

रोग-चिरकारी पित्ताशय प्रदाहजन्य अम्लपित्त।

उपर्युक्त रुग्णा को ता० २४-६-६० को सर्वप्रथम उदर के दाहिने भाग मे भयकर दर्द आरम्भ हुआ जो एक लम्बी अवधि तक बना रहा, जिसकी चिकित्सा यहाँ के स्थानीय एक वैद्य जी ने सम्पन्न की जिससे दर्द तो कुछ कम हो गया, परन्तु औषधि के साथ अनुपान में दही का सेवन कराने से रुग्णा को वमन आरम्भ हो गया। ऐसी स्थिति आ गई कि रुग्णा अन्न ले तो वमन हो जावे, फल या फल का रस ले तो वमन हो जावे, यदि वह केवल जल भी पीले तो वमन हो जावे। ऐसी स्थिति आने पर उक्त वैद्य जी ने उस रुग्णा का अन्न बन्द कर कुछ आयुर्वेदिक व कुछ एलोपैथिक चिकित्सा १॥ महिने तक लगातार की—पर, रुग्णा को लाभ के बदले दिन-प्रतिदिन कमजोरी ही बढती गई और उदर मे आध्मान सदा बना रहने लगा। तब तक एक दिन श्री चन्दनमल काला रुग्णा के अभिभावक ने मुझे भी वैद्यजी की राय से रोगी को देखकर निदान हेतु बुलवाया—उस समय वैद्यजी भी उपस्थित थे। मैंने रुग्णा की परीक्षा की तो समस्त लक्षण चिरकारी पित्ताशय प्रदाहजन्य अम्लपित्त के दृष्टिगत हुए। फिर भी शकानिवारणार्थ मैंने रुग्णा के अभिभावको से कहा कि प्रथम इनकी गैस्ट्रिक ऐनेलेसिस या एक्सरे आदि द्वारा जयपुर ले जाकर परीक्षा करवा ली जावे—जिसके बाद सही निदान का निर्णय हो जाने पर ही चिकित्सा की जावे तो ज्यादा अच्छा होगा। इस पर रुग्णा को जयपुर ले जाकर दिनाक ५-८-६० को मल-परीक्षा आदि द्वारा परीक्षा की जाने पर चिरकारी पित्ताशय-प्रदाह बताया गया—और एलोपैथी चिकित्सा जयपुर के मुख्य चिकित्सालय के अध्यक्ष महोदय की राय से बधाल रहकर ही आरम्भ की गई। किन्तु एक माह तक किसी भी लक्षण की कोई कमी न होकर रुग्णा की स्थिति वैसी की वैसी ही बनी रही।

रुग्णा के अभिभावको द्वारा मेरे को बार-बार उसकी चिकित्सा सभालने की विशेष आग्रह करने पर मैंने दिनाङ्क २१-९-६० को श्री भगवान् धन्वन्तरि का स्मरण कर निम्नाकित औषध-व्यवस्था कर दी।

प्रात ६ बजे और साय ६ बजे—
स्वर्णयुक्त सूतशेखर रस (यो र) १॥-१॥ रत्ती
प्रवाल पचामृत (यो र) २-२ रत्ती
ऐसी दो मात्राये —
अम्लपित्तान्तक क्वाथ (कल्पित) १-१ तोला
ऐसी दो मात्राओ के साथ।

विशेष—कुटकी, भृगराज, हरीतकी, आमलक, बिभीतक, किरात, गुडूची, वासा, निम्ब की अन्तर्त्वक् ये सब समभाग मिला यवकूट कर "अम्लपित्तान्तकक्वाथ" तयार करे।

फलरस-सेवन (भोजनोत्तर)—
अविपत्तिकर चूर्ण (भै. र) ४-४ माशा
शख भस्म ४-४ रत्ती
ऐसी दो मात्रायें साधारण जल से।

बहुधा उदरपीडा और उदर मे दर्द होकर वान्ति के साथ अम्लपित्त होता है। इस व्याधि मे उदर मे दर्द वात और पित्त के सयोग से होता है। वात और पित्त ये दो दोष आमाशय मे बढने पर अम्लता और वेदना ये दो मुख्य लक्षण उपस्थित होते है। पाचक पित्त में अम्लता बढ़ना पित्तविकृति का लक्षण तथा अन्न-ग्रहणकर्म विकृत होना समानवायु की दुष्टि का लक्षण है। इस दूषितावस्था को दूर करने के लिए जीवनीय शक्ति का प्रयत्न जारी रहता है—इस कारण से अम्लता और वेदना होती है। यहाँ सूतशेखर-द्रव्य समूहो का परिणाम पित्त की अम्लता और समान वायु दोनो पर होता है। जो औषधि आमाशयस्थ पित्तवृद्धि पर उपयुक्त होती है वही भेषज पक्वाशयगत वात-पित्त-वृद्धि पर भी शामकता दर्शाती है। आमाशय और पित्ताशय मे मुख्यधातुओ की साम्यावस्था स्थापित करना यह सूतशेखर रस का ही विशिष्ट कार्य है। सूतशेखर शामक होने से हृद्य भी है।

'प्रवाल पचामृत' का कार्य विशेषरूप मे मध्यकोष्ठ, यकृत्, प्लीहा, ग्रहणी पर उत्तम होता है। इससे पाचक पित्त के द्रवत्व धर्म मे कमी होने से उत्पन्न आध्मानादि भी दूर होते हैं।

यहाँ 'अविपत्तिकर चूर्ण' आमाशय के स्रावो को कम कर उस पर सशामक प्रभाव डालता है। लवग की विशेष क्रिया से उदर शूल और छर्दि को रोक अम्लपित्त की प्रवृत्ति को कम करता है। बढे हुए अम्लाधिक्य को भी आमाशयिक पित्त को आन्त्र मे भेजकर निष्क्रिय कर देता है।

शख भस्म अतिशीतवीर्य और ग्राही होने से आमाशय की श्लेष्मल कला के उत्तेजन को रोक कर उसके ऊपर एक आवरण-सा चढ़ा देता है—जिस कारण से अम्लस्राव कम और उसके कारण श्लेष्मलकला के प्रक्षुब्ध होने की प्रवृत्ति हट जाती है। अतएव यह आमाशयकि अम्लता का नियमन करने वाला होने से यहाँ प्रयुक्त किया गया है।

पथ्य—मे खाने के लिए अगूर, मोसम्बी का रस, सेव, कभी-कभी वेदाना का रस तथा अर्द्धभाग जल मिश्रित दुग्ध दिया जाता था।

इस प्रकार उपर्युक्त औषधियो के निरन्तर सेवन से प्रथम सप्ताह मे ही रुग्णा का वमन वन्द हो गया और धीरे-धीरे सभी व्याधि के लक्षणो मे कमी आती गई। यही क्रम सतत एक मास तक चलता रहा, फिर ता० १०-११-६० को पथ्यक्रम से अन्न दिया गया।

इस विधि से निरन्तर पथ्य-सह उपर्युक्त औषधियो को २॥ माह तक सेवन करने से रुग्णा को पूर्ण लाभ हो गया। अब रुग्णा पूर्ण स्वस्थ है।

गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक औषधालय
बघाल (जयपुर) राजस्थान

शेषाश] वातरक्त में घृत चिकित्सा [६९२ पृष्ठ का

दग्धपाक—इसमें कल्क जलने लगता है तथा पूर्णतया कठोर हो जाता है। इस पाक के होते समय वायुमडल जलते हुए घृत की गध से पूरित हो जाता है, धूम्र उठने लगता है। यह स्नेह-नाश का समय है, यह स्नेह नष्ट होकर गुणहीन बन जाता है। अत सेवनीय नही होता। स्नेह बनाने की एक आसान तथा सरल विधि यह भी है।

औषधियो का यथा विधि (उपरोक्त विधि से) कल्क बनाकर गौ दुग्ध समान भाग के साथ उबाले। जल न रहकर केवल दुग्ध रह जाने पर उसे जामन लगाकर जमा दे। जमजाने पर उसका मथन कर मक्खन निकाल ले। फिर मक्खन को तपाकर घृत बना ले। इसमे उपरोक्त भय भी नहीं रहते। यह पाक दुग्ध के मथन द्वारा भी किया जा सकता है। परन्तु यह कार्य यत्र साध्य है।

इस प्रकार सिद्ध घृत वातरक्त रोग मे लाभ प्रद देखे गये है। आशा है पाठक लाभ उठाकर देखेंगे।

म्यूनिस्पल कमिश्नर, जोधपुर सिटी
(राजस्थान)

वैज्ञानिक प्रगति और अस्वस्थ वातावरण

डॉ० अरविन्द मोहन

आमतौर पर यही कहा जाता है कि अधिकाश बीमारिया अशुद्ध जल से उत्पन्न होती है। यह बात बहुत हद तक सही है लेकिन पानी को शुद्ध करने के पश्चात् भी हम ऐसी गदगी वातावरण को प्रदान करते रहते है जिसके द्वारा हमारा जीवन रोगो के चगुल मे फँसता जाता है। आज के दूपित पदार्थो—जिनके द्वारा जीवन सकटमय बन जाता है—के क्लिप्ट नाम है। उनका सम्बन्ध वैज्ञानिक प्रगति से है। एक शताब्दी पूर्व के हानिकारक पदार्थों और इनमे यह भेद है कि ये सभी मानव निर्मित पदार्थ है।

कीटाणु संहारी रसायन

उदाहरणत पाश्चात्य देशो मे प्रति वर्ष सैकडो ऐसे रासायनिक पदार्थ (४०० अमरीका ही मे) पदार्थो का निर्माण हो रहा है जो खटमल, पिस्सू, मक्खी व मच्छर मारने, वस्त्रो की धुलाई करने, मोटरो के इजिनो को चलाने आदि कार्य मे सहायक ह। कुछ कीटाणु नाशक भी है। परन्तु प्रत्येक ऐसा रसायन अपने कार्य के पश्चात्—बेकार होने पर—सदैव सड-गल कर नागरिको के लिए नई मुसीबते पैदा करता है। वह शुद्ध वायु मे मिल कर हानि पहुँचाता है या नदी के पानी से पुन भोजन मे अथवा खेतो की मिट्टी मे होकर पेड-पाधो द्वारा भोजन मे प्रवेश पाता है। इनकी भयकरता इतनी सर्वव्यापी है कि एकाएक हमे उसका आभास नही हो पाता कि किस प्रकार यह विप वायु, पानी, भोजन तथा पेड-पौधे को हानि पहुँचाता है। उदाहरणत केवल १३००० निवासियो के अमरीकी नगर डोनोरा मे १२ वर्ष पूर्व विपैली वायु द्वारा ५६१० व्यक्ति घायल हुए थे तथा १८ मरे थे।

इसी भाति विशेपज्ञो का मत है कि अन्य नगरो मे आज के इस विप का परिणाम २०-३० वर्ष पश्चात् प्रतीत होगा। कैंसर के १५ प्रतिशत मामले इस प्रकार के हानिकारक वातावरण के कारण हुए माने गए है। विज्ञान ने अनेक पदार्थों द्वारा मानव जीवन को अपेक्षाकृत अधिक सुखमय अवश्य बनाया किन्तु मानव शरीर व स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव विदित नही है।

वायु में विष

वायुमण्डल मे फैले दूपित पदार्थों से औद्योगिक नगरो में रहने वाले परिचित है। स्वच्छ नीला आकाश उनको बहुत कम दीखता है। आँखो का दर्द भी एक सर्वव्यापी कष्ट है। पेट्रोल तथा कोयले के धुएँ (नाइट्रेस आक्साइड, हाइड्रोकार्वन) मोटरों तथा कारखानो की देन इसका मुख्य कारण है। कलकत्ते जैसे नगर मे प्रति दिन केवल मोटरो के द्वारा विशाल परिमाण मे विपाक्त गैस निकलकर वायुमडल को दूपित करती है। कारखानो द्वारा इनकी दूनी मात्रा और वायु को मिलती है। लासएजेल्स नगर मे कलकत्ते के लगभग १५ गुना अधिक विपैले पदार्थ वायु मे मिलते है तथा प्रति वर्ष गवेपणा तथा रोक-थाम व्यवस्था पर ही करोडो का व्यय होता है।

गवेपणा द्वारा इन्ही पदार्थो से फेफडो पर दुष्प्रभाव होता निश्चयात्मक रूप से पाया गया है। फेफडो का रोग जिससे कुछ काल मे मृत्यु हो जाती है (ब्राकाइटिस-इम्फीसेमा) आज औद्योगिक तथा पाश्चात्य देशो का एक घातक रोग बन चुका है।

नगरो की वायु मे प्रति तीन सहस्र भाग मे एक भाग कार्बन मोनोक्साइड विपैली गैस का पाया जाना भयकरता की सीमा से आगे बढचुका है क्योकि आठ घटे तक लगातार अगर इसका केवल तिहाई अश भी सूघा जाए तो मानव-जीवन खतरे में पड़ जाता है।

परन्तु फिर भी आज तक इस दूपित वातावरण से हमारे शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव का पूरा विवरण या जानकारी चिकित्सा-विज्ञान को विदित नही है। कदाचित् इस घातक वायु को हम सूँघते ही रहेगे क्योकि हमारी आधुनिक सभ्यता मे उसके अनेक वरदानो के साथ ये अभिशाप भी सहने पड़ेगे।

पानी भी विपैला

पीने के पानी मे साधारणत: कोई विषैली वस्तु की कल्पना करना असम्भव है क्योकि नगरो मे पानी छनकर, रासायनिक क्रियाओ द्वारा शुद्ध होने के पश्चात् जनता को

मिलता है। परन्तु इस पानी में क्या नही मिला रहता ? अनेक नगरो में—न केवल भारत मे किन्तु अमरीका तक मे (उदाहरणतः मोमादा केन्सास सिटी इत्यादि मे) प्रति दिन मल-मूत्र को विशाल मात्रा (२५०० मन प्रति दिन) नदियो में बहाई जाती है।

मल-मूत्र नदी में डाले जाने के स्थान के कुछ नीचे से ही पानी पम्प न भी किया जाए तव भी नदी मे फैली इस गदगी की मात्रा वढकर आगे के दूसरे नगरो में पानी को दूषित तो करेगी ही। ग्रीष्म काल में जब नदियाँ सूखती है तब भी इस दूषित पदार्थ का मात्रा उतनी ही वनी रहने के कारण पानी हानिकारक बन जाता है। टाइफाइड के अनेक दृष्टान्त पानी के कारण पाए गए है, यद्यपि पाश्चात्य नगरो मे पानी को स्वच्छ करने की सभी युक्तियाँ पूर्णत आजमायी जा चुकी हैं। अमरीका के स्वास्थ्य-विभाग ने एक गणना द्वारा कहा है कि गत वर्ष उससे पिछले वर्ष की अपेक्षा वीमारियो की अधिकता दूषित पानी के कारण हुई। पानी को जनता के लिए स्वास्थ्यकर वनाए रखना एक जटिल समस्या है।

पानी मे रासायनिक दोषो के सैकड़ो प्रकारो का विश्लेषण हुआ है जो कि अनेक स्रोतो से उसमे वहकर पहुँचते है। लेकिन मानव शरीर पर दूषित पानी के प्रभावो की वैज्ञानिक खोजबीन वहुत कम हुई है। उन नगरो मे जहाँ पीने के पानी तालाव से मिलता है समस्या और भी जटिल है। जनता का नहाना, कपडे धोना, मल-मूत्र फेंकना तथा पानी को स्वच्छ मान लेना विज्ञान के इस युग में अत्यन्त भारी भूल है।

विषाक्त भोजन

अब भोजन का प्रश्न लीजिए। जो भोजन किसी देश के एक कोने मे वनाया जाता था, आज उसका प्रचार विदेशो तक मे होता है। फिर रसायन-विज्ञान के द्वारा बनाए गए मसालो व दूसरे साधनो ने भी उसमें योग दिया है। विभिन्न क्रियाओ, डिव्वा वन्दी, जेली वनाना, झाग या फेन बनाना, रोटी को फुलाना इत्यादि मे रासायनिक पदार्थों का योग आवश्यक है।

ऐसे अधिकांश रसायन हानिरहित हैं—परन्तु केवल थोड़ी मात्रा में ही। लेकिन जव इन पदार्थो का निरन्तर कई वर्षो तक सेवन किया जाए तथा वे धीरे-धीरे शारीरिक क्रियाओ पर बुरा प्रभाव डालकर विष फैलाएँ तो प्रश्न जटिल वन जाता है। वहुधा विष की मात्रा धीरे-धीरे शरीर मे वढकर ही हानि पहुँचाती है।

कानूनन तो कई वातो की पावन्दी है लेकिन कभी-कभी डी डी टी या पेसिलीन जैसे पदार्थ तक हमारी भोजन सामग्रियो मे मिल जाते है। उदाहरणत गाय के किसी रोग के उपचार के ७२ घण्टे वाद तक का दूध अपेय घोषित होने पर भी सम्भव हे कि वह हमे मिल जाए। यह काम या तो नासमझी से हो सकता है या लाभ के कारण।

अत आवश्यक है कि वडे नगरो मे भोजन सामग्रियो की समुचित तथा कडी जाच-पडताल हो ताकि प्रत्येक पदार्थ रोगमुक्त हो व अनावश्यक रसायन से रिक्त हो।

हम क्या करे ?

आज वडे तथा छोटे सभी नगरो मे जनसख्या की वृद्धि से उपर्युक्त समस्या और कठिन वन रही हे। अत इस समस्या के हल के हेतु चिकित्सा-ज्ञान का विकास, नवीन औषधियो की खोजबीन तथा नवीन आधुनिक प्रणालियो को अपनाना आवश्यक है। साथ ही हमारी व्यक्तिगत आदतो मे सुधार व औद्योगिक साधनो मे नवीन युक्तियो का सचार आवश्यक है। शक्ति के ऐसे साधन खोजे जाने चाहिए जिसके द्वारा धुआँ तथा विषैली गैसो का उत्पन्न होना वन्द हो जाए। सभी को मिलजुल कर इस विषैली गदगी को साफ करने मे हाथ बँटाना चाहिए—किसने और कितनी मात्रा मे वातावरण को दूषित किया यह कहना-सुनना निरर्थक है। हमारे भारतीय नगर वड़े विदेशी नगरो के समान विषैले न हो, इसके लिए तुरन्त ही अत्यन्त ऊँचे स्तर पर योजना वनाकर कार्यरत होना आवश्यक है।

सौरविकिरण का शक्तिशाली स्रोत : : सूर्य-चिकित्सा

ए. कोत्सेव

सूर्य जो हमारी पृथ्वी पर समस्त जीवित पदार्थों का सृजनकर्ता है, विकिरण का एक शक्तिशाली स्रोत है। यदि उसकी जीवनदायिनी किरणे न होती तो न तो जीव-जन्तु होते, न वनस्पति और न वायुमण्डल होता। जल के स्थान पर उजाड टोरा आसवादड होती। सूर्य हमे अपनी किरणो से गर्मी प्रदान करता आ रहा है। उसके आरोग्यकारी गुण लोगो को दीर्घकाल से ज्ञात थे। लेकिन चिकित्सा के लिए उसे इस्तेमाल करने की पहली अनिश्चित कोशीशे तथा सूर्य-चिकित्सा के विज्ञान के रूप मे विकसित होने मे काफी लम्बा समय लगा।

आधुनिक युग मे सूर्य चिकित्सको ने एक ऐसी विधि का पता लगाया है जिससे वे मानव शरीर पर सूर्य के विकिरण को, जो सभी को उपलब्ध है, चिकित्सार्थ इस्तेमाल करते है।

सभी जानते है कि सौर विकिरण की तीव्रता तथा उसके वर्णक्रम की बनावट (विशेष रूप से अतिबैंगनी विकिरण) बहुत कुछ स्थान विशेष की भौगोलिक ऊँचाई, वायुमण्डल की गहराई तथा पारदर्शित वायु की आर्द्रता तथा उसमे धूल-कणो के अनुपात पर निर्भर करती है। वायुमण्डल पृथ्वी की कतिपय अन्तरिक्ष विकिरणो से रक्षा करता है, जो जीवन के लिए हानिकर है। उजबेकिस्तान की राजधानी ताशकन्द मे, कुछ समय पूर्व सूर्य-चिकित्सा के विशेषज्ञ डाक्टरो तथा वैज्ञानिको का एक सम्मेलन था, जिसमे इन सारी समस्याओ पर विचार किया गया। सम्मेलन मे जिन लोगो ने भाग लिया, उनमे धूप से जगमगाते क्रीमिया, सुदूर-पूर्व तथा पामीर से जो सौर विकिरण से अतिसपृक्त है, जाने वालो के अतिरिक्त उत्तरी ध्रुव प्रदेश जहा अतिबैंगनी किरणो का अभाव है, के भी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

सम्मेलन के सदस्यो मे ऐसे डाक्टर थे जो सुदूर उत्तर के जलवायु के अनुकूल अपने आपको ढालने से सम्बन्धित मानव समस्याओ को हल करने मे सलग्न है, यहाँ ऐसे वैज्ञानिक थे जो विभिन्न रोगो की प्रगति पर सौर विकिरण के प्रभाव में दिलचस्पी रखते थे। सम्मेलन मे वास्तुविदो ने भी भाग लिया। वास्तुविदों को नगर नियोजन से सम्बन्धित स्वास्थ्य समस्याओं मे दिलचस्पी थी, क्योंकि सोवियत भूमि की विशालता के कारण सोवियत नगर-निर्माताओं को विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएं पूरी करनी होती है।

सौर विकिरण तथा जीव

सम्मेलन मे पढी गयी अधिकतर रिपोर्टों मे जीव पर अवरक्त (इनफ्रा रेड) दृश्य तथा अति बैंगनी (अल्ट्रा वायोलेट) विकिरण के प्रभाव की चर्चा की गयी और उन विकिरणों के सम्मिलित तथा अलग-अलग प्रभावों का परीक्षण किया गया

सबसे पहले उन जीव कोशिकाओं पर सूर्य के प्रकाश के प्रत्यक्ष बैक्टिरियोनेज विकास करते है, जो शरीर को काफी भीतर के तन्तुओ तथा अवयवो पर जिनमें केन्द्रीय स्नायविक व्यवस्था भी सम्मिलित है। त्वचा में मौजूद तन्तुओ के द्वारा धूप-स्नान का जो परावर्तनीय प्रभाव होता है, उसका पहली बार वैज्ञानिक ढंग से विवेचन तथा चिकित्सीय परीक्षण किया गया है।

यह बात साबित हो गयी है कि सौर विकिरण निम्नलिखित बीमारियो को दूर करने का बहुमूल्य साधन है सूखा रोग, विटामिन 'डी' की कमी, तथा उससे सम्बन्धित फास्फोरस और चूने की कमी, हड्डी, गाठो तथा ग्रन्थियो का तपेदिक, फेफडे के दिक की आरम्भिक अवस्था, चर्मरोग, धीरे-धीरे अच्छे होने वाले घाव तथा फोडे, स्नायु व्यवस्था की क्रिया का असन्तुलित होना।

सौर वर्णक्रम की विभिन्न किरणो की असमान तथा चुने हुए प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए अति बैंगनी वर्णक्रम की केवल लघुतम तरगो वाली किरणो मे बैक्टरियानाशक तथा सूखा निरोधक गुण पाये जाते है। एक दूसरी दिलचस्प बात यह है कि वायुमण्डल मे बिखरे हुए सौर विकिरण का प्रभाव उतना ही शक्तिशाली होता है जितना कि स्वच्छ आकाश से सीधे आने वाली किरणो का। इसका अर्थ यह हुआ क सूर्य-चिकित्सा किसी भी मौसम

मे तथा साल के किसी भी हिस्से में प्रयोग मे लाई जा सकती है।

चिकित्सीय प्रयोजन से सौर विकिरण को विस्तृत रूप से इस्तेमाल करते समय सोवियत प्रकृति चिकित्सक इस वुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति को सदा याद रखते है—'सूर्य नीरोग करता है, साथ ही पगु भी वनाता हे, मनुष्य सौर विकिरण को मनमाने ढंग से इस्तेमाल नही कर सकता। यह वात इसलिए और भी खतरनाक है कि सौर विकरिण का प्रभाव देर से प्रकट होता है। इसीलिए सिर्फ अपनी समझवूझ पर भरोसा करने के वजाय सोवियत प्रकृति चिकित्सक वैज्ञानिक उपकरण इस्तेमाल करते है। ये उपकरण स्वत वायुमण्डल की परिस्थितियो से सम्वन्धित तथ्य अकिन करते रहते है और चिकित्सक रोगी के शरीर की दशा तथा उसकी त्वचा पर सूर्य के प्रकाश के प्रभाव आदि का परीक्षण करता है।

कैंसर, आगे वढ़ चुका फेफडे का तपेदिक, आर्टीरियो-स्पलेरोसिस, हाइपरटोनिया, तथा रक्त स्नायुओ के रोग, गुर्दे और यकृत की तेज वीमारियाँ तथा अधिक आयु के लोगो पर सूर्य–चिकित्सा का प्रतिकूल प्रभाव देखा गया हे। इन सभी दशाओ मे सौर विकिरण सूजन-प्रक्रिया को वढा देता है। लेकिन कई रिपोर्टो मे इस वात का भी उरलेख किया गया था कि स्थानीय तौर पर निश्चित तथा नियन्त्रित मात्रा में विकिरण इस्तेमाल करने से त्वचा तथा आतरिक अवयवो की असाध्य वीमारियो मे पर्याप्त लाभ होता हे। लेकिन इसे रेडोन-स्नान के साथ प्रयोग मे लाना चाहिए। किसी स्वास्थ्य केन्द्र अथवा सैनीटोरियम मे जहा रोगी की इस विधि से चिकित्सा की जा रही हो, रोगी का ठीक-ठीक निदान करना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही हर रोज उसकी दशा की जाँच की जानी चाहिए। इस वात को सदा याद रखना चाहिए कि जहाँ लाल तथा अव रक्त किरणे गर्दन और रीढ के निचले भाग मे प्रविष्ट हो जाती हैं, वहाँ अति वैंगनी किरणें केवल ० ५ से एक मिलीमीटर गहराई तक ही जा पाती हैं।

हाल के वर्षों मे डाक्टर निकोलाई मिशुक की प्रणाली, जिसे 'अनिरतर सौर विकिरण' के नाम से जाना जाता है, और जिसे पहले पहल ताशकन्द के मास्को सस्थान मे इस्तेमाल किया गया था, अव आम तौर से प्रयोग मे लाई जा रही है। इस विधि से शरीर पर सूर्य किरणो का प्रयोग किया जाता है और फिर उसे हर प्रकार के विकिरण से सुरक्षित वना दिया जाता है। एक के वाद एक यह प्रक्रिया जारी रखी जाती है। लेकिन सूर्य-चिकित्सा की एक नयी शाखा, वर्ण सूर्य-चिकित्सा इससे भी श्रेष्ठ सम्भावनाओ का उन्मुक्त कर देती है और सोवियत वैज्ञानिक इस शाखा पर पर्याप्त रूप से ध्यान दे रहे हैं।

वर्ण सूर्य चिकित्सा का आधार सिद्धान्त यह है कि सौर वर्णक्रम के अलग-अलग भाग शरीर पर तथा उसके भीतर होने वाली रौगिक प्रक्रियाओ पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालते हैं। एक भेट मे इस चिकित्सा के डाक्टर, प्रो० एस० ओमेल्यान्त्स ने इस सम्वन्ध मे निम्नलिखित वाते वतायी।

'एक अधिक आयु के आदमी की कल्पना कीजिए—उसके फासफोरस तथा चूने की पाचन-क्रिया मे विकार पैदा हो गया हे, इसका अर्थ यह हुआ कि चूना आत्मसात करने की उसकी क्षमता घट गयी हे। फलस्वरूप स्नायु-व्यवस्था मे वेचैनी वढ गयी हे, निरोधात्मक प्रक्रिया कमजोर हो गयी है तथा हड्डियाँ और दाँत क्षीण हो रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि मरीज के शरीर के लिए यह आवश्यक हे कि वह अधिक मात्रा मे विटामिन 'डी' तैयार करे। अत उसके ऊपर अति वैंगनी से अव रक्त तक पूरे वर्णक्रम का विकिरण इस्तेमाल नही किया जाना चाहिये। वर्णक्रम के अत्यन्त छोटे से भाग द्वारा एक हल्की-सी खुराक ही उसके लिए काफी होगी। इसीलिए 'चनाव' करने वाली सूर्य-चिकित्सा का भविष्य महान् है।

विरोधात्मक सूर्य-चिकित्सा

सोवियत सघ मे सौर विकिरण को वीमारियो को रोकन तथा नीरोग करने के लिए आमतौर पर इस्तेमाल किया जाता है, ताकि खुलने से पूर्व आयु के वच्चो से आरम्भ करके पूरी आवादी को मजवूत वनाया जा सके। वायु-स्नान तथा सूर्य-स्नान प्रत्येक किंडरगार्टेन, पायोनियर शिविर विश्रामालय, सैनीटोरियम, अस्पताल तथा चिकित्सालय की आवश्यक विशेषताएँ है। अनेक खानो और सुरगो में तथा ध्रुवीय केन्द्रो पर नित्य प्रति सूर्य के प्रकाश से विकिरण लेना तथा जाडो मे चिकित्सालयो मे लैम्प से सूर्य के कृत्रिम प्रकाश से विकिरण लेना विल्कुल अनिवार्य है।

अनेक पर्यवेक्षणो से यह वात प्रमाणित हो चुकी है कि जो लोग नियमित रूप से धूप स्नान करते है, उन लोगो की अपेक्षा जो सौर विकिरण के जीवनदायी गुणो का इस्तेमाल नही करते, शारीरिक रूप से अधिक मजवूत होते हैं। तथा सक्रामक रोगो से वचाव की कही अधिक क्षमता रखते हैं।

शीर्षासन और उसकी महत्ता

श्री योगानन्द कवि

शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक एकाग्रता और आत्मिक उन्नति का विकास करने के लिए योग के आसन और अन्य क्रियाएँ की जाती हैं। आसनो मे शीर्षासन एक प्रथम कोटि का उत्तम तथा शारीरिक स्वास्थ्य स्थिर रखने तथा अन्य अनेक रूपो मे उपयोगी होने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उर्ध्वासन, शिरासन, मस्तकासन, कपालासन आदि नाम से भी इसे पुकारा जाता है, परन्तु योग ग्रन्थो मे इसे विपरीतकरणी मुद्रा कहा जाता है। शरीर-यन्त्र के ऊपरी भाग मे विद्यमान शारीरिक और मानसिक कार्य करनेवाले महत्त्वपूर्ण अवयवो और अति महत्त्वपूर्ण सभी ग्रन्थियो को इस आसन से अधिक रक्त-पोषण किाय जा सकता है। फलत. समग्र शरीर-यन्त्र जीवन के नवचैतन्य से परिपूर्ण होकर नीरोगी को कार्य-क्षम वना रहता है।

अन्य महत्त्वपूर्ण लाभ

मेरुदण्ड (पीठ की रीढ), लीवर, फेफडे, हृदय, गला, नेत्र और मस्तिष्क आदि मे इस आसन से ताजगी और नवचेतना आती है और सभी महत्त्वपूर्ण अवयवो मे अपना-अपना काम आसानी से उचित रूप मे कुशलतापूर्वक करने की शक्ति का आविर्भाव होता है। इस अद्भुत आसन से रोगो से छुटकारा मिलता है। शरीर हलका और सरलता से इधर-उधर मुडने योग्य वन जाता है। मन स्थिर, सतुलित और ध्यान के योग्य एकाग्र वनता है। जीवन सत्वशील वनता है और आयु वढ जाती है। ४५ वर्ष के हमारे अनवरत अन्वेषण के अनुसार कहा जा सकता है कि यह आश्चर्यपूर्ण आसन नीरोग ८ वर्ष तक के वालक और १०० वर्ष की आयु पर पहुँचे हुए वयोवृद्ध भी निस्सन्देह कर सकते है। इससे किसी प्रकार की भी हानि होने के भय नही है। १० से ७० वर्ष तक के सावक दीर्घकाल से इस आसन का अभ्यास करते आ रहे है, उन्हे किसी प्रकार के दुष्परिणाम का अनुभव नही हुआ।

६० वर्ष की आयु में भी

विशेष उल्लेखनीय वात तो यह है कि एक ६० वर्ष से भी अधिक आयु का सावक सभी दु साध्य आसन और ऐसी ही कठोर यौगिक क्रियाएँ तथा अद्भुत शीर्षासन इतनी सरलता से अनायास कर दिखाने में समर्थ है कि दुनिया के वैज्ञानिक भी दाँतो-तले उँगली दवा ले।
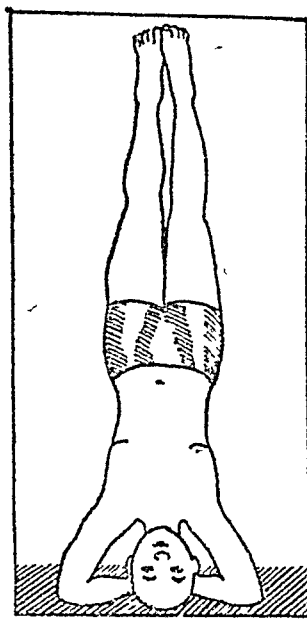
शीर्षासन-विधि

एकाग्रता की सिद्धि

विशेष ध्यान युक्त एकाग्र रहने के अतिरिक्त सतुलित मन की जहाँ आवश्यकता होती है, ऐसे कार्य को कुशलतापूर्वक सफलता का स्वरूप देने के लिये उच्च कक्षा के योगाभ्यासी की तुलना में शायद ही किसी अन्य व्यक्ति का निर्वाचन उचित या सुसगत माना जा सके। पशुवल से यह कार्य शायद ही सफल वनाया जा सके। शास्त्रीय योगाभ्यास से साधक का चरित्र-वल, आरोग्य-वल और मनोवल के साथ-साथ अत्यन्त वाछनीय और सहनशील योगवल प्राप्त होता है।

शीर्षासन तथा योग के अन्य सभी आसन एकवार किसी योगपारगत, नित्य साधक योगी से भली-भाति सीख लेने के बाद रोग के आक्रमणो से बचाने के लिये नीरोग अवस्था मे कोई भी साधक स्वय एकाकी सुरक्षित रूप से कर सकता है, परन्तु जव शरीर या मन रोग ग्रस्त हो, तव यह आसनादि योगविद्या के जानकार की सलाह ले लेने के बाद तदनुसार निष्णात योगी के पथ-प्रदर्शन मे करना हितकर होगा।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ ——चरक सू० १-४०

भाग ३५	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़	जून
अङ्क ६	का मुख पत्र	१९६१

स्नान-गुणाः

स्नानं दाहश्रम हरं स्वेद कण्डू तृषापहम् ।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रिय विशोधनम् ॥
तन्द्रा पापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम् ।
रक्त प्रसादनं चापि मतमग्नेश्च दीपनम् ॥
बाह्यैश्च सेकै शीताद्यैरूष्मान्तर्यातिपीडितः ।
नरस्य स्नात मात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥

—भा० प्र०

स्नान दाह, थकावट, पसीना, खुजली और प्यास को नाश करने वाला, हृदय को प्रसन्न करने वाला, मल नाशक तथा श्रेष्ठ इन्द्रिय शोधक है ।

स्नान, तन्द्रा और पाप को नष्ट करने वाला, सन्तोष प्रदान करने वाला, पौरुषवर्धक, रक्त को स्वच्छ करने वाला एवं अग्नि को दीप्त करने वाला कहा गया है ।

बाहरी सेचन एवं ठण्डक आदि से अति पीडित मनुष्य की अग्नि शरीर के भीतर चली जाती है । वह स्नान करने मात्र से ही दीप्त हो जाती है ।

पुरुष्कार प्राप्त—

पंचगव्य और उनके विविध प्रयोग

श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य
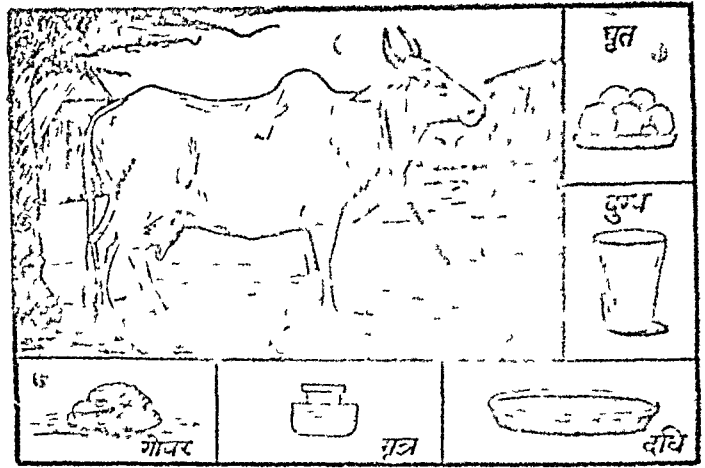
"पचगव्य दधि-क्षीर-घृत गोमूत्र गोमयै ॥."

—द्रव्य गुण विज्ञानम्

अर्थात्—गाय के दूध, दही, घी, मूत्र तथा गोबर को आयुर्वेद शास्त्र मे पचगव्य के नाम से कहा जाता है। इनमे से प्रत्येक के गुण तथा कार्य-कारिता का वर्णन आगे कुछ विस्तार से किया जावेगा।

१—दूध

गोदुग्ध के सामान्य गुण—

स्वादु शीत मृदुस्निग्ध बहलं श्लक्ष्ण पिच्छिलम् ।
गुरु मन्द प्रसन्न च गव्यं दशगुणं पय ॥
तदेवं गुणमेवौज· सामान्यादभिवर्द्धयेत् ।
प्रवर जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम् ॥

—चरक सू० अ० २७

अर्थात्—गोदुग्ध चरक के मतानुसार मधुर, शीतल, कोमलता उत्पन्न करने वाला, स्निग्ध (स्नेह-युक्त), बहल (स्थूलता लाने वाला—वैद्यक शब्द सिंधु), श्लक्ष्ण (चिकना 'श्लक्ष्णः स्नेह विनापि स्यात् कठिनोऽपिहि चिक्कणम्" इति वै. श सि.), पिच्छिल (सजल श्लक्ष्ण), गुरु (भारी), मन्द (अर्थात् शरीर मे स्थापयित्व लाने वाला) तथा प्रसन्नता देने वाला है। इस प्रकार गोदुग्ध मे दश गुण है। यही दश गुण ओज मे है अतः "सर्वदा सर्व भावाना सामान्यं वृद्धि कारणम्" अर्थात सदा सब प्रकार से समान गुण वाले पदार्थ मिलकर एक दूसरे को बढ़ाते हैं, इस नियम के अनुसार गोदुग्ध ओज को बढ़ाता है। जीवन देने वालो मे श्रेष्ठ है और रसायन है।

वक्तव्य—

(१) ओजो विवर्द्धनम् (परिभाषा)—

"हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम् ।
ओजः शरीरे सख्यातं तन्नाशान्नाविनश्यति ॥"

—चरक

अर्थात्—हृदय में पीलापन लिये जो शुद्ध रक्त होता है उसे ओज कहते हैं। यह अत्यन्त अल्प परिमाण मे होता है। इसके नाश होने से मनुष्य नष्ट हो जाता है।

"भ्रमरै· पुष्प फलेभ्यो तथा सम्भ्रियते मधुः ।
तद्वदोजः शरीरेभ्यो गुणै· सम्भ्रियते सदा ॥"

—चरक

अर्थात्—भौंरा जिस प्रकार से फूल और फलों से मधु संचय करता है उसी प्रकार शरीर की धातुओं से ओज बनता है।

'रसादीनां शुक्रान्तानां तत्पर तेजस्तत्खल्वोजः।'

—सुश्रुत

अर्थात्—रस से लेकर वीर्य तक (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) इन सात धातुओं के सार भाग से जो आठवीं धातु बनती है वह तेज है और उसी को ओज कहते हैं।

प्रथमे जायते ह्योज· शरीरेऽस्मिञ्छरीरिणाम् ।
सर्पिर्वर्णं मधुरसं लाज गधि प्रजायते ॥

—चरक

अर्थात्—मनुष्यों के शरीर में प्रथम जो ओज उत्पन्न होता है इसका रंग गो घृत के रग के समान, स्वाद मधु जैसा और गंध साठी की ताजी भुनी हुई खीलों जैसी होती है।

ओज के भेद

ओज २ प्रकार का होता है (१) पर (श्रेष्ठ) (२) अपर (सामान्य)

(१) पर (श्रेष्ठ)--इसका अधिष्ठान (स्थान) हृदय है इसके थोड़े से भी नाश होने से मनुष्य तुरन्त मर जाता है। इसका परिमाण सारे शरीर में केवल आठ बूंद है-यह अपर (सामान्य) ओज का सार है।

'प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ विन्दवो हृदयाश्रिता.'।
—चरक चक्रपाणि टीका

अर्थात्—दशो प्राणों का आश्रय स्थल जो ओज है उसका स्थान हृदय है और वह ८ बूंद है।

(२) अपर (सामान्य)--इसका अधिष्ठान रक्त-वाही धमनियां हैं जो हृदय से निकलती है। इसका परिमाण आधी अञ्जलि है और किन्हीं किन्हीं रोगों जैसे प्रमेह मे इसका नाश भी हो जाता है इससे मनुष्य की कांति क्षीण हो जाती है और निष्क्रिय हो जाता है किंतु मरता नहीं है।

'अर्धाञ्जलिपरिमितस्यौजसो धमन्य एव हृदयाश्रिता. स्थानं तथा प्रमेहेऽर्धाञ्जलि परिदितमेवौज. क्षीयते, नाष्ट विन्दुक, अस्य हि किञ्चित्क्षयेऽपि मरणं भवति, प्रमेहे तु ओज. क्षये जीवत्येव तावत् ।'
—चरक चक्रपाणि टीका सू० अ० ३०

उपरोक्त वर्णित ओज को गोदुग्ध, केवल गो दूध ही सर्वतोभावेन बढ़ाता है।

(२) प्रवर जीवनीयाना—

'जीवित शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोग'।' —चरक

अर्थात्-शरीर, इन्द्रियां, मन और आत्मा इनके संयोग को जीवन कहते है। वास्तव मे गो दूध देह और इन्द्रियों के संयोग को पुष्ट करने में अद्वितीय है। युग पुरुष महात्मा गाधी कहते है कि 'मास बढ़ाने वाली निरापद वस्तुओ मे दूध से बढ़कर कोई भोजन मै नहीं जानता हूं।'

डा० के० एम० नंदकर्णी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "इण्डियन मैटेरिया मेडिका" में गोदूध के गुण लिखते हुए लिखते है कि—

'Milk contains all the elements necessary for the growth and nutrition of bones, nerves, muscles and other tissues. Milk contains also Vitamines which are nature's anti dotes to rickets, scurvy and other results of defective nutrition.

Cow's milk contains an average albuminoids 4, fat (butter) 4, sugar (milk sugar) 5, various salts 1, and wat r 86 percent It contains a large proportion of Calcium Phosphate, an important salt required for the formation of bone and also for the proper coagulibility of the blood The other mineral constituents of cow's milk are Potassium and Magnesium Phosphates, Sodium Chloride and a trace of Phosphates of iron

(Indian Materia Medica by Dr K M. Nandkarni)

अर्थात्-शरीर की अस्थियों (हड्डियो), नाड़ियो (वात नाड़ी संस्थान), मास पेशियो तथा अन्य तन्तुओ को पुष्ट करने तथा वृद्धि के लिये जिन जिन उपादानो की आवश्यकता होती है वह सबके सब गो दुग्ध में विद्यमान है। गोदूध में वे विटामिन (जीवनीय तत्व) भी उपस्थित है जो बालकों के अस्थिक्षय (Rickets) तथा शोप या सूखा रोग (Marysmus) और उन रोगो की जो पोपण के अभाव से होते है, प्रकृति प्रदत्त औषध हैं।

गो दूध मे एल्ब्यूमिन (एक प्रकार की शर्करा) ४ प्रतिशत, चर्बी (मक्खन) ४ प्रतिशत, शर्करा (दूध शर्करा) ५ प्रतिशत, अन्य लवण १ प्रतिशत तथा जल ८६ प्रतिशत है।

शरीर मे अस्थि निर्माण के लिये तथा रक्त को उचित रूप में गाढ़ा बनाये रखने के लिये कैल-शियम फास्फेट (एक लवण विशेप) की अत्यन्त आवश्यकता होती है, केवल आवश्यकता ही नहीं वरन् इसकी उपस्थिति अनिवार्य है, गो दूध मे वह प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। गोदूध के अन्य खनिज अवयव पोटेशियम तथा मैगनीशियम सल्फेट (दोनो लवण विशेप हैं), सोडियम क्लोराइड (साभर नमक) तथा स्वल्प परिमाण मे लौह

लवण हैं।

अतः "गोदूध जीवनीय द्रव्यों में श्रेष्ठतम है" यह चरक वाक्य उपरोक्त प्रमाणों से पूर्णतया सम्पुष्ट है।

(३) क्षीरयुक्त रसायनम्—

रसायन शब्द के विभिन्न अर्थ हैं—

१. 'रसादीनां धातूना व्याप्यायन रसायनम्।'

अर्थात् रस से शुक्र तक सातों धातुओं को पुष्ट करने वाले द्रव्य को रसायन कहते है। अथवा

२. 'रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यज्जरा व्याधि विनाशनम्।'

अर्थात रसायन उसको कहते है जो बुढ़ापा तथा रोगों को नाश करे। अथवा—

३. 'स्वस्थस्यौजस्कर यत् तद्वृष्यं तद्रसायनम्'

—चरक

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य के ओज को बढ़ाने वाला द्रव्य वृष्य अथवा रसायन कहाता है। अथवा—

४. 'लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्।'

—चरक

अर्थात् रसादि सम्पूर्ण धातुओं को लाभ करने वालों में परमोत्तम होने से इसको रसायन कहते हैं।

दीर्घायु, स्मृति, मेधा (बुद्धि का श्रेष्ठतम रूप), आरोग्य, यौवनावस्था, रूप, रङ्ग, स्वर (मधुर आकर्षक और गम्भीर), उदारता, शरीर और इद्रियो का बल, वाणी में सिद्धि (बातचीत के द्वारा सुनने वाला वश मे हो जाय), नम्रता (अपने स्वभाव मे शालीनता) अथवा प्रेम (अपनी दृष्टि ऐसी हो जाय कि प्रत्येक व्यक्ति प्रिय लगे अथवा अपनी आकृति ऐसी हो जावे कि जो देखे वही प्रेम करने लगे) और अलौकिक सौंदर्य (प्रत्येक को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण) यह गुण रसायन सेवन से होते हैं। गोदूध सेवन से भी यह सब गुण होते हैं क्योंकि यह रसायन है।

विशेष—इस प्रकार के परीक्षण के लिये कम से कम एक वर्ष सेवन करना चाहिये।

गो दुग्ध के विशेष गुण-

(१) काली गो के दुग्ध के गुण—

"कृष्णागव्यावर क्षीर वातपित्त कफप्रणुत" यो र.

अर्थात् काली गाय का दूध श्रेष्ठ होता है। वात, पित्त, कफ तीनो दोषो को शांत करता है।

Milk of black cow is very wholesome and good in "Vayu" diseases (Indian Materia Medica) ।

अर्थात् काली गाय का दूध पूर्ण भोजन है तथा वायु के रोगो को शांत करता है।

(२) पीली गो के दूध के गुण—

'पीतायां वात पित्तघ्न।' —यो० र०

अर्थात् पीली गाय का दूध वायु तथा पित्त दोनों को शांत करता है।

Milk of yellow cows is good in Vayu and Pitta diseases." (Journal Ayurved March 1926) ।

(३) लाल गौ के दुग्ध के गुण—

'रक्ताया वातहृत्परम चित्रायास्तद्वदाख्यात।' —यो. र.

अर्थात् लाल तथा चितकबरी गाय का दूध वायु को शांत करने में सर्वश्रेष्ठ है।

"Milk of red or specked cow is good in Vayu diseases." (J. Ayurved March 1926) ।

(४) सफेद गाय के दूध के गुण—

'श्वेताया श्लेष्मल गुरु।' —यो० र०

अर्थात सफेद गाय का दूध कफकारक तथा भारी होता है।

(५) मृतवत्सा गाय के दूध के गुण—

'बालवत्सा विवत्सानां गवां क्षीर त्रिदोषकृत।' यो र.

अर्थात् जिस गाय का बछडा मर गया है उसका दूध वायु, पित्त, कफ तीनो दोषों को प्रकुपित करता है।

(६) छोटे छोटे पहाडों पर की गौओ के दूध के गुण—

जाङ्गलानूपशैलेपु चरन्तीनांयथोत्तरम्।
पयौगुरुतर स्नेह यथाहार प्रवर्तते ॥ —भा० प्र०

अर्थात् जांगल (जहां जंगल अधिक हो अर्थात् अधिकाश देश सूखा हो), अनूप (जहां नदी, नालों, तालावो तथा झीलो की अधिकता हो) तथा छोटे छोटे पहाड़ो पर चरने वाली गायों का दूध क्रमशः (जागल से अनूप, और अनूप से पहाड़ी) भारी,

और स्नेहयुक्त होता है।

"Milk of small hill cows is more oily and heavy of digestion." (*Journal Ayurved March 1926*)।

अर्थात् छोटी छोटी पहाड़ियों पर होने वाली गायों का दूध अधिक चिकना तथा पचने में भारी होता है। (आयुर्वेद जर्नल)

(७) अधिक दिन की व्याही गाय के दूध के गुण—

'बष्कायण्यास्त्रिदोषघ्नंतर्पणं बलकृत्पयः। —यो० र०

अर्थात् अधिक दिन की व्याही हुई गो का दूध तीनों दोषों को शांत करता, तर्पण (मन को सन्तुष्ट करने वाला) तथा बल करने वाला है।

"Milk of cows calved long ago is a good tonic and checks Tridosh." (*Journal Ayurved March 1926*)।

(8) *Milk of scanty eater cows is heavy, increases kaph, and is a very good tonic.* (*Journal Ayurved*)

अर्थात् कम चारा खाने वाली गाय का दूध भारी, कफ बढ़ाने वाला तथा शक्ति देने वाला है।

(९) धारोष्ण दुग्ध के गुण—

धारोष्ण पवनप्रकोप शमन दुग्धं गवां पुष्टिकृत।
पांडुं कामलकां निहन्ति तरसा क्षीणोर्जकृच्छ्रीकरम्॥
दाह देहगतं कराङ्घ्रिनयनज्वालां च पित्तोन्नतिं।
दुष्टास्रं कृशतां कृशानुजनितांकृच्छ्रांश्च रोगाञ्जयेत्॥

तथाच— —यो० र०

'धारोष्णं वा पयः सद्यो वातपित ज्वरं जयेत्'

—चरक

अर्थात् गाय का धारोष्ण दूध वायु को शान्त करता तथा पुष्टि देता है। पांडु, कामला को नाश कर ओज को बढ़ाता है। सारे शरीर की दाह और हाथ पैर तथा नेत्रों की जलन, पित्त की अधिकता, रक्तदोष, अजीर्ण के कारण हुई दुर्बलता तथा अन्य कष्टसाध्य रोगों को नाश करता है। यो० र०

धारोष्ण दूध वातपित्त ज्वर को आराम करता है। (चरक)

(१०) कच्चे दूध के गुण—

'आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम्।
तदपथ्यं भवेत्सर्वं गव्यमाहिषवर्जितम्॥

—यो० र०

अर्थात् कच्चा दूध पसीने के सूराखों को रोकने वाला, भारी, कफ तथा आम बढ़ाने वाला है। गाय तथा भैंस को छोड़कर सब कच्चे दूध हानिकारक हैं।

वक्तव्य—

गाय का दूध धारोष्ण पिया जा सकता है और ग्रीष्म ऋतु मे गाय तथा भैंस दोनो के कच्चे दूध का पानक (लस्सी) पीया जा सकता है-शेष निषिद्ध हैं।

(११) पक्व (उबले) दूध के गुण—

भृतोष्णं कफ वातघ्न श्रतशीतं तु पित्तनुत।
अर्द्धोदक क्षीराशेष्टमामाल्लघुतर हितम्॥

—यो० र०

अर्थात् उबला हुआ गरम गरम गाय का दूध कफ वायु को शांत करता है, और उबालकर ठण्डा किया हुआ पित्त को शांत करता है-आधा दूध तथा आधा पानी उबाला हुआ कच्चे दूध से हलका तथा लाभकारी है।

दुग्ध सेवन काल —

बालेष्वग्निकरं क्षये बलकरं वृद्धस्य रेत प्रदं।
रात्रौ क्षीरमनेकदोषशमनं सेव्यं सदा प्राणिनाम्॥

—यो. र.

अर्थात् रात्रि को सेवन किया हुआ दूध बच्चो को भूख बढ़ाता है—क्षय रोगी को बल देता है, वृद्ध मनुष्य को वीर्य प्रदान करता है (सद्यः शुक्रकरं पयः अर्थात् दूध तुरन्त शक्ति देता है) तथा अनेक दोषों को शांत करता है। अतः सदा ही मनुष्यों को सोते समय दूध का सेवन करना चाहिये। तथा च—

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं दिनान्ते तु पयः पिबेत्।
मैथुनान्ते पिबेद्घृतं रजन्यन्तं जलं पिबेत्॥

अर्थात् भोजन के पश्चात् तक्र, रात को सोते समय दूध, स्त्री प्रसंग के पश्चात् घृत तथा प्रातः काल सोकर उठने पर जल का सेवन करना चाहिये।

वक्तव्य—

दूध पीने का शास्त्रीय विधान सायं भोजन के पश्चात ही है—अन्य समयो में साधारण रूप से दूध नहीं पीना चाहिये। इसमे निम्न युक्तियां हैं—

(१) रात को पशु बैठे रहते हैं अतः उनका रात का दूध जो प्रातःकाल दुहा जाता है भारी होता है। विपरीत उसके दिन में चलते फिरते रहने के कारण दिन का दूध जो सायं दुहा जाता है–पचने मे हलका होता है।

(२) प्रातः पिया हुआ दूध निश्चित रूप से भूख कम करता है–क्योंकि भारी होता है–कभी कभी-विरेचन भी कर देता है।

गो दुग्ध अमृत है—

अमृत शिशिरे वह्निः, अमृत प्रिय दर्शनं ।
अमृत राज सम्मान, अमृत क्षीर भोजनम् ॥

अर्थात् जाड़े में अग्नि, अपने प्रियतम का दर्शन, सरकारी नौकरी अथवा अन्य राजकीय सम्मान, तथा दूध, दही, रवड़ी, खीर यह सब अमृत समान है। अमृत नाम की वस्तु आज तक देखने में नहीं आई यह सम्भव हो सकता है कि अमृत नाम किसी अन्य वस्तु का हो कि किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि भूमण्डल पर दूध ही अमृत है।

रोगो मे दुग्धपान व्यवस्था—

(१) दीप्तानले कृशे पुंसि वाले वृद्धे रति प्रिये ।
मत हिततम यस्मात्सद्यः शुक्रकरं पय. ॥
जीर्णज्वर मूत्रकृच्छ्रे रक्तपित्ते मदात्यये ।
कासे श्वासे प्रशंसन्ति गव्य क्षीर भिषग्वरा. ॥
—यो० र०

अर्थात् जिन लोगो का शरीर दुबला हो, बालक वृद्ध तथा स्त्री प्रसंग मे अधिक अनुरक्त हों किंतु जठराग्नि मन्द हो उनके लिए दूध सबसे उत्तम भोजन है क्योंकि यह तुरन्त वीर्य उत्पन्न करता है। जीर्ण ज्वर (इक्कीस दिन के पश्चात् का ज्वर), मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित, मदात्यय, कास तथा श्वास में वैद्य लोग दूध का सेवन हितकारी मानते हैं।

(२) जीर्णज्वरे मनोरोगे शोष मूर्च्छा भ्रमेषुच ।
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥
गर्भस्रावे च सतत हित मुनिवरैः स्मृतम् ।
वालवृद्धक्षतक्षीणाक्षुद् व्यवायकृशाश्च ये ॥
तेभ्यः सदातिशयिते हितमेतदुदाहृतम् ॥
—भा० प्र०

अर्थात् जीर्ण ज्वर, मनोरोग (अपस्मार, उन्माद, हिस्टीरिया तथा स्मरण शक्ति कम हो जाना) शोष (सूखा या तपेदिक) मूर्छा भ्रम, ग्रहणी, पाण्डु रोग, दाह, तृषा रोग, हृद्रोग तथा गर्भस्राव इन सब अवस्थाओं में–नित्य दूध हितकारी है। बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण (चोट लगने के कारण अधिक रक्त शरीर से निकल गया हो) भूख तथा स्त्री प्रसंग से दुर्बल हुए मनुष्यों के लिये भी सदा ही अत्यन्त हितकारी है। तथाच—

"जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतिसारे विशेषतः" चक्रदत्त

अर्थात् दूध प्रत्येक रोग की पुरातन अवस्था में अमृत के समान लाभप्रद है। अतिसार अथवा ग्रहणी मे विशेष रूप से लाभ होता है।

(४) उदर रोगों मे दुग्ध प्रयोग—

प्रयोगाणाञ्चसर्वेषां अनुक्षीर प्रयोजयेत् ।
दोषानुवन्ध रक्षार्थं वलस्थैर्यार्थमेवच ॥
प्रयोगापचितां गानां हितं दुग्धरिणांपयः ।
सर्वधातुक्षयार्तानां देवानाममृतंयथा ॥
— चरक चि० अ० १३

✓ अर्थात् सब प्रयोगों के अनुपान स्वरूप दुग्ध का प्रयोग करना चाहिए। दूध के पिलाने से दोषों का अनुबन्धन नहीं होता, बल और स्थिरता की रक्षा होती है। औषधि प्रयोग से कृश हुये उदर रोगियो के लिये दूध इस प्रकार हितकारी है जैसे सर्व धातु क्षय होने से दुःखित हुये देवताओं को अमृत का पीना हितकारी होता है।

नवज्वरे च मन्दाग्नौ साम दोषेषु कुष्ठिनाम्,
शूलिना कफ दोषेषु कासिनामतिसारिणाम् ।
पयः पान न कुर्वीत विशेषात्क्रिमिदोषदम् ॥
—यो० र०

अर्थात् सात दिन तक के ज्वर मे, अजीर्ण में (जब तक पिछला खाया हुआ अन्न पच न गया हो) पेट में आम बनती हो, कोढ़ रोग मे, पेट दर्द में, अथवा कफ बढ़ गया हो, खांसी (कफ वाली हो) तथा नवीन अतीसार मे दूध नहीं पीना चाहिए।

तथाच—जीर्णज्वरे कफेक्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ॥
तदेव तरुणे पीत विष वद्धन्ति मानवम् ॥
—चक्रदत्त

अर्थात्—जीर्णज्वर मे कफ क्षीण हो गया हो

तो गोदुग्ध अमृत समान लाभकारी है। वही दूध नये ज्वर में पीया हुआ विष के समान मनुष्य को मार देता है।

क्षीरं न भुञ्जीत कदाप्यतप्त तप्त च नैतल्लवणेन सार्धम्।
पिष्टेन सवानकषाय मुद्गकोशातकी कन्दफलादिकैश्च ॥
—यो० र०

अर्थात्—दूध कभी भी कच्चा नहीं पीना चाहिए। उबला हुआ भी नमक के साथ नहीं पीना चाहिए। पिट्ठी या पिट्ठी की बनी वस्तुओं यथा बड़े, बड़ी या मिंगौड़ी अथवा कचौड़ी, आसव, अरिष्ट, सिरका, काढ़ा, मूंग, तोरई, कन्द (आलू, रतालू, मूली, गाजर, शलजम, भसीड़े तथा सकरकन्द) और फल इनके साथ भी दूध नहीं पीना चाहिए।

दूध के साथ खाई जा सकने वाली वस्तुयें—
सहकार फलचैव गोस्तनी माक्षिक घृतम्।
नवनीतं श्रृंगवेर पिप्पली मरिचानि च ॥
सिताप्रुथकसिन्धूत्थं पटोल नागराभया।
क्षीरेणसह शस्यन्ते वर्गेषु मधुरादिषु ॥
अम्लेष्वामलकं पथ्य शर्करा मधुरेषु च।
पटोल. शाकवर्गेषु कटुकेष्वार्द्रक भवेत् ॥
कषायेषुयवाश्चैव लवणेषु च सैन्धवम् ॥
—यो० र०

अर्थात्—पका आम, मुनक्का, शहद, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, काली मिर्च, चिरवा (भुने चावल), सैंधा नमक, परवल, सोंठ, हरड़ तथा मीठे द्रव्य यह सब पदार्थ दूध के साथ खाये जा सकते हैं। तथा खट्टे पदार्थों मे आंवला, मीठे द्रव्यों में बूरा या शक्कर, मिश्री, शाकों मे परवल, चरपरे स्वाद वालो में अदरख, कसैलो मे जौ और लवणों में सैंधानमक दूध के साथ खाना निषेध नहीं है।

मत्स्यमासगुडमुद्गमूलकै कुष्ठमावहति सेवित पय.।
शाकजाम्बव सुरादि सेवित मारयत्यबुधमाशु सर्पवत् ॥
—यो० र०

नैकध्य पयसाऽश्नीयात्सर्वं चोष्णं द्रवाद्द्रवम्।
मूलकाद्याहरितकास्तैल पिण्याकसर्षपा ॥
कपित्थं जम्बु जम्बीरं पनसं मातुलिङ्गकम्।
वांश करीरं बदरं कदली चाम्लदाडिमम् ॥
फलमीदृग्विधं चान्यत्तद्वद्विल्व फलान्यपि।
क्षीरे विरुद्धान्यैकध्य सहवै भुज्यते यदि ॥
बाधिर्यमान्ध्यं वैवर्ण्यं मूकत्वं चाथ मारणम् ॥
—यो० र०

अर्थात्—मछली, मास, गुड़, मूंग, मूली यह पदार्थ दूध के साथ खाने से कोढ़ हो जाता है। जामुन का शाक अथवा शराब यह दूध के साथ सेवन करने से तुरन्त सर्प के समान मार डालते हैं। तथाच—दूध के साथ पतला या कठिन कोई भी गर्म (उष्ण वीर्य) पदार्थ नहीं खाना चाहिए। मूली आदि हरे शाक, तैल, तिल का कल्क (पिसे हुए तिल) सरसों का शाक, कैथफल, जामुन, जम्बीरी नीबू, बांस, कटहल का शाक, टेंटी (करीरफल) बेर, केला, खट्टा अनार तथा बेल अथवा इसी तरह के अन्य फल दूध के साथ खाने से बहरापन, गूंगापन, अन्धापन, शरीर का रंग बिगड़ जाना तथा मृत्यु तक हो सकती है।

(१) सतानिका (मलाई) के गुण—
संतानिका गुरु. शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत्।
तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलास बल शुक्रला ॥
—भा० प्र०

अर्थात् दूध की मलाई भारी, ठण्डी, काम शक्ति को बढ़ाने वाली, रक्तपित्त और वायु को शान्त करने वाली, मन को तुष्टि देने वाली, शरीर को बढ़ाने वाली, चिकनी तथा कफ, शान्ति और वीर्य को देने वाली है।

(२) पीयूष (पेवसी)—
"क्षीर तत्कालसूताया घनपीयूषमुच्यते।"
—भा० प्र०

अर्थात्—तत्काल व्याही हुई गाय का दूध जो जमा हुआ सा होता है। उसे पीयूष (पेवसी) कहते हैं।

(३) किलाटक (उबाल कर फटे दूध का गाढ़ा भाग)—
"नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्ड. प्रोक्त किलाटक."

अर्थात्—उबले हुये दूध को फाड़ने पर जो गाढ़ा भाग प्राप्त होता है उसे किलाटक या छैना कहते हैं।

(४) क्षीर शाक—(बिना उबले फटे दूध का गाढ़ा भाग)—
"अपक्वमेव यन्नष्ट क्षीर शाक हि तत्पय।"

अर्थात् कच्चा दूध यदि फाड़ दिया जावे तो जो गाढ़ा अंश प्राप्त होगा उसे क्षीर शाक कहेंगे।

(५) तक्रपिण्ड—

दध्नातक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा।
द्रव भागेन रहितस्तक्र पिण्ड स उच्यते ॥
—भा०प्र०

अर्थात्—दही अथवा मट्ठा डाल कर फाड़ा हुआ दूध फिर कपड़े में बांध कर उसका पानी अलग कर दिया जाय तो उस गाढ़े शाक को तक्रपिण्ड कहते हैं।

पीयूष आदि के गुण—

पीयूषश्च किलाटं च क्षीरशाकं तथैवच।
तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणावल वर्द्धना ॥
गुरव. श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः।
दीप्ताग्नीना विनिद्राणांविद्रधौ चाभिपूजिताः ॥
—भा० प्र०

अर्थात्—पीयूष (पेवसी), किलाटक, क्षीरशाक तथा तक्र पिण्ड ये सब काम शक्ति के बढ़ाने वाले, बल बढ़ाने वाले, भारी, कफ बढ़ाने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, तथा वातपित्त को शान्त करने वाले हैं। जिनकी अग्नि दीप्त हो, जिनको नींद नहीं आती हो तथा जिनके शरीर के अन्दर तथा बाहर विद्रधि (फोड़ा) हो उनके लिये लाभकारी है।

(६) मोरट—

नष्टदुग्धभव नीर मोरट जय्यटोऽब्रवीत्।

अर्थात्—दूध फाड़कर उसका पानी अलग कर लिया जाय तो उस पानी को मोरट कहते है। यह आचार्य जय्यट का मत है।

मोरट के गुण—

"मुख शोषतृषादाह रक्तपित्त ज्वर प्रणुत्।
लघुर्बल करोरुच्यो मोरटः स्यात्सितायुत ॥
—भा० प्र०

अर्थात्—यदि मोरट में मिश्री मिलादी जावे तो वह मुख का सूखना (खुश्की), तृषा (प्यास), दाह, रक्तपित्त तथा ज्वर का नाश करता है। हलका है बलकारी है और भोजन पर रुचि लाने वाला है।

(७) सपरेटा दूध (Separated Milk)—

इसके गुण मोरट के ही समान हैं।

(८) क्षीरपाक—

द्रव्यादष्टगुण क्षीर क्षीरान्नीरं चतुर्गुणं।
क्षीरावशेष कर्तव्य क्षीरपाके त्वय विधिः ॥
—चक्रदत्त

अर्थात्—औषध द्रव्यों से आठ गुना दूध और दूध से चौगुना जल इन सबको कढ़ाई में पकाना चाहिए। जब दूध मात्र शेष रह जावे तो उतार कर छान लेना चाहिए। यही क्षीर पाक है।

'क्षीर विंशतिगुण द्रव्यात् क्षीरान्नीरं समं भवम्,
क्षीरावशेष कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः।
—अष्टांग संग्रह

अर्थात् औषध द्रव्य को दरदरा कर उसमें १५ गुना दूध और दूध के बराबर जल डालकर औटावें। जब दूध शेष रहे तो कपड़े से छान ले इसे क्षीरपाक कहते हैं।

वक्तव्य—मैं प्रायः दूसरी विधि का ही प्रयोग करता हूँ। इतना विशेष है कि कुछ पानी अवशेष रहने देता हूँ।

(९) चरक विधान—

'चतुर्गुणेनाम्भसा वा श्रतं ज्वरहरं पय.।'—चरक

अर्थात् गौदुग्ध में चौगुना पानी डालकर पकाया गया दूध ज्वर को नाश करता है। तथा—

जीर्णज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम्।
पेयं तदुष्ण शीत वा यथा स्व भेषजैः श्रतम् ॥
—चरक

अर्थात् सब प्रकार के जीर्णज्वर मे दूध का पीना परम शातिदायक है। वह दूध गर्म या दोषानुसार औषधियो से सिद्ध किया हुआ उचित रीति से सेवन करना चाहिये।

दुग्धभोजन—

(१) पायस—(खर)

अर्धावशिष्टे क्वथनाद्दुग्धेऽष्टांशांश्च तण्डुलान्।
पचेन्नातिद्रवघन परमान्नमिदं स्मृतम् ॥
पायसं दुर्जर बल्य धातुपुष्टिप्रद गुरु।
शुक्रल मधुर पाके पित्तघ्न बृहणं सरम् ॥
—यो० र०

अर्थात् दूध उबलते उबलते जब आधा रह जावे तो उसमें दूध का आठवां भाग चावल डालना

चाहिये फिर पकते पकते जब न तो अधिक पतला रहे न अधिक गाढ़ा तब उसे उतार लें इसे पायस या खीर कहते हैं। यह बड़ा उत्तम भोजन है। खीर देरी से पचती है, बल देती है रसादि सातों धातुओं को पुष्ट करती है, भारी है, वीर्य बढ़ाती है, पाक में मधुर है, पित्त को शांत करती है, शरीर को पुष्ट करती है और शौच शुद्ध लाती है।

(२) गोधूम पायस—(दुग्ध में पका गेहूं का दलिया) अथवा दुध लपसी—

गोधूमपायस वल्यं मेदः कफकरं गुरु।
शीतलं पित्तशमन वातकृच्छुक्र वर्धनम्॥

—यो० र०

अर्थात् दूध मे पकाया गया दलिया या दुध-लपसी बल देने वाली, स्थूलता बढ़ाने वाली, कफ कारक तथा भारी है। शीतल है, पित्त को शान्त करती है वायु तथा वीर्य को बढ़ाती है।

(३) दुग्धपानक (लस्सी)—

'यथोचित जलैर्युक्तं ससितं दुग्धपानकम्'

अर्थात् दूध में आवश्यकतानुसार जल तथा मिश्री डालकर दुग्धपानक बनाया जाता है।

दुग्धपानक के गुण—

'वातपित्तहर शीतं मूत्रलं दुग्धपानकम्'

अर्थात् कच्चे दूध की लस्सी शीतल, वातपित्त को शान्त करने वाली और मूत्र अधिक लाने वाली है।

(४) दुग्धचूर्ण (Milk powder)—

Plasmon is a pure soluble milk prepared by seperating casein of milk and leaving the albumin unaltered. It is a colourless white powder containing *12%* of proteids, odourless and tasteless soluble in soup and milk. In water the powder swells upto a gelatinous mass which dissolves as more water is added. It contains albumin, phosphates of ammonium, sodium and potassium and a small quantity of common salt.

—Indian materia Medica.

अर्थात् दुग्ध चूर्ण से बनाया हुआ एक विशुद्ध पदार्थ है जो घुलनशील है। दूध की एक प्रकार की प्रोटीन जो थक्का के रूप मे होती है उससे अलग करदी जाती है और एल्ब्यूमिन जो एक प्रकार की शर्करा है बिना किसी परिवर्तन के उसी में बनी रहने दी जाती है। यह एक चूर्ण है जिसमे कोई रंग नहीं होता। इसका वर्ण श्वेत होता है। इसमे ९२ प्रतिशत प्रोटीन (अन्य भेद) रहती है—इसमें न कोई गन्ध होती है और न कोई स्वाद। यह किसी भी रस तथा दूध मे घुल जाता है। पानी में घोलने पर पहले तो चिपकाहट लिये एक थक्का सा हो जाता है जो और अधिक पानी डालने पर घुल जाता है। इसमें एल्ब्यूमिन, एमोनियम फास्फेट, सोडियम फास्फेट, पुटेशियम फास्फेट तथा अत्यल्प परिमाण मे साभर नमक होता है।

२ दधि—

पंचगव्य का दूसरा अवयव दधि है यह दूध से बनता है—उबले दूध मे थोड़ा अम्ल, नीबू का रस, मट्ठा अथवा दही डालने से दूध जमजाता है। इसे दधि कहते हैं। यह क्रिया १२ घंटे मे सम्पन्न होती है।

विवरण—

जब लैक्टिक अम्ल (*Lactic Acid*) तैयार करने वाले जीवाणुओं की प्रतिकिया (*reaction*) दूध पर होती है तो दही का निर्माण होता है। ये जीवाणु दूध में अभिषव (*fermentation*) उत्पन्न करके दुग्ध शर्करा का अधिकांश लैक्टिक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं। इस अम्ल के कारण दूध के मेद तथा प्रोटीन जम जाते हैं और दही बनता है—पौष्टिकता की दृष्टि से दूध के सब उपादान दही में भी मिलते हैं केवल दुग्ध शर्करा के स्थान मे दुग्धाम्ल तथा दुग्धाम्लजनक जीवाणु मिलते हैं। ये दुग्धाम्लजनक जीवाणु अन्य बीजाणुओं का विनाश करते हैं। विधिपूर्वक दही सेवन करने से अन्त्र में होने वाले जीवाणु और उनका विष नष्ट हो जाता है। पाचन सस्थान के अनेक विकारो मे दही बड़ा गुणकारक है।

—डाक्टर घाणेकर कृत सुश्रुत टीका से उद्धृत

दधि के सामान्य गुण–

> रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्द्धनम् ।
> पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मङ्गल्यं बृंहणं दधि ॥
> पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे ।
> अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते ॥
>
> —चरक

अर्थात् दही भोजन पर रुचि लाता है, अग्नि को बढ़ाता है, कामशक्ति को उद्दीप्त करता है–शरीर को चिकना करता तथा बल बढ़ाता है। विपाक में अम्ल तथा वीर्य में उष्ण है। वायु को शांत करता है। मंगलकारी तथा शरीर को पुष्ट करता है। प्रतिश्याय (जुकाम), अतिसार, जाड़ा लगकर आने वाला विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र तथा दुबलापन इनमें दही अत्यन्त हितकारी है। तथा च—

> दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ।
> पाकेऽम्लं श्वासपित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥
>
> —भ० प्रा०

अर्थात् दही उष्णवीर्य, अग्नि बढ़ाने वाला, स्निग्ध, किंचित कसैला है। भारी, पाक में अम्ल है। श्वास, रक्तपित्त, शोथ, मेद और कफ को बढ़ाने वाला है।

नव्य मत–

Curdled milk is said to be useful in jaundice, and an antidote of copper It is also useful in fever and urinary disorders. Curds mixed with blackpepper administered to the person bitten by surpent is said to counteract the effects of poison

अर्थात् दही कामला रोग में लाभकारी है और ताम्र विष प्रभाव को शांत करता है। यह ज्वर तथा मूत्ररोगों में गुणकारी है। दही में कालीमिर्च मिला कर यदि सांप काटे मनुष्य को खिलाया जावे तो विष के प्रभाव को नष्ट करता है।

—डा० जे. एल. दुबे

स्वमत

शास्त्र का नियम है "अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात् हर काम की अति सीमा पार करना बुरा होता है। इसी के परिणामस्वरूप यह हानियां होती है जिनकी ओर शास्त्रकार ने 'श्वासपित्तास्र शोथ, मेदः कफप्रदम्' अर्थात् दही श्वास, रक्तपित्त, शोथ, मुटापा तथा कफ बढ़ाता है—कहकर संकेत किया है। हमारे एक मित्र कहा करते हैं कि दही अधिक सेवन करने वाले को चार लाभ होते हैं—

(१) उसको बुढ़ापा नहीं आता—अत्यन्त कामशक्ति बढ़ने के कारण मनुष्य अतिव्यवायी (अधिक स्त्री प्रसंग करने वाला) होकर बुढ़ापे से पूर्व अर्थात् जवानी में ही मर जाता है।

(२) उसको कुत्ता नहीं काटता—श्वास हो जाने के कारण हर समय लाठी लेकर चलना पड़ता है।

(३) उसके घर में चोरी नहीं होती–कफ बढ़ने के कारण हर समय खांसता रहता है अतः रात में भी जागता है।

(४) वह पानी में नहीं डूबता–शरीर में अत्यंत कफ बढ़ जाने के कारण इतनी ठंड बढ़ जाती है कि शरीर पानी छूना भी नहीं चाहता इसलिये वह पानी में घुसने का साहस भी नहीं करता। अथवा शरीर की कुल धातुयें या सार भाग कफ बन बन कर निकल जाती हैं। अतः शरीर में सिवाय हड्डी और त्वचा के मास तो रहता ही नहीं शरीर बिल्कुल हलका हो जाता है और पानी में गिरने पर भी डूबता नहीं।

अतिरिक्त इसके दही की गणना शास्त्रकारों ने सात्विक भोजन में नहीं की जबकि दूध, घी को सात्विक भोजन कहा है। योगाभ्यासी के लिए दही खाना निषिद्ध है, दही राजसिक भोजन है।

(१) निःसार दुग्ध के दधि के गुण (सपरेटा का दही)–

> असार दधि सग्राही शीतलं वातलं लघु ।
> विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोगनाशनम् ॥
>
> — यो० र०

अर्थात् दूध में से मक्खन निकाल कर (सपरेटा का दूध) जमाया हुआ दही मल को बांधने वाला, सामान्य दही की अपेक्षा शीतल (अन्यथा उष्ण-

वीर्य), वातकारक, हलका, मल को रोकने वाला (कब्ज करने वाला), अग्नि को बढ़ाने वाला, भोजन पर रुचि लाने वाला तथा ग्रहणी रोग को नाश करने वाला है।

(२) मन्दक (कच्चे) दही के गुण—

'यदा क्षीर विक्रियामापन्नं घनत्वं
याति तदा तन्मन्दकम्।'

अर्थात् जब दूध पूरे रूप से नहीं जम पाता तो उस कच्चे दही को मन्दक कहते हैं।

गुण—

'त्रिदोष मन्दकं जातं वातघ्नं दधि॥' —चरक

अर्थात् मंदक दही त्रिदोषकारक है किंचित् वायु को शांत करता है।

(३) सर तथा मस्तु—

'दध्नस्तूपरि भोगो यो घन. स्नेह समन्वित'।
लोके सर इति ख्यातो, दध्नो वारि तु मस्त्विति॥
—यो० र०

अर्थात् दही के ऊपर का भाग जो गाढ़ा होता है और जिसमें स्नेह होता है सर कहलाता है। दही का पानी मस्तु कहाता है। दही के दो भाग होते हैं एक तो पानी जो अपने :आप हर समय छूटता रहता है जिसे हलवाई प्राय: फेंक देते है यही मस्तु है शेष सर कहते हैं।

सर के गुण—

"शुक्रल: सर:" (चरक) अर्थात् सर वीर्य बढ़ाने वाला है।

मस्तु के गुण—

'मस्तु क्लमहरं वल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत्।
स्रोतो विशोधनाह्लादि कफ तृष्णानिलापहम्॥
अवृष्य प्रीणन शीघ्र भिनत्ति मल सग्रहम्॥
—यो० र०

अर्थात् मस्तु या दही का पानी थकान को दूर करता है, बल देता है, पचने में हलका है, भोजन में रुचि लाता है, शरीर के सूक्ष्म स्रोतों को शुद्ध करने वाला है, प्रसन्नता प्रदान करता है। कफ, प्यास और वायु को शात करता है।कामशक्ति नही बढ़ाता और मल को प्रवृत्त करता है।

दधि सेवन का समय—

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते।
शरद्ग्रीष्म वसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम॥
—सुश्रुत

अर्थात् हेमन्त ऋतु (अगहन, पूष), शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुण) और वर्षा ऋतु (श्रावण, भाद्रपद) में दही खाना लाभकारी है किंतु शरद् ऋतु (क्वार, कार्तिक), ग्रीष्म ऋतु (जेठ, आषाढ़) और वसंत ऋतु (चैत्र, वैशाख) मे दही नहीं खाना चाहिए। प्राय: करके (नित्य अथवा अधिकतया) नहीं खाना चाहिए जब कभी खाया जा सकता है।

वक्तव्य

क्वार-कार्तिक में दही खाने से रक्तपित्त, जेठ-आषाढ़ में खाने से संतत ज्वर (मियादी बुखार) और चैत्र-वैशाख में खाने से चेचक, मोतीझला उत्पन्न करता है।

सगुड वातनुद्वृष्य बृंहणं तर्पणं गुरु।
न नक्तं दधिभुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्॥
नामुद्गसूप नाक्षौद्रं नोष्णैनर्मालिकैर्विना।
शस्यते दधि नो रात्रौ शस्त चांबु घृतान्वितम्॥
रक्तपित्त कफोत्थेषु विकारेष च नैव तत्॥
—भा० प्र०

अर्थात् दही में गुड डालकर खाने से वायु को नाश करता है, कामशक्ति को बढ़ाता है, शरीर को पुष्ट करता है, मन को संतोष देता है भारी है। दही रात मे नहीं खाना चाहिये। यदि खाना ही पड़े तो बिना घी या बूरा डाले नहीं खाना चाहिए। बिना मूंग के पानी, शहद और आमले के अकेला भी नहीं खाना जाहिए। किसी गर्म पदार्थ के साथ नहीं खाना चाहिये। पानी या घी कुछ मिलाकर ही दही खाना चाहिए। साथ ही रक्तपित्त (मुंह, नाक, गुदा, लिंग अथवा शरीर के किसी भाग से रक्त गिरने पर) और कफ के विकार मे कदापि किसी प्रकार नहीं खाना चाहिये।

भोजन प्रयोग—

(१) रसाला शिखरिणी—

दधिवद्धं तुल्यसित त्वर्धपयो गालितं शनकैः।

मरिचैलाशर्करा राहित्यं भवति रसालामिति चोक्त ॥

अथवा

ससितं दधिमन्थाज्य मरिचैलादि संस्कृतम् ।
मथितं कान्तकामिन्या कर्पूर परिवासितम् ॥
रसालाशिखरिण्युक्ता मार्जारी मार्जिका तु सैव ॥

—यो० र०

अर्थात् दही बांध लिया जावे जिससे उसका पानी अलग हो जावे। उसके बराबर मिश्री मिलाकर आधा दूध मिलाया जाय, फिर उसे मथकर उसमें काली मिर्च, इलायची तथा कपूर डाल दिया जावे इसे रसाला कहते है। अथवा दही शहद घृत मिश्री यथोचित मिलाकर उसमें मिर्च और इलायची डालकर मथ दिया जावे। इसे रसाला या शिख-रिणी कहते हैं।

रसाला के गुण—

रसाला शुक्ला बल्या रोचना वातपित्तजित्।
स्निग्धा गुरु प्रतिश्याय विशेषेण विनाशयेत्॥

—यो० र०

अर्थात् रसाला या शिखरिणी वीर्य बढ़ाती है, बल देती है, भोजन पर रुचि लाती है, वायु और पित्त को शांत करती है। स्निग्ध और भारी है। प्रतिश्याय (जुकाम) को विशेष रूप से शात करती है।

(२) दधिपानक (लस्सी)—

चतुर्गुणजलेर्युक्तं ससितं दधिपानकम्।

—नव परिभाषा

अर्थात् चौगुना पानी तथा यथोचित मिश्री डालकर मथा हुआ दही, दधिपानक या लस्सी कहलाता है।

गुण—

दधिपानकं तृषाहर मूत्रल वातपित्तजित्।

अर्थात् दही की लस्सी प्यास को शात करती है, मूत्र विशेष लाती है और वायुपित्त को नाश करती है।

(३) दधि कुर्चिका—

दध्नासह पय पक्वं सा भवेद्दधि कुर्चिका ।

—नव परिभाषा

अर्थात् दही के साथ दूध को मिलाकर खोये की तरह पकाया जावे तो उसको दधि कुर्चिका कहते है।

(५) तक्र—

[illegible]

औषधि प्रयोग-

(१) दध्यादि तैल ([illegible])—

[illegible]

—[illegible]

अर्थात् दही, [illegible] का काढ़ा और [illegible] ८ सेर, [illegible] ८ सेर एवं खरेंटी, पुनर्नवा, यष्टी मधु रास्ना (बायसुरई), सोंठ, देवदारु, असगन्धा प्रत्येक ४ तोले यह सब द्रव्य कड़ाही में डालकर आग पर चढ़ावें। जब तैल मात्र शेष रहे तो उतार कर छान ले।

मात्रा—६ माशा से १ तोला।

लाभ—पीने तथा लगाने से [illegible] नाश होता है।

तक्र

उदश्विन्मथितं घोलं तक्रं इत्यादि चतुर्विधम्।
सजलं निर्जलं घोलं मथितं [illegible]॥
तक्र पाद जलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्धवारिकम्।

—योगरत्नाकर

अर्थात् तक्र चार प्रकार का होता है। (१) उद-श्वित, (२) मथित, (३) घोल, (४) तक्र।

(१) दही में पानी न डाला जाय और मथ लिया जाय एवं नवनीत (लोनी) न निकाला जाय उसे घोल कहते है।

(२) घोल में से यदि नवनीत निकाल लिया जाय तो वह मथित कहलाता है।

(३) दही में चौथाई पानी डालकर मथ लिया जाय और नवनीत (लोनी) निकाल ली जाय तो उसे तक्र कहते हैं।

(४) यदि दही में आधा पानी डालकर मथ लिया जाय तो उसे उदश्वित् कहते है। अथवा—

मन्थनेन पृथग्भूत स्नेहमर्धोदकं च यत्।
नाति सान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे॥
—सुश्रुत सू० अ० ४५

अर्थात् दही में आधा जल मिला मथानी से मथकर मक्खन निकाली हुई मधुर, अम्ल और कषाय रस वाली अति गाढ़ी या अति पतली नहीं हो ऐसी छाछ को तक्र कहते हैं।

तक्र के गुण—

वातपित्त हरं घोलं मथितं कफपित्तनुत्।
तक्रं त्रिदोष शमनमुदश्वित्कफकृद् स्मृतम्॥
—यो० र०

अर्थात् घोल वातपित्त को शांत करता है, मथित कफपित्त को नाश करता है, उदश्वित कफ बढ़ाता है और तक्र तीनों दोषों को शांत करता है।

कट्वर—

'दध्न. ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते।'
—नव परिभाषा

अर्थात् सारयुक्त दही, जिसके अन्दर सम्पूर्ण मक्खन मौजूद है, से जो तक्र बनता है उसे कट्वर कहते हैं।

विशेष—तक्र में से नवनीत निकाल लिया जाता है जब कि कट्वर में विद्यमान रहता है।

तक्र का प्रयोग—

शोफार्शो ग्रहणीदोषमूत्रग्रहोदरारुचौ।
स्नेह व्यापदि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद्गरेषु च॥
—चरक

अर्थात शोथ, अर्श, ग्रहणी दोष, मूत्र की रुकावट, आठो उदर रोग [(१) वातोदर (२) पित्तोदर (३) कफोदर (४) सान्निपातिकोदर (५) प्लीहोदर (६) बद्धोदर (७) क्षतोदर (८) जलोदर] अरुचि, स्नेह व्यापद् (तैल, घी पीने अथवा शरीर लगाने के कारण कोई रोग हो गया हो), पाण्डु और गर दोष (स्त्रियां पति को वश में करने के लिये मासिक धर्म, पसीना अथवा शरीर का मल पति को भोजन के साथ खिला देती हैं अथवा शत्रु छल से भोजन के साथ कोई दूषित पदार्थ खिला दे तो जो रोग होता है उसे गर दोष कहते हैं) इन सब रोगों में तक्र का सेवन करना चाहिए।

अर्श—

'नास्ति तक्रात्परं किञ्चिदौषधं कफवातजे।'
—चरक

अर्थात संसार में मट्ठे से बढ़कर सूखे (बादी) बवासीर की कोई औषधि नहीं है।

ग्रहणी—

तक्रं तु ग्रहणीदोषे दीपनग्राहि लाघवात्।
श्रेष्ठं मधुरपाकित्वान्न च पित्तं प्रकोपयेत्॥
—चरक

अर्थात् ग्रहणी ["ग्रहणाद्ग्रहणी मता" अर्थात् जो अन्न को पचाने के लिये ग्रहण करती है उसे ग्रहणी कहते हैं] का कोई विकार हो उसके लिए तक्र श्रेष्ठ औषधि है क्योंकि यह अग्नि को दीप्त करता है, मल को बांधता है और पचने में हलका है। मधुर विपाक होने से पित्त को कुपित भी नहीं करता।

तथा—

गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम्।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पते॥
—चरक

अर्थात् जो मनुष्य गुरुता, अरुचि, मंदाग्नि, अतिसार और वातकफ के रोगों से पीड़ित हो उनको तक्र अमृत के समान गुणकारी है।

विशेष प्रयोग—

नाति सान्द्रं मतं पाने स्वादु तक्रमपेलवम्।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी॥
वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्।
शर्करामधुकोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत्॥
यमानीसैंधवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी।
पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम्॥
मधु तैलवचाशुण्ठीशताह्वा कुष्ठसैंधवैः।
युक्तं प्लीहोदरोजातं स व्योषन्तूदकोदरी॥
बद्धोदरी तु हबुषायमान्यजाजीसैंधवैः।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्र संयुतम्॥
—चरक

अर्थात् सब प्रकार के उदर रोगों में सोंठ, मिर्च, पीपल तथा नमक डालकर बहुत गाढ़ा या बहुत पतला न हो ऐसा तक्र पीना चाहिए। वातज उदर रोग में पीपल और सैंधव मिला तक्र पीना चाहिए। पित्तज में मिश्री तथा मुलहठी का चूर्ण

डालकर पीना चाहिए। कफज में सैंधानमक, अजवायन, जीरा और सोठ, मिर्च, पीपल, शहद डालकर खट्टा और कुछ गाढ़ा तक्र पीना चाहिए। प्लीहोदर में शहद, तैल, घुड़बच, सोठ, सौंफ, कूट और सैंधानमक डालकर तक्र पीवे। बद्धोदर में हाऊवेर, अजमायन, कालाजीरा और सैंधानमक मिला तक्र हितकारी है। छिद्रोदर में पीपल और शहद मिला तक्र लाभकारी है। तथा—

> रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्।
> तक्रं दोषाग्निविन्त्रिविधं तत् प्रयोजयेत्॥
> स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैतियः।
> तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते॥
>
> —चरक चि० अ० १४

अर्थात् वैद्य दोष और जठराग्नि का बल देखकर सर्व स्नेहांश (नवनीत) निकाले हुए, आधास्नेहांश निकाले हुए या बिल्कुल स्नेहांश न निकाले हुए तक्र का प्रयोग करें। तक्र से स्रोतस् मार्ग शुद्ध होने पर जो रस शरीर में पहुँचता है उससे पुष्टि, बल, वर्ण बढ़ता है और हर्ष उत्पन्न होता है।

अपिच—न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न
तक्र दग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

—यो० र०

अर्थात तक्र के सेवन करने वाले को कभी कोई रोग नहीं होता जो देवताओं के लिए अमृत का महत्व है वही महत्व मनुष्यों के लिये तक्र का है,

क्वथित (उबले) तक्र के गुण—

> तक्रमाम कफ कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च।
> पीनसश्वासकासादौपक्वमेव विशिष्यते॥
>
> —यो० र०

अर्थात् बिना उबला (कच्चा) मट्ठा पेट के कफ का नाश करता है, किंतु कण्ठ में कफ बढ़ाता है। जुकाम, श्वास और खासी में उबलता हुआ मट्ठा लाभ करता है।

तक्र कुर्चिका—

'क्षीरं तक्रेण यत् पक्वं साभवेत्तक्र कुर्चिका'

—नवपरिभाषा

अर्थात् तक्र के साथ दूध को मिलाकर खोये की तरह पकाया जावे तो उसे तक्र कुर्चिका कहते हैं।

सेवन काल—

"भोजनान्ते पिवेत्तक्रं" अर्थात् मट्ठा भोजन के पश्चात् दोपहर को पीना चाहिए।

तक्रपान का निषेध—

> नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
> न मूर्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्त पैत्तिके॥
>
> —सुश्रुत

अर्थात् मट्ठा ज्येष्ठ, आषाढ़, क्वार और कार्तिक इन चार महीनों में व्रण (जखम) वाले को, दुर्बल, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त के रोगी को कदापि किसी भी प्रकार सेवन नहीं करना चाहिए।

औषधि प्रयोग

(१) तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं
स क्षारमर्तिं जठरे निहन्यात्।

—चरक

अर्थात जौ के आटे को तक्र में घोलकर आग पर पका लिया जाय फिर उसमे जवाखार (यवक्षार) डालकर पेट पर गर्म गर्म लेप किया जावे तो उदरशूल शांत होता है।

(२) तक्रारिष्ट (चरक संहिता अर्श रोगाधिकार)

(३) तक्रारिष्ट (भैषज्य रत्नावली, चक्रदत्त-संग्रहणी रोगाधिकार)

(४) तक्रमण्डूर (भैषज्य. शोथरोगाधिकार)

(५) तक्रवटी (भैषज्य ग्रहणी रोगाधिकारे)

३. घृत तथा नवनीत—

पंचगव्य वर्ग का तृतीय अवयव घृत है और घृत का पूर्वरूप नवनीत होता है अर्थात् नवनीत या लौनी को ही गरम करके घृत बनाया जाता है अतः प्रथम नवनीत का ही वर्णन करते है।

नवनीत (दही से निकला हुआ)—

> नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत्।
> सङ्ग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोर्दितकासहृते॥
>
> —भा० प्र०

अर्थात् नवनीत या लौनी गाय की सबसे उत्तम है। इससे वीर्य बढ़ता है, शरीर का रंग उज्ज्वल होता है। अग्नि तथा बल बढ़ता है, मल बंधता है। वायु, रक्तपित्त, क्षय, अर्श, अर्दित और खाँसी का नाश होता है। नवनीत सभी के लिये हितकारी है किंतु छोटे बालकों के लिए तो अमृत है।

दूध के नवनीत (मक्खन) के गुण—

> दुग्धोत्थ नवनीतं तु चक्षुष्य रक्तपित्तनुत् ।
> वृष्यं बल्यमति स्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥

अर्थात् दूध से निकाला हुआ मक्खन नेत्रों को हितकारी, रक्तपित्त शांत करने वाला, वीर्य और बल को बढ़ाने वाला और अति स्निग्ध है। मधुर विपाक, ग्राही (मल को बाँधने वाला) और शीतल होता है।

सद्यः नवनीत के गुण—

> नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु ।
> मेध्यं किञ्चित् कषायाम्लमीषत्तक्रांश संक्रमात् ॥

अर्थात् तुरन्त का निकला हुआ मक्खन मीठा, मल बाँधने वाला, शीतल, हल्का, बुद्धि बढ़ाने वाला और थोड़ा मट्ठे का अंश मिला होने के कारण कुछ कसैला और खट्टा है।

वासा या रक्खा हुआ नवनीत—

> सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शः कुष्ठकारकम् ।
> श्लेष्मल गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥

अर्थात् देर का रक्खा हुआ मक्खन क्षारयुक्त, चरपरा और खट्टा होने से वमन, अर्श और कोढ़ को उत्पन्न करता है। कफ बढ़ाता है, भारी है और शरीर में चर्बी बढ़ाता है।

घृत

सामान्य गुण—

> घृतं पित्तानिलहरं रस शुक्रौजसां हितम् ।
> निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम् ॥
> —चरक सू० अ० १३

> स्मृतिबुद्ध्याग्निशुक्रौजः कफमेदो विवर्धनम् ।
> वातपित्तविषोन्माद शोषालक्ष्मीज्वरापहम् ॥
> सर्वं स्नेहोत्तमं शीतं मधुर रसपाकयोः ।
> सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्म सहस्रकृत् ॥
> —चरक सू० अ० २७

अर्थात् घृत पित्त और वायु दोनों को समान रूप से शाँत करता है। रस, वीर्य और ओज को बढ़ाता है। शरीर की दाह शाँत करता है, शरीर को कोमल बनाता है। स्वर को मधुर और गम्भीर बनाता है और वर्ण को उज्ज्वल करता है।

स्मृति, बुद्धि, अग्नि, वीर्य, ओज, कफ और मेद को बढ़ाता है। वातपित्त, विष (किसी भी प्रकार का) उन्माद, शोष (यक्ष्मा अथवा सूखा), दरिद्रता और ज्वर को नाश करता है। संसार में जितने स्नेह है उनमे सर्वश्रेष्ठ है। वीर्य मे शीतल, रस और विपाक में मधुर है। विधिपूर्वक सस्कार करने से हजारों गुनी शक्ति आ जाती है और हजारो ही कार्य करने में सक्षम (समर्थ) हो जाता है।

वक्तव्य

(१) पित्तानिलहरं—घृत पित्त और वायु को समान रूप से एवं सर्वतोभावेन शांत करता है। परिणामतः जो व्यक्ति गोघृत का सेवन करता है उसे लू अथवा Sun stroke नहीं होता। ऐसे व्यक्ति यद्यपि अत्यल्प है किंतु है सही। राजा साहब अवागढ़ (श्री सूर्यपाल सिंह जी) अब से कुछ पूर्व केवल गोघृत ही सेवन करते थे। इसका कारण यह है कि गो और बैल में ताप सहने की क्षमता अन्य किसी भी प्राणी से अधिक है। वह अधिक से अधिक उत्ताप मे नहीं घबराते जबकि भैंस आदि शीघ्र पलायन कर जाते है। यह गुण गोदुग्ध में भी हैं किन्तु गोघृत में अधिक मात्रा में है ऐसा एक सुयोग्य मित्र का अनुभव है। उनका कहना है कि किसी व्यक्ति के लू या Sun stroke से आक्रान्त होने पर हमने इन दोनों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

इसी प्रकार गोदुग्ध तथा गोघृत का अधिक सेवन करने वाले व्यक्ति में आपत्ति सहन की क्षमता भी अधिक होती है। बैल गाड़ी कीचड़ में फंस जाने पर रह रह कर शक्ति लगाता है और निकाल ही लेता है किंतु भैसा बहुत ही हतोत्साह हो जाता है। इसी प्रकार गोदुग्ध सेवन करने वाला व्यक्ति

भयंकर से भयंकर आपत्ति आने पर भी अपना धैर्य भङ्ग नहीं होने देता और शांतिपूर्वक सोचकर उससे छुटकारा पा ही लेता है।

(२) स्मृति विवर्धनम्—स्मरण शक्ति का अच्छा होना बहुत बड़ा गुण है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है 'स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति' अर्थात स्मरण शक्ति के कम होने से बुद्धि (ज्ञान) का नाश हो जाता है और ज्ञान या बुद्धि का नाश होने से मनुष्य स्वयं ही नष्ट हो जाता है। एक अन्य स्थल पर ऊँच और नीच की परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं "स्मृतिहीनो जनो जघन्य" अर्थात् जिस मनुष्य की स्मरण शक्ति नहीं वही नीच है। घृत इस दोष को दूर करता है अतः यह अकेला गुण ही घृत को इस उच्च आसन का अधिकारी बना देता है।

(३) विषापहम्—घृत हर प्रकार के विष को वह स्थावर हो अथवा जंगम, सर्वथा नाश करता है। कोई विष खा लेने पर आप घृत पिलाइये, किसी विषैले कीड़े के काट लेने पर भी पिलाइये बराबर गुण करेगा। घृत प्रबल विषघ्न है। इसकी मोटी पहचान है कि घृतपूर्ण पात्र में आप बड़े से बड़े बिच्छू या भयंकर सर्प को डाल दीजिये कुछ ही क्षणों में तड़प तड़प कर जान दे देगा।

(४) अलक्ष्मीनाशनम्—मनुष्य शरीर में वीर्य न होने पर कोई भी कार्य नहीं कर सकता अतः निरुद्योगी होने से वह दरिद्र रहता है। घृत वीर्य का भण्डार है। इसके सेवन से शरीर में शक्ति एवं हृदय में उत्साह की वृद्धि होती है। फिर वह उद्योग किये बिना रह ही नहीं सकता और उसकी दारिद्रता का नाश होजाता है। घृत की अलक्ष्मीनाशन क्रिया यही है।

(५) सर्वस्नेहोत्तमम्—

नान्य स्नेहस्तथा कश्चित्संस्कारमनुवर्तते।

—चरक

अर्थात् तैल, वसा, मज्जा इनमें से कोई भी स्नेह अन्य औषधियों के गुण को इतनी विशेषता के साथ और इतने परिमाण में ग्रहण नहीं कर सकता जितना कि घृत ("घृतं योगवाहि" अर्थात्-घृत जिसके संसर्ग में आता है उसी पदार्थ के गुण ग्रहण कर लेता है) अतः इसे सबसे श्रेष्ठ स्नेह कहा है।

(६) सहस्रवीर्य विधिभिर्घृतमर्त्यं सहस्रकर्म—नाना गुणयुक्त तथा नाना कर्मकारी द्रव्यों के साथ पकाने से घृत में हजारों गुनी शक्ति आजाती है अतः हजारों अचिन्त्य (जिनका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता) कार्य करने में समर्थ होता है।

यद्यप्यपीता वसुधातलेऽसुधा,
नदप्यद स्वादु तर्नानुमन्यते।
अपिकतृप्तवुधदग्धाग्निविते,
स्पृहां यदस्मैदधते सुगान्धतः॥

अर्थात्—यद्यपि मनुष्यों ने अमृतपान नहीं किया है तथापि ऐसा अनुमान होता है कि घृत अमृत से भी अधिक मीठा है क्योंकि अमृत भोजी देवता भी यज्ञाग्नि में दग्ध घृत की सुगन्ध की आकांक्षा रखते हैं।

(७) रोग प्रशमन शक्ति—

उदावर्त ज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान् हरेत्।
स्निग्धं कफहरं वृष्यं क्षयवीसर्प रक्तनुत्॥

—भा० प्र०

अर्थात्—उदावर्त (उदरस्थ वायु की विपरीत गति), ज्वर, उन्माद, शूल, अफरा, व्रण, क्षय, विसर्प, रक्तपित्त तथा कफ को नाश करता है। स्निग्ध है और वीर्य को बढ़ाता है।

घृत मण्ड—

सर्पिर्मण्डस्तु मधुरः सरो योनिश्रोत्राक्षिशिरसाशूलघ्नो वस्तिनस्याक्षि पूरणेषूपदिश्यते।

—सुश्रुत सू० अ० ४५

अर्थात्—घृत के ऊपर का पतला भाग मधुर, मृदु विरेचक, तथा योनि, कर्ण और शिरःशूल को दूर करने वाला है। वस्ति कर्म, नस्य और नेत्र पूरण में इसीका उपयोग करना चाहिए।

घृत के भेद तथा उनका प्रयोग—

नवीन घृत—

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणेश्रमे।

बलक्षये पाण्डुरोगे कामला नेत्ररोगयो ॥
--भा० प्र०

अर्थात्—भोजन में, तर्पण मे, थके हुए मनुष्य को, शक्ति क्षीण होने पर, पाण्डुरोग में, कामला तथा नेत्र रोग मे रोगी को नवीन घृत ही प्रयोग कराना चाहिए ।

पुरातन घृत—-

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तन्त्रिदोषनुत् ।
मूर्छाकुष्ठ विषोन्मादापस्मार तिमिरापहम् ॥
—भा० प्र०

अर्थात्-एक वर्ष से ऊपर का घृत पुराना हो जाता है और तीनों दोषों को शान्त करता है । मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद अपस्मार तथा नेत्रतिमिर को दूर करता है ।

सर्पि. पुराणं विज्ञेयं दश वर्षं स्थितं तु यत् ।
सर्पि पुरातन श्रेष्ठ त्रिदोषातिमिरापहम् ॥
मूर्छाकुष्ठविषोन्माद ग्रहापस्मारनाशनम् ।
दशसंवत्सरारुर्ध्वमाज्यमुक्तं रसायनम् ॥
शतवर्षस्थितं यत्तु कुम्भ सर्पिस्तदुच्यते ।
रक्षोघ्नं कुम्भसर्पि. स्यात्परतस्तु महाघृतम् ॥
पेय महाघृतं भूपै. सर्वतोऽपि गुणाधिकम् ।
भक्षणात्कासरोगघ्नमञ्जनान्नेत्ररोगजित् ॥
शिरोभ्यङ्गादूर्ध्वजत्रुरोगघ्नं तत्पुरातनम् ।

अर्थात् दशवर्ष का रक्खा हुआ घृत पुरातन घृत कहलाता है। पुराना घी श्रेष्ठ है। यह घृत त्रिदोष तथा नेत्रतिमिर को दूर करता है। मूर्छा,कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रहदोष और अपस्मार को दूर करता है। दश वर्ष के बाद का घी रसायन हो जाता है। सौ वर्ष का घी कुम्भ सर्पि कहा जाता है। यह राक्षसों (रोगों के कीटाणुओं) का नाश करता है। इसके पश्चात् घृत महाघृत कहलाता है। यह सबसे उत्तम घृत है। राजाओं को उसका सेवन करना चाहिए।

पुरातन घृत खाने से उग्रवातज कास (सूखी खांसी) को, अंजन करने से नेत्ररोगों को, तथा शिर पर मलने से ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का नाश करता है।

यथा यथा जरा याति गुणवत्स्यात्तथातथा।
—हारीत संहिता।

अर्थात् घृत जितना ही पुराना होगा उतना ही गुणकारी होगा।

शतधौत घृत के गुण—

द्रुतहस्तेन सघृष्टं सजलं सर्पिष्पुन. पुनः ।
धौत वार सहस्रन्तु तदर्द्धं शतमेव वा ॥
हिमवज्जायते शीत स्वच्छ सेव्यं तथैव च ।
एतल्लेहादिषु योज्यं दाहविसर्पनाशनम् ॥
- भा० भै० र०

अर्थात् घी मे शीतल पानी मिलाकर उसे हाथ से खूब घिसना चाहिए। फिर पानी निकाल देना चाहिए, और नया पानी डालकर पुन. घिसना चाहिए। इस प्रकार १०००, ५०० या सौ बार धोने से घृत अत्यन्त शीतल हो जाता है। और उसके लेप करने से विसर्प तथा दाह आदि नष्ट होते हैं।

घृतपानविधि—

शुद्धगव्यं घृत तप्तं मरिचैर्वा कणान्वितम् ।
रसायनं सदापेयं घृतपानं प्रशस्यते ॥
रूक्षक्षत विषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ।
हीनमेधास्मृतीनाञ्च घृतपानं प्रशस्यते ॥
—यो० चि०

अर्थात् रूक्षता (खुश्की), घाव, विष और वात-पित्त विकार की शांति तथा मेधा अथवा स्मृति की हीनता को दूर करने के लिये शुद्ध गोघृत को गरम गरम करके उसमे काली मिर्च, अथवा पीपल का चूर्ण डालकर पीना हितकर है। इस प्रकार घृतपान करने से रसायन के गुण प्राप्त होते है।

घृतपान निषेध—

राजयक्ष्माणि बाले च वृद्धे श्लेष्माश्रयेगदे ।
रोगे सामेविसूच्यां च विबन्धे च मदात्यये ॥
ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्हि मन्यते ॥
--यो० र०

अर्थात् राजयक्ष्मा के रोगी को, बालक, वृद्ध तथा श्लेष्मविकार वाले को, सामरोग मे (किसी रोग की अपक्वावस्था हो अथवा किसी रोग के साथ साथ पेट मे आम भी हो), विसूचिका, बिबन्ध (मल का उदर मे रुकजाना), मदात्यय, ज्वर (नवीन ज्वर) और मन्दाग्नि मे घृतपान नहीं करना चाहिए।

औषधि प्रयोग—

(१) घृत दध्यादि योग—

घृतदधिमधुरपयोभिर्नाभिमण्डे
रुपसिक्तन करिकर्णपलाश ।

स्थगयति हि स्थिरता स्थविराणाम्,
विदधाति वपुर्बलवत्ताम् ।
—यो० र०

अर्थात् हस्तिकर्णपलाश (ढाक का एक भेद—यदि न मिले तो साधारण ढाक लिया जा सकता है) की १ तोला छाल को पीसकर रात्रि के समय घी, दही, मीठे दूध, और दही के मण्ड में से किसी में मिलाकर रख दीजिये। इसे प्रातःकाल पीने से वृद्धावस्था रुकती तथा बलवृद्धि होती है।

(२) घृत सैंधव योग—

उष्णं घृतं सैंधवचूर्णयुक्तं,
निपीतमाशु प्रशमं करोति।
निश्वासकम्पश्रमवारिताप,
रुजांजयेत् वृश्चिक दंशजाताम् ॥
—भा० भै० र०

अर्थात् गरम घृत में सैंधा नमक का चूर्ण मिलाकर पीने से श्वास, कम्पन (कपकपी), प॰, ॰ना आना, दाह, पीड़ा और बिच्छू के काटे को तुरन्त आराम होता है।

(३) गव्य घृतादि योग—

गव्य घृतं सैंधव संप्रयुक्तं,
शम्बूक भाण्डे निहितं प्रयत्नात् ।
सप्ताहमादित्य करैर्विपक्वं,
निहन्ति कूरण्डमति प्रवृद्धम् ॥
—चक्रदत्त

अर्थात् चार भाग गोघृत और एक भाग सैंधा नमक दोनों को एकत्र करके शख में भरकर सात दिन धूप में रक्खा रहने दीजिये। इसे खाने तथा लगाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ अण्डवृद्धि रोग भी नष्ट हो जाता है।

(४) घृतावसेचनम्—

सद्य क्षतं व्रण वैद्य. सशूलं परिषेचयेत् ।
यष्टीमधुक युक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥
—धन्वन्तरि

अर्थात् शूल युक्त तुरन्त के घाव पर गरम घी में—मुलहठी का चूर्ण मिलाकर उसमे कपड़ा भिगोकर रखना चाहिए।

(५) घृतादि धूम -

घृतगुग्गुलमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः ।
धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नश्च निर्दिशेत् ॥
—भा० प्र०

अर्थात् घी, गुग्गुलु तथा मोम समान मिलाकर धूम्रपान करने से क्षवथु (छींके अधिक आना) तथा भ्रंशथु (नासिका रोग विशेष) नष्ट होता है।

(६) घृतादि धूप—

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्टं हरीतकी।
सर्षपा. सयवा. सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम ॥
--चरक चि० अ० ३

अर्थात् गूगल, नीम के पत्ते, घुड़बच, कूट, कडुआ, हरड़ का छिलका, सरसो तथा जौ इन सब को कूटकर घी में मिला कर धूप देना विषमज्वर को नाश करता है।

(७) घृतभर्जित हरीतकी--

सगुडं पिप्पलीयुक्तामभयांघृत भर्जिताम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदनुलोमिनीम् ॥
--चरक अर्श०

अर्थात् अर्श रोग में वायु को अनुलोमन करने के लिए घी में भुनी हुई हरड़ में गुड़ और पीपल का चूर्ण अथवा निशोथ और दन्ती का चूर्ण समान भाग मिलाकर उष्ण जल से सेवन करना चाहिए।

४. गोमूत्र

पंचगव्य का चतुर्थ उपादान गोमूत्र है अतः अगली पंक्तियों मे उसीका वर्णन किया जावेगा।

गोमूत्र के सामान्य गुण—

गोमूत्रं कटुतीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायहम् ।
लघ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥
कषायं तिक्त तीक्ष्ण च पूरणात्कर्णशूलनुत् ॥
—भा० प्र०

कण्डूकिलासगुदशूलमुखाक्षिरोगान्,
गुल्मातिसारमरुदामय मूत्ररोधान् ।
कास स कुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान् ,
गोमूत्र मे कमपि पीतमपा करोति ॥
—भा० प्र०

अर्थात गोमूत्र कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार और तिक्त है। कफ को शात करता है। हलका है।

अग्नि को दीप्त करता है। बुद्धि बढ़ाता है। पित्त को बढ़ाता और कफ और वायु को शात करता है। कसैला, कड़ुआ और तीक्ष्ण है। गरम करके कान में डालने से कर्णशूल को शांत करता है। और खुजली, श्वेतकुष्ठ (शरीर पर सफेद दाग), अर्श, मुख और आंखों के रोग, गुल्म, अतिसार वायु के रोग और मूत्ररोध, खाँसी, कोढ़, उदर रोग (आठों प्रकार के), कृमिरोग, पाण्डुरोग इन सबको एक गोमूत्र ही पीने से नाश करता है।

वक्तव्य

अक्षि रोगान्—एक बार श्रीरामचन्द्र जी के पूर्वज महाराज दिलीप द्वारा छोड़े गये। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को इन्द्र छल से चुरा ले गये। उसको ढूंढने के लिए उनके पुत्र युवराज रघु गये। मार्ग में उनको महर्षि वशिष्ठ की यज्ञ धेनु नन्दिनी के दर्शन हुए। उन्होंने नन्दिनी को अभिवादन किया और उसके मूत्र से अपने नेत्रों का प्रक्षालन किया। उस वर्णन को कवि कालिदास के शब्दों में पढ़िये—

तदङ्गनिस्यन्दजलेन लोचने
प्रमृज्य पुण्येन पुरष्कृत: सताम्।
अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनो
बभूव भावेषु दिलीप नन्दनः॥
रघुवंश सर्ग ३

अर्थात् सज्जनों से जो सम्मान प्राप्त कर चुके हैं ऐसे युवराज रघु ने अपने पुण्यों के प्रभाव से अवसर पर प्राप्त नन्दिनी के मूत्र से अपने नेत्रों का प्रक्षालन किया। इस प्रकार उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई जिससे वह उन वस्तुओं का भी साक्षात्कार करने में समर्थ हो गये जो दूसरों के लिये अतीन्द्रिय थीं अर्थात् दूसरे जिनको नहीं देख सकते थे।

भावार्थ—यह वर्णन चाहे आलंकारिक ही रहा हो किंतु इस बात की पुष्टि अवश्य करता है कि गोमूत्र नेत्रों के लिये लाभकारी है।

गोमूत्र के गुण—

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च।
कोष्णेन पूरयेत्करो कर्णशूलोपशान्तये॥
—भा० भै० र०

अर्थात् आठों [गो, भेड़, बकरी आदि] मूत्रों में से किसी भी मूत्र को गरम करके कान में डालने से कर्णशूल शाँत होता है। किंतु—

सर्वेष्वपि मूत्रेषु गोमूत्र गुणतोऽधिकम्।
अतो विशेषात् कथित मूत्र गोमूत्रमुच्यते॥
—भा० प्र०

अर्थात् सब मूत्रों में गोमूत्र अधिक गुण वाला है अतः शास्त्र में मूत्र कहा हो तो गोमूत्र ही समझना चाहिए।

नव्य मत के अनुसार गोमूत्र के गुण—

(१) Internally it is highly recommended for Cirrhosis of the liver in doses of one to two ounces. It is also described as laxative and diuretic and used in the preparation of various medicines such as Punarnava Mandur, Marichadi Tail for enlargemements of abdominal viscera, painful dyspepsia, ascites, anasarca, jaundice, leprosy, chronic prurigo and other obstinate skin diseases.

(२) In congestive fever with constipation, flushed face and headache an ounce of fresh and warm cows urine is given as a domestic medicine.

(३) It is used externally in the purification and roasting of various metals and in the preparation of oils decoctions etc. (Indian materia medica)

अर्थात् (१) गोमूत्र का आभ्यन्तरिक प्रयोग यकृद्दाल्युदर में बड़ा लाभ करता है। इसकी मात्रा २॥ तोला से ५ तोला तक है। गोमूत्र मृदु विरेचक तथा मूत्रल है और इस गुण के लिये इसका प्रयोग पुनर्नवा माण्डूर और मरिचादि तैल के बनाने में किया जाता है। इन औषधियों से उदर गुहा में रहने वाले अवयवों [यथा यकृत् प्लीहा, वृक्कादि] की वृद्धि, सशूल अजीर्ण, जलोदर, सर्वाङ्गशोथ,

कामला, कोढ़, भयंकर पुरातन पामा और अन्य दु:साध्य त्वक् रोग निश्चित् आराम होते हैं।

[२] ग्रीष्मऋतु में अथवा परिश्रम की अधिकता से होने वाले नवीन ज्वर के लिये जिसमें अजीर्ण होता है, मुख लाल हो जाता है और शिर में तीव्र वेदना होती है, २॥ तोला गाय का ताजा मूत्र गरम करके घरेलू दवा की तरह प्रयोग किया जाता है।

[३] गोमूत्र का बाह्य प्रयोग भिन्न भिन्न धातुओं के बर्तनों को साफ करने और अनेक तैलों एवं क्वाथों के निर्माण में किया जाता है।

[इण्डियन मैटेरिया मैडिका]

तथा गोमूत्र यदि स्वस्थ मनुष्य को दिया जावे तो उससे मूत्र का परिमाण बढ़ता है परंतु वृक्क (गुर्दा) यदि विकृत हो तो मूत्र का परिमाण बहुत बढता है। इसकी २॥ तोले मात्रा खाली पेट देनी चाहिए। इस प्रकार कुछ दिन देने से धमनियां प्रसारित होती हैं और रक्त का दबाव (Blood Pressure) कम होता है। रक्त का दबाव कम होने से मूत्र का परिमाण और भी बढ़ता है। २४ घण्टे में ३० से ४० छटाक तक बढ़ता है और शोथ उदर आदि लक्षण कम होते हैं। गोमूत्र से भूख बढ़ती है और रोगी की जीभ सुधरती है। केवल गोमूत्र देने से दस्त १-२ से अधिक नहीं होते इसलिये उसके साथ दतीमूल देना पड़ता है। यह पुरातन वृक्कशोथ (Chronic Nephritis) के लिए उत्तम औषध है। गोमूत्र की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है।

(डा. वा. ग. देसाई कृत भारतीय रसशास्त्र)

From my life-long experience in medical practice I can say that cows' urine is a self contained medicine for any abdominal ailment.

[Dr. P. L. Agnihotri M. D., D. S., E. M. R. A. S. (London)]

अर्थात् चिकित्सा क्षेत्र में अपने जीवन व्यापी अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि किसी भी प्रकार के उदररोग के लिये गोमूत्र एक पूर्ण औषधि है।

-डा० पी० एल० अग्निहोत्री एम० डी० (लन्दन)

औषध प्रयोग--

(१) गोमूत्रादि चूर्ण—

गोमूत्र को २-३ बार ऊनी कपड़े से छानले। फिर मृत्पात्र या लौहपात्र में इतना पकावे कि वह गाढ़ा हो जावे। पश्चात् नीचे उतार कर धूप में खूब सुखाकर शीशी में भरले। मात्रा १-३ माशा ५ तोला जल में मिलाकर दे।

लाभ—गोमूत्र के समान गुण करता है।

—आचार्य यादव जी

(२) गोमूत्रादि लेप -

आरण्यगोमयनिघृष्टमति प्रलिप्तं,
गोमूत्रतक्रलवणैः क्वथितैः प्रयत्नात्॥
नाशं प्रयाति रकसः चिरसम्प्ररूढ,
मप्याशु पापमिव संस्मरणेन शम्भोः॥

--गद निग्रह

अर्थात् सैंधानमक को गोमूत्र तथा मट्ठे में पकाकर गाढ़ा कर लीजिये। फिर रकस (सूखी खुजली) को अरण्य गोमय (जंगली कण्डे) से रगड़कर उक्त क्वाथ का लेप कर दीजिए। इस प्रयोग से लाभ हो जाता है।

(३) गोमूत्र योग--

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा,
क्षीरं गवां वा त्रिफला विमिश्रं।
क्षीरान्नभुक्केवलमेव गव्यं
मूत्रं पिबेद्वाश्वयथूदरेषु॥

--वृन्द माधव

अर्थात् भैंस के दूध में गोमूत्र मिलाकर अथवा त्रिफलायुक्त गोदुग्ध, किंवा केवल गोमूत्र सेवन करने और दूधभात खाने से शोथोदर (पेट की सूजन) नष्ट होता है।

(४) गोमूत्रक्षार चूर्ण--

गोमूत्र १० सेर लेकर एक कढाई में उबालकर औटावे। जब चौथाई शेष रहे तब उसमें सोंठ १ पाव, हरड़ छोटी १ पाव, सैंधानमक ॥ तोले, लौंग १।

तोले कूट पीस कर डालदें। फिर खुरपे से हिला चलाकर अग्नि पर भस्म बनालें-शीतल होने पर बारीक चूर्ण कर लेवें।

मात्रा १-२ माशा गरम जल से।

उपयोग—कफ सहित श्वास, कास, उदररोग, मलावरोध आदि दूर होते हैं। साधारण औषध होते हुए भी श्वास में बहुत लाभदायक है। तमाखू के व्यसनियों के श्वास रोग मे सत्वर लाभ करता है।

(५) गौमूत्र मण्डूर (वंगसेन)
(६) गोमूत्रसिद्ध मण्डूर (चक्रदत्त शूलाधिकार)
(७) गोमूत्र हरीतकी प्रयोग (वृ नि. र)
(८) पुनर्नवा मण्डूर (चरक)

अर्थात् सफेद साठ, निशोथ, सोठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीता, कूट, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हरड़, बहेड़ा, आमला, दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल, नागरमोथा प्रत्येक १० तोला, मण्डूर भस्म ५ सेर और गोमूत्र १६ सेर इन सबको कढ़ाई मे डालकर पकावे। गाढ़ा हो जाने पर भरबेरी के बेर जैसी गोली बनावे।

मात्रा—१ तोली प्रातः १ सायं

अनुपान - गोतक्र।

लाभ—पाडुरोग, प्लीहा, अर्श, शोथ, ग्रहणी दोष, कोढ़ तथा क्रिमिरोग को निश्चित नाश करता है।

(५) गोमय—

पंचगव्य का अन्तिम अवयव गोमय अर्थात् गोबर है। अब उसका सविस्तार वर्णन किया जाता है।

गुण—

गोमयं रूक्षोष्णं कटुकमीषत्पित्तकरं लघु।
नेत्रंतिमिरापहं वाय् शिर शूलव्रण शोथजित्॥
अर्शाभिघातरुजां तीव्रां नाशयेदविकल्पत॥
—वृद्ध वैद्याधार

अर्थात् गोबर रूक्ष, उष्ण और कटु है-किंचित पित्त को बढ़ाता है, हलका है। वायुविकार, शिरः-शूल, नेत्रतिमिर, व्रणशोथ और अर्श के मस्सो तथा चोट की वेदना को शांत करता है।

नव्यमत—

1. Fresh cowdung laved on the burnt parts alleviates the pain of burns, applied to a cut or a bruise it is said to stop the bleeding and heal the wound. In cases of pains inconsequences of falls or wounds plasters made of fresh cowdung heated on fire are applied with much benefit.

(Indian Materia Medica)

अर्थात् ताजा गोबर जले पर लगाया जाय तो जलन तथा पीड़ा को शांत करता है। यदि किसी चाकू अथवा अस्त्र से कटे हुए व्रण अथवा खुरसट पर लगाया जावे तो रक्त प्रवाह को बन्द करता है और व्रण को रोपण कर देता है। चोट लगने के कारण पीड़ा हो अथवा व्रण (जख्म) में पीड़ा हो तो गरम करके पलस्तर के रूप मे प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है।

प्रयोग विधि—

व्रण शोथ पर टिकिया बनाकर अथवा पानी मे पकाकर लेप करना चाहिए और व्रण पर गोबर का रस निकाल कर कपड़े में छानकर गर्म करके और गौज (*Gauze*) या बारीक कपड़ा भिगोकर लगाना चाहिए। गोबर का स्वरस निकालने का सरल उपाय यह है कि एक धुला कपड़ा लेकर गोबर के अन्दर दबा दीजिये। घण्टे दो घण्टे बाद उसे निकालकर निचोड़ डालिये। बस स्वरस निकल आवेगा। इसे छानकर प्रयोग कीजिये।

2. Cowdung is a strong germicide, I am astonished that the Hindus knew it long before for they have been using it in their kitchenes to clean them.
(Dr. A. P. Rudolf C. I. E., P. H. D.)

अर्थात् गोबर प्रबल कीटाणुनाशक है किंतु मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होगा कि हिन्दू इस रहस्य को चिरकाल से जानते थे क्योंकि वह अपने भोजनालयों को स्वच्छ रखने के लिए इसी

का प्रयोग करते आ रहे हैं।

वक्तव्य–

गाय कितना उपयोगी पशु है जिसका गोबर प्रबल कीटाणु नाशक (*Strong disinfectant*) है, मूत्र उदर रोगों के लिए रामबाण है। घी, दूध, दही तो सभी के उपयोगी होते हैं अतएव वेद भगवान ने इसे 'अघ्न्या' कहा है और इसीलिए प्रत्येक हिन्दू के घर में पहली रोटी गाय की रोटी होती है।

औषधि प्रयोग–

(१) गोमयादि लेप—

गोबर को पानी में पकाकर लेप करने से शिरःशूल शान्त होता है। (वृद्ध वैद्याधर)

(२) गोमय तैल—

गवां शकृत क्राथविपक्वमुत्तमम्,
हितंच तैलं तिमिरेषु नस्यते ॥
—भैषज्य रत्नावली नेत्ररोगाधिकार

अर्थात्—तिल तैल १ सेर और गोबर का स्वरस २ सेर इन दोनों को कढ़ाई में आग पर पका कर तैल मात्र शेष रहने पर छान कर नस्य लेवे। इससे नेत्रतिमिर रोग का नाश होता है।

(३) गोमयादि योग–

गोमयस्य रसं सर्पिर्गुड तण्डुल वारि च।
पाण्डुरोगविनाशाय पाययेद्भिषगातुरम् ॥
—गद निग्रह

अर्थात्—वैद्य को चाहिए कि पाण्डु रोगी को गोबर स्वरस, घी, गुड़ और चावलों के पानी को एकत्र करके सेवन करावे।

प्रयोग विधि—चावलों का पानी १२ तोला अन्य सब १-१ तोला।

(४) भल्लादि तैल—

सरसों का तैल १ सेर, ब्राह्मी स्वरस, आक के पत्तों का स्वरस तथा गोबर स्वरस ४-४ सेर।

कल्क द्रव्य–चन्दन, देवदारु, मिर्चकाली, हल्दी, दारुहल्दी, निशोथ, नागर मोथा–प्रत्येक ४ तोला लेकर गोमूत्र में पीसें। फिर २ तोला संखिया विष मिलावे।

विधि—इन सबको कढ़ाई में डाल कर पकावें। जब तैल मात्र शेष रहे तब उतार कर छानलें।

प्रयोग—यह तैल पीने तथा लगाने से शीघ्र ही कोढ़, दुष्ट व्रण व नासूर को आराम कर देता है।

(५) गोमयपिण्डादि स्वेद–

स्वेदो गोमय पिण्डेन सक्तुनामलकेनच।
शतपुष्पेण वा कार्यो गुदजाना निवृत्तये ॥
–वगसेन अर्शाधिकार

अर्थात्–गोबर की पिट्ठी, सत्तू, आमले की पिट्ठी, या सोये का कल्क इन सबकी पोटली बनाकर स्वेदन (सेक) करने से अर्श के मस्से नष्ट होते हैं।

(६) विषगर्भ तैल (योग चिन्तामणि)

(७) गोमयादि मरहम (वृद्ध वैद्याधार)—

स्वच्छ गोमय (गोबर) को वैशाख, जेठ की धूप में खूब सुखाले। इतना सुखावे कि नमी का नाम न रहे। पश्चात् उसका वस्त्रपूत (कपड़छन) चूर्ण करलें। फिर भी इस चूर्ण को लोह की कढ़ाई अथवा खरल में कम से कम ३ घंटा घिसे (मर्दनं गुण वर्द्धनं–अर्थात् जितना घिस जावेगा उतना ही गुणकारी होगा)। अब चौगुने गोघृत अथवा वैसलीन छः गुनी में मिलाकर मरहम बनाले।

उपयोग—फोड़ा, फुंसी, खाज तथा साधारण (नवीन) दाद पर लाभकारी है।

(८) सिद्ध पिप्पली (वृद्ध वैद्याधार)—

वस्त्रपूत पिपल्ली (छोटी) चूर्ण ४ तोला, गोमूत्र स्वरस २० तोला में घिस कर सूख जाने पर अंजन करने से नक्तान्ध (रतौंधी) दूर होती है। यह योग परीक्षित है।

—श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य,
जनपथ, घंटाघर मार्ग, एटा।

उरस्तोय (Pleurisy)

श्री वैद्य मुरलीधर श्रीमाली "साधक"

युग परिबर्तन के साथ-साथ व्याधि भी नये रूप में मानव के सामने उपस्थित होती है। यह माना गया है कि संक्रामक व्याधि जो एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक पहुँच कर उस स्थान के लिए अवश्य ही नई व्याधि का रूप धारण कर लेती है। जिस प्रकार से भावमिश्र के युग से पहिले भारत मे उष्णवात या सुजाक (*Gonorrhoea*) ने प्रवेश नहीं किया था। लेकिन भारत मे विदेशियों का आवागमन ज्यों ही बढ़ने लगा तथा वे यहां आकर बसने लगे, तब से ही इस प्रकार की व्याधि ने अपना उग्ररूप धारण कर लिया। उस समय आयुर्वेद के प्रधान विशेषज्ञ के रूप में यहां भाव मिश्र जी उपस्थित थे। उन्होंने इस रोग की चिकित्सा के साथ इस व्याधि के नाम का भी संस्करण किया। फिरङ्गी लोगो (विदेशियों) के समागम से इसके उत्पन्न होने के कारण इसे फिरङ्ग रोग ही घोषित किया।

पाश्चात्य मतानुसार तो प्रत्येक व्याधि को संक्रामक ही माना गया है। लेकिन भारतीय आयुर्वेद शास्त्र ने तो प्राय. समस्त प्रकार की व्याधियो को दोप प्रधान ही मान कर पुष्टि की है।

आश्चर्य तो इस सम्बन्ध मे है कि मैंने जिस व्याधि का यहां उल्लेख प्रारम्भ किया है वह कोई ऐसी व्याधि प्रतीत नहीं होती, जो विदेशी हो। लेकिन फिर भी उरस्तोय का उल्लेख हमारे 'बृहत्रयी' (चरक, सुश्रुत, वाग्भट) मे देखने को नहीं मिलता। इससे यह तो स्पष्ट है कि हमारे पूर्वज अपने बल एवं ओज की प्रबलता के कारण इस व्याधि के शिकार नहीं होते थे। हा, बाद मे कहीं जाकर आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ भैपज्यरत्नावली मे या आयुर्वेद विज्ञान में अवश्य ही उरस्तोय नामक व्याधि से इसका उल्लेख किया मिलता है।

इस व्याधि के उत्पन्न होने का कारण निम्न माना जाता है। विपम ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, अर्बुद, हृद्रोग, फिरङ्ग रोग, उदर रोग, यकृद्रोग तथा वृक्क रोगा मे जब शरीर मे रक्त की न्यूनता अथवा विकृति हो जाती है, तब फुफ्फुस की आवरण कला (*pleura*) के स्तरो के मध्य मे जलोदर के समान जल संचय हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त छाती पर चोट लगने के बाद भी हो जाने वाला उरस्तोय देखने मे आया है। सर्दी के लग जाने से सन्निपात ज्वर (*typhoid*) यक्ष्मा व अन्य प्रकार के फुफ्फुस रोग जिसमें प्रधानतया यह देखने मे आता है। जिसके बाल्यकाल अथवा किसी भी समय यदि न्यूमोनिया हो चुका उससे रहने वाली फुफ्फुस की निर्बलता पर इस व्याधि के आक्रमण का भय विशेप रूप से बना रहता है। श्वास एव किसी भी प्रकार से बन जाने वाले शोथ से फुफ्फुसावरण झिल्ली मे तीव्र शूल हो जाता है। यदि प्रारम्भ मे ही इसका ढंग से निदान चिकित्सा हो जांय तो शूल एव शोथ क्रमशः शान्त हो जाते है परन्तु कभी कभी यह शान्त न होकर दोष जब उग्र रूप धारण करता है, उस समय आवरणकला के स्तरो के मध्य मे पीले रंग का स्राव होकर वहां सचित होने लगता है। सचित होने की परिस्थिति मे ज्वर भी बनने लगता है।

यदि कदाचित दोनो पार्श्वों मे जल संचित हो जाय तो श्वास की क्रिया बन्द होकर मृत्यु का कारण होता है।

इस व्याधि के उत्पन्न होने वाले प्रधान कारणो मे वृक्क दोप भी माना जाना चाहिए। क्योकि इस व्याधि मे प्राय: देखने मे आता है कि रोगी के मूत्र की मात्रा कम होती जाती है। इसका हेतु ढूंढने पर वृक्क दोप का ही कारण मिलेगा। रक्त के

अन्दर रहने वाला जलीय अंश जो आवश्यकता के अतिरिक्त दोप पूर्ण तत्वो सहित वृक्क की क्रिया से मनुष्य के शरीर से बाहर निकलता रहता है, उसमे कमी होने लगती है। वह दोप युक्त जलीय अंश वृक्क के क्षेत्र से पुन' रक्त के साथ हृदय की ओर दौडता है। रक्त परिभ्रमण की क्रिया के अनुसार वह शिरा, धमनी मे होता हुआ वितान जालको मे आता रहता है। यह माना जाता है कि फुफ्फुस भी एक तरलीय स्थान है। जब पुनः शुद्ध होने के लिए रक्त फुफ्फुस के क्षेत्र मे पहुँचता है, उस समय दूपित तत्वो की अधिकता के कारण वह अपनी क्रिया मे इतनी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। वह दूपित जलीय अंश श्वास के साथ एक प्रकार से ओस का रूप धारण कर उसके कण फुफ्फुसावरणकला मे संग्रहित होने लगते है। इस समय तक यकृत् भी अपनी कार्य क्षमता की ओर से उदासीन बनने लगता है। किसी किसी के रक्त भार की गति भी मद होने लगती है।

इस व्याधि के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार से पढ़ने मे आता है—श्वास लेने मे कष्ट, जल सचित भाग मे कुछ ऊंचाई, अरति, सूखी खासी, तृष्णा, मंदाग्नि, निर्वलता, एव रोगी की नाडी सूक्ष्म तीक्ष्ण एवं शीघ्र चलती हैं। उरप्रेक्षक यन्त्र (*Stethoscope*) द्वारा परीक्षा करने पर अंसास्थि (*Scapula*) के निम्न कोण पर एक या आधा इंच स्थल पर घर्षण (*Friction*) के समान शब्द सुनाई देता है। फुफ्फुस की संकोच विकासात्मक गति क्रमशः मंद होती जाती है। अन्त मे जब जल संचित हो जाता है तो सर्वथा नहीं रहती। जल के संचित हो जाने पर रुग्ण देश पर अंगुली प्रहार करने पर पूर्वापेक्षया शब्द मन्द उत्पन्न होता है। रोग जैसे जैसे भयंकर रूप धारण कर लेता है, वैसे-वैसे रोगी की बैचेनी बढ़ती जाती है। रोगी के लिए खासना, छींकना, जंभाई ही नहीं बल्कि श्वास लेना भी दुष्कर हो जाता है। गति के साथ रोगी के रुग्ण स्थान मे सूई के चुभने के समान असह्य वेदना होती है। ग्रन्थ मे लिखे जाने वाले लक्षणों से भिन्न लक्षण भी देखने मे आते है। जैसे कि लिखा गया है कि रोगी हमेशा रुग्ण पार्श्व की ओर सोता है, लेकिन देखने मे आया है कि रोगी का पार्श्व की ओर सोना ही कठिन हो जाता है, और वह केवल पीठ के वल ही सोता रहता है।

व्याधि का पूर्वरूप पढ़ने को कम मिलता है इसलिये यहां कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। वैसे तो इसके पूर्वरूप एव लक्षणों मे भी रोगी की प्रकृति एवं बलाबल के कारण भिन्नता मिलती ही है। लेकिन कुछ अपने अनुभव के आधार पर बतलाया जा सकता है। इस व्याधि के आक्रमण से पूर्व मनुष्य अपने आपको काफी समय पूर्व ही निर्वल एव सुस्त अनुभव करता है तथा उसकी इच्छा शीतलता एवं स्नान की ओर से हटने लगती है। जैसे-जैसे इसके आक्रमण का समय नजदीक आता है, वैसे वैसे मनुष्य मे ये लक्षण अधिकता से प्रतीत होते है। आक्रमण के कुछ घटों पूर्व ही भयङ्कर थकान तथा जी मचलाना प्रारम्भ होता है। फिर अनायास ही अंसास्थि के निम्न कोण मे कष्टप्रद पीड़ा होती है। मनुष्य उसे वायु का दर्द समझकर उसकी उपेक्षा करता रहता है। फिर क्रमश' यकृत् स्थान पर पीडा का अनुभव होता है तथा रोगी लम्बा श्वास नहीं ले सकता। इस प्रकार के प्रारम्भिक लक्षणों से' रोग का ठीक प्रकार से निदान न हो सकने के कारण अच्छे अच्छे चिकित्सक भी भ्रमवश यकृत या अनुमान से व्याधि को पकडकर चिकित्सा करने लगते है। नतीजा यह होता है कि व्याधि बलवान होती जाती है।

इतने समय मे रोगी के एक पार्श्व मे जल का विशेप संचय हो जाता है तथा ज्वर भी १०२ या १०३ तक पहुच जाता है। किसी-किसी के दूसरे पार्श्व मे भी जल अपना स्थान बनाना प्रारम्भ कर देता है। जिस समय एक पार्श्व मे काफी जल संचय हो जाता है, उस समय रोगी का एक ओर का

—शेपांश पृष्ठ १००१ पर।

आन्त्र शोथ

आजकल समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि दिल्ली तथा उसके आस पास के उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में आन्त्र शोथ से अधिक व्यक्ति पीडित है तथा बडी सख्या मे मृत्यु हुई है। इसलिए एसे समय में इस विषय पर कुछ प्रकाशित करना सामयिक ही है। हमने दिल्ली के कतिपय लेखकों से इस विषय पर अपने विचार प्रेषित करने के लिए निवेदन किया था। दो लेखकों ने हमारे निवेदन पर तुरन्त ध्यान दे कर अपने विचार प्रेषित किये है। आशा है कि धन्वन्तरि के पाठकों को यह रुचिकर प्रतीत होंगे।

—सम्पादक

[१]

कवि० पं० नानकचन्द वैद्यशास्त्री

आन्त्र शोथ वास्तव में विशूची का ही रूपान्तर है, यतः उसमे अधिक मल त्याग होजाने से आन्त्र भाग मे वायु बढ़ कर अनेक उपद्रव करता है अर्थात् उदर मे वेदना, वमन, रेचन, आन्त्रों मे ऐठन का होना, मूत्रावरोध, अन्त मे शीत चढ़ने से क्षीण होना, मूर्च्छा, प्यास, अङ्गों का उद्वेष्टन होना, तृष्णा, दाह आदि होते है। उदर शूल तथा उद्वेष्टन देखकर आंत्र शोथ का भ्रम डाक्टरों को पड जाता है। जब विशूची के लक्षण स्पष्ट ज्ञात होने लगते है तो कह देते हैं कि हैजा के इतने रोगी हास्पिटल आये। मेरे पास जितने भी रोगी आज तक आये है वह प्राय हैजे की व्याधि से पीडित थे। उनको पूंछने से ज्ञात हुआ कि उन्हे आत्र शोथ ही का भ्रम था परन्तु विशूची की चिकित्सा करने से लाभ होगया। अतः मेरे विचार मे प्रचलित रोग विशूची का ही रूपान्तर है।

आत्रशोथ बिना विशिष्ट कारण के नहीं हो सकता। आत्र विद्रधि हो, आघात हो, अथवा मलावरोध के कारण ऐसा हो सकता है। देशकाल के विकृत हो जाने से विशूची का होना तो ठीक है।

विशूची चिकित्सा—

सर्व प्रथम मनुष्य को अपनी जठराग्नि की रक्षा करना परमावश्यक कहा है। यथोक्तं चरके—'सारमेतच्चिकित्सायाः परमग्नेश्चरक्षणम्। कायाग्नि मेव मतिमान रक्षम् रक्षति जीवितम्॥' समाग्नि की रक्षा करना, विषमाग्नि मे वात नाशक उपचार, तीक्ष्णाग्नि मे पित्तहर भैषज, मन्दाग्नि मे कफ का शोषण करना ही हितकर होता है। जो व्यक्ति अधिक लौल्य से अधिक भोजन करता है उसे विशूची रोग (हैजा) हो जाता है। जब मनुष्य को यह शंका हो कि अन्न का पाचन नहीं हो रहा तो उसे निम्न उपचार करना चाहिए। यथा हिंग्वाष्टक चूर्ण को ३-४ माशे खाये। तथा पिप्पली, हरड़, सौंचल लवण इनका चूर्ण उष्ण जल से, काजी से पीने से मन्दाग्नि नष्ट होती है। इससे शूल, आध्मान आदि दूर होते है।

विशूची मे—अपामार्ग का मूल लेकर चूर्ण करके ४ माशे गरम जल से पीने से लाभ होता है। तथा जहा अत्यन्त शूल और वमन, विरेचन हो रहे हो वहां संजीवनी वटी ३ मात्रा देने से शीघ्र लाभ होता है। जहां विशूची मे मूत्रावरोध हो जाये वहां 'श्वेतपर्पटी' का प्रयोग लाभदायक है। विशूची में यदि खल्लीशूल (जिसमे हाथ, पैर, जंघा, उरु भाग मे उद्वेष्टन) हो उसी समय कूठ, सैन्धव इन दोनों का कल्क बनाकर चुक्र तैल सहित मर्दन करने से लाभ हो जाता है। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि विशूची मे जिस समय रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाये और स्वेद आने पर शीतता बढ़ जाये तो उसी समय आर्द्रक या पान के रस मे वृ० कस्तूरी भैरव रस की दो गोली देते रहे जब तक गरम न होजाये।

विशूची के रोगी को वमनादि आकर बन्द हो जाये तो भूख लगने पर पेयादि पाचन औषधियों से सिद्ध करके देने चाहिए।

—कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री
बी. ४ राणाप्रताप बाग, देहली—६

[२]

श्री शिवकुमार व्यास

सुनने मे आता है कि आंत्र शोथ महामारी के रूप मे दिल्ली और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलो मे फैल रहा है परन्तु बात ऐसी नहीं है। कोई भी महामारी फैलती है उसका स्वरूप कुछ और ही होता है। तो भी यह मानना ही होगा, कि इस वर्ष आन्त्र शोथ के कुछ अधिक रोगी हैं अपेक्षाकृत अन्य वर्षों के। इस ऋतु मे प्राय: कर पाचन संस्थान के रोग अधिक हुआ करते है। इस वर्ष ऋतु दूषित होने के कारण अधिक व्यक्ति आक्रान्त हुए और आंत्रो मे शोथ होकर एक विशेष रोग हो गया।

ऋतु परता कारण—

वर्षा ऋतु मे सावन और भादो मास होते हैं। इस वर्ष सावन और भादो मे वर्षा अधिक हुई। वर्षा ऋतु के लिये लिखा है—

"तत्र वर्षास्वोषधयस्तरुरायोऽल्पवीर्य्या आपश्चाप्रसन्ना: क्षितिमलप्रायास्ता उपयुज्यमाना नभसि मेघावते जल प्रक्लिन्नायां भूमौक्लिन्न देहानां प्राणिनां शीतवात विष्टब्धाग्नीनां विदह्यन्ते विदाहात् पित्त सञ्चयमापादयन्ति स सञ्चयं।"

अर्थात्—वर्षा ऋतु मे औषधियां तरुण अथ च अल्पवीर्य वाली एवं जल पृथ्वी के मल से मलिन होता है। यह प्रयुक्त होने पर आकाश के मेघाच्छन्न रहने एवं पृथ्वी के जल से गीली रहने पर गीली देह तथा ठंडी वायु से रुकी अग्नि विदग्ध हो जाती हैं। इनके विदाह से पित्त सञ्चय को प्राप्त होता है। और भी—

आदानग्लानव पुपामग्नि: सन्नोऽपिसीदति।
वर्षासु दोषे दुष्यन्ति तेम्बुलं बांवुदेऽम्बरे॥
सतुपारेण मारुता सहसा शीतलेन च।
भूवाष्पेणाम्ल पाकेन मलिनेन च वारिणा:॥
वह्नि नैव च मन्देन तेष्वित्यन्योन्यदूषिपु॥

अर्थात्—वर्षा ऋतु मे पूर्ववर्ति आदानकाल से खिन्न शरीर वाले पुरुषों की रुकी हुई अग्नि भी दोषो द्वारा नष्ट हो जाती है। वे दोष आकाश मे जल युक्त मेघो के लटकने पर एकाएक भीसी युक्त शीतल वायु, पृथ्वी की वाष्प, अम्लपाक युक्त मलिन जल एवं मन्दाग्नि से दूषित हो जाते हैं। यह समय एक दूसरे को दूषित करने वाला है।

उपर्युक्त दो उदाहरण देने के बाद मैं आवश्यक नहीं समझता कि विभिन्न प्रकार के कीटाणुओ का इस रोग से सम्बन्ध जोडूं और उन सन्निकृष्ट कारणो को लिखूं। क्या इस रोग से पीड़ित व्यक्ति वास्तव मे उपर्युक्त वर्णन के अनुसार रोग ग्रस्त नहीं हुए। वास्तव मे ही वे व्यक्ति जो आदानकाल से ही खिन्न शरीर थे इस वर्षा मे अग्निमांद्य से पीडित हुए और फिर अपचन होने से आंतो पर अधिक भार पडा, जिससे आन्त्र शोथ की उत्पत्ति हुई।

दो उदाहरण—

यहां पर इस विषय मे कोई अन्य विवेचना न करते हुए मैं अपने दो रोगियो का वर्णन करूंगा—

प्रथम रोगी एक २२ वर्ष का युवक था, जो मेरे पास प्रातःकाल ही आया। वह एक चश्मे के कारखाने मे काम करता था और मेरे चिकित्सालय से ५-६ मील दूर रहता था। चिकित्सालय का समय होने के पूर्व ही प्रातः ७ बजे उसने दरवाजा खटखटाया, मैंने उसे देखा। उसने मुख्य पीडाएं जो मुझे बतायी, वह थी, पेट मे बहुत तेज दर्द, खाने में अरुचि, जी मिचलाना, अपान वायु न होना। उसका पेट देखा बहुत फूला हुआ था और सख्त था (Flatulauce, Tenderness) यकृत् को देखा तो पाया

गया यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis of the liver) भी है। देखकर मैंने उसका पिछला इतिवृत्त पूछा तो कहा– मुझे ७ मास पूर्व से पेट में भारीपन रहता था। खाना कम खा पाता था, कभी मीठा मीठा दर्द भी रहता था और बीच बीच मे कभी सख्त मलावरोध और कभी चिकना मल लिए पतले दो दो, तीन तीन बार एक दिन मे दस्त हो जाते थे।"

इतना सब बताकर उसने विस्मय से पूछा कि मेरी आँतों मे सूजन तो नहीं हो गयी है, कहीं यह बीमारी फैल रही बीमारी तो नहीं है ? मैंने देखा वह घबराया हुआ था इसीसे कह दिया बिल्कुल नहीं तुम्हे यह रोग नहीं है। फिर तसल्ली से उसे समझाया कि यह कोई महामारी नहीं है और न इतना घबड़ाना चाहिए।

व्यवस्थापत्र मे औषधि व्यवस्था की। प्रथम दिन (१) पुनर्नवादि मण्डूर ४ रत्ती, शङ्खभस्म ८ रत्ती, सितोपलादि १ माशा, मिश्री से। प्रातः सायं। (२) भोजन से पूर्व–शङ्ख वटी २ रत्ती पानी से। (३) भोजन के बाद–मधुरार्क ※ २ तोला। (४) आरोग्यवर्धनी २ रत्ती दूध से।

उपर्युक्त औषधि तीन दिन दे दी गई और कह दिया कि बीच में कोई विशेष बात हो तो सूचना दे देना।

तीन दिन बाद आया और बताया कि मेरा जी मिचलाना तो पहले ही दिन कम हो गया था, दर्द उस दिन उतना ही बना रहा, परन्तु दूसरे दिन से कुछ कम होने लगा और अब थोडा थोडा है। टट्टी भी मुझे एक बार हो जाती है और कुछ खाने को भी जी करता है।

पुन. तीन दिन औषधि दे दी और फिर आने पर इसका दर्द खत्म था। अब उसके यकृत् के लिये –(१) पुनर्नवादि मण्डूर १ माशा दो समय गो मूत्र से। (२) कुमार्यासव १ तोला, लोहासव १ तोला, भोजनोपरांत समान जल मिलाकर १५ दिन के लिए दे दिया। वह रोगी अब बिल्कुल ठीक है, किसी प्रकार की शिकायत अब उसे नहीं रही।

दूसरा रोगी इससे बिल्कुल अलग प्रकार का था। उसने आते ही बताया कि उसे दर्द के साथ दस्त आ रहे है. ऐंठन बहुत होती है और प्रातः दो बार वमन भी हो गया, पानी मुंह मे बार बार आ रहा है और जी मिचलाता है। पेट मे अन्दर आग सी लग रही अनुभव होती है। उसकी परीक्षा की और देखा कि पेट में सख्ती है। वह हाथ नहीं लगाने देता था। उसने मुझे एक विशेष बात बताई कि वह सल्फाग्वनेडीन की तीन दिन से १२ गोली रोज खाता रहा है परन्तु उसे कुछ भी आराम नहीं हुआ बल्कि पेट मे आग सी अधिक लगने लग गई।

अब रोग का निश्चय किया और उसे कहा कि प्रवाहिका है। आंतो मे सूजन भी है, उसे समझा-कर औषधि व्यवस्था की। मन मे ख्याल पहले से ही था कि पित्ताधिक्य का यह रोगी है इसीसे सल्फाग्वनेडीन ने भी इसे लाभ नहीं किया।

प्रातः मध्याह्न सायं (१) सितोपलादि ३ माशा, भुसी ईसबगोल ३ माशा, लाक्षादि ४ रत्ती। (२) मधुरार्क २½ तोला, पुड़िया के बाद। (३) शङ्खवटी २ रत्ती भोजनोपरान्त। दूसरे दिन प्रातः उसने आकर कहा कुछ चैन है अन्दर उतनी भभकी मालूम नहीं देती और ऐठन भी कुछ कम है। पुनः वही दवा तीन दिन तक दी और वह स्वस्थ हो गया।

—श्री शिवकुमार व्यास
५, देवनगर, करौलबाग, नई दिल्ली।

※ मधुरार्क हमारा अपना योग है जिसमे निम्न औषधियां हैं।

अर्क सौंफ, अर्क सोया, अर्क अजवायन, अर्क पोदीना, मिश्री। प्रत्येक १-१ पाव। सज्जरक क्षार १ छटांक, पिपरमेंट २ माशा।

पलाश (ढाक)

कवि० पं० नानकचन्द वैद्यशास्त्री
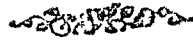
पलाश नाम का वृक्ष भारतवर्ष में प्रायः सभी स्थानों पर प्राप्त होता है। यह आयुर्वेद की अत्यन्त गुणकारी औषधि है।

संस्कृत नाम–पलाशः किंशुकः पर्णो याज्ञिको रक्त-पुष्पकः। क्षार श्रेष्ठो वातहरो ब्रह्म वृक्षकःसमिहर.। हिन्दी मे–ढ़ाक, टेसू, पलाश। बंगाल में– पलाश-गाछ। मराठी मे–पलास। गुजराती मे–खाकशः। तामिल मे–पलासु कटुमुसक, किंजु, किरु मिस्तरू, पुङ्ग। तेलगू–किंशुक, मोडुगा, चेट्ठु, तेल मोदुग, इत्यादि। उदू मे–पलाश पापडा। लेटिन मे–*Butea Prondosa*।

पलाश के वृक्ष प्रायः १५।२० फुट तक ऊचे होते है। इसके पत्ते प्रायः तीन तीन लगते है। इसका फूल शुक तुण्ड की तरह होता है और खिलने पर रक्त-वर्ण केसरिया होता है। इसकी छाल १ इंच मोटी होती है तथा खुरदरी होती है। इसका गोद भी होता है जिसे कमरकस, पलाश गोद कहते है। इसके फूलो से पीतवर्ण भी निकलता है।

गुण–पलाश दीपन, वृष्यः, सर, उष्ण, व्रण, गुल्म को नाश करता है। कपाय रस, तिक्त कटु, स्निग्ध, गुदजरोग को हरता है। टूटी अस्थि को जोड़ने वाला, ग्रहणी रोग, अर्श तथा कृमिओ को हरता है। कफ, रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, कुष्ठ, तृषा और दाह को हरता है। पलाश मूल नेत्र रोग मे हितकारी होता है। इसका गोद सग्रहणी, मुख रोग, कास तथा स्वेद को दूर करता है। यह वृष्य होता है। इसके बीज सर्प विप मे लाभप्रद कहे है। तथा अन्य विप को भी नष्ट करते है। बीजो का प्रयोग करने से कृमि रोग का नाश होता है।

आमयिक प्रयोग–

पण्डत्वहर—पलाश के बीजो का पातालयन्त्र से तैल निकाल कर मूत्रेन्द्रिय पर सीवन छोड़ कर प्रयोग करने से चिरकालीन नपुंसकता दूर हो जाती है।

नेत्ररोगहर—पलाशमूल के छोटे २ टुकड़े करके उन्हे एक हाण्डी मे भर दे और उसमें एक चीनी का प्याला रख दें और एक प्याले को सीधा रखकर सन्धिलेप कर दे और उस हाण्डी को चूल्हे पर रखकर मन्दाग्नि से पकावे और ऊपर के प्याले मे पानी भर दें, जब पानी गरम हो तो बदल दे। इस प्रकार पुनः २ करे, इस प्रकार करने से मूल का अर्क प्याले मे एकत्रित होगा। उसे निकालकर शीशी मे रखले। इसका प्रयोग हर एक नेत्र रोगो मे लाभप्रद होता है।

कृमिहर–पलाश बीज, निशोथ, किरमानी, अजवायन, कवीला, विडंग और गुड़ के साथ मिलाकर देने से सब प्रकार के कृमि नष्ट होते है।

व्रण—पलाश पत्रों का रस व्रण पर लगाने से लाभ करता है।

मूत्रावरोधहर—पलाश के फूलो को उबाल कर पेडू पर सेक करने से मूत्र साफ आता है।

अतिसार–पलाश का गोद ५ रत्ती की मात्रा मे दालचीनी, जायफल, अफीम के साथ देने से लाभ होता है।

रक्तस्राव मे—पलाश पुष्प १ तोला रात्रि मे पानी डाल कर भिगो दे। प्रात. उस पानी मे शर्करा मिलाकर पीने से नाक से रक्त का आना, मूत्र मे रक्त आना बन्द होता है।

अन्त्रकृमिपर—पलाश बीजो को पानी मे भिगो कर जब नरम हो जाये तो छिलका उतार कर सुखा १। माशा पीस कर प्रातः तथा सायंकाल ३ दिन तक देना चाहिये। ४ दिन एरण्ड तैल पिला दे। दस्त होने से सब कृमि निकल जायेगे।

दद्रु कण्डु हर—बीजों को निम्बु जल में पीस कर लगाने से दाद खुजली को लाभ होता है।

सर्पविष हर—इसकी त्वचा तथा सोठ का क्वाथ पीने से सर्पविष दूर होता है।

अपस्मार हर—पलाश मूल को पानी मे पीस कर नस्य देने से अपस्मार नष्ट होता है।

यह पलाश दो प्रकार का होता है एक रक्तपुष्प दूसरा श्वेत पुष्प युक्त। दोनों ही पलाश ब्रह्मवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध होते है।

रक्त पलाश—अधुना रक्त पलाश का वर्णन करते है यथा—

पलाश पत्रमादाय पलाश तरुबीजकम् ।
निष्क द्वयमिदं तैलं गव्याज्येन सहपिबेत् ॥ १॥

माससमात्रेण योगीन्द्रो नक्षत्राण्यपि पश्यति।
अनेक कालजीवीस्यात् रक्तयमान. सुरासुरैः ॥२॥

अर्थात्—रक्तपलाश के बीजो का तैल पाताल यन्त्र द्वारा निकाल कर २ निष्क (८ माशा) मधु तथा आज्य के साथ पीने से १ माशा के प्रयोग से मनुष्य योगीन्द्र होकर नक्षत्रो को देखने मे समर्थ हो जाता है तथा दीर्घकाल तक जीवन प्राप्त कर सर्व मान्य हो जाता है।

धात्रीरसेन तद्बीजचूर्णं सम्यग्विभावितं।
सप्ताहं पयसा तद्वच्छोपयित्वा पुनः पुन ॥३॥
सप्ताह सेवनात्तस्य दूरदृष्टिर्भवेन्नरः ।
सूर्य. प्रकाशो वेगेतुवायुर्बुद्धो बृहस्पतिः ॥४॥
वाचा सरस्वती जित्वा जीवेदा चन्द्रतारकम् ॥

अर्थात्—पलाश बीजो को आमलक रस से सात भावना देकर पुन. सुखाकर उसी प्रकार दुग्ध के साथ सात बार पुन. सुखा कर उसका चूर्ण कर सात दिन सेवन करने से दृष्टि बढ़ती है। सूर्य के समान प्रकाश होजाता है तथा वेग मे वायु के तुल्य और बुद्धि मे बृहस्पति के समान होता है।

—कविराज पं० नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री
बी. ४ राणाप्रताप बाग, देहली-६

:: पृष्ठ ६६६ का शेषांश ::

फुफ्फुस अपना कार्य बन्द कर देता है। ऐसी स्थिति मे रोगी की आवाज मंद पडने लगती है तथा श्वास बड़े ही कष्ट से आने लगता है। कभी-कभी तो इतनी भयानक स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि कृत्रिम श्वास के द्वारा रोगी के जीवन को सहारा देने का प्रयत्न करना पडता है। इस समय तक रोगी की अवस्था निःचेष्टा को भी प्राप्त हो जाती है। कई बार ऐसे रोगी भी देखने को आते हैं कि जिस पार्श्व में जल संचय हुआ है, उसके विपरीत पार्श्व मे दर्द होता है। परन्तु कुछ भी हो आगे भयानक रूप सबके समान ही होता है।

—वैद्य मुरलीधर श्रीमाली 'साधक'
राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय, देशलसर।

हरी तरकारियों के गुणावगुण

श्री माधव

अङ्क ८ से आगे

कद्दू (लौकी)

यह दो प्रकार का होता है। एक मीठा और दूसरा तीता। कड़वी लौकी खायी नहीं जाती है। मीठा कद्दू कफ और पित्त को दूर करता है। यह धातुवर्धक, रुचिकर और पुष्टिकारक होता है।

इसमे ९२.६ प्र० श० जल, ०.६ प्र० श० खनिज पदार्थ, १.४ प्र० श० प्रोटीन, ०.१ प्र० श० वसा, ५.३ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०१ प्र० श० कल्शियम, ०.०३ प्र० श० फासफोरस, ०.६ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, ८४ इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, २० इ० यू० विटामिन बी १ प्रति सौ ग्राम, २ मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।

कद्दू के व्यवहार से हृदय रोग, सिर दर्द, राजयक्ष्मा आदि रोग दूर होते है।

सेम

यह दो प्रकार का होता है—हरा और सफेद। दोनो तरह का सेम रुचिकर, कसैला, मधुर, दीपन और बुद्धिवर्धक होता है।

इसमे ८२.४ प्र० श० जल, १.० प्र० श० खनिज पदार्थ, ४.५ प्र० श० प्रोटीन, ०.१ प्र० श० वसा, १०.० प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०५ प्र० श० कल्शियम, ०.८६ प्र० श० फासफोरस, १.६ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा और १२ मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता है।

इसके प्रयोग से यकृत, प्लीहा, विषम-ज्वर आदि रोग दूर होते है।

कोहड़ा

इसे कई कुम्हड़ा या पेठा भी कहते है। यह पुष्टिकारक, बल वीर्यवर्धक, भारी और शीतल होता है। यह रक्त विकार, वायु विकार और अम्लपित्त नाशक होता है।

इसमें ६६.० प्र० श० जल, ०.३ प्र० श० खनिज पदार्थ, ०.४ प्र० श० प्रोटीन, ०.१ प्र० श० वसा, ३.२ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०३ प्र० श० कैल्शियम, ०.०२ प्र० श० फासफोरस, ०.५ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, विटामिन ए नहीं के बराबर, २१ इ० यू० प्रति सौ ग्राम, विटामिन बी १ और विटामिन सी एक मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम होता है।

इसके प्रयोग से प्रमेह, सुजाक, मृगी, पागलपन, पथरी आदि बीमारिया दर होती है। इसके अतिरिक्त उन्माद, कामला रोग, अम्लपित्त, खासी आदि रोग दूर होते हैं।

केला

केला कच्चा और पका दोनों तरह का खाया जाता है। कच्चे केले की खासकर तरकारी होती है। यह भारी, स्निग्ध, कफनाशक, सुस्वादु होता है। खाने मे रुचिकर और कसैला होता है।

इसमें ७३.४ प्र० श० जल, १.७ प्र० श० खनिज पदार्थ, १.१ प्र० श० प्रोटीन, ०.१ प्र० श० वसा, २४ ७ प्र० श० कार्बोहाइड्रेट, ०.०१ प्र० श० कैल्शियम, ०.०३ प्र० श० फासफोरस, ०.५ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा, १२४ इ० यू० विटामिन ए प्रति सौ ग्राम, विटामिन बी २ न्यून, छः मिलीग्राम विटामिन सी प्रति सौ ग्राम होता होता है।

केला वीर्यवर्धक, शक्तिदायक, रुचिकर और अम्लपित्तनाशक होता है।

पपीता

कच्चे पपीते की तरकारी होती है। पका पपीता यो ही खाया जाता है। इसमे रेचक गुण होता है। कच्चा पपीता मलरोधक और वात को प्रकुपित करने वाला होता है।

इसमे ८६.६ प्र०श०जल, ०.५ प्र० श० प्रोटीन, ६.५% कार्बोहाइड्रेट,०.०१%कैल्शियम, ०.०१% फासफोरस, ०.४ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम लोहा,२०२० इ०यू० प्रति सौ ग्राम विटामिन ए और ४६ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम विटामिन सी होता है।

यह दाद, सीहा, कृमि, यकृत् सीहा वात, रक्त गुल्म, मन्दाग्नि आदि रोगो में फायदेमन्द है।

—श्री महावीर प्रसाद सिंह 'माधव'
पो० हवेली खरगपुर, (मुंगेर)

.: पृष्ठ ९९२ का शेषांश .:

मेरा वैद्य समाज से विनम्र निवेदन है कि वे आचार्य वार्योविद की निम्न वैज्ञानिक सूक्ति पर भी ध्यान दें—

"वार्योर्यथार्था स्तुतिरपि च भवन्त्यारोग्याय बल वर्ण वृद्धये वर्चस्वित्वायोपचयाय च। ज्ञानोपपत्तये परमायु. प्रकर्षाय चेति॥" . (च. सू १२)

अर्थात्—वायु की यथार्थ स्तुति भी आरोग्य लाभ के लिये है, बलवर्ण की वृद्धि के लिये है, वर्चस्विता के लिए है और पुष्टि के लिए है। वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए और परमायु प्रकर्ष के लिए भी है। भगवान् धन्वन्तरि वैद्य समाज को इस माण हर रोग के सफल इलाज मे प्रवृत्त करें। यही मेरी हार्दिक कामना है।

—आचार्य परमानन्द शास्त्री
अमरूदी, मछुआ टोलीपटना-४

(समाप्त)

प्रदर निवारक योग—

श्रीफल चूर्ण—दक्षिणी सुपारी ५ तोला, सिंघाड़े ८ तोला, लोध्र पठानी ५ तोला, वशलोचन ५ तोला, माजूफल २॥ तोला, सत्व गिलोय ७॥ तोला, प्रवाल पिष्टी १ तोला, मुक्ता शुक्ति पिष्टी १ तोला, सफेद चन्दन १॥ तोला, मिश्री ३० तोला, इनमे काष्ठौषधियां कूट वस्त्रपूत करके पिष्टि तथा सत्व मिलाकर पुन. मिश्री मिलाकर खाली पेट प्रात. बजे दूध के साथ सेवन करे। श्वेत प्रदर, व रक्त प्रदर दोनों मे ही लाभप्रद है।

वस्ति प्रयोग—त्रिफला ५ तोला, रसांजन ३ माशा, लाल फिटकरी १ माशा, दो सेर जल मे क्वाथ कर कपड़छन कर प्रक्षालन वस्तियन्त्र (एनिमा) का व्यवहार करे। एक माह मे समस्त जरायुग विकार नष्ट होकर प्रजनन अङ्ग स्वस्थ होगे व स्वास्थ्य सुधर कर ताजगी आजायेगी।

—वैद्य श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा सारस्वत आयु०
श्रीराम आरोग्य सदन (डीडवाना)
सरदार शहर (राजस्थान)

फोड़े को पकाने के लिये—

अलसी, सुहागे का फूला, धतूरे के पत्ता तथा मालछड़—चारो बराबर लेकर पीसकर लुगदी बना कर फोड़े पर लेप कराये। शीघ्र ही फोड़े को पकाकर फोड़ देगा तथा मवाद आसानी से निकल जायगा। परीक्षित है।

—दाऊदयाल गर्ग A M. B. S.
सम्पादक—धन्वन्तरि

मौक्तिक ज्वर (टायफाइड) पर—

सोंठ, गुरवेल, कटाई की जड, कचूर, जवासा, कुटकी, वनपीपर, चिरचिटा की बाल, परवलपत्र, १ तोले। तुलसी पत्र नग ७, पोदीना की पत्ती ११ नग। १२ खुराक रोग के बलानुसार काढा बना कर सुबह-शाम दें। मौक्तिक ज्वर पर परीक्षित है।

मलेरिया ज्वर पर रामबाण

नीम छाल, अमृता, धनियां, पित्तपापडा, कुटकी, भारंगी, मौथा, चिरायता, कागदी नीबू के पत्ते, प्रत्येक २-२ तोले, तीन सेर पानी मे औटावें, जब आध सेर रह जावे तो द्रव्यांश फेंक दें और क्वाथ फिर पकायें। ८-१० तोले रहने पर रख छोड़े।

लालचदन, पद्माख, जीरा सफेद, वशलोचन, कंजा की गिरी (बीज की मिंगी) भंजी हुई, प्रत्येक १ तोला और कुनेन सल्फ ५ तोला को महीन चूर्ण बनाकर उपरोक्त क्वाथ की भावना देकर छोटी बेरी बराबर गोली बनाकर छाया मे सुखा ले।

मात्रा—सुबह-शाम १-१ गोली और बच्चो के लिए आधी २ गोली दे।

पैत्तिकज्वर—ठंडे पानी के साथ, कफज्वर—शहद के साथ, वातज्वर—भुनी हर्र के चूर्ण के साथ, जीर्णज्वर—मे हडुवा की छाल के क्वाथ के साथ दे।

तन्द्रा नाशक रस क्रिया—

(१) चमेली के फूल, चमेली के अंकुर, कालीमिर्च, कुटकी, वच, सैंधानमक, सम भाग लेकर चूर्ण कर बकरे के मूत्र मे बारीक पीसकर गोली बनाकर सुखा लेवे। आवश्यकता के समय पानी मे पीस कर (बारीक घिसकर) नेत्रो मे अंजन करे तो तत्काल तद्रा दूर होती है।

(२) सिरस के बीज, पीपल, कालीमिर्च, सेधानमक, लहसन, मैनसिल, वच, समभाग लेकर गाय के मूत्र मे पीस कर जो रोगी बेहोश पडा हो उसके नेत्रो मे आंजे तो तत्काल होश मे आवे।

—डा० शिवकुमार शर्मा,
बरौदिया नौनागर (सागर) म० प्र०

मुंह के मस्से--

शरीर के किसी भी अङ्ग पर मस्सा हो उसे थोड़ा ऊपर से काट दें। तत्पश्चात् समभाग चूना और नौसादर मिलाकर उस कटे स्थान पर रखदे। यह ध्यान रहे कि उक्त औषधि मस्सा की परिधि से बाहर न लगे तथा अच्छा होने तक उस औषधि को वहां से न हटावे। अवश्य लाभ होगा।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सी. के. ७/६६ सिद्धेश्वरी, वाराणसी।

निद्राजनक तथा पीड़ा शामक--

(१) योगराज गूगल (महायोगराज नहीं) २ गोली पानी के साथ।

(२) एलुआ, सुरंजान मीठी, बारहसिंगा भस्म, सोंठ समभाग मात्रा २ रत्ती पानी के साथ।

इस योग के प्रति मेरी श्रद्धा कैसे हुई यह घटना बड़ी रोचक है। मेरे यहा एक युवती आयु १६ वर्ष, आधा सिर दर्द (अनन्तवात की तरह) बड़े भयानक रूप मे था। बड़ी तेज दवाइया सैरीडोन, क्लोरल ब्रोमाइड मिक्चर आदि दिये गये परन्तु निष्फल रहे। यहा पर एक स्थानीय वैद्य जी ने २ खुराकों से रोग निवारण कर दिया। तब से मैं यह योग प्रयोग कर रहा हूँ। २ रत्ती से मात्रा अधिक न दे, गरम मिजाज (पित्त प्रकृति) वालों को न दें। योगरोज पुराने प्रतिश्याय मे भी बड़ा अच्छा कार्य करता है प्रयोग करे।

—डा० प्रेमनाथ अग्रवाल
हास्पीटल रोड, मानसा मडी।

गैस ट्रबिल--

इस योग से अफरा, पेट म वायु का भरना, पेट का हरदम भारी मालूम होना, तरह तरह की डकारे आना, आध्मान, पेट का दर्द आदि वायु से सम्बन्धित रोग अच्छे होते है।

योग—हिंग्वाष्टक चूर्ण (वै. जी.) १॥ माशा, शङ्खभस्म (र. त.) २॥ रत्ती, सोडा बाई कार्ब (खाने का सोडा) ५ ग्रेन

उपरोक्त मात्रा १ खुराक है। भोजनोपरान्त दोनो समय या आवश्यकता पड़ने पर पानी से ले एवं गुण की परख करे। यह मेरा पेटेन्ट योग है। मैंने एलोपैथिक निराश कई रोगियो को इससे कम खर्च में अच्छा किया है।

नोट—चिकित्सा प्रारम्भ से पहले कास्टर आयल का विरेचन देना नितान्त आवश्यक है।

—डा० एन. आर. जैन आयु० विशारद
सिमगा (रायपुर)

गैस ट्रबिल--

ग्वार पाठा, अद्रक, नींबू प्रत्येक २-२ सेर, पाचो नमक ऽ।=, नौसादर डडा का ऽ-, जवाखार ऽ-, शङ्ख भस्म २ तोला, हीरा हींग १ तोला भुनी हुई। सर्व प्रथम ग्वार पाठे को छिलके रहित कर छोटे छोटे टुकड़े कर चीनी के बर्तन मे डाल दे। बाद मे नीबू का रस निचोड़ कर डाल दे। अद्रक की लुगदी बनाकर डाल दे फिर हीरा हींग को छोड़कर बाकी सब चीजे बिना पिसी डाल दे। तीन दिन तक खुले हुए बर्तन मे रखा रहने दे। बाद मे छानकर शीशिया मे भरकर हीरा हींग डाल दें।

सोडा बाई कार्ब, हरड़ चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण

प्रत्येक १-१ माशा। इन तीनों को १ मात्रा खिलाकर ऊपर से १॥ तोला ऊपर का द्रव पिलाने से भयङ्कर पेट का दर्द अग्निमांद्य गैस ट्रबिल आदि रोग नाश करता है।

अफीम छुडाने का प्रयोग--

ऽ। बच्छनाग को गोमूत्र तक्र वो कुआर से क्रमशः शुद्धकर अफीम की मात्रानुसार खिलावे। अफीम कम करते जाये और बच्छनाग खिलाते जावे। १ माह तक खिलाने से अफीम छूट जाती है।

मस्से--

पान के ऊपर के डंटल को बीच मे से तोड कर जरा सा चूना लगाकर १ मिनट तक मस्से के ऊपर रगड़ने से मस्सा कटकर नीचे गिर जाता है। बाद एरण्ड का तेल लगावे।

- वैद्य श्री बत्तूलाल शर्मा
कमालपुरा (सवाई माधौपुर)

वेदनाशामक ज्वर हर—

अजवायन ५ तोला, यवखार तथा सज्जीखार २-२ तोला शङ्ख भस्म २ तोला, सैंधव नमक, बिड् नमक, सोंचर नमक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पीपल, मिरच सोंठ प्रत्येक १-१ तोला, नीम के पत्ते १० तोला, सबको कूट पीस कर रखलें।

मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक गरम जल आदि अनुपान से दें।

गुण—त्रिदोषजन्य सन्निपातिक ज्वर मे प्रतिदिन आने वाले ज्वरों मे इकतारा, तिजारी, चौथिया इत्यादि सब प्रकार के ज्वरो को नष्ट करता है। प्रति दिन इसकी एक मात्रा जल के साथ लेने मे ज्वर का निरोध होता है। सिर दर्द, जुखाम, हरारत, हाथ पैरो की इड़कल आदि मे भी आश्चर्यजनक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

—श्री गेबीअली पाठक
बोलिया मन्दसौर (म० प्र०)

अफीम का व्यसन कैसे छूटे--

मैने कुचिला शोधन की निम्न विधि से अनेक 'अफीम खाने वालों' की आदत छुड़वाई है।

कुचला को ७ दिन तक या ८-६ दिन तक गोमूत्र में भिगोवे। प्रतिदिन गोमूत्र को परिवर्तन करते रहे। तदनन्तर छिलका नर्म हो जाने पर छिलके को निकाल दिया जाय। बाद मे कुचिला को १६ गुने दूध मे दोलायन्त्र से उबाले। दुग्ध रबड़ी (मलाई) जैसा हो जाने पर उतार कर धो डाले। बस अब कुचला शुद्ध हो गया।

कुचला शोधन करने पर शेष रहे दुग्ध का मावा (खोवा) बनाकर अफीम छुड़ाने के लिए प्रयोग मे लाना चाहिए।

नोट—यदि ७ दिन भिगोने पर भी छिलके कोमल न हो तो २-३ रोज ज्यादा भिगोवे।

—श्री आमचन्द नायक आचार्य,
जनपद डिस्पेन्सरी लालपुर,
(मेन्ड़ारोड) म० प्र०

बद, स्त्रियो के थनैल फोड़ा पर अनुभूत—

मुर्गी के अन्डे का गाढ़ा द्रव कण्डे की पट्टी पर लगाकर चिपका दे और अधजले कंडे की आग से सेक करें। इसे दिन में २ बार बदल दे। इससे एक दो दिन मे फोड़ा पक जायगा, तब आहिस्ते से खोल दें या जहा पकने का ठीक स्थान हो वहां सज्जी, चूना, नमक और कबूतर की बीट एकत्र कर ½ रत्ती रख कर पट्टी चिपका दे इससे घाव हो जायगा। इसे थोडा थोड़ा दबाकर मवाद निकाल दे। इसके पश्चात्, पान, पीपल या समन सोख के उल्टे पत्ते मे घी लगा उसे सेककर लगायें, इससे मवाद निकल जायगा, तब पत्ते लगायें तो घाव भर जायगा।

—श्री हरबन्शप्रसाद पाठक वैद्य,
सिहोरा रोड, (जबलपुर)

नेत्र रोगों पर—

आवा हल्दी, कलमी शोरा, यशद भस्म, तीनों चीजें समभाग लेकर कूट पीसकर खरल में घोट कर सुर्मा बनाले। यह सुर्मा नेत्र बिन्दु, नेत्र लालिमा धुन्ध के लिए हितकर है।

पौष्टिक योग—

ईसबगोल और ताल मखाने के बीज दोनों वस्तुएं ७ तोले के करीब लाकर पीसकर रख लो। फिर छुहारों के बीज निकालकर इन दोनों दवाइयों का सफूफ १-१ माशा भर कर तागा लपेट दो ताकि औषधि गिर न जाय। फिर नित्य प्रति प्रातः सायं १-१ छुहारा आध सेर गौ दुग्ध में पकाकर आधा दुग्ध रहने पर छुहारा खाकर दुग्ध पी लेना चाहिए। दूध में मिश्री या शक्कर डालनी चाहिए। इस प्रकार ४० दिन के सेवन से मनुष्य में अपार बल वीर्य की वृद्धि हो जाती है। खोई हुई पुरुषत्व शक्तिदाता यह पौष्टिक योग है।

संग्रहणी पर बिल्व फल—

कच्चे या पके हुए बेलों का गूदा निकाल कर चूर्ण बना लीजिए। बेल के इस आध सेर चूर्ण को २० सेर पानी में पकाकर जब २ सेर रह जाय मलकर छान लो फिर १ सेर शकर डालकर चाशनी तैयार कर लो। जरासी चाशनी किसी लकड़ी पर टपकाओ। यदि वह अपनी जगह से न बहे तो समझलो शर्बत बन गया, यदि गाढ़ा हो जाय तो और पानी डालकर पकालो ताकि शर्बत बोतलों में जमने न पाए। इस बेल के शर्बत को पीने से आमातिसार, रक्तातिसार, या गर्मियों के दस्त, संग्रहणी आदि सभी उदर विकार दूर हो जाते हैं।

स्वप्नदोषहर चूर्ण—

मोचरस अर्थात् सेमर का गोंद लाकर पीस छानकर रखलो। नित्य प्रातःकाल समभाग मिश्री मिलाकर ६ माशा चूर्ण गाय के मिश्री मिले ꠸। भर दूध के साथ फांक लो। इस चूर्ण के ४१ दिन सेवन करने से अवश्य ही प्रमेह दूर भाग जाते हैं।

मूत्र कृच्छ्र पर —

वासा (अड़ूसा) की जड़, आंवला, सोंठ, गिलोय (गुर्च), हरड बड़ी नागौरी, असगंध इन ६ दवाइयों को अध कुटी करके रात्रि में आध सेर पानी में भिगो दें। प्रातःकाल काढ़ा बनाकर आध पाव रहने पर छानकर पीलें। इसके कुछ ही दिन सेवन करने से मूत्र की जलन, रुकावट दूर होकर ठीक मूत्रोत्सर्ग होने लगेगा।

नोट—दवा की मात्रा १ तोला की है।

—श्री मन्नालाल शर्मा 'व्रजेश'
व्रजेश आयु० औषधालय, कोटरा
(सीतापुर)

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद में अनुसंधान की आवश्यकता पर बल

अलवर (डाक से)। राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के १५ वे अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए यहा रविवार को राजवैद्य श्री प्रेमशंकर शर्मा भिषगाचार्य ने आयुर्वेद के सिद्धान्तो का विश्लेषण और प्रतिपालन करते हुए इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि विभिन्न राज्यो की सरकारो ने आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के लिए अपनी योजनाओ मे उत्तरोत्तर धनराशि बढ़ाई है। उन्होने कहा कि पजाब, राजस्थान, बम्बई और सौराष्ट्र (अब गुजरात मे विलीन) ने आयुर्वेद के लिए स्वतन्त्र सचालकालय स्थापित किए और राजस्थान सरकार ने तो एक पृथक् आयुर्वेद मन्त्री ही नियुक्त कर दिया। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और मद्रास मे भी आयुर्वेद के लिए डिप्टी डायरेक्टर के पद स्वीकृत किए गए। अन्य राज्यो मे भी आयुर्वेद चिकित्सा के विस्तार की योजनायें विचाराधीन है और थोड़े-बहुत बजट के साथ क्रियान्वित की जा रही है।

राजस्थान मे आयुर्वेद की उन्नति का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि यहां वित्तीय पंचवर्षीय योजना काल मे इसके लिए ४७ लाख रु० स्वीकृत किए गये और इसकी विविध योजनाओं की सफलता के लिए स्तुत्य कदम उठाए गए। तृतीय योजना काल मे तो आयुर्वेद के विस्तार के लिए राज्य ने एक करोड रु० का प्रावधान किया है।

अध्यक्ष महोदय ने वैद्यो को शल्य चिकित्सा की अनुमति न देने की भारत सरकार की नीति की कडी आलोचना की और वैद्यो तथा आयुर्वेद विशारदों से अनुरोध किया कि वे आयुर्वेद मे अनुसन्धान का कार्य करे। उन्होने कहा कि यद्यपि नागार्जुन के बाद गत १४-१५ सौ वर्षो मे आयुर्वेद मे अनुसन्धान दिशा मे कोई कार्य नहीं हुआ तो भी चरक और सुश्रुत आदि से कुछ प्रेरणा और मार्ग निर्देश मिल सकता है।

मुख्य मन्त्री की घोषणा—

उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के उद्घाटनावसर पर उ० प्र० के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द ने घोषणा की कि उ० प्र० सरकार स्वतन्त्र आयुर्वेद डाइरेक्ट्रेट की स्थापना का निश्चय कर चुकी है। शीघ्र ही इस सम्बन्ध मे स्वास्थ्य मन्त्री सरकारी स्तर पर घोषणा करने वाले है।

साथ ही आयुर्वेद का एक उच्चस्तरीय अस्पताल भी शीघ्र ही सरकार खोलेगी किन्तु स्थान की घोषणा बाद मे की जायगी।

आयुर्वेद शास्त्र चर्चा परिषद्—

उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के १६ वे अधिवेशन के अवसर पर दिनाक १० अक्टूबर को सम्मेलन के अन्तर्गत प्रात. काल १० बजे ई० एम० हाल फूल बाग नगर के लब्ध प्रतिष्ठ चिकित्सक चूड़ामणि आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति पं० रामेश्वर मिश्र कानपुर की अध्यक्षता मे आयुर्वेद शास्त्र चर्चा परिषद् की बैठक हुई, जिसका उद्घाटन उ. प्र. के सभा सचिव धर्मदत्त शर्मा ने किया।

शास्त्र चर्चा परिषद् मे अनेक विद्वान वैद्यो के भाषण हुए। अध्यक्ष महोदय का विद्वतापूर्ण मुद्रित भाषण समस्त आगन्तुक वैद्यो को वितरित किया गया।

प्रात.काल ७ बजे से १० बजे तक विद्वान् वैद्यो द्वारा नगर के सैकड़ो रोगियो के रोगों की परीक्षा की गई और उन्हे चिकित्सा सम्बन्धी उचित परामर्श दिये गये। अर्जुन विद्यालय वाराणसी के

ग्रहणी रोग चिकित्सा

श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी

वैसे तो ग्रहणी रोग पर 'तक्र-कल्प'' ''दुग्ध-कल्प'' तथा ''पर्पटी-कल्प'' का अमित असीम-प्रभाव है ही परन्तु मेरे अनुभव मे निम्न-लिखित औषधियों को उपयुक्त सूझ-बूझ से प्रयोग किया गया तो ये कल्प-चिकित्सा से कहीं कम क्रिया शील नहीं रहीं। ग्रहणी की प्राथमिक दशा में नीचे लिखी व्यवस्था के अनुसार औषधियां दें—

व्यवस्था-पत्र नं० १

(१) नृपति बल्लभ—प्रातः काल १ गोली भुना हुआ जीरा (पिसा हुआ) तथा मधु के साथ। अगर पतले दस्त अधिक होने लगते हों तो मोथा का काढ़ा या स्वरस और मधु से दे। मलविबन्धता का लक्षण दिखाई दे तो हरीतकी चूर्ण, सैन्धव लवण के साथ देना चाहिए।

(२) चित्रकादि चूर्ण—दोनों समय भोजनो-परान्त २ से तीन आने के परिमाण में उष्ण जल के साथ दें।

(३) अग्निकुमार रस—सन्ध्या समय एक गोली भुना हुआ जीरा और मधु के साथ दें।

उपरोक्त व्यवस्था द्वारा आशातीत लाभ न होने पर व्यवस्थापत्र नं० २ वाली औषधियो का प्रयोग करें। लाभ होगा।

व्यवस्था-पत्र नं० २

(१) महाराज नृपति बल्लभ-प्रातःसमय १ गोली भुने हुये जीरे (चूर्ण) मधु के साथ दिया करें।

(२) मृत संजीवनी सुधा अथवा सुरा—पूर्वाह्न नौ बजे दो ड्राम के परिमाण में सम परिमाण जल के साथ सेवन करायें।

(३) चित्रक गुटिका—दोनों समय भोजनो-परान्त उष्णोदक से। मात्रा—१२ से १८ रत्ती।

(४) सर्वाङ्ग सुन्दर रस—समय-सन्ध्या, मात्रा—१ गोली, मल की अपक्वावस्था में मोथा के स्वरस तथा मधु के साथ और मल की पक्वावस्था में भुने हुये जीरे (चूर्ण) व मधु से देनी चाहिए।

चित्रक गुटिका—ग्रहणी की प्राथमिक दशा में लाभदायक। मात्रा -१२ रत्ती से २४ रत्ती तक। अनुपान—उष्णोदक।

स्वल्प गंगाधर चूर्ण—इसके प्रयोग से सभी प्रकार के अतिसार, शूल आदि मे आरोग्य लाभ होता है। रोगी के उल्लिखित लक्षण समूह यदि इस प्रयोग से विनष्ट न हुए तो रोग के गुरुत्व और पका-वस्था पर बृ० गंगाधर चूर्ण का प्रयोग करे।

महागंधक—ग्रहणी रोग पर, खास करके बाल-ग्रहणी में विशेष लाभकरता है। पूर्ण मात्रा-१ गोली बच्चो को आयु के अनुसार। अनुपान-भुना हुआ जीरा चूर्ण और मधु।

महाराज नृपति बल्लभ—सोने-चांदी आदि भस्मों से बने इस योग से ग्रहणी रोग समूल नष्ट होजाता है। ग्रहणी के अतिरिक्त अम्लपित्त उदरामय और अम्लाजीर्ण पर भी आश्चर्य-जनक लाभ करता है। मात्रा-१ गोली, अनुपान-भुना हुआ जीरा (चूर्ण) और मधु।

पीयूषवल्ली रस—यह अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी खास कर इन उपसर्गों की पक्वावस्था मे हित-कर है। मात्रा-१ गोली, धान्यपंचक क्वाथ के साथ।

ग्रहणी गजेन्द्र वटी—ज्वरातिसार, ग्रहणी, गुदभ्रंश (Prolapse of the anus) आदि उपसर्गो पर लाभ दिखाता है। मात्रा-१ गोली। अनुपान-काली मिर्च चूर्ण व मधु।

संग्रह ग्रहणी कपाट रस—इसके प्रयोग से संग्रह ग्रहणी, अतिसार, ज्वरातिसार, क्षय, अर्श,

पैन्सिलीन पर मेरा अनुभव

श्री ओम प्रकाश वैद्य

पेसिलीन के दुष्परिणाम के सम्बन्ध मे अनेकों बार चर्चा समाचार पत्रो मे पढ़ने मे आती है। पिछले दिनो संसद के एक सदस्य की तत्काल मृत्यु का कारण पैंसिलीन थी, ऐसा भी पढ़ा गया। एक नहीं अनेक घटनाऐ सुनने और पढ़ने में आई हैं परन्तु कभी कभी मनुष्य जानते बूझते भी गलती कर जाता है।

मेरे दाहिनी ओर पार्श्व भाग मे पिछले लगभग ६ माह से कभी कभी दर्द हो जाता है। मैं समझता रहा कि यह मांसपेशियो का दर्द होता है, कभी कोई लेप या वेलाडोना प्लास्टर लगाने से यह दर्द कुछ घण्टों मे शान्त हो जाता था और ४-६ दिन में पुनः हो जाता था। मेरे कुछ डाक्टर मित्रों ने सलाह दी कि स्ट्रेप्टोमाइसीन सहित पैंसिलीन के ४-६ इञ्जेक्शन लगा दिये जॉय तो यह दर्द चला जायगा। यो भगवान धन्वन्तरि की कृपा से स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, कभी औषधि सेवन की आवश्यकता नहीं होती है। डाक्टरो की सलाह के अनुसार मैंने स्ट्रेप्टोमाइसीन पैंसिलीन का इञ्जेक्शन लगाने को कहा। मेरा पुत्र जो मुझे चिकित्सा कार्यो मे भी सहयोग करता है मेरे कहने से उसने अच्छी कम्पनी का इञ्जेक्शन मेरे लगा दिया। इञ्जेक्शन लगाने के १-२ मिनट में ही छाती का बाया भाग शून्य सा हो गया और हृदयावसाद होगया। मैं समझ गया कि पैंसिलीन का प्रभाव हो गया है। मै तुरंत ही औषधालय में तख्त पर समस्त शरीर ढीलाकर लेट गया, पङ्खा लगा दिया गया तथा एक व्यक्ति मेरे पैर के तलुवो को सहलाता रहा। मेरे इशारे से मेरे लडके ने एड्रिनलीन का इञ्जेक्शन तैयार कर रख लिया। लगभग १० मिनट तक वही अवस्था रही, मुंह मे से कुछ पानी निकला। इस बीच मस्तिष्क बिल्कुल विचार शून्य हो गया, परिवार के सभी सदस्य घबरा गये, लगभग १५ मिनट मे तबियत ठीक हो गई और आपत्ति की घड़ी टल गई।

मैने अनुभव किया कि यदि किसी रोगी को यह इञ्जेक्शन लगाया जाता और इञ्जेक्शन लगाने पर वह तुरन्त घर चला जाता तो सम्भव है उसका हृदयावरोध होकर प्राणान्त हो जाता। अतः पैंसिलीन के इञ्जेक्शन लगाने के बाद १० मिनट तक रोगी को आराम से मेज पर लेटे रहने देना चाहिये। यदि पैंसिलीन का कुछ असर होते देखा जाय तो पूरे विश्राम के साथ साथ पंखे से हवा करना तथा हथेली और तलवों की मालिश करनी चाहिए। आवश्यकतानुसार थोडा ग्लूकोज का पानी पिलाना चाहिए। पैंसिलीन के इन्जेक्शन के तुरन्त बाद रोगी को घर नहीं जाने देना चाहिये नहीं तो कभी कभी धोखे की सम्भावना हो सकती है।

—श्री ओमप्रकाश वैद्य भिषगा धन्वन्तरि,
चैयरमेन म्यूनिसिपल कोंसिल,
अजमेर।
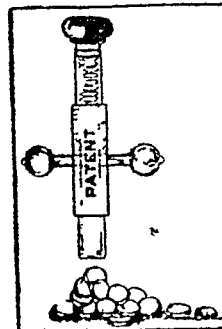
अपने अनुभव लेखमाला (१)

ज्वर-बुखार-फीवर और उसकी अनुभूत चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

लेखक महोदय अपने अनुभव में आये सिद्ध प्रयोगों तथा उन रोगों पर विवरण इस लेख माला के अन्तर्गत दिया करेंगे जिनके विषय में उन्होंने अपने चिकित्साकाल में अनुभव प्राप्त किया है। आप अनुभवी, सिद्धहस्त तथा प्रसिद्धि प्राप्त चिकित्सक हैं। आशा है धन्वन्तरि के पाठकों को यह लेख माला रुचिकर प्रतीत होगी। —सम्पादक।

शरीर का स्वाभाविक ताप (गर्मी) बढ़ जाने से शरीर गरम हो जाता है, सारी देह, इन्द्रियाँ और मन मे बेचैनी और ग्लानि हो जाती है, किसी काम में जी नहीं लगता, शरीर मे जकडन सी प्रतीत होती है। इस दशा का नाम ज्वर है। धूप या अग्नि के सामने बैठने से भी शरीर गरम हो जाता है, परन्तु इससे बेचैनी आदि नहीं होती, इसलिये केवल शरीर गरम देखकर ज्वर न समझिये। ज्वर जितना तेज होता है, बेचैनी, घबराहट, प्यास आदि उतने ही अधिक होते हैं।

ज्वर के कारण—

ज्वर, रुद्रनेत्र जिसे तापकेन्द्र (हीट सैन्टर) कहते हैं, के क्षुब्ध होने से होता है। यह तापकेन्द्र मस्तिष्क मे है। इसके क्षुब्ध होने से शरीर का ताप बढ़ जाता है। इसके क्षुब्ध होने का कारण खाने-पीने, रहने-सहने की गडबडी से दोषों का कुपित हो जाना है। वात पित्तादि दोष मस्तिष्क में पहुँच कर इसे क्षुब्ध करते हैं, दोषो के कोप से शरीर के सूक्ष्म कोषो मे संक्षोभ होता है, उस संघर्ष से ताप पैदा होता है, उस ताप से शरीर गर्म हो जाता है जिसे हम ज्वर कहते है। दोष के कुपित होने का एक कारण यह भी है कि भोजन, पानी, श्वास आदि के द्वारा खटमल, मच्छर आदि जानवरों के काटने से या घाव आदि पर पड़ी हुई धूल के साथ विकारी रोग कीटाणु शरीर मे प्रवेश कर जाते है। इन कीटाणुओं को मारने के लिये हमारे शरीर के कोषाणु संघर्ष करते है जिससे गर्मी उत्पन्न होती है फलतः ज्वर हो जाता है। यदि इन रोगाणुओं मे रक्त के कोषाणु प्रबल पडते हैं तो उन्हे मारकर शरीर को स्वस्थ कर देते है, और यदि निर्बल पड़े तो रोग हो जाता है।

इस प्रकार ज्वर कारण भेद से २ प्रकार का हुआ—

(१) निज—जिसमें वात, पित्त, कफ दोषों के बिगड़ने से ज्वर होता है।

(२) आगन्तुज—जिसमे चोटादि से शरीर के फटे स्थान मे होकर या श्वासादि के द्वारा रोगाणुओ (रोग कीटाणुओं) के शरीर में पहुँचने से ज्वर होता है। इसे आगन्तुज ज्वर कहते है। आगन्तुज ज्वर मे दोष पीछे कुपित होते हैं, रोग पहिले हो जाता है।

ध्यान रहे रोग को उत्पन्न करने वाले जिस कीटाणु के शरीर मे जो वातादि दोष प्रधानता से होता है वही दोष, रोगी के शरीर मे उस कीटाणु के प्रवेश करने से बढ़ता है, उसी दोष प्रधान ज्वर या रोग उत्पन्न होता है। रोग के उत्पन्न हो जाने पर चाहे वह रोग निज हो या आगुन्तुज, उसके इलाज का ढङ्ग एक ही होगा तथा एक ही औषधियां होगी।

पूर्वरूप—

बिना महनत किये ही थकावट मालूम हो,

सोने बैठने में चैन न पड़े, मुंह का स्वाभाविक स्वाद बदल जाय, कभी सर्दी की, कभी गर्मी की, कभी हवा की इच्छा हो और फिर हाल ही इनसे द्वेष हो जाय, जंभाई आवे, अङ्ग टूटे, शरीर भारी सा हो जाय, शिर में भारीपन प्रतीत हो, रोंगटे खड़े हों, भोजन में अरुचि, उठते बैठते आंखो के सामने अंधेरा सा आजाय, पानी के पास होते हुये भी प्रहर्ष न होना, सर्दी लगना, शरीर का स्पर्श शीतल प्रतीत होना ये लक्षण रोगी में दिखाई दें तो समझना चाहिये कि इसे ज्वर आने वाला है। ये ज्वर के पूर्वरूप है।

ये सब ही लक्षण सब रोगियों में नहीं होते, किसी में 'इनमें' से कुछ लक्षण मिलते है, कुछ नहीं मिलते। यदि किसी रोगी में सब ही लक्षण एक साथ मिल जांय तो समझना चाहिये रोगी की मौत ही ज्वर का रूप रखकर आ गई है। जितने लक्षण कम हों, रोगी उतना ही सुख साध्य समझना चाहिय। यदि जंभाइयों की अधिकता हो तो ज्वर वातज होगा, नेत्रों में जलन होना, पित्त ज्वर होने और भोजन में अरुचि का अधिक होना कफ ज्वर होने की निशानी है। यदि ये दो-दो लक्षण हों तो दो दोषों से होने वाला (द्वन्द्वज) ज्वर है। तीनो लक्षण है तो सन्निपात ज्वर होने वाला है।

चिकित्सा—

ज्वर होने वाला है, यह जानते ही रोगी को सावधान हो चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये। यदि प्रारम्भ से ही सावधानी रक्खी जाय तो ज्वर वहीं रुक जाता है, जल्द हट जाता है, आगे बढ़ता नहीं। ज्वर के पूर्वरूप में उपवास प्रारम्भ कर देना चाहिए। यदि रोगी वृद्ध, बाल, निर्बल हो, उपवास की शक्ति न हो तो हलका भोजन देना ठीक है। ज्वर में रस रक्तादि बहाने वाले स्रोत बन्द हो जाते है, लंघन इन मार्गों को बन्द करने वाले रस को पचाकर शुद्ध कर देता है, फलतः ज्वर नष्ट हो जाता है। लंघन की दशा में उष्ण जल जो कि शरीर के ताप से कुछ गर्म हो देना चाहिए। गर्म पानी पिलाने से दोष पच जाते है, स्रोत खुल जाते हैं, पेशाब, पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। यदि गर्मी की ऋतु हो, पित्त का ज्वर हो या मद्य के अधिक पीने से ज्वर हुआ हो तो पानी औटाकर शीतल कर देना अच्छा है। इन दशाओं में गर्म गर्म पानी न दीजिए।

यदि कफ के लक्षण अधिक दिखाई देते हैं, रोगी के खाने पीने के बाद ज्वर हुआ है, दोष भीतर से बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हों, परन्तु निकल न पाते हो, जी मचलता हो, उबकाई आती हो, परन्तु कै न हो पाती हो तो रोगी को सेर तीन पाव गर्म पानी में २॥-३ तोला सैंधानमक घोलकर पिला दीजिए और रोगी को उकड़ू बैठा कर कै करा दीजिए। गले में धुली हुई अंगुलियां डाल, गला सहलाने से खुलकर कै हो जाती है। मैनफल या नीम के पत्तों का गुनगुना गुनगुना काढ़ा पिलाने से भी अच्छी तरह कै हो जाती है। वमन (कै) हो जाने से छाती हलकी हो जाती है, घबड़ाहट घट जाती है, ज्वर उतर जाता है।

पित्त की प्रधानता में विरेचन (दस्त) करा देना अच्छा है। दस्त कराने के लिए ६ माशे से ६ माशे तक पंचसकार चूर्ण फंकाकर ऊपर से गर्म पानी पिला दीजिए, खुलकर १-२ दस्त हो जावेंगे।

पंचसकार चूर्ण—

बड़ी हरड़ का बक्कल, सौंठ, सौंफ, सनाय, सैंधानमक ये सब चीजें बराबर बराबर लेकर कूट पीस कर महीन चलनी में छान लें और शीशी में भरकर रखलें। इसकी मात्रा युवा पुरुषों के लिए ६ माशे से १ तोले तक है। बच्चो को अवस्थानुसार ½ माशे से ३ माशे तक दें। कब्ज को तोड़ता, दस्त साफ लाता है।

सामान्य चिकित्सा—

संभालू के सूखे पत्ते ३ माशे ले, यदि गीले तरताजा हों तो ६-७ नग ले और मसल तोड़कर

छान कर आध पाव पानी किसी पतीली या बर्तन में खूब खौलावे। जब पानी चाय के पानी की तरह उबलने लगे तब संभालू के पत्ते डालकर ऊपर से तश्तरी ढक दे और १-२ मिनट बाद उतार कर ठंडा होने दे। जब पीने के लायक ठंडा हो जावे छान ले और रोगी को पिलावे। इसके पीने से ज्वर बढ़ेगा नहीं, उतर जायगा। यदि वात ज्वर होने वाला हो सिर, शरीर दर्द, जंभाई, अङ्ग टूटना आदि हों तो इससे बहुत जल्द कम हो जायगा। यह वात कफ के विकारो को दूर करती है, पित्त के ज्वर भी इससे शमन होते हैं। इस क्वाथ की ४-४ घण्टे पर ऐसी चार खुराके लेली जाय तो दो तीन दिन में ज्वर से निश्चय छुटकारा मिल जाता है। दो बड़ी इलायची जिन्हे डोंडा इलायची भी कहते हैं लेकर बारीक पीसकर गर्म पानी से फका दीजिए। इससे खुलकर पेशाब, पसीना आवेगा, ज्वर कम हो जावेगा, घबराहट में कमी आवेगी।

वात ज्वर—

कपकपी प्रतीत हो, रोगी धूप में बैठने की इच्छा करे, ज्वर का वेग विषम हो, कभी ज्वर बढ़ा हुआ मालूम हो और थोड़ी देर में हलका प्रतीत हो, कंठ, मुंह, होठ सूखे, नींद आवे, छींक रुक जाय, शरीर रूखा रूखा सा प्रतीत हो, शिर, हृदय और सारे शरीर में दर्द होता हो, मुंह का स्वाद विरस हो, मल बंधा गाढा होता है, मूत्र थोड़ा रुक रुक का आता है, रोगी को भ्रम, चक्कर से प्रतीत होते हैं, प्रलाप (अन्टसन्ट बकना) भी हो सकता है। यदि ज्वर साम होता है तो पेट में अफरा और उभार भी होती है।

चिकित्सा—

वात ज्वर में लंघन न कराने चाहिए। वायु रूक्ष है और लंघन (उपवास) करने से रूक्षता बढ़ती है, इसलिए हानि की सम्भावना है। हां यदि वायु आम से यानी कच्चे रस से युक्त हो जिससे पेट में अफरा, दर्द, भारीपन आदि लक्षण हों तो लंघन करा सकते है। लंघन किसी भी ज्वर या रोग मे कराया जाय तब हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी निर्बलता अनुभव न करे। रोगी को यदि अच्छी तरह वायु उतरने लगे, दस्त ठीक ठीक उतरे, शरीर हलका और डकार शुद्ध आने लगे, कंठ और मुंह साफ हो, तन्द्रा और ग्लानि मिट जाय, पसीना आने लगे, अरुचि दूर हो जाय, भूख प्यास साथ साथ लगने लगे, मन और आत्मा मे किसी प्रकार की व्यथा प्रतीत न हो, बल्कि मन प्रसन्न रहने लगे तो समझना चाहिये कि हमारा लंघन कराने का उद्देश्य पूरा हो गया। अब लंघन न कराने चाहिए। यदि फिर भी लंघन कराओगे तो लाभ की जगह हानि होगी। इसके फलस्वरूप जोड़ों मे दर्द, अङ्गो का टूटना, खांसी, मुंह का सूखना, भूख का नष्ट होना, अरुचि, प्यास बढ़ जाती है, देखने सुनने की शक्ति निर्बल होने लगती है, मन मे भ्रांति, हिचकी, श्वास, लगातार डकारे आना, आंखो के आगे अंधेरा आ जाना, हृदय, देह का बलक्षय आदि उपद्रव उठ खड़े होते है इसलिए अधिक लंघन कभी न कराइये। खासकर वात ज्वर, निराम वात, क्षय, कास, क्रोध, भय, शोक और महनत के थकने से उत्पन्न ज्वर मे तो उपवास भूलकर भी न कराइये। इन अधिक परिश्रम से उत्पन्न ज्वर तथा उपवास से उत्पन्न ज्वर तथा वात ज्वर मे तो हमेशा पौष्टिक मांस रस (मांस का शोरवा झोल) चावलो के साथ देना चाहिए। यदि रोगी शाकाहारी है तो वात ज्वर मे दूध देना भी उत्तम है क्योंकि दूध स्निग्ध होने से वात-हर है। वात ज्वर मे उष्ण (गर्म) जल दे। जल मे सौंठ, पीपल या लौंग के कुछ दाने डाल देना उत्तम है।

किरतादि क्वाथ–चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी गोखरू, नेत्रवाला शालपर्णी, पृष्ठपर्णी (पिठवन)' सोंठ ये सब वस्तुएं समान

साफ कर कूटकर जौ कुट करलें। इन सबका मिला हुआ चूर्ण २।। तोला लेकर २० तोले पानी में औटाये। जब ५ तोला पानी रह जाय उतार छान कर गुनगुना पिला दें। ऐसी ही एक मात्रा सायं-काल ही दें। वात ज्वर से शीघ्र छुटकारा होगा।

अर्क वटी—आक की जड़ उखाड़कर उसके ऊपर की छाल उतार लीजिये और उसमे उसके बरावर कालीमिर्च मिला खूब महीन पीस डालिए। इसमे जल कतई न डालिये। जब पिसकर गोली बनाने लायक हो जाय तो चने से जरा बड़ी गोली बना लीजिये। मात्रा २ से ४ गोली चार चार घण्टे बाद गुनगुने पानी से दीजिये। इससे वात ज्वर, कफ ज्वर, मंदाग्नि, कफ, खांसी मे बड़ा लाभ होता है।

हिंगुलेश्वर रस—शुद्ध सिंगरफ १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, छोटी पीपल पिसी हुई १ तोला तीनो वस्तुओं को खरल में डालकर नकछिंकनी के रस या क्वाथ मे घोटकर १-१ रत्ती की गोली बनाले। बहुत से वैद्य हिंगुलेश्वर को केवल जल में ही घोटकर गोली बना लेते हैं। पर वह इसके मुकाबिले पर कुछ भी नहीं।

हिंगुलेश्वर के गुण—दोषघ्न है, हलका पसीना लाता है, हर प्रकार के नवीन ज्वरो विशेष कर वात ज्वर मे विशेष लाभकारी है। जब रोगी ज्वर से बैचेन हो, बदन में दर्द, शिरःशूल की शिकायत करे, २ वटी और १ बड़ी इलायची आग मे भुल-भुलाकर महीन पिसी हुई ६ माशे शहद मे मिला कर चटावे। रोगी को १०-१५ मिनट मे चैन आ जायगा। इसके अतिरिक्त यह गोलियां वात रोग, इन्फ्लुएञ्जा (लंगड़ा बुखार), प्रतिश्याय (जुकाम), बदन की शिथिलता मे बड़ा लाभ करती है। दिन रात मे ४-५ बार देनी चाहिए।

पथ्य—रोगी को तेज हवा से बचाकर खूब, आराम से खाट पर पड़ा रहने दें, उससे अधिक बातें न करे। पीने के लिए गर्म पानी, खाने के लिये पीपल २-३ नग के साथ औटाया हुआ दूध, मूंग की दाल, गेंहूं का दलिया, पपीता देना चाहिए।

—श्री सत्यदेव शर्मा 'विद्यासागर'
कीठम, पो० रैपुराजाट (मथुरा)

पाण्डुरोग

श्री शिवचरण ध्यानी

पाण्डुरोग का प्रत्यात्म लक्षण है—रोगी की त्वचा मे पाण्डुता। पाण्डुवर्ण केतकीधूलि के समान बतलाया गया है। यह एक बैकारिक अवस्था जन्य वर्ण है। किसी भी प्रकार का वैवर्ण्य वर्णोत्पादक तत्वो मे किसी विकृति का परिचायक है। प्राकृत वर्ण की उत्पत्ति के लिये रक्त और पित्त (भ्राजक) उत्तरदायी है। अतः विवर्णता की अवस्था में इन दो मे ही विकृति होती है। इसी आधार पर स्थिर किया गया कि पाण्डुरोग में दोष पित्त और दूष्य रक्त होता है।

रक्त की अल्पता से पाण्डुता उत्पन्न होती है। शरीर में रक्त की कमी तीन प्रधान अवस्थाओं में हो सकती है–

१–आघात लगने के कारण शरीर से अधिक रक्त स्राव होना।

२–रक्त कणों का किसी विकृति के कारण अधिक टूटना।

३–रक्त का निर्माण अल्प होना।

पाण्डुरोग के निदानो में आघात कोई कारण नहीं है। शरीर के अन्दर रक्त कणों के टूटने से रक्त के मल स्वरूप पित्त का अधिक निर्माण होकर कामला की उत्पत्ति होजाती है। अतः यह अवस्था भी पाण्डु की उत्पत्ति से अधिक महत्व नहीं रखती है। शेप तीसरी अवस्था 'रक्त का अल्प निर्माण' प्रस्तुत प्रकरण मे विचारणीय है। प्रकृत अवस्था मे रक्त निर्माण की प्रक्रिया मे किसी भी प्रकार की बाधा आने से रक्त का ठीक निर्माण नहीं होसकता। रक्त निर्माण की शरीर मे निम्नलिखित प्राकृत प्रक्रियाये होती है –

१–आहार से ही सभी धात्वादिको का पोपण होता है। आहार मे प्रत्येक धातु के उपयुक्त पोपण रहता है। यदि आहार मे रक्त निर्मापक तत्वों की न्यूनता हो तो रक्त निर्माण अल्प होगा।

२–वाग्भट ने आमाशय को भी रंजक पित्त का स्थान माना है साथ ही आमाशय तथा आन्त्रों में भोजन का ठीक प्रकार से पाचन और शोषण होना भी आवश्यक है। अतः महास्रोतस की विकृति से भी रक्त का अल्प निर्माण होता है।

३–आहार रस से रक्त धातु अपना पोषण लेती है। प्रत्येक धातु की अपनी विशिष्ट अग्नि होती है। अतः रक्ताग्नि से रस अपना पोषणांश लेकर रक्त बनाती है। रक्ताग्नि के द्वारा रक्तस्थ कणों (*cells*) का निर्माण होता है। इस रक्ताग्नि का प्रधान स्थल (कार्यस्थल) सरक्त मेदस है। अतः रक्ताग्नि की विकृति से भी रक्त का अल्प या वैकारिक निर्माण होता है।

४–चरक और सुश्रुत ने रंजक पित्त का स्थान यकृत् और प्लीहा माना है जो कि रक्तवह स्रोतो के मूल भी बतलाये गए हैं। यहां रक्तकणो के रंजनार्थ तत्व-विशेषो की उत्पत्ति होती है–रंजक पित्त। अतः इन अवयवो में या उन तत्वो मे विकृति आने से भी रक्त का अल्प निर्माण होता है।

उपयुक्त अवस्थाओ से दो परिणाम–विकृति होती है—

१–रक्त का अल्प निर्माण। २–रक्त का अल्प रंजन।

इन्हीं दो अवस्थाओ का रक्तकण परिगणन तथा रंजन नाप करके पता लगाया जाता है और तदनुसार ही चिकित्सा की जाती है। रंजक पित्त की कमी से अल्प रंजन होता है। रक्त का ठीक पोषण न हो सकने के कारण तथा रक्ताग्निक्षय से रक्त का निर्माण अल्प होता है। सर्व प्रथम पित्त दुष्टि, उससे अग्निमांद्य और परिणामतः आम की उत्पत्ति होती है। पित्त दुष्टि धात्वग्नियो को पाचकांश नहीं मिल पाता जिससे रक्तधात्वग्नि का क्षय हो जाता है। आम

रस धातु में पहुंचता है और वहां पर (रसवह स्रोतो मे) अवरोध उत्पन्न कर देता है जिससे रस से रक्त पोषणांश नहीं पहुँचता। और जितना कुछ पहुँचता भी है वह रक्तधात्वग्नि के क्षय के कारण रक्त मे परिवर्तित नहीं होपाता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अवरोध रस-वह स्रोतस मे हुआ और परिणाम रक्त पर हुआ। अतएव परिणाम (रोग) वर्णन में चरक ने पाण्डु मे रक्त को दूष्य बतलाया है और रोग गणना मे पाण्डु को रसज विकार माना है।

पांडु रोग के निदान--

व्यायाम, अम्ल एवं लवण रसो का अधिक सेवन, अति तीक्ष्ण मद्यपान, दिवास्वप्न, मृत्तिका-भक्षण।

पांडु रोग की सम्प्राप्ति-

स्व निदान से प्रकुपित पित्त रक्त को दुष्ट करके त्वचा को पाण्डुवर्ण का कर देता है।

१-दोष-पित्त प्रधान।
२-दूष्य-रक्त।
३-स्रोतस-रसवह तथा रक्तवह।
४-स्रोतोदुष्टि लक्षण-संग।
५-आमाशयोत्थ।
६-चिरकारी।

पूर्व रूप-

त्वक् स्फोटन, ष्ठीवन, गात्रसाद, मृद्भक्षण, अक्षिकूट शोथ, मल एवं मूत्र पीतवर्ण के, अविपाक,

पांडु रोग के भेद-

(१) वातज, (२) पैत्तिक, (३) कफज, (४) सन्निपातिक, (५) मृद्भक्षणज। जब किसी रोग का कोई विशिष्ट कारण भी होता है तब उसी कारण के नाम पर उस रोग का एक विशेष भेद मान लेते है। मृत्तिका भक्षण भी पाण्डु की उत्पत्ति कर सकता है। ऐसे कारणो की विशिष्ट चिकित्सा से ही वे रोग ठीक हो सकते है। विशिष्ट कारणत्व प्रदर्शनार्थ ही मृद्भक्षणज पाडु, द्विष्टार्थ संयोगज छर्दि, कृमिज हृद्रोग आदि का वर्णन है। यूं तो मृत्तिका से भी दोषो का ही प्रकोप होकर पांडु होता है परन्तु उसमे मिट्टी से अन्नवह स्रोतस्थ असंख्य अंकुरो मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है जिससे धातुओ का पोषण नहीं हो पाता। इसीलिए इसकी चिकित्सा मे आमाशय एवं आन्त्रों को विरेचनादि क्रियाओं से शुद्ध करना एक आवश्यक कार्य हो जाता है। सुश्रुत ने 'मृत्तिकाभक्षण' को कारणों में गिना है, परन्तु तज्जन्य पाण्डु को एक पृथक् भेद के रूप मे नहीं लिखा है। चरक ने 'मृत्तिका-भक्षणजन्य पाण्डु' को पृथक् लिखा है और उसकी एक विशिष्ट सम्प्राप्ति एवं चिकित्सा का भी वर्णन किया है।

पाण्डु रोग के लक्षण

वातिक--

१. त्वचा-रूक्ष, मूत्र-कृष्ण एवं नेत्र-अरुण वर्ण के। २. तोद, ३. कम्प, ४ आनाह, ५. भ्रम।

पैत्तिक--

१. मूत्र, पुरीष, नेत्र पीत वर्ण। २, दाह, ३ तृष्णा, ४ ज्वर, ५-द्रव मल प्रवृत्ति, मल पीताभ।

कफज--

१. त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख, श्वेत वर्ण के। २. कफ प्रसेक, ३. तन्द्रा, आलस्य, ४ श्वयथु, ५. शरीर गौरवता।

सान्निपातिक--

१. रोगी-क्षीण, २. हतेन्द्रिय, ३ हृल्लास, छर्दि, ४. क्लम, अरोचक, ५. ज्वर, तृष्णा।

मृज्जन्य--

१. अक्षिकूट, कपोल, भ्रू मे शोथ। २. पाद, नाभि, मेढ्र, मे शोथ। ३. उदर मे कृमि, ४. अतिसार-सरक्त एवं सकफ।

-श्री. शिवचरण ध्यानी बी. आई. एम. एस.,
आयुर्वेदाचार्य, ऐच. पी. ए. (जाम.),
आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर।

बाल आक्षेप की सफल चिकित्सा

श्री वैद्य अमरनाथ शर्मा

आजकल भारत मे एक प्रथा सी चल पडी है कि कोई भी साधारण असाधारण रोग हो प्रथम दृष्टि इन औघड पंथियो सयानो की तरफ पडती है। वह श्रीमान भूत असिव चंडी आदि का प्रकोप बता कर रोगी के अभिभावको को निरर्थक प्रयोगों द्वारा खूब ठगते है और रोग उत्तरोत्तर उग्ररूप धारण कर रोगी की जीवन लीला समाप्त कर देता है।

आज के प्रसंग मे आप को बिलकुल ताजी आप-बीती गाथा सुनाता हूं। गत १५ दिसम्बर की बात है। पड़ोस मे ही नन्ने भाई की पौत्री जिसकी आयु केवल २२ दिन की ही थी रुग्ण हुई। अक्षेप पड़ने लगे। बच्ची पुनः पुन. हाथ पांव ऐंठती तथा मुंह मे झाग आते। अभिभावक इसे कोई भूत बाधा समझकर सयाने साहिब को बुला लाए। उन्होने अपने निरर्थक प्रयोगादि किये परन्तु अवस्था बिगड़ती गई। फिर दूसरे सयाने साहिब का आधान किया। उन्होने भी तावीज़ गंडे इत्यादि दिये और कहा इसे चंडी चुडैल का प्रकोप है, औषधि चिकित्सा न कराना अन्यथा अधिक कुपित हो जावेगा। फलतः रोग ने उग्रतमरूप धारण कर लिया। संयोगवशात् सायकाल को नन्ने भाई मुझे मिले और बच्ची की दीन दशा का वर्णन करते हुए कहने लगे वैद्य जी हमारी पौत्री की दशा अत्यन्त शोचनीय है। हम तो उसके जीवन का भरोसा छोड चुके हैं नितांत मरणासन्न है अब तो प्रतिक्षण दौरे पड़ रहे हैं तथा विलकुल अचेत है। मैने कहा चिकित्सा नहीं कराई तो उत्तर दिया वैद्य जी चंडी चुड़ैल का प्रचड प्रकोप है दवा से क्या होगा? मैंने तुरन्त उत्तर दिया अज्ञानी मनुष्य इन सयानो की थोथी बातो पर विश्वास करके चिकित्सा नहीं कराते तथा रुग्ण को स्वत' ही मृत्यु मुख मे धकेलते है। मैंने उन्हे स्थानीय कई उक्त प्रकार के केस सुनाए जिस मे सयानो आदि के ढकोसलो से मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुए कई आक्षेप ग्रस्त रुग्ण बालक उचित औषधि चिकित्सा से स्वस्थ हुए है। चूंकि वह बच्ची के जीवन से निराश होचुके थे अतः मेरे द्वारा सान्त्वना प्राप्त होने पर रात के ७ बजे ही मुझे बुलाकर लेगए। मैंने जा कर निरीक्षण किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि बच्ची को प्रबल अजीर्णजन्य आक्षेप हैं। पेट फूला हुआ तथा बार-बार छिछड़ेदार दुर्गन्धित पतला मल आता था जो अजीर्ण का प्रत्यक्ष सिगनल था। मैंने फौरन वस्त्र से बच्ची के दोनो भुजदण्ड बंधवा दिये (रहस्य-भुजदण्ड बंधन से आक्षेप मे सद्यः लाभ होता है)। एक वस्त्र में जातीफल बांध कर दक्षिणदंड मे वंधवा दिया (रहस्य जातीफल गले या बाहु मे धारण करना इस रोग मे लाभप्रद है) इस से दौरे कुछ कम हुए। उदर संशोधनार्थ पेट पर एलुआ तथा मार्जन (साबुन) का लेप किंचिदोष्ण कर करा दिया तथा उदर सेकते रहने का आदेश किया। दो माशा एरण्ड तैल किंचिदोष्ण जल मिला कर थोडा २ करके मुंह मे डाला गया। इन प्रयोगो से १-१॥ घंटे बाद २-३ बार खुल कर दस्त हो गए जिसमे काफी परिमाण मे फटा फटा दूध तथा दुर्गन्धित मल था (भली प्रकार से उदर संशोधन हो गया) अवस्था बदलती गई वह बच्ची जिसे नितात मरणासन्न समझे थे प्रातः तक बिलकुल नीरोग हो गई। दौरे बिलकुल खत्म हो गये। उदराध्मान वार वार अजीर्ण के दस्त उपसर्ग भी समाप्त हो गए। बच्ची पूर्ण रूपेण सचेत तथा स्वस्थ होकर माता का दुग्धपान स्वत. ही करने लगी।

—श्री वैद्य अमरनाथ शर्मा
चमरौआ (रामपुर) उ. प्र.

श्वेत प्रदर नाशक प्रयोग—

श्वेत प्रदर की एक अभूत पूर्व रोगिणी जिसकी अवस्था लगभग ३० वर्ष की थी उसे श्वेत प्रदर की शिकायत थी। सुवह विछावन से उठते ही प्रदर का स्राव वढ़ जाया करता था और दुर्वलता अधिक वढ़ गई थी जिसके कारण शिर तथा कमर में भी दर्द रहा करता था। और वह जीवन से हताश थी क्योंकि कई वर्षों से उसकी हालत खराब चल रही थी। एक दिन मेरे पास आई। मैंने उसकी चिकित्सा इस प्रकार करना प्रारम्भ किया—

(१) वृ० सोमनाथ रस, लवंग भस्म, प्रदरान्तक लौह, तीनों को एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की मात्रा-सुबह, शाम शहद से खाने का आदेश दिया।

(२) पुष्यानुग चूर्ण-१० वजे दिन में ३ माशा शहद से चटाकर ऊपर से चावल का धोवन पीने को कहा और ४ बजे दिन में भी यही आदेश दिया।

(३) लोध्रासव, चन्दनासव, दोनों एक मे मिलाकर २-२ तोला जल के साथ भोजन के ५ मिनट बाद दिन में दो बार।

(४) सुपारी पाक आधा तोला, चन्द्रप्रभा वटी १ गोली दोनों को मिलाकर गाय के दूध के साथ रात्रि को सोते समय दिया गया और दो हफ्ते तक यही क्रम चालू रक्खा गया। रोगिणी बिल्कुल स्वस्थ हो गई परन्तु रोग पुराना होने के नाते एक मास तक दिया गया और कब्ज रहने पर पंचसकार चूर्ण या अन्य विरेचक दवायें दूसरे दिन देते रहे। रोगिणी स्वस्थ हो गई।

—श्री हरीराम मिश्र वैद्य आयुर्वेद विशारद
जनता हितैषी औषधालय
फुटक पो० लोटन (वस्ती)

दन्त शूल नाशक—

काले धतूरे के बीज ६ माशा, काली मिर्च ३ नग, अपामार्ग की जड ६ माशा।

निर्माण तथा प्रयोग--सबका कपड़छन चूर्ण कर शीशी में रखले। २ रत्ती दवा जिस दांत में दर्द हो उसके विपरीत कान में पानी में घोलकर डालना चाहिए। कुछ ही देर मे दांत का दर्द दूर हो जायेगा।

अर्धावभेदक (आधा शीशी) पर—

गिलोय सत्व १ माशे से २ माशा तक गर्म दूध के साथ ८-१० दिन लेने से यह रोग कई वर्षों को छूट जाता है। ६ रोगियों पर प्रयोग किया सभी ने लाभ प्राप्त किया। एक रोगी साल में ३-४ बार ८-१० दिन तक इस दुष्ट रोग से परेशान रहता था लेकिन अब २ वर्ष से बिल्कुल ठीक है।

कफ संहारक भस्म—

मयूर पंख के केवल सुनहरी रेशे लेकर माचिस की तीलों से जलाकर भस्म बनाले और प्रातः, मध्याह्न, सायं शहद में मिलाकर चाटे। ३-४ दिन के प्रयोग से ही कफ का नामोनिशान भी न रहेगा और रोगी स्वस्थ होता नजर आयेगा। मात्रा-- ३-३ रत्ती।

डा. ओमपाल आर्य *H. L. M. S., A. S. V.*
कोहनूर आयुर्वेदिक औषधालय
हजरतपुर पूठरी, डा. मीरपुर (बुलन्दशहर)

\+ \+ \+

(१) प्रस्राविका गुटी -

एलुआ २॥ तोला, उलटकम्बल मूल १छटांक, गृंजन बीज १ छटांक, अपामार्ग पंचाग ढ़ाई सेर, पलाशमूलत्वक् आध सेर, मूली बीज १ छटांक, द्रावक आधा पाव, दशमूल आध सेर, मैंथी बीज

दो छटांक। विनौले की मज्जा दो छटांक, द्रावक एलबालुक तथा बिनोला मज्जा को छोड़ सब द्रव्यों को यवकुटकर १६ गुणा पानी में पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर बस्त्रपूत कर कड़ाही में पुन. पकाते हुए घनसत्व प्रस्तुत करें और ४-४ रत्ती की गोली बना उल्लिखित विधि से प्रस्राबक कषायानुपान से प्रयोग करें।

सावधानी—

प्रस्राविका गुटी का सगर्भावस्था में भूल कर भी कदापि प्रयोग न करें। यत: प्रस्राविका का स्रावण कार्य में आशुकारी होने के कारण ही स्राविका नाम धरण किया गया है। यह मासिक धर्म संबधित सब प्रकार की विकृतियों को ठीक करने के साथ साथ गर्भसंग (प्रसव विलम्ब) में भी जब कि "एलोपैथिक चिकित्सक अर्गट पिट्यूटी आदि के प्रयोग से निराश होकर शल्य क्रिया (आप्रेशन) के लिए उद्यत होता है" ४-६ मात्राओं में भी आश्चर्यजनक कार्य करती है अत: ध्यान में रखकर ही इसे प्रयोग में लें।

(२) प्रस्राविक क्वाथ—

इन्द्रायण बीज, उशवा, मकोय, सोया, शरपुंखा, सौंफ की जड़, शाहतरा, लटजीरा, कलौंजी, हंसराज, मंजिष्ठा, काले तिल। सब द्रव्य समान भाग लेकर यवकुटकर रखें। मात्रा ६-६ माशा कषाय [illegible] विधि से प्रयोग करें। १ मात्रा में २ तोला पुराना गुड़ भी डालें।

(३) नारीकल्पतरु—

[illegible] भस्म ३ तोला, रामठ २ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २ तोला, कीकर निर्यास २॥ तोले, अभ्रक भस्म शतपुटी १ तोले, कान्तलौहभस्म १ तोले, एलबालुक २ तोले, ताम्रभस्म १ तोला। कीकर निर्यास रामठ एलबालुक को कुमार्यासव, दशमूलारिष्ट और अशोकारिष्ट १-१ तोला में खरल कर शेष सब भस्मों को मिलाकर उक्त आसवारिष्टों की ३ प्रहर तक भावना दे घोटते रहें। तत्पश्चात् २॥ रत्ती की गोली बना छाया में सुखा लें। उल्लिखित विधि से इन तीनों योगों का प्रयोग महिलाओं के लिए उत्तम सिद्ध हुआ है।

—आचार्य श्री रामकृष्ण शर्मा 'कौशिक'
चिकित्साधिकारी आयुर्वेद महनपुर (बातसूर)
अलवर राजस्थान

श्वेत एवं रक्त प्रदर पर—

अरहर जिसकी हम दाल बनाकर खाते हैं उसी पौधे की हरी पत्ती १ तोला लेकर १ छटांक जल में पीसकर कपड़े से छान लें और उस शरबत में अगर श्वेत हो तो शुद्ध गाय के घी की ७ या ६ बूंद डाल दें रोज सुबह शाम दें। अगर रक्त प्रदर हो तो उस शरबत में शुद्ध सरसो का तेल ७ या ६ बूंद डाल दें। यह दोनों प्रदरों को एक सप्ताह के भीतर ठीक करता है। तेल गरम मसाला अम्ल एवं उष्ण तथा वातज चीजों से परहेज रक्खे।

—श्री रामकुमार मिश्र G. A. M. S.
सतानन्द औषधालय चौक डुमरांवा, शाहाबाद।

विपकटा पर—

यह हाथ की उंगलियों में होता है। उंगली में जोरदार जलन, चटका चलना, नींद नहीं आने देना उंगली मोटी हो जाती है। निम्न दवा अनुभूत है—

बावची ६ माशे ठन्डे पानी में भिगो दें। २ घंटे भीगने पर वह फूलकर लाल से सफेद हो जायेगी। उसको सुबह शाम नीम अजवायन के उबाले हुए पानी से साफ करके पट्टी बांध दें। ३-४ दिन में फायदा नजर आ जायगा और करीब १ सप्ताह में बिल्कुल ठीक हो जावेगा।

—श्री वैद्य चिरञ्जीलाल गर्ग,
घूंघरी (अजमेर)

राल

श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य

राल एक गोंद है। बबूल आदि के गोंद की तरह यह भी पेड के तने से रस के रूप में निकलती है। और सूखने पर राल बन जाती है। पंसारियो के यहां से खरीदी जा सकती है। आयुर्वेद मे राल को तुरीय, ग्राही, रूक्ष व शीत वीर्य बताया गया है।

जले पर लगाने के लिये इसका मलहम बनाया जाता है। राल को लोग आग के शोले दिखाने के काम मे नाटक और तमाशो मे मे काम लाते है। साबुन मे काम मे लाया जाता है। यही राल बिगड़े हुए पित्त के कारण पैदा होने वाली बीमारियो मे बडी लाभदायक औषधि सिद्ध होती है।

सग्रहणी मे—पेट मे वायु बनना, भोजन का न पचना भोजन जैसे का तैसा पाखाने की राह निकल जाना और बार-बार दस्त लगना आदि इस बीमारी मे होते है। रोगी दिनो दिन दुर्बल होता जाता है। उसमे प्राकृतिक संकोचन शक्ति की कमी आ जाती हैं। क्योंकि आतो मे छाले आदि पड़ जाने के कारण उनकी क्रिया शक्ति क्षीण हो जाती हैं। ऐसी बीमारी मे राल आंतो के छाले और घावो को ठीक करके आतो को शक्ति देती हैं।

संग्रहणी मे राल का चूर्ण २ माशे, इन्द्रयब का चूर्ण १ माशे और अनार के छिलके व दाने का चूर्ण १ माशे की खुराक मानकर दिन मे ऐसी चार खुराके तीन-तीन घंटे बाद ताजे पानी के साथ ले और पथ्य मे मट्ठा पिये। एक सप्ताह के अन्दर फायदा होता है।

पित्त विकार पर—मानव शरीर मे पित्त अग्नि का काम करता है। इसके विपरीत (विगडने पर) होने पर शरीर की धातुऐं रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र मे उष्णता बढ़ जाती है। और फिर अन्तर त्वचा (म्युकस मेम्बरेन) में सूजन आ जाती है। इससे भोजन के पोषक तत्वो को ग्रहण करने की शक्ति मंद पड़ जाती है। कभी कभी वह नष्ट भी हो जाती है। अर्थात् इस पित्त की खराबी के कारण बहुत सी खराबिया पैदा होजाती हैं।

शरीर के ताप व आतो की खराबी—पित्त विकृति मे पित्त द्वारा उत्पन्न गर्मी बढ़ जाती है और उससे रक्त पतला पड जाता है। रक्त मे भी ताप बढ़ जाता है, फिर वह रक्त कहीं न कहीं से बह निकले ऐसी अवस्था पैदा हो जाती है। आयुर्वेद मे ऐसे स्रावो को रक्तपित्त के नाम से पुकारा जाता है। पित्त का प्राकृतिक कार्य शरीर के भीतर भोजन के साथ मिलकर उसे हजम करना और फिर उसके द्वारा शरीर में तेजोमय शक्ति को उत्पादन कर देने का होता है। किन्तु बिगड़ने पर पित्त भोजन के साथ न मिलकर रक्त मे मिलने लगता है और तब उसकी अधिकता के कारण रक्त बाहर निकलने लगता है। ऐसी बीमारियो में नाक से खून जाना, पाखाने मे रक्त जाना, मुख से खखार वा उल्टी मे खून जाना अथवा गिरना तथा कभी--कभी स्त्री पुरुषो के मूत्रेन्द्रियो से भी रक्तस्राव होता है।

प्रमेह और प्रदरस्राव में राल का चूर्ण १ माशे, सफेद चंदन वा बुरादा १ माशे और ईसबगोल की भूसी २ माशे, सबको मिलाकर इस एक खुराक औषधि को ताजे पानी के साथ लेने से निश्चय ही लाभ होता है।

प्रमेह या गरमी की बीमारी—पुरुष या स्त्री की मूत्रेन्द्रिय से सफेद चिकनी धातु का गिरना, पेशाब, जलन चिलकन, बारबार पेशाब को जाना पड़े फिर भी हाजत बनी रहे, इस बीमारी से बीमार कमजोर व काला पडता जाय उस अवस्था मे राल बहुत फायदा करती है। शरीर को ठडक पहुँचाती है, घाव भरती है और रक्त को शुद्ध करके जीवन

शक्ति बढ़ाती है।

अर्श—बवासीर में जाने वाले खून को रोकने के लिए राल का चूर्ण २ मासे व असली नागकेशर २ माशे पीसकर एक पुड़िया बनाले। इस औषधि को सुबह दोपहर व शाम को तीन बार ताजे पानी से लें। बहुत ही शीघ्र लाभ होगा।

राल का मलहम—राल की रोचक, शमन करने वाली तथा ठंडी शक्ति का उपयोग जलने के ऊपर भी किया जाता है। राल का मलहम जले हुये घाव को बड़ी शीतलता पहुँचाता है और जले हुए स्थान को शीघ्र ही प्राकृतिक अवस्था में ले आता है।

मलहम बनाने की विधि इस प्रकार है—

तिल का तेल १६ तोले लेकर खूब गरम करें, पूरी उतारने लायक गरम करले। फिर नीचे उतारकर उसमें ४ तोले राल डाल दें। राल उसी में गल जायगा। एक नाद में ठंडा पानी भर कर रख लें। और उसी में यह तेल डाल दें तथा पानी को धीरे-धीरे हिलाते जायें। कुछ देर बाद इस पानी के ऊपर सफेद मक्खन की भांति का एक मलहम एकत्रित होता जायगा। थोड़ी थोड़ी देर में यह ठण्डा पानी बदलते जावें तो इससे मलहम अधिक गुणकारी बनेगा। यह मलहम न भरने वाले घाव, गूमड़, बवासीर, भगन्दर और छोटे-बड़े घाव सब पर उपयोगी है।

छोटे बच्चों को बार बार पाखाना होता हो, पाखाने में रक्त जाता हो, कांच बाहर निकल आती हो उस दशा में राल का चूर्ण १ माशे को धनियां के २ तोले रस (ताजे) के साथ देने पर बड़ा जल्दी लाभ होते देखा गया है।

खून की उल्टी होती हो या छाती के भीतर कोई घाव हो गया हो इनमें राल का चूर्ण १ माशे को मोर पंख के आग की राख एक रत्ती भर मिलाकर गुलकंद के साथ प्रात: मध्याह्न व सायं लेने से आराम होता है।

आंतों पर राल का असर उसके विशिष्ट प्रभावकारी गुणों के कारण फायदेमंद देखा जाता है। राल को आयुर्वेद में तुरीय, ग्राही रूक्ष व शीतवीर्य बताया गया है। राल आंतों में जाकर अपने इन गुणों के कारण वहां ऐसी क्रिया पैदा कर देती है कि उससे आंतों में चिपकी हुई कच्ची आंव का परिपाक हो जाता है। पाचक रस छोड़ने वाली ग्रन्थियाँ विजातीय तत्वों से मुक्त हो कर अपना अपना कार्य करने लगती हैं। साथ ही दूषित कृमियों का नाशक होकर आंत शुद्ध हो जाती है। इस प्रकार राल एक अत्यन्त लाभकारी आयुर्वेद औषधि है।

—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य आयुर्वेद रत्न
४५ शनि गली, जूनी, इन्दौर।

(३) नारु तथा उसके अंडों को नष्ट करने के लिए सुबह-शाम शङ्ख भस्म ६-६ रत्ती घृत के साथ १५ दिन खावें।

ट्राइकोसेफेलस डिस्पार-

ये कृमि धुंधले रंग के, आकार चाबुक की तरह होता है। नर कृमि की लम्बाई १॥ इन्च तथा मादा नर से कुछ बड़ी होती है। ये कृमि उन्डुक और बड़े अंत्र मे पाये जाते हैं। यह कृमि भोजन के साथ मुख द्वारा आक्रमण करते हैं।

रोग—कल्पना है कि उपांत्र प्रदाह या पाण्डु इसी कृमि द्वारा उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—

इसमें थाइमाल, चीनोपोडियम का तेल, कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि प्रयोग किए जाते हैं।

ट्रेमैटोड्स-

ये कृमि अधिकतर उष्ण कटिबन्ध और समशीतोष्ण कटिबन्ध में मिलते हैं। इन कृमियों के मुख्यतः ४ समूह हैं जो क्रमशः फुफ्फुस, यकृत्, अंत्र तथा रक्तमेह व्याधि उत्पन्न करते हैं। इन कृमियों के मुख तथा एक या अधिक शोषण इद्रियाँ होती हैं। अंत्र दो शाखाओं में विभक्त होती हैं। ये कृमि शरीर के जिस अंग मे आक्रमण करते हैं वहीं रोग उत्पत्ति करते हैं।

स्किस्टोसोमा-

इन प्रकार के कृमियो की तीन जातियां है। यह कृमि जल के साथ मुख द्वारा आक्रमण करता है।

(१) स्किस्टोसोमा बिल हार्जिया—इसका चय काल ३ से १२ सप्ताह है। यह कृमि मूत्र मार्ग के रोग उत्पन्न करता है। इससे रक्तमेह व्याधि फैलती है।

(२) स्किस्टोसोमा मेनसनी—यह कृमि अत्र विकृति कराता है।

(३) स्किस्टोसोमा जापानिकम्—इन कृमियों की आक्रमण की प्रथमावस्था में ज्वर, शीतपित्त, रक्त मे अम्ल रंगेच्छु श्वेताणु बढ़ना। द्वितीयावस्था में अंत्र और प्रवाहिका के लक्षण तथा तीसरी अवस्था में यकृत्प्लीहा वृद्धि, पाण्डु, जलोदर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार के कृमि ११ से १५ मि० मी० लम्बे और १ मि० मी० चौड़े होते हैं। नर तथा मादा कृमि अलग अलग होते हैं। नर से मादा कृमि कुछ बड़े होते हैं किंतु डोरी सदृश होते है। इनके अंडे १६० माइक्रोन लम्बे और ६० माइक्रोन चौड़े होते हैं।

चिकित्सा—

इन कृमियो के लिए टारटार एमैटिक (Tartar ematic) विशेष लाभदायक है। इसका अतःक्षेपण भोजन के दो घण्टे बाद करते है। अंतःक्षेपण कर लेने के कुछ घण्टे बाद लवण जल (Saline water) का अंतःक्षेपण करें। इस तरह सप्ताह में कम से कम तीन बार करे। पूर्ण क्रम बारह अंतःक्षेपणो का है। कुल मिलाकर २० से ३० ग्रेन औषधि देनी चाहिए। मल परीक्षा द्वारा अंडो की जांच करते रहना चाहिए।

कृमिरोग से बचने के लिए सावधानियां-

आंतो में मल जमा होना ही इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण है इसलिए ऐसी वस्तुये कभी नहीं खाना चाहिए जिससे कब्जियत पैदा हो—जैसे अधिक खाना, मिठाई खाना, सड़े और गले खाद्य पदार्थों का सेवन अहितकर है। यदि कुछ विकार पैदा भी हो जांय तो एनिमा या जुलाब लेकर पेट साफ करना बहुत लाभकारी है।

—श्री पं० केशवदत्त शर्मा एम० एस-सी०
आयुर्वेदाचार्य, लेक्चरर स्टेट आयुर्वेदिक कालेज,
लखनऊ

पारतोषिक प्राप्त द्वितीय लेख—

कृमि रोग

श्री. शेखफय्याज खा आयुर्वेद शास्त्री, विशारद

मानव अपने शरीर में अनेकों प्रकार के कृमि पोषित करता है। यह मनुष्य स्वयं भी नहीं जानता। अज्ञानता आलस्य तथा गन्दगी की टेवों से शरीर में अनेकों कृमि हो जाते हैं। ग्रामीण जनता मे यह रोग अधिक है क्योंकि शरीर पर स्वच्छता का ध्यान न रखने से, सिरके बालो के अतिरिक्त कपड़ों मे भी जुंए पड़ जाती हैं। यह तो साधारण सी खराबी है परन्तु लोग चटोरेपन तथा मल वेग रोकने और शौच के अनियमित होने की परवाह न करने पर कृमि रोग में ग्रसित हो जाते हैं। उदर का मल आतों और आमाशय मे अनेक प्रकार के कृमि उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार के कृमि द्वारा शरीर विकार पर विचार किया जायगा। शास्त्रीय मत के अनुसार निम्न पक्तियां देखिये—

> क्रिमयस्तु द्विधाप्रोक्ता वाह्याऽभ्यंतरभेदत ।
> वहिर्मल कफासृग्विड जन्म भेदाश्चतुर्विधा. ॥

शरीर के बाहर तथा भीतर दो प्रकार के कृमि होते है। शरीर के बाहर के मल (स्वेद आदि)से तथा मल, रक्त कफ आदि से भी चार प्रकार के कृमि होते है इनके और भी २० प्रकार के भेद है।

आयुर्वेद मतानुसार ७ प्रकार के कृमि मलद्वारा कफ द्वारा ६ और रक्त से उत्पन्न ७ प्रकार के होते हैं।

मल और कफ द्वारा उत्पन्न कृमि पक्वाशय आमाशय और आतो मे. होते हैं। इनकी उत्पत्ति के मुख्यत' निम्नाङ्कित कारण हैं-

(१) भूख न होते हुए भी भोजन करते रहना

(२) नित्य मीठी और खट्टी वस्तुये खाना।

(३) कढ़ी, रायता, राव आदि पतले पेय अधिक खाना।

(४) भोजन करते ही सो जाना। और तनिक भी श्रम न करना।

(५) दिवास्वप्न की आदत होना।

(६) हलवा, रबड़ी, मिठाई गुड़ आदि मीठी वस्तुये खाना।

(७) विरुद्ध प्रकृति वाले भोजन खाने से, दूध दही साथ, दूध व मास साथ में या मछली के साथ खाना।

(८) सूअर आदि का मांस अधिक खाने वालों को भी एक प्रकार का कृमि विशेष ट्रिकनी (Trichinoe) रोग भी होता है।

(९) शाक तरकारियां आदि बिना धोये खाना।

(१०) बच्चो को रेत खाने की आदत होना जिससे बच्चों के कृमि शीघ्र होते है।

कृमि उपद्रव के सामान्य लक्षण (चिह्न)-

छोटे बच्चों में—

(१) रात को सोते हुए दांत पीसना, (२) मुंह से हर समय झाग निकालना, (३) लार गिरना, (४) सोते हुए अचानक चौंक पड़ना, (५) नाक को मलना, (६) गुदा व मूत्र स्थान खुजाना। अधिक छोटे शिशु तो झाग निकालते हैं और रात को रोते रहते है। (७) उलटे होकर पेट के बल सोते है। (८) मिट्टी खाने की आदत भी होती है।

बडे लोगो मे—

(१) सोते मे दात पीसना, जैसे कोई चीज पीस रहा हो। (२) नींद में मुंह से पानी गिरना। प्रातः मैला सा सफेद चिह्न बहते पानी के सूखने से हो जाता है। (३) भोजन से अरुचि, (४) मुख से दुर्गन्धि, (५) उदर में थोडा थोड़ा दर्द सा रहना (६) वमन की इच्छा बनी रहना (७) औरतो को भी मिट्टी खाने की आदत बनी रहना, स्त्रिया पत्थर, कंकर, कोयले, मुलतानी मिट्टी खाती है।

आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथी तथा एलोपैथी सब विचारों से निष्कर्श निकालने पर मुख्यतः

निम्न कृमि के प्रकार माने गए हैं। इनसे मिलते जुलते अन्य कई भेद हैं पर मुख्य ये है—

(1) *Round worms* (केंचुए)—लम्बा गोल प्रत्येक सिरे पर नुकीला होता है। इनका स्थान छोटी

चित्र ९
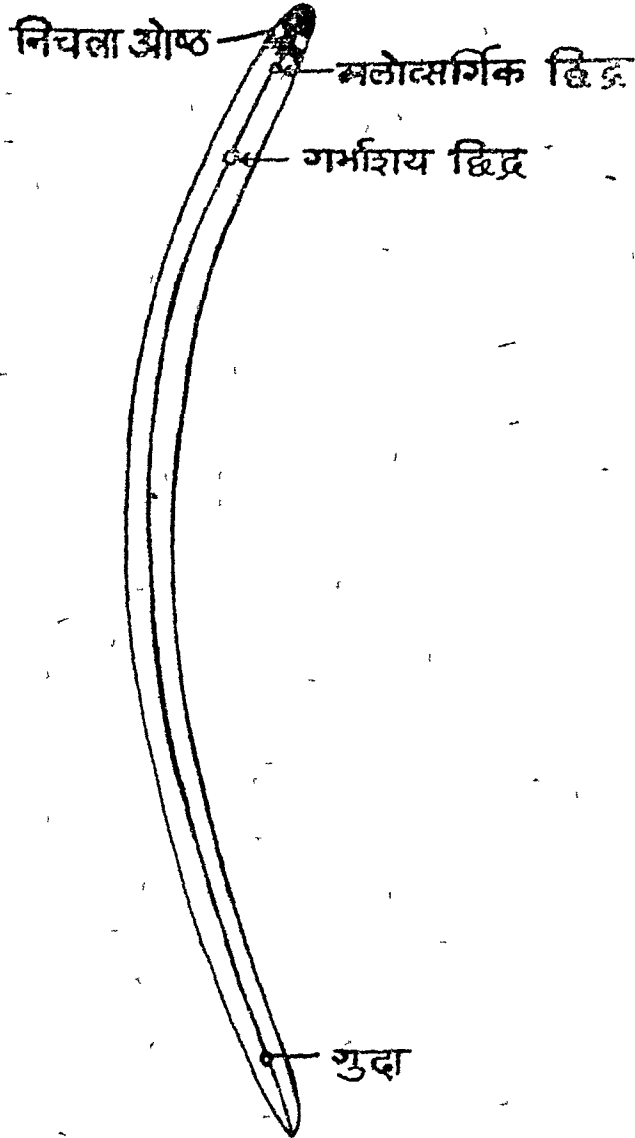
केचुए (Round worms)

आंत है। लम्बाई इसकी ४ से ६ इञ्च और किसी के इससे भी लम्बा होता है। जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वमन, अतिसार, अरुचि आदि रहते हैं। कभी कभी जब कृमि छोटी आंत से आमाशय में आजाते हैं तो वमन का वेग होजाता है और कभी वमन से भी निकलते है। ज्यादातर गुदामार्ग द्वारा ही निकलते है। तब किसी किसी के दोनों मार्गो से निकलते है परन्तु जब इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। जब ये आंतो में काटते हैं तब बालक नींद से चौंक कर उठते हैं। पेट के बल पड़े रहते है।

कभी कभी ७ से १२ इंच लम्बा होता है। नर कृमि मादा से २-३ इंच छोटा होता है। इनका रंग भूरा या लाल होता है। इन पर धारियां भी होती हैं।

(2) *Thread worms*–ये कीड़े पतले धागे की तरह होते है इसलिए इनको थ्रेड वर्म कहते हैं। ये छोटे ४ या ६ मिलीमीटर तक होते है। इनमें भी मादा कृमि १०-११ मिलीमीटर तक लम्बा होता
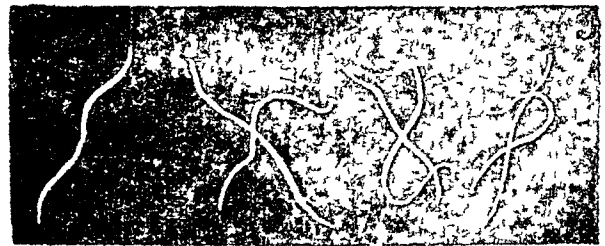
चित्र १०

है। यह बड़ी आंत के अंतिम छोर से गुदा के निकट तक होते हैं। छोटे बालको में पहले ये कृमि ही होते हैं। ये आंतो में अनेक अंडे दे देते हैं। और बड़ों में भी पाये जाते है। इसके अंडे १५ दिन में ही पूरे लम्बे हो जाते है। और मल द्वारा निकलते रहते हैं। बच्चे रात को नींद नहीं लेते भूख नहीं लगती, चिड़चिडे हो जाते हैं। पीले से कमजोर हो जाते हैं।

ये कीडे साधारण विरेचन द्वारा भी निकलते हैं।

(३) कद्दूदाने (*Hook worms*) घनी आबादी वाले भागों में ४० प्रतिशत इसके रोगी पाये जाते हैं। इसको कद्दू के बीज की तरह चपटा होने के कारण इस नाम से पुकारते हैं। इनकी संख्या १० से बीस और किसी किसी को कई सहस्रों एक ही मनुष्य में पाये जाते हैं। यह आंतो में काटता है।

इसकी अधिकता वाला रोगी किसी काम को दिल से नहीं करता, सुस्त बेचैन सा रहता है। निकम्मा सा रहता है परन्तु आंतो से इसकी सफाई होने के बाद वही मनुष्य फिर फुर्तीला और स्वस्थ दिखाई देता है। विद्यार्थियो या युवाओ मे इस प्रकार की सुस्ती पाई जावे तो कारण ढूंढ़ना चाहिए। इस के दोष वाला रोगी अशक्त हो जाता है। उसको कई रोग भी पकड़ सकते है।

प्रतोद कृमि का अण्डा

अंकुश कृमि, आन्त्र मे चिपके हुए।

चित्र ११
कद्दाना
Hook worms

आमाशय में दर्द सा रहता है। त्वचा पीली, मानसिक सुस्ती और मिट्टी और चूना खाने की आदत भी रहती है।

(4) *Tape worm*—(स्फीत कृमि)—चपटे कृमि, वद्दाने की यह बड़ी जाति भी कही जाती है। कोई इनको इसी नाम से पुकारते है। परन्तु इनकी यह किस्म अलग होती है। इसकी लम्बाई को ध्यान से देखने पर बनावट संधियुक्त दिखाई देती है। इसके टुकड़े अलग अलग वद्दू के बीजों की तरह होते है।

यह पूरी लम्बाई मे ५ से २० गज तक माना गया है। कुछ अन्य प्रकार का लम्बा और भी बड़ा होता है। इसका प्रत्येक संधीदार भाग स्वयं एक अलग जीव भी होता है। मल के साथ इसके टुकड़े निकलते रहते हैं। और इस प्रत्येक टुकडे में इनके अडे पैदा करने की शक्ति है। यह गंदा जीव खाद द्वारा खेत में पहुच जाता है और सब्जियो आदि द्वारा मनुष्यो में रोग बढाता है या घास द्वारा पशु, चौपायो के शरीर मे जाकर अंडे दे देता है और असंख्य कृमि उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार के कृमि का रोगी, किसी भी आयु का हो सकता है। अक्सर देखा गया है कि बालक खूब खाते है परन्तु इस पर भी दुबले बने रहते हैं। इस कृमि के उपद्रव पर शरीर में ऐंठन, तृषा आदि के चिह्न पाये जाते हैं। अधिक खाने की आदत होती है। इनका निवास स्थान छोटी आंत है।

(5) *Trichinoe* ट्रिकनी—मांसाहारियों में जो सूअर का मांस अधिक खाते हैं उन्हें ऐसे रोग कृमि द्वारा दुःख भुगतना पड़ता है। ये कृमि आंतो
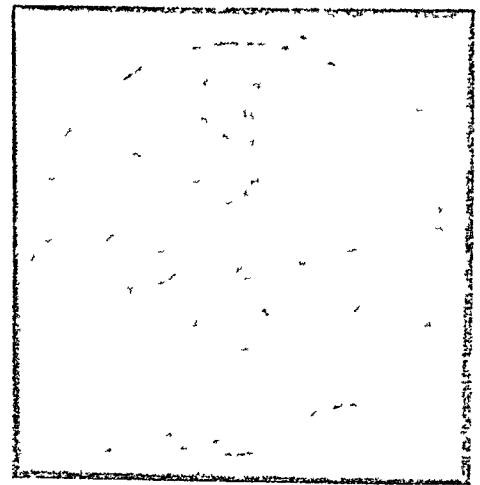
चित्र १२
मांस के स्थित रुद्ध
धान्यांकुर (trichina Spiratis) कृमि

के अतिरिक्त स्नायुमंडल मे अधिक उपद्रव करते हैं। स्नायु पीड़ा तथा आंखो के नीचे सूजन होती है। ये तनिक परिश्रम मे हांफने लगते है।

कृमि रोग पर डाक्टरी प्रयोग

(१) छोटे बच्चो को दोपहर को अरण्डी का तेल आयु तथा शक्ति के अनुसार देना चाहिए। उसी शाम को सेण्टोनिन (Santonin) मे शक्कर मिलाकर दें जिसे सुगमतापूर्वक बालक पी सके। दूसरे दिन प्रात. तथा मध्याह्न को भी ½ ग्रेन सेनटोनिन देना चाहिए। तीसरे पहर अरण्डी का तेल देना चाहिए। इस समय में २-३ दिन तक रोगी को हरा शाक नहीं देना चाहिये। साधारण शोरबा

चावल आदि देना ही ठीक होगा। इससे उदरस्थ सब कृमि मर जायंगे।

इस दवा के प्रयोग के समय मूत्र पीला आता है और पीला ही दिखाई देता है। परन्तु कोई हानि नहीं होती। शीघ्र ही यह प्रभाव जाता रहेगा।

जो बालक लम्बाई में कम बढ़ रहे हों उनका निदान करने पर यदि कृमि हों तो यह दवा दी जाती है और दोष हट जाते हैं। शरीर स्वस्थ होकर फुर्तीले तथा चुस्त हो जाते हैं।

(२) कद्दूदानो के लिए Mag-Sulph या Epsom Salt और थाईमोल (Thymol) देना चाहिए। रात को एप्समसाल्ट देने पर प्रातः मल विसर्जन के पश्चात् थाईमोल देना चाहिए। खुराक कम तथा नर्म दी जाय। थाईमोल दिन में २ बार देने के पश्चात् फिर एप्समसाल्ट दिया जाय। थाईमोल की खुराक देने के पश्चात् दाहिनी करवट लिटाना चाहिये। भोजन बिल्कुल न दिया जाय। अंतिम बार जब आंते साफ हो जावे तो चाय या दूध थोड़ी मात्रा में देना चाहिए। थाईमोल देने के दिन शराब या मांस आदि दिया जायगा तो विष की तरह हानिकर होगा इसलिए ध्यान रखना चाहिए।

थाइमोल को सूक्ष्म करके प्सूल में भर लेने से ठीक रहेगा। थाईमोल की खुराक आयु के अनुसार इस प्रकार है—

१ से ३ वर्ष वाले को	७ ग्रेन	प्रति खुराक
४ से १० ,,	,, १६ ,,	,,
११ से १५ ,,	,, ३० ,,	,,
१५ से २० ,,	,, ४५ ,,	,,
२० वर्ष से ऊपर ,,	६० ,,	,,

(३) कद्दूदाने के लिए Chenopodium ५ बूंद प्रति खुराक (५ वर्ष आयु के बालकों को कम) प्रतिबार शक्कर मे २ घण्टे के अन्तर से देना चाहिए। संध्या को Epsom salt देना चाहिए।

(४) टेपवर्म के लिए—चिकित्सा से पूर्व २ दिन पहिले से हलका भोजन, मॉडो या चावल का शोरबा देना चाहिए रोगी लेटा रहे। पहले प्रातः एरण्ड तेल पिलाना चाहिए। फिर दिन भर कुछ भी नहीं देना चाहिए। दूसरे दिन ५ वर्ष आयु वाले को ½ ड्राम (३० बूंद), ओलीरेसिन आफ मेल फर्न (Oleoresin of male fern)—यह बुरे स्वाद की दवा है। इसलिए शोरवे में मिलाकर देना चाहिए। २ घण्टे बाद एरण्ड तेल देकर भी रोगी बिल्कुल लेटा रहना चाहिए। फीतेनुमा कृमि का मुंह निकलने पर यह रोग फिर नहीं होगा। इसका ध्यान रखना चाहिए।

कृमि पर होम्योपैथिक प्रयोग

टेपवर्म—

(१) रोगी को २ दिन तक हलका भोजन दूध आदि दे या अच्छा हो भूखा रखा जाय। फिर तेज विरेचक दवा द्वारा आंतों की सफाई करे। फिर ताजा एक्ट्रेट Male ferr १ ड्राम दूध से देवे।

(२) Pomegranate root bark—अनार मूल की छाल ३ औंस को १२ औंस जल में क्वाथ बनावे। फिर ¼ रहने पर २ औंस १ घण्टे के बाद देते रहे।

चित्र १२
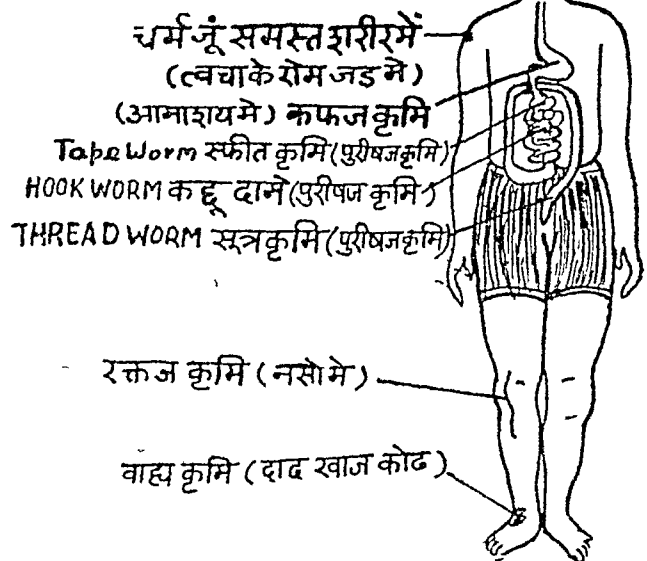
(३) Pumpkin seeds—को कद्दू के बीज से घोटकर मिला दें। कुछ घण्टे पड़ा रहने के पश्चात् इस एमलशन को शक्कर मिलाकर पिलादें। इस कृमि का सर जब तक न निकले कुछ कालान्तर में फिर इलाज चालू किया जाय।

(४) Santonin—एलोपैथी की तरह होम्योपैथी वाले भी इसे प्रयोग करते हैं। ½ ग्रेन २ वर्ष के बच्चे को दें।

होम्यो इन्जेक्शन–एकोनाइट, कल्केरिया कार्ब।

कृमि रोग की आयुर्वेदिक चिकित्सा–

आयुर्वेदिक औषधियाँ अनेक हैं और परीक्षित हैं। साधारण कृमि तो विरेचन के साथ निकलते हैं।
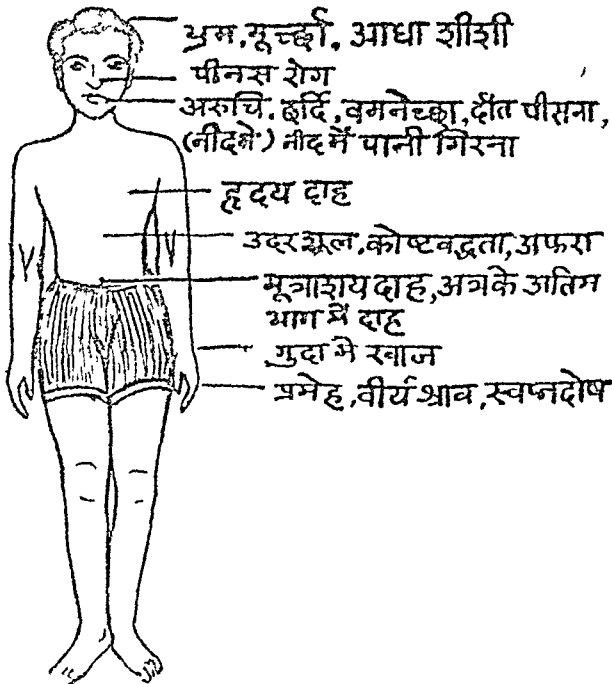
चित्र १४

कृमिरोग में ध्यान देने योग्य मुख्य सुझाव–

कृमिरोग मे निदान करना कुछ कठिन सा है। पुराने रोगी और बड़ी आयु वाले तो स्वयं कह भी देते हैं परन्तु छोटी आयु वाले के लिए वैद्य को सावधानी से निदान करना चाहिए।

शिशु जब दूध पीने ही फेंक दे, मुख से झाग निकाले तो समझना चाहिए कि छोटे कृमि हो गये हैं।

जब वमन और अतिसार दोनों साधारण दवा से शमन न हों तो वैद्य घबरा जाते हैं परन्तु कृमि का इलाज करने से उसी समय सफलता मिलती है।

एक मोची के लड़के को पहले अतिसार हुआ। एक वैद्यराज जी ने स्तम्भक ग्रुप की दवाएँ दी, परन्तु वमन होने लगे और अतिसार बंद न हुए। एमेटीन के इञ्जेक्शन से अतिसार बन्द हुये परन्तु सप्ताहान्तर में उसके शरीर पर फुंसियाँ निकल आईं और फिर वमन तथा अतिसार होने लगे। मूत्र की मात्रा भी कम हो गई। हैजे के लक्षण दीखने लगे परन्तु मैंने पहली बार रोगी को देखा तो ज्ञात हुआ कि जीभ बड़ी मैली और बाजरी के दाने की तरह छाले जीभ पर थे। मैंने उसे कृमिकुठार रस की टिकियाँ दी उससे उसे लाभ हो गया।

इसी तरह बड़े आयु के रोगी पर भी भूल हो सकती है। उक्त रोगी का पिता कबीरदास मोची भीनमाल मेरे एक मित्र वैद्य के पास सरदर्द का इलाज कराने लगा। २० दिन तक कोई लाभ न हुआ तो वैद्य बन्धु ने मुझे बताया कि क्या किया जाय। उसकी जीभ का मैल स्पष्ट बता रहा था कि कोष्ठ शुद्धि की आवश्यकता है। मैंने वैद्य बन्धु से कहा कि जब तक पेट साफ न हो और कोई दवा न दो तथा अधिक दिन की कोष्ठबद्धता से अनुमान कृमि का करना चाहिए। वास्तव में ३ तोला अरण्डी के तेल मे १० बूंद तारपीन की डालकर दी गई। दूसरी बार में कृमि बाहर आगये उनमे छोटे और अनेक कीड़े थे।

कोष्ठ की शुद्धि होने के बाद रोगी का सर भी दुखना कम हो गया। पूरी नींद आने लगी और १० दिन में ही वह प्रसन्न दिखाई देने लगा।

आयुर्वेदिक औषधियां—

(१) पहले मिठाई (गुड़) खिलानी चाहिए कि कृमि इकट्ठे हो जाय। फिर दही में कबीला(कमेला)

खिलाना चाहिए। फिर दूसरे दिन एरण्ड तैल तारपीनयुक्त देकर उन कृमियों को बाहर निकाला जा सकता है।

(२) पहले रोगी को स्नेहन करावे, फिर तीव्र विरेचन देकर पेट साफ करें। इतना होने पर सफलता मिल जाती है। नहीं तो कृमिनाशक भोजन देने के २ दिन बाद फिर विरेचन दे। इससे बेहोश या मृत कृमि बाहर आ जायंगे।

(३) पुरीषज कृमि के लिये मुस्तकादि क्वाथ देना चाहिये-। नागरमोथा, मूसाकर्णी, देवदारु, त्रिफला, सहजना, पीपल का क्वाथ मिलाकर।

(४) अजवाइन, वायविडङ्ग, गुड मिलाकर देने से कृमिनाश होते हैं।

(५) विडंगादि चूर्ण, विडंगासव का प्रयोग हितकर है। पुराने कृमि रोगों के लिए अचूक है।

(६) खुरासानी अजवाइन ६ माशे वासी पानी में पीस कर गुड़ के शर्बत में पिलाना चाहिये।

(७) नीम तथा ढाक के पत्तों को मधु के साथ दिया जाय।

(८) काले जीरे का चूर्ण मधु में मिलाकर देना चाहिए।

(९) सवेरे गुड़ का शर्बत और कृमिकुठार रस की गोली देकर फिर तीन घण्टे बाद अजवाइन खुरासानी पीसकर पिला दो। फिर ६ घण्टे के बाद अरण्ड तेल से कोष्ठ शुद्ध कर लेना चाहिये। मृत कीड़े निकल जायेंगे।

(१०) खट्टे अनार के वृक्ष की छाल और उसकी जड़ का क्वाथ बनाकर पीने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(११) कालीमिर्च और इन्द्रायण मूल पीसकर सेवन करने से कृमि नष्ट होते हैं।

(१२) कांदे का रस पिलाने से भी कृमि (बालकों के लिये) नष्ट होते हैं।

(१३) जैतून तेल (Olive oil) गुदा में लगाने से बालकों के चुन्ने कृमि मर जाते हैं।

(१४) इन्द्रायण फल की गिरी गर्म कर पेट पर बांधने से सब कृमि मर जाते हैं।

(१५) सूर्यमुखी पुष्प के बीजों की फंकी देने से भी कृमि मर जाते हैं।

(१६) वायविडंग और गोरखमुण्डी १-१ तोला पीसकर लेने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(१७) अनार मूल २ तोले आध सेर पानी में क्वाथ बनाकर पाव भर रहने पर छान कर रखें। ५ तोला निराहार प्रातःकाल ले। आध घण्टे के अन्तर से ४ बार इसी प्रकार दे। उसके पश्चात् २॥ से ५ तोले तक एरण्ड तेल दें। अरण्ड तेल २ बार में करके दें, (किसी किसी को वमन भी हो जाते है। इसलिये दो बार में दें) इस प्रकार लम्बे कृमि भी मल द्वारा निकल जाते हैं।

(१८) अमीर तबियत लोगों के लिये चिकनी सुपारी ३ माशे, नींबू का रस १ तोला में (सुपारी का पिसा चूर्ण) मिलाकर चाट ले। ३ घण्टे पश्चात् मेगनेशिया की खुराक दें। इस प्रकार कृमि निकल जाते है। किसी को दो या तीन दिन लगातर देने पर लाभ होता है।

(१९) सोंठ, विडंग, पीपल, मिर्च, हिंगु, सेंधानमक, सौचल नमक, चित्रक, हरड़, बच, हल्दी, गुग्गुल, कूठ, लहसुन, ईसबगोल, जीरा, इन्द्रयव, अजवाइन, पलास बीज, कत्था, करञ्ज बीज और शुद्ध गन्धक सब समान भाग लेकर २-२ रत्ती की गोलियां बना ले। इन गोलियों के सेवन से सब प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते है।

(२०) वायविडंग, त्रिफला, निशोथ के चूर्ण को ४ माशे के अनुमान से देते रहे। कृमिरोग नष्ट होते हैं।

(२१) त्रिफला, त्रिकुटा, निशोथ के चूर्ण को ४ माशे की मात्रा से दें। कृमिनाशक है।

महात्मा देवीदास जी के अनुभव प्रकाश के कुछ नुस्खे जो वास्तव मे परीक्षित है इनको भी अजमाइये।

(२२) एलुआ १ रत्ती पर गुड़ लपेट कर निगल जावे तो कृमि नष्ट होते है। सप्ताह तक प्रयोग करें।

लक्षण तो नहीं हैं ? इस प्रकार न ध्यान लगाने पर अन्य असाध्य रोगों से दोष बढ़ाने वाला कृमि रोग प्राणघातक भी बन जाता है।

साधारण अवस्था में भी देखा गया है कि कृमि के कोई लक्षण नहीं भी हों तो निम्न रोग वालों को यदि विरेचन की दवा अभयादि मोदक, अश्वकुंचकी, इच्छाभेदी रस या नाराच रस दिया जाता है तो कृमि निकलते हैं—

(१) त्वचा रोग, (२) सर दुखना, (३) यकृत शोथ, (४) वमन, (५) नित्य बना रहने वाला अजीर्ण, (६) मसूढ़ों से रक्त आना, मुखदुर्गन्धि, (७) प्रसूत ज्वर और वमन वेग की अवस्था में, (८) अपस्मार रोग में, (९) साधारण ज्वर आदि में, और (१०) आमवात रोग में।

ऐसी अनेक अवस्थाओं में भी कृमि विरेचक दवाओं से निकल आते हैं। मैं तो पहले किसी भी हठीले रोग में निदान करते समय इनका ध्यान अवश्य रखता हूँ।

कृमिघ्न शास्त्रीय योग -

(१) कृमिघ्न क्वाथ (रस तन्त्रसार)—

अनार की जड़ की ताजी छाल अधकुटी ५ तो., पलास बीज चूर्ण ६ माशे, वायविडंग चूर्ण १ तोला, जल १० तोला कलईदार पात्र में १॥ घंटे तक उबाले। शीतल होने पर छानकर बोतलों में भर दे। (चौथाई रहने पर)।

उपयोग मात्रा—६ माशे मधु ५ तोले क्वाथ में मिलाकर प्रातः प्रति २ घंटे के अन्तर से दे। ४ बार दिया जाना चाहिए, भोजन आदि नहीं देना चाहिए।

कषाय रस की औषधियां प्रायः अग्नि को मंद करती हैं इसलिए इनको थोड़ी मात्रा में प्रयोग करना हितकर है।

(२) कृमिकुठार रस (भा. भै. र., र. रा. सु. कृमि)—

कपूर ८ भाग, इन्द्रयव, त्रायमाणा, अजमोद, विडंग, शिंगरफ, शु. बछनाग, केशर प्रत्येक १-१भाग सबको चूर्ण कर भागरे के रस में १ दिन घोटकर १ भाग ढाक बीज मिलाकर मूसाकर्णी और ब्राह्मी के रस से घोटकर ३-३ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावे।

१ से २ वटी धतूर रस या जल से प्रयोग करे।

(३) कृमिमुद्गर रस (भा भै. र, र. रा सु. कृमि)—

शुद्धपारद १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, शुद्ध कुचला ५ भाग, ढाक के बीज ६ भाग, सबका चूर्ण करके उसमें से ३ रत्ती आयु, बलानुसार शहद मिलाकर चटावें। ऊपर से मुस्तकादि क्वाथ पिलाया जाय।

इससे कृमि तो नष्ट होते ही है आंतो के विकार भी ठीक हो जाते है।

(४) कृमिघ्न गुटिका (र. त. सा)—

शुद्ध कुचला ५ तोला, वायविडंग, अजमोद, अतीस, पीपल, इन्द्रयव सब १-१ तोला, घृतकुमारी के रस में १२ घंटे घोट कर १ रत्ती या इससे छोटी (मूंग दाना के समान) गोली बनावे।

३ दिन तक प्रतिदिन २ बार १ से २ गोली दी जांय। चौथे रोज जुलाब दिया जाय।

(५) कृमिघातिनी गुटिका (आ. वे प्र)—

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गधक २ तोला, अजमोद ३ तोला, वायविडंग ४ तोला, साडंगी बीज ५ तोला, तिन्दुक (तेन्दुवा) बीज ३ तोला, कज्जली बन जाने पर अन्य को भी घोटकर शहद से गोली बनावे। १ रत्ती की गोली १ से ३ एक खुराक में उचित अनुपान से दे।

इससे कृमि के सभी उपद्रव शांत हो-जाते हैं।

—श्री शेख फय्याज खां आयुर्वेद शास्त्री
M. D. S. विशारद, भीनमाल (जालोर)

अंशुघात तथा उसका प्रतिकार

श्री नन्दलाल शर्मा वैद्य

इस रोग को साधारण भाषा में 'लू लगना' कहा जाता है। यह हैजा, चेचक आदि रोगो की तरह का ही भयानक रोग है जो कि वैशाख-ज्येष्ठ में प्राय. होता है।

वैशाख तथा ज्येष्ठ इन दो मासों में सूर्य अत्यन्त तीव्रता से तप्त होता है। सूर्य के तीव्र ताप से जब वातावरण का तापमान प्रकृति से अधिक हो जाता है तो वह मानव मस्तिष्क को भी क्षुभित कर देता है। मानव मस्तिष्क प्रकृति की समावस्था में ही स्वस्थ रह सकता है। जब प्रकृति मे ही असाम्यता आ गई तो मानव कैसे स्वस्थ रह सकता है। अस्तु।

जिस प्रकार शीताधिक मे विकार होते हैं उसी प्रकार उष्णताधिक्य से भी मस्तिष्क की तापकोषायें अनियंत्रित हो जाती है। दिन में सूर्य की तीव्रता से शरीर मे एक प्रकार का विष शरीर मे उत्पन्न होता है। यह विष रक्त में मिलकर मस्तिष्क के ताप-केन्द्र को अव्यवस्थित कर 'लू' इस सर्व शरीर व्यापि रोग के लक्षणों को उत्पन्न करता है।

भूम्नाऽयमुग्रातप हेतुत सदा
स्यादंशुघात. खलु दुर्बलादिषु।

यह रोग प्रायः निर्बल लोगों को हुआ करता है। क्योंकि बलवान व्यक्ति के स्वेद द्वारा क्षार तथा जल निकलता रहता है। अतः वे इससे स्वाभाविक रूप से सुरक्षित रहते हैं। किन्तु दुर्बल मनुष्य में स्वेदा-भाव के कारण उसका शरीर रूक्ष रहता है। जो थोड़ा स्वेद निकलता है उसे धूप शोषित कर लेती है। फलतः उनके ताप-केन्द्र मे विकार आकर कार्य-प्रणाली मे अन्तर आ जाता है।

धूप में नंगे सिर चलने, नंगे पांव चलने, झुक-कर काम करने आदि कारणों से सूर्य का ताप सीधा आता है अतः लू शीघ्र लगती है।

जिन लोगों का स्वेद निकलना बन्द हो गया है, मूत्र न्यून आता है, एक स्थान पर रहकर काम करना पड़ता है, जो चाय-काफी आदि का सेवन अधिक करते है उन लोगों को यह रोग शीघ्र लगता है।

अन्य रोगों की तरह इस रोग के होने से पूर्व भी इसके पूर्वरूप प्रकट होते हैं। जिनमे सम्पूर्ण शरीर में हड़फूटन, मन में अस्थिरता, किसी कार्य को मन नहीं करना, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना, शरीर में दाह होना, खाने में अरुचि, शिर का घूमना. आंखों के सामने अन्धेरा छा जाना, अत्य-धिक प्यास लगना तथा पानी पीने की इच्छा आदि लक्षण होते हैं।

आयुर्वेद मे 'लू' के लक्षणों को तीन अवस्थाओं मे विभक्त कर दिया है। १–शीता, २–साधारणी, ३–तीव्रा। दूसरे शब्दों मे लू की तीन अवस्थाएं हैं– १. साध्य, २. कष्टसाध्य, ३. असाध्य।

लू के प्रकट लक्षणों मे पूर्वरूप के सभी लक्षण उग्र रूप से दीख पड़ते है। नाड़ी की गति मे विष-मता, श्वास कठिनता, स्पर्शहीनता, मूर्च्छा, अन्तर्दाह, हृदयावसाद, नाड़ी की मन्दता, वमन की तीव्र इच्छा, विवर्णता, त्वचा में रूक्षता, नेत्रों का रक्तवर्ण हो जाना, प्रलाप, शिरःशूल, तीव्र ज्वर आदि लक्षण होते हैं।

रोग की तृतीयावस्था-तीव्रावस्था के आ जाने पर शरीर का ताप १०६ से ११० तक हो जाता है। श्वास लेने मे कठिनता, मन मे अस्थिरता, पुतली का संकोच, फिर विस्तार, श्वास-तीव्रता, संज्ञाहीनता, शिथिलता आदि लक्षण उपस्थित होते है। यह 'लू' की असाध्य-अवस्था है।

नीलिका हस्तपादस्य धमन्याः क्षण लुप्तता।
विक्षेपनञ्च गात्राणाँ मरणमाशुघातिन.॥

अर्थात् मरणासन्न अंशुघात रोगी के हाथ पांव नीले पड़ जाते है, नाड़ी धीरे धीरे लुप्त होती जाती है, सम्पूर्ण शरीर मे आक्षेप आते है। इन लक्षणों वाला रोगी नहीं जीता।

चिकित्सा--

'लू' की चिकित्सा दो प्रकार की है--

१. रोग प्रतिरोधक, २. रोग निवारक।

१. रोगप्रतिरोधक क्रिया--

इस रोग से बचने के लिये ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि मध्याह्न काल मे कहीं आना जाना न पड़े। स्कूल, कालेज तथा कार्यालयों मे इसी कारण छुट्टिया तथा समय का परिवर्तन किये जाते हैं। किन्तु सभी लोग ऐसे नहीं है जो दोपहर काल में आराम कर सके तथा छुट्टियां मना सके। उन लोगों के लिए आवश्यक है कि वे ग्रीष्म ऋतु मे अत्यधिक जल पीने का अभ्यास डाले जिससे कि शरीर में शीतलता तथा स्निग्धता बनी रहे। भोजन मे क्षारो का प्रभूतमात्रा में प्रयोग करना चाहिए। इन दोनों जल तथा क्षार से स्वेद निकलता है तथा शरीर का बाह्य भाग शीतल तथा स्निग्ध रहता है। यदि धूप में कार्य करने का अथवा चलने का अवसर प्राप्त हो तो सदा सिर पर पगड़ी या टोपी आदि अवश्य ही धारण कर बाहर निकलना चाहिए। साथ ही धूप मे चलते या काम करते समय बार बार छाया में कुछ विश्राम कर लेना चाहिए। निम्बू की शिकन्जी, किसी प्रकार का शीतल शर्बत, सन्तरे आम का रस आदि पीना चाहिये। यदि यह भी प्राप्त न हो तो कोरे मिट्टी के घड़े का शीतल पानी, दही की लस्सी, मट्ठा आदि पीना चाहिए। गर्मी की ऋतु मे बर्फ मिला पानी कभी भी प्रयुक्त नहीं करना चाहिए क्योकि इससे तृषा की वृद्धि होती है तथा शरीर को हानि करती है। अति तृषा यदि थोड़े पानी से शात न हो तो चाय दूध का प्रयोग करना चाहिए। इस ऋतु में वस्त्र शीत, ढीले तथा हल्के पहनने चाहिये।

इन उपायों का अनुकरण करने से इस रोग से मनुष्य सुरक्षित रहता है। फिर भी यदि 'लू' का आक्रमण हो ही जाये तो इसकी निवारक चिकित्सा करनी चाहिए।

२. रोग निवारक चिकित्सा--

रोग का आक्रमण होते ही चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिए। यथाशीघ्र वैद्य को बुलाना चाहिए। किन्तु यदि यह न हो सके तो रोगी के शरीर के वस्त्र तुरन्त उतार देने चाहिये। रोगी को सूर्य-किरणों से पृथक् शीतल छाया मे ले जाना चाहिए। रोगी को शोर-गुल, भीड़-भड़ाक से पृथक् रखना चाहिए। ताड या खस के पंखे को पानी मे भिगोकर हवा करनी चाहिए। रोगी अधिक तृषा के कारण पानी की बहुत मांग करता है अतः चन्दन, खस, शक्कर मिलाकर थोडा थोड़ा बार बार पिलाना चाहिए। एक बार मे अधिक नहीं पिलाना चाहिए। रोगी के मस्तिष्क पर पानी से भीगी पट्टी रखनी चाहिए।

१. यदि रोगी को मूर्च्छा आ जाये तो उसे मूर्च्छान्तकरस (नवसार तथा चूना समभाग मिलाकर) सुंघाना चाहिए।

२. शरीर को उत्तेजित तथा चैतन करने के लिए सारस्वतारिष्ट अथवा मृत संजीवनी सुरा का प्रयोग करें।

३. यदि शरीर मे दाह हो तो कच्चा आम भून कर शरीर पर मले अथवा बर्फ रगडे।

४. यदि आक्षेप आने आरम्भ हो जाये तो लक्ष्मीनारायण रस का प्रयोग करे। २ रत्ती रस को शर्बत में मिला कर देवें। अथवा प्याज का रस निकाल कर पिलावे या इसी रस की नस्य देवें।

५. रोगी को गुलकन्द से लघु विरेचन देना चाहिये जिससे कि शरीर की उष्णता निकले तथा रुचि लघुता की वृद्धि हो।

रोग मुक्ति के पश्चात् कुछ काल तक रोगी को पथ्यपूर्वक रहना चाहिए। पथ्य मे शीत, स्निग्ध, लघु पदार्थ, शर्बत, निम्बु, दाल भात, दाल फुलका, पालक का साग, आमले का मुरब्बा, हरे धनिये तथा पुदीने की चटनी का प्रयोग करें।

चाय, काफी, सुरा, मिर्च, तैल, तम्बाकू, गुड़ तथा अन्य तीक्ष्णोष्ण पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

—श्री नन्दलाल शर्मा वैद्य
सरहदी गेट, पटियाला।

चमड़ी के दाग

आयुर्वेदाचार्य डा० महावीर प्रसाद जैन बी. आई. एम. एस.
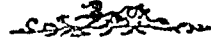
सफेद दाग को श्वित्र, धवलकुष्ठ, कच्चा कोढ़, सफेद दाग, फूल, फूलबहरी, वर्तमुन्तशिर चित्री, वगातिपल्लि, पाटराडाग, ल्यूकोडर्मा (*Lukodermah or Leucoderma*) ह्वाइट पेचेज आफ दी स्कीन (*white Patches of the skin*) ल्यूकोडरमिया (*Leucodermia*) विटिलिगो (*Vitiligo or Vitil-i go*) और मिलोनोडरमिया (*Melanodermia*) आदि नामों से पुकारा जाता है।

यह स्त्री पुरुषों की किसी भी उम्र में बाल युवावस्था एवं वृद्धावस्था में भी देखा जाता है। शरीर के अनेक हिस्सों पर सफेद रंग के दाग पाये जाते हैं जो कि बिल्कुल छोटे विन्दु के आकार के हो सकते है। अथवा शरीर के अनेक अवयवो पर आकार में विभिन्न बड़े बड़े दाग भी हो सकते हैं। दागो के किनारे अनियमित (*Irregular*)होते है। जिनके आसपास की त्वचा अति श्याम वर्ण की होजाती है।

रुग्ण व्यक्ति का शरीर अत्यन्त सुन्दर व दर्शनीय होते हुए भी श्वित्र कुष्ठ का जरा सा भी दाग पड़ जाने से वही व्यक्ति घृणित दृष्टिगोचर होता है। इसका लेख लौकिक साहित्य काव्यों में भी निम्न प्रकार मिलता है—

तदल्पमपिनोपेच्यं काव्ये दुष्ट कथञ्चन।
स्याद्वपु. सुन्दरमपि श्वित्रिण केन दुर्भगम्।।''

यूनानी मत के अनुसार—

यह खाल की एक प्रकार की गाढ़ी सफेदी होती है जो खाल की ऊपरी तह पर पैदा होती है। कभी एक ही अंग मे वा कभी कभी तो सारे शरीर पर फैल जाती है।

श्वित्र को बाह्य कुष्ठ के नाम से भी कहा है। इसीलिए इस रोग की उत्पत्ति मे कारण कुष्ठ रोग की उत्पत्ति के कारण है। जैसा कि 'आचार्य श्री वाग्भट्ट ने' अष्टांगहृदयम् में कहा भी है।

कुष्ठैक सम्भवं श्वित्रं। —अ० हृ० नि० स्था०

पूर्वजन्म के किए हुए पाप कर्म और इस जन्म मे भी पापकर्म वा दुष्कर्म की ओर प्रवृत्ति वा भाव, झूठ बोलना, कृतघ्नता, देवताओ वा गुप्त जनो की की निन्दा करना वा उनका तिरस्कार करना आदि से प्रेरित हुए वातादि दोष तिर्यग्गामी शिराओ (*Veins*) में पहुँचकर त्वचा (*Skin*) लसीका (*lymph*) खून (*Blood*) और मांस *Muscular tissue*) को खराब करते है। बाद मे बाहर निकले हुए ये दूषित दोष खाल मे विवर्णता पैदाकर देते है।

मूली, लहसन, सहजना, पोदीना, बनतुलसी, सफेद तुलसी, काली तुलसी उनको खाकर दूध का सेवन करने वाले को कोढ़ हो जाता है।

क्रमागत रीति से ठण्डी एवं गरम चीजो को खाना-ठण्डी चीज खाने के बाद एकदम गरम पदार्थ का सेवन करना या गरम के बाद सहसा शीतपदार्थ का सेवन करना या जिस जिस काल मे शीत का सेवन करना है तब उष्ण और जब उष्ण पदार्थों का सेवन करना है तब शीत अथवा वात कफ मे शीत और पित्त में उष्ण का सेवन करने वालो के यह रोग हो जाता है।

शहद, गुड़ की राव, मछली, मूली, मकोय, हल्दी, तिल इन सबको तादाद से ज्यादा सेवन करने वाले के अथवा मिथ्या आहार और बिहार विशेष कर संयोग विरुद्ध आहार लेने वालों को यह रोग होता है।

परस्पर संयोग विरुद्ध द्रव्यो को एक साथ मिला कर प्रयोग करने से एक तीसरी मारक वस्तु तय्यार हो जाती है जिससे प्राणीमात्र को भयायक हानि उठानी पड़ती है। संयोग विरुद्ध द्रव्य जैसे दूध के

साथ मछली, मांस, नमक, खटाई, सत्तू या शहद का प्रयोग, मछली के साथ-- खांड, मिश्री, चीनी, गुड और शहद का प्रयोग।

केले के साथ--मट्ठा, दही तथा वेल के फल का उपयोग।

गरम पानी व वर्षा जल के साथ—भिलावा, शहद का प्रयोग।

कासे के बरतन मे १० दिन तक रक्खे हुए घी का प्रयोग वा वरावर का घी शहद का मिले हुए का उपयोग जो कि असर मे जहर की तरह हो जाता है।

खीर के साथ—खिचड़ी का भी उपयोग करने से यह रोग हो जाता है।

संयोग विरुद्ध आहार जैसे मछली और दूध का एक साथ खाना क्यों कि मछली उष्णवीर्य होती है और दूध शीतवीर्य होता है। यह वीर्य की परस्पर विरोधिता के कारण ही खून को दूषित करते है। इसमें भी

"विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः"

अ० हृ० सू० स्था०

अर्थात् विशेपकर चिलीचिम नामक मछली को तो कभी भी दूध के साथ न खावे, यह मछली एक झिल्ली (*Mucous membrane*) से ढ़की रहती है। और उसके सारे शरीर पर लाल रंग की धारिया होती हैं। देखने मे यह रोरू मछली के समान मालूम होती है। प्राय. यह जमीन पर रेंगा करती है। इस मछली को दूध के साथ प्रयोग करने पर खून अथवा कब्ज से होने वाली वा अन्य कोई बीमारियां पैदा होती है। यहां तक कि कभी कभी मृत्यु तक हो जाती है।

अनुभवो से यह भी निष्कर्ष निकला है कि सफेद गुलाबी लाल ताम्रवर्णी चमडी के दाग रक्त की कमी होने से रक्त में विकार हो जाने के परिणाम स्वरूप भी होते हैं। जैसे किसी किसी के मोतीझरा, पेचिश, खूनी बवासीर, उपदंश (गर्मी) आदि के बाद भी रोगियों मे पाये गये हैं।

इस रोग में दोपो के कुपित करने मे सहायक कारण दिन में सोना, कसरत, स्त्रीप्रसंग का अत्यन्त सेवन करना, प्रकृति विरुद्ध वेग उल्टी, पेशाव तथा मल को धारण करना, डर, मेहनत और गर्मी से पीड़ित व्यक्ति का अचानक ठण्डा जल पीना और ठण्डी वायु का सेवन करना, पतले चिकने और अति गरिष्ठ पदार्थों का प्रयोग करना, खाद्य पदार्थों में नमक वा खटाई का ज्यादा उपयोग करना, विरुद्ध अन्न (जैसे मछली खाकर दूध पीलेना) अथवा दूध के ऊपर खटाई जैसे शाक, अचार, या नींबू खा लेना, उद्दालक (जंगली कोदों), जौ आदि नये अन्नों को दूध दही, मट्ठा, बेर, कुलत्थी, उड़द की दाल, अलसी का यूप मिला हुआ खाना या ऐसे ही अन्नों का पेट भर खाना सहायक कारण हैं।

खुजली, फुन्सी, कोढ़, वेदना, पित्त और चर्मदलादि रोग जो कि त्वचा से सम्बन्धित हैं रक्त के विकृत होने से ही होते है। सफेद दाग भी कुष्ठ का ही विभेद है जिसको बाह्य कुष्ठ भी कहा गया है। इसका उत्पत्ति कारण भी एकसा है जिसमें शरीर पर सफेद दाग दृष्टिगोचर होने लगते है। यह त्वचा मे रञ्जक वर्ण की कमी या अभाव से होते है।

सफेद दाग में होता यह है कि खून की केशिकाओ में विकार होने पर कोप आकार में बढ़ जाते है और इनके समीपस्थ वर्णोत्पादक कोषा भी ढ़ीले पड़ जाते हैं जिससे उनका तनाव घट जाता है। और त्वग्वर्णोत्पादक कोषाओं के कार्य में मन्दता या कमी आजाने पर रञ्जक द्रव्य कम बनने से वह फैल नहीं पाता है और उस स्थान पर रञ्जक वर्ण की कमी या अभाव से त्वचा का वर्ण वैवर्ण्य अर्थात् सफेद पड़ जाता है जिसे कि हम सफेद दाग कहते हैं। यदि उचित उपचार न मिल पावे और रोग हुए काफी समय हो चुका हो तो उन स्थानों के बालो के रञ्जक कण भी कम होने लगते हैं वा नष्ट हो जाते हैं। जिससे उन स्थानो के बालो का वर्ण भी सफेद हो जाता है।

श्वेत कुष्ठ भेद्--

श्वित्र कुष्ठ दो प्रकार के होते हैं। १–किलास

२–दारुण महर्षि "चरक" के मतानुसार तीस प्रकार अरुण नामक भी माना जाता है। "भोज" ने श्वित्र को दो भागों में बांटा हैं।

१–व्रणज जो किसी व्रण के मिथ्या उपचार के फलस्वरूप होता है। व्रणज श्वित्र के अन्तर्गत अग्नि से जले हुए सफेद दाग का भी आविर्भाव हो जाता है।

२–दोषज श्वित्र को पुनः दो भागों में विभक्त किया है। (१) आत्मज (२) परज के अन्तर्गत उपदंशज श्वित्र का भी समावेश होता है। चूंकि यह एक दूसरे के संस्कार वा स्पर्श से होता है इसी लिए यह परज कहलाता है।

भालुकि तन्त्र के मत के अनुसार धात्वाश्रित के विभेद से किलास को ३ भागों में विभक्त किया है। जब किलास का आश्रय मांस धातु होती है तब उसको वारुण कहते हैं। जब किलास का आश्रय मेदो धातु होती हैं तब उस श्वित्र कहते है और जब यह रक्ताश्रित रहता है तब उसे दारुण कहते है।

महर्षि चरक ने भी धात्वाश्रित वर्ण विभेद से कुष्ठ को ३ भागो मे बांटा है।

(१) वायु के कारण श्वित्र रक्त धातु में आश्रित रहता है। यह रूक्ष और लाल वर्ण होता है।

(२) पित्त के कारण श्वित्र कुष्ठ मांस धातु मे समाश्रित रहता है। यह कमल के पत्तो की तरह ताम्र रङ्ग का होता है। इसमें जलन भी होती है। यह रोमनाशक स्वभाव का होता है।

(३) कफ के कारण मेदो धातु में आश्रित रहता है। यह भारी होता है और इसमे खुजली भी आती है।

सफेद दाग	सीप
१. दोषानुरूप क्रमशः पृथक् पृथक् धातु में आश्रित रहता है।	१. यह सिर्फ ऊपरी त्वचा में ही होता है। रङ्ग सफेद दाग से हलका होता है।
२. प्रारम्भ में एक दाग ही शरीर के किसी भाग पर नजर आता है।	२. प्रारंभ में अनेक दाग विशेषतः छाती पर नजर आते है।
३. धीरे धीरे शरीर के अन्य हिस्सों पर भी नये निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं।	३. दाग जल्दी जल्दी बढ़ते है जो छाती तथा गर्दन की ओर फैलने लगते हैं।
४. दाग स्थान के बाल रोग पुराना हो जाने पर सफेद रङ्ग के प्रकट होते हैं।	४. दाग स्थान के बाल काले ही रहते हैं।
५. दागों के किनारे अनियमित शकल के होते हैं।	५. बहुधा गोल रूप मे होते है।
६. उचित उपचार मिल जाने पर भी देरी से फायदा होता है।	६. उचित उपचार हो जाने पर जल्दी ही ठीक हो जाते है।

सफेद दाग	कोढ़
१. यह दोषानुसार ३ प्रकार का होता है तथा धात्वाश्रित विभेद से भी ३ प्रकार का होता है।	१. यह १८ प्रकार का होता है जिसमें से ७ महा कुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ होते है।
२. इसमे दोष पृथक् पृथक् दूषित होते हैं।	२. इसमें तीनो दोष दूषित होते है।
३. यह रक्त, मांस, मेद धातु को ही विकृत करता है।	३. यह लसीका (Lymph) रक्त तथा मांस के साथ साथ खाल को दूषित करता है।

सफेद दाग	कोढ़
४. इसके कीटाणु का अभी तक पता नहीं चला है।	४. इसके कीटाणु का पता सन् १८७४ में लग गया था जिसको कुष्ठकीटाणु (Mycobacterium Laprae) कहते हैं।
५. यह उतना तीव्र स्पर्श संचारी नहीं है।	५. यह स्पर्श संचारी तो है ही साथ ही उग्ररूप धारण कर लेने पर संक्रामक भी हो जाता है।
६. पूर्वजन्मों के पापकर्मों के फलस्वरूप ही वंशज होता है।	६. रोग ग्रहण करने की आनुवंशिकता प्रायः पाई जाती है अर्थात् कोढ़ी की संतान को होने का डर रहता है।
७. स्थान शून्यता प्रायः नहीं होती है।	७. स्थान शून्यता हो जाती है। सूई चुभोने पर भी ज्ञान नहीं होता है।
८. प्रायः ऐसा नहीं होता है।	८. कुष्ट स्थान स्वेद रहित हो जाता है।
९. सूजन किसी किसी में ही देखने में आती है।	९. रोगी के हाथ, पांव, नाक, कान सूज जाते हैं।
१०. कोई अङ्ग गलकर नहीं गिरता है।	१०. हाथ, पांव की अंगुलियों में घाव हो होकर अङ्ग गल गलकर गिरने लगते हैं।
११. सूक्ष्म शारीर शास्त्र की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं दीखता है।	११. श्लेष्मिक झिल्ली (Mucous membrane) और वाततन्तुओं में गांठ पैदा हो जाती है।
१२. यह प्रायः शुष्क होता है।	१२. कुष्ठ पीड़ित स्थान से रस, खून तथा मवाद आदि आता है।
१३. दोषानुसार दाग स्थान पर त्वचा का वर्ण श्वेत, अरुण या ताम्र रंग का होता है जो देखने में भद्दा मालूम होता है।	१३. कुष्ठ स्थान का वर्ण श्वेत रंग का नहीं होता है। हां कुष्ठ पीड़ित स्थान भद्दा होने के साथ साथ व्रणित दृष्टिगोचर होता है।
१४. रोग पुराना हो जाने पर दाग स्थान के बालों का रंग भी सफेद हो जाता है।	१४. ऐसा नहीं होता है।
१५. दाग स्थान पर रंजक कणों की अल्पता होती है।	१५ प्रायः ऐसा नहीं होता है।
१६. दाग स्थान के किनारों पर वर्णाधिक्यता होती है।	१६. ऐसा नहीं होता है।
१७. प्रायः वंशवृद्धि की शक्ति नष्ट नहीं होती है।	१७. वंशवृद्धि की शक्ति नष्ट होने लगती है।
१८. दाग पीड़ित व्यक्ति शादी कर सकता है।	१८. कुष्ठ पीड़ित व्यक्ति को तब तक शादी नहीं करनी चाहिये जब तक कि इस रोग के कीटाणु पूर्णतः नष्ट न हो जावें।

रोग की साध्यासाध्यता–

वायु के कारण उत्पन्न सफेद दागों से पित्त से उत्पन्न सफेद दाग कष्ट साध्य होता है। पित्त के कारण उत्पन्न सफेद दागो से कफजन्य सफेद दाग

अति कष्टसाध्य होता है।

इसी प्रकार रक्ताश्रित सफेद दागों से मांसों में आश्रित सफेद दाग कष्टसाध्य होता है और मांसाश्रित सफेद दागों से चर्बी के आश्रित सफेद दाग अतिशय कष्ट साध्य होता है।

तीनों रंग के सफेद दागों में लाल से ताम्रवर्ण और ताम्र से श्वेत वर्ण का दाग कष्टसाध्य होता है।

जिस सफेद दाग के बाल सफेद न हुये हो, जो कि बहुत मोटा न हो अर्थात् ज्यादा गहरा अपना असर न रखता हो, प्रत्येक दाग एक दूसरे से अलग अलग हो तथा ज्यादा पुराना न हो साथ ही वह स्थान अग्नि से जलाया गया न हो तो वह श्वित्र साध्य होता है।

इनके अतिरिक्त जननेन्द्रिय अङ्ग हथेली तथा होठ मे उत्पन्न थोड़े दिन का भी श्वित्र असाध्य होता है। जैसा कि कहा भी है—

> अशुक्ल रोम वहलमसंसृष्टमिथो नवम्।
> अनग्निदग्धजं साध्य श्वित्र वर्ज्यतोऽन्यथा॥
> गुह्य प्राणी तलौष्ठेपु जातमप्य चिरन्तनम्॥
> —अ० हृ० चि० स्था०

यूनानी मतानुसार-

जब दाग स्थान पर लालिमा प्रतीत हो, दाग स्थान के बाल सफेद न हो और दाग स्थान ज्यादा सख्त न हो तो वह उपचार के योग्य है। यदि बहुत पुराना है और निरन्तर बढ़ रहा है तो उस स्थान को कष्टसाध्य जानना चाहिए।

इनमे जो असाध्य कहे है वह तो असाध्य हैं ही परन्तु जो साध्य होता है वह बदपरहेज करने से अथवा उसका उचित इलाज न होने पर या विपरीत चिकित्सा करने से अर्थात् दोषानुसार चिकित्सा न करने से वह भी असाध्य हो जाता है।

रोग की भयानकता--

कुष्ठ जो कि जल्दी ही असाध्य हो जाता है उसकी शांति के लिए जल्दी से जल्दी उपाय करना चाहिए जैसे कि जलते हुए घर को बुझाने के लिए तुरन्त कोशिश करते है।

इसलिए जो पुरुष रोग के प्रकट होने से पहले ही अथवा रोग की शुरूआत या नवीनावस्था में ही इलाज करा लेता है वह चिरकाल तक निरोगी रहता है।

जिस प्रकार छोटा सा पेड़ थोड़ी सी कोशिश से काटा जा सकता है उसी प्रकार नया रोग भी आसानी से थोड़े समय में ही ठीक हो जाता है। वही छोटा सा पेड़ यदि बढ़ जाय तो उसे काटने के लिए बहुत कोशिशे करनी पड़ती है। इसी प्रकार जब रोग बढ़ जाता है तो वह कठिनता से ठीक हो पाता है यहां तक कि वह कभी कभी तो असाध्य हो जाता है।

चिकित्सा--

इस रोग से ग्रसित रोगी को रोग मुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि रोग के उत्पत्ति कारणो को ध्यान मे रखकर अपना आहार विहार क्रिया कर्म ठीक रखे और जो इसमें पथ्य हो उसका अवश्य प्रयोग करे और जो अपथ्य रोग उत्पन्न करने मे सहायक कारण हो उसका उपयोग न करे।

प्रभु में ध्यान रख अपना आहार विहार क्रियाकर्म का पूरा ध्यान भी परमावश्यक है। क्योकि हम जो भोजन करते है उसका शोषण ११ फुट लम्बी आंतों के अन्दर होता है। यह भोजन सर्वप्रथम मुख में चबाया जाता है। मुख की लाला ग्रन्थिया भोजन पचाने के समय अपना लाला रस भोजन के रस में मिला देती है और भोजन अन्न प्रणाली के द्वारा आमाशय मे पहुँचता है। अन्नप्रणाली १५ इंच लम्बी होती है। अन्नप्रणाली आमाशय के संगमस्थान पर एक छिद्र होता है जिसके चारो ओर कुछ पेशी तन्तु अपने सकोचा से छिद्र बन्द कर देते है और भोजन के आने के समय वह छिद्र खुल जाता है। परिणामस्वरूप भोजन आमाशय मे पहुँचाता है। आमाशय शरीर के बाईं ओर एक मशक के थैले की भांति स्थित है जो पाचन कर्म का प्रधान अंग है। आमाशयगत रसो के द्वारा भोजन का पाचन होता है। इसके बाद भोजन पक्वाशय में आता है जहां कि अग्नाशय

रस उसमे मिलता है। इस प्रकार यहां पाचक रसो से सम्मलित भोजन जब छोटी अन्त्र में पहुँचाता है वहा इसका चूपण होकर रस से रक्त बनने के लिये यकृत मे चला जाता है और शेष भाग मल रूप में उत्सर्जित होता है।

इन सब बातों के बताने का कारण यह है कि यदि हमारा भोजन सात्विक है और इसके पाचक अंग सब ठीक हैं तो इसका साधारण रूप में पाचन होकर उसका शुद्ध खून बनता है। और यदि हमारा आहार शुद्ध नहीं है तो उसका रस भी शुद्ध न होने के कारण खून का वर्ण भी विवर्ण हो जाता है। उस वर्ण की अद्भुतता के कारण शरीर की खाल के नीचे स्थित रक्तवाहिनियों के द्वारा उनका पोषण होने के कारण वह विकृत रूप त्वचा पर दृष्टिगोचर होता है। और खाल पर दाग विकृत दोषानुरूप लाल, ताम्र वर्ण वा सफेद चित्तियां पड़ जाती हैं।

इन दागो से बचाना और पड़ी हुई चित्तियो या दागो को मिटाकर असली रूप में लाना साधारण चिकित्सक की सामर्थ्य के बाहर है। और यह भी ध्यान रहे कि ऐसे विषम रोग से छुटकारा न केवल खाने की दवा से होगा और न ही केवल लगाने की दवा से ही होगा।

आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा—अतः प्रयोगार्थ जो दवाइयां प्रयोग मे आती हैं वह प्रचूषित होकर शरीर से रक्त वाहिनियो के द्वारा पहुंचती हैं। और जहां जहां विकृति होती है उनका वहीं वहीं असर होना प्रारम्भ हो जाता है। और रोग अन्दर से बाहर आने के साथ साथ रोग आगे बढ़ने से रुक जाता है और नष्ट होता जाता है।

जो दवाइयां बाह्य प्रयोगार्थ प्रयुक्त होती हैं वह बाहर आये हुए रोग को नष्ट करने मे सहायक होती हैं। इस प्रकार हम देखते है कि अन्त. प्रयुक्त औषधियां रोग विमुक्त करने के साथ साथ रोग को आगे बढ़ने से रोकती है। इसके उपरांत ही रोग से छुटकारा दिलाती हैं।

इस रोग से ग्रसित रोगी को वह दवायें जो कुष्ठ रोग में व्यवहृत होती हैं वह सब ही दोषानुसार अथवा अवस्थानुसार इस रोग के रोगी के लिए लाभदायक सिद्ध होती हैं।

मानव सृष्टि की रचना के साथ साथ रोग से बचने, रक्षार्थ औषधियां आदि और आयुर्वेद की रचना भी समकालीन है। प्राचीन काल में जहां कुष्ठ रोग था वहां श्वित्रकुष्ठ का भी बोलबाला रहा है। और इसको पूर्वजन्मकृत दोषज मानकर इसकी उपाय शान्ति के लिए वेदों के मन्त्र सिद्धकर उनका उच्चारण किया जाता था। साथ ही दवाइयां भी शुभतिथि,शुभ नक्षत्र, शुभवार, घड़ी मुहूर्त में विधि विधानपूर्वक तैयार कर तब ही प्रयोग में लाई जाती थीं। जिनसे रोगी को पूर्ण आरोग्य लाभ मिलता था। वेदों में श्वित्र कुष्ठ सम्बन्धी अनेकों श्रुतियां तथा लेख पाये जाते है—

"आकाशपति! बृहस्पति! दिशाओं के स्वामी! अपने वर्षारूपी वाणों के द्वारा श्वित्रकुष्ठ से हमारी रक्षा करे। —अथर्ववेद

इससे यह स्पष्ट है कि जब वर्षा होती है तब तरह तरह के विष अमृत पृथ्वी पर उत्पन्न होते है। अलग अलग नक्षत्रो मे वर्षा की बूंदो के बरसने का विशेष महत्व होता है। जैसे स्वाति नक्षत्र मे जब पानी बरसता है तब उसकी बूंदे यदि हाथी के मस्तक पर पड़ जाती है तो वह गजमुक्ता बन जाती है। साप के मस्तक पर पडने पर वही सर्पमणि और मेंढ़क के मुख में पड़ जाने से वही बूंद दादुरमणि बन जाती है। और वही बूंद अगर मछली के मुख में पड़ जाय तो वह मुक्ता बन जाती है।

इसी प्रकार वर्षा से विभिन्न प्रकार की बनस्पतियां, काष्ठादिक औषधियां उत्पन्न होती है। उनमें से कुछ ऐसी होती है जिनमे श्वेतकुष्ठ को नष्ट करने की अतुल्य शक्ति होती है। सभी औषधियो को शुभ तिथि, बार, नक्षत्र मे ब्राह्म मुहूर्त मे लाकर ही औषधियां प्रस्तुत की जाती है। कुष्ठनाशक औषधिया प्रायः चन्द्रकिरणो में और स्वातिनक्षत्र में ही सिद्ध होती है। साथ ही यह चन्द्रकिरणों और ओस के प्रभाव से सुसंस्कृत होकर

गुणकारी सिद्ध होती है। इसका विधान आयुर्वेद ग्रन्थों में भरा पड़ा है जिससे उनका रोगनाशक प्रभाव कम नहीं हो पाता है और वह गुणकारी रहती हैं। अथर्ववेद में भी कहा है—

हे राम (हे हल्दी)। हे कृष्ण (हे भृङ्गराज) हे इन्द्रवारुणी (हे रंगने वाली ओषधियां)। तुम इस किलास (श्वित्र कुष्ठ का प्रकारान्तर) और पलित (श्वेतकेशों) को रंग दो। प्राचीन काल में श्वित्रकुष्ठ की चिकित्सा में वैद्यों में सर्वोपरि कुशल 'आसुरी' नामक यवन देश की स्त्री थी। वह श्वित्र कुष्ठ (किलास) को नाश करके त्वचा की विवर्णता को मिटा देती थी, जिसका उद्धरण अथर्ववेद में भी मिलता है।

'आसुरीचक्रे कथमेदं किलासं' भेषजं किलास नाशनम्।
अनिशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचाम्॥

सफेद दाग (फूलबहरी), कोढ़ में प्रयुक्त होने वाली आयुर्वेदिक औषधियां जो कि विभिन्न प्रकृति, लक्षण, कारण विकृति में विभिन्न प्रकार के मिश्रण प्रयोग से रोग को जड़मूल से नष्ट करने में सहायक होती हैं। निम्नलिखित हैं।

अभ्रक असगन्ध

आक—इसमें पीले रंग का राल जैसा पदार्थ रहता है। इसकी प्रधान वस्तु मुडेरीन (Muderine) नामक है जो कि ईथर व शराब में घुल सकती है। जल एवं जैतून के तेल में नहीं घुलती है। इसका प्रयोग कुष्ठ, क्षत, सफेद दाग और दूसरे चर्म रोगों मे होता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इन्डिया)

बबूल बहेड़ा बावची—इसके दाने कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ, क्षारीय प्रतिक्रिया युक्त बर्मोनाइन नामक वस्तु, एक प्रकार का तेल और ७० प्रतिशत मैंगनीज रहित से मिलकर बने हैं। (फार्माकोग्राफिया आफ इन्डिया-वोल्यूम सेकिंड) बृहद्दन्ती, चक्रमर्द (पवाड) यदि उसके पत्तों का विश्लेषण किया जाय तो इसमें कैथार्टिन की तरह की वस्तु तथा एक प्रकार की लालरंगने वाली वस्तु जैसी कि सनाय के पत्तों में होती है तथा कुछ खाने के पदार्थ भी पाये जाते हैं। यह विविध प्रकार के चर्म रोग, कुष्ठरोग, Psoriasis आदि में लाभकारी है।

चालमोगरा—मालिश से त्वचा को लाल बनाने वाला खाने एवं लगाने से कुष्ठ एवं चर्मरोगों मे लाभप्रद है।

चित्रक—चित्रकमूल का प्रयोग कुष्ठ मे उत्तेजक प्रयोगों के रूप में होता है।

चिरायता चोक दुर्गन्धखैर द्विगुण गन्धक जारित पारद,

देवदारु—यह पुराने चर्मरोगों मे तथा अधिक मात्रा में कोढ़ मे दिया जाता है। और क्षतस्थान पर भी प्रयुक्त होता है।

धत्तूरा एरण्ड फिटकरी विशुद्ध गन्धक गाण्डरदूब (गण्डदूर्वा) गुञ्जा (चिरमिटी) गूगल घियाकरंज हरताल हिंगुल सिगरफ हिंगोट हीरावोल हुलहुल इन्द्रजौ इन्द्रायण जटामांसी जवादिकस्तूरी।

कचनार—इसकी छाल में टैनिन रहता है। इसकी जड़ की छाल का तैयार किया हुआ काढ़ा विविध चर्म-रोग कुष्ठ और व्रणों में लाभदायक है। (मेटेरिया मेडिका आफ इंडिया)।

कचूर कटभी कठगूलर कनेर करंज कलिहारी कसीस कांतलौह कालानिशोथ—निशोथ की जड़ हरड़ के साथ कुष्ठरोग मे हितप्रद है। (मैटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

कालीजीरी कुटकी कूठ कुडा खर्पर खैर लक्ष्मीविलासरस नारदीय लाख लोहभस्म मजीठ मंडूर लौह मल्ल महानीम (बकायन)—इसमें राल जैसा पदार्थ शर्करा तथा टैनिन रहता है।

इसके पत्तो का स्वरस कुष्ठमे सेवन किया जाता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

मल्ल चंद्रोदय मुर्रा (मरोड़फली) कुष्ठरोग में हितप्रद है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

मैनफल नखीनली नागकेशर निर्मली बीदा निम्बतेल—तिक्त रस वाला, कृमिनाशक और उष्ण होता है जो कोढ़, पेट के कीड़े, बवासीर और पेशाब सम्बन्धी रोगो मे किया जाता है। दूसरे तेलों के साथ मिश्रित कर इसे चर्मरोग गलित कोढ़ के जख्मो पर प्रयुक्त किया जाता है। (मेटेरिया मेडिका आफ इण्डिया)

नीलातूतिया पद्माख पारद विशुद्ध पाठा पिप्पली भिलावा भूरी छरीला रसमाणिक्य राई रूपामाखी सम्हालू सिन्दूर सिहलक सोनामाखी स्रोतोजन शिला सिंदूर शिलाजीत शीशम ताम्रभस्म तालसिंदूर त्रिफला-(हरड़, बहेड़ा, आमला) तुम्बरु वनहल्दी बशलोचन वासा विषयोग मिश्रित चन्द्रोदयादिरस।

रोग के उत्पन्न होते ही इलाज प्रारम्भ कर देना चाहिये। चूंकि कर्ज और मर्ज दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। इसलिये ध्यान रखना चाहिये कि रोग के उचित इलाज में भी देरी न होनी चाहिये वर्ना रोग के विनष्ट होने से भी उतनी देरी के साथ साथ आर्थिक व्यय भी अधिक होता है।

बहुत से अज्ञानी तीक्ष्ण दवाइयां, दागना आदि प्रक्रियाओं से उपाड़, जख्म आदि कर लेते है। एक स्थान से दूसरे स्थानो पर होने पर चिकित्सको को ढूंढ़ते हैं। विज्ञापनीय संसार मे पड़कर धन, समय, आशा, विश्वास से भी हाथ धो बैठते है और इधर रोग बढ़ता हुआ सर्वाङ्ग श्वेत हो जाता है।

बहुत से अज्ञानी लोग केवल बावची, गंधक, चाल मोगरा, मिरच, कुछ जहरीली दवाइयो से रोग शान्त करने का दम भरते है। वह सब मिथ्या मृग मरीचिका है।

औषधि सागर के निदान चिकित्सा सागर मे आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथिक (Homeopathic), बायोकैमिक (Biochemic), एलोपिथक (Allopathic), नेचूरो पैथिक (Naturo pathy), जल, फल आदि चिकित्सा पद्धतियो मे गोते खाते, भ्रमण कर खोज, अनुभव हजारो रुपयो के व्यय पर सैकड़ो दवाइयों के मिश्रण तैयार कर प्रयोग कराते कराते मिश्रित तैयार होगया। इन औषधियों को विभिन्न रोगियो पर विभिन्न दागो पर अनेक औषधिया मिश्रित कर प्रयोग करने पर पूर्ण सफलता मिली।

दवा के प्रयोग से खाल का रग लालिमायुक्त (Reddish) हो जायगा। घबड़ाना नहीं चाहिये। इससे दाग स्थान के रक्त का दौरा बढ़कर रोग जड़ से मिटाकर आरोग्य लाभ प्राप्त होगा।

खून की कमजोरी वा सहनशीलता की कमी होने पर किसी किसी में किसी स्थान पर जलन, छाला सूजन अथवा लालिमा हो जाय तो घबड़ाना नहीं चाहिये। अपितु २-४ दिन के लिये औषधि प्रयोग रोक कर नारियल के तेल १ तोला मे कपूर ३ माशा मिलाकर लगाना चाहिये। उपरात औषधि प्रयोग निरन्तर जारी रखना चाहिये। इसका प्रत्यक्ष फल यह सामने आता है कि औषधि प्रयोग से दाग स्थान की खाल का रंग बदलता है और धीरे धीरे चित्तियां पड़कर खाल अपने असली रूप में आ जाती है।

पथ्य –

हल्के पदार्थ, पुराने जौ, पुराने गेहूँ, पुराने शालि चावल, मूंग की दाल, अरहर की दाल, मसूर की दाल, असली शहद, तीखे रस वाले शाक, परवल, तोरी, कड़वी तोरई, ककड़ी, खीरा, बड़ी करेली के फल, मकोय, नीम के पत्ते, लहसन, वाराहीकन्द, हुलहुल का शाक, पुनर्नवा, मेढ़ासिगी, पवाड़ के पत्ते, पके हुये ताड़ के फल, खैर, चित्रक, केशर, नागकेशर, जायफल, जवादि कस्तूरी, श्वेत चदन, करंज, पुराना घी, तिल, सरसो, नीम और हिंगोट का तेल, धूप सरल, देवदारु और अगर का तेल, गाय, गधा, भैंस, घोड़ा और ऊंट का पेशाब, क्षार कर्म, धूप का सेवन करना दोषानुसार हितकर है।

अपथ्य -

पापकर्म, वैश्यागमन, गुरुओ की निन्दा अथवा तिरस्कार करना, परस्पर स्वभाव विरुद्ध भोजन का प्रयोग करना, दिन मे सोना, खूब गरम धूप का सेवन करना, विषम अन्नपान, पसीना लेना, स्त्री प्रसंग करना, टट्टी, पेशाब, वीर्य, अधोवायु, छींक, उल्टी, डकार के वेग लगने पर भी उनको रोकना, गन्ने के रस को पीना, कसरत करना, खट्टे पदार्थों का सेवन करना, तिल, उड़द की दाल, पतले

—शेषांश पृष्ठ ४२ पर।

बाल-औषधालय

कविराज जगदम्बा प्रसाद

(१) ज्वर—गोदन्तीभस्म १-२ रत्ती, दूध या बताशा से।

(२) हठीला ज्वर—रत्नगिरी रस ४-८ चावल दूध या बताशा से।

(३) विषम ज्वर मलावरोध-कालीमिर्च १ भाग, मुनक्का २ भाग, तुलसीपत्र ३ भाग रगड़कर १ माशा तक दे।

(४) पित्त युक्त ज्वर—प्रवालपिष्टि १ रत्ती बताशे में रखकर।

(५) आम कफज्वर, उदरशूल, अजीर्ण, अतिसार, मुक्ता ज्वर, वायुरोध-संजीवनी वटी [शा. सं.] २-४ चावल उष्णजल से या दूध से। यदि लाभ न हो तो कुमारकल्याण घुटी १० बूंद साथ में दें।

(६) सर्व ज्वर, शूल, दुग्ध वमन, उदर कृमि यकृत वृद्धि—कुमार कल्याण घुटी १० बूंद जल या दूध में मिला पिलावे।

(७) बाल शोप, पारिगर्भिक—कल्याण रस, कुमार रस या कुमारकल्याण रस २-४ चावल मधु से।

(८) अस्थि मार्दव—सुधापटकयोग १-२ रत्ती मधु से या स्वर्ण माक्षिक, सितोपलादि, प्रवाल-पिष्टी, गोदन्ती भस्म मिलित १-२ रत्ती मधु से।

(९) उदर कृमि, शूल, वायुरोध, मलरोध, अपचन, श्वानविष, शीतांगता—अग्नितुण्डी वटी २-४ चावल उष्णजल, दूध या बताशा या मधु से। अधिक प्रयोग न करें।

(१०) बुद्धि मन्दता—सारस्वतारिष्ट ३-३ माशे दुग्ध से।

(११) ग्रहणी. अतिसार, शूल—कुटजारिष्ट २-३ माशे दुग्ध से या कनकसुन्दर रस २-४ चावल मधु से या दूध से।

(१२) यकृत प्लीहा, मलरोध शूल—भर्जित कुटकी १-२ रत्ती मधु से। स्वर्णमाक्षिक २-४ चावल मधु से। मण्डूरवटी २-४ चावल।

(१३) ज्वर, अपचन, उदरशूल, विपूचिका, वमन अतिसार, अपचन- अमृतधारा १ बूंद बताशा पर डाल ३-४ मात्रायें बनालें।

(१४) कृशता—मण्डूर वटी १ रत्ती+अश्वगन्धा चूर्ण २ रत्ती+च्यवनप्राश १ माशा यह दो मात्रायें हैं।

(१५) बुद्धिमन्दता—कल्याण रस या कुमार रस २-४ रत्ती चावल+ब्राह्मी घृत १ माशा।

(१६) काली कास—शृङ्गभस्म २-४ चावल। हरतालगोदन्ती भस्म २-४ चावल, चन्द्रामृतरस ४-८ चावल मधु से।

(१७) धनुर्वात ज्वर, अतिसार—लक्ष्मीनारायण रस ४-८ चावल मधु।

(१८) अतिसार, शूल —१ रत्ती जायफल दूध में घिस कर पिलावे या २ रत्ती उदर पर लेप करें। २-४ चावल हींग दूध में घिसकर पिलावे या २ रत्ती उदर पर लेप करे।

(१९) मुखपाक—पीपल की छाल, गूलर की छाल, चमेली की पत्ती, बरगद छाल, आंवला की छाल, तुलसी पंचाङ्ग—सब द्रव्य समभाग ले चूर्ण करें। अति महीन चूर्ण कपड़छन किया हुआ २-३ रत्ती मधु में मिला मुख में छालों पर लेप करें। उदर में जाने से ज्वर, अतिसार, रक्तस्राव को रोकता है।

(२०) मुखपाक—कत्था, सुहागा फूला, संगजराहत इन दोनों का चूर्ण उक्तविधि से लगावे। उदर में आने से कफ, कास, रक्त स्राव को रोकता है।

(२१) उदर शूल, आध्मान, अजीर्ण, विसूचिका, अतिसार, ग्रहणी, मन्दाग्नि—हिंग्वाष्टक चूर्ण १-२ रत्ती दूध से। शरदऋतु पित्त विकार वर्षाऋतु में न दे।

(२२) मलरोध, शूल, उदर में भारीपन, आम—नाराच चूर्ण २-३ रत्ती मधु से अर्थात् मिश्री ४ रत्ती निशोथ ४ रत्ती, छोटी पीपल १ रत्ती मिला रखें।

(२३) उदर कृमि—करञ्ज की गिरी, पलाश के बीज, अजवाइन, कबीला, वायविडङ्ग। इनका चूर्ण २-३ रत्ती समभाग गुड़ में मिलादें। दूसरे दिन दूध से ३-६ माशे अरण्डी तेल मिला पिलावें। बड़ों को मात्रा बड़ी दें।

(२४) उदरशूल, ज्वर, मलरोध, डब्बा रोग—भुनी करंज की गिरी २-३ रत्ती मधु या उष्ण जल या दूध से दें। इससे १-२ वमन और १-२ अतिसार होते हैं। बाद में एकदम कफ निकल जाता है।

(२५) कब्ज, मल संचय, आम, शिरो शूल, अजीर्ण पित्तरोग, उदरशूल—सोंठ, सौंफ, सनाय, सेंधानमक, बड़ी हर्र, गुठली रहित समभाग ले चूर्ण करें। यह पंचसकार चूर्ण है बड़ों की मात्रा ६ माशे तक है। बच्चों की मात्रा २-३ रत्ती उष्ण जल या दुग्ध से दें। १ मुनक्का के रस से दें या मधु से चटावें।

(२६) कब्ज मलरोध—पीली हर्र २ रत्ती घिस कर दूध से दें। १-२ मुनक्का दूध में पकाकर पिलावें।

(२७) अजीर्ण, शूल, आध्मान—पीपल, काला नमक, हर्र का चूर्ण २-३ रत्ती।

(२८) ज्वर, वमन, अतिसार—अतीस, काकड़ासिंगी, तुलसी का चूर्ण २-३ रत्ती।

(२९) वमन, ज्वर, रक्तातिसार—पीपल, मुलहठी, आम, जामुन की कोपल का चूर्ण २-४ रत्ती।

(३०) श्वास कास, हिक्का—मोरचन्द्रिका भस्म, पीपल का चूर्ण १ रत्ती मधु से।

७ वर्ष के बालक के लिए उक्त ३० योग पूर्ण परीक्षित अहानिकारी हैं। अनुपान में बताशा दूध या मधु ठीक रहता है। मात्रा पर विचार रखें। माताएँ उक्त प्रयोग बनाकर घर में रखें। शीतला, डिफ्थीरिया, उत्कुन्तिका आदि की चिकित्सा यहां नहीं लिखी। ८ चावल = १ रत्ती।

—श्री जगदम्बाप्रसाद वैद्य
महदेवा पो. अरौल (कानपुर)

:: पृष्ठ ४० का शेषांश ::

पदार्थ, मुश्किल से हजम होने वाले अन्न, नये अनाज (नये गेहूं, नये जौ) का प्रयोग, पेट में जलन पैदा करने वाले या कब्ज करने वाले द्रव्यों का प्रयोग करना, मूली, सह्याचल और विन्ध्याचल पहाड़ से निकली हुई नदियों का पानी मांस, दही, मछली, दूध, शराब और गुड़ आदि सब अपथ्य पदार्थ दोषानुसार कुष्ठ रोगी को त्याग देने चाहिये।

सफेद दाग वाले रोगियों के लिये भी उपरोक्त ही पथ्यापथ्य है।

—आयुर्वेदा. डा. महावीरप्रसाद जैन B. I. M. S.
सुखदा फार्मेसी, सदर, मेरठ।

द्वितीय पुरुष्कार प्राप्त लेख—

अर्श की चिकित्सा

श्री शिवकुमार व्यास ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरेधातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजांस्मृतम् ॥
—च० सू० १६/३३
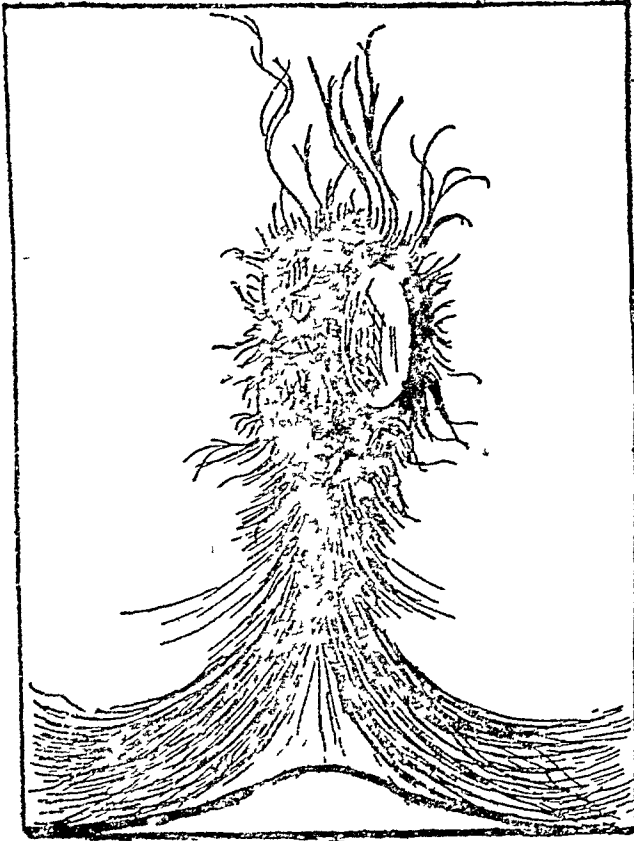
अर्शांकुर

इस आचार्योक्त सूत्र को पढ़ते ही चिकित्सा की वास्तविक रूपरेखा सामने आ जाती है और एक धुन्धली सी वह रेखा दूर दूर हटती जाती है कि औषधि देना मात्र ही चिकित्सा है। अर्श की चिकित्सा को लिखते समय यह सूत्र आरम्भ में देने का विशेष प्रयोजन है। कारण कि यह एक ऐसी व्याधि है जिसका कोई एक उपचार नहीं। ऐसी सम्भावना कदापि नहीं की जा सकती कि अमुक द्रव्य अथवा अमुक योग इस रोग से परितप्त मनुष्य को अवश्य ही लाभ करेगा। अतः निश्चित हो जाता है कि शास्त्राज्ञानुसार ही चिकित्सा में प्रवृत्त होना पड़ेगा।

आयुर्वेदोक्त अर्श—

आयुर्वेद मे अर्श एक व्यापक अर्थ रखता है जिसके अधिष्ठान के विषय में लिखते हुए हम यह नहीं कह सकते कि अमुक स्थान में यह होता है। नासा अर्श आदि कई होते हुए भी हमारा प्रयोजन चरक मे लिखे अनुसार केवल गुदज अर्श से ही है। वहां लिखा है—

"तदस्त्यधिमांस देशतया गुदवलि-
जानित्वर्शासीति सञ्ज्ञा तन्त्रेस्मिन् ॥"
—च० चि० १४

अतः गुदा में होने वाला रोग अर्श की संज्ञा से यहां लिखा जा रहा है। गुदा एक ऐसा स्थान है जिसको विश्राम मिलना सम्भव नहीं, मल त्याग एक ऐसा वेग है जो अधारणीय है अतः प्रतिदिन मल की प्रवृति होने पर गुदा पर जोर पड़ेगा और रोगावस्था मे अङ्ग को विश्राम मिले बिना आराम होना सम्भव नहीं। अतः इस रोग के हो जाने पर चिकित्सा में कठिनाई होती है। स्वस्थावस्था में ही नियम पालन कर इससे बचना श्रेयष्कर है। अतः प्रथम प्रतिषेधात्मक चिकित्सा के विषय मे लिख रहे है और फिर प्रशमनार्थ चिकित्सा का विस्तार से वर्णन करेंगे।

प्रतिषेधात्मक चिकित्सा

निदान वर्जन—

अर्श किन कारणो से होता है उसका विस्तार से वर्णन करते हुए चरक चिकित्सा स्थान अ. १४ में लिखा है कि सहज अर्श तो जन्म लेने के पूर्व से ही माता के शोणित एव पिता के शुक्र की विगुणता के कारण गर्भावस्था मे ही हो जाता है और जन्मोत्तर कालीन अर्श गुरु मधुर शीतल आदि आहार एवं विषमाचार के कारण होते है। उन सभी कारणों को देखते हुए हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते है कि पाचन सस्थान की क्रिया का उचित रूप मे कार्यकर रहना अर्श को उत्पन्न नहीं होने देता।

शरीर की पाचकाग्नि का सुचारु रूप से कार्य करना ही स्वस्थ रख सकता है। अतः प्रतिषेध के लिए प्रथम जो नियम है वह है निदान परिवर्जन। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य का कर्त्तव्य है कि स्वस्थ रहने के लिए उन कारणों को न आने दे जो कि अर्श उत्पादक बताये हैं। अत कारणों से बचाव करना प्रथम उपाय हुआ।

भ्रमण—

स्वस्थ मनुष्य के लिये आवश्यक है कि स्वस्थवृत में लिखे अनुसार नियम पालन करे और इस रोग से बचने के लिए भ्रमण एक आवश्यक कार्य समझे। हर समय बैठने एवं लेटने वालों को यह रोग अधिक होता है। अत. घूमना इसमे बचने में सहायक है।

आसन—

कुछ ऐसे आसन है जिनको अभ्यास करते हुए नित्य करते रहना पाचन के लिये लाभदायक है। पाचन ठीक रखते हुए वे आसन अर्श रोग से बचाते है। अत. आसन की क्रियाओं को सीख कर उनको करना लाभप्रद रहेगा। कल्याण योग विशेषाङ्क में कुछ ऐसे आसनों का वर्णन है उनमें से कुछ के नाम हम यहा देते है जिन की क्रियाओं को कार्यकुशल व्यक्ति से सीख लेना चाहिए। तदर्थ एकपादकन्दरासन, उत्थित द्विपादासन, शीर्षासन, चतुष्पादासन, मयूरासन आदि का अभ्यास लाभप्रद रहता है।

तक्रादि पाचन प्रयोग—

जैसा कि स्पष्ट भी किया है और निदान बताते समय भी लिखा मिलता है कि जठराग्नि की क्रिया को ठीक रहना इस व्याधि से बचा सकता है। अन्य आहार भी स्वस्थवृतानुसार सेवन करे परन्तु उस अर्श को नाश कर देने वाले तक्र को अवश्य ही प्रयोग मे लाएँ जो अर्श की उत्पत्ति के बाद उस को नष्ट कर देती है। तक्र कितनी लाभकारी वस्तु है इस बात को तो हम चिकित्सा के लिखने के बाद लिखे आहार विधान मे विस्तार से बतायेगे तो भी यहा तक्र की महिमा मे एक कवि भी दो पंक्तियां उद्धृत कर रहे है। लिखा है—

"न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्,
न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगा।
यथा सुराणाममृतं हिताय,
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥"

अत यों तो इस भूलोक के अमृत का पान सभी को करना चाहिये तो भी यह ध्यान रहे कि अर्श से बचने के लिये यह बहुत ही उत्तम आहार होता है।

गणेश चिकित्सा—

इस क्रिया का नित्य प्रति प्रयोग करने वाला व्यक्ति अर्श से पीड़ित नहीं हो सकता। इसका विधान यह है कि शौचोपरांत अपनी तर्जनी अंगुली को गुदा में प्रवेश कर इधर उधर से सारा मल साफ कर लेना चाहिए। यह अंगुली गुदा के आकार की है। इसके प्रवेश के बाद पुन थोड़ा मल त्याग होता है और इस प्रकार गुदा के भाग में थोड़ा भी मल नहीं रह सकता जो अर्शोत्पत्ति में कारण बन सके। अत. रोज ही इस क्रिया को प्रत्येक स्वस्थ पुरुष करे और अर्श से बचा रहे।

इस प्रकार इन ऊपर के नियमों को जानता हुआ सभी का पालन करते हुए एक स्वस्थ मनुष्य अपने को अर्श रोग के उपन्न होने से बचा सकता है और इस महा कष्टकर व्याधि के पाश में नहीं फंसता।

:: पृष्ठ २० का शेषांश ::

उपरोक्त दोनो योग रक्तस्राव की पुनरावृत्ति को रोकते है। साधारण रक्तस्रावनाशक हैं। इसके लिए निम्नलिखित औषधियों का भी प्रयोग करे–

कुटजावलेह, अग्निमुख लोह, चन्द्रप्रभा गुटिका, (भैषज्य रत्नावली) ये औषधि रक्तार्श के लिए उपयोगी है। इसके अतिरिक्त दोषज अर्श वर्णित भल्लातक योग का उपयोग दो बार रोज नागकेशर के चूर्ण एवं मधु से करना चाहिए। यक्ष्मा अधिकारोक्त शिलाजत्वादि लौह रक्त वृद्धि के लिए अति उत्तम योग है। रक्तपित्त रोगाधिकारोक्त महा पित्तान्तक रस भी इसमे अत्यन्त उपयोगी है।

—श्री कविराज लाला बदरीनारायण सेन
G. A. M. S
मोतीझील, मुजफ्फरपुर।

प्रशमनात्मक चिकित्सा

चतुर्विध साधनोपाय—

"चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः ।
तद्यथा भैषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति ॥"—सु० चि० अ० ६

कह कर चार प्रकार के उपाय सुश्रुत मे बताये है। इन चारो की प्रयोगावस्थाओ का भी वर्णन है—तदनुसार अल्प समय से उपन्न वातादि दोषो के लक्षण एवं उपद्रव अल्प हो—वे अर्श भैषज्य साध्य होती है। कोमल फूले हुए कठोर और जो कुछ ऊचे हो गये है वे क्षार साध्य होते है। तीक्ष्ण, दृढ़, कठोर और मोटे मस्से अग्निकर्म साध्य हैं। पतली जड़ वाले, ऊचे और क्लेदयुक्त मस्से शस्त्रकर्म साध्य है।

'अस्त्येतदभ रितन्त्रेण धीमता दृष्ट कर्मणा।
क्रियते त्रिविध भ्रंशस्तत्र सुदारुण ॥
पुंस्त्वोपघात श्वयथुर्गुदे वेगविनिग्रहः।
आध्मानं दारुण शूलं व्यथा रक्तातिवर्त्तनम् ॥
पुनर्विरोहो रूढाना क्लेदो भ्रंशो गुदस्य च।
मरणं वा भवेच्छीघ्रं शस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ॥
युक्त कर्म सुखोपायमल्पभ्रंशदारुणम्।
तदर्शसां प्रवक्ष्यामि समूलना निवृत्तये ॥"
(च० चि० अ० १४)

अर्थात्—यह तीन प्रकार का कर्म (शस्त्र, क्षार, अग्नि) बहुत शास्त्र पारंगत, शस्त्रकर्म जिसने देखे हैं, बुद्धिमान वैद्य से क्रिया जाता है। उसमे भूल करना अत्यन्त भयङ्कर होता है। शस्त्र, क्षार, अग्निकर्म मे विभ्रम होने से पुंस्त्वनाश, गुदशोथ, मलादि वेगरोध, आध्मान, उदरशूल, पीड़ा, रक्त की अतिशय प्रवृत्ति, अर्शों की पुनरूत्पत्ति, भरे हुए अर्शों का क्लेद, गुद भ्रंश अथवा मृत्यु भी शीघ्र हो सकती है। अर्शों की समूल निवृत्ति के लिये जो चिकित्सा सुखसाध्य, अल्पभ्रंश करने वाली और अदारुण है वह मैं कहूंगा।

इसी प्रकार सुश्रुत मे देखिए—

'क्षाराग्नि शस्त्र साध्यानान्तु विधानमुच्यमानम्।'

अर्थात्—अब क्षार, अग्नि और शस्त्र साध्य रोगों का विधान कहते हैं।

अतः ऊपर के दोनों वर्णन भिन्न भिन्न सम्प्रदाय वादियों के है। चरक काय चिकित्सा प्रधान ग्रंथ है अतः वह शल्य शास्त्र के विधान मे अपनी सम्मति न दे कर केवल इतना ही संकेत कर रहा है कि ये तीनो कर्म कितनी सावधानी से हो सकते हैं—अन्यथा मृत्यु तक हो सकती है—अतः वह अपना अधिकार ही उपयोग में लाते हुए केवल औषध द्वारा चिकित्सा का ही वर्णन करता है जिसकी ऊपर लिखी विशेषतायें है। और दूसरी ओर सुश्रुत शल्य प्रधान ग्रंथ होने से क्षार, अग्नि शस्त्र का ही विधान बताता है। औषधि का विधान दूसरे सम्प्रदाय का होने से उनका अधिकार नहीं छीनता अतः हम चारो का ही विधिवत वर्णन करेंगे।

औषधोपचार—

'वातश्लेष्मोल्बणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसि तद्विदः।
प्रस्रावीणि तथार्द्राणि रक्तपित्तोल्बणानि च ॥'
—च० चि० अ० १४

कह कर चिकित्सा करते समय चरक ने अर्श के केवल दो ही रूप कर लिए है प्रथम शुष्कार्श और द्वितीय परिस्रावी। अतः इनका क्रमशः अलग अलग वर्णन करते है।

शुष्कार्श—

पिण्ड स्वेद—

चरक ने शोथ-शूलयुक्त स्तब्ध अर्श के रोगी को सर्व प्रथम स्वेदन करने की आज्ञा दी है। पिण्ड स्वेद करने को बताते समय चरक ने निम्न योग बताये है—वहां पर कहा है चित्रक, यवक्षार, बेल से सिद्ध तैल लगाकर निम्न वस्तुओ मे से किसी का पिण्ड बनाकर स्वेद देवे—

(१) जौ, उड़द, कुलथी, पुलाक की पोटलियो से, (२) गाय, गधा, घोडा की मल पिण्डो से, (३) तिल कल्को से, (४) भुसी से, (५) वच, सौंफ के पिण्डो से, (६) सक्तुपिण्डो से, (७) स्नेहयुक्त सुहाते गरम सूखी मूली के पिण्डो से, (८) सहजन मूलत्वक पिण्डो से, (९) रास्ना पिण्डो से एवं (१०) हाऊ बेर के पिण्डो से स्वेदन करे।

कुष्ठ से सिद्ध तैल से चुपड़ कर ईंट खुरासानी अजवायन या गाजर के शाकों से पिण्ड बनाकर स्वेदन करना चाहिए।

परिषेक—

वासा आक, एरण्ड, वेल के पत्तों के क्वाथ से परिषेक करे। परिषेक कुम्भी, वर्षलिका अथवा पुनाठी में क्वाथ भरकर किया जाता है। इन यन्त्रों में उस क्वाथ को सीधे शरीरावयव पर डाला जाता है।

अवगाह—

मूली, हरड, वहेडा, आवला, वास, वरुण, अरणी, संहजन तथा अश्मन्तक के पत्तों को जल में उबाल कर भले प्रकार तेल से चुपडे शूलयुक्त अर्श वाले का अवगाह करावे।

वेर के उत्क्वाथ मे, गुनगुने सौवीरक तुषोदक मे, वेल के क्वाथ मे, तक्र में, दधि मण्ड, खट्टी कांजी, या गोमूत्र मे स्नेह भावित अवगाह करे।

(परिषेक, अवगाह का विधान लेखक की 'पञ्च कर्म विज्ञान' पृष्ठ ५५ पर देखे)

धूपन—

रोगी को दो ईंटो पर मल त्यागने की स्थिति में बिठा देवे। उसके नीचे अगारे रख कर निम्न योगो में से किसी का चूर्ण डालकर धूपन देना चाहिए।

(१) काला साप, सूअर, ऊंट, चमगादड़, बिलौटा इनकी वसा का अभ्यङ्ग देवे तथा धूपन करे।

(२) धनिया, बिडग, देवदारू, जौ, घी, बडी कटेरी तथा अश्वगधा के चूर्ण का।

(३) पीपल, तुलसी, घृत, सूअर और बैल के गोवर का।

(४) सत्तू और घी का।

(५) हाथी की लीद, राल तथा घृत का धूपन करना चाहिए। —चरक

प्रलेप—

अर्श पर लेप करने का विधान बहुत लाभदायक है। इन प्रलेपो से सचित हुआ दुष्ट रक्त निकल जाता है, कण्डु शात हो जाती है। अर्शो का पातन भी हो जाता है। हम नीचे शास्त्रोक्त योग देते है—

(१) सेहुण्ड दूध हल्दी के चूर्ण मे मिलाकर लेप करना चाहिए।

(२) हल्दी और पिप्पली को गाय के पित्ते मे मिलाकर लेपन करे।

(३) सिरस के बीज, कूठ, पिप्पलियां, सेंधा नमक, गुड, आक का दूध, सेहुण्ड का दूध तथा त्रिफला का प्रलेप करे।

(४) पिप्पली, चित्रक, निशोथ काली, किराव, मदनफल के बीज, मुर्गे की बीट, हल्दी, गुड़ मिला कर प्रलेप करे।

(५) दन्ती, काली निशोथ, तूतिया, कबूतर की बीट, गुड़, हाथी की हड्डी, नीम तथा भिलावे का लेपन करे।

(६) ऊंट की वसायुक्त अथवा मगर की वसायुक्त हरताल का गुनगुना लेप करे।

(७) आक का दूध, सेहुण्ड का तना, कड़वी लौकी, करंज के पत्ते और बकरे के मूत्र का लेपन करना चाहिए। —चरक से।

(८) रजनी लेप—हल्दी के चूर्ण को थूहर के दूध में मिला कर लेप करे।

(९) पिप्पल्यादि लेप—पीपल, सैंधव, कूठ और सिरस के बीज के चूर्ण को थूहर के अथवा आक के दूध मे पीस कर लेप करे।

(१०) हरिद्रादि लेप—हल्दी और कड़वी तोरई का चूर्ण कर के सरसो के तैल मे मिला कर लेप करे।

—भावप्रकाश से

रक्तावसेचन—

ऊपर लिखी सभी क्रियाओ को कर लेने के बाद दुष्ट रक्त को निकालने के लिए रक्तावसेचन का विधान बताया है। रक्तदुष्टि होने पर शीत उष्ण स्निग्ध, रूक्ष उपचारो से व्याधि शात नहीं होती है—अतः रक्तावसेचन कराना चाहिए। जोंक लगा कर, सूईयो से या शस्त्र आदि से रक्त निकाला जाए। दूषित रक्त के निकल जाने पर शूल, शोथ आदि की निवृत्ति हो जाती है। सुश्रुत सूत्र अ. १३ मे रक्तावसेचन का विधान देखना चाहिए। यदि अर्श कठोर हो तो अभ्यङ्ग आदि कर उन्हे कोमल कर लेना चाहिए फिर रक्तावसेचन हो जाएगा।

औषध —

गुड सहित हरीतकी भोजन पूर्व खिलावे।

४. शर्करासव (चरक अर्श)
५. कनकारिष्ट ,,
६. समशर्कर चूर्ण (भावप्रकाश अर्श)
७ विजय चूर्ण ,,
८. लघु सूरण मोदक ,,
९. वृहत्सूरण मोदक ,,
१०. श्री बाहुशाल गुड़ ,,
११. तिलादि मोदक ,,
१२. सगुड़ाभया ,,
१३ शङ्कर लोह ,,
१४. हिंग्वादि चूर्ण (सु० चि०)
१५. काकायन मोदक (भै० र०)

इसके अतिरिक्त रसोपधियो का भी प्रयोग अर्श की चिकित्सा मे किया जाता है। इन सभी योगों के द्रव्य एवं गुण आदि का वर्णन न करने का यह कारण है कि लेख का आकार बहुत बढ़ जाएगा। अत विद्वान मूल ग्रन्थ मे ही अवलोकन करे।

पथ्य–

आहार पर विशेष ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है जो कि चिकित्सक अवस्था विशेष मे स्वय ही निर्णय कर सकता है। तो भी मलावरोध एवं वातावरोध मे निम्न आहार का निर्देश शास्त्र मे किया है—

(१) मोर, तीतर, लावा, मुर्गा और बटेर का मांस रस अम्लीकृत (अनारादि से) करके आहारार्थ देवें।

(२) निशोथ, दन्ती, पलाश, चागेरी और चित्रक के पत्तो को घृत एवं तैल मे भूनकर दही में मिलाकर खाने को देवे।

(३) पोई का शाक, चौलाई, शतावर, बथुआ, ब्राह्मी, यवशाक, मकोय, मानकन्द, कचूर शलगम, गाजर, लाल लहसुन आदि शाको को घृत एवं तैल मे भूनकर दही के साथ देवे।

(४) अनुपान मदिरा, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, दही का पानी, पडंगनीय जल पीने को देना चाहिये।

ऊपर जितनी औषधि, तक्र, शास्त्रोक्त योग एवं पथ्य के विषय में बाते लिखी हैं उनका आधार केवल एक ही है कि अर्श के रोगी की पाचकाग्नि को तीव्र रखखा जाये। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो इन सभी योगों में मुख्यरूप से चित्रक, पिप्पलीमूल, पाठा, वेल, कालीमिर्च, गुड़, यवक्षार, सोंठ, चव्य, हाऊवेर, अजवायन, हरीतकी एवं निशोथ का विशेष भाग है। यह सब द्रव्य वात एवं मल विबन्धनाशक हैं। अग्नि को दीप्त करने वाले हैं। अग्नि दीप्त होना ही अर्श का ठीक होना है जैसा कि लिखा भी है–

"तस्मादग्निरवल च्यमेपु त्रिपु विशेषत ॥"

अर्थात्–तीनों मे (अर्श, अतिसार एवं ग्रहणी) विशेष रूप से अग्नि बल की रक्षा होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के आधार पर ही सारी उपर्युक्त चिकित्सा का वर्णन है।

पाश्चात्य मतानुसार–

शुष्कार्श की चिकित्सा के विषय मे ऐलोपैथी के ग्रन्थों का अवलोकन करे तो ऐसा लगता है कि उनकी पुस्तकों मे चरक द्वारा प्रतिपादित विषय को ज्यों का त्यों रख दिया है। यों तो आरम्भ मे लिखे चारों उपचार पाश्चात्य शास्त्रों मे वर्णित हैं और वह ठीक आयुर्वेदवत् ही हैं जिनका वर्णन हम प्रत्येक के साथ करेंगे। यहां शुष्कार्श की चिकित्सा में देखिये आयुर्वेदानुसार स्वेद अवगाह आदि का जो विधान हम बता आए हैं वही विधान शोथयुक्त अर्श के लिये सैवल साहब ने लिखा है—

"Inflamed piles are very painfull and are best treated by warm hip baths, frequent bathing, warm fomentation with opium-belladona and cocaine"

(System of Clinical Medicines)

इसी प्रकार जितना भी प्रलेप आदि का वर्णन हम कर आये हैं उसी प्रकार इन पुस्तकों मे भी स्थानिक द्रव्यो (Local ayplication) का विधान है। इन सभी औषधियो के गुण संग्राही और संज्ञानाशक (Astringents and Anodynes) होती है। इन योगो से शूल तथा शोथ तो कम हो जाती है परन्तु आयुर्वेदोक्त लेपवत अर्शो का पातन

४. शर्करासव (चरक अर्श)
५. कनकारिष्ट ,,
६. समशर्कर चूर्ण (भावप्रकाश अर्श)
७. विजय चूर्ण ,,
८. लघु सूरण मोदक ,,
९. बृहत्सूरण मोदक ,,
१०. श्री बाहुशाल गुड़ ,,
११. तिलादि मोदक ,,
१२. सगुडाभया ,,
१३. शङ्कर लोह ,,
१४ हिंग्वादि चूर्ण (सु० चि०)
१५. काकायन मोदक (भै० र०)

इसके अतिरिक्त रसोषधियों का भी प्रयोग अर्श की चिकित्सा में किया जाता है। इन सभी योगों के द्रव्य एव गुण आदि का वर्णन न करने का यह कारण है कि लेख का आकार बहुत बढ़ जाएगा। अत विद्वान मूल ग्रन्थ में ही अवलोकन करें।

पथ्य–

आहार पर विशेष ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है जो कि चिकित्सक अवस्था विशेष से स्वय ही निर्णय कर सकता है। तो भी मलावरोध एव वातावरोध में निम्न आहार का निर्देश शास्त्र में किया है—

(१) मोर, तीतर, लावा, मुर्गी और बटेर का मांस रस अम्लीकृत (अनारादि से) करके आहारार्थ देवें।

(२) निशोथ, दन्ती, पलाश, चांगेरी और चित्रक के पत्तों को घृत एवं तैल में भूनकर दही में मिलाकर खाने को देवे।

(३) पोई का शाक, चौलाई, शतावर, बथुआ, ब्राह्मी, यवशाक, मकोय, मानकन्द, कचूर शलगम, गाजर, लाल लहसुन आदि शाकों को घृत एवं तैल में भूनकर दही के साथ देवें।

(४) अनुपान मदिरा, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, दही का पानी, पञ्चाग्नीय जल पीने को देना चाहिये।

ऊपर जितनी औषधि, तक्र, शास्त्रोक्त योग एवं पथ्य के विषय में बातें लिखी हैं उनका आधार केवल एक ही है कि अर्श के रोगी की पाचकाग्नि को तीव्र रखा जाये। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो इन सभी योगों में मुख्यरूप से चित्रक, पिप्पलीमूल, पाठा, बेल, कालीमिर्च, गुड़, यवक्षार, सोंठ, चव्य, हाऊबेर, अजवायन, हरीतकी एवं निशोथ का विशेष भाग है। यह सब द्रव्य वात एवं मल विबन्धनाशक हैं। अग्नि को दीप्त करने वाले हैं। अग्नि दीप्त होना ही अर्श का ठीक होना है जैसा कि लिखा भी है–

"तस्मादग्निबलं रक्ष्यं एतेषु त्रिषु विशेषतः॥"

अर्थात्–तीनों में (अर्श, अतिसार एवं ग्रहणी) विशेष रूप से अग्नि बल की रक्षा होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के आधार पर ही सारी उपर्युक्त चिकित्सा का वर्णन है।

पाश्चात्य मतानुसार–

शुष्कार्श की चिकित्सा के विषय में एलोपैथी के ग्रन्थों का अवलोकन करें तो ऐसा लगता है कि उनकी पुस्तकों में चरक द्वारा प्रतिपादित विषय को ज्यों का त्यों रख दिया है। यों तो आरम्भ में लिखे चारों उपचार पाश्चात्य शास्त्रों में वर्णित हैं और वह ठीक आयुर्वेदवत् ही हैं जिनका वर्णन हम प्रत्येक के साथ करेंगे। यहां शुष्कार्श की चिकित्सा में देखिये आयुर्वेदानुसार स्वेद अवगाह आदि का जो विधान हम बता आए हैं वही विधान शोथयुक्त अर्श के लिये सैवल साहब ने लिखा है—

"Inflamed piles are very painfull and are best treated by warm hip baths, frequent bathing, warm fomentation with opium-belladona and cocaine"

(System of Clinical Medicines)

इसी प्रकार जितना भी प्रलेप आदि का वर्णन हम कर आये हैं उसी प्रकार इन पुस्तकों में भी स्थानिक द्रव्यों (Local application) का विधान है। इन सभी औषधियों के गुण संग्राही और संज्ञानाशक (Astringents and Anodynes) होती हैं। इन योगों से शूल तथा शोथ तो कम हो जाती है परन्तु आयुर्वेदोक्त लेपवत अर्शों का पातन

नहीं हो सकता। हैडेंसा (Hedensa), एनाथीना (Anathena), रेक्टोसीरोल (Recto-serol) आदि पेटेन्ट औषधियों के अतिरिक्त वैलाडोना, मार्फिन, आइडोफार्म आदि द्रव्यों की वर्तियों का प्रयोग भी किया जाता है। यह सभी एक विशेष वस्तिनेत्र (nozzle) द्वारा प्रयोग की जाती हैं।

स्थानिक लेप के अतिरिक्त औषधोपचार का सिद्धान्त भी लगभग एक समान ही है यह चिकित्सक कब्ज दूर करने पर विशेष जोर देते है। हां एक बात है कि आयुर्वेदिक अर्शनाशक जिन औषधि योगों का चरक आदि में वर्णन है उस प्रकार की औषधियों के विषय में अभी तक आधुनिक चिकिसा शास्त्रियों (ऐलोपैथों) के पास कुछ भी नहीं है। एक भी मुख द्वारा सेवनीय ऐसा द्रव्य नहीं जिसे कहा जा सके कि इसका प्रभाव शुष्कार्श पर होता है।

अपथ्य —

वातार्श के रोगी को मैथुन, रूक्ष भोजन, कसैली वस्तुऐं, श्रम, मद्यपान, दाहकारक द्रव्य, जल में तैर कर स्नान, अत्यन्त सामने की वायु एवं अति गरिष्ठ पदार्थों का भोजन छोड़ देना चाहिए।

परिस्रावी अर्श—

परिस्राविक रक्त की उपेक्षा—

चरक ने शुष्कार्श और परिस्रावी अर्श दो प्रकार कर रखे हैं। उनमें से शुष्कार्श का वर्णन तो हमने कर दिया अब दूसरे का वर्णन कर रहे है। सर्व प्रथम जो नियम आचार्य ने बताया है वह है दूषित रक्त के स्राव की उपेक्षा करना। चरक में लिखा है-"निदान, लक्षण, कालवेत्ता, बल, वर्ण तथा रक्तवेत्ता वैद्य जब तक रोगी गम्भीरावस्था को न प्राप्त हो जाये तब तक दूषित रक्त के स्राव की उपेक्षा करे। दुष्ट रक्त की स्रुति के पश्चात् अग्नि संदीपन, रक्तसंग्रहण तथा दोष पाचन के लिये तिक्त द्रव्यों से उपचार करे।"

परिस्रावी अर्श मे बहते हुये रक्त को देख कर उसे एक बार बंद करने वाले चिकिसको के लिये यह नियम ध्यान देने योग्य हैं। यदि इस दुष्टरक्त का अवरोध किया जाय तो अवश्य ही यह अनेक रोग उत्पादक होगा। इस विषय में आचार्य के शब्दों को देखिये-

'आरम्भ मे जो अर्शो से निकलते हुये अत्यन्त दूषित रक्त को रोकता है तो वह रुका हुआ रक्त अनेक रोगों को यथा रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा, अग्निमांद्य, अरोचक, कामला, शोथ, गुदसंश्रित शूल, वंक्षण संश्रितशूल, कण्डू, व्रण, कोठ, पिडिका, कुष्ठ, पाण्डु नामक रोग, वातमूत्र पुरीष का विबध, शिरःशूल, स्तैमित्यम्, गुरुता तथा अन्य रक्तजन्य विकार उत्पन्न करता है। अतः दुष्ट रक्त के निकल जाने के बाद रक्त स्तम्भन करना चाहिये।"

चिकित्सा की दृष्टि से चरक ने परिस्रावी अर्श का अनुबन्ध वात से एवं कफ से बताया है। यदि परिस्रावी अर्श का वातानुबन्ध हो तो स्निग्ध शीतोपचार करना चाहिये। एतदर्थ स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन का प्रयोग हितकर कहा गया है। यदि कफानुबन्ध रहे तो रूक्ष शीतोपचार करना चाहिये। रक्त स्तम्भनार्थ कुछ योग नीचे लिखते है—

१. कुटजत्वक क्वाथ शुण्ठी के साथ
२. दाडिमत्वक ,, ,, ,,
३. चन्दन का ,, ,, ,,
४. चंदन चिरायता दुरालभा का क्वाथ शुण्ठी के साथ
५ दारुहल्दी, खस और नीम का क्वाथ शुण्ठी के साथ
६. कुटजत्वक का क्वाथ रसौत के साथ

७. इन्द्र जौ रसौत मधु में मिलाकर तण्डुलोदक के साथ

८. कुटजादि रसक्रिया अजा दूध से

९. नीलोफर, मजीठ, मोचरस, चंदन, तिल, लोध्र, बकरी के दूध से पीस कर उसी के दूध से शाली भात के साथ खावे।

१०. बथुआ के साथ बकरी का दूध तथा जांगल पशु पक्षियों का मांस रस खटाई के साथ प्रयोग करना चाहिये।

सशूल रक्तस्राव पर—

जब रक्तस्राव के साथ ही साथ शूल भी होती हो तो चरक ने निम्न योग बताये है—

१. पाठादि चूर्ण

२. दारुहल्दी, चिरायता, मोथा, दुरालभा साधित घृत।

३. इद्रजौ, कुटजत्वक्, नागकेशर, नीलोफर, लोध के पुष्पो से भावित घृत।

४. अनार रस तथा यवक्षार से भावित घृत।

५. चक्रिका, नागकेशर, नीलोफर, बला और पृश्नपर्णी से सिद्ध खीलो की पेया।

६. सुगंधवाला, वेल, सौठ के क्वाथ से साधित मक्खन सहित पेया।

७ अजा दुग्ध से निकला मक्खन, अजामांस, शालि और सांठी का भात और सुरामण्ड का प्रयोग करना चाहिए।

८. तक्र से सिद्ध प्याज का शाक, वेर की खटाई से सिद्ध पोई शाक, मसूर की दाल तथा खट्टा मठा।

९. मुर्गा, मोर, तीतर, ऊंट एवं लोमड़ी के मांस रस से भावित शालिभात।

१०. ताजा घृत, बकरे का मास, शाली के चावल, ताजा सुरामण्ड तथा ताजी शराब का प्रयोग रक्तस्राव एवं शूलनाशक है।

परिषेक—

अत्यधिक रक्त प्रवृति को रोकने के लिए आचार्य ने बाह्योपचार बताया है। परिषेक का विधान बताते समय वहां बताया गया है कि–पञ्चकल्क, मुलहठी, वेर की छाल, गूलर, धव, पटोलपत्र, वासा, अर्जुन एवं धमासा के क्वाथ का प्रयोग करें। इनके क्वाथ का प्रयोग, अत्यधिक उष्णता रहने तक न कर के शीतल होने पर करना चाहिए। सुखोष्ण दूध, घृत तथा तैल के द्वारा परिषेक करने को आचार्य ने कहा है।

अवगाह—

शीतल तैल से अभ्यङ्ग किये रोगी को शीतल जल, ईख के रस मे, मुलहठी और वेतस के शीतल हुए क्वाथ मे अवगाह करना चाहिए। मुलहठी, कमलनाल, पद्माख, चन्दन, कुश, कांस के शीतल कषाय में अवगाह करें।

शिशिर धारा—

शिशिर जल (बर्फ का पानी) की धारा का प्रयोग रक्त को रोकता है। आचार्य ने बताया है कि घी मे मिश्री मिलाकर उपस्थेन्द्रिय, गुद तथा त्रिक पर लेपन करें फिर यह धारा डाले।

लेपन—

कुछ ऐसे द्रव्य बताए गए है जिनका लेपन करने से रक्त का अवरोध होता है। उनके विषय में बताते हुए चरक मे बताया गया है, कि मजीठ एवं मुलहठी युक्त घृत का, रसौत मिलित घृत का, शहद और घी का, चन्दन सहित कमल नाल और घृत का लेप करे। शतधौत घृत एवं सहस्राधौत घृत का प्रयोग लेपनार्थ किया जाता है।

पिच्छाबस्ति—

चरक ने रक्तार्श के लिए पिच्छावस्ति का प्रयोग करना बताया है। जवासा, कुश, कास आदि औषधियां बताई हैं जिनको घृत, तैल एवं मधु आदि के साथ संयोग पिच्छाबस्ति दी जाती है। इसका बहुत महत्व है। पिच्छा बस्ति का विधान देखने के लिए लेखक की 'पंचकर्म विज्ञान' पुस्तक देखिए।

परिस्रावी अर्श की चिकित्सा समाप्त करने से पूर्व हम कुछ शास्त्रोक्त योग देना चाहते हैं।

शास्त्रोक्तयोग—

१. कुटजावलेह (भ. ह्र)

२. चक्रेश्वर रस (र० सा० स०)

३. चंद्रप्रभावटी (र० सा० स०)

४. बोल पर्पटी

५. लाक्षादि प्रयोग

इस प्रकार औषधोपचार का विस्तार से वर्णन किया है। यदि चाहे तो केवल औषधोपचार पर ही एक ग्रंथ बन जाए परन्तु यहां इससे अधिक विस्तार अपेक्षित नहीं। अवशेष तीनों प्रकार के उपचारों का वर्णन करते है।

क्षार प्रयोग--

उन अर्शों पर जिनको पीछे क्षार-साध्य कह आये है क्षार के द्वारा ठीक किया जाता है। क्षार के कर्म में हम प्रतिसारणीय क्षारों का प्रयोग करते हैं। नियम यह है कि वातकफजन्य शुष्कार्श में तीक्ष्ण क्षार का प्रयोग करे और परिस्रावी अर्श में मृदु क्षारों का प्रयोग करें। क्षार का प्रयोग विधान दो प्रकार का है। अत. उनको अलग २ लिखते हैं-- १. क्षार प्रलेप। २. क्षार सूत्र।

क्षार प्रलेप--
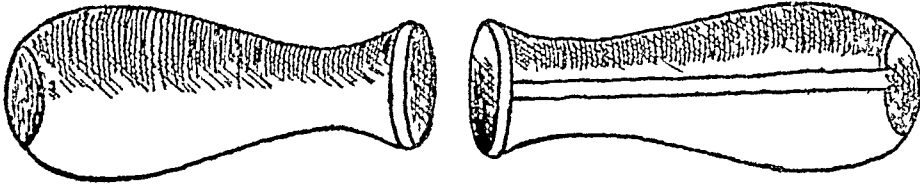
दर्शन के लिये क्षार कर्म के लिये

अर्शो यन्त्र का सम्भावित रूप

क्षार के प्रलेप का विधान बताते हुए सुश्रुत मे विशेष अवस्था मे लेटने का विधान बताया है और यन्त्र विशेष द्वारा गुदा में अर्शों को देखने के लिए कहा गया है। इससे पूर्व के कर्म के विषय मे लिखा है--"बलवान रोगी को जो अर्श रोग से पीड़ित है उसे स्नेहन और स्वेदन के अनन्तर वात जनित वेदना वृद्धि की शाति के लिये चिकनाई युक्त गर्म और थोड़ा पतला भोजन करावे। अब साफ और
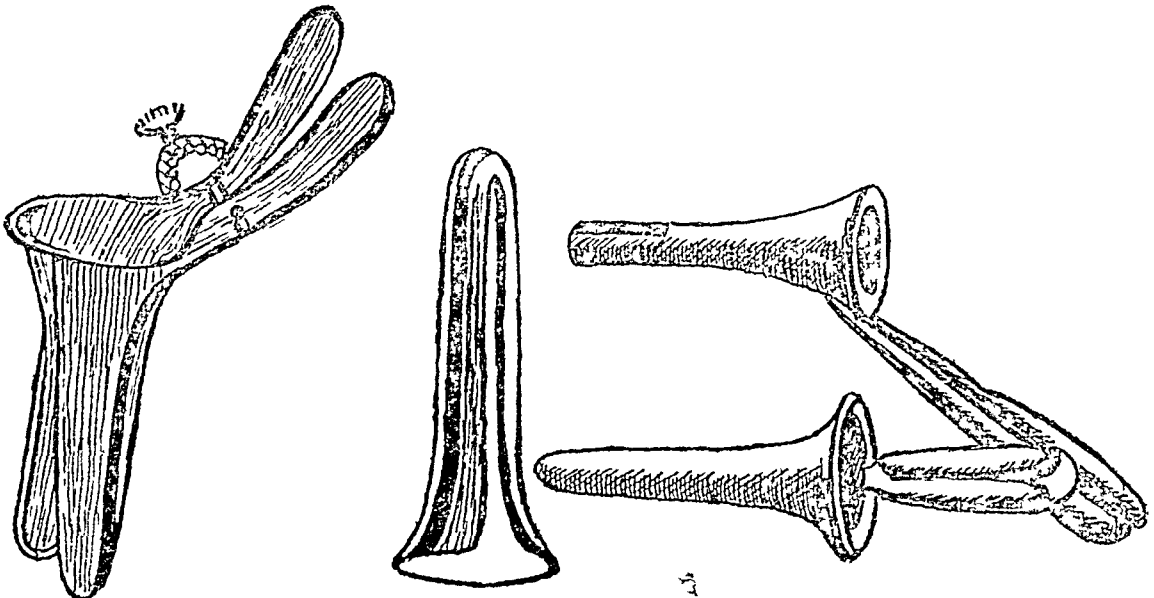
विभिन्न प्रकार के प्रोक्टसकोप

समान भूमि पर तखत या खाट बिछा कर लिटावे। ध्यान रहे कि उस दिन मेह बादल कुछ न हो। दूसरे पुरुष की गोद में उसका सिर रखकर सूर्य की ओर अभिमुख उसकी गुदा करावे। कमर कुछ ऊंची रहे और अगला धड़ कुछ नीचा रहे। अब उसे कपड़े की पट्टी आदि से बांध देवे और परिचारकों के द्वारा पकड़ कर रखवावे ताकि वह हिल न सके।"

ऐसी अवस्था के बाद यन्त्र द्वारा जो अर्श दृष्टि लभ्य है उस अर्श पर क्षार प्रलेप के लिए कहा गया हैं। आचार्य ने सर्व प्रथम दाहिनी ओर के अर्श पर क्षार लगावे। इसके व्रण के रोपण के बाद लगभग एक सप्ताह बाद बाईं ओर के अर्श पर और इसके बाद पीठ की तरफ के तथा अन्त में आगे की तरफ के अर्श पर लेप करने का विधान है। होता ऐसा है कि योग्य अर्श को कूर्च अथवा शलाका से उठा कर रूई से स्वच्छ कर लिया जाता है और क्षार लेपन किया जाता है। लगभग आधा मिनट तक लगा रहने के बाद क्षार को पोंछ दिया जाता है। रोगी एवं व्याधि के बलानुसार पुनः ऐसा ही किया जाता है जब तक कि अर्श पके जामुन के रंग के, दबे हुए एवं थोड़े झुके हुए न हो जायें। ऐसी अवस्था में अर्शों को धान्याम्ल, मस्तु, शुक्ति, बिजौरारस आदि से धो डाला जाता है। अब उस स्थान पर घृत में मुलहठी लगा कर जलन शान्ति के लिए लेपन किया जाता है। इतना सब विधान कर के अर्शोयन्त्र को निकाल लिया जाता है।

क्षार द्वारा दग्ध सम्यक् होना चाहिए अन्यथा उपद्रव हो जाते है। हम यहां सम्यक् दग्ध आदि के लक्षण बनाते है।

सम्यक् दग्ध —

पूर्व लिखित पके जामुन के फल के समान झुके हुए एवं दबे हुए होंगे। दोषानुसार बताते हुए वर्ण अलग अलग प्रकार के बताते हुए लिखा है—वातार्श में पक्व जामुनवत, पित्तार्श मे मृग और मयूर के कंठ वत एवं कफार्श में वृहती पुष्प के वर्णवत होता है। साथ ही साथ वातानुलोमन एवं पाचन के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

हीनदग्ध —

हीन दग्ध में अर्श का वर्ण कृष्ण पड़ जाता है। व्रण का रोपण नहीं होता, कण्डु, वायु की विपरीतता एवं इन्द्रियों की अप्रसन्नता रहती है। तथा व्याधि ज्यों की त्यों बनी रहती है।

अतिदग्ध —

यदि अधिक दग्ध हो गया हो तो गुदा में जलन, चिरमिराहट, मूर्च्छा, ताप, तृष्णा, और अधिक रक्तस्रावजन्य उपद्रव हो जाते हैं।

क्षार सूत्र—

क्षार सूत्र बनाने का विधान बताते हुए लिखा है कि कपास के सूत्र को समभाग मिले थूहर के दूध एवं हरिद्राचूर्ण की इक्कीस भावनायें दें। सूख जाने पर प्रयोग करे।

इसका प्रयोग करते समय भी पूर्व लिखित पूर्व कर्म करा अर्शोयन्त्र डाल कर अभिप्रेत अर्श की जड़ को उंगुली से उठा कर इस क्षार सूत्र को बांध दिया जाता है। हर तीसरे दिन नया क्षार सूत्र बांध देना चाहिए। प्रायः १५ दिन में वह अर्श कट कर गिर जाता है। कभी कभी एक मास भी लग जाता है। क्षार सूत्र बांधने से रक्त उस अर्श में रहने से वह सूज जाता है और यदि
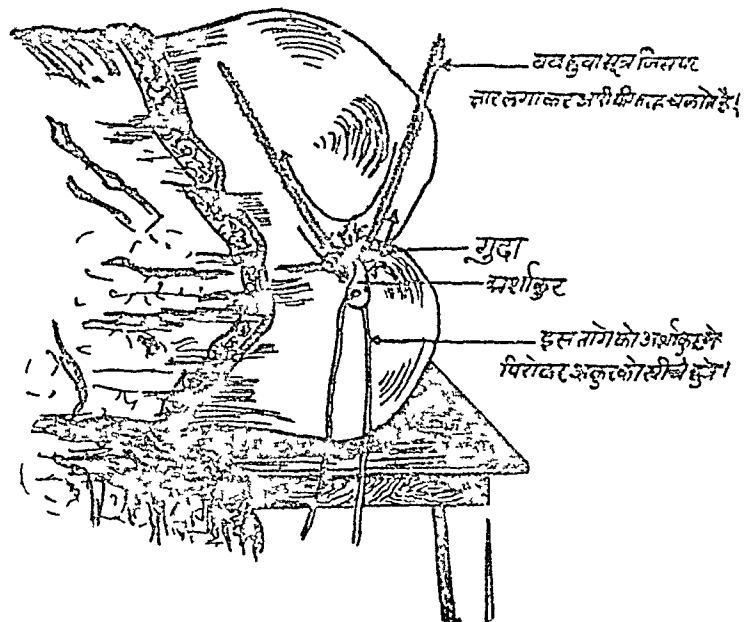
कब्ज रहा तो वह अतिकष्टकर होता है यों तो थोड़ा बहुत दर्द वैसे इस सूत्र के बाधने पर होता ही है तो भी मृदुरेचन देते रहना चाहिए।

जब अर्श गिर जाय तब प्रलेपवत घृत मुलहठी लेपन एव अन्य व्रण रोपण कार्य करना चाहिए।

पाश्चात्य मत—

एलोपैथ भी अर्श चिकित्सा मे इसी सिद्धान्त पर चलते है। उनके सिद्धान्तानुसार हम पाते है कि क्षार आदि का लेपन आदि न करके इंन्जेक्शन द्वारा औषधि को मस्से मे पहुंचाते हैं। उस सूचि-वेध विधि का विशेष विस्तार तो हमें अपेक्षित नहीं तो भी हम उस विषय मे कुछ जानकारी अवश्य देना चाहते हैं।

एतदर्थ अर्श सूचीवेध यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इनके आकार ५ एवं १० सी. सी. के होते है। मुख्यरूप से जो द्रव्य प्रयोग किये जाते है उनमे एसिड कार्वोलिक ग्लिसरीन मे मिलाकर या बादाम के तैल मे मिलाकर किया जाता है। इसमें भी सिद्धांत काम करता है चाहे वह द्रव्य का लेपन करके न करते हो तो भी तत्सम द्रव्य को मस्से के अन्दर प्रवेश करते है। साथ ही साथ सूत्र क्रिया का भी प्रयोग किया जाता है, चाहे वह आयुर्वेदज्ञ क्षार सूत्र न हो। होता यह है कि चिमटी से अर्श को पकड़कर उसकी श्लेष्मिक कलाको हटा कर केट-गट से बांध देते है।

वास्तव में देखा जाये तो आयुर्वेदोक्त क्षार कर्म पर आधारित कर्म ही पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में वर्णित है, जिन सबका प्रयोजन इस अर्श में सिरावरोध पैदा करना है। जब रक्त ही वहां तक नहीं आयेगा तो फिर वह अपने आप मृत हो नष्ट हो जाएगी।

अग्निकर्म –

अर्श चिकित्सा में अग्निकर्म का प्रयोग औषधोपचार एवं क्षार प्रयोग (इञ्जेक्शन) आदि की अपेक्षा बहुत कम होता है तो भी अर्श की चिकित्सा में इसका विशेष महत्व है अतः इसका वर्णन करना आवश्यक है। अग्निकर्म के महत्व को बताते हुये लिखा है कि अन्य औषध क्षार आदि से भी जिन अर्शों का नाश नहीं हो सकता उनको अग्नि कर्म से किया गया उपचार लाभ करता है। अग्निकर्म से जो अर्श ठीक हो जाते हैं वह पुनः उत्पन्न नहीं होते है। इस कर्म के करते समय रक्त स्राव भी नहीं होता और न पूयोत्पत्ति की ही सम्भावना रहती है। अतः अन्य उपचारों की अपेक्षा यह विशेष महत्वपूर्ण है।

अग्निकर्म किस अवस्था के अर्शों के लिए लाभ-प्रद है यह पीछे बता आये है। वह अर्श जो कठोर मोटी मूठ वाले, स्थिर और कर्कश होते है वह अग्निकर्म द्वारा साध्य होते है।

त्रिविध कर्म—

अग्निकर्म मे पूर्व कर्म, प्रधानकर्म और पश्चात् कर्म का वर्णन करना होगा। पूर्व कर्म मे क्षारवत् ही शोधन आदि कराकर अर्श यन्त्र द्वारा मस्से को दृष्टिलम्भ कर लिया जाता है। रोगी विशेष अवस्था में लिटा लिया जाता है। उस रोगी को हिलने न दिया जाए एतद् भी प्रबन्ध किया जाता है।

प्रधान कर्म मे अग्निकर्म योग्य अर्श शस्त्र द्वारा छेदन करके लौह जाम्बौष्ठ यंत्र विशेष के द्वारा दहन कर दिया जाता है। यह यन्त्र अग्नि मे लाल तपा हुआ होना चाहिये। सम्यक् दग्ध के चिह्न देखकर अर्थात् श्याम वर्ण, उभार एव रक्तस्रावावरोध होने पर दहन सम्यक् समझना चाहिए।

पश्चात् कर्म मे अग्नि के द्वारा दग्ध हुये अर्श के व्रण को भरने के लिये और वेदना तथा दाह की शांति के लिये मधु और घृत का अभ्यग करना चाहिये। मुलहठी एवं शालिमूलादि का लेप लाभ करता है।

दग्ध की अवस्थाओ का ज्ञान क्षारवत ही समझना चाहिये। हीन दग्ध और अतिदग्ध होना वास्तव में ही रोगी के लिये अहितकर है।

पाश्चात्य मत—

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के ज्ञाता चिकित्सक भी इस कर्म को किसी न किसी रूप मे करते है।

वह वास्तविक दहन (actual) अथवा विद्युत दहन का प्रयोग करते है। इनका सिद्धान्त भी ठीक आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार ही है कि उस स्थान पर फाइब्रस कोष पैदा किये जाये ताकि वह संकुचित रहे और अर्श का रूप उन सिराओं का न दने।

शस्त्रकर्म--

आयुर्वेद मे अर्श चिकित्सा का जो चतुर्थ उपचार है वह है शस्त्र कर्म। पूर्ववर्णित पतले मूल वाले, क्लेदयुक्त और उठे हुये अर्शों को शस्त्र साध्य कहा है परन्तु किसी प्रकार का विस्तृत विधान सुश्रुत से नहीं लिखा कि किस प्रकार से किया जाये। इसका एक मात्र कारण यह लगता है कि शस्त्र के छेदन भेदन आदि कर्मों का आचार्य ने दूसरे अध्यायों मे विस्तार से वर्णन किया है अतः इस अर्श के प्रसंग में उनकी पुनरावृति करना शास्त्र की दृष्टि से उचित नहीं, इसलिये केवल शल्यकर्म का निर्देश कर दिया है।

आधुनिक समय में भी अर्श का आप्रेशन किया जाता है। इसके लिये जो विधान है उसका नाम ह्वाइट हैड विधि (Whitehead's method) है। इस विधान के द्वारा आज भी शल्यकर्म किसी न किसी रूप में चल ही रहा है।

उपसंहार—

अतः हम पाते है कि अर्श की चिकित्सा का औषधादि चार प्रकार का उपचार बताकर आयुर्वेद ने इस महाकष्टकर व्याधि से छुटाकारा पाने के लिए बहुत ही उपादेय वर्णन किया है। जितनी फलप्रद औषधि चिकित्सा को पाने के लिये अभी कई दशक तक अनुसधान करने की आवश्यकता है। सुश्रुत वर्णित क्षारकर्म आदि की तुलना आधुनिक चिकित्सा मे वर्णित सूचीवेध भी नहीं कर सकते तो भी हम इतना मान सकते हैं कि उस चिकित्सा सिद्धांतो का प्रतिबिम्ब मात्र आधुनिक चिकित्सा शास्त्रो में भी भासित होता है।

—श्री शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य
५ देवनगर, करौलबाग, नई दिल्ली
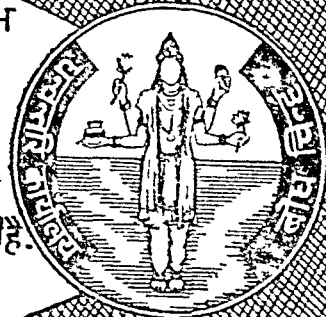
औषधि विवेचन

अपामार्ग का गर्भाशय पर प्रभाव

श्री डा० रामचन्द्र झा
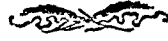
बचपन से ही मैंने बराबर बूढे लोगों को देखा है कि बच्चा पैदा होने के समय अडोस पड़ौस से जड़ी मंगाकर गर्भिणी की कमर में बांध देते है या पीसकर काछ पर लगाते हैं। हिदायत कर दी जाती है कि खबरदार बच्चा पैदा हो जाने पर तुरन्त खुलवा देना अन्यथा गर्भाशय बाहर निकलने का भय बना रहता है।

उक्त रहस्यों को बराबर देखने का मौका मिला। पश्चात् वयस्क होने पर पता लगाया तो उस जड़ी का नाम अपामार्ग है। तत्पश्चात् उसके गुणों की खोज बराबर करने लगा। एक दमा के रोगी को मेरे भाई साहब चूड़ा दही के साथ एतवार को १० तोला रोगी के ही हाथ से पिसवा कर ६ मिरच (गोल) खिलाते आते हैं। पीसते समय किसी की छाया न लगे इसलिये सवेरे पुरब मुंह बैठाते हैं) बहुतों को आराम भी होते देखा। पं० रामकरण मिश्र आयुर्वेदाचार्य उप सभापति वैद्य सभा दरभंगा जिला ने कहा था कि अपामार्ग की जड़ को अच्छी तरह पिसवा कर हैजा में देता हूं जिससे उल्टी दस्त के अलावा उसकी नाड़ी की गति भी ठीक हो जाती है।

इन सब बातों को सोच कर मैंने झांसी की इन्जेक्शन बनाने वाली एक आयुर्वेदीय फार्मेसी को शुद्ध अपामार्ग का एम्पुलस बनाकर भेजने का भी आर्डर दे दिया।

भावप्रकाश के निघण्टु खंड पर अम्बिकादत्त शास्त्री कृत आमयिक प्रयोग टीका मे देखा कि सुख प्रसव तथा योनि शूल के लिये उत्तम प्रयोग किया गया है।

योनिशूले—भिण्टूवा लिप्त योनौ मूल खर मंजरी पुनर्नवयो.।
नव सूताया शूलं योनि गतं सकलमपनयतः ॥
(वैद्य मनोरमा)

अपामार्ग पत्र द्वयं योनिमध्ये निविष्टः क्षणाद्योनि शूलं निहति। सुदुर्वार मध्येवमेव प्रयुक्तोविदध्यात्

मूलं प्रत्यक पुष्पा पाठायाश्च विनिवेतं।
गुह्ये स्त्रीणां दुस्प्रसवानां प्रसवं कुरुते सुखेनैव॥

इन पंक्तियो को देख कर दृढविश्वास से मैंने अपामार्ग का प्रयोग सुख प्रसव के लिये प्रारम्भ कर दिया।

प्रथम अनुभव आज से तेरह वर्ष पहले अपनी स्त्री की तकलीफ पर किया जिन्हे तीन दिनो से कष्ट था

अपामार्ग

२. C C. इन्ट्रावेनस दिया। २० मिनटों के बाद जाड़ा बुखार हुआ। उसके १० मिनटों के बाद बिना दर्द के लड़का पैदा हुआ। उसके हर प्रसव के समय इस सूई की इन्हें ख्वाइस रखती है। कष्ट को इस तरह दूर कर देता है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। हृदय की गति में मजबूती आजाती है। प्रसविनी को ऐसा मालूम होता है कि अभी बच्चा होगा ही नहीं। किन्तु बच्चा आहिस्ते से नीचे निकल पड़ता है। एलोपैथी में प्रसव कराने के लिये पिच्युट्रिन की सूई जो गर्भाशय मुख तीन अंगुल खुल जाने पर दिया जाता है सावधानी रखनी पड़ती है कि यदि तीन अंगुल से कम खुला रहेगा तो मूत्राशय आगे से संकुचित होने का भय बना रहता है और प्राण संकट आ सकता है। अपामार्ग में किसी तरह के संकट का सामना नही करना पड़ता है। सुन्दर सुख प्रसवकारक है। गर्भपात के लिये इसका प्रयोग निष्फल ही होता है बल्कि गर्भ की पोषण क्रिया बढ़ा देता है। मेरा अनुमान था कि पूरे नौ महीने बाद के प्रसव में ही काम करेगा किन्तु ऐसा नहीं है। ६ महीने या आठ महीने के भयंकर तकलीफ मे भी प्रयोग किया और शान्ति पूर्ण फल पाया। मेरी पुत्रवधू का गत वर्ष ८ महीने के गर्भ नष्ट समय में प्राण संकट हो गया था। २ C.C. सूई देते ही सब कष्ट दूर हो गया और प्रसव हो गया। इस वर्ष उसके नौवें महीने के बाद मिथ्या प्रसव वेदना ६ दिनों तक था साथ साथ आंव पेचिस की शिकायत थी। एक सूई २ C.C देते ही सब तक्लीफ दूर हो गई और दो दिनों बाद सुख प्रसव स्वभाविक हुआ।

सहदेव ठाकुर मु० पो० छतौना की पत्नी को ६ वें महीने में ५ दिनों तक बहुत तकलीफ थी। २ C.C. सूई दिया। २ घंटों के बाद साधारण तकलीफ के साथ प्रसव हुआ।

नरसिंह ठाकुर हजाम मु० रसलपुर पो० छतौना की पहली पत्नी समस्तीपुर हौस्पीटल में औपरेसन से मर गई। उसकी दूसरी पत्नी को वैसा ही कष्ट हुआ। २ C C. सूई देने के २० मिनटो के बाद सुख प्रसव हो गया। चरित्र सहनी मु० माधोपुर पो० छतौना की लड़की को प्रथम प्रसव कष्ट ३ दिनो से चल रहा था सूई देने के २० मिनटों के बाद सुख प्रसव हो गया।

—श्री रामचन्द्र झा शास्त्री I. M. B. I.
समस्तीपुर (दरभंगा) बिहार

गुण—नेत्रस्राव, नेत्रशूल, अक्षिपुट पिटिका, नेत्रपूय, नेत्र रक्तिमा, नेत्राभिष्यन्द, पोथकी इन सब रोगों से शतशोऽनुभूत है।

रक्तप्रदरान्तक—

गेरू ३ माशा, अशुद्ध श्वेत फिटकिरी ३ माशा, काजनी ३ माशा। यह १ मात्रा है।

ऐसी तीन मात्रा प्रातः मध्यान्ह एवं सायं दही की लस्सी के साथ खावें। भयानक रक्तप्रदर, रक्तस्राव में लाभ होता है।

—श्री नन्दलाल शर्मा आयुर्वेदरत्नाचार्य
गवर्न. आयु० डिस्पेंसरी, कोरवाखुर्द (अम्बाला)

रसायन—

नं० १—त्रिफला सत, गिलोय सत, गोखरूसत, सतावर सत, असगंध सत प्रत्येक ५-५ तोला बनाकर रखलें।

नं० २—पुनः बीज बन्द, तुलसी बीज, बिधारा बीज, कौंच बीज, लजनी बीज या पत्र ३-३ तोला लेकर कूट कपडछन कर चूर्ण करें और ऊपर नं० १ वाली सब दवा नं० २ में मिलाकर एक जीव करें और बोतल में रख काग लगादें। दवा तैयार है।

सेवन विधि—उपरोक्त मिश्रित दवा १ माशा, मिश्री १ तोला, गाय या बकरी का धारोष्ण दूध १ पाव सुबह शाम लेलें।

गुण—शारीरिक क्षीणता, कमजोरी, स्मृतिमंद, पुराना ज्वर, तपेदिक, मलावरोध, क्षुधामद, पुराना ज्वर, खून की कमी आदि रोगों को नष्ट कर शरीर तथा सर्वाङ्गों को पुष्टकर, व्याधि रहित करके वजन और ताकत बढ़ाती है।

पथ्य—गेहूं, चावल, आलू, टमाटर, चौलाई या बथुआ का साग, दूध, घी, शक्कर आदि।

अपथ्य—गुड़, तैल, खटाई, लाल मिर्च नसे की चीजें।

नोट—इस योग में A. B C D. E. आदि विटामिनों की प्रचुर मात्रा है और आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार इसमें रसायन औषधियां डाली गई है। रसायन औषधियां जरा व्याधिनाशक होती है। यह दवा प्रत्येक मिजाज वाले स्त्री, बालक, वृद्ध तथा युवकों के हर मौसम में बराबर लाभ करती है।

—श्री वैद्यराज भण्डारीलाल बरही (जबलपुर)

मुख विरेचन—

इमली तोला सात मंगावो,
संध्या को जल मेर मिलावो।
प्रातः घोटकर छानो भाई,
गुलकन्द तोला चार मिलाई॥
त्रय माशा सनाय मिलावो,
इम रेचन सों कष्ट मिटावो।
उष्ण प्रकृति जन कष्ट मिटावो,
'फय्याज' पीकर सुख उपजावो॥

रक्तवर्द्धक—

नौ तोला लोह मैल पुराना,
त्रिफला भी ले यही समाना।
साफ कड़ाही में डलवाओ,
खट्टा दही ता पर गिरवावो॥
चार उंगली दही ऊपर आवे,
चार दिवस यों ही रखवावो।
डेढ़ तोला सोंठ मिलवाओ,
घुटते घुटते खुश्क कराओ॥
खट्टे दही की लस्सी बनाओ,
या चूरन त्रय माशा खाओ।
प्लीहा जिगर के दोष हटावे।
रक्त कमी इससे मिटजावे॥
कांति बढ़े कुन्दन सम सारी,
'फय्याज' या चूरन गुणकारी।

प्रमेहहर—

विषतिन्दुक मंगवाय के कारी मिरच मिलाय।
इन्हें झीनी पिसाय के रत्ती सम वटी बनाय॥
शीत प्रकृति प्रमेह में गोली चार नित खाय।
'फय्याज' भोजन भी पचे प्रमेह रोग भी जाय॥

—श्री शेख फय्याज खां
आयुर्वेद शास्त्री, एम. डी. एच विशारद,
भीनमाल (जालोर)

१—काला पाउडर—(गु० सि० प्रयोगांक प्रथम भाग पृष्ठ २१२)

कबीला, मुर्दासङ्ग, नीलाथोथा, आंवले सूखे, पपडिया कत्था, सुपारी जली हुई, काली मिर्च प्रत्येक १-१ तोला, कपूर ६ माशा लें। इन सबको बारीक कूट पीस कर कपड़े में छान लें। इसे घी में मिला कर लगायें।

यह एक बहुत ही सस्ता तथा आशुफलप्रद योग है। इसे मैंने सूखी तथा गीली खाज पर सरसों तेल के साथ प्रयोग किया। घाव पर भी उत्तम कार्यकर पाया।

२—लाल अक्सीर—(गु० सि० प्र० २ भाग ६४६ पृष्ठ)।

काली मिरच, नौसादर १-१ तोला, सोना गेरू २ तोला, इन तीनों चीजों को महीन पीस कपड़छन कर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा—२ रत्ती। अजीर्ण, उदर-शूल, अफारा आदि उदर रोगों पर सुखोष्ण जल या अर्क सौंफ के साथ दें। तत्काल लाभ होता है।

इसका प्रयोग आमातिसार, मरोड़ के दस्त पर तथा अजीर्णातिसार पर किया। फल संतोषप्रद रहा। आमातिसार में कुड़ा की छाल के क्वाथ के साथ उत्तम फलदाता है।

३—बालसजीवनी—(गु० सि० प्र० भाग ३ पृष्ठ ६८१)

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म उत्तम, जायफल, जावित्री, लौंग सभी समभाग लें। पहले कज्जली करें। तत्पश्चात् शेष सभी औषधियां मिला खरल कर रखें। आधी रत्ती से १ रत्ती की मात्रा मे मा के दूध, या शहद या पान के रस में दें।

यह ज्वर में पान के रस के साथ प्रयोग करने से कफ तथा जुकाम में साधारण कार्यकर है पर ज्वरातिसार में फायदेमंद है। यदि साथ में संजीवनी वटी मिला दी जाय तो उत्तम कार्यकर होजाता है।

४—पार्श्वशूल—कच्चीफिटकरी, काली मिर्च सम-भाग का वस्त्रपूत चूर्ण कर शीशी मे कडी डाट लगा-कर रखें। मात्रा ३ ३ माशे मधु से दे। प्रायः एक ही मात्रा से पार्श्वशूल, हृदय वेदना तथा हड़कल दर्द भी हल्का हो जाता है। दूसरी मात्रा शायद ही देनी पड़ती है। आवश्यकता होने पर ४० मिनट पश्चात् दे सकते है।

५—महाज्वरांकुश वटी—(गु० सि० प्र० भाग ४ पृष्ठ ४३३)

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध कृष्ण वत्सनाभि तीनों १-१ तोला, कृष्ण धतूरा बीज, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपर-प्रत्येक ३-३ तोला लें। प्रथम कज्जली कर तब सबका चूर्ण कर मिलायें और जम्बीरी नींबू के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोली बनायें।

१ या २ गोली (शक्ति के अनुसार) मधु से दें। नित्य ज्वर, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर नष्ट होते हैं। (विस्तृत विवरण यथा स्थान देखें)

यह प्रयोग भी साधारण ज्वर तथा मलेरिया ज्वर पर प्रयोग किया। फल मध्यम पाया।

६—उदरशूल हर चूर्ण—(गु० सि० प्र० ४ भाग पृष्ठ ३१०)

नवसादर १॥ तोला, टाटरी १ तोला, सोडा बाई कार्ब २ तोला—तीनों को पीस मिलाकर रखलें।

काच के गिलास या पत्थर के बर्तन में १ छटाक ताजा पानी लेकर उसमें ३ माशे दवा छोड दे और भाग उठते ही तुरन्त रोगी को पिलादे।

तत्कालिक पीड़ा शमनार्थ अति उत्तम दवा है। कैसा भी उदरशूल हो तत्काल बंद करता है तथा लगातार प्रयोग करने से बहुकालीन उदरशूल में लाभकर है। प्रयोग २-३ सप्ताह करना चाहिए।

८-उदरशूल हर वटी-(गु० सि० प्र० भाग ३ पृष्ठ ६८३)

अर्क पुष्प १० तोला, सेंधा नमक, नौसादर ४-४ तोला, टंकण क्षार, काली मिरच, लौंग, छोटी पीपल, सौंठ, हींग भुनी २-२ तोला, अकरकरा १ तोला ले। सभी को कूट पीस छोटे वेर के समान गोली बनाले। प्रतिदिन २ से ५ गोली उष्ण जल से दें।

यह वटी साधारण कार्य करती है।

९-शातिकर-(गु० सि० प्र० भाग ४ पृष्ठ १९६)

शुद्ध हिंगुल, टाटरी, जायफल प्रत्येक १-१ तोले। इन तीनो को पीस कर शीशी में सुरक्षित रखे।

मात्रा—२ से ४ रत्ती पूर्ण वयस्क के लिए। बच्चो को कम मात्रा दे। प्रत्येक प्रकार की वमन, उत्क्लेश, अरुचि,अग्निमाद्य आदि विकारो पर सद्यः फलप्रद है।

यह रस वमन पर हीन कार्यकर है। कई लोगो पर प्रयोग किया पर आशुकारी फलप्रद नहीं पाया।

१०-शिलाजत्यादि तैल-(गु० सि० प्र० भाग ४ पृष्ठ ४०)

हर्र छाल, बहेड़ा छाल, आवला, गूगल, राल, शिलाजीत, गधाविरोजा, मोम, कपूर प्रत्येक ५-५ तोला, नीम के पत्र ३० तोला, निगुर्ण्डी (संभालू) पत्र १५ तोला, कार्बोलिक एसिड २॥ तोला, तिल तेल १ सेर, जल ५ सेर।

प्रथम त्रिफला, नीम एव सभालू के पत्र जल मे भिगोकर उबाल ले। चौथा हिस्सा जल शेष रहने पर उतारकर छान ले। फिर इस जल मे तिल तैल, गूगल, शिलाजीत, गन्धाविरोजा, मोम उपरोक्त मान के अनुसार डालकर मन्दाग्नि से पाक करे। जब तैल सिद्ध हो जाय तो उतार कर छान लें। तत्पश्चात् कार्बोलिक एसिड तथा कपूर को जल के रूप मे कर ले। दोनों को मिला कर बोतल में कुछ देर रखे रहने से तरल रूप मे हो जाते हैं। इस द्रव को छाने हुए तैल मे मिला बोतल में भरकर रख दे।

यह तैल अधिक शीतल होने पर कुछ मलहम सदृश गाढ़ा भी हो जाता है। यदि उसको प्रवाही रूप मे आवश्यकता पड़े तो इसे किंचित उष्ण करके ही कार्य मे लाना चाहिये।

यह तैल कई प्रकार के घाव-शोधन तथा रोपण कटे, जले पर अक्सीर तथा खाजनाशक है। अत्युत्तम है।

११-अर्क पुष्पादि वटी-(गु० सि० प्र० भाग ७ पृष्ठ २०)

आक की बन्द कली २ छटाक, जीरा भुना, नौसादर, सेंधा नमक, काली मिर्च, काला नमक, यवक्षार प्रत्येक १-१ तोला ले। पानी से मर्दन कर चने बराबर गोली बनावे।

बच्चों के पेट दर्द, अपचन दूध पलटना आदि आदि उदर रोगो पर लाभकर पाया। बार बार कच्चे दस्त होते हो तो अजवायन आदि के साथ देने पर अति लाभकर है।

१२-ज्वरमातग केशरी-(घर का वैद्य भाग ४ पृष्ठ ३७ लेखक कविराज दाऊदयाल गुप्त मथुरा)

योग-शु० मीठा तेलिया, शु० धत्तूर बीज २-२ माशे, कज्जली २ माशे, शु० कुचला, शु० हरताल, स्वर्ण माक्षिक भस्म, यवक्षार, सज्जी, हरड, सोंठ, पीपर, काली मिरच और सेंधानमक १-१ माशे।

विधि-कपडछन चूर्ण कर संभालू पत्र रस के साथ मर्दनकर १॥-१॥ रत्ती की वटी बना लें।

प्रयोग-सुबह सायंकाल १-१ गोली गर्म जल के साथ दे।

गुण-सर्व ज्वर, आम ज्वर, पीलिया, उदररोग, अजीर्ण दूर होते है।

अनुभव—मैंने इसे हर तरह के ज्वरो पर अनु-

पान भेद से प्रयोग किया है और मैं इसे ही ज्वर रोगियों को देता चला, आरहा हूँ। असफलता नहीं होती है। ज्वर पर अद्रक स्वरस, पित्तज ज्वर पर मधु, शर्करा की चासनी तथा विषम ज्वर पर २ रत्ती गोदन्ती भस्म के साथ तुलसी स्वरस तथा कफज ज्वर पर पान और अदरक स्वरस के साथ अत्यधिक लाभ होता है।

–श्री डा० मदनसिंह शिक्षक ख़ुड़ेना धुरकोट (विलासपुर)

१—फादर आफ पेन्सलीन [धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३३]—

मैंने भगन्दर के रोगी पर अनुभव किया। शत प्रतिशत सफलता मिली। इसके अलावा चर्म रोग, कर्णपूय व्रण आदि पर उत्तम कार्य करता है।

२—प्रसूत ज्वर चिकित्सा [धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग पृष्ठ ३७७]—

औषधि तथा क्वाथ आदि प्रयोग विधि के अनुसार प्रयोग कराई गई। यह प्रसूत ज्वर के लिये शुक्ल जी का उत्तम अनुभव पूर्ण योग है। मैंने कई रोगियो पर परीक्षा कर यश प्राप्त किया है।

–श्री श्रवणलाल गर्ग आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि श्री पुनीत आयुर्वेद भवन, सुजरमा (म० प्र०)

पहेलियां

अग्नि शिखा सम चारु वर्ण्य,
वर अंशुक पीत निकलते है।
उष्ण कटुक दोषत्रय हारी,
नेत्र हास्यकर होते हैं ॥ १ ॥

नारायण प्यारी भूतघ्नी,
बहुमंजरी जिसमें हों।
हृद्या श्लेष्म वात रुज हारिणी,
स्वर्ग प्राप्ति सेवन से हो ॥ २ ॥

उग्र गन्ध से भूत मृगी,
वातादिक दूर भगाती जो।
वमन मार्ग से श्लेष्मा को हर,
सर अरु वह्नि बढ़ाती जो ॥ ३ ॥

नि:स्वन दीर्घ निकलता जिससे,
जलधर जात कहावै जो।
पित्त अरु पंक्ति शूल संहारी,
लेखन नेत्र्य शीत लघु जो ॥ ४ ॥

दाह रक्त कफ पित्त विसर्प अरु,
मूत्र रोग जो हरता है।
रन्ध्र युक्त जिहि धूम्र यन्त्र अरु,
शब्द यन्त्र भी बनता है ॥ ५ ॥

नोट—इन पहेलियों के उत्तर आगामी अङ्क में प्रकाशित किये जायंगे।

–रचियता श्री वेदमित्र आर्य आयुर्वेद भास्कर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

तीन सफल प्रयोग–

मेरा नेत्र विन्दु—गुलाब जल १ तोला, फिटकरी आध तोला, रसोत ¹⁄₁₀ तोला, सेधा नमक १ माशा, शक्कर ½ तोला, एक्रीफ्लेविन १ रत्ती। सबको गुलाब जल मे हल करले। बाद में छान कर स्वच्छ शीशी मे रखले।

प्रयोग विधि—ड्रापर या रूई से दिन मे तीन चार बार २-२ बूंद आंखो में डालना चाहिए।

गुण–आंखो की ललाई जलन कसक आदि को शीघ्र दूर कर आंखो को स्वच्छ एक दो दिन में ही करता है।

वच्चो के आलची खाज खुजली तथा जले पर–

चिरचिटा तेल—

चिरचिटा (अपामार्ग) की जड़ १ छटांक को जल योग से कल्क कर एक पाव शुद्ध तिल तेल मे डालकर तेल पाक करे। तेल मात्र रह जाने पर छान कर शीशी में रखकर आधा तोला देशी कपूर मिला दे और कड़ा कार्क लगा दे। घाव को साफ कर तैल दिन मे दो तीन बार लगा देना चाहिए। शीघ्र लाभकर है।

—कालिक पेन पर गुप्त प्रयोग–स्वयं पर अनुभूत–

सन् १६५३ से मुझे मलेरिया बुखार आया। पेल्युड्रीन की २-४ गोली खालेने पर बुखार चार आठ दिन के लिए रुक जाता था पुनः पुनरावर्तन हो जाता था। तीन सप्ताह तक ज्वर लौट लौट आता रहा। २४-२५ गोली पेल्युड्रीन खा डालीं पुनः कुनैन के इन्ट्रावेनस इन्जेक्शन से ज्वर दूर हुआ। तदनन्तर १५-२० दिनो के पश्चात् महान पेट दर्द शुरू हुआ। दर्द के समय जान निकली सी जाती थी आत्महत्या कर डालना ही सूझता था। डा० विजेन्द्र कुमार आर्य B *I* *M*. *S*. के दवाखाना का सारा मिकश्चर खत्मकर डाला, नारीकेल लवण, कच्ची हींग आदि का सेवन किया क्षणैक लाभ प्रतीत होता था फिर १ घंटा १॥ घंटा में फिर दौरा हो जाता था। १ माह तक परेशान रहा। यहां तक कि कई लोगों ने एक्सरे लेने का परामर्श दिया। पर एक महात्मा प्रदत्त योग का स्मरण डा० विजेन्द्र कुमार आर्य को हो आया मैंने उसे सिर्फ १ सप्ताह सुबह शाम सेवन किया स्वस्थ हो गया। फिर भी पुनरावर्तन न हो इस लिए पुनः एक सप्ताह सेवन किया फिर आज तक वैसा दर्द नहीं हुआ है योग साधारण है–

कच्ची फिटकरी २ भाग इलायची छोटी का दाना १ भाग दोनो को चूर्ण कर ३ माशे, लहशुन स्वरस ३ से ६ माशे तक दो औंस जल मे मिलाकर (चूर्ण फांक कर) पी लेना चाहिए।

—श्री डा०मदनसिंह शिक्षक, बुड़ेना
धुरकोट (विलासपुर)

रक्त प्रदर–

चाहे कैसा भी हो २ तोले से लेकर १ छटांक तक मुलतानी मिट्टी पानी मे घोल पिलाने से तुरंत लाभ होता है।

कच्छप चूर्ण—

कछुवे की खोपडी कपडछन कर शीशी में रखें। आधी रत्ती से एक रत्ती तक वलाबल विचार सूखे बच्चो को केवल प्रात काल एक बार ही दे और फिर ३–४ दिन के पश्चात् चमत्कार देखें।

—श्री वैद्य बृजमोहन राजकमल दवाखाना
फतेहाबाद (हिसार)

दो सफल प्रयोग

(१) रिकेट्स एवं बालशोष (सूखा) गुदपाक तथा अतिसार जीर्ण ज्वर नाशक बल्य रसायन योग है। मुक्ताशुक्ति पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, गोदंती भस्म, जहरमोहरा खताई पिष्टी, बंशलोचन प्रत्येक

८-८ आना भर, स्वर्णमाक्षिक भस्म ४ आना भर, छोटी इलायची का बीज १ रु० भर, मण्डूर भस्म ४ आना भर, मिश्री २ रु० भर सबको एकत्र कर हंसराज के स्वरस मे १ दिन मर्दन करे। पश्चात् ११ दिन अनार के रस मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। शिशुओं को दिन में ३ बार मां के दूध के साथ सेवन करावे और मालिश के लिए काला तिल एवं मालकागनी बकरी के दूध से पीस कर सारे शरीर मे मालिश करावे अथवा चन्दन बलालाक्षादि तेल की मालिश करावे। मा को पित्त-बर्धक पदार्थ से बचावें। इस योग के सेवन से एवं मालिश करने से सर्वपैथी से निराश हुए रोगी को आराम होता है। मेरा यह अनुभव सैकडो बालकों के ऊपर है।

(२) आन्त्रिक ज्वर पर अनुभव—संजीवनी वटी ३ रत्ती, मुक्ताशुक्तिपिष्टी ३ रत्ती, शङ्खभस्म ३ रत्ती, अभ्रक भस्म ३ रत्ती चारों को सम्मिलित करके ४ मात्रा बनावे। प्रत्येक मात्रा मे ३ लौंग जलाकर शहद से प्रति ३–३ घण्टे में चटावे। ऊपर से निम्न क्वाथ पिलावे। मुनक्का, अजीर, किशमिश, गोखुरू प्रत्येक २—२ तोला इनका चतुर्थांश क्वाथ पिलावे। शीघ्रातिशीघ्र ज्वर का पाचन होता है।

—श्री मुक्तामणि द्विवेदी आयुर्वेद विशारद
शक्ति चिकित्सालय, करारी (इलाहाबाद)

शोथ रोग पर —

काली मिरच को पीस कपड़छन कर थूहर के दूध में भिगोवे और अच्छी तरह घोटें। वटिका बांधने योग्य हो जाने पर चने प्रमाण गोलिया बना दें। सुखाकर शीशी में भरले।

उपयोग—१ तोला गाय के घी से एक वटी प्रातः और एक इसी तरह शाम को खाना खाने से पूर्व ले।

गुण—प्रतिदिन एक दो दस्त हो जाते है और शोथ रोग कुछ सप्ताह के सेवन मे बिलकुल दूर हो जाता है। परीक्षित है। —श्रीअमरनाथ शर्मा वैद्य
तलाओ पो. पोण्टा (मण्डी)

कतिपय सफल प्रयोग—

ज्वर—

सौंफ पुटपाक विधि से भस्म कर रखले। मात्रा—१ मासा में खाड १ मासा मिला कर गरम जल से दे। गुण—चढ़े हुए ज्वर में देकर रोगी पर कपड़ा डाल दे; खूब पसीना आयेगा और ज्वर उतर जायगा। इसके प्रयोग से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

अतिसार—

सफेद राल व खांड सम भाग चूर्ण कर रखले। ६ माशे की मात्रा मे शीतल जल से दें। गुण—रक्तातिसार को तुरन्त लाभ करता है।

ग्रहणी—

अरलु का चूर्ण कर रखले। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक दही आदि अनुपान से दे। गुण—इसके प्रयोग से ग्रहणी अतिसार तथा कफ और वात रोग भी दूर होते हैं।

कृमि रोग—

खुरासानी अजवायन का चूर्ण कर रख लें। मात्रा—४ रत्ती से २ माशे तक गुड़ अथवा मधु से दें गुण—सब प्रकार के कृमि नाश करती है।

वमन—

बेर की गुठली की मज्जा पीस कर मधु से चटावें। वमन तत्काल शान्त हो जाती है।

दाह—

घी को १०१ बार पानी से धो कर मले तो कैसी भी दाह हो शान्त हो जाती है।

मूत्र कृच्छ्र—

इसबगोल १ तोला आधा सेर जल में १० मिनट तक उबाल कर लुआब छान लें। मात्रा—५ तोला प्रात.साय वा सध्याह्न दिन में तीन बार मिश्री मिला कर पीवे। गुण—कष्टपूर्वक थोड़ा थोड़ा मूत्र आता हो तो इससे खुल जाता है।

मूत्रावरोध—

सज्जीखार कांजी से पीस कर लेप करने से रुका हुआ मूत्र खुल जाता है।

—श्री गेबी अली पाठक,
बोलिया (मन्दसौर) म. प्र.
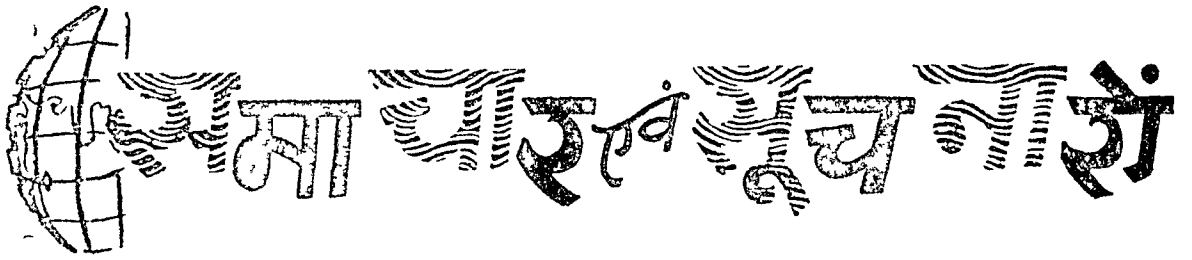
भारतीय चिकित्सा परिषद् (Council of Indian Medicine)

द्वितीय वार्षिक अधिवेशन हैदराबाद में सम्पन्न

२ व ३ जून को हैदराबाद दक्षिण में देशी चिकित्सा बोर्ड का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। १ जून को प्रातः ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी सभापति, श्री आशुतोष मजूमदार, रजिस्ट्रार बोर्ड आफ इंडियन मैडीसिन दिल्ली, श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, प्रधान मंत्री अ० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन दिल्ली, श्री कान्तिनारायण मिश्र, डायरेक्टर आयुर्वेद पंजाब, श्री दरबारीलाल शर्मा, प्रधान यू० पी० बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसिन, श्री प्रियव्रत शर्मा, डायरेक्टर आयुर्वेद बिहार आदि महानुभाव पधारे। आपका सिकन्दराबाद पर हार्दिक स्वागत किया गया। स्टेशन पर श्री राय रामचन्द्र अस्थाना, स्पेशल आफिसर इण्डियन मैडीसिन डिपार्टमेंट, डा. ए लक्ष्मीपति प्रधान स्वागत समिति, कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी, श्री पं. राधाकिशन जी द्विवेदी, राजवैद्य गयाप्रसाद जी शास्त्री, वैद्य राजाराम शर्मा, वैद्य रामकृष्ण पांडे, श्री रामानुज स्वामी, वैद्यराज श्री परांकुशदास (सदस्य बोर्ड आफ इण्डियन मैडीसिन) आदि महानुभाव उपस्थित थे। श्री अस्थाना ने आप सबका पुष्पमालाओं से स्वागत किया। शाम की गाड़ी से श्री प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य, डायरेक्टर आयुर्वेद राजस्थान, श्री गोपालदत्त शर्मा, सदस्य देशी चिकित्सा बोर्ड राजस्थान, श्री महावीरप्रसाद भारद्वाज, रजिस्ट्रार देशी चिकित्सा बोर्ड राजस्थान तथा उदयपुर आयुर्वेद महाविद्यालय के आचार्य तथा रामरक्ष जी पाठक निर्देशक स्नातकोत्तर परीक्षण केन्द्र जामनगर भी पधारे। २ तारीख को प्रातः पधारने वालों मे श्री डा. सी. द्वारकानाथ (भारत सरकार के सलाहकार), श्री एस. एन. बोस, प्रिंसीपल डी. ए. वी. कालेज जालन्धर, श्री एल. एस. भटनागर, सयुक्त निर्देशक आयुर्वेद मध्य प्रदेश, श्री आर. आर. त्रिपाठी (म. प्र.), श्री के. वी. कुलकर्णी, श्री बी. सी. लागू, श्री आर. डी. खाडलीकर (पूना), श्री दीनदयाल जी तिवारी (नागपुर), श्री एम. सी. नन्दा (उड़ीसा), श्री अब्दुल लतीफ (उ. प्र.) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

२ तारीख को प्रातः इण्डियन मैडीकल एसोसियेशन हाल मे श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी जी की अध्यक्षता में सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। श्री डा. लक्ष्मीपति ने स्वागत भाषण पढ़ा। उन्होने अपने भाषण मे आंध्र प्रदेश में आयुर्वेद के विकास की चर्चा की तथा ग्रामों को इकाई मानकर ग्रामीण वैद्यों को प्रशिक्षित कर उनकी सेवाओं से लाभ उठाने पर जोर दिया। श्री आशुतोष मजूमदार ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनाई एव बोर्ड की गतिविधियो से सदस्यों को अवगत कराया। श्री डी. पी. करमरकर भारत के स्वास्थ्य मन्त्री ने अपने संदेश में यह आशा प्रकट की कि आयुर्वेद पाठ्यक्रम एवं प्रवेश योग्यता के सम्बन्ध मे सर्व सम्मति से ऐसे निर्णय करेगा जो भारत सरकार के लिए मार्गदर्शन करेंगे।

श्री पी. वी. जी. राजू, स्वास्थ्य मन्त्री आन्ध्र प्रदेश ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा

गमन) अवरुद्ध सा हो जाता है। इसी श्वास वैषम्य को श्वास कहा जाता है।

इस परिस्थिति से श्वास रोगी को मुक्ति दिलाने के लिए च्यवनप्राश में एकत्रित सब द्रव्य सहायक होते हैं। श्वास वैषम्य में मूल विकृति स्थान आमाशय है। च्यवनप्राश के सेवन से श्वास रोगी के आमाशय पर ही प्रथम प्रभाव होता है। आमाशय की रस क्रिया चालित होते ही श्वास रोगी सुख का अनुभव करता है।

क्षीणक्षत, वृद्ध बाल–रक्तनिःसृति (रक्ताल्पता, अनीमिक) से उत्पन्न दौर्बल्य एवं वार्द्धक्यजन्य, कृशत्व हरण तथा बालकों के अंगों का वर्द्धन करना च्यवनप्राश का विशेष गुण है। यह शक्ति इसे आमलकी, अष्टवर्ग, वंशलोचन तथा अन्य रसायन गुणकर द्रव्यो के प्रभाव से प्राप्त है। क्रमशः धातु वृद्धि पर ही यह गुण अवलम्बित हैं। और उत्तरोत्तर धातु वृद्धि पाचकाग्नि और धात्वाग्नियों के आधार पर होती है। अतः च्यवनप्राश सेवी की पाचकाग्नि बढ़ती है और उत्तरोतर धातु वृद्धि के साथ साथ उपर्युक्त गुण प्राप्त होते जाते हैं।

स्वरक्षय— यह रोग भी वात विकृति से सम्बंध रखता है और वातनाशक होने से इस रोग मे उत्तम लाभ करता है।

उरोरोग—इसके दो रूप हैं। जब श्लेष्मा उरः प्रदेश(स्वस्थान) मे वायु के कारण संश्लिष्ट हो तब एवं उरःक्षत दोनो ही रोगो मे च्यवनप्राश कफ प्रस्राव वातनाशक क्षत संरोहक होने के कारण लाभ करता है।

हृद्रोग—जब वात प्रकोप के कारण हृत्प्रस्पन्दन मात्राधिक्य हो तब इसका उपयोग लाभदायक होता है।

पिपासा—वातजनित तृषावृद्धि मे यह तुरंत लाभ करता है।

मूत्रदोष–मूत्राघात और प्रमेहों में अपने अनेकात्मक द्रव्यों के संगठन से प्रभाव करता है।

शुक्रदोष–इसके सेवन से क्रमशः शुद्ध, स्वस्थ और बलवान् धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से शुक्र का शोधन स्वतः ही परिणित होता है। अतः शुक्रदोष दौर्बल्य दूर होकर शुक्र मे संतानोत्पादक शक्ति की प्रवल वृद्धि होती है। अनेक रोगी तो यह कहते है कि इसके १ सप्ताह के प्रयोग से ही हम पूर्णतः ब्रह्मचर्य पालन मे असमर्थ रहे है।

मेधास्मृति आदि—च्यवनप्राश रसायनधर्मा होने के कारण मेधास्मृति आदि रसायन सेवनोद्भव गुणों को प्रदान करता है।

मात्रा–साधारणतः ६ मासे से २ तोला तक प्रयोग में आती है। मात्रा–का निश्चय रोगी की दशा पर अवलम्बित है।

अनुपान—दूध सर्वोत्तम अनुपान है। किन्तु सम्प्रति चाय के साथ भी इसका काफी प्रचलन हो गया है।

समय–प्रातः सायं दो बार तो अवश्य लेना चाहिए। रात्रि को भी लिया जाना अधिक श्रेयस्कर है।

योगवाही—च्यवनप्राश में योगवाहित्व भी पर्याप्त है अतः इसे विशेष अवस्थाओं में धातु, उपधातु भस्म मे सिद्ध रस एवं अन्य क्वाथादि के विविध अनुपानों या सहायक पदार्थों के साथ भी सेवन किया जा सकता है।

बंधुवर लेख कुछ लम्बा हो गया है। अतः इसके आमायिक प्रयोग नहीं लिखे।

—श्री कविराज हरदयाल गुप्त वैद्य आयुर्वेदाचार्य
श्री मूलचंद खैरातीराम ट्रस्ट आयु० चिकित्सा०,
लाजपतनगर, नई दिल्ली।

अपस्मार (मृगी)

श्री पं० विष्णुदत्त शर्मा
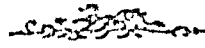
सम्प्राप्ति—

चिंता शोक आदि कारणों से कुपित होकर हृदय (मस्तिष्क) में स्थित हुए दोष स्मृति को नष्ट करके अपस्मार रोग उत्पन्न करते हैं। (म. न.)

परिभाषा—

अपस्मार शब्द अप और स्मार से बना है।

'अप' का अर्थ नाश करने वाला और 'स्मार' का अर्थ स्मृति है। अथवा—

जिस रोग में स्मृति का नाश हो, उसे अपस्मार कहते है। या स्मृति नाशः की प्रधानता के कारण इस रोग का नाम अपस्मार है।

ज्ञान के तीन प्रकार होते है। स्मृति, अनुभव, और प्रत्यभिज्ञा। अपस्मार वह रोग है जिसके द्वारा इन तीन प्रकार के ज्ञानो का लोप हो जाय, किन्तु वह ज्ञान लोप आवस्थिक होता है और उस समय वीभत्स चेष्टायें (आंख), मुंह व गर्दन का टेढ़ा होना, हाथ पांव का कड़ापन, श्वासावरोध आदि) भी होती है।

अ—दोष प्रकोप से स्मृति का नाश होने पर अन्धकार में प्रवेश करने के समान अनुभव होना और हाथ पैर फेकना तथा आंखे चढ़ाना अपस्मार कहलाता है।

ब—स्मरण बुद्धि और सतगुण के लोप होने से वीभत्स चेष्टाओ के साथ बहुत देर तक अंधेरे मे घुसे रहने और अज्ञान से व्याप्त होने को अपस्मार कहते हैं।

पूर्व रूप—

अपस्मार होने के पूर्व हृदय में कम्पन और शून्यता (खालीपन) की अनुभूति, पसीना निकलना, सोचते रहना, मूर्च्छा, बुद्धिनाश और निद्रानाश होवे है।

लक्षण—

अपस्मार रोगी की आंखों के सामने अन्धेरा छा जाता है और उसकी स्मृति का लोप हो जाता है और वह कभी कभी मिथ्या रूप भी देखता है नहीं भी देखता, और मूर्छित होकर गिर भी जाता है। हाथ पैरों को मारता है और उसके शरीर में अनिच्छित खिचन और अकड़न भी आजाती है। और वह अपने दांतो को कटकटाता है। और अपनी जीभ को काट भी लेता है। उसकी आंखें और भौंहें टेढ़ी हो जाती है, और दौरे का वेग शांत हो जाने पर वह स्वस्थ व्यक्ति के समान चैतन्य होकर उठ बैठता है। उसके सिर मे चक्कर या शूल का अनुभव होता है। रोग वृद्धि पर उन्माद और पक्षाघात का होना सम्भव है। किसी किसी के मत से यह स्नायु मंडल की क्रिया विकार से उत्पन्न होता है। उनके अनुसार इसका रोगी अचानक चीख मार कर गिर पड़ता है और उसके मुंह से फेन आने लगता है। दौरे के पूर्व सिर में चक्कर और दर्द होता है और ऐसा जान पड़ता है कि खोपड़ी के अन्दर कोई कीड़ा चल रहा है। आंखो के सामने अन्धेरा छा जाता है। कानों में भों-भों का शब्द सुनाई देता है और बदन मे दर्द तथा सारे शरीर मे कपकपी का अनुभव होता है। उसके अङ्ग अकड़ने लगते हैं। गर्दन कड़ी और टेढ़ी हो जाती है। आंखो की पुतलियां नीचे ऊपर उठने लगती है। हाथ की उंगलियां सिकुड़ जाती हैं और कलेजा धड़कने लगता है। चेहरा पहले पीला पीछे लाल हो जाता है। ठंडा और लेसदार पसीना निकलता है। वह रोने की कोशिश करता है, पर रो नहीं सकता, सांस लेने से कष्ट होता है। सांस रुकने लगती है और कभी कभी बन्द भी हो जाती है। उसमे स्पर्श शक्ति नहीं रहती, वह आत्मज्ञान शून्य हो जाता है। बिना इच्छा के मल मूत्र करता है। और कभी कभी उसका वीर्य भी निकल जाता है।

नाडी की चाल स्वाभाविक रहती है। ऐसे लक्षण कुछ सेकेण्ड से लेकर आध घन्टे तक रहते है। दौरा शांत होने पर रोगी निर्बल होकर उठता है और सोना चाहता है फिर गहरी नींद आती है।

(अ) माता पिता के वंश में रोग का होना, चोट का लगना, डर जाना, संक्रामक व्याधियां (छूत की बीमारियों का होना), हस्त मैथुन, अधिक मद्य सेवन (शराबनोशी), अधिक बकना, अर्बुद, क्रिमिविकार शारीरिक और मानसिक विपन्नता, दूसरी बार दांतो का निकलना, अन्य रोगों मे खिंचावट आदि देखना, इसके आनुसंगिक कारण माने गये है।

(आ) यह रोग १५-१६ वर्ष की लड़कियो से लेकर ५० वर्ष तक की स्त्रियों को होता है। लेकिन यह रोग जवान अवस्था अथवा २०-२५ वर्ष के लगभग अधिक देखा गया है। यह रोग ऋतु दोष और गर्भाशय के बिगाड से मासिक धर्म बन्द हो जाने से अथवा अधिक आने से, गर्भाशय टल जाने से, गर्भ रहने से, रक्त की कमी से तथा पुरुष संग चाहने की इच्छा को रोकने से अपस्मार रोग उत्पन्न होता है।

(इ) बाईं ओर पेट से दर्द व एक गोला सा उठ उर गले की ओर आता है और दम घुटता है। स्तन उछलते है गर्मी व खुशकी मालूम पडती है। कभी चीख कर जमीन पर गिर जाती है। होश मे खलल पड़ जाता है कभी कभी हाथ पैर व छाती पीटती है तथा रोती है या हंसती है। उछलती, कूदती है तमाम कपडो को फेंकने लगती है। जिसको बहुत से व्यक्ति भूत प्रेत की बाधा समझते हैं। कभी कभी मृगी का सा हो जाता है लेकिन मृगी की तरह बिलकुल बेहोशी व मुंह से फेन नहीं आती। नसों मे तनाव होता है। लम्बी श्वास भी आती है। पेट भारी मालूम होता है।

भेद–अपस्मार के चार भेद है–

(१) वातज अपस्मार (२) पित्तज अपस्मार (३) कफज अपस्मार (४) त्रिदोषज अपस्मार या सन्निपातज अपस्मार।

१–वातज अपस्मार–वातज अपस्मार का रोगी कांपता है, दांत कटकटाता है, फेन का वमन करता है और जोर से श्वास लेता है। तथा उसे दौरा आने पर गिरते समय सभी पदार्थ रूक्ष, अरुण या काले दिखाई देते है।

२–पित्तज अपस्मार—पित्तज अपस्मार रोगी के फेन, हाथ पैर आदि अङ्ग मुख और नेत्र पीले रहते है। उसे पदार्थों का रूप पीला या रक्त वर्ण का दिखाई देता है। प्यास एवं उष्णता का अनुभव होता है और सारा संसार अग्नि से व्याप्त दिखाई देता है।

३—कफज अपस्मार–कफज अपस्मार के रोगी के फेन हाथ पैर आदि अङ्ग मुख और नेत्र श्वेताभ्र रहते है। शरीर शीतल तथा रोम खड़े हुए रहते हैं। शरीर भारी रहता है। पदार्थों का रूप श्वेताभ्र दिखलाई देता है और दौरा देर मे शान्त होता है। यह रोग वातज और पित्तज अपस्मारो की अपेक्षा अधिक काल तक रहता है।

४–त्रिदोषज अपस्मार या सन्निपातज अपस्मार—सभी दोषो के समस्त लक्षणो से त्रिदोषज अपस्मार समझना चाहिए। वह त्रिदोषज अपस्मार असाध्य है जो बारबार अत्यधिक फड़फडाता है। अत्यन्त क्षीण हो, जिसकी भौंह अपने स्थान से हट गई हो और नेत्रो से विकृत क्रियाये करता हो ऐसे रोगी को अपस्मार मार डालता है।

लक्षणों की प्रबलता के अनुसार इस रोग को दो भागो में विभक्त किया गया है–

१—साधारण अपस्मार या लघु अपस्मार

२—उग्र अपस्मार या गुरू अपस्मार

(१) साधारण अपस्मार–

इसमें रोगी को गहरी मूर्च्छा नहीं आती, पर इच्छा न रहने पर भी अङ्गो मे कम्पन और मानसिक व्याकुलता बहुत अधिक रहती है। इसका आक्रमण किसी भी स्थिति में एकाएक हो सकता है और रोगी उसको रोक नहीं सकता, इस में मूर्च्छा के पश्चात् शरीर मे शिथिलता और शिर

मे चक्कर का अनुभव होता है। चेहरा पीला, दृष्टि लक्ष्यहीन और पेशियां इच्छा न रहने पर भी सिकुड़ती हैं।

२--उग्र-अपस्मार--इसके उपद्रव अधिक होते हैं। किसी अङ्ग में वायु ऊपर चढ़ती है। हाथ पैरो में झनझनी आती है, काल्पनिक गन्ध का अनुभव होता है, आंखों के सामने लाल पीली रोशनी दिखाई पड़ती है या अन्धेरा छा जाता है। अनुभूति शक्ति का लोप हो जाता है तथा स्वप्नाच्छन्न भाव रहता है। रोगी एकाएक जमीन पर गिर कर चिल्ला उठता है, वह अपने को सम्भाल नहीं पाता, दांतों से जीभ काटने का भय रहता है। मुंह से फेन भरा और खून भरा लार गिरता है। श्वास गम्भीर हो जाती है। अङ्ग प्रत्यङ्ग टेढ़े पड कर अकड़ जाते है। चन्द मिनटो के पश्चात् अङ्ग फड़कने लगते है और फिर ढीले पड़ जाते है। फिर बेहोशी की अवस्था मे मल मूत्र भी निकल जाता है। आक्रमण की स्थिति समाप्त होने पर भी कुछ देर तक आखो के सामने अन्धेरा छाया रहता है। चेतना आने पर भी किसी किसी रोगी को जोर से पुकारने पर भी कोई उत्तर नहीं मिलता। आंखे विस्फारित हो जाती है। आक्रमण के पश्चात रुग्णा गहरी निद्रा मे सो जाती है। ज्ञानेन्द्रियो की जड़ता के कारण वह वे सिर पैर की बातें करती है और कभी कभी उसे ज्वर भी आ जाता है।

अपस्मार रोगी के सामान्यतः आठ लक्षण देखे जाते हैं—

(१) जीभ पीली या धूसर
(२) मन उदास, स्वभाव चिड़चिड़ा और सिर में दर्द या बोझा का अनुभव होता है।
(३) आक्रमण के पूर्व जीभ भारी हो जाती है।
(४) बुरे स्वप्न दीखते हैं।
(५) भूलने की आदत पड़ जाती है।
(६) हृदय में भय और बुरे विचार आते हैं।
(७) मुख से भाग निकलता है।
(८) रोगी असन्तोषी और क्रोधी होजाता है।

या थोड़े काम में घबड़ा जाता है।

अपस्मार का मुख्य कारण मस्तिष्क दोष माना गया है। मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्य अङ्ग आमाशय तिल्ली जिगर आदि की खराबी तथा विषैले जन्तुओं के काटने से भी यह हो जाता है। इन अवस्थाओ मे भी मृगी की उत्पत्ति मस्तिष्क में ही होती है जैसे आमाशय जब दूषित वात पित्त और कफ से भर जाता है तब उनकी भाप के परमाणु मस्तिष्क की ओर जाते हैं। इससे उसे कष्ट होता है और वह सिकुड़ जाता है। उसके सिकुड़ने से प्राण का मार्ग बन्द हो जाता है। इस प्रकार की गांठ पड़ने से अपस्मार-आक्षेप हो जाता है। तिल्ली के बढ़ने से भी अपस्मार हो जाता है। अपस्मार में तिल्ली का फूलना, उसका पत्थर की तरह कड़ा होना और दर्द होना, पेट के ऊपर की झिल्ली मे जलन होने से भी अपस्मार होता है। ऐसे अपस्मार में खट्टी खट्टी डकारें आती हैं। पेट फूलता है, बेचैनी रहती है, कय होती है और उस मे कच्चा अन्न निकलता है। प्लीहा वृद्धि से होने वाले अपस्मार में प्लीहा रोगों के ही लक्षण होते हैं।

जब रजोधर्म बन्द या कम हो जाता है। तथा मैथुन न करने से वीर्य रुका रहता है तब रज और वीर्य का तलछट जमा होकर बिगड़ जाता है। उस तलछट के परमाणु मस्तिष्क मे पहुँच कर अपस्मार उत्पन्न करते हैं। ऐसे अपस्मार में रजोधर्म बन्द हो जाता है। पेड़ू पुट्ठे-गुर्दे और पेट में दर्द होता है। और बोझा सा जान पड़ता है। इस प्रकार के अपस्मार में रजोधर्म जारी करना तथा मैथुन हितकर है। आंत में कीड़े पड़ने से भी अपस्मार का प्रकोप होता है। इस स्थिति में आंतो की दूषित भाप के परमाणु मस्तिष्क तक पहुँचते हैं जिससे रगों में गांठ पड़ जाती हैं और अपस्मार रोग हो जाता है। हाथ पैर मे दोष एकत्र होने से हाथ पैर की मृगी हो जाती है। जब वायु के सहारे विजातीय दोप वहां से उठकर दिमाग में पहुंच जाते है तो दिमाग खिचता या सिकुड़ता है। इससे मृगी हो

जाती है। विषैले जानवरों के काटने से उत्पन्न होने वाली मृगी दंशन क्रिया के पश्चात् रक्त के विषाक्त होने से उत्पन्न होती है। यही उसकी पहचान है। इस मृगी में हाथ पैरों की ऐंठन प्रारम्भ हो जाती है। पर अन्य मृगियों में दौरे के पश्चात् आरम्भ होती है। अतः इसमें कफवातनाशक तथा ऐंठन शामक चिकित्सा होनी चाहिए।

पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्रियों को यह बीमारी अधिक होती है वैसे यह मानसिक रोग है। जवानी के आरम्भ में और प्रौढ़ा स्त्रियो में रजोलोप के समय इसकी बीमारी के लक्षण दिखाई देते हैं। बन्ध्या स्त्रियों को यह रोग बहुत दिनों रहा करता है और संतान होने पर युवतियों की यह बीमारी आप से आप आरोग्य हो जाया करती है। अगर माता को मृगी की बीमारी रहती है तो कन्या को भी यह रोग हो जाया करता है। इस दृष्टि से यह संक्रामक रोग है। स्नायु प्रधान, कामी, आलसी और कमजोर स्त्रियां ही इस बीमारी के उपयोगी क्षेत्र हैं।

क्रोध की अधिकता, एकाएक भय, प्रचण्ड और आकस्मिक दुर्घटना, लांछन, अपमानजनक वाक्य, डरावने दृश्य, वियोगान्त या दुःखपूर्ण नाटकों के अभिनय, यकायक शोक या आनन्ददायक समाचारों का आना, कपट प्रणय आदि इस बीमारी के साक्षात् उत्तेजक कारण है। बहुत से लोग इस रोग को भूतावेश मानते हैं। उनका मुख्य कारण यह है कि इस रोग मे दिव्य दृष्टि के अनेक लक्षण देखे जाते है। ऐसी स्थिति में रोगिणी का परिहास या तिरस्कार अनुचित है।

प्रकोपकाल—

वातज अपस्मार १२ दिन, पित्तज अपस्मार १५ दिन में और कफज अपस्मार १ मास के पश्चात् कुपित दोष अपस्मार का वेग उत्पन्न करते है। पर बीच बीच में भी उसका वेग उठता है।

योपापस्मार के अन्य लक्षण—

इस रोग में दो प्रकार के असाधारण लक्षण होते है—

(१) आक्षेपविहीन अवस्था
(२) आक्षेपिक अवस्था

(१) आक्षेप विहीन अवस्था में साधारण ज्ञान और विवेक शक्ति का अभाव हो जाता है। प्रायः रोगी मिथ्या प्रलाप करने लगता है। उसको शीतोष्ण का परिज्ञान नहीं रहता और शरीर के किसी स्थान में स्पर्श करने से वेदना का अनुभव नहीं होता है। वेग निकल जाने पर थोड़ी देर में चेतन्य हो जाता है।

(२) आक्षेपिक अवस्था में मूर्छित होने के पूर्व प्रायः रोगी को वेग आने का ज्ञान हो जाता है। बहुतों का स्वास खिंचकर आने लगता है और आंखे चढ़कर लाल रङ्ग की हो जाती है। जंभाई आना, निरर्थक हंसना, रोना, चीखना और शरीर को इतस्ततः संचालन करना इत्यादि होता है। रोगी को यह जान पड़ता है कि मानो गले में गेंद के समान कोई गोली वस्तु नीचे से अटक गई है। जब तक वह मूर्छित नहीं हो जाता तब तक उसके चारो ओर क्या हो रहा है सब जानता रहता है। परन्तु कोई स्पष्ट वाक्य मुख से नहीं निकाल सकता, हाथ की मुट्ठी बंध जाती है। हाथ पांव और सम्पर्ण शरीर ऐंठने लगता है। आंखो से सुझाई नहीं पड़ता, हृदय धड़कता है और शरीर में तीव्र पीड़ा होती है। बहुतों के वेग के समय जितने अङ्ग टेढ़े हो जाते हैं वेग के शांत होने पर भी वे सहसा सीधे नहीं होते। मूर्छित हो जाने पर रोगी शांत पड़ा रहता है। इसका वेग ५-७ मिनट से लेकर किसी किसी को ८-८, १०-१० घण्टे तक बना रहता है। साधारण वेग मे चेतना शीघ्र आ जाती है। किंतु प्रबल आक्षेप मे विलम्ब से होश होता है। निर्बलता, सिर और कमर में पीड़ा आदि २-३ दिन तक बनी रहती है।

इस रोग के लक्षण सब रोगियो के एक समान नहीं होते, उनमें प्रायः भिन्नता पाई जाती है। कोई हाथ पांव फटकारते हुए गला फाड़ फाड़ कर रोने चीखने लगते है तो कोई बिना किसी शब्द के स्तब्ध होकर गिर पड़ते हैं। किसी को नोंचने खोसने की धुन सवार हो जाती है और कोई भय-

भीत होकर भूत प्रेत की लीला का अनुभव कर दुखी होते हैं। किसी को यह प्रतीत होने लगता है कि मांसाहारी जीव मेरा पेट फाडकर अथवा हृदय में घुसकर उदरस्थ अवयवों को खाये डालते हैं। कोई गाली बकता है, अपने और दूसरों के शरीर का वस्त्र नोच खसोट कर फेंकना, गृह वस्तुओं को तोडना फोडना इत्यादि इतना ऊधम मचाता है कि घर वाले हैरान व परेशान हो जाते हैं। भिन्न प्रकार के लक्षणों के कारण यह जान पड़ता है कि सुख दुख, प्रसन्नता और खेद आदि के अनुभव करने का कार्य मस्तिष्क भिन्न विभागों में सम्पादन करता है। अतएव जिस अंश पर रोगोत्पादक शक्ति का प्रभाव पड़ता है वही उत्तेजित हो उठते हैं।

चिकित्सा

होश में लाने के उपाय—

१. ठंडे पानी के छींटे मुंह और आंखों पर मारें। यदि मुंह भी बन्द हो गया हो तो मुंह और नाक पर धार से जल डालें। इससे घबरा कर मुंह खोल देगी।

२. कायफल को महीन पीसकर नाक में भरदे।

३. चूना और नौसादर पीसकर सुघावें।

४. नकछिकनी नाक में भर देवे।

५. नाक में बत्ती डाले।

६. यदि हसती, रोती, चिल्लाती हो तो सैंधव लवण और काली मिर्च का अञ्जन करें।

७. आंखों में पिपरमेंट लगावे।

८. दो रत्ती कस्तूरी को चमेली के तेल में हल करके उंगली से भग में मलें। इससे चैतन्यता आ जाती है।

९. यदि होश में आने के पश्चात् रोगिणी का पेट फूला मालूम दे तो २-३ रत्ती हीरा हींग पानी में घोल कर पिलावे।

१०. यदि कब्ज अधिक मालूम दे तो पचसकार चूर्ण अथवा कास्ट्रायल से दस्त कराकर निम्नलिखित औषधि प्रतिदिन सेवन करावे।

ब्राह्मी १ माशा, दुधवच १ माशा इन दोनों को पीसकर २ माशे शहद में मिला कर चटावें और ऊपर से गुनगुना दूध पिलावें। ब्राह्मी घृत का सेवन करना भी अच्छा है।

यदि मासिक धर्म की खराबी से रोग हो तो मासिक धर्म वाली औषधियों में से कोई औषधि खिलावे। जवान लड़की हो और शादी न हुई हो तो शादी करदे, पति संग न हुआ हो तो पति सहवास करावे, सन्तान उत्पन्न हो जाने पर तो यह रोग स्वंय ही जाता रहता है।

उसकी पोशाक ढीली कर दे। कनपटी, पेडू और आस पास के अंगों को मले। यदि रोगी को होश न हो तो प्याज कूट कर सुघावे या कागज की नली में सोंठ काली मिर्च और पीपल का चूर्ण भर कर रोगी की नाक में सुघावे। होश आने पर उत्तेजक दवा दें। एक तोले द्राक्षासव १ औंस पानी में या ३ माशा ब्राण्डी १ औंस पानी में या स्पिरिट एमोनियां एरोमेटिक १ ड्राम १ औंस पानी में देना उत्तम है।

जीभ दांत से न कट जाय, इसके लिए मुंह में कपड़ा या लकडी का गोला रख देना उत्तम है।

वातज अपस्मार में-वस्ति कर्म चिकित्सा कराये।
पित्तज अपस्मार में-जुलाब देनी चाहिए।
कफज अपस्मार में-कय करानी चाहिए।

जब रोगी हर प्रकार से शुद्ध हो जाय तब उसे धीरज देकर शमनकारक औषधियां देनी चाहिए।

अपस्मार रोगनाशार्थ कल्याण चूर्ण ब्राह्मी घृत, पञ्चगव्य घृत, महा पंचगव्यघृत, महाचैतस घृत, वातकुलांतक या चण्डभैरव रस आदि उत्तमोत्तम योगों से काम लेना चाहिए।

१—अकरकरा ५ तोले, गन्ने के रस का सिरका ५ तोले और शहद ३० तोले इनको कलईदार कढ़ाई में डाल कर आग पर चढ़ादे और मन्दाग्नि से पकावे। गाढ़ा होने पर उतार कर शीशी में रखे, इसमें से ६ माशा तक दवा प्रतिदिन प्रायः गर्म पानी के साथ खाने से मृगी अवश्य चली जाती है।

२—अपस्मार तैल—सहजने के बीज कूट कर मेनसिल, काला जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल

छोटी हींग यह सब औषधियां तीन तीन तोला लें, और प्रथम इनको कूट कर तारो की वारीक छलनी में छान ले और इसके पश्चात इसको सिल वट्टे से थोड़े पानी के साथ वारीक पीस कर लुगदी बनालें, फिर एक सेर तिल्ली का तैल लें, उपरोक्त लुगदी व चार सेर गौ मूत्र मिला कर किसी बड़ी सी लौहे की कढ़ाई में मन्द मन्द आग से पकावे जब सारा गौ मूत्र जल जावे और तैल बाकी रह जावे तब उसको आग पर उतार कर ठंडा कर लेवें, और कपड़छन कर बोतल में भर लें।

सेवन विधि-चार बूंद मृगी के रोगी कोनथनों में टपकावें समय चारबूंद प्रातः चार बूंद सांय काल दोनों नथनों मे डालें, और इसके साथ निम्न लिखितअपस्मार चूर्ण खाने से रोगी को सदैव के लिए लाभ होता है।

३—अपस्मार चूर्ण पीपल छोटी, पीपलामूल चव्य, चीता, कालीमिर्च, वायविडङ्ग, बच, हरड़ का बकल, आमले सूखे, जीरा सफेद, धनियां कब्जा की मींग (गिरी) सेंधा नमक काला नमक, अजमोद, यह सब औषधियां १-१ तोला लेवें और इनको कूट पीस कर तारों की बारीक चलनी में छान कर किसी चीनी या कांच के मृतवान में रखे।

सेवन विधि—इसमें तीन तीन (३-३) माशा प्रातः सांय काल खाकर उपर से गर्म जल पी लिया करें।

पथ्य--सेवन काल में समस्त सर्दी वादी व खट्टी वस्तुओं से परहेज करे तथा यह सर्दी वादी प्रकृति रखने वाले, उन्माद के रोगी को भी आराम करने वाला है। कफ वात श्वास व मन्दाग्नि को भी बहुत ही बड़ा लाभ पहुँचाता है।
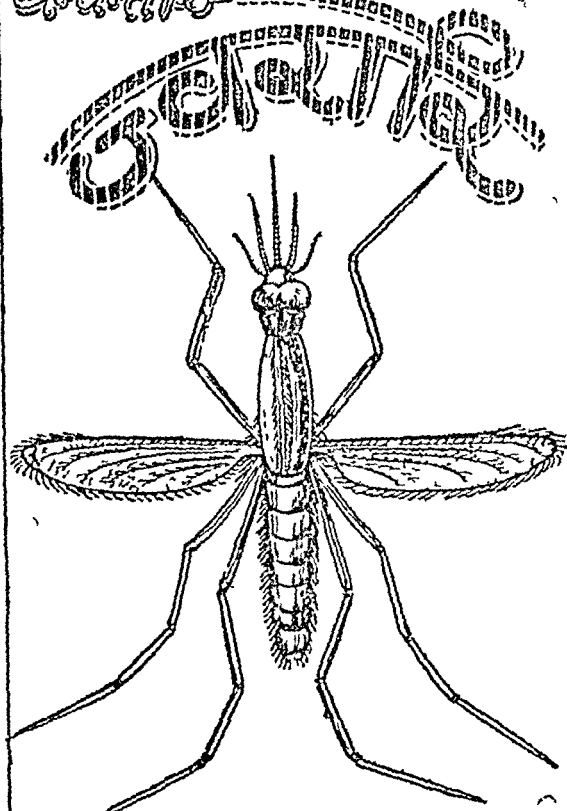
कविराज श्री पं० विष्णुदत्त शर्मा वैद्य शास्त्री,

मदलौडा (करनाल)।

मधुमेह

श्री डा० शङ्करलाल के. भेडा

यह वातिक प्रमेहों का एक भेद है। चरक में मधुमेह नाम दिया है, इसी को ओजोमेह भी कहते हैं। सुश्रुत ने क्षौद्रमेह नाम दिया है। वाग्भट ने भी क्षौद्रमेह नाम ही दिया है। इस नामत्रय में पूर्णतया लक्षणों में साम्यता है। इस रोग मे मूत्र के साथ ओज का क्षरण होता है। इसमें मूत्र के साथ निकलने वाला ओज मधुर स्वभाव का होता है। इसीको शर्करा "ग्लुकोज" कहते है।

"ओज पुनर्मधुर स्वाभावम् तद् यदा रौक्ष्याद् वायु कषायत्वेनाभिसंसृज्य मूत्राशयेऽभिवहति तदा मधुमेहं करोति॥" (च०)

आयुर्वेद ग्रन्थो मे मूत्र के माधुर्य वाले तीन रोग निर्दिष्ट किये हैं। श्लेष्म प्रकोप से इक्षुवालिकारसमेह, इक्षुवालिकामेह, पाठान्तर में इक्षुमेह भी, शीतमेह तथा वात विकृतिजन्य मधुमेह या क्षौद्रमेह नाम दिये हैं। इनमें मधु और क्षौद्र समानार्थक हैं। इसका स्पष्टीकरण सुश्रुत टीका न्याय चन्द्रिका में भी हुआ है--

मधुमेह इति पारिभाषिकमुपद्रवाणामभावेनान्यत्र ।
बोधनार्थमर्थ भेदेऽपिशब्द मात्राभिन्ननामकृतम्॥

चरक मे इक्षुवालिका रसमेह के लक्षणों में--
अत्यर्थमधुर शीतमीषत् पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससकाश श्लेष्मप्रकोपात् प्रमुह्यति ॥

ननु इक्षुवालिकामेहे काण्डेक्षुरस सङ्काशमिति। किमुच्यते इक्षुवालिका काण्डेक्ष्वोरथान्तरत्वात्। नैवं इक्षुवालिका रसस्य तथा काण्डेक्षु रसस्य चैकरूपता प्रतिपादनार्थमुभयो रुपादानम्, किंवा काण्डेक्षु रसतुल्योऽपि तथेक्षु वालिकारस तुल्येक्षु वालिकामेहो भवतीत्युभयोपादानाद् दर्शयति।
(चक्रपाणिदत्त)

किन्तु सुश्रुत ने मधुमेह समस्त प्रमेहों को उस अवस्था को नाम दिया है-जिस समय चिकित्सा न करने पर अथवा विरुद्ध चिकित्सा हो जाने से पिडकायें एव उपद्रवों की वृद्धि हो जाने पर असाध्य लक्षण हो जाते हैं।

पीडिकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः ।
मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्तित. ॥
सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकुर्वतः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्तिहि ॥
—सु० नि० ६

दोष—वात, पित्त, कफ।

दूष्य—मेद, रक्त, शुक्र, जल, वसा, लसीका, मज्जा, रस. ओज, तथा मांस ये दश।

ये समस्त प्रमेहो के दोष दूष्य होने पर भी मधुमेह मे लसीका, वसा, मज्जा, ओज विशेषतः दूष्य है। तथा वातिक होने पर भी इसमें तीनों दोष ही कुपित होते हैं।

स्थान—बस्ति।

दोषोहि वस्ति समुपेत्य मूत्रं
संदूष्य मेहान् जनयेद् यथास्वम्॥ --चरक

यद्यपि सामान्यतः बस्ति शब्द से मूत्राशय का का ही बोध होता है, किन्तु इस प्रकरण में समस्त मूत्रवह संस्थान का ग्रहण कर लिया जाता है। क्योकि इसके ही विभिन्न अङ्गों की विकृतियों के परिणतिस्वरूप इन बीस प्रकार के प्रमेहो की उत्पत्ति होती है। इसका स्पष्ट विवरण चरकादि सभी संहिताओं में देखेगे।

निदान—रूक्ष कटु कषाय तिक्त लघु शीत इत्यादि। सुश्रुतोक्त कारणा पर पूर्णतः ध्यान देने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि श्लेष्मा एवं श्लेष्मावर्द्धक पदार्थ ही प्रमेहों की उत्पत्ति में प्रधान हेतु हैं।

"दिवास्वप्नाव्यायामालस्य प्रसक्तं शीत स्निग्ध मधुर मेद्य द्रवान्न पान सेवित पुरुष जानीयात् प्रमेही भविष्यतीति।"—सु० नि० ६

सिद्धान्ततः प्रमेह रोग तथा श्लेष्मवर्द्धक द्रव्यो का परस्पर में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। क्योंकि

श्लेष्मवर्धक पदार्थ प्रमेहजनक हैं तथा प्रमेहकारक पदार्थ श्लेष्मजनक है। चरक में इसीलिये दिया है–

आस्यासुखम् (च० चि० ७) हायनक यवक चीनको-द्दालक .. यश्च काश्चीद् विधिरन्योऽपिश्लेष्म मेदो मूत्रप्रजननः स सर्वो निदान विशेषः (च० नि० ४)।

इन समस्त वाक्यों का यही अभिप्राय है कि प्रथम श्लेष्मिक प्रमेह ही होते हैं। अनन्तर वातल एवं पित्तल पदार्थों के अधिक सेवन करते रहने पर यही श्लेष्मिक प्रमेह वातिक एवं पैत्तिक रूपों को धारण कर लेता है।

लक्षण—

कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्‍बुधः।

—मा० नि०

इसके समस्त नामों के लक्षणों में पूर्णतया समता है। यह प्राथमिक एवं इतर प्रमेहों की उपेक्षा करने पर हो जाता है वह उपद्रव स्वरूप माना जाता है। इस महान् दुःख में प्रधान कारण प्रधान धातु ओज का क्षरण ही है।

ओजः स्निग्धमरुणं तद्रौक्ष्याद् वायु कषायत्वेनोपसृजति। तेन कषाय मधुरानुयातं माध्वै मेहति मेहति।

—वृ० वा०

ओजो नाम प्रधान धातुः। —इन्दु

भेदक लक्षण —

इक्षुमेहादि में मूत्र में शर्करा निलती है, फिर भी इनको मधुमेह नहीं कह सकते, क्योंकि मधुमेही के रक्त में भी शर्करा का होना अनिवार्य है। इनमें यह भेद है।

मधुमेही के सम्पूर्ण धातु उपधातुओं का क्रमशः तथा शनैः शनैः नाश हो जाता है तथा ओज भी क्षीण हो जाता है।

चिकित्सा—

मधुमेह में धातुओं का अत्यधिक तीव्रता से नाश होता है। उसकी रक्षा के लिए ऐसी ही प्रभावोत्पादक चिकित्सा होनी चाहिए किन्तु ऐसी चिकित्सा की न्यूनता है क्योंकि—

"वातजाः पुन क्षीणेषु धातुषु महात्ययतया विरुद्धोपक्रमत्वाच्च असाध्याः।"

इस वृ० वाग्भट वचनानुसार वातशामक चिकित्सा पद्धति से प्रायश मेद आदि की अभिवृध्दि होती है तथा मेदनाशक द्रव्य प्रायः वात की वृद्धि करते है। इसलिए विपसोपक्रम है, अतः असाध्य माना है।

प्रश्न—"साधनं नत्वसाध्यानां व्याधीनान्चोपदिश्यते"

इस सिद्धान्तानुसार पुनः इसकी चिकित्सा शास्त्रों में क्यों निर्दिष्ट की है।

उत्तर—

या वातमेहान् प्रति पूर्वमुक्ता,
वातोल्वणाना विहिता क्रियासा।
वायुर्हि धातुप्वति कर्पितेपु,
कुप्यत्यसाध्यान् प्रति नास्ति चिन्ता।

—चरक

मधुमेह दो प्रकार का होता है। एक धातुक्षय के कारण प्रकुपित वात द्वारा। दूसरा दोषावृत मार्ग द्वारा। धातुक्षयजन्य प्रकुपित वातजन्य मधुमेह वातिक मधुमेह होता है तथा दोषावृत मार्गजन्य मधुमेह उपेक्षित प्रमेह रूप मधुमेह होता है। इनमें प्रथम में वात के लक्षण होते हैं एवं द्वितीय में आवरक दोष के साथ वातज मधुमेह के लक्षण भी मिलते हैं। इसी आधार पर—

समारुतस्य पित्तस्य कफस्यच मुहुर्मुहुः।
दर्शयत्याकृतिं गत्वा क्षयमाप्यायते पुनः ॥१॥
तैरावृतगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति।
यदा वस्तिं तदाकृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्तते ॥२॥

—च० सू० १७

इन चरक के आदेशों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मधुमेह के लक्षणों मे न्यूनाधिक परिवर्तन होता रहता है तथा धातुक्षयजन्य वातिक मधुमेह में वातिक लक्षणों की प्रधानता तथा स्वतंत्र रूप से उत्पत्ति होगी तो वह असाध्य ही होता है, किन्तु आवृत दोष जन्य मधुमेह की प्रारम्भावस्था मे पूर्ण ध्यान देने से साध्य हो सकता है।

मधुमेही के रक्त मे मधुरता (शर्करा) होती है। इसको आचार्य वाग्भट ने "माधुर्याच्चतनोरतः" इस वाक्य से शरीरगत माधुर्य से रक्तगत शर्करा की ही

—शेषांश पृष्ठ ३२ पर देख

ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा

विरेचक तैल—

दन्ती (जमालगोटे की जड़) १ छटांक कूट पानी से पीसकर लुगदी बनावे।

आठ छटांक दन्ती की जड को और लेकर जौ कुट करले, साथ ही उतने ही दशमूल को भी कूट ले। दोनो को अठगुने पानी में औटावें। जब चौथाई रह जाय, उतार छान ले।

इस छने हुए क्वाथ में दन्ती की लुगदी मिला दो सेर अण्डी या तिल तेल मिलाकर कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ावे और मन्द मन्द अग्नि पर पकावे। जब सब तरी जल जाय तब तैल को उतार छानकर शीशी मे भर ले। इस तैल की वस्ति देने से गुल्म (वायुगोला), उदावर्त, वायु का रुकना, मल का बधना, वात के रोग और प्रमेह रोग दूर होते है।

यह तैल वस्ति और पीने के भी काम आता है। पीने के लिए (सन्निपात ज्वर में नहीं अन्य रोगों में) इसकी मात्रा ३ से ६ माशे है। वस्ति के लिए आधी या १ छटांक तैल पर्याप्त है। सन्निपात ज्वरो मे तो आधी छटांक से अधिक की वस्ति न दीजिये।

ग्लेसरीन की वस्ति—

ग्लेसरीन को पिचकारी में भरकर पहिले की तरह वस्ति देने से मल चिकना होकर बाहर आ जाता है। ग्लेसरीन १-१॥ औंस काफी है। बच्चे को वस्ति देने के लिए २ या ४ ड्राम ग्लेसरीन चाहिए।

यदि तैल या ग्लेसरीन पिचकारी द्वारा गुदामार्ग से प्रविष्ट करना है तो बराबर का जल मिला लिया जाय तो बहुत ही उत्तम है।

निरूहण (क्वाथ-जल) वस्ति—

यदि वस्ति डूस से देनी है तो डूस के डिब्बे में आध सेर या २॥ पाव क्वाथ करें। उसमें २-२॥ तोले शुद्ध साफ अण्डी का तैल भी मिला देना चाहिये। क्वाथ गुनगुना हो, अधिक उष्ण या शीत न हो। रोगी को तङ्ग खाट या मेज पर पहिले बताये प्रकार से बाईं करवट लिटा दें। डूस को रोगी के बिस्तर से करीब ३ फुट ऊंची किसी खुंटी पर टाग दे या ऊपर किसी स्थान पर रख दे और उसके नेत्र को तैल से तरकर गुदा मे प्रविष्ट करने के पूर्व टोंटी खोलकर थोड़ा सा पानी गिरा देना चाहिए ताकि रबड़ की नली या नल के भीतर यदि कुछ वायु हो तो वह बाहर निकल जाय और द्रव भीतर प्रविष्ट होने में किसी प्रकार की रुकावट न होने पावे। डूस नलिका धीरे धीरे भीतर प्रविष्ट कर धीरे धीरे अनीमा नल की टोंटी को खोल दे ताकि धीरे धीरे पानी आत के भीतर जावे। यदि पानी के वेग से रोगी पेट में पीडा अनुभव करता है तो डूस को जरा और नीचे कर देना चाहिए। इससे पानी का वेग कम हो जाता है। पानी भीतर पहुंच जाने के बाद नोजल निकाल ले और रोगी को थोड़ी देर चित्त लेटे रहना चाहिए। साथ ही किसी स्वच्छ वस्त्र की गद्दी से मल द्वार को खूब दबाएं ताकि पानी शीघ्र न लौट आवे। २-४ मिनट पानी रुका रहने से वह अपना कार्य ठीक प्रकार करके आता है। जब पाखाने की हाजत जोर की हो तो तत्काल दस्त के लिए बैठाकर दस्त करादे।

साबुन के पानी का अनीमा—

भी इसी प्रकार दिया जाता है। इस कार्य के लिए कोई १० छटांक पानी मे लक्स आदि कोई अच्छा ग्लेसरीन वाला साबुन ले, दोनों हाथो से मल मल कर घोलते है। जब पानी में काफी झाग हो जावे, तो साफ किया हुआ अण्डी का तेल जिसे "कास्टर आइल" कहते हैं २ २॥ तोला मिलाकर

फट देते हैं जिसे थोड़ा सा गुनगुना कर लेते हैं और पूर्ववत् अनीमा द्वारा देते हैं। इससे मल आसानी से बाहर आ जाता है।

पानी का ताप १०० डिग्री फार्नहाइट से अधिक न होना चाहिए। सन्निपात ज्वर मे पानी का तापमान ७० से ६० डिग्री ठीक है इससे अधिक न होना चाहिए।

आरग्वधादि वस्ति—

बड़ी हरड़ की छाल, पीपलामूल, नागरमोथा, अमलतास का गूदा, कुटकी ये सब पदार्थ समभाग जौकुट कर ५ तोले ले और दो सेर पानी मे औटावे। जब आध सेर रह जाय उतार छान ले। इसमें १ तोला सैंधानमक, ॥ तोला अरण्डी का शुद्ध तेल मिला फेट कर वस्ति देने से आंतो में अड़ा हुआ मल बाहर हो जाता है और आंतों के शोथ में बड़ा लाभ होता है।

राजरेचन—

जुलाफा हरड ५ तोले, छोटी इलायची के दाने २ तोले, गुलाब के फूल ५ तोले। सब चीजे बारीक पीसकर मिलाले। मात्रा १ माशे से ३ माशे। क्रूर कोष्ठ में ६ माशे फंकाकर गर्म जल पिलाने से आराम से दस्त हो जाता है।

मृदुरेचन—

सनाय ४ माशे, सौंफ ६ माशे, मुनक्का १२ नग आध पाव पानी मे खौलावे। जब आधी छटांक रह जाय उतार छान छटाक भर गर्म दूध मिलावे, थोड़ी सी शक्कर भी मिलादे। इसके पीने से खुलकर दस्त होता है।

अग्निमुख चूर्ण—

हींग भुनी ३ माशे, दुधवच का चूर्ण ६ माशे, छोटी पीपल पिसी हुई ६ माशे, सौंठ कपड़छन की हुई १ तोला, अजवायन देशी महीन पिसी हुई १। तोला, छोटी हरड का चूर्ण १॥ तोला, चित्रक की छाल का चूर्ण १॥। तोला, कूठ का चूर्ण २ तोले। इन सब वस्तुओ को खरल मे डालकर खूब अच्छी तरह मिलालें। दिन में १—१ माशा गर्म पानी से तीन बार दें। यह चूर्ण पाचक और अग्नि प्रदीप्त करने वाला है, कब्ज को तोडता है, दस्त साफ लाता, अरुचि, अजीर्ण और पेट के अफरे को दूर करता है।

अश्वकञ्चुकी, हयचोली, घोडाचोली—

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक आमलासार १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया विष १ तोला, शुद्ध हरताल बहुत ही बारीक पिसी हुई १ तोला, अग्नि पर फुलाया हुआ चौकिया सुहागा १ तोला, शु० जमालगोटा ३ तोला, त्रिफला (बड़ी हरड़, बहेड़ा, आमला) चूर्ण १ तोला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण १ तोला।

पहले खरल मे पारा और गन्धक मिलाकर खूब खरल करें। जब दोनो मिलकर काली कज्जली हो जाय तब उसमे हड़ताल डालकर खूब खरल करे। हरताल के घुट जाने के बाद तेलिया या सुहागा मिलाकर घोटे। इसके बाद जमालगोटा और शेष वस्तु मिलाकर खूब खरल करे। इनके मिलने पर इसमे भांगरे का रस इतना मिलावे कि सब दवा सन जाय और १ अंगुल रस और ऊपर रहे। इसे खूब खरल करे। जब गोली बनने लायक हो जाय तब इसकी १-१ रत्ती की गोलियां बना शीशी मे रखलें। मात्रा १ से ४ गोली। गुण— रेचक और भेदक (मल को फोड़ने वाली), स्वेदल (पसीना लाने वाली), योगवाही है। अजीर्ण और कब्ज को फोड़कर बाहर निकालती तथा वायुनाशक है, वायु गोले को लाभदायी है, शीतज्वर मे लाभ करती है। अनुपान भेद से ६४ रोगो को दूर करती है। आयुर्वेद का प्रसिद्ध प्रयोग है। इसे सभी प्रांतों के प्रायः सभी वैद्य बर्तते है। साधारणतया इसका अनुपान जल या मधु है। —(क्रमश.)

—श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
जैन धर्मार्थ चिकित्सालय, कोठम
पो. रैपुराजाट (मथुरा)

वर्षा ऋतु में हम कैसे रहें?

श्री रामरतन शर्मा वैद्य

ग्रीष्म ऋतु के समाप्त होते ही वर्षा का आगमन हो जाता है। ग्रीष्म की तप्त धूली अब वर्षा की नन्हीं नन्हीं बूंदों से शीतल हो जाती है। भरे हुए जलाशय और इनमें दादुरो की टरटराहट चारो ओर फैली मनमोहक हरियाली को देखकर मानव का मन आनन्द सागर में गोते लगाने लगता है। इस ऋतु में झूले पर झूलते हुए जो आनन्द प्राप्त होता है वह अकथनीय हैं। ऐसी सुन्दर ऋतु मे इसके रहन सहन के सही ढग को न जानने के कारण अनेको व्यक्ति दुख झेलते है। सभी सुन्दर दृश्य उन्हे काल से प्रतीत होते है। अत. अगर हम इस ऋतु मे पूर्णतया स्वस्थ रहना चाहते है तो ऋतु के अनुसार ही आहार विहार बनाना होगा क्योंकि ऋतुचर्या और स्वास्थ्य में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है।

श्रावण और भाद्रपद पूर्ण वर्षाकाल है और आषाढ़ प्रावृटकाल है। अतः वर्षा ऋतु के रहन सहन से तात्पर्य उपरोक्त तीनो महीनो से है। आप सभी जानते है कि ग्रीष्म ऋतु मे भयङ्कर गर्मी से वचने के लिए सभी लोग ठण्डी वस्तुओं का अधिक प्रयोग करते है। इससे उनके शरीर में वायु बनती है। यह वायु चारों ओर गर्मी पाकर कुपित नहीं होती बल्कि मनुष्य के शरीर मे शनैः शनैः सञ्चित होती रहती है। आगे चलकर यही वायु वर्षा ऋतु मे चारों ओर ठण्ड पाकर कुपित हो जाती है और मनुष्य के शरीर मे मीठा मीठा दर्द उत्पन्न कर देती है। जैसा कि भावमिश्र लिखते हैं—

'वर्षा शीता विदाहिन्यो वह्निमान्द्यनिलप्रदा'

अर्थात वर्षा ऋतु शीत, विदाही, अग्नि को मंद करने वाली एवं वायु को कुपित करने वाली है। 'वर्षासु मारुतो दुष्टः' इससे भी यही ज्ञात होता है कि वर्षा में वायु विकृत हो जाती है। इसी कारण लकवा, गठिया आदि वात के पुराने रोग इस ऋतु में बढ़कर कष्ट देने लगते हैं।

इस वायु की शांति के लिए विशेष कर मधुर, खट्टे और नमकीन रसों का सेवन करना चाहिए। विशेषकर वर्षा ऋतु में शरीर आर्द्र (भीजा) हो जाता है अतः तीक्ष्ण, कडुवे और कसैले रस का भी सेवन करना चाहिए। अच्छे घी की बनी हुई कचौड़ी, पूड़ी, मालपूआ आदि गर्म गर्म खाने चाहिए। नमकीन और खट्टी वस्तुयें भी खाइये लेकिन अल्प मात्रा में, चिकना रस जो अधिक भारी न हो वह सर्वश्रेष्ठ है। काला नमक और पंचकोल (छोटी पीपल, पीपरामूल, चव्य, चीते की छाल, सोंठ) युक्त कांजी का भी कभी कभी जठराग्नि बढ़ाने के लिए प्रयोग करते रहना चाहिए। लहसुन, प्याज और अदरख का प्रतिदिन अल्प मात्रा में प्रयोग करते रहना चाहिए। इससे अग्नि दीप्त होती है और वायु शांत रहती है। इस ऋतु मे मधु का सेवन भी बहुत अच्छा है। मधु जल के साथ या भोजन के पदार्थों के साथ खाना चाहिए। आसव जो अपनी प्रकृति के अनुकूल हो, थोड़ा थोड़ा भोजन के बाद पीना उत्तम है। यह वायु को तत्काल शमन करता है और अग्नि को दीपन करता है। मट्ठा भी ऐसा सेवन करना चाहिए जो बिना पानी डालकर मथा गया हो अथवा जिसमें बहुत थोड़ा पानी डाला गया हो। पके आम को उचित मात्रा में चूसना भी गुणकारक है। कभी कभी नींबू का शर्बत भी पीना चाहिए।

आषाढ़ में बेल पकते है। पका हुआ बेल दुर्जर वात प्रकोपक, पेट में शूल एवं अग्नि को मंद करने वाला होता है। अतः इस मास में बेल का प्रयोग अनुचित है। कहावत भी है—"आषाढ़े बेल"। श्रावण मास में सतुओ का आहार नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे पेट फूलता है। कहावत भी है "श्रावण सतआ"। कहीं कहीं "श्रावण साग'

ऐसी कहावत है। शाक से तात्पर्य यहां पत्र शाक से है। इस मास में इसके सेवन से अतिसार, हैजा, एवं कृमिरोग हो जाता है। भाद्र मास में दही का व्यवहार कम करना चाहिए।

इस ऋतु मे आहार के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि आहार थोडा भी अधिक न करे। अगर भोजन अल्प मात्रा में या अधिक होगा तो भी अपच हो जायगा। अगर शाम को भूख न लगे तो बिल्कुल भी नहीं खाना चाहिए। वर्षा ऋतु में कीड़े, मकोड़े तथा छोटे छोटे उड़ने वाले जंतु बहुत उत्पन्न हो जाते हैं। ये प्राय: सायंकाल ही निकलते है। दीपक तो इनकी वृद्धि मे पूरा सहायक होता है अत: रात्रि का भोजन दिन रहते ही कर लेना चाहिए। अगर रात्रि मे ही भोजन करना पड़े तो बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता होगी। महीने में २ उपवास करने चाहिए। उपवास काल में या तो पानी के अलावा और किसी प्रकार के पदार्थ नहीं होने चाहिए अथवा केवल फल खाना चाहिए।

इस ऋतु में शरीर पर तैल की खूब मालिश करनी चाहिए। सरसो का तैल मालिश के लिए अधिक उपयुक्त होगा। इसके पश्चात् अच्छे जल से स्नान कर साफ तौलिये से सारे शरीर को रगड़ रगड़ कर सुखाना चाहिए। तालाब, नदी का जल न तो स्नान के लिए उपयोग में लाये और न ही पीने के लिए। यदि लाचारी हो तो इस जल को अच्छी तरह उबाल कर व्यवहार में लायें। पानी को गर्म करने के पश्चात् उसमें रोगोत्पादक कीटाणु नहीं रहने पाते। स्नान के पश्चात् हल्के, सफेद और शुद्ध कपड़े पहने। जिस रोज वृष्टि के कारण सर्दी हो उस दिन शीतल हवा से बचने के लिए मोटा सूती कपड़ा पहिनना चाहिए। पानी बरसने के बाद की शीतल वायु शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। बालको की छाती को इस हवा से हमेशा बचाना चाहिए। चमेली, जूही, बेला, रजनी गंधा के फूलों की मालायें धारण करना और इनके इत्र को व्यवहार में लाना उचित है।

इस ऋतु मे नंगे पैर बाहर न निकलें। इससे पैरों में कीचड़ तो लगेगा ही साथ ही साथ विषैले जंतुओं के काटने का भी डर रहता है। कपड़े अथवा रबड़ के जूते प्रयोग मे लाने चाहिए। अगर जूते कपड़े के हुए तो पानी पड़ने के कारण वे सिकुड़ जायेंगे और बेकार हो जायगे। चप्पल का प्रयोग भूल कर भी न करें, अन्यथा कपड़ों पर हमारी मूर्खता की छाप लग जायगी। रात को बाहर मत निकलिए। अगर बाहर जाना अत्यावश्यक हो तो साथ में ऐसी छड़ी अथवा लाठी ले जानी चाहिए जिसके रखने से कुछ आवाज निकले। इस आवाज को सुनकर सर्पादि जंतु दूर भाग जाते है। रात में बैठने के लिए चारपाई अथवा कोई ऊंचा आसन होना चाहिए। आंगन मे बैठने पर बिच्छू आदि के काटने का भय रहेगा। जो मकान गीला न हो, खुला हुआ हो, साफ सुथरा हो, जहां वर्षा और ओस की बूंदें नहीं आती हो, ऐसे मकान में ऊंची चारपाई पर सोना चाहिए। मच्छरो से बचने के लिए मच्छरदानी लगानी चाहिए अथवा बारीक कपड़ा ओढ़ना चाहिए। मच्छरो को भगाने के लिए सायङ्काल गंधक की धूनी देनी चाहिए अथवा नीम के पत्तो को जलाना चाहिए। अपने बिस्तरे पर प्याज का रस छिड़कने से भी मच्छर भाग जाते है।

दिन मे मत सोइये नहीं तो खट्टी डकारे आने लगेगी और अग्नि मन्द पड जायगी। खट्टी डकार मे नीबू का शरबत अच्छा काम करता है। कमजोर और दमा के रोग वाले व्यक्तियों को वर्षा में बिल्कुल नहीं भीगना चाहिए अन्यथा उनका दमा उखड़ आएगा। उखड़े दमा को शमन करने के लिए गरम पानी पीना चाहिए, ठण्डा पानी कदापि नहीं। मुलहठी चूसना भी दमा के लिए हितकर है। अनार का छिलका चूसना भी दमे के लिए उपयुक्त होगा।

इस ऋतु में पूर्वी पवन का सेवन न करना चाहिए। व्यायाम और परिश्रम भी अधिक नहीं करना चाहिए। धूप एवं आग की उष्णता से बचना चाहिए। मल-मूत्र के वेग को न रोकें। पानी उबाल

कर और ठण्डा कर काम में लायें। कपड़ों को हमेशा सूखा रखे और उन्हें समय समय पर धूप दिखाते रहे।

वर्षा में भीगने और गीले कपड़े पहिनने से दाद, खुजली हो जाती है। इसका प्रथम उपाय तो यही है कि वर्षा से बचे और थोड़ी देर भी गीले कपड़े न पहने। दाद को मिटाने के लिए इमली के बीजों को नीबू के रस में पीसकर लेप करे। फिनाइल लगाने से दाद, खुजली में आराम होगा। अगर गीले पांव रहने के कारण अगुलियों के बीच के हिस्से सड़ कर कष्ट देतो उन्हें प्रतिदिन साफ सरसों का तैल लगावे।

मलेरिया को दूर करने के लिए 'क्विनाइन' का प्रयोग करे, लेकिन इसके साथ दूध अवश्य पीवें अन्यथा आपको हानि करेगी। इसका अधिक प्रयोग भी अनुचित होगा। अगर चिरायते का काढ़ा बनाकर पिया जाय तो मलेरिया का आक्रमण नहीं होगा। करंज के बीज के भीतर की मींग का ४-५ रत्ती चूर्ण लेकर कालीमिर्च के साथ खाने से क्विनाइन का काम करेगा। मोतीझला को शांत करने के लिए सामर का सींग, चदन, जीरा, नेत्रवाला, नागरमोथा, चिरायता, कुडा, काला जीरा, गिलोय, इलायची, कमलगटा को पानी में घिसकर पिलावे।

अगर असावधानी से सर्प काट ले तो सर्प काटे की जगह पर जरा सा चीरा देकर आक (मदार) का दूध तब तक टपकाते रहे जब तक वह सूखता जाय। जब सूखना बन्द हो जाय तो टपकाना बंद करदे। विष अवश्य उतर जायेगा। बिच्छू के विष को मिटाने के लिए प्याज को काटकर उस पर बुझा हुआ चूना बुरकादे और दश स्थान पर मले। लाभ होगा। शहद को खाना और दंश स्थान पर मलना भी बिच्छू के विष को उतारने के लिए उपयुक्त होगा। पागल कुत्ते के काटने पर उसके दंश स्थान पर काली मूसली और पीपल के चूर्ण का लेप करे और खावे। एक तोला ग्वारपाठे को छीलकर उस पर सैंधानमक लगाकर पागल कुत्ते के दंश स्थान पर तीन दिन बांधने से विष उतरता है।

—श्री रामरतन शर्मा वैद्य
भगवती आयु. औषधालय, लाडनूं (राज.

:: पृष्ठ ७७ का शेषांश ::

अभिव्यक्ति होती है। इस रोग के बहुत रोगियों में मूत्र की परीक्षा में शर्करा न होने पर भी रक्त में शर्करा मिलती है।

प्रतिनियत लक्षण—

मधुमेह में मूत्र की मधुरता के साथ साथ रक्त में भी शर्करा होना अनिवार्य है। यही इसका प्रत्यात्म नियत लक्षण है।

चिकित्सा—

आयुर्वेद की सभी संहिताओं में बहुत विशद चिकित्सा क्रम हैं। यथा देश कालानुसार उन सभी का प्रयोग करना चाहिए।

मेरा अनुभव—

शिलाजतु प्रयोग, नवायसलोह, पुनर्नवा मण्डूर, वसन्तकुसुमाकर यथोपयुक्त काथों के अनुपान से उत्तम फलप्रद होते हैं।

येर्हेतुभिर्ये प्रभवन्ति मेहास्तेपु प्रमेहेपु न ते निषेव्या।
हेतोरसेवा विहिता यथैव जातस्य रोगस्य भवेच्चिकित्सा॥

यह चरकीय चिकित्सा सूत्र तथा "त्रिविधं भिषग्जितम्" सर्वथा स्मरण करते हुए-संशोधन संशमन-निदान परिवर्जन को ध्यान में रखते हुए इन प्रयोगों से चिकित्सा करने पर यश प्राप्ति होगी।

प्रारंभ से ही हरिद्रा स्वरस १ तोला, आमलक स्वरस ४ तोला, मधु १ तोला, शिलाजतु ६ गुंजा को अच्छी तरह मिलाकर वसन्त कुसुमाकर २ गोली या नवायस लोह १० रत्ती लेकर ऊपर से अरणी, खदिर पूगीफलों का १ तोला क्वाथ बनाकर पिलावें।

सुश्रुत ने "अनल्प माक्षिकम् माध्वीकमभीक्ष्णम्, क्षौद्र कपित्थ मरिचानि" आदि से मधु या मधुमद्य या द्राक्षासव का प्रयोग करना चाहिए।

सिद्ध भेषज मणिमाला का वगभस्म अवश्य फलप्रद प्रतीत होता है—

"उच्चकैरापदा गेह हन्तन हन्ति किम्" इति।

—श्री डा० शकरलाल के० भेड़ा,
टकसाली भवन, १६३ कालबादेवी रोड, बम्बई।

[२] इन सब तत्वों के परमाणुओं की रचना- १—इलैक्ट्रोन (*Electron*) २-प्रोटोन (*Proton*) और ३—न्यूट्रोन (*Neutron*) इन तीन विद्युत कणिकाओं (*Particles*) से हुई है। परमाणु की रचना नीचे चित्र द्वारा समझाई गई है।

(१) इलैक्ट्रोन (*Electron*) में ऋण (*Negative*) बिजली होती है।

(२) प्रोटोन (*Proton*) में घन (*Positive*) बिजली होती है।

(३) न्यूट्रोन (*Neutron*) मे कोई बिजली नहीं होती।

(४) प्रोटोन (*Proton*) इलैक्ट्रोन (*Electron*) से १८४६ गुणा भारी होता है परन्तु दोनो में बिजली की शक्ति (*Electric Charge*) समान होती है।

(५) प्रोटोन और न्यूट्रोन का भार समान होता है।

(६) प्रोटोन और न्यूट्रोन दोनो मींगी (*Nucleus*) मे स्थित रहते है।

(७) इलैक्ट्रोन अपने अपने ग्रह पथ (*Orbit*) पर पृथ्वी आदि ग्रहों की भांति (*Like Solar System*) मींगी (*Nucleus*) की परिक्रमा (*Revolve*) करते रहते हैं।

(८) (क) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या पहले ग्रहपथ (*Orbit*) पर दो होती है।

(ख) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या दूसरे ग्रहपथ (*Orbit*) पर ८ होती है।

(ग) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या तीसरे ग्रहपथ (*Orbit*) पर १८ होती है।

(घ) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या चौथे ग्रहपथ (*Orbit*) पर ३२ होती है।

(च) इलैक्ट्रोन की अधिकतम संख्या पांचवे ग्रहपथ (*Orbit*) पर १८ होती है।

(छ) किसी भी ग्रहपथ (*Orbit*) पर इलैक्ट्रोन ३२ से अधिक नहीं हो सकते है।

(ज) रसायनिक क्रिया में परमाणुओं के बाह्य ग्रहपथ (Last Orbit) के इलैक्ट्रोनो (Electrons) मे ही अदला बदली (Exchange) होती है और इसी क्रिया से योगिक बनते और टूटते रहते हैं।

(३) यदि हम इन तीनो कणिकाओं (१-इलैक्ट्रोन २- प्रोटोन और ३—न्यूट्रोन) की रचना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि इन तीनो कणिकाओ की रचना १—प्रकृति (Matter) २—अग्नि अथवा शक्ति (Energy) ३—आकाश (Space) इन तीन ही मूल तत्वो से हुई है।

किसी तत्व या पदार्थ का सच्चा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के साधन चाहिये। जैसे १—पाच ज्ञानेन्द्रिया २—साधारण यान्त्रिक प्रयोग ३-सूक्ष्म यान्त्रिक प्रयोग ४—गणित (Mathematics) ५—अन्तर्बोध (Intuition from deep meditation)

हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो अनुभव करते है उससे हमें कई बार भ्रम हो जाता है जिसकी सत्यता का निश्चय करने के लिए हम साधारण

—शेषांश पृष्ठ ३५ पर

श्वेत कुष्ठ (सफेद दाग)

कविराज श्री अवधविहारी मिश्र शास्त्री

प्रायः सभी रोग भयङ्कर होते है। पर कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ सबसे अधिक जघन्य माना जाता है। जिस पुरुष पर इसका प्रकोप होता है, वह समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। कोढ़ी के साथ खाना पीना, उठना बैठना तो क्या उससे कोई ठीक से दो बाते भी नहीं करना चाहता। किन्तु खेद इस बात का है कि इस महारोग से पीडित व्यक्तियों की संख्या अपने देश मे बढ़ती जा रही है। और सरकार इस ओर कुछ ध्यान ही नहीं दे रही।

आयुर्वेद मतानुसार इसकी गणना कुष्ठ मे नहीं है क्योंकि कुष्ठ स्रावयुक्त होता है —'यत्किञ्चित्स्रावितत्कुष्ठं' किन्तु श्वेत कुष्ठ मे, वह किसी अवस्था में क्यो न हो, किसी प्रकार का स्राव नहीं होता अर्थात् इससे किसी तरह की पतली और चिकनी चीज नहीं निकलती, साफ सफेद दाग ही रहते है। किन्तु कुष्ठ पापजन्य है। और यह भी पापजन्य है इसलिए इसकी गणना भी कुष्ठ से ही की जाती है। संस्कृत मे इसे किलास कहते है। अग्रेजी में इसका नाम ल्यूकोडर्मा (Leueoderma) है। आयुर्वेद के मतानुसार मनुष्य की देह में त्वचाओ के छः पर्त होते है। श्वेत कुष्ठ की उत्पत्ति तीसरी त्वचा से मानी है।

उत्पत्ति के कारण --

वचान्स्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दा सुराणा गुरुधर्षणं च।
पापक्रिया पूर्व कृतञ्च कर्म हेतु किलासस्य विरोधिचान्नम्॥
—चरक

अर्थात् असत्य बोलना, कृतघ्नता, देवताओ की निन्दा, गुरुओं का तिरस्कार, पापाचरण, पूर्वजन्म कृत कुकर्म तथा विरोधि पदार्थों के सेवन से किलास उत्पन्न होता है। चरक संहिता मे विरोधी भोज्य-पदार्थों के सम्बन्ध मे यह बतलाया गया है कि प्रकृति को दूषित करने वाले द्रव्यों से शरीर के रसादि सात धातु या वातादि दोष विगड जाते हैं। इन द्रव्यो में कुछ द्रव्य परस्पर गुणो से, कुछ संयोग से और कुछ संस्कार से, कुछ देश, काल, मात्रा से और कुछ स्वभाव से ही विरोधी गुण वाले होते है। उदाहरणार्थ परस्पर विरुद्ध–जैसे मछलियों को दूध के साथ खाना। संयोग विरुद्ध जैसे पके हुये बड़हल को उडद से मिलाकर खाना। संस्कार विरुद्ध—जैसे कबूतर को सरसो के तैल मे भूनकर खाना। देशकाल मात्रा—स्वभाव विरुद्ध राख और धूल मिला भोजन खाना, गरम शहद खाना, मकोय का बासी साग खाना, बराबर वजन का शहद और घी मिलाकर खाना, मूली लहसुन, सहिजन, राई, तुलसी, मछली आदि को दूध के साथ खाना। उपर्युक्त विरोधी खान-पान से कुष्ठ, तथा अन्य भयंकर रोगों के होने का डर रहता है।

पाश्चात्य (एलोपैथी) चिकित्सको के मत के अनुसार चर्म को रगने वाले पदार्थों की कमी से यह रोग उत्पन्न होता है। इसके प्रधान कारण उपदंश (Syphilis) आतशक आदि रोग है।

श्वेत कुष्ठ के भेद एवं चिकित्सा—

श्वेत कुष्ठ के तीन भेद है - (१)दारुण-रंग लाल तांबे के समान होता है। (२) वारुण-इसका रग कमल दल के समान आस-पास सफेद और बीच से लाल होता है। (३) श्वित्र—यह बिलकुल चमेली के फूल के समान श्वेत होता है।

इस रोग की चिकित्सा कुष्ठ से भी कठिन होती है। पश्चिमी (एलोपैथी) चिकित्सको के अनुसार तो यह रोग बिलकुल असाध्य होता है। डाक्टरी पुस्तकों मे तो यह सलाह दी जाती है कि सफेद दागो मे पाउडर आदि शृगार सामग्री चुपड़कर ढ़के रखना चाहिए। किन्तु आयुर्वेद मे इसकी चिकित्सा का समुचित विधान है। आयुर्वेद के प्रधानतम आचार्य महर्षि पतञ्जलि का कथन है—

शुद्ध्या शोणित मोदोर्विरुचयोर्भचवैश्च सक्तूनां ।
श्वित्रकस्यचिदेव प्रशाम्यति चीण पापस्य ॥

अर्थात् जिस पुरुष के पापों का नाश हो जाता है उसे विरेचन तथा संशोधन से शुद्ध कर यह अच्छा किया जा सकता है। अन्यथा यह असाध्य है।

एक ओर तो महर्षि पतञ्जलि ने इस रोग को इतना भयंकर बतलाया है; इसकी दूसरी ओर आजकल विज्ञापन बाज एक दिन के अन्दर तीन बार या तीन दिन तक दवा लेप करके इसे अच्छा कर देने का दम भरते है। पाठकगण विचार कर देखे कि दोनों में कौन ठीक हो सकता है। ऐसे कठिन रोग से बहुत सुगमता, शीघ्रता एवं सामान्य औषधियों से छुटकारा पाना संभव नहीं है। यह रोग तो महर्षियों द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा प्रणाली के द्वारा ही निर्मूल किया जा सकता है। इस रोग के लिए जो बाजारू लेप इत्यादि है, उनके लगाने से कभी कभी दागो का रंग बदलता हुआ दीख पड़ता है। पर इससे स्थाई लाभ कदापि नहीं होता। या तो कुछ समय बाद ज्यो के त्यों हो जाते है। अथवा शरीर के किसी दूसरे स्थान पर निकल आते हैं। क्योंकि लेप से रक्तगत दोष शुद्ध नहीं हो सकता।

श्वेत कुष्ठ में सोमराजी (बाकुची), कठगूलर तथा शरपुंखा आदि वनस्पतियो का प्रयोग उत्तम लाभकारी है। लाभ भले ही कुछ अधिक समय में हो किन्तु इनसे किसी प्रकार की हानि नही होसकती। कुछ अन्य अप्रसिद्ध जड़िया भी है जो श्वेत कुष्ठ पर अच्छा काम करती हैं।

रस चिकित्सा –

दैवी (रस) चिकित्सा मे ही यह सामर्थ्य है कि इस पापज रोग का समूल नाश हो कर रोगी को नवजीवन प्राप्त हो जाय।

चिकित्सा मे प्रधान पारद है। शास्त्रों मे सुवर्ण में लाख गुण, हीरा मे कोटि गुण तथा पारद मे असंख्य गुण लिखे हैं। पारद कुष्ठदा अर्थात् कोढ़ को नाश करने में अमोघ-शक्ति रखता है। श्री गोविन्द मिश्र अपने रस हृदय ग्रन्थ में लिखते है—

सुरगुरु गोद्विज हिंसा पापकलापोद्धवं किलासाध्यं।
चित्रं तदपि च शमयति कोऽन्यस्मात् पवित्र तर.॥

अर्थात् देवता, गुरु, गाय, ब्राह्मण आदि की हत्याओं से उत्पन्न असाध्य श्वेत कुष्ठ को पारद अच्छा कर देता है। अतएव पारे मे भगवान शंकर का अनिवर्चनीय प्रादुर्भाव आज भी देखने को मिलता है। नहीं तो इसके विलास मात्र से ही इतना बड़ा पापज रोग श्वेत कुष्ठ कैसे ठीक हो जाता? रसेन्दु मंगल ग्रन्थ मे यह स्पष्ट लिखा है कि सौ अश्वमेघ यज्ञ करने का पुण्य, करोड़ गौदान का पुण्य, सुवर्ण भूमिदान का पुण्य, सारे पुण्य केवल पारद के दर्शन से ही मिलते है। और भी लिखा है—

कन्या कोटि प्रदानेन गङ्गायां पितृ तर्पणे।
वृषोत्सर्गे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं कुष्ठनाशने॥

कुष्ठ के सम्बन्ध में तो शास्त्रकारो का यह मत है कि—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत्।
अतो निन्दित रोगोयं कष्ट कुष्ट प्रकीर्तितम्॥
एत वता कुष्ठिना कदापि न विश्रान्तव्यं॥

अर्थात् कुष्ठ का रोगी मरने के बाद जब जन्म लेता है तब भी कोढ़ी होता है। इसलिए इसकी चिकित्सा निरन्तर कराते रहना चाहिए। हो सकता है कि संयोगवश सुयोग्य चिकित्सक और उत्तम औषध के संयोग के द्वारा इस कठिन रोग से छुटकारा मिल जाय।

हमारा तो यह पूर्ण विश्वास है कि यदि नियमपूर्वक पूरे परहेज के साथ औषध सेवन की जाय तो इस रोग का अच्छा होना केवल सम्भव ही नहीं वरन् सुनिश्चित है। अनेक वर्षों के हमारे अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है।

—श्री अवधबिहारी मिश्र वैद्यशास्त्री,
बिन्दकी (फतेहपुर)

ज्वर और उसकी अनुभूत चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा

(१) जीरकाद्य अवलेह--

जीरा भुना २ मासे, छोटी इलायची के दाने २ मासे, वंशलोचन २ मासे ये सब वस्तुएं खूब बारीक पीस लें। बेल पत्र (बेल पत्र के हरे पत्ते) ५ नग, बिना पानी डाले चकले पर लोड़ी से चटनी की तरह पीसकर उक्त चूर्ण में मिलावे। इन सबको १ तोले शहद में मिलाकर रखले और रोगी को २-२ घंटे बाद १॥ मासे चटावे। इससे दस्त रुक जाते है, आंतो के घाव भरते है, हृदय को बल मिलता है। यदि दस्त में शक्कर, मधु जाने लगा है जैसा कि अधिकाश सन्निपात ज्वर में देखा जाता है, तो यह अवलेह लाभ करता है। मोतीझला के दस्तो में भी लाभ करता है। ज्वर की तीव्रता और घबराहट को कम करता है।

(२) गृहणी कपाट वटी–

हींग भुनी १ तोला, शुद्ध अफीम १ तोला, जीरा सफेद भुना १ तोला, गोद बबूल ३ मासे। सबको पानी के साथ खूब घोटकर चने के बराबर गोलियां बनाले। मात्रा १-२ वटी। अनुपान—जल से या थोड़ा सा जायफल और सोठ पानी में घिस-कर उसमें गोली मिलाकर चटावे। इससे दस्त भी बन्द हो जाते है, हवा खुलती रहती है, अफरा होने का भय नहीं रहता।

(३) बेलगिरि २ रत्ती, जायफल २ रत्ती, जीरा १ रत्ती, सोठ २ रत्ती, पानी के सहारे चकले पर घिसकर चटाने से अतिसार का उपद्रव ठीक होता है।

(४) प्याजादि योग -

प्याज की गांठें कूटकर निचोड़ा हुआ स्वरस १ पाव, पोदीने को कूटकर निचोड़ा रस १ पाव, सिरका १ पाव। मात्रा १-१ तोला २-२ घंटे पर।

खिमाक दाना पाव भर, नीम की छाल पाव भर इन दोनों वस्तुओ को ३ सेर पानी में औटावें जब १ सेर शेष रह जाय उतार कर छान लें।

एक तोला कपूर लेकर उसमें १ तोला शराब मिलाकर हल करले। सिरके में १ तोला शुद्ध अफीम घोल ले।

प्याजादि अर्क, क्वाथ, कपूर और अफीम का घोल सबको एक बोतल मे भरकर रखले।

मात्रा –३ से ६ माशे तक। यह योग दस्त, कै में लाभदायी है। इससे ज्वर तीव्र नहीं होता।

(५) पंचमूल्यादि क्वाथ—

पंचमूल (सरवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू) खरैटी, बेल का गूदा, गिलोय, नागरमोथा, सोठ, पाढ, चिरायता, नेत्रवाला, कुड़े की छाल और इन्द्रजौ य सब वस्तुएं समान भाग लेकर जौकुट करले। इसमें से २॥ तोला औषधि पावभर पानी मे औटावे। जब १ छटांक रह जाय उतारकर थोड़ा रोगी को पिलावे। इस क्वाथ से सब प्रकार के अतिसार ज्वर, वमन दूर होते है। अतिसार के साथ सन्निपात ज्वर मे जब वमन, पेट मे दर्द, खासी और श्वासादि उपद्रव हो उस समय पर यह क्वाथ बड़ा लाभदायी रहता है।

(६) सिद्ध प्राणेश्वर रस–

शुद्ध गंधक, शुद्ध पारा, अभ्रक भस्म, प्रत्येक १-१ तोला सज्जी, सुहागा चौकिया फुलाया हुआ, जवाखार, पाचो लवण, त्रिफला (हरड़ का बक्कल, बहेड़े का बक्कुल, आवला गुठलीरहित), त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), इन्द्रजौ, काला जीरा, सफेद जीरा, चित्रक, अजवायन, हींग भुनी हुई, वायविडग, सोफ इन सबको कपड़छन किए हुए चूर्ण ३-३ माशे।

पहले पारे और गंधक को खरल में डालकर घोटे। जब दोनो मिलकर काली कज्जली बन जाय तब अभ्रक मिला कर घोटें। इसके बाद शेष चूर्ण को मिलाकर खरल कर रखलें।

मात्रा—१-२ रत्ती। पान के रस, गर्म जल अथवा ऊपर बताये हुए अथवा नं. ३ के योग के साथ देने से घोर त्रिदोषज अतिसार अथवा सन्निपात ज्वरों मे हुए उपद्रवयुक्त अतिसार, रक्तस्राव में लाभदायी है। ज्वर, संग्रहणी, उदरशूल, परिणाम शूल (भोजन पचने पर होने वाला पेट का दर्द) वायु के रोगो मे भी विशेष उपयोगी है।

(७) कनक सुन्दर रस—

शुद्ध हिंगुल, काली मिर्च का चूर्ण, पीपल छोटी पिसी हुई, शुद्ध मीठा तेलिया पिसा हुआ, शुद्ध धत्तूरे के बीज का चूर्ण, सब वस्तुओ को बराबर लेकर खरल में डालकर भांग के रस या काढ़े में ३-४ घण्टे लगातार खूब खरल कर चने के प्रमाण वटी बनावें।

मात्रा—१-२ गोली। अनुपान—पूर्ववत्।

इसके सेवन कराने से सन्निपात ज्वर अतिसार सहित शीघ्र शमन होता है। यह रस मंदाग्नि, संग्रहणी और विषम ज्वर में भी लाभदायी है। खांसी, श्वास में भी लाभ करता है।

एक सावधानी की बात

यदि आप रोगी को दूध दे रहे हों तो अतिसार, अफरा होने की दशा में आप दूध देना कतई बन्द कर दीजिये। यदि आपको दूध देना अनिवार्य ही हो तो आप १० तोले दूध में १ तोला 'सुधा-सलिल' अवश्य पिला दीजिए।

(८) सुधा सलिल—

चूना कलई बिना बुझा लेकर दस गुने पानी मे डालकर एक लकड़ी के डंडे से चला दें और उसे ढककर रख दे। ४-५ दिन बाद चूना पानी मे बैठ जायगा। आप ऊपर से निथरा हुआ जल ले ले।

यह अग्निवर्द्धक, आमशूल नाशक, वमन, विरेचन में उपयोगी है। दूध में मिलाकर देने से दूध पच जाता है। बच्चों के कै, दस्तों को बन्द करता है। बच्चों को हमेशा दूध में मिलाकर दीजिए। नीचे हम इसका उपयोगी योग देते हैं—

(९) इसमेद सुधा—

बबूल का गोंद पिसा हुआ ½ तोला, शुद्ध अफीम १ रत्ती, सुधा सलिल १५ तोले।

एक पत्थर या चीनी अथवा कांच के प्याले में थोड़ा सा सुधा सलिल डालकर उसमे पहिले अफीम घोल ले। जब अफीम घुल जाय तब उसमें गोंद घोल लें। फिर शेष सुधा सलिल मिलाकर एक शीशी में भर कर रख दे।

मात्रा—२॥-२॥ तोले। ४-४ घण्टे बाद देने से सब प्रकार के दस्त, मरोड़, आम, रक्तातिसार, खूनी दस्त या पेचिश मे लाभ करता है अधोगत रक्तपित्त में विशेष लाभकारी है। आंतों के घावो को भरता है। सन्निपात ज्वर में उत्पन्न हुए अतिसार मे निश्चय लाभ करता है। दीपन पाचन है।

(१०) पिच्छिल वस्ति—

निशास्ते को पानी में घोल दें साथ ही १ रत्ती अफीम भी घोलकर बस्ति देने से दस्त शीघ्र बंद हो जाते हैं।

विड्ग्रह (कब्ज)

सन्निपात ज्वरो में रोगी को प्राय: मलबन्ध [कब्ज] रहता है, कई कई दिन तक दस्त ही नहीं होता। जब रोगी को लंघन, उपवास हो रहे हों तो कब्ज का हो जाना एक स्वाभाविक बात है। जब चक्की मे कुछ गिरता ही नहीं तब निकले भी क्या मल विसर्जन में खाये हुए भोजन का दबाव भी सहायता देता है। इसलिये जब अतिसार (दस्त) न रहे हों तब कुछ भोजन न देने से आंतों में स्थित मल को वहां रुके रहने का अवसर मिल जाता और आंतों के रसांकुर भोजन में से रस को अधिक चूस लेते है, फलत: मल गाढ़ा हो जाता है। अधिक समय तक मल के आंतो में रुके रहने से मल गाढ़ा होकर गांठे बन जाती हैं। ये गांठे कभी बडी स्थूल [मोटी], खुश्क, करी हो जाती है और इनके निकलते समय रोगी को बड़ा बल लगाना पड़ता है

जिससे अनेक बार मलद्वार तडक जाता है और उससे रक्तस्राव होने लगता है। अनेक बार तो रोगी की गुदा में अंगुली डाल मल के टुकड़े टुकड़े कर निकालने की आवश्यकता पड़ जाती है।

कब्ज लंघन, अल्पाहार देने से ही होता हो, सो बात नहीं है, बात प्रधान दोषों और रूक्ष आहार से भी मल बंध जाता है।

यद्यपि 'मलायत्तम् पुंसाम्' मल के आश्रित मनुष्यों को बल होता है। सन्निपात ज्वरों में यह कहावत बिल्कुल ठीक ही होती है कि 'मलबन्ध रोगी और दलबंद राजा का कुछ नहीं बिगड़ता' यदि राजा शत्रु से युद्ध में हार भी गया है, परन्तु उसका दल [सेना] बरकरार है तो वह उसके बल पर फिर शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार यदि रोगी के शरीर में मल है तो उसमें बल अवश्य है। बल के सहारे वह खड़ा हो सकता है। मल के टूट जाने, दस्तादि के द्वारा अधिक मल के शरीर से निकल जाने पर वह दुर्बल और दुस्साध्य हो जाता है। किंतु यह सब कुछ होते हुए भी मल का विशेष संचय कष्टकर होता है। यदि रोगी को दूध, फलों का रस, यवयूष [बारली वाटर] आदि हल्का आहार दिया जा रहा है, किंतु रोगी को कई दिन तक दस्त नहीं हो रहा है। दस्त होने की हाजत भी नहीं होती, साथ ही रोगी को कब्ज से कोई कष्ट भी प्रतीत नहीं हो रहा है तो कब्ज का बना रहना ही अच्छा है। उसे जबरदस्ती. छेड़छाड़कर निकालना हानिकारक है। हां जब देखते हैं कि रोगी को कई दिन से दस्त नहीं हुआ है, पेट गुड़गुडाता, पेट में वायु इधर से उधर घूमता है परन्तु नि.सारित (खारिज) नहीं होता। अफरा और शूल प्रतीत होता है, दस्त की हाजत तो होती है पर उतरता नहीं, अटक जाता है तो ऐसे समय सन्निपात ज्वर से अवश्य मल निकालने, कब्ज हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सन्निपात ज्वरों में मल निकालने के लिए तीव्र रेचन (दस्तावर दवा) का सहारा लेना भयानक है। इस कार्य के लिए अन्तः परिमार्जन (भीतरी सफाई, खाने की औषधि देने) की अपेक्षा बहिःपरिमाजन (बाहरी प्रयोग) उत्तम रहते हैं।

१—यदि रोगी को कई दिन से दस्त नहीं हुआ है और उतरते उतरते रुक जाता है, मल के उतरते समय रोगी की गुदा में तर्रामन, दर्द अनुभव करता है और दर्द तथा गुदा चिरने के भय से गुदा को संकुचित कर दस्त को रोकता है तो ऐसी दशा में थोड़ा घी या वैसलीन अथवा मीठा तेल लेकर उसे जरा गर्म कर गुदा और उसके आसपास लगा दीजिये। इससे गुदा और उसके आसपास का प्रदेश मुलायम-चिकना हो जायगा और मल उतरते समय आसानी से अधिक चौड़ जायगा, चटकेगा नहीं। यह क्रिया सावधानी के तौर पर यदि दस्त कराने के पहिले सदा बरती जाय तो बहुत ही उत्तम है। इससे दस्त आसानी से हो जाता है।

रेचन वर्ति

रेचन वर्ति—दस्त कराने की वत्ती, ग्लेसरीन सपोजीटरी का प्रयोग करना उत्तम है। इससे मलद्वार के आसपास का पक्का, कर्रा, सूखा मल ही बाहर निकलता है, कच्चा मल नहीं निकलता। केवल एक ही दस्त होता है, कभी कभी एक बार में गाठें नहीं निकल पातीं तो दूसरा एक दस्त और भी हो जाता है। परन्तु इससे रोगी निर्वलता अनुभव नहीं करता जैसा कि खाने की किसी औषधि से दस्त कराने के बाद अनुभव करता है। यदि रेचन वर्ती के प्रयोग से दस्त नहीं होना तो आप—

अनुवासन वर्ति

तेल या ग्लेसरीन की पिचकारी से दीजिए। इससे गांठे चिकनी हो जाती है और गुदा में चिकनाहट, फिसलन पैदा हो जाने से गांठे आसानी से फिसलकर बाहर आ जाती हैं। परन्तु अनेक बार देखा गया है कि जब गांठे बड़ी मल शुष्क होता है तो अनुवासन वस्ति से भी दस्त नहीं होता उस समय—

निरूहण वस्ति

काढ़े की वस्ति (अनीमा-डूस) से विशेष लाभ होता है। क्वाथ के जल में मल घुलकर पतला हो

जाता है और वह आसानी से गुदद्वार से बाहर निकल आता है। जितना जल अनीमा के द्वारा पेट मे पहुंचाया जाता है, वह सब वापस नहीं निकलता उसका कुछ भाग सोख लेता है, कुछ आंतें चूस लेती है, शेष बाहर आ जाता है। जल तथा स्नेह के आंतो द्वारा शोषण होने से लाभ ही होता है, कोई हानि नहीं होती। निरूह वस्ति के देने पर भी यदि दस्त होने में विशेष विलम्ब होता दीखे तो आप फलवर्ती लगा दीजिये। निश्चय तत्काल दस्त हो जाएगा।

फलवर्ती

मैनफल, पीपल, कूठ, वच, सफेद सरसों और जवाखार १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करे, फिर चूर्ण मिलाकर चलाते रहे। जब बर्ती बांधने लायक हो जाय तब कनिष्ठका से कुछ पतली और नोंक वाली वर्ती (वत्तियां) बनाले। इस वर्ती पर थोड़ा घी वाला हाथ लगाकर गुदा में चढाने से मलावरोध जनित उदावर्त रोग का शमन होता है, उसी समय रुकी हुई अधोवायु निकल कर अफरा दूर हो जाता है। यदि मल सूख कर गुद नलिका में फंस गया हो तो वह निकल जाता है और फिर ऊपर मे रही हुई अपानवायु सरलता से बाहर निकल जाती है। इसी प्रकार—

फेनक फलवर्ति

का भी प्रयोग किया जाता है। एक साबुन की चकती में चाकू से छोटी अंगुली जैसा मोटा टुकड़ा काटकर चाकू से चारो ओर से छील छुआरे की गुठली की तरह एक ओर नोकीला रक्खे। दूसरी ओर नोक रहित और मोटा रक्खे। इसे मीठे तेल और पानी में डुबोकर या शहद मे डुबा ऊपर से महीन नमक छिडक कर नोकीली ओर से धीरे धीरे रोगी की गुदा में प्रविष्ट करे। यदि इसकी लम्बाई छः अंगुल हो तो इसका प्रभाव गुदा की तीनो बलियों से भी ऊपर होता है और वहा से मल को निकालती है अन्यथा प्रकृति को मल को बाहर निकालने की ओर लगा देती है। इससे सरलता से नीचे का मल निकल जाता है और ऊपर का मल नीचे धसक कर उसकी जगह आ जाता है। दस्त के साथ संचित दूषित वायु भी निकल जाती है।

ग्लेसरीन सपोजिटरी

ग्लेसरीन की वत्तियां अंग्रेजी सब दवा बेचने वालो के यहा बनी बनाई मिल जाती हैं। ये बच्चों और बड़ों में व्यवहार करने के लिये छोटी और बड़ी दो प्रकार की बाजार मे मिलती है। ये भीतर जाकर घुल जाती है, मल मार्ग को स्निग्ध कर मल को निकलने में सहायता पहुँचाती है।

अनुवासन वस्ति

विरेचन, ग्लेसरीन आदि चिकनाई गुदा द्वारा आंत मे पहुंचाने का नाम अनुवासन या स्नेह वस्ति है।

प्राचीनकाल मे गुदा के मार्ग से औषधि प्रवेश करने के लिए जो यन्त्र बनाया जाता था, वह बकरी-बकरे, गाय-बैल आदि जानवरो की वस्ति (मूत्राशय, मसाने, मूत्र इकट्ठा होने की थैली) से बनाया जाता था इसलिए उसे वस्ति यंत्र कहते थे। वह ऐसे बनता था—

कसाई से मसाने को मंगा साफ कर उसके तीन छेदो में से दो को बाध देते थे। तीसरे छेद से उसमें औषध भर उस छेद मे एक बांस या लकड़ी की खरादी बढ़ई से खरदवाई हुई चिकनी नली जिसका कि छेद करीब मूंग के बराबर चौड़ा होता था लगा देते थे। इस नली को चिकनी कर धीरे धीरे गुदा में प्रविष्ट कर मसाने को दबाकर औषधि भीतर प्रविष्ट कर देते थे। इस विधि को यूनानी हकीम 'हुकना' कहते है।

इसके बाद में शृङ्गिकोष यानी पिचकारी में भर कर औषध भीतर प्रविष्ट करने लगे। परन्तु नाम वस्ति ही लेते रहे हैं। आजकल धातु शीशों की बनी हुई पिचकारी आती है, इन्हे 'ग्लेसरीन सिरिंज' (Glycerine Syringe) कहते हैं।

प्रवेश विधि

रोगी बाई कर्वट से लिटाकर बायां पैर लम्बा पसार दे, दाहिना पैर सिकोड़ कर पेट के पास ले आवें। रोगी का बायां हाथ उसके सिर के नीचे तकिये की तरह रखादें। रोगी का सिरहाना पांयत

से नीचे रखना अच्छा है ताकि तरल को प्रविष्ट होने से सरलता रहे। यदि आवश्यकता समझे तो रोगी के नितम्ब के नीचे तकिया लगाकर ऊंचा कर दें। वस्ति नलिका या पिचकारी (नोजिल Nozle) तैल से तरकर गुदा मे हाथ के सहारे से धीरे धीरे भीतर करके बायें हाथ से नली दबाये, दाहिने हाथ से न तो बहुत जल्द जल्द जोर से और न बहुत धीरे वस्ति को दबावे। पिचकारी के छल्ले, पैट्रिन को दबाकर औषध भीतर प्रविष्ट कर दें, वस्ति पिचकारी में भरे सारे द्रव को भीतर प्रविष्ट इसलिए नहीं किया जाता है कि वस्ति मे की वायु गुदा में प्रविष्ट न हो जाय।

तैल वस्ति देने के बाद रोगी का दूसरा पैर भी सकोड दे और दोनो नितम्बों को मिला थोड़ी देर दबाये रहे ताकि स्नेह कुछ देर भीतर रुका रहे और अपना कार्य अच्छी तरह कर सके। क्योकि वस्ति लगाते ही वह निकलने का प्रयास करता है।

यदि आप वस्ति-डूस सैट से दे रहे है तो पात्र को इतना ऊंचा रखिये कि द्रव की गति अधिक न हो।

कभी कभी गुदा मे आधा ही द्रव प्रविष्ट होने पर ही रोगी को मल या वायु के त्याग की इच्छा होती है, उस समय वस्ति का तैल निकाल लेना चाहिए और रोगी के मल वायु निःस्सारण कर लेने के पश्चात फिर बाकी द्रव की वस्ति दे देनी चाहिए।

कभी कभी ऐसा होता है कि रोगी की गुदा मे अर्श के मस्से होते है या कड़ा मल ही अड़ा होता है जिससे वस्ति का नेत्र आगे नहीं बढ़ता। ऐसी दशा मे नेत्र पीछे आगे सरका कर मार्ग कर लेना चाहिए। कभी कभी मल के नेत्र (छिद्र) मे घुस जाने से भी द्रव भीतर जाना रुक जाता है। ऐसी दशा मे वस्ति नेत्र को बाहर निकाल उसका पिष्टन दबाकर थोड़ा सा द्रव गिरा देने से खुल जाता है, तब उसे फिर प्रविष्ट कर देना चाहिए।

—रसवैद्य श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य,
जैन धर्मार्थ चिकित्सालय,
कीठम पो. रैपुरा जाट (मथुरा)

:: पृष्ठ ३१ का शेषांश ::

यंत्र प्रयोग मे लाते है। कई बार साधारण यांत्रिक प्रयोग भी हमें अपूर्ण ज्ञान की ओर अग्रसर करते हैं जैसे मोमबत्ती और गत्ते के टुकड़े से हम तेज (Light) का जो प्रयोग करते हैं, उससे यह आशय निकालते है कि प्रकाश की किरणें सीधी रेखाओं के समान चलती है परन्तु जब हम सूक्ष्म यन्त्र (Cathode ray tube) में प्रकाश का प्रयोग करते है तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तेज की गति धारावाही है।

ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की सीमाओ का अन्त भी शीघ्र ही आ जाता है। फिर हम गणित का सहारा लेते है। गणित भी हमे पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराने मे असमर्थ सिद्ध हुआ है। गणित से आगे का और अन्तिम साधन जो हमारे पास है वह है अन्तर्बोध।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अधिकतर निष्कर्षों के आधारभूत साधन पांच ज्ञानेन्द्रियों से लेकर गणित तक ही सीमित है, जबकि आयुर्वेद के पांच तत्वों के मत का प्रतिपादन प्राचीन ऋषियो ने उच्चतम साधन अन्तर्बोध द्वारा किया है। इसमें यदि किसी विद्वान को संशय हो तो तर्क की कसौटी पर कस कर देख ले। (शेष आगामी अङ्क में)

—श्री बुद्धि प्रकाश जिज्ञासु,
हरियाना प्रेस फार्मेसी, सोनीपत।

राजस्थान में बालशोष का रूप और उसकी चिकित्सा पद्धति

कविराज श्री पं० अम्बालाल जोशी साहित्यायुर्वेदरत्न, आयुर्वेद केशरी, एम. सी.

आपकी सर्वप्रियता एवं कार्यकुशलता के उदाहरण अभी हाल के ही देखे जा सकते है—मारवाड आयुर्वेद प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष तथा अ भा आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक के रूप में निर्विरोध निर्वाचन। आप जोधपुर के सम्मानित म्युनिस्पल कमिश्नर होने के साथ ही 'जय आयुर्वेद' के सहयोगी हैं ही। सुप्रसिद्ध चिकित्सा व विद्वान लेखक के रूप मे पर्याप्त सफलता प्राप्त करने वाले श्री जोशी जी से हमें आशा है कि महासम्मेलन पत्रिका के, सम्पादक के रूप में आप पूर्ण सफल सिद्ध होंगे। प्रस्तुत लेख मे आपने हमारे विशेष निवेदन पर राजस्थान मे बालशोष की चिकित्सा पर उपयोगी प्रकाश डाला है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

आज के इस युग में जब कि यातायात के अनेक साधन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है तथा भारत ही क्यो विश्व के एक भाग से दूसरे भाग तक कुछ ही घण्टों तथा दिनो में पहुंचा जा सकता है या सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है, किसी भी वस्तु को किसी एक देश या प्रान्त तक सीमित रखना अत्यन्त ही कठिन है। विश्व एकीकरण का नारा लगाने वाले इस युग में कोई भी वस्तु किसी एक देश या प्रान्त तक सीमित नहीं रखी जा सकती। यदि इस ओर कोई प्रयत्न भी किया गया तो वह हास्यास्पद तथा निष्फल ही होगा। फिर भी अत्यधिक प्रचलित बातों को लेकर यदि यह उहा-पोह किया जाय कि अमुक बात अमुक प्रान्त मे प्राचीनकाल से व्याप्त है तो यह अनर्थ न होगा उसका प्रान्त से बहिष्कार भी न किया जा सकेगा।

बालशोष रोग भारत के प्रत्येक प्रान्त में समान स्तर पर व्याप्त है। यही कारण है कि एक प्रान्त में चल रही इस रोग की चिकित्सा दूसरे प्रान्त में यहा तक पहुंच गई कि उसका उत्पत्ति विषयक मौलिक विश्लेषण करना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य हो गया। अब आज इस अन्तर्प्रान्तीय एकीकरण के युग मे इसकी चिकित्सा को एक प्रदेशीय कहना संसार की दृष्टि मे 'कूप मण्डूक' की कथा को चरितार्थ करना है। परन्तु यह भी भूलना नहीं है कि इस लेख मे वर्णन की गई चिकित्सा राजस्थान में बहुतायत से दृष्टिगत की गई है।

बालशोष एक गरीबों का रोग है तथा राजस्थान एक गरीब प्रदेश है। यहां के व्यवसाय, व्यापार, खेती आदि सभी अर्थोपार्जन के साधन अपर्याप्त हैं अतः यहा पर यह रोग बालको मे बहुतायत से पाया जाता है। यह रोग उन बच्चों को अधिकतर होता है जिनकी माताओ को उनके पोषण के लिए अपर्याप्त पोषण खाद्य द्रव्यो की उपलब्धि होती है एवं जिनका रहन-सहन, वस्त्र विन्यास बहुत ही गन्दा होता है। असूर्यम्पश्या अंधेरी कोठरियों मे अन्धकारपूर्ण गन्दी गलियों में जो निवास करते हैं उन लोगों के बच्चो को यह रोग शीघ्र ही आ घेरता है। अभावजनित यह रोग बालकों के क्षय रोग के रूप मे अवतरित होता है। यह रोग शनैः शनैः आगे बढ़ता है तथा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में तो साधारणतया ज्ञान भी नहीं होने देता। कालान्तर में आगे बढ़ने पर यह कष्टसाध्य हो जाता है।

साधारणतया इस रोग के मुख्य मुख्य निदान ये हैं।—(i) जीर्ण रोगो के प्रतिफल स्वरूप, (ii) फुफ्फुस विकार जनित, (iii) दुग्धदोष जनित, (iv) अपौष्टिक आहार जनित तथा (v) आन्त्र विकार जनित आदि कारणों से यह रोग आगे बढता है तथा कालान्तर मे असाध्य गति को प्राप्त हो जाता है। हम पूर्व में यह कह आए है कि यह रोग प्रारम्भ से ही कृच्छसाध्य है।

प्रारम्भ में ज्वर, तदनन्तर अतिसार, वमन आदि लक्षणों को लेकर यह रोग पैदा होता है। बच्चे को अतिसार फटी हुई हरी, पीली, सफेद तथा अन्य रंगों की आती है। इसमें तालू नीचे लटक आता है तथा मस्तक (खोपड़ी) तालू के स्थान पर गड्ढा हो जाता है। धीरे धीरे बच्चा सूखने लगता है तथा निरुत्साहित सा प्रतीत होता है और कालान्तर में यहां तक कि सीधा बैठ भी नहीं सकता। उसकी रीढ की हड्डियां झुक जाती है। धीरे धीरे बच्चे का सारा शरीर सूख जाता है। विशेषकर गर्दन तथा टांगें बेडौल व भद्दी प्रतीत होने लगती है। बालक अस्थि का ढांचा मात्र रह जाता है। बच्चे के पृष्ठ (पुट्ठे) पर झुर्रियां पड़ जाती हैं तथा वहां चमड़ी लटक जाती है। रक्त के श्वेताणुओं का ह्रास हो जाता है।

इस रोग की विशेष परीक्षा करने के निमित्त निम्न विधियों का उपयोग करते हैं—

(१) इस रोग में बच्चे के कान की लौ पतली पड़ जाती है। इसे जोर से दबाने से बालक रोता नहीं है अर्थात् उसके दर्द नहीं होता, वे सुन्न पड़ जाती है।

(२) बच्चा दूध पीने की अत्यधिक इच्छा करता है तथा माता को भी छोड़ना नहीं चाहता।

(३) बच्चे को मक्खी पकड़ कर किसी भी प्रकार निगलवा देने से वह उल्टी (वमन) नहीं करता।

(४) 'अण्डे को फोड़कर बैठाने की परीक्षा' परीक्षा तो है ही साथ ही चिकित्सा भी है।

यह कार्य हथेली पर ऊनी तथा सूती वस्त्र रख उस पर अंडे का पानी रख कर गुदा पर हाथ रख कर भी किया जा सकता है।

(५) यह परीक्षा भी चिकित्सा के रूप में तथा रोग विनिश्चय के रूप में अपनाई जाती है। रोगी के तालू के गड्ढे में १॥, २ माशा गुड़ की डली रख कर ऊपर से गोंदा हुआ गेहूं के आटे का लोया चिपका कर पट्टी बांध दें। ४ से ६ घंटे के बाद पट्टी खोल कर देखें तो गुड की डली वहां नहीं मिलेगी। यदि गुड मौजूद रहे तो यह सूखा रोग नहीं है। यह कार्य भी तब तक किया जाता रहता है जब तक गुड़ उडता रहे। रोगी के ठीक हो जाने पर गुड उडना बन्द हो जावेगा।

अब हम इसकी चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे। राजस्थान एक विशाल प्रदेश है और यहां पर अन्य अनेकों प्रांतों की तरह दो प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां मुख्यतया प्रचालित हैं (१) आयुर्वेदिक जो ८० प्रतिशत जनता की चिकित्सा करती है तथा (२) एलोपैथी जो शेष जनता की अधिकांश संख्या

:: पृष्ठ ३४ का शेषांश ::

धनुषाकार हो जाती है। पृष्ठवंश कटि प्रदेश में उभर जाते हैं। मांसपेशियों के सधिशैथिल्य के कारण ऐसा ज्ञात होता है मानो बालक को पक्षाघात होने के कारण चलने फिरने की सामर्थ्य का नाश हुआ हो।

वातिक संस्थान विकृति——

कृशता क्षीणता के कारण बालक सदैव रेंरें करता है। बालक में प्रसेकजनित स्वरयन्त्रीय आक्षेप, श्लेष्मिक कला शोथ तथा वायु प्रवेश मार्ग में किसी अवरोध की प्रतीति होती है। वह सतप्त रहता है गला बैठा हुआ सा ज्ञात होता है। कुछ कालोपरांत श्वासकृच्छ्रता का भास होकर डब्बे की शिकायत मिलती है। कभी कभी कण्ठशालूक की स्थिति भी देखने को मिलती है। श्वासकृच्छ्रता वृद्धि में ज्वर विशेष मिलता है। कभी कभी स्वरयन्त्रीय शोथ होकर रोहिणी की उपलब्धि होकर बालक का जीवन समाप्त हो जाता है। अतिसार, श्वसनक आदि के साथ इसमें शिशु को धनुष्टम्भ सम आक्षेप आदि आकर मृत्यु होते भी देखी गई है। अधिकांशतः गंभीर रक्तक्षय निर्जलीयता में यह स्थिति मारक ही होती है किंतु तीव्र ज्वर के कारण आक्षेप हो तो शीघ्र उपचारोपरान्त रोग पर विजय सम्भाव्य है।

——श्री वैद्य शेषराय जैन आयुर्वेद रत्न
सरकारी आयु० दवाखाना, सोनी (भंडारा)

की चिकित्सा करती है तथा शत प्रतिशत राज्य द्वारा पोषित तथा समर्थित है। इन दोनो चिकित्सा पद्धतियों के अलावा भी अन्य चिकित्सा पद्धतियां यहां चालू है जो अत्यन्त ही अपर्याप्त है वे हैं– यूनानी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, क्रोमोपैथी आदि। इन सबका प्रचलन राजस्थान में नगण्य तथा अत्यल्प है। क्योंकि आयुर्वेदीय चिकित्सा ही हमारा इष्ट विषय है इसलिए हम इस पर ही इस लेख में विचार करेंगे।

राजस्थान में इस रोग की चिकित्सा चार प्रकार से की जाती है—(१) आयुर्वेदीय औषधि चिकित्सा, (२) झाडफूंक चिकित्सा, (३) टोटका चिकित्सा तथा उतारा चिकित्सा, (४) दुग्ध (डम्भ) चिकित्सा। ये चिकित्सायें राजस्थान के उन गांवों में प्रचलित है– जहां आसपास भी डाक्टर नहीं मिलते, पढ़े लिखे वैद्य भी उपलब्ध नहीं होते तथा जो वर्षों से इन्हीं सहायताओं से जिन्दा है उनका इन पर विश्वास वर्षों पूर्व से (शताब्दियों से) जमा हुआ है।

अत्यन्त ही प्रारम्भ से इस रोग से ग्रसित बालक को लेकर मातायें झाड फूंक करने वालों के पास जाती हैं तथा वह लोहे के शस्त्र से या मयूर पंख की छड़ी को हाथ में लेकर हवा मे हिलाता हुआ कुछ मंत्रोच्चारण के साथ यह कार्य करता है। इस कार्य के लिये विशेष निर्दिष्ट मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। तथा अनेक बार इससे बालकों को लाभ भी होता है। यह कार्य दिन मे १-२ या तीन बार किया जाता है। चाहे इसे विश्वास कहे या मानसिक चिकित्सा, यह राजस्थान की एक बहुप्रचलित चिकित्सा है जो देवी देवता, भोमिया, भोपाओं के नाम पर भी चलता रहता है। आज की परिभाषा में इनको फैलने का कारण शिक्षा की कमी तथा धर्म-भीरुता, मन्त्रशास्त्र तथा झाड़ फूंक के प्रति फैली मानसिक दुर्बलता, देवी देवताओं के प्रति अंध भक्ति तथा उनकी अप्रतिष्ठा द्वारा होने वाले क्रोध के लिए भय ही कहे जाते है। कुछ भी हो उनका अटूट विश्वास है आज इन बातों में। प्रातः ७ से ८ बजे तक मध्यदिन १२ बजे तथा सायं ६ से ७ बजे तक यह झाड फूंक की जाया करती है।

दूसरी पद्धति है टोटका तथा उतारों के द्वारा इस रोग की चिकित्सा। यह भी उपरोक्त विश्वासों का ही प्रतिफल कहा जा सकता है। किसी प्रकार का दान पुन्य न्यौछावर इसका मूल आधार प्रतीत होता है। चौराहे पर कुमकुम, अक्षत, दीपक किसी प्रकार के पकवान आदि मिट्टी के बर्तन आदि मे डालकर रख ये उतारे किये जाते है। पानी एक बर्तन मे लेकर बच्चे पर सातवार घुमाकर ऊपर परनाल में डाला जाता है और फिर इस प्रकार नीचे गिरे पानी को बच्चे की आंखे पर ललाट पर लगाया जाता है। इसी प्रकार अनेकों टोटके सम्पन्न किये जाते है। कुछ टोटके ऐसे हैं जो औषधियों से भी सम्बन्धित हैं तथा जिनका आधार भी वैज्ञानिक कहा जा सकता है। जैसे–

१–(i) सहदेवी–इसबूटी को शनिबार को सायं न्योत कर लाल डोरे से बांध दी जाती है तथा रविवार को सूर्योदय से पूर्व जड़ को निकाल कर ले आवे व उसी लाल डोरे से बांध कर बालक के गले मे लटका दे।❀

२–लहसुन (रसोन) की फुली को डोरे से बींध कर गले मे लटकावे। इससे भी विश्वास किया जाता है कि सूखा रोग नहीं होता।

३–सेर के नाखून चांदी मे मढकर गले मे लटका देते है तथा ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके बाद यह रोग नहीं होता।

४–रीछ के बाल भी चांदी की चौकी (मादलिए) मे डालकर गले में लटका दिया जाता है।

❀ कुछ वर्षों पर्व पाश्चात्य वैज्ञानिक विज्ञान की दुहाई देकर इन वस्तुओं का बहिष्कार किया करते थे तथा परिहास करते थे। परन्तु कालान्तर मे प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र वसु ने 'वृक्षों मे प्राण' का अनुसंधान कर इस भारतीय कल्पना की पुष्टी की है। प्रथम दिन मनुष्य जाकर उस वनस्पति को यह कहे कि विश्व कल्याण के निमित्त मै तुम्हे यहां से उखाड कर ले जाऊंगा। इस प्रकार का निमन्त्रण वृक्षों की प्राण शक्ति को दुगति करता है।

५—अतिबला की २-३ पत्तियां लेकर बंगला पान में रख कर चबावे। फिर इसके स्वरस मिश्रित थूक को बालक के पृष्ठ वंश की कशेरुकास्थि पर खूब मालिश करे। फिर कपड़े से उस स्थान को साफ कर देखे। श्वेत कोड़े छोटे छोटे बाहर निकलते हुए मालूम होंगे। उन्हें शीघ्रता से चिमटी के द्वारा दूर हटालें यह क्रिया मंगलवार को की जाती है।

६—उपरोक्त प्रकार से ही अपामार्ग की पत्तियां भी बालक के पृष्ठवंश पर (कशेरुकास्थि) पर मर्दन करें। उसके शुष्क होने पर भैंस के गोबर (गीले) की मालिश करें। उसी प्रकार के श्वेत कीट निकलेंगे उन्हें हटा लेने चाहिए। यह प्रयोग भी मंगल या इतवार को किया जाता है।

७—मकोय के पत्तों का उपयोग भी उपरोक्त प्रकार से ही किया जाता है।

८—अरणी (अग्निमथ) के पत्तों का स्वरस रोगी की तालु पर निचोड़ कर मालिश करे (धीरे धीरे हाथ फिरावें) यह प्रयोग सात दिन ही करे। माता को भोजन में चने तथा चावल मात्र दे।

उपरोक्त टोटके औषधियों के प्रत्यक्ष चमत्कार बताते हैं। कह नहीं सकते कि इनमें बार आदि के बंधन क्यों रखे गये हैं।

ग्रामीण जनता राजस्थान में अधिक है तथा वह अपनी चिकित्सा के लिये बार बार डाक्टरों की हाजरी नहीं बजा सकती। वे स्वयं चिकित्सा करने के आदी हैं। विशेष परिस्थिति में यदि रोगी ठीक होता प्रतीत नहीं होता हो तो वे निकटतम वैद्य की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न कर लेते हैं। अक्सर यहां के ग्रामीण नागरिक तथा चिकित्सक जिन औषधियों का प्रयोग करते हैं उनका सकलन यहां किया गया है—

१—ऊँट की हड्डी को माता के दूध में घिस कर रोगी बच्चे को पिलाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उसमें जहर मोहरा खताई भस्म या पिष्टी मिला कर देते हैं। लाभ होता है। इसकी मात्रा २ रत्ती की है।

१०—अजास्थि को खूब बारीक पीसकर सुरक्षित रख देते हैं। यह चूर्ण २ रत्ती तथा प्रवाल भस्म (अर्क दुग्ध भावित) २ रत्ती मिश्रित कर मां के दूध या शहद में देते हैं।

११—कच्छप पृष्ठास्थि को अर्क गुलाब में पीस कर समान भाग गोंद बबूल मिश्रित कर ४ रत्ती की मात्रा शहद में या मातृ दुग्ध में देते हैं।

१२—मूर्वा के पत्ते बकरी के दुग्ध में सेवन कराने से लाभ होता है।

१३—विदारीकन्द २ रत्ती शहद में बालक को चटा दिया जाता है।

१४—अश्वगधा २ रत्ती शहद में चटाने से सूखा रोग मिटता है।

१५—शखकीट २ रत्ती माता के दूध में मिलाकर पिलाने का यहां रिवाज सा है।

१६—वीर बहूटी २ माशा, केशर ३ माशा, कस्तूरी १ रत्ती, अफीम १ रत्ती मिश्रण कर गुलाब जल में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनाले। अतिसार सहित या तद्जन्य शोथ में लाभ करती है। मात्रा २ से ४ वटी।

(वीर बहूटी को राजस्थान में सावण की डोकरी कहा करते हैं। यह लाल रंग का रेशमीन गद्देदार सुन्दर जानवर होता है)।

१७—काली गाय का मूत्र ३२ तोले, केशर १ तोला शामिलकर पीस ले। फिर १ कांच की बोतल (शीशे) में डालकर गेहू की राशि में दबा दें। ८ दिन बाद प्रयोग में लावें। मात्रा १० से २० बूंद।

१८—दरियाई नारियल ६ माशा, डीकामाली ६ माशा, जहरमोहरा खताई भस्म ३ माशा, स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ माशे गुलाबजल में घोटकर उड़द (माष) प्रमाण वटी बनालें। मात्रा १ वटी दिन में २ या ३ बार आवश्यकतानुसार दूध में देते हैं।

१९—हरड़े बच, कूट समान भाग लेकर पानी में पीस ले। इसे शहद में मिलाकर माता के स्तनों पर हलका सा लेप करे। बाद में बच्चे को स्तन पिलावें। सूखा रोग समाप्त होता है। यदि बालक अन्न खाता हो तो यह औषधि शहद में चटा दे। लाभ होगा।

२०—नौसादर ६ माशे, कुत्ते की हड्डी १।। तोला, छोटी इलायची के दाने १।। तोले तीनों को अत्यन्त बारीक कर चूर्ण बनाले। मात्रा ४ रत्ती शहद मे चटाने से ३ सप्ताह मे यह रोग मिटता है।

उपरोक्त सभी योग पूर्णतया अनुभूत तथा निरापद हैं। इनका प्रयोग संभवतः सहस्रों वर्षों से जनता मे होता चला आ रहा है।

इसके सिवाय हमने कुछ विशेष शास्त्रोक्त तथा आयुर्वेदीय विद्वानों द्वारा प्रशस्त प्रयोगो का व्यवहार कर सफलता प्राप्त की है उनका उल्लेख यहां करना आवश्यक है।

(1) च्यवनप्राश (शाङ्गधरोक्त)

(11) मुक्तादिवटी (बाल रोगों पर—आचार्य यादव जी कृत)।

(111) कुमार कल्याण रस (शास्त्रोक्त)

(1V) अरविन्दासव।

(v) स्वर्ण वसत योग (मान्यवर गोखले महोदय)।

सुवर्ण आधी रत्ती, अभ्रक २ रत्ती, अजास्थि भस्म ८ रत्ती, माक्षिक ४ रत्ती, बग भस्म ४ रत्ती, प्रवाल भस्म ४ रत्ती, शृंग भस्म ८ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती, गडूची सत्व १६ रत्ती बंशलोचन ८ रत्ती, मूभूकूष्माण्डम् ३६ रत्ती।

भावना–नवनीत डालकर मर्दन करे। फिर नीबू का रस डालते रहे। चिकनापन मिटने पर वासारस, एला क्वाथ, त्वक् क्वाथ, पिप्पली क्वाथ क्रमशः डालकर मर्दन करते रहे। सूखने पर प्रयोग में लाओं। मात्रा २ रत्ती शहद में।

यह अत्यन्त प्रभावशाली औषध है। हमने इसका प्रयोग कर यश पाया है।

२१—पंचामृत मिश्रण—

पचामृत पर्पटी १ रत्ती, प्रवालपंचामृत १ रत्ती, संजीवनी वटी १ रत्ती, स्वर्ण पर्पटी ½ रत्ती।

मात्रा ३ रत्ती तक बलाबल अनुसार। अनुपान शहद में।

इस रोग के निवारण के लिए औषधि सेवन के साथ ही साथ अभ्यंग (मालिश) का प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। अत. निम्नलिखित तैलो से से किसी तैल का देश, काल, दोप कल्पना, बलाबल देख कर प्रयोग करे।

(i) जैतून का तैल।

(ii) महा मरिच्यादि तैल।

(iii) महानारायण तैल।

(iv) लाक्षादि या चंदन बला लाक्षादि तैल।

इसके सिवाय इस रोग के निवारण के लिये राजस्थान में दम्भ क्रिया का भी प्रयोग करते हैं। दम्भ क्रिया में विशेष गति रखने वाले चिकित्सक आवश्यकतानुसार एक लोहे की शलाका गर्म कर रोगी की देह के विशेष अंगो पर डम्भ लगा देते है।

ये पेट पर तीन तथा तालू के पास एक इस प्रकार आवश्यकतानुसार काक पाद, रेखा रूप, बिन्दु वृत्त, अर्ध वृत्त आदि की शकल मे लगाये जाते है। इस क्रिया से जहां तक अनुमान किया जाता है शरीर की सहन शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार स्थानीय शक्ति के बढ़ने से रक्त परिभ्रमण के द्वारा सम्पूर्ण देह की जीवनीय शक्ति पर इसका असर पड़ता है। यह चिकित्सा भी इस रोग की एक सफल चिकित्सा है जो वैद्यो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है।

पथ्यापथ्य—इसके सिवाय इस रोग मे पथ्यापथ्य व्यवस्था भी अपना एक विशेष महत्व रखती है। सर्व प्रथम दुग्ध के सिवाय कुछ भी सेवन न करे। नित्य मालिश तथा स्नान करे। रोगी की सफाई तथा निवास की सफाई की ओर अधिक ध्यान दे। श्वेत तथा उज्वल वस्त्रो को धारण करे। बच्चे को स्वच्छ हवा मे रखे, धूप आदि का नियमित सेवन करावे। गावों मे ये सभी व्यवस्थाये सुकर तथा सुलभ है।

व्यवस्था—यह रोग एक संक्रमक रोग है अतः अन्य बालको को इस रोगी बालक से दूर रक्खे। रोगी के मल मूत्रादि को एकदम साफ करदे, पड़ा न रहने दे।

—श्री. पं. अम्बालाल जी जोशी आयुर्वेदाचार्य,
मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

बालरोग चिकित्सा पद्धति

(१)

कविराज श्री महेन्द्रनाथ जी पाण्डेय आयुर्वेद बृहस्पति

प्रसिद्ध लेखक एवं बालरोग विशेषज्ञ माननीय श्री [illegible] जी ने बालरोग की आरम्भिक चिकित्सा पर सरल प्रकाश डाला है। भाषा सामान्य है पर बात [illegible] है। लेख उपयोगी है।

शेष दोनों विद्वानों ने भी उपचार पर अपने अनुभव से उपयोगी वर्णन किया है। आयुर्वेद के साथ अन्य विधियाँ भी दी हैं।

—महेन्द्र पाण्डेय।

सूखा रोग इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि सदोष भोजन जिसमें खनिज लवण और विटामिन का अभाव होता है तथा अपूर्ण भोजन जिनमें हड्डियों, मासपेशियों और शिशुओं को बनाने वाले पदार्थों की कमी या अभाव रहता है किस प्रकार स्वास्थ्य की नींव को खोद देते है। और सारे शरीर के ढाचे को बिगाड़ देते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि पूर्ण स्वास्थ्यप्रद भोजन, जिसमें खनिज लवण और विटामिनों की अधिकता हो की व्यवस्था की जाय और सूर्य किरणों की प्रचुर मात्रा शरीर में पहुचाई जांय, सूर्य स्नान और वायु स्नान कराया जाय तो जड़ से यह रोग दूर किया जा सकता है। बच्चे की संकटजनक परिस्थिति का मुकाबला करने का यही एक अमोघ शस्त्र है। हमारे देश की माताएं छोटे बच्चों को तेल लगाकर जाड़े के दिनों में धूप में सुला देती हैं। प्रतिदिन धूप मिलने से अस्थिया सबल रहती है और प्रायः अस्थि सबधी रोग उन्हें नहीं होता।

बच्चे को पर्याप्त मात्रा में दूध दीजिए। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो माता को ऐसा भोजन मिलना चाहिए जिसमें शरीर की आवश्यकता को पूरा करने वाले सभी तत्व उसमें मौजूद हों। अर्थात्—माता के भोजन में दूध, घी, सब्जी, ताजे मौसमी फल, सन्तरा सेब मुनक्का, बादाम, की प्रचुरता हो। यदि बच्चे को माता का दूध न मिलता हो तो गाय या बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए और बच्चे को सन्तरे का रस, पालक का रस, अनार का रस आदि भी देना चाहिए। गाय का दूध पीने वाले बच्चों को भी फलों के रस देने की व्यवस्था करनी चाहिए। अनाज तो एकदम बन्द कर देना अच्छा होता है। ५-६ सन्तरे का रस और बकरी का दूध देकर यह रोग आसानी भगाया जा सकता है।

बच्चे को दिन में कम से कम दो बार धूप स्नान कराना चाहिए। जब बच्चा धूप में हो तो उसके सब कपड़े अक्सर उतार देने चाहिए जिससे उसके बदन में हवा और सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें लग सके। जब तक रोग बिलकुल निर्मूल न हो जाय, अस्थिया मजबूत न हो जाय, स्नायु और मांसपेशिया पूर्ण स्वस्थ न हो जांय तब तक अनाज खाने को न दिया जाय। काड लिवर आयल (मछली का तेल) रिकेट रोग की अच्छी औषधि समझी जाती है। परन्तु काड लिवर आयल देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि विटामिन बी और सी वाले फल और शाक तरकारिया बच्चों को अवश्य पहुचे। यदि विटामिन बी और सी ऊपर से नहीं पहुचाया जाता तो काड लिवर आयल से लाभ के बदले हानि होने का खतरा अधिक रहता है।

मछली के तेल की मालिश भी की जा सकती है। मालिश से अच्छा लाभ होता है, काडलिवर आयल के बदले यदि बच्चों को मक्खन दिया जाय तो उनका स्वास्थ्य जल्दी सुधरता है। दूध के साथ सन्तरे का रस और दो चार

चम्मच पालक का रस देते रहने से विटामिन बी और सी की कमी शरीर में नहीं रह जाती। दूसरे दूध का सारा कैलशियम पचने लगता है और शरीर की कैलशियम की कमी शीघ्र पूरी हो जाती है। हड्डियां मजबूत बनने लगती हैं। उनकी कमजोरी दूर होने लगती है और पूर्ण भोजन प्राप्त होने से शरीर में रक्त और मांस की अधिक वृद्धि होने लगती है, स्नायुएं और टिश्यूज सबल होने लगते हैं और शरीर का सारा रोग दूर होजाता है।

बच्चे का स्वास्थ्य सुधरने का प्रबंध करना चाहिए। स्वास्थ्य में सुधार होने पर, शरीर के सब तत्व पूरे पहुँचते रहने पर अस्थियों का विकार स्वयं ही धीरे धीरे दूर हो जाता है और रोग नष्ट हो जाता है।

आयुर्वेद के मत से प्रबाल, मोती, मुक्ता शुक्ति और अभ्रक, लोह आदि की भस्में उचित मात्रा में देनी पड़ती है। स्वर्ण बसंत मालती रस, गुरुच का सत्व, कुमार कल्याण रस आदि से भी लाभ होता है। अरविन्दासव बच्चों के लिए अच्छी घुटी का काम करता है। महालाक्षादि तैल और नारायण तैल आदि की मालिश करने से भी लाभ होता है। अच्छा यह होता है कि महालाक्षादि तैल की मालिश की जाय, तथा दूध, सन्तरा, मक्खन आदि विशेष रूप से दिये जांय और बसंत मालती रस, गुरुच सत्व और प्रवाल मिला कर उचित मात्रा मे मे दिया जाय। धूप आदि उचित रूप में मिलने की व्यवस्था की जाय।

यदि बच्चे को सूखा रोग हो गया हो तो उसकी चिकित्सा निम्नलिखित तरीके से करनी चाहिए—

छोटे बच्चे अक्सर सूखने लगते हैं और उनका वजन कम होने लगता है। यदि बच्चे का वजन घटने लगे तो किसी चतुर चिकित्सक को दिखा कर रोग का निदान करना अच्छा होता है। जिससे ठीक ठीक रोग का निर्णय हो सके। यदि बच्चा माता का दूध पीता हो तो उसे वह मिलते रहना चाहिए। यदि बच्चा ऊपरी दूध पर रहता हो तो उसे उचित नियमानुसार दूध देना चाहिए। बच्चे को टमाटर का रस या सन्तरे का रस पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिए। बच्चे का आहार धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए और बकरी का दूध देने की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि बकरी का दूध न मिले तो गाय का दूध उचित पानी मिला कर या मक्खन निकाल कर देना चाहिए। क्षीण होते हुए बच्चों की पाचन शक्ति मक्खन देने से या वसा देने से और क्षीण होती है। इसलिये इस रोग में काड लिवर आयल लाभ के बदले हानि पहुंचाता है। बच्चे को सर्दी से बचाना चाहिए और उसे काफी मात्रा में धूप मिलने की व्यवस्था करनी चाहिए। बच्चे की उचित मालिश की व्यवस्था कीजिए और आयुर्वेदिक विधि से तैयार किये लाक्षादि तैल की मालिश कराइए। इस रोग मे औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी सावधानीपूर्व० भोजन सुधार की। यदि दस्त अधिक आते हो तो दस्त बन्द करने व्यवस्था करनी चाहिए। भृङ्गराज को पीस कर निकाला रस एक एक चम्मच की मात्रा मे दिन में २-३ बार देने से दस्त बन्द हो जाते है। हाजमा दुरुस्त हो जाता है और बच्चे स्वस्थ होने लगते है।

कैलशियम पहुँचाने से इसमें लाभ होता है। हाइपोफासफेट आफ लाइम का शरबत लाभ करता है। डाक्टर लोग कहते है कि एक्सट्रैक्ट आफ माल्ट एक चम्मच की मात्रा मे दो तीन बार देने से लाभ होता है। यदि क्षय के कारण यह रोग होता है तो जहर मोहरा खताई की भस्म आधी रत्ती की मात्रा में खिलाने से एवं यही भस्म तैल मे मिला कर मालिश करने से लाभ होता है। ताल मे होने वाले घोंघे का मांसरस खिलाने से भी लाभ होता है।

—श्री. महेन्द्रनाथ जी पाण्डेय आयु०बृहस्पति,
महेन्द्र रसायनशाला, ममफोर्डगंज, प्रयाग २

(२)

श्री० वैद्य ओमप्रकाश जी शर्मा B. I M. S.

बाल शोष की उपचार पद्धित इस प्रकार है–

१—सबसे प्रथम बच्चे का पचन संस्थान ठीक करना चाहिए जिससे वह औषधि एवं आहार को जीर्ण कर सके। शिशु आहार मातृ दुग्ध से लेता है अतएव बच्चे के साथ साथ उसकी माता का आहार विहार भी ठीक होना चाहिए। चिकित्सा के साथ माता की चिकित्सा पर ध्यान देना आवश्यक है।

२—माता को 'स्तन पान' काल में ब्रह्मचर्य रखना चाहिए आहार विहार सात्म्य कर सुन्दर स्वास्थ्य का रक्षण करना चाहिए। मिर्च, खटाई आदि छोडकर दुग्ध शुद्ध करे, दूषित दुग्ध के विषय मे अपने निकटतम चिकित्सक से परामर्श करे। दुग्ध के दोष और उसकी चिकित्सा एक वृहद् विषय है लेख की विस्तृती के कारण यहां संक्षेप से लिखूंगा।

दुग्ध परीक्षा–

सफेद चौड़े मुंह की स्वच्छ शीशी या जार अथवा ग्लास लेकर जल भरदे। जल स्थिर होने पर ग्लास के सहारे किनारे से धीरे धीरे मां के एक स्तन का दूध डाले (स्मरण रहे दूध बीच मे जोर से न डाले अन्यथा जोर से दूध बैठ जायेगा परीक्षण ठीक नहीं होगा) यदि दूध बिना घुले नीचे बैठ जाये और नीलाभ बन जाये तो दुग्ध अत्यन्त दूषित समझें, कम घुले तो कम दूषित, सब घुल जाए (नीर क्षीर) तो ठीक समझें, इसी प्रकार दूसरे स्तन की परीक्षा करे। अघुलनशील दूध को श्लेष्मिक दूध कहते हैं—

> धात्री श्लेष्मिक दुग्धातु फक्क दुग्धेतिसंज्ञिता।
> तत्क्षीरयो बहुव्याधि कार्श्यमान फक्कत्वमाप्नुयात्॥

सूखा रोग की चिकित्सा में अनिवार्य है शिशु पोषण के लिए माता का दूध। नीचे का योग दूषित दुग्ध को शुद्ध बनाता है—

> पाठा महौषधि सुरदारु मुस्त मूर्वा गुडूची वत्सल फल किराततिक्त रोहिणी सारिवा कषायाणाम् च पानं प्रशस्यते।
> —च० शा० अ० ८-८७

२२–पाढ़ल, सौंठ, देवदारू, नागरमोथा, मूर्वा (अभावे मरोड़फली), गिलोय, इन्द्र जौ, चिरायता, कुटकी, तगर, अनन्तमूल, सब समभाग लेकर (यव) जौकुट चूर्ण कर रखले। इसमें से २ तोला चूर्ण का क्वाथ प्रात: तथा २ तोला सायं लेने से सर्व प्रकार का दूध शुद्ध होजाता है। और इस युक्ति से बालक निरोग एवं पुष्ट हो जाता है।

२ अनुभूत चिकित्सा–

सूखा (फक्करोग और पारगर्भिक) रोग में निम्न औषधि चिकित्सा के साथ-साथ निम्न प्रयोग भी करे। इन प्रयोगो से शीघ्र लाभ मिलेगा अनुभूत है।

२३–एक छोटा सा गढ्ढा कर उसमे बड़ का पत्ता बिछा कर एक मुर्गी के अण्डे की जरदी डाल दे। उस पर सूखा रोग के रोगी को नगा गुदा द्वार से बिठादे, जर्दी गुदा मे चढ़ जाएगी। जब तक जर्दी चढ़े तब तक बराबर बिठाते रहे। १ सप्ताह बाद १-१ दिन छोडकर, १ मास बाद २ दिन छोड़कर फिर जर्दी जब तक चढ़े तब तक प्रति सप्ताह १ दिन चढ़ाये।

२४ कुकरोंधा पीसकर रोगी के ब्रह्मरध्र पर रखें।

औषधि चिकित्सा–

प्रत्येक प्रकार सूखा रोग पर उपरोक्त प्रयोग तथा माता को कषाय पिलाने के साथ निम्न औषधि चिकित्सा प्रत्येक सूखा रोग मे प्राणदान करती है। रोग कितना ही बढ़ गया हो रोगी बल तथा रोग बल का ध्यान कर निम्न चिकित्सा से अवश्य होगा ऐसा मेरा अनुभव और विश्वास है।

२५–वातार्क रस १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, शृंग भस्म १ रत्ती, गोदन्ती भस्म १ रत्ती, मुक्ता शुक्ति १ रत्ती, मण्डूर भस्म ४ रत्ती, महा गधक

योग ४ रत्ती (यदि मिलाया जा सके तो कुमार-कल्याण रस १ रत्ती) कुल की ४ मात्रा प्रतिदिन २ मात्रा (अवस्थानुसार कम अधिक)।

२६-अरविन्दासव क्षीर पायी शिशु को ५-५ बूंद एवं क्षीरान्नपायी को १५-१५ दिन में ३ बार।

२७-Adexolin Glaxo (एडक्सोलीन) ग्लेक्सो ५ बूंद, Ostelin (ओस्टोलीन) ग्लेक्सो ५ बूंद, Bocadex Drops २ बूंद (मल्टी विटामीन ड्राप), लाइम वाटर १० बूंद माता को पिलाते समय दिन मे २ बार अपने दूध में मिलाकर पिलादे फिर दूध पिलाये।

२८-Calci Ostlilin with vitamin B १२ (कैलसिआई ओस्टोलीन विद विटामिन बी. १२) का १ c. c. इन्जेक्शन सप्ताह में २ बार मांस मे चूतड़ पर लगाये।

२६-प्रातः सूर्य की रश्मियो से सूर्य स्नान के साथ काडलिवर आयल या गुडुच्यादि तैल या लाक्षादि तैल की हलके हाथ से मालिश करे। मेरे अनुभव से सूखाहारी लाल तैल इलाहाबाद का श्रेष्ठ तैल है।

—श्री ओमप्रकाश शर्मा बी. आई. एम. एस.
चिकित्साधिकारी नौगवां (अलीगढ़)

(३)

श्री शेषराव जी जैन

बालशोप में बृंहण चिकित्सा प्रशस्त मानी गई है। स्वच्छ वायुयुक्त स्वास्थ्यकर निवास स्थान होना चाहिए। बालक की स्वच्छता का पूर्णतया ध्यान रखना आवश्यक है। प्रतिदिन बालक को मत्स्य यकृत तैल, लाक्षादि तैल, चंदनबला लाक्षादि तैल आदि से मर्दन कर सिर पर कपड़ा बाध लगभग १ से २ घण्टे सूर्य स्नान कराना चाहिए। सूर्योदय की प्रथम किरणें बालक के शरीर पर अमृतोपम कार्य करेगी। नीचे एक लेप मैंने अपने बच्चे के लिए निर्माण कर प्रयोग किया, अनुभूत है—

३०—तैल-केकड़े १ छटांक, केचुए (भूनाग) १ छटाक, असगन्ध १ छटाक, अमृता १ छटांक, सेमल मूल १ छटांक। इन पाच द्रव्यों को अजा वा गोदुग्ध में पीसकर कल्क बना ले। इसमें से आधे कल्क का चतुर्गुण काथ बनाकर छान ले।

अब आधा सेर शुद्ध तिली तैल मे उपरोक्त कल्क एवं क्वाथ डालकर तैल सिद्ध कर ले। इस तैल की प्रातःकाल मालिश कर १ घण्टे तक शिशु को सिर पर वस्त्र बांधकर सूर्य की धूप मे रखे। इसकी मालिश से मन्द मन्द ज्वर समाप्त होकर रक्त संचालन क्रिया बढ़ती है। शरीर मे बल, मांस की वृद्धि होती है। यदि उपरोक्त बतलाये तैलो में कोई भी प्राप्त न हो तो नीचे लिखा उबटन भी शतशोनुभूत लाभप्रद है।

३१—सेमल मूल का चूर्ण और काले तिल समान भाग भैंस के दूध में सुचिक्कन पीसकर इससे बालक को भलीभाति मर्दन कर धूप मे १ घण्टा रख स्नान करावे।

स्नान के पानी में नीचे लिखी वस्तुये डालकर अर्धावशेष क्वाथ करे। इस जल को माता एव शिशु दोनों को स्नान कराने से ग्रह बाधा, गर्भज फक्क, मातृ स्तन्यज दोष निर्मूल होते है।

स्नान जल द्रव्य—

उतरन बेल १ छटाक, अमरबेल १ छटाक, अपामार्ग मूल १ छटाक, अर्कमूल १ छटाक, निम्ब पत्र १ छटाक, लगभग २५ सेर जल मे

औटावे। आधा शेष रहने पर उतार समशीतोष्ण होने पर स्नान करावे।

बाल शोषांतक वटी नं० १

३२—प्रवाल भस्म ६ माशे, मुक्ता भस्म ३ माशे, शङ्ख भस्म ६ माशे, कुक्कुटाण्डत्वक्‌भस्म ६ माशे, कच्छप पृष्ठ भस्म (पिष्टभाव से शृङ्गभस्म) ६ माशे, कांतलोह भस्म ३ माशे, मण्डूर भस्म ६ माशे, कपर्दभस्म ३ माशे, अश्वगन्ध चूर्ण १ तोला, शतावरी चूर्ण १ तोला, त्रिफला चूर्ण ३ तोले।

इन सब औषधियों को खरल में पीसकर असगन्ध क्वाथ, शतावरी क्वाथ मकोय स्वरस की ३-३ भावना देकर किंचित् प्रमाण में शहद डालकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें। बालक की अवस्थानुसार दिन भर में ३ से ५ मात्रा शहद से, ऊपर से चूने का पानी पिलावें। यह पानी Lime water नाम से बाजार में मिलता है और नीचे लिखे अनुसार तात्कालिक कार्यों में निर्माण भी कर सकते हैं। अन्तर इतना ही है कि इसे अधिक दिन नहीं रखा जा सकता। अधिक दिन रखने वालों को द्विवाष्पित जल बनाकर पश्चात् उस जल में यह जल बनाना चाहिए।

सुधा जल निर्माण विधि—१० सेर पानी किसी मिट्टी के पात्र में औटाते हुए २॥ सेर रहने पर उतार ले। उस जल में १ पाव चूना डालकर कपड़े से मुंह बांधकर २४ घण्टे पड़ा रहने दें। पश्चात् किसी कलईदार पात्र में स्वच्छ चौड़े वस्त्र द्वारा इस चूने के ऊपर का स्वच्छ ऊपरी पानी छान ले गदला न उठने पावे। अब इस पानी को हरी अथवा नीली बोतल में सुरक्षित रखे। इस जल को किसी मिश्रण के साथ अथवा अकेला ही देने से यकृत विकार पाचन विकृति, सुधाल्पता जन्य अस्थिमृदुता दूर होकर अस्थियां दृढ होती हैं। शरीर में प्रतिबन्धक क्षमता बढ़ती है और कैल्शियम की कमी से होने वाले समस्त रोगों का निराकरण होता है। अस्थियां पुष्ट होती हैं और जीवतिक्ति 'अ' के सात्म्यीकरण का सर्वश्रेष्ठ साधन यह सुधा जल ही है। नीचे कुछ और भी शतशोनुभूत आयुर्वेदीय प्रयोग [illegible] हैं।

३३—[illegible] ४ रत्ती, [illegible] ४ रत्ती, [illegible] ४ रत्ती।

४ मात्रा [illegible]।

३[illegible]—[illegible] (Lime water) [illegible]।

३[illegible]—[illegible] [illegible] ४ रत्ती, [illegible] ४ रत्ती, [illegible] मधु में [illegible] पिलावें।

३६—मण्डूर भस्म [illegible] रत्ती, [illegible] रसादि पिष्टी ४ रत्ती, [illegible] ४ रत्ती, अश्वगन्ध ४ रत्ती, [illegible] ४ रत्ती। ४ मात्रा प्रति दिन [illegible] ऊपर से [illegible] पिलावें।

३७—अण्डे का [illegible] [illegible] कुत्ते में [illegible] सर्वश्रेष्ठ है।

३८—एक [illegible] के [illegible] बिछाकर उस पर [illegible] डाल दें। पश्चात् [illegible] पर इस तरह बिठादें कि गुदाद्वार ठीक [illegible] पर बैठे। आप आश्चर्य से देखेंगे समस्त [illegible] गुद मार्ग द्वारा अन्दर चली जायगी। प्रतिदिन यह क्रिया कीजिए। जब तक रोग रहेगा तब तक गुदा की आकर्षण शक्ति भी तीव्र रहेगी। जैसे जैसे रोग कम होगा वैसे वैसे थोड़ा थोड़ा द्रव्य शेष रहता जावेगा। यह क्रिया कम से कम १४ से २१ दिन तक करनी चाहिए। यदि पूर्ण लाभ न हो तो एक सप्ताह की विश्रान्ति लेकर पुनः क्रिया आरम्भ करनी चाहिए। यह सर्वमान्य है कि अण्डे में फास्फोरस, लोहांश, और जीवतिक्ति ए परिपूर्ण मात्रा में रहते हैं।

जिससे बालक को सम्पूर्ण पोषणांश एक साथ मिल जाते है। मैंने स्वयं अपने बच्चे के लिये गुदद्वार से अण्डे का प्रयोग कराया है।

३९-कुमार कल्याण रस २ रत्ती, पंचामृत पर्पटी १ रत्ती, अमृता सत्व ४ रत्ती, शङ्ख भस्म ४ रत्ती, लघु मालती बसत २ रत्ती, चौसठ प्रहरी कणा २ रत्ती। ४ मात्रा प्रति ४-४ घण्टे पर शहद से दे। ऊपर से अरविन्दासव सुधाजल मिश्रित पिलावे।

४०-अश्वगंधारिष्ट, बालामृत, अरविन्दासव, सारस्वतारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, सुधा जल प्रत्येक १०-१० तोले, कुमारी आसब ५ तोले, लोहासव ५ तोले।

समस्त औषधियों को मिश्रण कर शीशियों में भर दे। पर मिश्रण १-१, २-२ चम्मच मात्रा में अवस्थानुसार शिशु को २-३ बार दे। प्रत्येक नम्बर की औषधि देने के उपरात इसे दे सकते है। यह बिलकुल निरापद एवं शतशोनुभूत मिश्रण है।

आयुर्वेदीय सूचीवेधनों में मैंने मार्तण्ड के खटिक और प्रवाल का सूचीवेधन किया। इनका सूचीवेधन अलग अलग उतना उत्तम फल दृष्टि-गोचर नहीं कराता जितना कि मिश्रित सूचीवेधन। नितम्ब की मांसपेशी मे गहरा सूचीवेधन लाभप्रद हुआ है।

आइये अब पाठकों को थोड़ा पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति द्वारा इस रोग की चिकित्सा का भी दिग्द-र्शन करा दें।

४१-आंग्ल पद्धति में काड लिवर आयल, (मत्स्य यकृत तैल) का अत्यधिक गुण वर्णित है। यह तैल काडलिव्हर आयल, शार्क लिव्हर आयल, तथा हैलिवट लिव्हर आयल ३ प्रकार का आता है। प्रथम से द्वितीय और द्वितीय से तृतीय अधिक गुणप्रद, शक्तिशाली एवं दुर्गन्धि आदि दुर्गुणों से रहित है। प्रथम में दुर्गन्धि दोष अधिक हैं। इस तैल की मालिश भी प्रथम सूर्योदयकाल मे कर सूर्य स्नान का आदेश पाश्चात्य वैज्ञानिक भी देते हैं। इस तैल की ५ बूंद से लेकर १ चम्मच तक मात्रा है। इसे अजा और गौदुग्ध एवं सुधाजल, संतरा स्वरस आदि के साथ देना चाहिए। हैलिबट लिव्हर आयल के कैपसूल्स, पैपसूल्स, कैचेट्स भी बाजार मे मिलते है। उन्हे भी अवस्थानुसार इसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।

४२—आंग्ल पद्धति में इस रोग के लिए विटा-मिन ए+डी, कैल्शियम की न्यूनता से उत्पन्न हुआ रोग मान इन्हीं की पूर्ति हेतु चिकित्सा करते हैं।

४३-सीरप फेरी आयोडाइड (Syrup Ferri iodide) २५ बूंद, सीरप कैल्शियम हाइपोफास्फेट (Syrup Calcium hypophosphate) १५ बूंद, जल १ ड्राम। ३ मात्रा भोजनोपरांत।

४४--यही कार्य कैल्शीफेरोल (Calciferrol) अथवा लिकर कैल्सीफेरोल (Liquor Calcife-rrol) १० से २० बूंद तक संतरा स्वरस, अजा अथवा गौदुग्ध या सुधाजल अथवा सादे जल से देने से भी होता है।

४५--डेल्टोलीन (लिली), एडव्हिटास, एडक्सोलीन (ग्लेक्सो) एव्हीडोलसी (पार्क-डेविस) अलबाइट (एलवर्ट डे) यूनीवाइट (यूनि-केम) एडीप्लेक्स फोर्ट (अ. डे.) डेकाब आदि किसी भी कंपनी के ड्राप्स का प्रयोग ५ बूंद से १५-२० बूंद तक अवस्थानुसार दूध, जल, सुधा-जल अथवा फल स्वरस के साथ कर सकते है।

४६--पैराथायराइड एण्ड कैल्शियम टेबलेट या एवोमिन टेबलेट १-१ गोली ३ मात्रा जल या दूध से दें।

४७—डीकाडोक्सलीन अथवा कोलायडल कैल्शियम विद विटामिन डी अथवा ओस्टोकैल्शि-यम फोर्ट, वेरिन, मेक्राबिन आदि सूचीवेधनों का प्रयोग मासगत चौथे दिन पश्चात सप्ताह में एक बार इस प्रकार करना चाहिए। आहार-विहार, स्वच्छता, शुद्ध वायु, शुद्ध निवास का ध्यान रखना चाहिए।

—श्री. शेषराव जैन वैद्यराज,
आयुर्वेद दवाखाना, सोनी (भण्डारा)।

एक विहंगम दृष्टि—

बालशोष में प्रयुक्त औषधियां व द्रव्य

श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय जी वैद्य, बाल-शोष अङ्क के सम्पादक

हमारे विज्ञ लेखकों ने अपने लेखों में अनेक औषधियों को बताया है। अपने अनुभूतसिद्ध योगों का पूरा परिचय देते हुए, शास्त्रीय योगों के कुछ नामादि प्रस्तुत किये हैं। हम इन्हीं आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्राप्या-स्थानाभाववश कुछ औषधियों पर सनिर्माण विधि प्रभाव प्रस्तुत करते हैं। —श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

बाल शोष रोग में स्पष्टतः शास्त्रों में जितनी कम औषधियां प्राप्त होती हैं उतनी सरलता से इस विशेषांक में अनुभवी आयुर्वेदज्ञों द्वारा इस पक्ष को विस्तृत कर दिया है। सूखारोग में वैद्य अपने योगों का व्यवहार अधिक विश्वासपरक मानते हैं फिर भी शास्त्रीय औषधियां सन्देह से रहित हैं। उनके प्रयोग से भी शतप्रतिशत सफलता मिलती है। सूखा रोगांक में विभिन्न स्थलों पर अनेक औषधियों का वर्णन आया है, अधिकांशतः सभी के अपने अपने गुप्त सिद्ध योग हैं। उनसे लाभ उठाने के साथ शास्त्रीय औषधियों के विषय में भी पूरी जानकारी आवश्यक है। कुछ इन शास्त्रोक्त औषधियों के नाम तो यत्र-तत्र आगये परन्तु निर्माण विधि तथा विशिष्ट विवेचन न होने से उसे यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

शास्त्रोक्त प्रमुख औषधियां—

४८—कुमार कल्याण रस (भै० र०)—

विधि—रस सिन्दूर, मुक्तापिष्टी, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक—इन औषधियों को समभाग मिलाकर १ दिन तक घृतकुमारी के रस में घोटकर आधी रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

मात्रा—एक गोली दिन में दो बार मातृदूध या शहद, रोगानुसार अनुपान भेद से देते हैं। छोटे बच्चों में मात्रा में न्यूनता कर देते हैं।

विमर्श—सूखारोग तथा उससे सम्बन्धित वातविकारों के लिए वस्तुतः यह अनुपम योग है। जहां सामान्य दुर्बलता में उत्तम लाभकारी है वहां अत्यधिक शक्तिह्रास से आश्चर्यजनक फलप्रद देखा गया है। कृश बालक चाहे किसी प्रकृति का हो उसे उचित अनुपान से प्रयोग किया जा सकता है। पारद, स्वर्ण, अभ्रक, लौह आदि रसायनों का इसमें योग होने से ये उत्तम धातु परिपोषण गुण करता है। यकृत् आदि में लाभ पहुंचाता है। जब दूध या भोजन नहीं पचता बालक दिनप्रतिदिन गलता जाता हो तथा सूखारोग के अन्य लक्षणों के लिए यह रस उत्तम है। बालशोष के अतिरिक्त यह रस बच्चों के ज्वर, कास, अतिसार आदि में परम प्रशस्त है।

४९—मधुमालिनी वसन्त (र० च०)—

विधि—सिंगरफ २० तोला को अनारदाना के रस से ७ दिन तक घोटकर सूखा चूर्ण बनाले। तदुपरांत कुक्कुटाण्ड २० के रस के साथ कड़ाही में मन्दाग्नि से चलाते हुए शोषण करे। फिर कचूर, श्वेतमरिच, प्रियगु प्रत्येक को सिंगरफ (निर्मित) के भार से आधे आधे वजन में मिलादे। अन्त में अनार के रस से ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

मात्रा—१ या २ गोली घृत अथवा मण्डूर भस्म शृंग भस्म में देनी चाहिए।

विमर्श—स्त्रियों तथा बालकों दोनों को यह खरलीय रस उपयोगी रहता है। शिशुओं को गर्भिणी माता का स्तन्य पीने में जो पारिगर्भिक हो जाता है तब इस रसका सेवन करायें। अस्थि-वक्रता (रिकेट्स) में यह प्रशस्त है। ऐसी अवस्था में

रक्त, मास, अस्थि के पोषणार्थ इसे अन्य उचित खटिक योगों के साथ सेवन करना चाहिए। गर्भिणी की अस्थिधातु क्षीण हो जाने पर अवस्थाओं के अनन्तर उत्पन्न मृद्वास्थि रोग के पूर्व तथा उत्तर अवस्थाओं में हितकारक है। अन्य रोगों में अच्छा है।

५०—मुक्तादि वटी (शा० त्रि० आ०)—

विधि—मुक्तापिष्टी २ तोला, सोने के वर्क, चादी के वर्क, कमल केशर, गुलाबकेशर, कहरवा, जहरमोहरा खताई, संगयेशव, गौरोचन इनको १-१ तोला तथा नागकेशर २ तोला, केसर ६ माशे, कपूर ३ माशे, गोदन्ती भस्म १०॥ तोला एकत्रित करें। बर्कों के अलावा अन्य द्रव्यों को पीस ले। पुन धीरे धीरे बर्क को घोटें। तदन्तर शतपत्री जल में ६ दिन खरल करके १ रत्ती परिमाण की वटिकायें निर्माण कर लें।

विमर्श—यह वटी अत्यधिक प्रचलित है। इसको १-४ गोली माता के दूध या अन्य उचित अनुपान से प्रातः सायं खिलाते हैं। बालशोष के लिए रामबाण है। साथ में पांडु, अफारा, खांसी आदि विकारों में निश्चित लाभ पहुँचता है। जब मातायें 'दूध डालने की' शिकायत करती है तो उस अवस्था में बच्चे को देवे। निरन्तर इस दवा के प्रयोग से बालक निरोग तथा सुन्दर, बलशाली बन जाता है। वस्तुतः वटी का योग उत्तम है।

५१—मालती चूर्ण (आ० नि० मा०)

विधि—खर्पर १ सेर की मात्रा में लेकर १ सेर नीबू के रस के साथ हांडी में डालकर धीमी अग्नि से पाक करें। रस जल जाने पर पात्र को उतार लें। शीतल हो जाने पर धो लेना चाहिए। इस विधि से प्रस्तुत शुद्ध खर्पर १ सेर और उसके बराबर बड़ी हरड़, छिलके सहित छोटी एला आधा सेर कपड़छन करके मालती चूर्ण बन जाता हैं।

विमर्श—यह औषधि बाल शोष तथा तत्सम्बन्धी व्याधियों में परम प्रशस्त है। यह रस तथा रसायनियों को पुष्टि देता है। पुन. आगे की रक्त, मांस, मेद व अस्थि आदि धातुओं को भी बल प्राप्त होता है। इसे १ से ३ रत्ती दिन में दो बार माता के दूध या जल के साथ सेवन कराया जाता है। सामान्यत. थोड़े ही दिनों में बालशोष समाप्त हो जायेगा फिर भी लगभग १ मास तक निरन्तर प्रयोग करवाना अच्छा रहता है।

५२—बालार्क गुटिका—

विधि—शुद्ध खर्पर, प्रवाल भस्म, शृंगभस्म, सिंगरफ शुद्ध, सोहागे का फूला, सफेद मरिच, कचूर, केशर इनको बराबर भाग मिलाकर जल में घोंट कर आधी आधी रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए।

विमर्श—यह बालकों के रोगों में अच्छा काम करती है। बात कफ दोषों में प्रशस्त है। जिन बच्चों को उचित पोषण विभिन्न कारणों से न मिल सकता हो उनको अस्थि निर्बलता आदि अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। उस समय १ गोली दिन में दो बार माता के दूध से सेवन कराना चाहिए।

५३—लाचादि तैल (शा० स०)

विधि—पीपल की लाख ४ सेर, सोया, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, रेणुकबीज, कुटकी, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, पद्माख, खस, सफेदचन्दन, जटामांसी, मजीठ, सब सवा सवा तोला लीजिये। तिल का तैल १ सेर तथा मट्ठा ४ सेर मिलाकर विधिवत् पाक करें। जब पानी ४ सेर शेष रह जावे तो छान लें। अन्य द्रव्यों के पानी से निर्मित कल्क को यथावत् कड़ाई में मन्दाग्नि द्वारा पाक करते हुए जब तैल शेष रह जावे तो छान लेना चाहिए। पाक होने पर सुगन्धित द्रव्य डालते हैं।

विमर्श—यह तैल प्रसिद्ध है। अनेक बात रोगों, ज्वर, कास आदि में लाभकारी है। बालशोष रोगियों को इसका मर्दन कराना लाभप्रद पाया गया है। उनको इससे बल मिलता है।

५४—अरविन्दासव (भै० र०)—

विधि—सफेद कमल, खस, गंभारी की छाल, नील कमल, मजीठ, छोटी इलायची, खरैटीमूल, जटामांसी, नागरमोथा, काली अनन्तमूल, त्रिफला, बच, कचूर, कालीनिसोथ, नील के बीज, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलैठी, महुवा के फूल, मुरा या जटामासी इन सभी द्रव्यों को ४-४ तोले की मात्रा में लेकर चूर्ण बना के रखलें। फिर मुनक्का ८० तोला, धाय के फूल ६४ तोला, जल २०४८, शक्कर ४०० तोला तथा शहद २०० तोला लेकर १ मास तक रख कर परिपक्व बनाकर छान लें।

विसर्श—यह आसव बालकों को परम प्रशस्त है। शिशुओं को जो अस्थिवक्रता होकर नितम्ब-प्रदेश शुष्कता, जीवनीय शक्ति की कमी, हाथ पैर मुड़ जाना, धातु पोषण की कमी, पाचन शक्ति की कमी आदि पैदा होते है तब यह आसव अत्यु-पयोगी है। बालकों को सेवन कराते रहने से सुन्दरता, बल प्राप्ति होती है। बच्चों को इसे ३ से ६ माशा की मात्रा में सेवन करायें।

अन्य शास्त्रीय औषधियां—

इन औषधियों के साथ ही निम्नांकित शास्त्रीय योग बालशोष प्रभृति विकारों में प्रशस्त हैं—

५५—प्रवालपंचामृत, ५६—शंखभस्म, ५७—मधुमण्डूर ५८—चन्दनबलालाक्षादि तैल ५९—नारायण तैल ६०—संजीवनी वटी ६१—स्वर्ण बसन्त योग ६२—गोदन्ती भस्म, ६३—कुक्कुटाण्ड-त्वक् भस्म, ६४—मुक्ताभस्म ६५—स्थिरादि तैल ६६—लाक्षादि तैल इत्यादि।

६७—वनस्पतिया तथा प्राणिज द्रव्य—

बालशोष प्रभृति विकारो में स्वतन्त्र रूप से कुछ वनस्पतियों व प्राणिज द्रव्यो का भूरिश: प्रयोग होता है। जो निम्न हैं—

मयूरशिखा, ब्राह्मी, अनार, आक, गुड़हल, आलू, बन्दाल, अण्डा, पीपल, शम्बूक, वासा, नरकपाल, अतीस, कर्कट, कच्छपपृष्ठ, उष्ट्रखुर, गदही का दूध, गोरोचन।

इन सबके विवेचन को प्रस्तुत करना स्थानाभाव-वश संभव नहीं। इन द्रव्यों को यथाविधि बालशोष प्रभृति रोगों में कार्यकर पाया गया है। योग बना कर तो अनेक द्रव्य प्रयोग किये ही जाते हैं।

६८—अहिण्डिका की चिकित्सा बताते हुए आयुर्वेद में मयूरशिखा को बिना सेवन किए लाभदायक कहा गया है। चन्द्रग्रहण में विधिपूर्वक मयूरशिखा (Adiantum Caudatum) की जड़ को उखाड़ कर कमर या गर्दन में बांधने से यह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।[1]

६९—इसी तरह काश्यप संहिता में ब्राह्मी का सुन्दर प्रयोग बताया गया है।[2] प्राणिजद्रव्यों तथा अन्य वनस्पतियों के प्रयोग विशेषांक में यथा स्थान लिखे हैं। —श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय जी वैद्य,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

[1]—सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम्।
पद्यनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्यहिण्डका नियतम्॥
—चक्रदत्त

[2]—न तु ब्राह्मीघृतं शूद्रः पिबेत्तद्धस्य नाशनम्।
प्रजापत्येण सृज्यते शूद्रा शूद्रा ब्राह्मीं पिबन्ति ये॥
मृता: स्वर्गं न धर्मश्चैषां विलुप्यते।
दीप ....॥
—का० स० चि०

बालशोष पर अनुभव

[१]

आचार्य डा० श्यामदास पीयूषपाणि आयुर्वेदाचार्य

चिकित्सा-क्षेत्र में कभी कभी शिशुओं की शारीरिक पुष्टि का अभाव देखने में आता है। शिशु की ऐसी विकृति का निदान यदि व चिकित्सक बालशोष, शिशु-कार्श्य, अस्थि कोमलता आदि नाम दे करते हैं, और उसके बाद चिकित्सा भी अपने अपने अनुभव के आधार पर चालू रखते हैं। परन्तु मेरे खयाल से इस रोग में बहुतेरों को सफलता न मिलती होगी, मैंने कम से कम दो हजार बालशोष से ग्रसित शिशुओं की चिकित्सा करने का अवसर प्राप्त किया है। उससे संग्रहीत अपार अनुभव यहां लिख रहा हू।

सबसे पहले आयुर्वेदज्ञ धुरन्धर विद्वानों से मेरी यह जिज्ञासा होनी चाहिए, कि आयुर्वेदोक्त शिशु-कार्श्य, बालशोष की सम्प्राप्ति किस प्रकार और क्यों?

मैंने जितने भी बालशोष के रोगी देखे, उनमें तीन चौथाई गर्भ-दोष और एक चतुर्थांश उनके माता-पिताओं के रतिज-रोग जनित विकार के कारणस्वरूप बालशोष होते देखा—

(१) क्षय, उपदंश द्वारा आक्रान्त माता पिताओं की सन्तान को।

(२) वह स्थान जहां विशुद्ध वायु, प्रकाश की कमी तथा सीलवाली जमीन जहां हमेशा ही दुर्गन्धि-युक्त वातावरण हो, रहने वाले की सन्तान को।

(३) गर्भकालीन अम्ल, मन्दाग्नि, कोष्ठ-बंधता आदि कारणों से पोषण-विकार से उत्पन्न शिशु को,

(४) बहु-सन्तति वाली प्रसूति की दुर्बलावस्था में हृष्ट-पुष्ट शिशु भी उसका स्तनदुग्ध पान करते रहने से बालशोष का शिकार हो जाता है।

(५) उपयुक्त आहार, पालन-पोषण का अभाव तथा दन्तोद्गमकालीन विभिन्न उपसर्गजनित शिशु को बालशोष होना अनिवार्य है।

साधारणतया ६ महिनों की आयु से लेकर ३ वर्ष तक शिशु इस रोग का शिकार होते हमने देखा है।

पीड़ा-प्रारम्भ का पूर्व-राग इस प्रकार रहता है—अचानक ही पाचन शक्ति की गड़बड़ी, पेट का फूलना, मन्द मन्द ज्वराभास, नाड़ी की गति द्रुत क्रमश. निर्बलता, चिड़चिड़ापन। इसके अतिरिक्त कपोल, तथा शरीर के ऊर्ध्व भाग पर पसीना, निद्रितावस्था में—सिर व गर्दन पर पसीना, हाथ-पैर की उष्णता, शरीर पर वस्त्रादि आच्छादन का रहना नापसन्द आदि। शरीर में पीड़ा (वेदना) गोद में उठा लेने से रोना, प्रस्राव का परिमाण अधिक होना, कभी कभी लालास या पीलेपन पेशाव का आजाना, पेट आगे की ओर बढ़ जाना होता है भूख अधिक महसूस होती है। स्तन-पान करता है और दूध भी डालता है। ऐसी हालत में दस्त होने लगते हैं, कभी कभी ३-४ दिन पर्यन्त कोष्ठबद्धता और पुन उदरामय हो जाता है।

शिशु दिन व दिन दुर्बलता को प्राप्त होता है, मुख-चेहरा रक्तहीन पीला दिखाई देता है। शरीर की मांसपेशियां ढीली हो जाती हैं। चमड़ी सिकुडकर लटकने लगती है, देखने से बंदर का बच्चा जैसा मालूम देता है।

पेट बहुतों का बड़ा और सिर भी इस प्रकार का हो जाता है। गर्दन की मासपेशिया सिकुड जाने से बड़ा बदसूरत दिखाई देता है। रोग के सम्बन्ध में बहुत सी बातें लिखने की जरूरत समझते हुए भी अपने उद्देश्य पर आता हू।

इस रोग की चिकित्सा का क्रम निम्न प्रकार है—

(१) शिशु को निर्मल उन्मुक्त वातावरण में रखना।

(२) प्रात कालीन सूर्य किरणों का सेवन शिशु को अत्यन्त लाभदायक है।

(३) तेल का मर्दन और औषधोपचार।

सरसों का तेल धूप में तपाकर सर्वाङ्ग पर मर्दन कराना चाहिए। पुरातन घृत अथवा ज्वरांविकारोक्त किराताद् तेल, दशमूल तेल, चन्दनादि तेल ही उत्तम है। तेल लगाने के पश्चात् अल्प समय के लिये शिशु को सूर्य स्नान कराना चाहिए।

पाचकाग्नि को बढ़ाने के लिये सबसे पहिले ध्यान देना चाहिए। विभिन्न उपसर्गों के उपशमनार्थ देने वाली औषधियों के साथ साथ दीपन-पाचन औषधि अवश्य देते रहें।

औषधि चिकित्सा-

७०-मकरध्वज-बाल शोष पर यह उपयोगी है। बल और आयु के अनुसार मात्रा $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती।

अनुपान-मुक्ताशुक्ति $\frac{1}{2}$ रत्ती और मधु।

७१-मुक्ताभस्म व शुक्ति भस्म स्वतन्त्र रूप से भी दिया जाने से लाभ हुआ है।

शिशु चाहे कितना ही कमजोर क्यों न हो जब तक उसके शरीर में रस व रक्त का उत्पादन करना आप उचित न समझेंगे भले ही आप बढ़िया सी दवा दें, कुछ लाभ न होगा। इसलिए खूब मदम मात्रा में नवायस मंडूर अथवा पुनर्नवा मंडूर, प्रारम्भ में देते रहें। इससे एक विकृति आपके सामने आ सकती है। वह है कि या तो उदर विकार अधिक बढ़ जायगा या पेचिश प्रारम्भ हो जायगी। कुछ भी हो पहले पहल उपसर्ग बढ़ जाने पर घबड़ाना नहीं चाहिए। औषधि को आत्मसात् करने की सामर्थ्य जब तक उसमें न आवेगी बीच बीच में अगर दवाइयां देना बन्द करना पड़े तथापि इसे फिर से देने की कोशिश जारी रखिए।

पांडु पञ्चानन भी मार्के की दवा है चाहे तो दोनों को मिला दें। मात्रा इतनी कम देवें कि उसके पाचन-संस्थान पर कोई कुप्रभाव न पड़े। मैं अपने रोगी को इस तरह से देता हूं कि यह औषधियां उसके लिए अनुकूल पड सकें। प्रवाल भस्म भी मिलाता हूं। औषधियों की क्रिया को साम्य व आत्मसात बनाने के लिए विचार करना आवश्यक है कि कितने परिमाण में देना चाहिए।

मेरे पास बालशोष का रोगी चाहे कैसी भी हालत हो, आने पर लक्षणानुसार सभी औषधियां अति मृदु मात्रा में देता हू। दो-तीन दिन तक दवा देने के बाद असली चिकित्सा जो रक्त-जनक और रक्तोत्पादक है अपनाता हूँ। वह यह है—

७२-विटामीन बी १२+विटामीन बी १ अर्थात् थियामीन हाईड्रोक्लोर २-रक्त का सूचीवेध।

विटामिन बी-१२, यह अच्छी कम्पनी की बनी हुई होनी चाहिए—जैसे स्कुईब का रुब्रामीन अथवा ग्लैक्सो का मेक्राबीन। मैं इन दोनों का प्रयोग करता हूँ। विटामिन बी १२ और बेरिन (यानी विटामीन बी १) दोनों को मिलाकर आयु के अनुसार रोजाना सूचीवेध प्रयोग करना चाहिए। शिशु कितना ही जीर्ण व दुर्बल हो गया हो लगातार ६।८ इन्जेक्शन से आप देखेंगे कि उसके मुर्दनी सी हालत पर आपने काबू पा लिया। इसके बाद हर तीसरे दिन एक सूचीवेध करते जाइये जब तक शिशु का शरीर सेब जैसा सुर्ख न हो जाये।

यह तो होगया पहला तरीका, दूसरा तरीका है—शिशु की माता का रक्त उसके शरीर में प्रविष्ट कराना। इस प्रणाली के द्वारा चिकित्सा बहुत ही आसानी से फिर बिना पैसे होती है। पर यह जितना आसान है उतना ही खतरनाक है क्योंकि आशा के अतिरिक्त फायदेमन्द होने पर भी इस प्रणाली पर थोड़ा सा ध्यान उतर जाने से रोगी को संभालना मुश्किल की बात होगी।

माता के रक्त का प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह जाच लेना चाहिए कि शिशु की मां की तन्दुरुस्ती वर्तमान में ठीक है। उसके शरीर में रोग या फोड़े, फुंसी आदि रक्त दूषित करने वाली बीमा-

पाचन शक्ति अगर अधिक न बिगड़ी हुई हो केवल 'सूखा' लगगया तो फलों का रस, टमाटर, केले पके हुए का थोडा थोड़ा सेवन कराना चाहिए। साथ साथ 'विकाडेक्स' ड्रोप्स सेवन भी चालू रखिये। होमियोपैथिक मे एक टानिक है जिसका नाम 'एलफेलफो' है अच्छा काम करता है। रक्त बढ़ने के साथ भूख बढ़ने पर 'फेराटोल' या 'शार्को फेरल' कुछ दिन सेवन कराने से उसका वजन बढ़ जायगा।

आचार्य श्री श्यामदास 'पीयूषपाणि' आयुर्वेदाचार्य
सर्वोदय सेवा आश्रम औषधालय, दौगवां,
पो० कसेरकलां (बुलन्दशहर)

[२]

कविराज सत्यकुमारी गोयल वैद्याचार्या आयुर्वेदालकृता, शास्त्री।

उम्र १॥ साल, रोगी का नाम उमेशकुमार, पिता रघुवीर सिंह मुरादाबाद, दिनांक १७-८-६० को उसे मैने देखा।

उसका वृतान्त—जिस समय मैने देखा, प्रथम तो वह हर समय खाने के लिए मचलता था और खाने पर भी अधिक निर्बल था। हलका हलका ज्वर भी था, नेत्र एवं मुख श्वेत थे। मल कभी अत्यन्त कठोर इतना कि गुदा छिल जाती और साथ मे रक्त भी दिखाई पड़ता और कभी इतना पतला कि पानी की तरह बहता था और पित्त के रङ्ग का फुटकीदार था। मुख से लेकर गुदा पर्यन्त सब अंदर प्रत्येक अङ्ग मे भी छाले थे। वे छाले क्या अकुर ने मान होते थे और अर्शाङ्कुर की भाति लगते थे। पहले तो ऐसी स्थिति को देखकर मै आश्चर्यचकित सी रह गई फिर भी दूध पिलाने के लिए कहा। वह अन्न भी खाता था और उस दिन बहुत थका था तो मैने रात को अंजीर आधी मिट्टी के पात्र में भिगोने और प्रातः खिलाने को कहा। उससे दूसरे दिन दस्त दो हो गये। फिर मैने उसे प्रवाहिका हर चूर्ण दिया। क्योंकि उसने मुझे बताया, १५ या २० दिन पर स्वत ही उसे दस्त आने लगते हैं और चिकित्सा करने पर ठीक होजाते हैं। फिर दूसरे दिन उदर को स्पर्श करने से कुछ कुछ यकृत भी बढा सा जान पड़ा। मैने नवायस लौह, मण्डूर भस्म और हिग्वाष्टक चूर्ण लिया। १-१ रत्ती नवायस लौह और मण्डूर भस्म प्रातः सायं मिलाकर दिया और वह अन्न भी खाता था। भोजन के साथ हिग्वाष्टक ½ माशा देने को कहा, उससे उसकी एक सप्ताह तक दशा ठीक रही परन्तु एक सप्ताह बाद खूब दस्त आने लगे। यह स्थिति देखकर मै कुछ घबड़ा सी गई। उसे ज्वर काफी था। उस समय मैने संजीवनी आधी गोली और शङ्ख भस्म शहद के साथ दिया और दिन में हिग्वाष्टक जामुन के सिरके के साथ दिया। इससे उसे कुछ शांति मिली। मुंह के छालों के लिए खदिरादि वटी दी, उसे वह अच्छी तरह चूस कर खा लेता था और नितम्ब प्रदेश पर दिखने वाले पर व्रणों पर सफोनामाइड पाउडर को लेकर सफेद वैसलीन से खूब फेटकर उसको लगाने को कहा। वह २-३ बार के लगाने मात्र से छाले कृष्णाभ हो गये। मुख के भी ठीक हो गये परन्तु उदर स्थिति ठीक नहीं हुई। मै कभी कभी जीभ मे, मुंह मे ग्लेसरीन लगा देती थी। मैने जब देखा कि कुछ अजीब सा रोग जान पड़ता है तो मैने उसे डाक्टर के पास जाने की सलाह दी। उसने मान लिया। एक सप्ताह लिवर एक्सट्रेक्ट के इन्जेक्शन लगे और उन्होने एनीमा लगाया। प्रमुख लक्षण मूत्र मल, नेत्र, नखादि सब श्वेत थे। फिर भी मैने कुछ न कहा। उसने एक सप्ताह के बाद फिर मुझसे निवेदन किया। तब मैने सोचा कि अब तो मै इसे ठीक करके ही

छोड़ेगी। उसके मां बाप बड़े परेशान से दिखाई लगे। तब मैंने अपामार्ग (चिरचिटा) की गाठों से साधित तैल की मालिश करने को कहा और स्निग्ध गरिष्ठ पदार्थ तैल, मिर्च, खटाई आदि सब बन्द कर दिये और सेवन में पुनर्नवा का साग दिया उससे कुछ लाभ जान पड़ा। परन्तु स्थिति फिर भी कुछ विकट सी ही रही। मैंने कल्याण घृत दिया। अष्टांग हृदय में शुष्क रेवती नवग्रह में जो लक्षण कहे हैं वही कुछ कुछ मिलते थे। मैंने उसकी चिकित्सा की तो भी कोई लाभ नजर नहीं आया। फिर मैंने होम्योपैथिक चिकित्सा प्रारम्भ की, उसमें सफलता प्राप्त हुई। बरामटाकार्ब यह हाजमे की तथा बढ़ी हुई गिल्टी को कम करती है। पेट फूलना, सुस्ती, पतला या कब्जयुक्त पाखाना हो। अरजेन्ट मनाइट्रम यह शरीर पर झुर्रियां पड़ गई हों, वह निरन्तर निर्बल होता जाता हो उसके लिए है। चामना यह पतले दस्तों के लिए है जो कि वर्षा में पीत हो। मैंने २-२ दिन, एक एक औषधि २ गोली प्रातः, २ गोली सायं, २ गोली मध्यान्ह दीं। उसकी दशा में निरन्तर सुधार होता गया। एक सप्ताह बाद केवल अरजेन्टम नाइट्रम एक सप्ताह तक सेवन कराया। इस प्रकार २ मास बाद अक्टूबर १६६१ में वह स्वास्थ्य लाभ कर पाया। फिर भी पथ्य जारी था। होम्योपैथिक चिकित्सा कोई भी बेखटके कर सकता है।

—सुश्री कु० सत्यकुमारी वैद्या
c/o श्री के. बी. लाल हैडकेशियर
बिसवां (सीतापुर) उ० प्र०

[३]

श्री गोविन्द बल्लभ पन्त

सर्वविदित है कि सूखा रोग में खटिक (Calcium) का अभाव होता है। इसलिए इसकी चिकित्सा भी इसी अनुपात की होनी चाहिए, इसकी सबसे उमदा चिकित्सा आयुर्वेद में यह है, ६६% की गारन्टी भी है, यानि ६६% प्रतिशत बालक इससे अच्छे हो जाते हैं।

७३—वराटिका	१ रत्ती से ३ रत्ती तक
जहरमोहरापिष्टी	२ रत्ती से ५ रत्ती तक
मण्डूर	½ रत्ती से २॥ रत्ती तक
प्रवाल पिष्टी	१ रत्ती से ३ रत्ती तक

सबको उपरोक्त अनुपात से मधु के साथ ४-४ घंटे मे चूना ६ रत्ती बिना बुझा पानी १ पाव मे बुझा कर रखदे और जब चूना बैठ जाय तब पानी छान कर बोतल मे भरदे। पाव भर पानी दिन भर में कई बार मे पिलाते जांय। एक सप्ताह के अन्दर बच्चे के चेहरे में रौनक नजर आवेगी, वैसे तो बुद्धिजीवियो के लिए मैं संकेत कर चुका हूं कि कोई भी खटिक योग इसकी दवा मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

एलोपैथी मे अधिकतर यही दवाइयां लाभप्रद हैं। अस्ट्रो कैलिसियम इञ्जेक्शन १ C.C. प्रतिदिन व ३-३ घंटे में अस्ट्रोकैलसियम लिक्वड ½ चाय की चम्मच से १ चाय की चम्मच तक एकडेक्सोलीन लिक्विड या कैप्सूल इत्यादि जो भी हो अगर समय पर इस रोग का इलाज प्रारम्भ कर दिया जाय तो यह रोग असाध्य नहीं है। संक्रामक अवश्य है, खान पानादि दोष से एक से दूसरे निर्बल बच्चे को होते देखा गया है। अत. चिकित्सा के साथ इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

—श्री. गोविन्दवल्लभ पन्त
राजकीय औषधालय, अनूपपुर, हण्डोल।

[४]

श्री नन्द किशोर शर्मा मंत्री

हमने जितने सूखा रोगियो की चिकित्सा की है उसके आधार पर क्रम इस प्रकार रखना चाहिए। सबसे पहले पचन सस्थानगत कोई विकार हो तो उसे दूर करना चाहिए। बालक को माता का या गौ माता का दूध देना चाहिए। माता को जीवनीय द्रव्यो से परिपूर्ण आहार मिलना चाहिए, साथ ही सूर्य की धूप, शुद्ध जलवायु तथा यथोचित व्यायाम भी आवश्यक है। सूर्य की धूप से विटामिन डी तत्व मिलता है जो अत्यंत आवश्यक घटक तत्व है। पचन संस्थान क्रियाशील होने पर स्निग्ध द्रव्यो को देना चाहिए। बालक को ८-९ छटाक दूध दे सकते हैं। दूध में स्नेहांश व सेन्द्रिय योग मिलाये जा सकते हैं। कैल्शियम के लवण दूध मे मिल जाते है। इस रोग की प्रमुख औषधि जीवनीय 'डी' मानी जाती है। क्योकि इससे ही अस्थि निर्माण कार्य होता है। कॉडलिवर तैल में विटामिन डी के साथ ए भी मिलता है अत इसका यथोचित उपयोग किया जा सकता है। ग्लैक्सो के एडेक्सोलीन मे भी उपर्युक्त तत्व मिलते हैं। सूर्य की नील लोहितातीत किरणे (Ultra-violet rays) बड़ी उपादेय है। शरीर और वातावरण की स्वच्छता भी आवश्यक है।

आयुर्वेदानुसार, फक्क रोग के शिशु को सात दिन तक कल्याणकघृत, पट्पल घृत या अमृत घृत से स्नेहन करावे। फिर निशोथ सिद्ध दुग्ध से शोधन करावें। संशोधन के बाद अस्थिवर्धक द्रव्यो के यूष दें। बच्चे को तीन पैर की लकड़ी की गाडी बनवाकर उसके सहारे चलने को दें। नील लोहितातीत किरण चिकित्सा रोग की तीव्रावस्था तथा रक्तस्राव वाले तथा फक्क बालक को वर्जित मानी गई है। इसलिये इस चिकित्सा को सावधानी से करे। अस्थि-वक्रता के कारण यदि पंगुता बालक में उत्पन्न हो जावे तो राज तैल की मालिश उपयोगी होती है। विस्तृत चिकित्सा काश्यप संहिता मे वर्णित है।

७४-शक्ति वर्धक योग—शंखाहुली, ब्राह्मी सम भाग लेकर इनका चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालको की बुद्धि तथा बल बढ़ता है। शंखाहुली सफेद तथा किंचित हल्के नील वर्ण के पुष्प वाली पथरीले स्थानों मे बहुत फैली होती है। यह बड़ी उपयोगी वनस्पति है। बच्चो के लिये गुणकारी है।

७५—सैंधव, त्रिकुटा, बड़ी करंज, पहाडी करंज, पाढ़ल १-१ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करले। मात्रा ४ से ६ रत्ती तक, अनुपान घृत ४ माशे व मधु ८ माशे से प्रातः साय देने से सूखा रोग में लाभ होता है।

—श्री नन्दकिशोर शर्मा,
मन्त्री—पंचायत ढ़ोटी (आगर)

[५]

श्री वैद्य मुकुन्द चन्द जी व्यास।

(अपने पिछले लेख में उल्लिखित रोगी का उपचार मैं निम्न-पद्धति से कर रहा हूं। पर्याप्त सफलता मिल रही है।)

प्रथमोपचार :—

७६—प्रात सायं-मध्याह्न मे १-१ रत्ती मण्डूर, कपर्द-शङ्ख,शुक्तिभस्म तथा २-२ रत्ती तालीसादि चूर्ण मिश्रण मधुनासह लेहन के १५-१५ मिनट के पश्चात् पुनर्नवा, एरण्ड ककड़ी, रोहितकत्वक, सहिजनात्वक्, स्नुही, काकमाची, कासनी, कसौंदी ये सब

तत्पश्चात् स्वच्छ वस्त्र से छानकर काच की बोतल में भर रखे।

मात्रा—५ बूंद से २० बूंद। अनुपान—किञ्चिद् जल मिश्रित। समय—तीनों काल। गुण—समस्त व्याधिशामक तथा आरोग्यप्रद व अलभ्यामूल्य एवं अद्भुत अमृत है।

सञ्जीवन तैल—

८२—कणगुग्गुल ५ तोले, कूर्मपृष्ठ भस्म, बकास्थि भस्म, सूकरास्थि भस्म, छागास्थि भस्म २॥-२॥ तोले, केशर, बला, अतिबला, अश्वगन्धा, मधुयष्टि, सतावर, हल्दी, दारुहल्दी, देवदार, मजिष्ठ, गुरुची, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, नरकचूर, चिरतिक्त, पद्माख, भूर्जपत्र, खस, कपूरकचरी, नागरमोथा, लघुएला, जटामासी, सुगन्धवाला, सुगन्ध कोकिला, बालछड़, पनड़ी, हाऊबेर, प्रियंगु, फूलप्रियगु, कटफल, दाडिमपुष्प, धवई पुष्प, नागकेशर, कमल केशर, कमलपुष्प, प्रपौण्डू पुष्प, प्रपौण्डूजीरक, कण्टकारी फल, कृष्णागरु, कृष्णमिर्च, जायफल, विल्वफलमज्जा, त्रिफला (३), शीतलचीनी, तेजपत्र, विडंग, रेवन्दचीनी, कन्यासार, अरणी, गाजवां, वनपश्मा, नागबला, ज्योतिष्मती, दुरालभा, वासा १-१ तोला। मत्स्य तैल १० तोले, तिल तैल ४ सेर, कासुनी, कासनी, कमोंदी, कंघी, पुनर्नवा, शंखपुष्पी ४०-४० तोले। जल षोडश गुणा। क्वाथ चतुर्थ भाग। क्वाथौषध तैल को मन्दाग्नि पर सिद्ध कर शीतल होने पर स्वच्छ वस्त्र से छान के काच की बोतल में भर रखे।

बाह्य प्रयोग से बच्चा कुछ ही दिनों स्वच्छ हो जाता है। —श्री वैद्य मुकुन्द चन्द्र जी व्यास

चन्द्र चिकित्सालय, कोलसावाडी

(भगवानगंज) हैदराबाद

बालशोष चिकित्सा पद्धति में—

हमारे सफल सिद्ध प्रयोग

(१)

श्री. सत्यप्रसाद जी निर्भीक

योग—सूर्योदय स पूर्व एकत्रित काली गौ का मूत्र ऽ१, कश्मीरी केशर २ तोला, मुक्ता ३ मा० सब को खरल कर १ बोतल में भरदो। ४ से २० बूंद तक मातृ दुग्ध से कम से कम १५ दिन तक प्रयोग करे। बच्चों का सूख जाना (सूकिया) रोग जाता रहता है।

८३—बालको के लिए घुट्टी—

सुहागा, इन्द्रजौ मीठे, एलवा, नौसादर, श्वेतजीरा, हींग भुनी २-२ मासा। सनाय, अजवायन, देशी उन्नावदाने, अमलतास गूदा, मुलहठी, कालानमक, हल्दी, मोथा, पीपल छोटी, सोठ ४-४ मासा, गुलाब के फूल, विडङ्ग ६-६ मासा, सौंफ १२ माशा, बडी हरड़, जंगी हरड़ बहेड़ा, सूक्ष्मेला ७ मासा, मूर्वा फली १२ मासा सबको पीस २ मासे की घुटी पका पिलाने से सब बाल रोग जाते रहते हैं। उदर सूखा, मसान (जिसमें पसली चलना, कास, दस्त, वमन, ज्वर, प्यास, हिचकी, पीला रंग, लाल फोडा-फुसीं बिसर्प हो) ठीक हो जाते हैं। कई बार प्रयोग मे लाया गया है।

८४—मसान रोग में—

हाथी की लीद की धूनी उत्तम है। उक्त औषधियों का यदि सर्वत बनाकर प्रयोग किया जाय तो अत्युत्तम है। इसके लिए कच्चा चूने के पानी या उक्त औषधियों के क्वाथ मे सर्वत तय्यार करना लाभप्रद है।

८५—सर्बत सूखा रोग में—

हरी असगन्ध का अर्क दुगनी सौंफ मिश्री व (शक्कर) मुनक्का, छुहारा मिलाकर शर्बत विधि से सर्बत निर्माण कर उसमे मुक्ता ३ माशा, कश्मीरी केशर १ मासा मिला शीशी में भर दे। मात्रानुपान २-३ तोला दुग्ध से सूखारोग, कास, श्वास, प्रमेह दौर्बल्य से लाभकर है। अनुभूत—कस्तूरी भी डाली जाय तो सोने मे सुहागे का काम हो जावेगा।

८६—वालशोष हर तैल—

भांगरा स्वरस, तालमखाना पत्र रस, बंगला पान अर्क, मकोय स्वरस, घीकुमारी रस, क्वाथ शालपर्णि, असगन्ध अर्क १०-१० तोला, बकरी दुग्ध, काले तिलों का तैल ऽ१।—ऽ१।।

सबको मिला कढाई मे डाल मन्द अग्नि में पकावे। तैल मात्र अवशिष्ट रहने पर बोतल मे रख १० तोला कपूर, १ तोला दालचीनी तैल, ३ मासा केशर उत्तम मिलावे।

प्रयोग—रीढ़ पर स्नेहन और २—३ बून्द कानों में भी डाले। इसके अभाव में कर्पूरादि तीनो लाक्षादि तैल मे मिला उक्त विधि से प्रयोग करें।

८७—वालशोषे—

शुद्धमेला, मगर मच्छ दन्त, घेंघा ३—३ मासा, बीजशालपर्णि १५ मासा, कपूर, शु० सोहागा, शुद्ध मुरदासंग २—२ तोला—बंगला पान के रस से भावित कर मसूर प्रमाण गोली बना ३ बार दिन में मातृ दुग्ध व जल से घोल पिलावे। गुण—बालशोष, कृशता, पसली चलना, अफरा, दस्त, अजीर्ण में पूर्ण लाभप्रद है।

—श्री सत्यप्रसाद निर्भीक M. A. M. S.
राजकीय आयु० चिकित्सालय, गौचर (चमोली)

❖

(२)

श्री वैद्य पूर्णचन्द्र जी जोशी आयुर्वेद भूषण

८८—(अ) नरवल्ली शुद्ध ला करके कपड़छन कर के शीशी में रख लें। फिर एक छोटी चम्मच प्रातः सायं ताजा या सुखोष्ण जल से दे।

गुण—१० से १५ दिन सेवन कराने पर बच्चे का कायापलट हो जाता है। अस्थि पंजर शेष बालक ठीक स्वास्थ्य लाभ कर चुके है।

८६—(ब) पीपल पुरानी छोटी, २ साल की अतीस, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, दरियाई नारियल के खोपटा, चिटकी, बंसलोचन, जहर मोहरा खताई, मिश्री समान भाग लेकर कपड़छन करके शीशी मे रख लें। अनुपान—मधु या माता के दुग्ध से सुवह शाम मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक बड़े शिशु को ४ से ६ रत्ती देना चाहिए। गुण—सर्व बाल रोग पर परीक्षित है। उचित अनुपान से सर्व रोग ठीक होते हैं।

६०—(स) गौदंती हरताल सफेद उत्तम की भस्म १० तोला, शुद्ध गंधक आवलासार २ तोला दोनों को खरल में डाल कर ३ घंटे खूब घोट लें। मात्रा १ रत्ती, अनुपान काली गौ का मूत्र १ सेर लेकर १ तोला केशर असली ५ तोला गौमूत्र में खरल करके बाकी जो मूत्र है उसमे मिश्रण कर कपड़ा से छान कर शीशी मे रख ले। इस अर्क को ५ बून्द के साथ तीन समय देना शत प्रतिशत सफल अनुभूत योग है।

६१—बाल कल्याण सुधा—

विधि—कैलशियम हाईपोफोस्फेट ६ औंस, सोडियम् हाईड्रोफोस्फेट ३ औंस, पोटासियम हाईपोफोस्फेट २ औंस, ग्लीसरीन ७ औंस, एसिड-हाईपोफोसफेट १ ड्राम, शक्कर २०० तोला, जल २०० तोला लो। पहले मेगनेशिया कार्ब ८० ग्रेन में

एनिथी आयास ८० बूंद मिलावे। फिर उसे ७० औंस जल में मिलाकर छान लेवें। इस अर्क में ग्लेसरीन को छोड़के अन्य दवा मिलावें। फिर शक्कर तथा ग्लिसरीन मिलादे। अन्त मे ३ मासे केशर असली मिलाकर बोतल मे भरलें। मात्रा १० से ६० बूंद (या १ ड्राम या १ चाय का चम्मच) तक आयु और शक्तिअनुसार। अनुपान—माता के दुग्ध या जल के साथ मिला कर दें।

उपयोग–यह शर्बत अति स्वादिष्ट होने से सब बच्चे इसे प्रेमपूर्वक पीलेते है। यह बालको के स्वास्थ्य की रक्षा करने और बल देने मे अद्वितीय है। जुकाम, अपचन, दूध फेकना, दांत आना, खासी, हड्डियो की कमजोरी, दुबलापन, मानसिक बेचैनी, रोना, सुस्त रहना, ठड लग जाना, गर्मी लग जाना, मौसम पलटने से बीमार हो जाना इन सब आपत्तियों से यह बाल कल्याण सुधा बालकों को बचाता है। इस शर्बत का नियमपूर्वक सेवन करते रहने से बच्चो पर अकस्मात् बीमारी का हमला हो जाने की भीति नहीं रहती, १५–२० दिन की आयु से ३ वर्ष तक के शिशु को यह बालसुधा देते रहने से भविष्य में भी देह सबल बनी रहती है और उस पर रोग का हमला अचानक नहीं होता। यह उत्तम पेय है।

–श्री वैद्य पूर्णचन्द्र जोशी,
जैन दातव्य औषधालय, मोचीबाड़ा, सीकर।

*

(३)

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त वैद्य भूषण, डी० आई० एम०
[धन्वन्तरि ग्रहणी रोगांक के विशेष सम्पादक]

९२–सजीव कर्कट (केकड़ा–जल का एक जीव) को लेकर उन्हे एक हाण्डी मे बन्दकर, हाडी पर कपड़मिट्टी कर कण्डो की अग्नि में रख भस्म तैयार करे। मात्रा १/४ रत्ती, अनुपान—माता का दूध।

९३—कर्कट भस्म के स्थान पर कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म का भी उपयोग कर सकते है। मात्रा आधी रत्ती

९४—ऊंट के पावो की हड्डी जोकि बहुत पुरानी कहीं दबी पड़ी हो उसे घिसकर जल के साथ उपयोग करने से भी सूखा रोग चला जाता है। मात्रा १ रत्ती। बराबर ३-४ दिन तक प्रयोग करना चाहिए। रोता बच्चा हसता हुआ खेलने लगता है। यह मेरा निजी परीक्षित योग है।

९५—नरकपाल भस्म। मात्रा १ रत्ती। अनुपान माता का दूध।

९६–घोघा (जल जीव शंख मे रहने वाला) की भस्म। मात्रा आध रत्ती, नर कपाल कीभस्म आध रत्ती। अनुपान–अर्क वेद मुश्क। मालिश के लिए कॉडलीवर आयल का उपयोग करे।

९७—शंख भस्म, कॉडलीवर आयल, मद्य, षड्गयूष से भी लाभ होता है।

९८—छःबुंदा एक जीव विशेष सपेरों के पास से मिल सकता है। उसे लेकर एक चमड़े के थैले मे बन्द करक मजबूत चौतरफा सिलाई कराकर बच्चे के गले मे डाल दे, उसके मृत्यु होने तक गले में बाधे रखे, इससे सूखा चला जाता है। रात्रि में उसके कुटुर कुटुर करने का शब्द होता है। उसके मृत्यु होने पर वह कुटुर कुटुर का शब्द बन्द हो जाता है।

९९—काकजंघा बूटी की गांठ मे होने वाले कीड़े को माता के दूध सहित पीस कर पिलाने से भी यह रोग चला जाता है।

अब बूटियो के प्रयोग पढ़िये—

१००–शंखपुष्पी के स्वरस को निकालकर रोगी बालक की पीठ पर मले। कुछ देर के पश्चात् काले

या श्वेत रङ्ग के सूक्ष्म कीटाणु दृष्टिगत हों तो उन्हें अलग करते जांय, बाद में गौ के गोबर से वह स्थान शुद्ध कर डालें।

१०१–काकजंघा की पत्ती या खरैटी की पत्ती २॥ लेकर पान के रस से पीस कर पीठ पर लगावे। कई लोग लगे हुए (कत्थे चूने से युक्त) पान को दांतों से कुचलकर वही पान रोगी बालक की पीठ पर लगाते है, उस पान में खरैंठी या काकजंघा की २॥ पत्ती भी रहती हैं। उससे भी कीड़े निकलते हैं।

१०२–नवसादर, तालाब की काई, बंगला पान पीसकर पीठ पर लगावे। शनिवार और मंगलबार को इससे भी कीटाणु निकलकर रोगी बालक ठीक हो जाता है।

१०३—कटे हुए नींबू में नवसादर पिसा हुआ डाल कर, उस निम्बू का रस रोगी बालक के कान में डाले।

१०४—गंधकाम्ल (*Sulphuric acid*) की एक बूंद एक छटांक जल में मिलाकर बार बार देना भी लाभप्रद है।

१०५—संजीवनी बटी (शार्ङ्गधरोक्त), श्रृंग भस्म, बबूल गोंद भुना हुआ समान भाग लेकर पीसकर आध रत्ती माता के दूध से दे।

१०६—बसन्तमालती, प्रवालपंचामृत और लोह भस्म उत्तम समान भाग लेकर उचित मात्रा में प्रयोग करने से यह रोग निश्चय चला जाता है। साथ ही चन्दनादि तेल की मालिस, चतुर्भुजी (अतीस, काकड़ासिंगी, पीपल, नागरमोथा) तथा असगंधचूर्ण ४-४ रत्ती का प्रयोग दूध से करते रहना चाहिए।

१०७–गुड़हल के फूलों का शरबत इस रोग मे अति लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

१०८–वदाल को शनिवार के दिन आमंत्रित कर रविवार के दिन लावे। उसे तावीज मे रखकर गले में बांध दे।

१०९–बलतंर वृक्ष जिसकेफूल लाल २ होते हैं, उसको गले में बांधने से भी लाभ होता है।

११०–नीम, चमेली, काकचूटी, जो पुताई से काम लाई जाती है, उसकी कोमल लकड़ी का एक गोल हार बनाकर गले मे पहना दे। ज्यों ज्यो लकड़ी सूखती जाती है, त्यो त्यो बच्चे का सूखा रोग भी नष्ट होता जाता है।

–श्री मुन्नालाल गुप्त वैद्य
पुरानी दाल मन्डी, कानपुर

(४)

वैद्य श्री. पं० रामनरेश जी मिश्र साहित्यायुर्वेदरत्न, एम० ए०

बाल शोप रोग मे निम्न अवस्थाओं में ये योग लाभकारी हैं—

(१११) ग्रहणी मे—

[१] आयुर्वेदिक—जातीफलादि चूर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर रस, अथवा महा गन्धक योग का सेवन करना चाहिए।

[२] होमियोपैथिक—कल्केरियाफास, कल्केरियाकार्ब।

[३] हार्वोमिनरल—अल्बोसांग, सालफोस, आइडोफोस।

(११२) आमाशय और आंत्र के उपद्रव मे—

[१] आयुर्वेदिक-हिंग्वाष्टक चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक भस्म, बालरस, कुमार कल्याण रस।

[२] एलोपैथिक—एवोमिन पिल्स।

[३] होमियोपैथिक–ऐंगस्टियुरा।

(११३) खटिका पूर्ति के लिए—

[१] आयुर्वेदिक–प्रवालपिष्टी, गोदन्ती, वंशलोचनादि के योग।

[२] एलोपैथिक-कैल्सियम विद विटामिन डी की गोली।

[३] होमियोपैथिक—कल्केरियाफास, एसाफिटिडा।

(११४) रक्ताल्पता—

[१] आयुर्वेदिक-लोहभस्म स्वर्ण माक्षिकभस्म, माण्डूर भस्म।

[२] एलोपैथिक-विटामिन सी की गोली, लिवर एक्सट्रैक्ट।

[३] होमियोपैथिक—फेलिफास।

(११५) स्नेहन मर्दन के आयुर्वेदिक योग—

शास्त्रीययोग-लाक्षादि तैल, चन्दनादि तैल बला तैल चन्दनबला लाक्षादि तैल।

अनुभूत एव परीक्षित योग—

(*A*) केंचुओं को सरसों के तेल में पकाकर लगाना चाहिए।

(*B*) काकमाची की पत्ती ढ़ाई की संख्या में लगाया हुआ पान—२ बीड़ा। दोनों को मुंह में चबाकर पीडित रोगी की कमर के ऊपर रीढ़ पर पीक फेंके और मले।

(*C*) भैंस की गोबर का रस बच्चे की रीढ़ पर मलना चाहिये।

(*D*) गुड़ूच्यादि तल १० बूंद पिलाना चाहिए।

(११६) स्नेह मर्दन के एलोपैथिक योग—

(*A*) काडलिवर आयल खाने और लगाने दोनो काम में लाया जाता है।

(*B*) हैलीबट लिवर आयल भी खिलाने से भी लाभ होता है।

ब्रांकाइटिस में पेनीसिलीन बी सोडियम का इन्जेक्शन मांसगत दे। कुछ अन्य अनुभूत एवं परीक्षित योग निम्नलिखित हैं—

[११७] कलई चूना—५ तो, मिश्री ५ तो., जल ५ सेर। सबों को घोलकर ३ दिन धूप में छोड़ दे। फिर मोटे कपड़े से छानकर बोतल में रखले। मात्रा १ चम्मच। वायु विकारादि में लाभप्रद है। खटिका की पूर्ति करता है। इसमें सोडाबाई कार्ब मिला देने पर अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

[११८] पीपल, अथवा लहसुन से दूध को पका कर शुद्ध शिलाजीत १ रत्ती से २ रत्ती तक नित्य सेवन करना चाहिए।

[११९] घोंघे को कीड़े सहित पानी में औटायें और अश्वगंधादि चूर्ण दूध में पाक कर मिश्री के साथ खाकर उक्त रस को पी जाये। सुखण्डी दूर होती है।

भोजनोत्तर अरिविन्दासव और प्रातः सायं रस पीपरी देने से भी अच्छा लाभ करता है।

कालीगाय का मूत्र २० तोला, केशर १ तोला-दोनों को मिलाकर १० बूंद की मात्रा से पिलावे और २ तोला लाक्षादि तैल नित्य मालिश करे। १५-२० दिन में लाभ होता है।

गोदन्ती भस्म, प्रवालभस्म, वंशलोचन, सोहागा, लावा और सबके बराबर सितोपलादि चूर्ण घी के साथ देने से लाभ होता है।

[१२०] कुमारकल्याण रस, रस पीपरी, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, बंशलोचन, छोटी इलायची, स्फटिक (फिटकिरी) भस्म मिलाकर मधु के साथ १ रत्ती की मात्रा में ३ बार नित्य देने और कुमार-कल्याण तेल, काडलिवर आयल और चन्दनादि तैल मिलाकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(१२१) एलोपैथिक—

[१] एवोमिन्स १ गोली, कैल्शियम विद विटामिन डी १ गोली, ग्लूकोज १ तोला। सबको मिला कर ६ मात्रा बनाकर प्रतिदिन तीन मात्रा जल या दूध के साथ दे।

[२] हेली औरेंज या बिटाकोडको अथवा बिटामिन ए, डी, सी का मिश्रित योग पिलाना भी लाभप्रद हुआ है।

(१२२) यूनानी—

[१] कुर्स्तांमरीजा और लाउक सपीस्ता के सेवन से कास श्वास ठीक हो जाता है।

—शेषांश पृष्ठ ६२ पर।

शतःशतोनुभूत निश्चित फलप्रद योग

इस प्रकरण में सूखा रोग पर अनेक बार परीक्षित हो चुकने वाले योगों को ही स्थान दिया गया है। आजकल अनुभूत योगों की भी मांग पर्याप्त रहती है। इन योगों के प्रस्तोता विद्वान चिकित्सक है। उनका अनुभव इनमें तब परिलक्षित होगा जब आप इन्हें प्रयोग कर देखेंगे। वस्तुतः सैंकड़ों रुपये खर्च करने पर भी कोई ऐसे सिद्ध योग नहीं बताता। परन्तु वैद्य समाज के लाभार्थ हमारे निवेदन पर अनेक योग भेज दिये। अत धन्यवाद सहित इनमें गिने-चुने योग प्रकाशित किये जा रहे हैं। कुछ यथास्थान लेखों में ही आ गये है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

१२६—आयुर्वेदीय मल्टी विटामिन ड्राप्स

[Ayurvedic Multi-vitamin drops]

आजकल सूखारोग पर एलोपैथिक मल्टी विटामिन ड्राप्स प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु वे मंहगे पड़ते हैं और ज्यादा गुणकारी नही रहते। हम अपना परीक्षित योग उसके बराबरी में दे रहे हैं—

गाय का घी १ भाग, तिली का तैल १ भाग, मधु ८ भाग। इनको मिलाकर खूब हिलावें। बस योग तैयार हो गया। इसे बच्चा की आयु के अनुसार ½ से २ चाय की चम्मच तक दिन में २-४ बार जन्म से ही प्रयोग करना चाहिए। इससे सूखारोग होने का डर नहीं रहता। यदि हो गया भी तो अच्छा हो जाता है। इसमें विटामिन ए, डी पर्याप्त विद्यमान हैं। —श्री डा. ए. एम. अडसोड नांदगांव (खण्डेश्वर) अमरावती

१२७—हमारा सिद्ध योग—

यह योग छोटा पर लाभ बहुत करता है। मुर्गी के अण्डे की जो सफेदी है उसे लीजिये। उसी के बराबर पालक का रस लेकर दोनों मिलाकर कई दिन घुटाई करें। जब सूखा चूर्ण (पाउडर) सा बन जावे तो बालक की अवस्थानुसार ३ रत्ती से ५ रत्ती तक दूध के साथ देने से सूखारोग अवश्य ठीक हो जाता है।

—श्री डा. देवीसहाय आयुर्वेदाचार्य H M. B. S.
शिव औषधालय, चूरू (राजस्थान)

१२८—गुरुओं की कृपा तथा तान्त्रिकों के साहचर्य से प्राप्त-

रस पीपरि, प्रवाल पिष्टी, गोदन्ती भस्म प्रत्येक समभाग। इनको घोटकर सुहागे की खील भी मिला लें। इस मिश्रण को २ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ दिन में ३ बार प्रयोग करायें। इस योग से हमें ८० प्रतिशत सफलता मिली।

१२९—कपर्दिका भस्म, सुहागे का लावा, शङ्ख भस्म, स्फटिका भस्म, ताल भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म प्रत्येक समभाग। इसको मिलाकर कागजी निम्बू के रस में खरल कर इसकी ७ भावना दीजिए। मात्रा ३ रत्ती, बकरी के दूध के साथ दें। यह ७५ प्रतिशत सफल रहा है।

१३०—मान्त्रिक-तान्त्रिक योग—

सूखारोग के लिए मन्त्र—

साल सरीलो सो रह गई।
बैठल योगिन तेल परोई॥
से तेल में लगे लिलारा।
तुम बांधो आसपास,
मोहि बांधो छवमास।
छव मास मे किया खेती।
भूत बैताल समिटो॥
अंजनि के मन्त्र जहां वे तहा जाये।
सत गुरु के वन्दे पाव सिद्ध के दोहाई॥

इसी के साथ—इयं कुमारी ब्रह्मचारिणी दृष्टिदोष निवारण हनुमन्त स्मराम्यहम्।
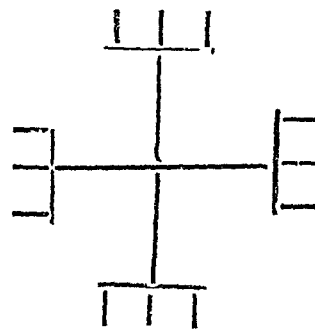
इस उपरोक्त यन्त्र को गोहमाठी से जमीन पर बनालें। गाय के गोयठा से आग जलाकर बकरी के

दूध में बिना चीनी के ही घोंघो मे खीर बनावें। कुमारी कन्या के द्वारा कते सूत को घोंघो में ११ बार लपेटे। उधर प्रथम ही दिये मन्त्र को पढ़कर ११ बार झाड़े। खीर रोगी के हाथ में रखें व बाद में यही खीर रोगी को खिलायें। इससे सूखारोग (सुखंडी) एक ही बार में छूट जाता है।

—श्री रामवृक्ष (?)
(पता आदि अज्ञात-विशेष सम्पादक)

१२१-सफलतादायक प्रयोग—

इस योग को इस प्रकार बनाना चाहिए। काली कुक्कुटाण्ड की पीली जरदी तथा उत्तम मधु दोनों समभाग लेकर तामचीनी या मृत्तिका भाण्ड में रखकर अग्नि पर लकड़ी से चलाते हुए भूनें। जब लाल रंग होकर भरभराने लगे तब उतार कर साफ शीशी के बर्तन से रखें।

इसको ½ से १ माशा तक मां के दूध में रगड़कर सूखारोग ग्रस्त बच्चो का सेवन करायें। इससे कुछ दिनो में ही बालक हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान होता है।

—श्री वैद्य गणेशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
ढेगो, पो० दंगवार (पलामू)

१२२-अनेक बार परीक्षित शास्त्रीय योग—

प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, योगेन्द्र रस ¼ रत्ती, कुमुदेश्वर रस ½ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती।

प्रातः सायं शहद के साथ अथवा दूध के साथ देने से उत्तम लाभ देखा गया। साथ मे लाक्षादि तैल अथवा महामरिच्यादि तैल मर्दन का भी क्रम चला।

पथ्य—पथ्य का ध्यान रखना प्रमुख है। विबन्ध की अवस्था में द्राक्षा, अग्निमांद्य की स्थिति में शुण्ठी व पिप्पली एवं अतिसार की हालत में नागरमोथा से आश्वित बकरी का दूध दूना दिया जाता है। शुद्ध माता का दूध तथा पौष्टिक सुपाच्य फलों का अच्छा लाभ होता है। मात्रा कम ही रखें।

—श्री श्रेयन्स कुमार 'बड़कुल' शास्त्री
शहपुरा (भिटोनी) जबलपुर (म० प्र०)

१२३—कुंकुमादि वटी—

शुद्ध केशर २ माशा, कस्तूरी २ रत्ती, मुक्ता-पिष्टी, गोदन्ती भस्म, जायफल, शंख भस्म, मण्डूर भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक ६-६ माशे।

विधि—उक्त सभी द्रव्यों में यथा प्रमाण छोटी मधुमक्खी का स्वच्छ मधु मिलाकर सुप्रकारेण मर्दन करें तथा १-१ रत्ती की गोलियां बना कर रख लें।

:: पृष्ठ ६० का शेषांश ::

[२] हब्बे कबीद नौसादरी, हब्बे जहर मोहरा, काफूर सय्याल के प्रयोग से यकृत् दोष और विकृत् मलादि दोष दूर होते हैं।

[३] जवाहर मोहरा खसाई, खमीरा मर वारीद खास के प्रयोग से तथा रोगन बादाम के मालीश से भी अपूर्व लाभ होता है।

(१२३) होमियोपैथिक—

[१] नेट्रमफास और कल्केरियाफास का क्रम से प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद होता है।

[२] ऐलफैल्का भी लाभ करता है।

[३] ऐलफैल्को टानिक-(बोरिक एन्ड टैफेल) स्वास्थ्य सुधार में ७० प्रतिशत लाभप्रद है।

(१२४) हार्वोमिनरल—

[१] सामान्य रूप में सालफोस नित्य ३ माशा।
[२] उग्र रूप में आइडोफोरस नित्य ३ माशा।

दोनो योगों के बाद दूध के साथ अल्बोसांग भी लेना परमहितकारी है।

(१२५) मेरे गुरुवर पं. अंशुमान शर्मा जी एम. ए०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदाचार्य ने भी एक योग हाल ही इसी सप्ताह में बतलाया है। पाठक लोग परीक्षा कर अपना मंतव्य दें—

हड़कड़ंक का पंचांग सरसो तेल में पका कर लगाने से भी सूखा रोग दूर होता है। इसे चने के साथ पीसकर खाया भी जा सकता है।

—श्री पं. रामनरेश मिश्र एम. ए.
परमानन्द आरोग्य सदन
कचनामा पो. मखदुमपुर (गया)

अनुपान—माता का दूध, पान पत्र स्वरस, तुलसी पत्र स्वरस।

गुण—बालशोष, बालयकृत्, कास, न्यूमोनियां, वमन, अतिसार, उदर शूल तथा बैचेनी और हाथ-पांव पटकने में, रोने मे उक्त अनुपानों से यथा रोग दें।

मात्रा—१ से ३ गोली १ से ३ वर्ष के बालकों को

१३४—बाल पौष्टिक शर्बत—

चूने का पानी १ पाव (आध सेर पानी में २ तोला चूना अनबुझा). केशर शुद्ध ३ माशा, ग्लूकोज १। तोला। चूने के पानी को छानकर उसमें अन्य द्रव्य डाल कर मिश्रित करलें। ग्लूकोज के अभाव में मिश्री डाले।

मात्रा—१ चम्मच दिन में तीन समय।

गुण—तृष्णा, वमन, अतिसार तथा निर्बलता में उपयोगी है।

—श्री वैद्य नन्दलाल शर्मा
आयुर्वेद चिकित्सालय, कोड़वाखुर्द (अम्बाला)

१३५—विदारीकन्द, जौ और गेहूं का आटा मिला घी में भून यवागू बनाकर दिन में कई बार थोड़ा थोड़ा खिलावें। शहद और मिश्री मिलाकर गाय या बकरी का दूध पिलावे।

१३६—कच्चा पपीता लो। उसका थोड़ा सा हिस्सा खोलकर नमक, गेरू और विदारीकन्द का चूर्ण भर कपड़मिट्टी करके आंच में दे दे। जब मिट्टी सुरख हो जाय निकाल ले। ऊपर से मिट्टी हटाकर पपीते को पीस डाले। चूर्ण बन जायगा, नित्य प्रातः सायं मां के दूध में या शहद में १-१ रत्ती चटाने से लाभ होगा।

१३७—शोष रोग में नित्यप्रति पानी में एक बादाम पीसकर शहद में मिलाकर चटावे।

१३८—उबले हल्के दूध में प्रति दिन हेलीवट लिवर आइल या शार्क लिवर आइल १५ या २० बूंद प्रातः सायं बच्चे को देना चाहिए।

१३९—पीपल का चूर्ण १-१ रत्ती प्रातः सायं गोमूत्र मे बच्चे को प्रयोग करायें। मकोय, मूली के पत्तों का स्वरस आग पर चढ़ायें। फटने पर सफेद जल रह जाय उसको छानकर बोतल मे भर लें। ३०-३० बूंद शहद के साथ बच्चों को पिलावें।

—श्री डा० प्रेमदत्त शास्त्री
आर्यनगर, फिरोजाबाद (आगरा)

१४०—कुछ सफल योग—

बालकों को अत्युत्तम स्वर्ण भस्म ¼ रत्ती को १ रत्ती दुधबच, अतीस के चूर्ण में मिलाकर नित्य प्रति दिन में दो बार खिलाने से अच्छा लाभ देखा गया है।

अतीस, काकड़ासिंगी, छोटी पीपल, नागर मोथा को समभाग चूर्ण कर लें। इसे १-४ रत्ती की मात्रा मे (आधी रत्ती मोती या प्रवाल भस्म मिला लें तो अत्युत्तम) ३-४ बार शहद के साथ खिलाने से सुन्दर फायदा हो जाता है।

—श्री वैद्य मक्खनलाल बरनबाल
चौक, सुलतानपुर (उ० प्र०)

१४१—अनेक रोगियों पर अनुभव किया योग—

इस आश्चर्यजनक हितकारक योग की निर्माण विधि इस प्रकार है। सत्व गिलोय, टिवल फिटकड़ी, टिवल सुहागा, गिरी कमल गट्टा, दरियाई नारियल, मुक्ता शुक्ति भस्म, शंख भस्म, जीराश्वेत, मोचरस, लोध, जहरमोहरा, बंशलोचन, इलायची दाना, केकड़ा प्रत्येक १-१ माशा हो। इसमें कलेजी (विधिवत् बनाना चाहिए) ४ माशा डालें। इस प्रकार इस दवा को तैयार कर बालकों को सेवन कराने से बहुत लाभ होता है। सामान्यतः ये सर्व बाल रोगो पर प्रयोग किया जा सकता है।

—श्री नौबतराम जैन प्रभाकर
गढ़हीवाला (होशियारपुर) पंजाब

१४२—सिद्ध प्रयोग—

काली गाय का मूत्र ½ सेर तथा असली केशर १ तोला साफ बोतल मे कार्क लगाकर एक सप्ताह रखें। ५-३० बूंद तक दिन में २-३ बार देने से बहुत लाभ हुआ। यह प्रयोग बाल रोगांक मे था। इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक पृष्ठ २२ की शिशु संजीवनी तथा सुधा कल्प का प्रयोग हमने असाध्य बात रोगी पर करके लाभ उठायाहै।

—श्री उमाशंकर दाधीच वैद्य
सनावद निवाड (म० प्र०)

बालशोष—शास्त्रीय विवेचन

कविराज श्री डा. शिवकुमार जी व्यास, डी. आई. एम. एस., भिषगाचार्य।

नवीन प्रकाशित 'पञ्चकर्म विज्ञान' पुस्तक के लेखक श्री व्यास जी की लेखन शैली विवेचनात्मक रहती है। बालशोष पर पर्याप्त 'स्टडी' के बाद आपने यह उपयोगी तथा वैज्ञानिक विशिष्ट परिचय धन्वन्तरि के लिए प्रस्तुत किया है। बालशोष के साथ फक्क का नाम आता ही है अतः फक्क रोग को दृष्टिगत करते हुए शास्त्रीय प्रकाश डाला है। यत्र-तत्र समन्वयात्मक ढङ्ग से प्रविचार उपस्थिति लेख की सर्वांगीणता के उदाहरण है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय।

दो शब्दों के योग से बने "बालशोष" में प्रथम शब्द बाल तथा दूसरा शब्द शोष है। इस विषय का परिचय देते समय मैं उचित समझता हूँ कि इन दोनों के विषय में दो दो शब्द लिखता चलूँ ताकि स्पष्टीकरण में सरलता हो। अतः प्रथम बाल शब्द को लेता हूँ।

बाल—

वयस्तु त्रिविधं बालंमध्यंवृद्धमिति।
तत्रोनषोडशवर्षाबालास्तेऽपि त्रिविधा॥
क्षीरपाः क्षीरान्नादा अन्नादा इति।
तेषु सम्वत्सरपरा क्षीरपाः॥
द्विसम्वत्सरपरा क्षीरान्नादा।
परतो अन्नादा इति॥

—सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ३५

अर्थात्—वय तीन प्रकार की होती है। बालावस्था, मध्य (युवा) अवस्था तथा वृद्धावस्था। बालावस्था सोलह वर्ष तक होती है। यह बालावस्था भी तीन प्रकार की है। क्षीरपा, क्षीरान्नदा और अन्नदा। इनमें एक वर्ष तक क्षीरपा, दो वर्ष तक क्षीरान्नदा और इसके पश्चात् अन्नदा होती है।

इसी स्थान पर यह लिख देना उचित है कि यह वर्गीकरण एक साधारण नियमानुसार किया है—प्रत्येक इकाई को लेकर कोई सिद्धान्त नहीं बनाया जाता। यो तो अनेक ऐसे बालक मिलेंगे जो एक वर्ष के बाद भी अन्न नहीं खा सकते हैं तो भी नियम के अनुसार १ वर्ष के बाद २ वर्ष तक का बालक 'क्षीरान्नदा' ही होगा। दूसरी बात यह कि अन्नदा अर्थात् अन्न खाने वाले बालक का यह तात्पर्य बिलकुल नहीं कि वे दूध न पीवें। कहना केवल इतना ही है कि उनका मुख्य आहार अन्न हो जाता है। दूध न भी मिल सके तो भी चल कार्य सकता है। अस्तु.

शोष —

दूसरा जो शब्द है अब उसको देखिएगा। आयुर्वेदोक्त परिभाषानुसार शोष की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से है—

'संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते।'

—सु० उत्त० अ० अ० ४१

अर्थात्—रसादीओं (सप्तधातु) का संशोषण करने के कारण शोष कहा जाता है। अस्तु.

सूखा रोग—

उपरोक्त शास्त्र के प्रमाण के अनुसार बाल तथा शोष के विषय में लिख चुके है। अब ५-७ पंक्तियों में एक शब्द चित्र उपस्थित है जिससे आप सूखारोग को समझ सकेंगे।

क्षीण काय, क्षीण मांस, शुष्क स्फिक (Hips), अस्थि कंकाल मात्र, आगे को बढ़ा हुआ पेट, सिर की अस्थियों को चमकाते हुए, अनाथ, उठने बैठने चलने में असमर्थ, नेत्र अन्दर को धंसे हुए, ओजहीन, उभरी हुई संधियों वाला, वर्णरहित

वचा तथा मन्द ज्वर युक्त, अग्निमांद्य से प्रपीडित किसी भी बालक को देखते ही अनायास मुख से निकल जाता है "इसे सूखा रोग है।"

यह हुई सूखारोग की एक साधारण रूपरेखा। यहां पर स्पष्ट कर दूं कि बालक कहने से हमारा तात्पर्य केवल ऊपर वय के अनुसार वर्णित क्षीरपा तथा क्षीरान्नदा से ही है उसके बाद अन्नदा को बड़ी आयु में हुआ शोष 'सूखारोग' की लोकोक्त परिभाषा में नहीं आ सकता।

सूखारोग और शास्त्र वचन [आप्तोपदेश] –

'सूखारोग' करके आयुर्वेद के वृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी में कोई नाम आया हो ऐसा मुझे ध्यान नहीं पड़ता तो भी वहां अलग अलग बाल रोगों का वर्णन दिया हुआ है जिनको देखकर हम इससे समन्वय कर सकते है। यहां कुछ का वर्णन करना प्रासंगिक है।

चरक–चरक ने बालरोग प्रकरण में नाभितुण्डी एव क्षीर दोषज आदि जिन बाल रोगों के विषय में लिखा है उनमें सूखारोग से किसी का तारतम्य नहीं बैठता।

सुश्रुत—यहा भी चरकोक्त बात ही पाई जाती है।

वाग्भट—जिन बालरोगो का वर्णन किया है उनमें बालशोष नाम के एक रोग का भी वर्णन है जिसका समन्वय हम सूखारोग से कर सकते है।

शार्ङ्गधर—सूखारोग से मिलते जुलते तीन रोग है। प्रथम गात्रशोष, दूसरा दौर्बल्य और तीसरा पारिगर्भिक।

माधवनिदान—पारिगर्भिक और क्षीर दोषज (विशेष रूप से वात दूषित) रोग सूखारोग के समन्वय में आ सकते है।

काश्यप–वास्तव में आयुर्वेद साहित्य में बालरोग विशेषज्ञ काश्यप आचार्य को माना जाता है और बालरोग विषयक साहित्य का प्रमाण भी काश्यप सहिता ही है। इसमें बालरोग प्रकरण में जो रोग मिलता है वह है फक्करोग।

इस प्रकार सूखारोग से सम्बन्धित कुछ आप्तोपदेशो के निर्देश स्थल ऊपर दिए है। यहीं एक शास्त्र नियम और बतादूं कि इनके अतिरिक्त दूसरे रोग भी बालकों को हो सकते हैं। माधव का वाक्य देखिए—

"ज्वराद्या व्याधय. सर्वे महता ये पुरेरिताः।
बाल देहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेया कुशलैरिहः॥"
—माधव निदान

इस वाक्य से चरक आदि में बालशोष का वर्णन न होने से उनमें कोई दोष नहीं आता—कारण यह है कि वहा शोष रोग का वर्णन तो आ ही गया है। अस्तु.

इन सब नामो से प्रचलित रोगों का युक्तियुक्त वर्णन किसी अन्य लेखक महोदय के लेख में विस्तार . .गा। हम यहा पर निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण आदि की विवेचना करेंगे।

निदान—

शोष किस कारण उत्पन्न होता है यह लिखना प्रथमावश्यक है। कारण की दृष्टि से यदि शास्त्र वचन देखे तो शार्ङ्गधर में उक्तरोग के समन्वय में आ सकने वाले तीनों पूर्व वर्णित रोगो की उत्पत्ति का कोई विशेष कारण नही कहा। माधव निदान में भी केवल मा के दूध को ही दोषी बताया है। पारिगर्भिक में गर्भिणी माता का दूध पीने से और वात दुष्ट स्तनपान करने से ही इस व्याधि की उत्पत्ति कही है। वाग्भट्ट का कारणों के विषय में एक दृष्टिकोण है लिखा है–

'अत्यहः स्वप्न शीताम्बु श्लेष्मिक स्तन्य सेविन।'
—अ० हृ० उ० अ० २

जिसके अनुसार बहुत अधिक सोने वाले, शीतल जल या कफकारक पदार्थ (दुग्ध) सेवी को होता है। और काश्यप सहिता में फक्करोग का निदान लिखते समय लिखा है—

धात्री श्लैष्मिक दुग्धा तु फक्कदुग्धेति सञ्ज्ञिता।
तत्क्षीरयो बहु व्याधि' कार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्॥
पित्तानिल प्रकृतिकी पटुक्षीरा पटुप्रजा।
कुत पगु जडा मूका त्रिदोष क्षीर भोजिन॥

इन वाक्यों के द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि धात्री के कफ दूषित फक्क कहलाने वाले दूध के सेवन से अथवा पित्त एवं वात दूषित दूध से यह रोग उत्पन्न होता है।

न केवल क्षीर दोष ही फक्क का कारण कहा है अपितु किसी को गर्भज फक्क भी हो जाता है। इनके अतिरिक्त भी व्याधि सम्भव फक्क करके तीसरी प्रकार का एक फक्क कहा है जिसका कारण निज और आगन्तुक ज्वरादि रोग है तथा—

'अतिविण्मूत्र दूषिका शिवाणकमलोद्भवा।
इत्येतै कारणैर्विद्याद्व्याधिजां फक्कतां शिशो॥'

कह कर अत्यन्त विण्मूत्र शिघाणक मलादि दूषण से बालक को व्याधिजन्य फक्क होता है।

निदान विषयक इतना वर्णन लिखकर इनके विषय में आधुनिक विज्ञान के वचन भी बता देना चाहता हूँ। यद्यपि किसी रोग विशेष को शोष नहीं कह सकते तो भी निम्न अवस्थायें हैं जिनका तारतम्य इस रोग से बैठ सकता है—

1. Rickets.
2. Coeliac Disease.
3. Wasting.

कुछ भी हो इस रोग का किसी नाम विशेष से चाहे समन्वय नहीं हो सके तो भी इन रोगो के निदान लिखना आवश्यक है कारण कि इनमें 'सूखा' होता है।

"रिकेट्स" के कारण बताते हुए हमें मानना ही होगा कि खाद्यौज डी और खटिक की अल्पता इसका साक्षात् कारण है। यह रोग प्रायः ६ मास से १८ मास तक के बालकों में मिलता है। इनकी अल्पता वास्तव मे ही क्षीरज दोष कहला सकती है और इस प्रकार हम समन्वय की दृष्टि से कह सकते हैं कि मा के दुग्ध मे इनकी अल्पता रहती है।

"सीलियक" रोग के लक्षणों को जिनको हम समन्वय से आगे लिखेगे देखकर हम कहेंगे कि यह भी सूखारोग ही है। इसके कारण को देखे तो पता चलेगा कि पाचन से विकार ही इसका कारण है। बालक की आन्त्रिक पाचन एवं शोषण शक्ति नष्ट हो जाती है और उसके साथ ही साथ यकृत् की कार्यक्षमता भी कम हो जाती है तथा क्लोम ग्रन्थि भी पूर्णतः क्रियाशील नहीं रहती, अतः जो आहार बालक खाता है उसको शरीर सहंनन में प्रयोग नहीं कर सकता।

"वैसटिंग" नामक अवस्था के कारण कुछ विशेष रोग है यथा यक्ष्मा, सहज फिरङ्ग, चिरकालीन श्वसनक ज्वर, गुप्त पूयोरस अथवा हृदय की सहज विकृति आदि। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखे आहार दोष एवं पाचन दोष भी कारण हैं। साथ ही साथ स्वाभाविक कारण (Idiopathic) भी कहा जाता है जो कि बालक के शरीर को सुखा देता है।

निदान वर्णित कारणों का उपसंहार करते हुये मैं कहूँगा कि सूखारोग के मुख्यत तीन कारण होते हैं—

(१) आहार विषयक—जिनमे क्षीरज दोष खटिक, खाद्यौज डी आदि तथा गर्भावस्था में पोषक तत्वो मे कमी आदि होते है।

(२) पाचन विषयक—आंतो की प्रणालीविहीन ग्रन्थियों की तथा यकृतादि की क्रियाओ के विका[र]

(३) रोग विषयक—जिनमे ऊपर वर्णित सह[ज] एवं क्षय आदि इस रोग के कारण होते हैं। स्वभा[व]िक भी इसी मे आ जाएगा।

सम्प्राप्ति—

'शिशो कफेन रुद्धेपु स्रोत· सु रस वाहिपु।'
—अ. ह उ. अ

अर्थात्—बालक की (उक्त दूषित) कफ के कार[ण] स्रोत एवं रसवाहिनियां अवरुद्ध हो जाती है

इस बात को बता रहा है कि इसके कारण [ज]ो शोप होता है वह अनुलोमक शोप होता है। कार[ण] यह है कि कफ के द्वारा स्रोत एवं रसवाहिनियों [के] अवरोध से शरीर का पोषण क्रमश बन्द हो जा[ता] है और रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस सम्प्राप्ति को देखते हुए मानना ही हो[गा] कि कफ के द्वारा ही रसवाही स्रोतो का अवरोध [होता]

जाता है। आंतो मे भी श्लेष्मा के कारण शोषण मे रोध रहता है अत. पाचन न हो सकने से शरीर को पोषण तत्व नहीं मिल सकते। आधुनिक 'सीलीयक' रोग भी इसी में आ जाता है क्योंकि उसमें भी आंत्र अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं करती। इस रोग की विकृति बताते हुए श्री . चीडिल ने लिखा है कि यकृत् का कार्य सुचारु न होने से पित्त (Bile) का निर्माण कार्य उचित नहीं होता अतः पाचन में बाधा पडती है।

"रीकेट्स" की सम्प्राप्ति को देखे तो पता चलता है कि खटिक एवं स्फुर लवण (Calcium & Phosphorus) की आवश्यकता अस्थि निर्माण में होती है और इनका सात्मीकरण करने के लिए खाद्यौज डी की भी आवश्यकता होती है। जब रक्त में इन दोनों की कमी हो जाती है तो अस्थियों के विकास स्थानों से सेले बड़ी अनियमित रूप में पडी रहती हैं। लम्बी अस्थियो के सिरे स्थूल हो जाते हैं। अस्थियो मे खटिक की जितनी मात्रा मिलनी चाहिए उससे आधी मिलती है और इसी कारण अस्थि-मार्दवता तथा अस्थि-वक्रता मिलती है।

जिन बालको को किसी रोग विशेष के कारण शोष रोग होता है उनमे देखने में आता है कि उसके शरीर में धातुओ में क्षीणता आती जाती है और उस क्षीणता के कारण वह बालक शनै. शनै. सूखता जाता है। वास्तव मे रोगावस्था में दोनों प्रकार की सम्प्राप्ति मिलती है—प्रथम तो व्याधि के कारण क्षय की और दूसरे आहार आदि का शरीरागो मे न लग कर क्षीणता करने की।

लक्षण—

इस प्रकार मुख्य मुख्य परिवर्तन होते हैं—अस्थि निर्माण मे, पाचन संस्थान में एवं फुफ्फुस आदि अवयवों मे। अस्थि निर्माण मे अस्थिवक्रता तथा अस्थि मार्दवता, पाचन संस्थान में अतिसार वमन एवं आंतो का क्षोभ, यकृत् प्लीहा वृद्धि आदि होते है। फुफ्फुस में ग्रेसक (Cattarh) सा रहता है जो कास निमोनियां आदि का जनक होता है और इसीके कारण किसी किसी को राजयक्ष्मा हो जाता है।

अब इस रोग के लक्षणों को देखिये—

दुर्बलत्वम्। बालकस्य मतं बलहानिरित्यर्थं हतौजा इत्यपरे। —शार्ङ्गधर पूर्वखंड अ. ७.

और—

अनाथः क्लिश्यते बाल. क्षीणमांस बलद्युतिः।
मशुष्कास्फिचबाहुरुर्महोदर शिरो मुख ॥
पीताक्षो हृषिताङ्गश्च दृश्यमानास्थिपिञ्जर ।
म्लानाधर कायश्च नित्यमूत्र पुरीषकृत् ॥
निश्चेष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपिवा ।
दौर्बल्यान्मन्द चेष्टश्च मन्दत्वात्परिभूतकः ॥
माक्षिका कृमि कीटानाम् गम्यश्चासन्न मृत्युरुक् ।
विशीर्ण हृष्टरोमा च स्तब्ध रोमा महानख ॥
दुर्गन्धी मलिनः क्रोधी फक्क स्वसिति ताम्यति।

—काश्यप संहिता

अर्थात् अनाथ बालको को क्लेश होकर मांस बल और द्युति क्षीण हो जाती है। जिससे स्फिक् और बाहु शुष्क हो जाते हैं, उदर आगे को बढ़ जाता है और शिर एवं मुख भी बड़े हो जाते हैं, पीले नेत्र और क्षीणाग हो वह अस्थि पञ्जर मात्र दिखाई देता है। अधोकाया मलिन रहती है जिस का कारण नित्य किये गए मल-मूत्र की स्वच्छता का अभाव है। अधोकाया हाथ तथा जानु भी चेष्टाविहीन हो जाते है। दौर्बल्य, मन्द चेष्टा तथा सुस्ती के कारण माक्षिका कीट कृमि आदि पास जा कर (Secondary Infection) आसन्न मृत्युकारी रोग कर देते है। रोगी के रोम विशीर्ण हृष्ट तथा स्तब्ध रहते है। नख बढ़ जाते हैं। दुर्गन्धि आती है, मलिनता बढ़ जाती है और वह क्रोधी हो जाता है। तथा विशेष प्रकार से श्वास लेता है।

Although not wasted the muscles are weak and flabby and the ligaments loose on account of softening of the bones and consequent bending of the spine and lowering of the diaphragm, the abdomen is protuberent, these being some what enlarged also The blood shows a moderate degree of hypochromic anaemia

—Majumdar

बिलकुल क्षीण न हुई अवस्था में जबकि मांस क्षीण एवं कोमल हो तथा मांस रज्जु शिथिल हो जाएं अस्थि मार्दवता के कारण से। रीढ़ के झुके होने से उदरच्छदा पेशी के नीचे आ जाने से उदर का बाहर निकलना तथा यकृत् एवं प्लीहा का स्पर्शलभ्य होना पाया जाता है जो कुछ बढ़े होते हैं। (इन सब का अर्थ हुआ कि महोदर रोगी होगा) रक्त परीक्षा से पता चलेगा कि मध्यमावस्था की रक्ताल्पता है। उसके नेत्र "पीताक्ष" होंगे जो ऊपर काश्यप जी ने कहा है।

"The Rib ends are the first to show the enlargement at their junctions with the Costal Cartilages and thus produce an appearence of beeding the 'Rickety-rosary.'

—Savill

अर्थात्—सर्वप्रथम पसलियों की अस्थिया तरुणास्थियों के संयोग स्थल पर उभार दिखाती है। और इस तरह एक अस्थिपञ्जर की सी शक्ल दिखाई देती है। अस्तु

आए दिन चिकित्सार्थ आने वाले बालकों को देखते समय उपर्युक्त रूप को जान कर निदान करना सहल है और लगभग सभी लक्षण ऊपर के वर्णन में आ भी गए है तो भी इन सभी का तथा कुछ नित्य दीखने वाली अवस्थाओं का वर्णन नीचे देता हूं जो इस व्याधि के निदान करने में सहायक होंगे। मै यहां उनके वर्णन करने के लिए दो भाग कर लेता हूँ प्रथम लक्षण तथा दूसरे चिह्न।

लक्षण (*Symptoms*)–

रोगी बालक के अभिभावक का कहना होता है कि कुछ दिन से निम्न बाते हो रही है—

१. स्वभाव—इसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है (क्रोधी) हर समय सुस्त एवं ग्लानियुक्त रहता है तथा तब से ही यह 'सूखता' जा रहा है।

२. पाचन—इसकी भूख कम हो गई है (किसी किसी को भूख अधिक भी लगती है) और यह दूध आदि नहीं पीता तथा पिला भी दिया जाए तो कुछ समय मे ही वमन कर देता है।

३. मलत्याग—इसे दस्त लगते है और पतले फटे फटे कई कई बार पुनः पुनः मल त्याग करता है।

४. मानसिक अवस्था—इसको बेचैनी अनुभव होती है ठीक प्रकार से नींद भी नहीं आती और रात को यह कपड़े उतार उतार कर फैंकता रहता है तथा माथे पर पसीना आता है।

५. सहायक लक्षण—(प्रायःकर) इसका शरीर गर्म रहता है, बार बार खांसी जुकाम होता है–फिर मिट जाता है और ५-७ दिन मे ही पुनः होजाता है।

यह सम्भाविक लक्षण मिलते है. कुछ में अन्य प्रकार के लक्षण भी दिखाई दे सकते है।

चिन्ह (*Signs*)–

जब बालक सामने आता है (प्रायः २ वर्ष तक का) तो हम पाते हैं—

१. आकृति—पीला रंग—हाथ-पांव एवं नितम्ब सूखे हुए, छाती की पशुर्कायें उपपशुर्काओं के संयोग-स्थल पर उभरी हुई, आगे से निकला हुआ पेट, चलने फिरने मे असमर्थ, निश्चेष्ट, मलिन आभा एवं प्रभाविहीन, हाथ लगाने से एवं बातचीत करने में भी चिड़चिड़ा (प्रक्षुब्ध) स्तब्ध तथा दुर्गंध युक्त होता है।

२. पाचनतन्त्र—पेट उभरा हुआ—तना हुआ तथा कुछ स्तैमित्य सा होता है। देखे तो उस पर सिरायें चमकती दिखाई दे सकती है। प्लीहा एवं यकृत शोथ युक्त, कठोर एवं स्पर्शलभ्य होते हैं। रोगी दबाते ही रो उठता है।

मल की परीक्षा की जाये तो प्रायः आमावस्था का मल होगा। स्नेहांश एवं दुग्धादि के छिछड़े उसमें पड़े होंगे, दुर्गन्धित तथा प्राय कर श्वेत वर्ण (कभी कभी हरे पीले वर्ण) का होगा।

३. कंकाल—यदि ऊपर से देखना आरम्भ करे तो कपाल चौड़ा होता है। पश्चात् कपालास्थि (*Occipital bone*) में विशिष्ट प्रकार की मृदुता मिलती है। उरः प्रदेश देखे तो वक्रास्थि माला (*Rickety Rosary*) और तत् कारण उत्पन्न

—शेषांश पृष्ठ २० पर।

बालशोष-हैतुकी विश्लेषण

श्री प्रो० वंशीधर जी तिवारी वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न
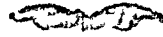
राजकीय आयुर्वेद कालिज-रायपुर के प्रोफेसर आदरणीय श्री तिवारी जी धन्वन्तरि के पुराने लेखकों में से हैं। लेखन शैली की सुन्दरता तथा गंभीरता आपके लेखों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रस्तुत लेख में आपने बालशोष के कारणों से सम्बन्धित विषय पर अच्छा लिखा है। आत्मसात् करने की ओर उन्मुख आयुर्वेदीय शैली निश्चय ही लाभकारक है। अपूर्णगर्भ को मुख्य दोषी ठहराते हुए कुछ सामान्य रूप की ओर संकेत किया है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

सूखारोग को सूकिया, बालशोष, अस्थिमार्दव, अस्थिवक्रता आदि नामों से पुकारते हैं। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ काश्यप संहिता में इसे फक्क रोग नाम से वर्णन किया है। चरक और सुश्रुत के समान ही काश्यप संहिता भी २५०० पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का ग्रन्थ माना जाता है। यह कौमारभृत्य का प्राचीन ग्रन्थ है। इस सूखा रोग (*Rickets*) को फक्क रोग नाम दिया है। माता का दूध कफ से दूषित होने पर उसे भी फक्क दुग्ध कहा है। और फक्क रोग में बालक को तीन पहियों की गाड़ी से चलने का अभ्यास कराने का उपदेश है। इस तीन पहिये वाली गाड़ी का नाम भी फक्करथ है। प्राचीन काल से ही भारत में शिशुओं को लकड़ी की तीन पहिए की गाड़ी से चलने का अभ्यास सिखाते हैं। यह रोग भी भारत में बहुतायत से पाया जाता है क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति आहार में पोष्टिक रस का अभाव अथवा विटामिन डी की कमी माना जाता है। इसी विटामिन डी का खानपान और अभ्यङ्ग रूप में उपयोग हितकारी है। भारत में मध्यम वर्ग का बड़े परिवार और श्रमिक बालकों में ही यह रोग विशेषतः पाया जाता है।

फक्क रोग प्राय. शिशुओं को ६ मास से ८ मास तक आक्रमण करता और तीन वर्ष की आयु पर समाप्त हो जाता है। कभी कभी बालकों में ६ वर्ष से लेकर १४ वर्ष के लगभग आक्रमण करता है। आहार में चर्बी या विटामिन डी की कमी के साथ ही शुद्ध प्रकाशयुक्त स्थान का अभाव और अस्वास्थ्यकर परिस्थिति भी माना है। रोग का कारण दैविक प्रकोप भी मानते हैं जो कि अंधविश्वास मात्र है। इसे संसर्गज (*Infectious*) मानना भी उचित नहीं है किन्तु अवस्था विशेष में यह छुआछूत से उत्पन्न हो सकता है। कुछ व्याधियों के परिणाम से भी यह संसर्गज होजाता है। पाश्चात्य चिकित्सा में इस रोग का कारण आहार में चर्बी की कमी तथा विटामिन डी का अभाव माना है अतएव इसकी पूर्ति के लिए काड नामक मछली का तैल खाने और अभ्यङ्ग के लिए प्रयोग करते हैं। काश्यप ने इस रोग के तीन कारण माने हैं—१. दुग्ध से २. गर्भज विकारों से और ३. रोगों से। माता का दूध शिशु के लिए पूर्ण आहार माना जाता है। कुछ मातायें अपने स्वास्थ्य की हानि के भय से अथवा बडप्पन के नाम पर अथवा फैशन (या सौन्दर्य) के नाम पर भी उपमाता (धाय) का दूध पिलाती है। धाय के अलावा गाय, बकरी या भैंस का दूध भी पिलाते हैं। माता या धाय का दूध वात, पित्त, कफ या त्रिदोष से दूषित होने पर शिशुओं को तदनुसार विकार उत्पन्न करता है। गर्भज विकारों में गर्भावस्था में अपरिपुष्टि पोषण अथवा अन्य गर्भावस्था की विकृतियां कारण है। इसी में अपुष्ट गर्भ, पूर्णकालिका गर्भ आदि भी सम्मिलित हैं। रोगज कारणों में ज्वर, क्षय, न्यूमोनियां, अतिसार आदि रोगों का परिणाम है।

मूल कारण—

बालक के स्वास्थ्य और दीर्घायु का मूलभूत आधार गर्भाशयस्थावस्था का पोषण है। इसमें माता पिता का स्वास्थ्य और उनका आहार विहार आदि सम्मिलित है। गर्भकाल ६ मास का माना गया है इससे पूर्व समय में उत्पन्न बालक अपुष्ट होता है और उसे सूकिया एवं अन्य भयंकर रोग होने का भय रहता है। इसलिए अपूर्णगर्भता (*Immatuie infant*) सूकिया रोग का प्रमुख कारण है। अपूर्णगर्भ विभिन्न आचार्यो के मत मे भिन्न प्रकार से माना जाता है—

१-युग्मशिशु (*twin*)—ये पूर्ण काल में होने पर भी प्राय: अपूर्ण और अपुष्टाङ्गवयव होते हैं इसलिये शीघ्र ही रोगाक्रांत हो जाते है और सावधानी से पोषण की आवश्यकता होती है।

२—पूर्णकालिक (४० सप्ताह) होते हुए भी विकारयुक्तधातु से दूषित होना।

३—माता पिता के जीर्ण रोग जैसे मधुमेह, टी. वी., योनि विकार और मूत्र विकार आदि से प्रभावित होना।

४—जन्मकालिक वजन (६ पौंड पूर्ण, ४½ पौंड से कम होना अपूर्ण) बहुगर्भता (बहुसतान) में प्रजननक्रम-प्रथमबालक पूर्ण हृष्ट पुष्ट और क्रमश: अपुष्ट।

५-गर्भझिल्ली अपूर्णता, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का प्रभाव जैसे असंवद्धित गर्भ (Illigitimate child), असुखोजीवन, परिजनहीनता आदि हैं।

अपूर्ण या अपुष्ट शिशु के लालन-पालन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। शिशु को प्रथम ६ माह तक प्रति पौंड शारीरिक वजन पर प्रतिदिन के हिसाब से २॥ औंस (लगभग ६ तोला=२८.५ मिलिग्राम) दूध की आवश्यकता रहती है अथवा उष्णशक्तिनामक केलोरी (Calory) प्रति पौंड शारीरिक वजन पर ५० अपेक्षित होती है। एक औंस माता के दूध मे २० केलोरी शक्ति रहती है और बच्चो के लिए प्राप्त होने वाले बाजार के जमे हुए सूखे दूध में पूर्ण मक्खनयुक्त मे १८ केलोरी तथा आधे मक्खनयुक्त दूध में १६ केलोरी होती है तदनुसार बाजार से सूखा दूध शक्कर मिलाकर देना चाहिए। एक चाय चम्मच शक्कर मे १५ केलोरी शक्ति होती है। इस मात्रा के अनुसार आहार नहीं मिलने पर बालक सूकिया रोग से ग्रस्त हो सकता है।

हेतु से लक्षणो की ओर—

अपूर्ण शिशु का शिर मृदु और बडा होता है। चेहरा पतला, लम्बा और नुकीला हो जाता है। आंखे और गर्दन भी छोटी होती है। उदर लम्बा होता है। नाभि कुछ नीचे होती है, रक्तवहन और श्वासोच्छवास मे कष्टता और अल्पता होती है। रक्तकण (Heamoglobin) ५०% से ६०% ही रह जाते है और ६ से १० सप्ताह मे रक्तालपता होकर शरीर में लौह और चूने की कमी हो जाती है। साथ ही विटामिन और खनिज लवण की कमी हो जाती है और फिर यकृत् वृद्धि, पांडु अथवा सूकिया का आक्रमण हो जाता है। अस्थियो में चूने धातु का भाग ६०% होना चाहिए किंतु इस रोग मे यह भाग छटकर ३० या ४०% रह जाता है। प्लीहा और यकृत् अथवा दोनो ही बढ़ने लगते है। मासपेशियां अल्पशक्ति और मृदु होने से भोजन रस का पूर्ण शोषण नहीं होता और मलबद्धता (Constipation) भी हो जाती है। यकृत्स्राव रसो से अधिक भोज्यस्राव रस का निस्राव होने से वह पचता नहीं है। इससे मस्तिष्क धातु पर भी बोझ बढ़ जाता है। इस तरह मस्तिष्क ग्रन्थि और मस्तिष्क केन्द्र पर प्रभाव होने पर कर्णबाधिर्य भी हो जाता है। गर्दन सीधी नहीं रख सकता और शिशु घुटने के बल रेंगता है। कमर झुकाकर बैठता है। महास्रोत (Alimentary cannal) और स्वाससंस्थान (Respiratory Svstem) की श्लैष्मिक कला का प्रकोप होता है। बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। उरु अस्थि (जांघ की Femur) झुक जाती है। बाहु

की अस्थियां भी अग्रभाग से कुछ आगे को झुक जाती है। दन्तोद्गम देर से प्रारम्भ होता है। सूकिया रोग के परिणाम से न्यूमोनियां (श्वास-पथ कला शोथ) हो जाता है और अतिसार (Diarrhoea) भी होता है। कश्यपसंहिता में भी प्रायः यही लक्षण दिये है। फक्क (सूकिया) रोगाक्रान्त शिशु अनाथ, क्षीणमासबल तेज वाला, निनम्बबाहू सूखा हुआ, उदर-शिर और मुख लम्बा, आंखे पीतवर्ण और अस्थिपञ्जर दिखाई देता है, शरीर का नीचे का भाग सूखा हुआ और म्लान, मलमूत्र की अधिकता, हाथ पैर और गला चेष्टा रहित या मद चेष्टा हो जाता है। शिशु पर मक्खिक, कृमि और अन्य कीटपतंगादि भी बराबर बैठते है। उसके रोम कृमिरहित और रूक्षित होते है। नख बढ़ जाते है। वह मलिन, क्रोधी और दुर्गन्धित होता है। श्वास कृच्छ्रता और नाक से तथा मुख से विकृत कफ का स्राव होता रहता है।

—श्री प्रो० बन्शीधर तिवारी आयुर्वेदाचार्य
राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
रायपुर (म० प्र०)

❀ पृष्ट १७ का शेषांश ❀

हैरीसन सल्कस मिलता है। पृष्ठ वंश (*Vertibrae*) कटि प्रदेश में उभर जाते है। पैरो की आकृति धनुष की सी होती है।

४. रक्त परीक्षा—रक्त मे रक्ताल्पता (*Hypochromic Anaemia*) के लक्षण मिलते है। रक्त मे फास्फोरस की मात्रा कम हो जाती है और फास्फेट्स की मात्रा बढी हुई दिखाई है। अधिक गम्भीर अवस्था (*Severe Case*) मे रक्त खटिक (*Blood calcium*) की मात्रा भी कम हो जाती है।

५. अन्य चिह्न—रोगी बालक को ज्वर रहेगा। प्रायः कर १०० से १०१ डिग्री तक रहता है। फुफ्फुस परीक्षा करने से फुफ्फुस प्रसेक (*Lung Cattarh*) के चिह्न मिलेगे। नेत्रो का वर्ण पीत होगा और वह अक्षि गुहा मे धंसे से होगे। जिह्वा की आभा मलिन होगी। त्वचा का वर्ण भेक वर्ण का मिलेगा।

उपसंहार—

ऊपर जो भी वर्णन किया है वह प्रत्येक सूखा रोग के रोगी के साथ घटाया जा सके ऐसा सम्भव नहीं। तो भी कारणो की दृष्टि से आहार विषयक, पाचन विषयक तथा रोग विषयक कारण पर्याप्त है और प्रायः कर किसी मे कोई, अन्य मे कोई इनमें से ही मिलते है। सम्प्राप्ति भी प्राय कर अस्थि कंकाल एवं पाचन तन्त्र मे परिवर्तनो की मिलती है तथा लक्षणो की दृष्टि से ऊपर वर्णित लक्षण एवं चिह्न *Symptoms and Signs*) रोग को पहिचान करने में अवश्य सहायक होते है।

—श्री शिवकुमार व्यास,
५, देवनगर, करौल बाग, नई दिल्ली

नेत्र रोगों की आयुर्वेदिक सरल

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

आंखों की ज्योति कैसे नष्ट होती है—

१—सुजाक या उपदंश माता पिता को होने से गर्भ मे ही आंखें नष्ट हो जाती है। ऐसे बच्चो का यह जन्म व्यर्थ चला जाता है।

२—वीर्यनाश करने से युवको की ज्योति क्षीण हो जाती है। असमय मे चश्मा लगाना पड़ता है और अन्धे बन जाते हैं।

३—अधिक धुवां लगने से प्रायः नारियो के नेत्र खराब हो जाते है। जिन्हे हाथ से भोजन बनाना पड़ता है ऐसे पुरुष भी पीड़ित होते हैं।

४—छायापट देखना या रात्रि मे जागना दिन मे सोना।

५—धूप मे घूमने से नेत्रो मे लाली आ जाती है।

६—चिन्ता शोक से सभी स्वास्थ्य खराब हो जाता है तब आखे भी।

७—महीन अक्षर, कम प्रकाश, अधिक तीव्र प्रकाश, बिजली के तीव्र प्रकाश मे पढ़ने से नेत्र ज्योति क्षीण हो जाती है।

८—उडद, घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थों के न खाने से।

९—असमय मे भोजन करने से, मलावरोध रहने से, वेग धारण करने से।

१०—लाल मिर्च, खटाई, उष्ण पदार्थ अधिक सेवन करने से।

११—सूर्य आदि अधिक चमकीला पदार्थ देखने से।

१२—कान मे अधिक गूथ (मैल) भरे रहने से नसो द्वारा आंख को खराब कर देता है।

१३—शिर पर उष्ण जल डालने से नेत्र ज्योति जाती रहती है।

१४—पैर या मुख पर असर आता है।

१५—आंखो मे अंजन या काजल न लगाने से मल संचय होता रहता है।

१६—आंखो मे धूल आदि जाने से और उनको न धोने से।

१७—बीड़ी, सिगार, चाय काफी आदि मादक पदार्थों का सेवन करने से।

१८—जुखाम, पीनस आदि होजाने से और उन का ठीक उपचार न होने से नेत्रों की ज्योति बिगड़ जाती है। अतः उक्त कारणों को दूर कर चिकित्सा करे।

खाने की दवाइयां—

१—महात्रिफलादि घृत—१-२ तोला भोजन या दूध के साथ ३-४ मास खाने से नेत्रो की निर्बलता दूर हो जाती है, चश्मा लगाना छूट जाता है। प्रायः सभी नेत्र रोगो मे इससे लाभ होता है।

२—त्रिफला चूर्ण—आधा या एक तोला २-४ रत्ती सेधा नमक मिला कर खाने से उदर का मल संचय दूर होता रहता है। जब रेचन की आवश्यकता न हो तब ६ माशा मधु से ले या ६ माशे घी, १ तोला मधु मे मिला खिलावे इसके सेवन से नेत्रों के हर रोग मे लाभ होता है। रोगानुसार ३ से ३० दिनो तक सेवन करना चाहिए।

३—आरोग्यवर्धिनी वटी—२-३ गोलियां उष्ण जल से लेने से प्रायः १ टट्टी आती या नहीं भी आती है। अधिक दस्त नहीं होते। इसके प्रयोग से उदर विकार चर्म रोग आदि दूर होते हैं। शरीर सुन्दर निरोग हो जाता है। स्वस्थ व्यक्तियों को भी खाना चाहिए। १-२ मास मे असर दिखाई

पड़ता है।

४—सप्तामृत लोह (च.द.) या सप्तामृत मांडूर १-२ माशा ६ माशा घी, १ तोला मधु से सेवन कर ऊपर से दूध पीने से शूल, नेत्र रोग अम्लपित्त शोथ वमन पाण्डु आदि विकार दूर होते हैं। स्वस्थ व्यक्ति को भी सेवन करना चाहिए।

५—स्वर्णयुक्त सारस्वतारिष्ट-द्राक्षासव २-२ तोला, सदुग्ध पीना निश्चय लाभकारी है।

६—शक्ति के लिए मकरध्वजवटी लेवे।

नेत्रो में डालने की दवाइयां—

१—गुलाबजल ३ तोला, फिटकरी का फूला १ माशा, रसौत १ माशा, कपूर २ रत्ती सबको मिला कर एक हरी शीशी में रखे और प्रतिदिन हिला दिया करे। नीचे अन्य द्रव्य बैठ जाने पर स्वच्छ दवा निकाल कर दूसरी शीशी मे करले; नीचे का कचडा फेंक दे। मलमल के साफ कपड़े से छान के फिर भी कुछ दिनो के बाद नीचे जो बैठ जाय उसे अलग करले। इस गुलाबजल की ४-४ बूंद आंखो मे ३ बार दिन मे डालने से लाली, पीडा दूर होती है। यदि नेत्रो मे मल सचय अधिक हो तो गुलाब जल के स्थान पर त्रिफला का क्वाथ लेकर प्रयोग बनावें। यदि पीड़ा अधिक हो तो १ रत्ती अफीम भी प्रयोग बनाते समय घोल दें। यदि जाला फूला हो तो १ रत्ती तूतिया प्रयोग बनाते समय मिलाले। तूतिया और अफीम की मात्रा अधिक न होने पावे यह ध्यान रहे।

वातज रोग—

२—एरण्डमूल छाल या पत्र स्वरस, कटेली स्वरस, सहिजन स्वरस, विल्वपत्र स्वरस, (अभाव मे क्वाथ) मिलाकर २ तोला, फिटकरी का फूला ४ रत्ती, सेंधानमक २ रत्ती। इनका घोल बनाकर छान ले। ऊपर की विधि से नयनो मे बिन्दु डाले।

कफज रोग—

३—सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, वासा, निम्ब इनका क्वाथ २ तोला मे न० २ के प्रयोग के समान अन्य द्रव्य डालकर प्रयोग मे लावे। इससे कीचड़ आना दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। खुजली, शोथ दूर हो जाते है।

पित्तज रोग—

४—द्राक्षा, मंजीठ, नीलकमल, महुवा के फूल, मुलहठी, लाल चन्दन इनका क्वाथ उक्त विधि से प्रयोग मे लावे। अन्य द्रव्य विवेचनानुसार मिलावे।

नेत्रो के अन्दर लगाई जाने वाली सूखी दवा—

१—नीला थोथा २ रत्ती, पीली हर्र का छिलका २ माशा, काली हर्र २ माशा, कपूर २ रत्ती, सेंधा नमक ४ रत्ती, फिटकरी का फूला ४ रत्ती, त्रिफला क्वाथ १ तोला, गुलाबजल २ तोला सब द्रव्यों को अच्छी तरह रगड कर सूखा महीन सुरमा सा हो जाने पर शीशी मे रखे। इसे सलाई से प्रति दिन लगाने से जाला, फूला, तिमिर, लाली, पीडा, पीलापन, कुकूणक, मलसचय आदि नेत्र के रोग ठीक होते है स्वस्थ व्यक्ति भी लाभ पाते है। विवेचनानुसार इसमे, दारुहल्दी का क्वाथ, एरण्डपत्र स्वरस १-१ तोला भी मिला सकते है।

२ सफेद सुरमा १६ माशा, पीपल, सफेद मिर्च, समुद्रफेन ८-८ माशे, सेंधा नमक १ माशा, फिटकरी का फूला १ माशा, कपूर ४ रत्ती। सबको सिरस के रस और त्रिफला क्वाथ की भावना देकर सुरमा जैसा बना रखे। यह सुरमा नेत्रो मे लगाना चाहिए। इससे नेत्रो की निर्बलता, न्यूनदृष्टि दूर होकर चश्मा छूट जाता है। पलाश अर्क या पुननर्वा अर्क की भी भावना देना गुणवर्द्धनकारी है।

नेत्र रोगों की चिकित्सा मे सावधानी—

आंखो मे लाली तथा पीडा होते ही प्रथम उपवास करना चाहिए। त्रिफलादि से १-२ विरेचन करा देना भी उत्तम है। यदि भोजन करे तो प्रात. ही करे, सायंकाल तक भोजन न करे। भोजन हलका, दूध, घी, चावल, गेहूँ का फुल्का, हलवा, फल और

उनके रस तथा मधुर पदार्थ अधिक लाभकारी है। ऐसा करने से भयानक रोग का भी शमन हो जाता है। अभिष्यन्द (आंख आना, आंख का टूटना) से ही आंख के रोग हो जाते हैं—दाने, रोहे, परवाल, जाला, फुली, माड़ा आदि। अतः आरम्भ से ही पथ्यपूर्वक रहना चाहिए। पूर्वोक्त नेत्र रोगो के उत्पन्न करने वाले कारणों को अविलम्ब त्याग देना चाहिए। नेत्रों मे वायु नहीं लगनी देनी चाहिए। हरे शीशे वाला चश्मा लगाना चाहिए। कानों मे रूई का फोहा लगाना चाहिए। अंगूठे में डोरा बांधना चाहिए। आंखें पीडित होते ही कोई भी तीक्ष्ण दवा अन्दर नहीं डालनी चाहिए। यहां जो प्रयोग लिखे गये हैं वे सर्व सुलभ अहानिकारी है। तुत्थादि की बत्तियों से दाने फोड़ते समय ध्यान रहे कि दानो से निकला हुआ पानी नेत्र गोलक पर न पड़े अन्यथा वहा घाव हो सकता है। इसलिए वहा रूई का फोहा रख लेना चाहिए। नेत्र पर अधिक सेक नहीं देना चाहिये। कफनाशक, उष्ण रूक्ष लेप पित्त नाशक, शीतल स्निग्ध लेप, वातनाशक उष्ण स्निग्ध लेप होता है। जो दवा अधिक लगती है उसे बालक नहीं लगवाते, अत. करंजादि वर्ति आदि का प्रयोग करना चाहिए। अधिक शूल होने पर खाने के लिए महा योगराज गुग्गुल, त्रिफला क्वाथ से दिया जा सकता है। मृदु विरेचन के लिये ३–४ तोला एरण्ड तैल शुद्ध, २–४ छटांक दूध से दें। २–३ टट्टियां हो जावेगो।

नेत्र शूल, शिरो शूलहर लेप—

पठानी लोध्र ६ माशा, गेरू ६ माशा, हरड़ पीली १ माशा, फिटकरी ३ माशा, पोस्त के डोंडे ६ माशा, अफीम ४ रत्ती, फिटकरी का फूला ३ माशा, सैंधानमक ४ रत्ती। सब द्रव्यों को एरण्ड पत्र स्वरस मे पीसकर आग पर गर्म करे, तरल ही रहने दे। इसको दिन मे २ बार पलको पर कनपटियो पर लेप करे। २–४ मिनटो मे अधिमंथ आदि शूल बन्द हो जाती है। यदि एक ओर शूल हो तो अर्ध मात्रा बनावें। इतनी मात्रा ५–७ बार के लिए पर्याप्त है। हरड़ गेरू निकाल कर भी प्रयोग किया गया है। एरण्ड पत्र स्वरस के स्थान पर अपामार्ग स्वरस या पत्र लेवे। अधिक उष्ण सहन नहीं होता। अधिक मोटा लेप भी सहन नहीं होता। अतः हलका लेप लगावे। अफीम न मिले तो अफीम के स्थान पर कपूर ८ रत्ती ले शेष द्रव्य ज्यो के त्यों।

चतुष्य द्रव्यों की विवेचना—

अफीम, रसौंत आदि पीडा शमन करते है। रक्त प्रसादन मे हितकारी है। शोरा, नौसादर, मैंनसिल, निर्मली, पीपल, सफेद मिर्च आदि फूला, कुकूलक, मांसवृद्धि आदि को दूर करती है। नौसादर और शोरा मास को पका देता है यह न भूले। निर्मली का प्रयोग अवश्य करते रहना चाहिए। यह भिलावा की तरह नेत्र को स्वच्छ रखती है। गुलाबजल, एरंड पत्र स्वरस आदि रक्त संग्रह को दूर करते है। गुलाब जल स्थानीय उष्णता को शमन करता है। एरंड पत्र स्वरस वातशामक शूल हर है।

फिटकरी—रक्त रोकती है। घाव मे लगती है। यह ध्यान रहे कि नेत्र मे घाव होने पर फिटकरी का प्रयोग न करे। नौसादर, सोडा भी न डाले।

सफेद पुनर्नवा की जड—मधु मे घिसकर सदा प्रयोग करना चाहिये। इसी तरह पलाश का अर्क भी डालना चाहिए। सोरा, लाल मिर्च, पीपल, काली मिर्च, सरसों का तैल, पान का रस, नीबू का रस आदि से नेत्र से अश्रु स्राव होने लगता है। ज्यादा आंसू गिराना ठीक नहीं।

स्वर्ण माक्षिक भस्म, यशद भस्म, त्रिफला आदि का प्रयोग आंतरिक उष्णता को शमन करने के लिये किया जाता है। कब्ज दूर करने मे त्रिफला का प्रथम स्थान है।

'त्रिफलाश्चोत्तनं नेत्रेसर्वाभिष्यन्द नाशनः।'

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
महदेवा, पो० अरौल (कानपुर)

दुष्ट प्रतिश्याय

श्री राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

वर्तमान काल मे यह रोग ८०% व्यक्तियो को देखने में आता है, और हमारे भारत वर्ष की जनता इस महाव्याधि से बहुत ज्यादा परेशान हैं।

निदान एवं सम्प्राप्ति—

संधारण जीर्ण रजोति भाष्य,
क्रोधर्तु वैषम्य शिरोभितापै।
प्रजागराति स्वप्नाम्बु शीतै,
रवश्ययामैथुन वाष्प धूमैः ॥
संस्त्यान दोषे शिरसि प्रवृद्धो
वायु प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु।
चयं गता मूर्धनि मारुताद्यः,
पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ॥
प्रकुप्यमानाविविधैः प्रकोपणै,
स्तत' प्रतिश्याय करा भवन्ति हि ॥

अर्थात्–वेग वारण, अजीर्ण, धूल, अति भाषण, क्रोध, ऋतुओ की विषमता, शिरोरोग, अथवा (शिर को कष्ट पहुचाने वाले धूम्रादि कारण) अधिक जागना अति सोना, शीतल जल, कोहरा, मैथुन, वाष्प एवं धूम्रपान का सेवन इन कारणों से शिर मे वातादि दोषो का संचय होने पर वायु कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करती है तथा इसी प्रतिश्याय की उपेक्षा करने से अर्थात् अति गर्म खुश्क औषधियो का उपयोग करने तथा प्रतिश्याय काल मे अति मैथुन करने से धातुओं का क्षय होने के कारण दुष्ट प्रतिश्याय जैसी महा-व्याधि हो जाती है। वर्तमान समय मे सल्फाड्रग्स की औषधियां भी इस महाव्याधि को उत्पन्न करने मे सबसे ज्यादा कारण बन रही है।

लक्षण--

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति।
पुनरानह्यते वाऽपि पुनर्विव्रियते तथा ॥
निश्वासो वाऽति दुर्गन्धो नरो गन्धान् न वेत्ति च।
एव दुष्ट प्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्र साधनम् ॥

अर्थात्—नासिका बारम्बार गीली होती तथा सूखती है बारम्बार बन्द होती तथा खुलती है अत्यन्त दुर्गन्धित श्वास निकलता है और रोगी गन्ध ज्ञान नहीं कर पाता। इस प्रकार के प्रतिश्याय दुष्ट साध्य होते है।

चिकित्सा क्रम--

वमन, शिरो विरेचन, स्नेहन आदि कर्म यथाशक्ति करने चाहिये।

त्रिफलाम्बु प्रयोग–१ तोला त्रिफला को १० तो. पानी में पकाकर तथा उसमें थोड़ा सा नमक डाल कर नाक मे ऊपर चढ़ावे। इस क्रिया से वहुत लाभ होता है। यह क्रिया १-२ सप्ताह तक करनी चाहिए। तथा षडविन्दु तेल का दिन मे २-३ बार नस्य लेना चाहिए।

शयन काले शीत जल प्रयोग--

यः प्रिबति शयन काले शयना रूढः सुशीतलं भूरि।
सलिलं पीनस युक्तः स मुच्यते तेन रोगेण ॥
(चक्रदत्त)

प्रातः व सायं—चित्रक हरीतकी १-१ तोले गर्म जल से खाने से अच्छा लाभ होता है। तथा भोजन के बाद अगर १-१ तोला द्राक्षारिष्ट सम जल मिला कर और भी लिया जावे तो सोने मे सुहागा है।

अन्य योग—च्यवनप्राश १ तोला, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, स्वर्ण बसन्त मालती ½ रत्ती प्रात व साय गर्म दूध से सेवन करे। तथा ब्रह्मचर्य का पालन विशेष अनिवार्य है। और रोगानुसार निम्न योगों से चिकित्सा लाभ उठावे—

मृगाक रस, बसंत तिलक रस, महा लक्ष्मी-विलास रस, व्योषादि वटी, चन्द्रामृत रस, संजीवनी वटी, तथा मकरध्वज वटी आदि।

—श्री वैद्य राजेन्द्रप्रसाद शर्मा आयु. भास्कर
भारद्वाज भैषज्य भण्डार,
चिलकाना (सहारनपुर)

सूचीवेध चिकित्सा का वर्णन

डा० लल्लनप्रसाद गुप्त

भारतवर्ष मे हजारो वर्ष पूर्व से ही विद्वान वैद्य मांस, त्वचा एवं शिरा द्वारा रक्त मे बनस्पति औषधियों का सार भाग प्रविष्ट करके रोगियो को स्वास्थ्य लाभ देते रहे हैं। सूचीवेध आयुर्वेदिक चिकित्सकों के लिये प्राचीन-आविष्कार है। प्राचीन युग के प्रगति शील आयुर्वेद ज्ञाताओ ने जब देखा कि रोगो की कुछ ऐसी अवस्था होती है जब मुख द्वारा औषधि सेवन कराने से तुरन्त लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता, तब उन्होंने 'वस्तिप्रक्रिया' का सिद्धांत प्रारम्भ किया। वस्ति क्रिया के प्रयोग से सरलता पूर्वक सीधे आंतों में वनौषधियो का क्वाथ, जल, तैल, फलो का रस आदि पहुँचाकर शीघ्र ही रोगों पर विजय पाने लगे। इसका प्रयोग धीरे-धीरे मूत्रेन्द्रिय और गर्भाशय के रोगों पर भी होने लगा। यह प्रक्रिया भारतवर्ष मे करीब ४-५ हजार वर्षों से प्रचलित है। अन्य मतान्तर के चिकित्सकों ने एनीमा, ड्यूश और हुकना के नाम का रूप दिया। आगे प्रयोगों (*Experiments*) द्वारा आयुर्वेद विशेषज्ञों ने विचार विमर्श किया कि कभी-कभी इस प्रक्रिया से पूर्ण काम नहीं चलता। शरीर मे बढ़ा हुआ विकृत रक्त औषधि प्रयोग से तुरन्त शुद्ध नहीं किया जा सकता। उसी दशा में रहने से रोगी को प्राण से हाथ धोना पड़ेगा। अतः उस विकृत रक्त को अविलम्ब बाहर निकाल देना ही उचित है। इस लिये आयुर्वेद ज्ञाताओ ने शिराछेदन की रीति निकाली। सिरावेध द्वारा विकृत रक्त को निकाल देने से रोगी को तत्काल लाभ होने लगता है। यूनानी चिकित्सकों ने फस्त खोलने के नाम से इस प्रणाली को अपनाकर प्रचलित किया। हर समय यह अनिवार्य नहीं कि रक्त दूषित होकर सदा अधिक मात्रा मे रहे, वह खराब होकर क्षीण अवस्था मे भी विद्यमान रह सकता है और वह क्षीण रोगियो के लिये प्राण घातक हो जाता है। ऐसे कमजोर रोगियों के लिये सिराछेदन या फस्त खोलना प्राणघात कर देता है क्योंकि अधिक रक्तस्राव से हृदय गति बन्द हो जाती है। इसलिये आयुर्वेद विद्वानों को ऐसी युक्ति के आविष्कार करने की आवश्यकता हुई जो रक्त में सीधे पहुंच कर अपना कार्य सरलतापूर्वक कर सके। मस्तिष्क (शिर) के ब्रह्मरन्ध्र के स्थान को तेज चाकू से साफ कर या काग के पञ्जे के सदृश नाम की सूई की नोक के सदृश, तेज सूई लगे हुए कागपद यन्त्र से खरोंच कर जिससे उस स्थान पर रक्त प्रवाह हो जाये, फिर उस जगह पर क्षारोदकयुक्त औषधियो या सत्व एवं अन्य तत्काल क्रियाशील तत्व युक्त औषधि मलने और रक्त मे उसे प्रवृष्ट कर सर्पदंश विष, बेहोश और त्रिदोष ग्रस्त विष के कुप्रभाव से मरणासन्न रोगियो को प्राण दान देने लगे। इस सूचीवेध के आविष्कार का समय भी तीन हजार वर्ष पूर्व का है।

इसके पश्चात् रस तन्त्र की खोज करने वाले

विद्वानों के समय में नाना प्रकार के विषों, धातु, उपधातु एवं जड़ी बूटियों के रसायन प्रयोगों का अनुसन्धान हुआ। रस रक्त में मिश्रण करने के लिये और भी लाभप्रद और आशुगुणकारी प्रयोग, सूचीवेध ३०-३५ तरह के निकले। शार्ङ्गधर संहिता, वृहद योग तरङ्गिणी, रस प्रदीप, योग चिन्तामणि, रस प्रकाश सुधाकर, रसेन्द्र चिन्तामणि, धन्वन्तरि, रस सकेत कालिका, रसायन संग्रह (हस्त लिखित), रसराज सुन्दर, निघण्टु रत्नाकर, भैषज्य सारामृत संहिता, रसायन प्रकाश, वैद्य विलास, रसेन्द्र कल्पद्रुम (ह० लि०), टोडरानन्द, वामव राजीयम, रसेन्द्र रत्न कोष, रस कामधेनु योग महार्णव, रस कल्पलता (हस्तलिखित) योग रत्नाकर प्रभृति रस ग्रन्थो मे सूचीवेध का वर्णन है। इनमें जिस शीशी मे औषधि रहे उसके कार्क को न खोलने, वायु प्रवेश होने के लिये सावधानी रखना परम-आवश्यक है। सूई के नोक से औषधि प्रविष्ट करके शीघ्रता से अंगुलियो से रगड़ कर रक्त मे भली-भाति मिश्रण करने का विधान अंकित है। इस सूचीवेध से मूर्च्छित सन्निपात रोगी को रोग से मुक्त हो जाने एवं सर्पदंश से मरणासन्न मनुष्यों के प्राण बच जाने का वर्णन है। आयुर्वेद इन्जेक्शन कभी पकते नहीं थे और इनका प्रभाव शीघ्रता से होता था परन्तु कुछ ताप बढ जाने का भी वर्णन है जैसा कि आजकल इन्जेक्शन लगाने के बाद भी कुछ तापमान बढ़ जाया करता है। उस तापमान को दूर करने के लिये मधुर द्रव्यो के रस द्वारा सरल उपाय भी अंकित है जैसे आजकल भी ग्लूकोज (द्राक्षा शर्करा) का पानी उस ताप को ठीक करता है।

मालिन्द प्रश्न नामक एक पुस्तक मे गौतम बुद्ध ने जन्म से अन्धे बालक को फिर से नेत्र प्रदान करने की चिकित्सा के लिये अपने चेलो को कुछ औषधियों का, जो उसमे अंकित है, शिरा मे इन्जेक्शन देने का आदेश दिया है। उपरोक्त सूचिका-भरण में जो औषधियों है वे स्वयं कृमिनाशक है, इसलिये सूचीवेध के बाद शोथ, कोथ, पीड़ा, गांठ आदि उत्पन्न होना असम्भव था। आचार्य नागार्जुन ने १५० ई० में एक दो प्रकार की औषधियां निर्मित कीं, जो रक्त में ही इन्जेक्शन के रूप में दी जाती थीं। शरीर के विभिन्न अंगों में सूचीवेध द्वारा औषधियां प्रयुक्त की जाती थीं—मूर्धा, ब्रह्मरन्ध्र, नाभि, हृदय, तालु, तालुमूलम, नखान्तरम, जिह्वाग्र, दन्तान्तरम, शंखदेश, अंगुष्ठमूल आदि में। सूचीवेध निम्न रोगों पर सफलता के साथ प्रयोग होता था—सन्निपात, उन्माद, मृतावस्था, संज्ञानाश, अपस्मार, इन्द्रिय-वध, सर्पविष, प्रलाप, मल-मूत्र बन्ध, शीतांग, ऊर्ध्वश्वास, श्वास, स्मृतिभ्रंश, अरुचि, शीतस्वेद, कुब्ज, दृष्टिनाश, कम्प, धनुर्वात, दन्तग्रह, काम, भूतग्रह विषावस्था, हिक्का, मूर्च्छा, जिह्वाग्रह, क्षतजक्षय, उदर शूल, उदर, अर्श, शोथ, पाण्डु, कफविकार, मोटापा इत्यादि महाव्याधियों के लिए पूर्ण उपयोगी बतलाया गया है।

आयुर्वेद के मतानुसार स्वच्छतापूर्वक औषधियों को रख कर रक्त मे प्रवेश करना चाहिए और आधुनिक सिद्धान्त भी यही है। उस युग मे औषधि एक विशेष प्रकार की सूई द्वारा शरीर के अन्दर दी जाती थी और इस युग मे उसका स्वरूप बदल गया है और प्रतिदिन नये-नये तरीके की सिरिंज बन रही है। पहले सिरिंज लोहे की होती थी, इसके बाद रेकार्ड की बनने लगी, अब तो सम्पूर्ण शीशे की बनने लगी हैं। पाश्चात्य देशो मे पेरैरा (Pererra) ने सन् १८५४ मे औषधि को रक्त मे प्रविष्ट करने के लिये विचार किया और अपनी पुस्तके "दी एलीमेंट्स आफ मेटेरिया मैडिका एन्ड थेराप्युटिक्स (The elments of Materia Medica and therapeutics) मे शिरा मे इन्जेक्शन लगाने का वर्णन किया है तथा उसने सर क्रिस्टोफरवेन (१६६२) जिसने पहले पहल शिराओ द्वारा रक्त मे दवा प्रविष्ट करने का अनुभव किया था, उसका बोयले (Boyle) आदि अन्य विदेशी वैज्ञानिको ने भी वर्णन किया है तथा

अन्य लोगो की बड़ी बड़ी शंकाओ का स्पष्ट उत्तर देकर उनका भ्रम दूर किया है जैसे हवा का शिरा मे प्रवेश होने से भय और अधिक मात्रा मे औषधियो को शिराओ मे प्रविष्ट करना आदि। गेरियर ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आफ फार्मेसी" मे ५४ सी. सी. परवज द्वारा हाइपोडरमिक सिरिंज का निर्माण किया और अहिफेन (अफीम) के स्थान पर मारफीन का उपयोग करने का वर्णन सन् १८५५ ई० मे किया। चार्लस हन्टर (Charles Hunter) ने सन् १८६३ ई० मे "प्रैक्टीकल रिमार्क्स औन दी हाइपोडरमीकल ट्रीटमेंट आफ डिसीज (Practical remarks on the Hypodermical Treatment of disease) नामक पुस्तक लिखी, जिसमे उसने सूई द्वारा छिद्र किये गए जगह पर शोथ हो जाने तथा फोड़ा निकल आने की सम्भावना आदि प्रश्नो के प्रकाशित लेखो पर आरोप लगाते हुए उत्तर दिये। उस युग मे प्रायः त्वचान्तर्गत सब ही तरह के सूचिकाभरण से शोथ हो जाता था, परन्तु फिर भी किसी विद्वान ने औषधियो मे प्रयोग किये जाने वाले घोल को कृमिरहित करने का कोई संशोधन नहीं किया।

सन् १८६४ ई० के ब्रिटिश फार्मोकोपिया मे किसी भी सूचीवेध का नाम निशान तक नहीं मिलता, इससे निश्चित है कि उस काल मे सूचिकाभरण को कोई स्थान नहीं दिया गया था। सन् १८६७ ई० के फार्मोकोपिया मे सिर्फ एक मारफीन (अहिफेन सत्व) के सूचीवेध का विवरण देखने को मिलता है। १८८५ के फार्मोकोपिया मे एपोमारफीन (Apomorphine Hypodermica), अर्गोटिन (Ergotin), ये दो प्रकार के सूचीवेध और मिलाये गये। यहा वैज्ञानिक विशेषज्ञो की ओर से कोई भी प्रयास उनको कृमिरहित करने का तब भी नहीं किया गया। परन्तु बहुत ही विचार करने योग्य और मनबहलाव की बात यह है कि अर्गोटीन के इन्जेक्शन मे कर्पूर जल का उस औषधि को अधिक समय तक स्थाई रखने के लिये मिश्रण किया जाना बहुत ही उपयुक्त और आश्चर्यजनक था, क्योंकि अर्गोटिन एक वनौषधि एक्सट्रेक्ट है, उसमे कर्पूर जल मिलने से फुंगी आदि झाग पड़ना रुक जाता है। इसलिये इससे यह ज्ञात होता है कि दवा को ज्यादा समय तक न खराब होने के ही लिये कर्पूर जल का मिश्रण किया जाता था। उक्त अनुसन्धान और खोज-सूचीवेध के बारे मे इग्लैंड मे चल रहे थे पर अमेरिका भी उन दिनो चुप नहीं था। वहां के भी वैज्ञानिको के हृदय मे उत्साह था। अपने विज्ञान को उन्नतिशील करने की सद्भावना थी, अत उन्होने ही दवाओ को कृमिरहित करने का निश्चय इग्लैंड से पहले किया। सन् १८८४ ई० मे अमेरिकन फार्मोकोपिया ने अपने एक पृष्ठ मे सूचीवेध को कृमिरहित न करने की निन्दा करते हुए लिखा है कि औषधियो का त्वचान्तर्गत सूचीवेध खतरे का सूचक है। क्योकि सूचीवेध से उस जगह पर फोड़ा, विसर्प, जलन, पूय आदि उत्पन्न हो जाते है। सन् १८९८ ई० मे अमेरिकन फार्मोकोपिया मे एपोमार्फीन, कोकेन अरगोटक्सीन, मोरफीन इन चार सूचीवेध का अनुसंधान और कर लिया गया। सन् १८९८ ई० मे ही एम्पुलो और सूचीवेध के मिश्रण घोल को कृमिरहित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया, उन्होने परिश्रुत जल के स्थान पर कुछ समय तक पकाकर शीतल किए जल का प्रयोग किया जिससे उसमे विद्यमान कीटाणुओ का समूल नाश हो जाए तथा घोल को चिरकाल तक न बिगड़ने दिया। ऐसा करने के लिए उसमे '१५ % प्रतिशत फिनौल का मिश्रण भी किया गया। इससे बहुत ही सफलता मिली और सूचीवेध का पकना बंद हो गया। कुछ दिन पहले लार्ड लिस्टर ने भी फिनौल का प्रयोग पूय बनने से वन्द करने और जीवाणु नाश करने के लिए सफलतापूर्वक किया

—शेषांश पृष्ठ १०५३ पर।

ज्वर और उसकी अनुभूत चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

पित्तज्वर—

ज्वर का वेग तीव्र हो अतिसार (दस्त) हो नींद कम आती है वमन (कै) होती हैं, कंठ, होठ, पक जाते हैं—इनमे व्रण हो जाते हैं, ज्वर के चढ़े रहते हुए भी बीच-बीच मे पसीने आते रहते हैं, विशेष कर छाती-माथे (स्वेद पसीने) झलकते हैं। मुंह का स्वाद कड़वा-नीम जैसा या चरपरा हो जाता है। नेत्र, मूत्र, और मल का रग पीला हो जाता है (कामला और पीलिये मे मल पीला नहीं सफेद रहता है।) थोड़ा भी प्रयत्न करने पर आंखो के आगे अंधेरा सा आकर मूर्च्छा-बेहोशी सी आने लगती है, चक्कर आते है। तीव्र पित्तज्वर मे वात का संसर्ग हो जाने पर प्रलाप-बकना भी हो जाता है। तीव्र पित्तज्वर के लक्षण प्रायः सन्निपात ज्वर जैसे ही होते है, जिससे रोगी के घर वाले घबड़ा जाते है, परन्तु पित्त ज्वर के लक्षण थोड़ी देर रहते है, सन्निपातज्वर की तरह लगातार कई दिन तक नहीं टिकते। ये सब लक्षण सब ही रोगियों मे भी नहीं होते। किसी मे कम किसी में कुछ अधिक इन लक्षणो मे से किसी रोगी मे कुछ होते हैं। किसी-किसी रोगी के शरीर पर रक्त कोठ (ददोरे) आदि भी हो जाते है। रोमान्तिका (कसूमी माता) भी निकल आती देखी गई है।

चिकित्सा

बिना ऊष्मा (गर्मी) के ज्वर नहीं होता तथा गर्मी बिना पित्त के नहीं होती है। इसलिये सब ही ज्वरो मे ऐसे सब ही कार्य त्याग देने चाहिये जिनसे पित्त या गर्मी बढ़ती हो। खासकर पित्तज्वर मे तो ऐसी सारी ही बातो को दूर से नमस्कार कर देना बहुत ही आवश्यक है।

पित्तज्वर मे रोगी को ऐसे शीतल कमरे मे रखना चाहिये जहां गर्म हवा के झोंके रोगी के शरीर पर न लगने पावें। खस-खजूर के पंखों से रोगी को धीरे-धीरे हवा करते रहना चाहिये। नीम या सिरीप की टहनी से हवा करने से पित्त का तेज घटता और रोगी को आराम मिलता है। पित्त ज्वर के रोगी के कमरे के दरवाजे पर नील या काले रंग के कपड़े का पर्दा डाल देने से कमरा शान्त हो जाता है। कमरे में तेज रोशनी होने से कमरे का ताप बढ़ जाता है इसलिये रोगी के कमरे में दीपक टिमटिमाता सा रखना चाहिये। मिट्टी के तेल का दीपक जलने से रोगी के कमरे की वायु विकृत हो जाती है। रोगी के कमरे मे अधिक लोगों को जमा न होने देना चाहिये। इनके वहां इकट्ठे होने से कमरे की आब हवा तो खराब होती ही है साथ ही उनकी बातों के कोलाहल से रोगी की शान्ति भंग होती है—उसकी नींद मे खलल आता है। इसलिये जब रोगी को नींद न आती हो, या रोगी बड़बड़ाता बकता, प्रलाप करता हो उस समय तो कमरे मे किसी को बोलने भी न दीजिये, रोगी के सो जाने से आधा रोग दूर हो जाता है।

जब ज्वर तीव्र हो-१०४°, १०५° डिगरी ताप थर्मामीटर बताता हो उस समय रोगी के सिर पर बादाम का तेल या गुलरोगन मलिये। निद्राकर तेल रोगी के सिरपर मलने से रोगी को नींद आ जाती है, ज्वर कम हो जाता है। यदि ज्वर और भी अधिक तीव्र हो तो रोगी के सिर पर आइसकैप (बर्फ की टोपी या थैली) रखिये। यदि थैली न हो तो कपड़े के दो टुकड़े बर्फ के ठंडे पानी मे भिगो निचोड़ कर रोगी के माथे-सिर पर रखिये। बर्फ न मिलने पर पानी मे कलमीशोरा मिला देने से पानी शीतल हो जाता है। बर्फ या जल का प्रयोग ज्वर के १०२° पर आ जाने पर बंद कर देना चाहिये। इसके बाद अरुण तेल या निद्राकर तेल लगाते रहे। वैद्यों और जन

साधारण को तीव्र नवीन या पुराण ज्वर में वर्फ या शीतल जल का प्रयोग करने से डरना न चाहिये। इसको सावधानी से करने से कभी कोई हानि नहीं होती यह हमारा निजी अनुभव है। और चरकादि ऋषियों ने ऐसा करने का स्पष्ट आदेश दिया है।

"मध्वारनालक्षीर दधि घृत सलिल सेकावगाहांश्च सद्योदाह ज्वर मयनयन्ति शीतस्पर्शत्वात् इति ॥"

मधु (शहद), कांजी, दूध, और जल ये वस्तुयें शीत स्पर्श (छीने-ऊपर लगाने से शीतलता पहुंचाने वाली) होने से लगाते ही दाह (जलन), ज्वर को कम करती है, इसलिये इन वस्तुओं का सेक (तराडा देना-धार बाधकर डालना, इससे तर की हुई पट्टी रखना) और अवगाहन (ये वस्तुये भरकर उसमे रोगी को बैठाना गोते लगवाना) चाहिये।

पैत्तिक ज्वर भी यदि नवीन यानी साम हो तो अवगाहन (जल मे बैठाना, गोते लगाना, सर्वाङ्ग स्नान) न कराना चाहिये। क्योकि आम रस कच्चा रस, शीतल-स्निग्ध होता है, पित्त मे मिल जाने से पित्त भी गाढ़ा हो जाता है। आम रस के पचाने के लिए उष्णता की आवश्यकता होती है। जल के शीतल स्पर्श से आम के पाचन मे रुकावट पड़ेगी। ऐसी दशा मे स्नान से ज्वर तो कम हो जायगा, बदन की जलन (गर्मी) मिट जायगी, चैन भी मालूम होगा पर थोड़ी देर बाद ज्वर और भी तेज होगा ज्वर ठीक होने मे अधिक समय लगेगा। ऐसी दशा मे भी जल या बर्फ का स्थानीय प्रयोग (थोडी सी जगह मे प्रयोग करना) हानिकारक नहीं है। शास्त्रो ने इसकी एक विधि यह लिखी है—

"उत्तान सुप्तस्य गम्भीरताम्रकांस्यादि पात्र विनिधायनाभौ तत्राम्बु धारा वहुलापतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीला।

चित्त सोये हुये रोगी की नाभि पर एक गहरा तांबे या कॉसे आदि धातु का वर्तन रख, उसमे शीतल जल की धार डाले तो ज्वर के दाह को तुरन्त शान्त करती है। हमने स्वयं बहुत से रोगियो मे इस विधि को प्रयोग कर देखा है। इससे ज्वर १०-१५ मिनट मे कम हो जाता है। हमने कटोरे मे वर्फ रखाकर यह क्रिया की, बड़ा लाभ हुआ। कभी हानि होते नहीं देखी।

यदि जीर्ण पैत्तिक ज्वर (पुराना पित्त ज्वर) हो या 'तापात्यय' (अधिक तेज अग्नि सामने या सूर्य की किरणो मे-तेज धूप मे काम करने से हुए तीव्र ज्वर) मे ज्वर, दाह अधिक हो तो इसमे शीतल वस्तुओ के लेप के अतिरिक्त शीतल जल से स्नान अवगाहन, परिषेक (तराड़ा) देना चाहिए। कमल, कल्हार के पत्तो को खाट पर विछा उस पर चन्दन, उशीर आदि शीतल जल छिडक कर रोगी को सुलाना और रेशमी वस्त्र उढ़ाना चाहिए। ऊपर से कमल के पत्तो के पंखे उशीर के पानी छिडके पंखो

:: पृष्ठ १०५१ का शेषांश ::

था। एन्टीसेप्टिक्स—सर्व प्रथम फिनौल (कार्बोलिक एसिड) का निर्माण लार्ड लिस्टर ने किया था। सन् १६१४ ई० के फार्मोकोपिया से ज्ञात होता है कि इस वर्ष मे सूचीवेध के विषय मे थोड़ी सी और भी उन्नति हुई है। इसमे निर्देश दिया गया है कि घोल निर्माण करते समय परिश्रुत जल को तुरन्त पकाकर शीतल करके प्रयोग मे लाना अनिवार्य है। इसके साथ साथ कुचला सत्व (स्ट्रिक्नीन) का सूचीभरण और भी प्रयोग मे लाया जाने लगा। सन् १६१६ ई० से सन् १६३२ ई० के बीच मे विविध प्रकार नेशनल फार्मोकोपियाओ ने कृमिरहित करने के बहुत से साधारण ढङ्ग निकाले और नाना प्रकार के सूचीभरण का निर्माण किया। अब आप अपने प्राचीन ग्रन्थो मे देखिये। आपको भारतीय विद्वानो के सूचीवेध सम्बन्धी- ज्ञान के विषय मे जानकर आश्चर्य होगा कि आयुर्वेद मे सूचीवेध का प्रयोग कई हजार वर्ष पूर्व से होता चला आ रहा है।

—श्री डा. लल्लनप्रसाद गुप्त
जलालपुर, (जौनपुर)

से हवा करनी चाहिए। इन क्रियाओ से बड़ा लाभ होता है।©

जब ज्वर तीव्र हो, तो एक साफ सफेद कपडा लेकर उससे हथेली की ओर से अंगुलियो की ओर पोंछे, ऐसे ही पैरों को भी लगातार ४ व्यक्तियों द्वारा चारों हाथ पैरो का पाशोया करने से ज्वर कम हो जाता है। रोगी चैन से सो जाता है।

पटोल पत्र, चन्दन, उशीर, सोंठ इन सब चीजों को ६-६ माशा लेकर आठ गुने पानी में औटावे। जब चौथाई रह जाय तो छानकर मीठा (शक्कर) २ तोला डालकर ठंडा कर पिलाने से पित्तज्वर दूर हो जाता है।

धनियाँ २ तोले कूटकर शाम को आधा पाव पानी मे भिगोदे। प्रातः मसल छानकर उसमे २ तोला शक्कर मिलाकर पीने से पित्तज्वर और अन्तर्दाह (शरीर के भीतर की जलन) शमन हो जाती है।

ब्राह्मी शर्बत २-२ तोला लेकर पानी पिलाने से पित्तज्वर, लू का लगना, जी का घबड़ा जाना, गर्भ (हमल) का गिरना, मुह से रक्त का जाना, जी मिचलाना आदि दूर होता है। प्रयोग यह है—

शङ्खाहुली १ छटाक, नीलोफर २॥ छटाक, गाजवा फूल २ छटाक, फूल गुलाब १ छटाक, उशीर १ छटाक, सफेद चन्दन १ छटांक, गाजर ताजी आधा सेर, केवडा की वाल १ छटांक, वेद मुश्क १ छटांक, पेठा आधा सेर सब चीजों को कूटकर ६ सेर पानी में डाल दें। सवेरे भबके से २ सेर अर्क खीच लें। इस अर्क में १ सेर शक्कर डालकर पकावे। जब अर्द्धतारी चाशनी आजावे, उतार ले और छानकर एक बोतल में भरलें। मात्रा—१ तोला से ४ तोला तक।

हिंगुलेश्वर रस १ वटी, २ छोटी इलायची, पीस ब्राह्मी शर्बत में तीन बार चटाने से पित्तज्वर की उबकाई, कै आदि तत्काल दूर होते है।

प्रवाल भस्म १ रत्ती, शुक्ति भस्म १ रत्ती, इलायची छोटी २ नग पीसकर शहद ६ माशे मिलाकर चटाने से पित्त ज्वर में लाभ होता है।

निद्रा का तेल—

बादाम रोगन (तेल), गुलरोगन (गुलाब का तेल), रोगन खस-खस (पोस्त दाने का तेल), कद्दू का तेल प्रत्येक १-१ छटांक। सबको १ शीशी मे मिलाकर रखे और काम में लावे।

वंशलोचनादि चूर्ण—

वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने, सफेद चन्दन, धनिये की मिगी, कहरवा शमई दरयाई नारियल प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म पीसा हुआ चूर्ण ढाई-ढाई तोले, प्रवाल भस्म ६ माशे, अकीक भस्म १ तोला, भस्म जहरमोहरा सब्ज २ तोला, चांदी के वर्क १ तोला। सबको मिलाकर खूब खरल कर के शीशी मे बन्द रक्खे। मात्रा—१-२ माशा अनुपान शहद या ब्राह्मी शर्बत ६ माशे में मिलाकर चटावे।

इससे पित्तज्वर के सारे उपद्रव दूर होते है। पहिली ही खुराक प्यास, वेचैनी, वमन (कै होना), दस्त और हृदय के अधिक 'स्पन्दन' को ठीक कर रोगी को शान्ति प्रदान करती है।

अरुण तेल—शिरोमर्दन तेल—

शतावर २० तोले लेकर पीस ले और १ सेर

©हमने अपने बचपन मे—गर्मी की ऋतु मे आगरे के हकीमो को शिर पर सन्निपात ज्वर (सरसाम—जब कि जहरीले अबखरात उडकर दिमाग मे भ्रम पैदा करते है) में वर्फ रखाते और उसका उत्तम फल होते देखा है। उस समय मशीन की वर्फ का तो नाम भी नहीं था। यहा (मेरी जन्म भूमि में) सर्दी की ऋतु मे पानी को खुले मैदान में जमाकर वर्फ जमाई जाती थी। उस वर्फ को ईख की पताई से ढकवाकर जमीन के भीतर रखते थे। वे वर्फ असाढ तक रहती थी। इसी से कुल्फी-मलाई की वर्फ जमाई जाती थी। मुगलकाल से हिमालय से वर्फ नावों के द्वारा जमुना के मार्ग से आगरे मे आने के प्रमाण ऐतिहासिक ग्रन्थों म पाये जाते है।

पानी में ३-४ दिन भीगी रहने दें। फिर इससे १ सेर सरसों का तेल, अदरक कुचलकर निचोड कर निकाला हुआ रस ४ तोला, १ सेर गाय का दूध और नीचे लिखी औषधियों का कल्क (पानी में पीसकर चटनी की तरह बनाकर) मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें। जब सब पानी जल जाए तो उतार कर रखलें। इसमें २ तोला गुजराती रतन ज्योति रात को डाल दें फिर सवेरे छानकर रखले। कल्क चटनी की वस्तुऐं ये है—

सौंफ १ तोला, अगर १ तोला, बालछड़ १ तोला, लाल चन्दन, छार छबीला असगन्ध, काली मिर्च, वायविडङ्ग सैंधानमक प्रत्येक १–१ तोला।

यह तेल शिर में मलने से ज्वर को कम करता है। शिर दर्द, घुमेर और मस्तिष्क की गर्मी शमन करता है।

तिक्तादि चूर्ण—

सुहागा चौकिया अग्नि पर फुलाया हुआ १ तोला, फिटकिरी फुलाई हुई १ तोला, कलमी शोरा २ तोला, कुटकी चूर्ण कपडे में छना हुआ ४ तोला। सब चीजों को पीसकर शीशी में भरलें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती। गर्म पानी के साथ फका दें। दिन में ३ या ४ मात्रा ३-४ घन्टा के फासले से दें। यह हर प्रकार के चढ़े ज्वर को उतारता और आगे चढ़ने से रोकता है। पेशाब, पसीना लाता है, दस्त साफ उतारता है।

पथ्यापथ्य—

परवल, पेठा, खीरा, ककडी, करेला, अन्ड खरबूजा, खरबूजा, फालसा, नारंगी, सन्तरा, मौसम्बी, अनार, अनन्नास, बथुआ, चौलाई, सांठ के पत्ते, गिलोय के पत्ते, मूंग की दाल, गेहूं का दलिया, दूध चावल, चावल की लाई, मुनक्का, खीरा-खरबूजे के बीज, ये वस्तुऐं रुचि के अनुसार पित्तज्वर में हितकर है। मासाहारी लोग बकरी, लवा, चकोर का मासरस ले सकते है।

भारी, गर्म, दुर्जर (देर में पचने वाली) वस्तुऐं जैसे–उर्द की दाल, कठैर अरवी, काशीफल, बाजरा आदि न खाना चाहिये।

— श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
प्र० चि० जैन धर्मार्थ चिकित्सालय
कीठम (आगरा)

चिकित्सानुभव

अस्थिभग्न पर मेरा अनुभव

रोगी—नन्नू नाई, मु० भाहल, पो० भादसो (नाभा)। रोग—कीकर (बबूल) की फली तोड़ते समय पेड़ से गिरकर हड्डी टूट गई।

औषधि व्यवस्था -

गौ के गरम दूध में १ माशा शुद्ध शिलाजीत सूर्यतापी डालकर २ गिलासों में उलटे पलटे। रङ्ग चाय जैसा होने पर उसमें ११ बूंद हरिद्रा तेल तथा ११ बूंद गूगल तेल डालकर, थोड़ी चीनी मिलाकर, १ माशा स्फटिका का फूला खिलाकर ऊपर से उक्त औषधियुक्त दुग्ध प्रातःकाल पिलावे। तीन घन्टे तक खाना न खिलावे, बाद में मूंग की दाल से गेहूँ की रोटी खिलावे। इसी प्रकार सायंकाल के भोजन से तीन घन्टा पहिले दें।

नोट—यदि दवा गरमी करे तो मात्रा आधी कर दें।

अपथ्य—तैल, खटाई, अर्वी, कचालू, केला आदि अहितकर वस्तु न खावें। इस प्रकार औषधि लेने से १ माह में रोगी को लाभ हुआ। अस्थि-भग्न के लिये अत्युपयोगी है।

हरिद्रा तेल निर्माण विधि—

एक हांड़ी की पेंदी में बरमा से तर्जनी अंगुली जाने योग्य छिद्र करे। जमीन में एक गढ़ा बनाले जिसमें उक्त हांडी का निचला आधा भाग समा सके। उस गढ़ा में एक छोटा गढ़ा और बनावें जिसमें चीनी का ग्लास या अन्य पात्र रख सके। चीनी का पात्र रख उसके चारों ओर पतली कीचड़ भर दें। ऊपर से हांडी इस प्रकार रखे कि छिद्र चीनी के पात्र के मुख पर रहे। हांडी के चारों ओर मिट्टी दबा दबा कर भरदें। हांडी में एक सेर हल्दी की मोटी गाठें भर कर मुख पर सराब रख कपड़मिट्टी से मुंह बन्द करदें। ऊपर ५ सेर कंडे रखकर अग्नि दें। स्वांगशीत होने पर हांडी उठाकर चीनी के पात्र में हल्दी का तेल निकालकर शीशी में भरलें।

गुग्गुल तेल की निर्माण विधि—

एक बड़ा तौला या अन्य बर्तन को चूल्हे पर रखें। उस बर्तन के अंदर नीचे रेत की मिट्टी तीन पाव बारीककर बिछावें। उस मिट्टी के ऊपर ईंट का टुकड़ा रखकर उस पर चीनी मिट्टी का पात्र रखदें। चीनी पात्र के चारों ओर आधा सेर गूगल का चूरा मिट्टी के ऊपर बिछादें। गूगल के ऊपर रेतीली मिट्टी छानकर बिछाकर गूगल ढक दें। बड़े पात्र के मुंह पर एक और पात्र सीधा रखकर सन्धिबंधन करे। अब नीचे धीमी धीमी अग्नि पांच घन्टे तक दें। बाद में स्वांगशीत होने पर अन्दर चीनी के पात्र में एकत्रित गूगल का तेल निकाल लें।

—श्री पं० कृष्णदास शास्त्री,
खनौड़ा, पो० भादसों (नाभा)

पक्षाघात रोगी पर अनुभव

रोगी का नाम—रतनलाल आत्मज सुन्दरलाल आयु २४ वर्ष, निवास स्थल भयावाडीग्राम पो० शाहपुर, जिला बैतूल।

चिकित्सा आरंभ करने के पहले रोगी की अवस्था—अचेत तथा शक्तिहीन, बोलबन्द, चलना फिरना बंद, रक्ताभाव, स्नायुमंडल शिथिल। नाड़िका परीक्षा के बाद रोगी का हाथ दूसरे व्यक्ति द्वारा उसके घुटने पर लाया गया था। (स्वयं को यह ज्ञान नहीं।)

औषधि-उपचार—खाने की औषधियां नहीं दी जा सकती थी। अतएव सूचीवेध किया गया। स्वेदन क्रिया का सहारा लिया गया। कालान्तर में खाने की औषधियां दी गईं।

औषधि-व्यवस्था—स्नायुमंडल की शिथिलता को दूर करने के लिये नवोग्लक्स एवं यकृतशैथिल्य नाशक, जलीय अंश शोषक-रक्तउत्पादक उपचार हेतु अजादुग्ध-लहसन स्वरस युक्त दो दिन के अंतर से क्रमश. सूचीवेध द्वारा दिया गया। अर्क-पत्र से स्वेदन क्रिया की गई। महानारायण तैल अंग मर्दन हेतु दिया।

कालान्तर मे—प्रकुपित कफवातज विकार शमनार्थ महालक्ष्मीविलास रस का सेवन कराया गया। अत मे-रक्त उत्पादन हेतु सिद्ध मकरध्वज-लौहाभ्र मिश्रण का सेवन कराया।

परिणाम—रोगी पूर्ण स्वस्थ और अपने काश्तकारी कार्य मे सक्षम है।

नोट—रोगी विजयादशमी ५६ को बीमार हुआ था। २१ मार्च सन् ६० से उसका उपचार आरंभ किया। १५ अप्रेल सन् ६० को प्रथम बार जल मॉगा (जो कि १०-१०-५६ से नहीं बोला था)। ३०-६-६० तक रोगी का इलाज चला।

—श्री नाथूराम चोरसे वैद्य

आदर्श आयु० फार्मेसी, कोठीबाजार, वैतूल

आमवात के एक रोगी का वर्णन

रोगी का नाम—शिवनारायण व्यास, निवास-स्थान—कुडोली (छोटी खाटू), उम्र—४५ साल। रोग की अवधि—५ मास।

जब शिवनारायण व्यास मेरी चिकित्सा मे आया तब अनेक डाक्टरो से इलाज करा चुका था। वह इरगापायरिन (*Erghapyrin*) सिकलोपेन (*Seclopen*) जैसे बहुत से इन्जेक्शनो से अपने शरीर को बिन्धा चुका था। और निराश होकर आयुर्वेद की शरण की आशा लेकर मेरे पास आया। उस समय निम्न लक्षण थे।

(१) सन्धियो मे भयंकर पीडा व शोथ।

(२) कपड़े का स्पर्श होने पर भी अत्यधिक दर्द होना व करवट बदलने मे असमर्थ।

(३) निद्रा का नाश, भोजन मे अरुचि, श्वास में कष्ट, वक्षस्थल (छाती) मे भारापन, साधारण ज्वर;

औषधि—

सुबह, शाम महारास्नादि क्वाथ के साथ १½-२½ तोला एरण्ड तैल मिलाकर दिया गया तथा महानारायण तेल व निम्ब तैल मिलाकर शरीर पर मालिश की गई। तत्पश्चात् गर्म पानी से तौलिया भिगोकर शरीर को थोडा मला गया।

चार रोज बाद शरीर मे हलकापन, दर्द मे कुछ कमी, भोजन की साधारण इच्छा। चार रोज बाद इसी प्रकार उपचार करते हुए महारास्नादि क्वाथ के साथ एरण्ड तैल को न देकर महायोगराज गुग्गुल १-१ गोली दी गयी। वह मध्याह्न को चोबचीनी यादि चूर्ण १½,१½ माशा १२ बजे व ४ बजे दी गयी। २० रोज बाद शरीर मे साधारण दर्द मालूम होता था। रोगी चलने फिरने लगा। कमजोरी काफी मालूम हो रही थी। तब मैंने निम्न परिवर्तन किया—

(१) मल्लचन्द्रोदय एक रत्ती।
(२) मगशृंग भस्म तीन रत्ती।
(३) चौसठपहरा पीपर दो रत्ती।

प्रातःकाल तीनो को मिलाकर चीनी के हलवे के साथ दी गयी. ऊपर गाय का गरम दूध पिलाया गया। शाम को सोते समय इस उपरोक्त औषधि को दूध की मलाई के साथ देकर ऊपर से दूध दिया गया।

खाने के लिए हरी पत्ती की सब्जी गेहूँ की रोटी, दलिया, दध आदि सुपाच्य पथ्य दिया गया। इस प्रकार दो मास निरन्तर उपरोक्त दवा सेवन करते हुए शिवनारायण व्यास पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर चुके थे। वह अब कभी मुझे जब भी मिलते है। तो मे देखता हूं कि वो पूर्ण स्वस्थ है।

—श्री स्वामी कृष्णानन्द वैद्याचार्य,
जगजीवन औषधालय, लाडनूँ (राज०)

कतिपय क्वाथ

श्री शंभु कश्याज झा

पाषाणभेद, सागोन के फल, पपीते की जड़, शतावर, गोखरू, वरुना की छाल, कुश (डाभ) का मूल, चावल के मूल, पुनर्नवा, गिलोय, काम मूल, चिरचटा (अपामार्ग या पठकडा का मूल), ककड़ी के बीज समभाग, जटामासी, अजवायन खुरासानी बीज प्रत्येक २ भाग अधकुटा करके रख लेना चाहिए। १ तोला १६ तोले जल मे औटाने पर ४ तोला रहने पर छान कर ५ से १० रत्ती शिलाजीत या १० रत्ती यवक्षार मिलाकर पीवे (दिन मे ३-४ बार) हजरुल यहूद के साथ देने से अधिक लाभकारी है वृक्क की पथरी के कारण होने वाले दर्द मे लाभकारी है।

पथ्य नारियल का पानी, यवमण्ड, गन्ने का का रस, लौकी-ककड़ी-पाठा, कासनी की पत्ती, सकोय का शाक पथरी मे उक्त क्वाथ के साथ गुणकारी है।

कफहर क्वाथ

कायफल, पित्तपापड़ा, भारंगी, सौठ, नागरमोथा, देवदारु, धनिया, वासा, वच, मुलैठी, हरड, काकड़ासिगी, सब वस्तुऐ समभाग २॥ तोले क्वाथ ४० तोले जल मे औटावे। चतुर्थांश रहने पर मधु या शक्कर मिलाकर पिलावे। कास, श्वास, वातकफ, शीत मिटकर स्वास्थ्य लाभ होता है।

कफघ्न, दाहनाशक, वातानुलोमक, रेचक, वमन हिक्का, कण्ठ शोथ, वात कफज रोग मे हितकर है। कफ विलयै करने मे श्रेष्ठ है।

गोजिह्वादि क्वाथ

गाजवाँ, मुलैठी, सौफ, मुनक्का, अंजीर, उन्नाव, अडूसा वासा), जूफा, सपिस्ता (सूखा लसोडा), खाकसीर (खुबकला), हंसराज गुलबनफशा, [illegible] की जड़, भटकटैया, कालीमिर्च, ½ भाग सब वस्तुएं समान भाग लें। उपयुक्तता (प्रतिश्याय) श्लेष्मज्वर, खांसी श्वास, जिसमें कफ जमा हो गाढ़ा हो तो सरलता से निकलता है। कफज्वर में त्रिभुवन कीर्तिरस के साथ मकर ध्वज के साथ तृणार ५ रत्ती यवक्षार ५ रत्ती के साथ सेवन करें।

मूत्रविरेचनीय दशांग क्वाथ

विदारीकन्द, दाभ, गोखरू कुश, वसुक (अगस्ति), वसक, पटेला (गुन्द्र पटेर), पाषाण भेद, रक्त मूल, । समान भाग लेकर जौकुट करके प्रयोग करे। यथानाम तथा गुण—हृद रोग नाशक अश्मरीहर रक्तज शोथ मूत्राशय प्रदाह, शोथ, शुक्रग्रन्थि शोथ मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, अश्मरी तो टूक टूक होकर मूत्र द्वारा प्रवाह से बाहर आ जाती है।

वत्सकादि क्वाथ

कुडा की छाल, इन्द्रयव (कहीं पर दोनों और कहीं कोई १ वस्तु प्रयोग होती है) नीम, बेलगिरि, नेत्रवाला, नागरमोथा, सब समान भाग।

रक्तातिसार, शुलयुक्त, नवीन तथा पुराने रोग मे प्रयोग करे।

पटोलादि क्वाथ

पटोलपत्र, नागरमोथा, इन्द्रजौ, मुनक्का, देवदारू, मुलहठी, त्रिफला, गिलोय, वासा यथाविधि समभाग क्वाथ बनाकर मधु मिलाकर पिलावे।

सब तरह के ज्वर—संतत, तृतीयक, चतुर्थक, एकाहिक ज्वर, विषम ज्वर, दाहयुक्त ज्वर का नाश होता है। आम पाचक, मूत्रल, रेचक, शीतवीर्य, वात पित्त नाशक है।

प्रमेहहर क्वाथ

दारुहल्दी देवदारु, हल्दी, नागरमोथा, गिलोय खस, हर्ड का दल, लोध्र, बेहडा दल, श्वेत चंदन, आवला, कमल का फूल, पद्माख, गोखरू, पटोल,

१ तोला यथाविधि क्वाथ शहद के साथ नित्य २ बार दे। सब प्रकार के प्रमेह में अन्य योग के साथ या अकेला ही दिया जा सकता है।

तरुण्यादि क्वाथ

गुलाब के फूल १ तोला, सौंफ, १ तोला, मुनक्का २ तोला, तुरंज बीज (या मिश्री) १ तोला २० तोला जल में पकाकर ४ तोला शेष रखे। सवेरे लेने से दो तीन विरेचन हो जाते है। अमीर तबियत के लोगों के लिए भी उत्तम है।

तगरादि क्वाथ

तगर (असारून), कुटकी, पित्तपापड़ा, जटामांसी (बालछड), अमलतास का गूदा, असगंध, नागरमोथा, ब्राह्मी, मुनक्का, लालचन्दन, दशमूल, (मिला हुआ योग) शंखाहुली (कौडियाली) १ तोला १६ तोला जल मे यथाविधि क्वाथ करे। प्रलापक सन्निपात ज्वर में वृहत्कस्तूरी भैरव रस के साथ दें। यदि पतले दस्त आवें तो असलतास, कुटकी, मुनक्का का इसमें प्रयोग न करे। मै तो इसे *Typhoid* और *Typhus* में भी प्रयोग करता हूं। इसके साथ मधुरांतक वटी या कस्तूरी भैरव प्रयोग करता हूं।

मधुरान्तक वटी

तुलसी पत्र २ तोला, धनियाँ ½ तोला, गिलोय सत्व १ तोला, कासनी बीज ½ तोला, लौंग ½ तोला, इलायची ½ तोला, वंसलोचन, तुलसी के रस मे घोट कर उर्द के समान गोलियां बनानी चाहिए। म्यादी बुखारों मे मधुरा के विष को निकालती है। लक्ष्मीनारायण रस के साथ भी खतरे से बचाव हो जाता है। सगर्भा स्त्रियो, शिशुओं को ताप उतारने हेतु निर्भय हो कर दी जा सकती है। २ से ४ गोली १ समय में दे।

—श्री शेख फय्याज खाँ
विशारद आयु० शास्त्री ए० डी० एच०
भीनमाल (जालोर)

प्रमाणपत्र या उपाधि बोगस है या नहीं ?

हमको प्राय. पत्र मिलते रहते है कि—

१. अमुक उपाधि या अमुक प्रमाणपत्र दिला दीजियेगा, क्या खर्च होगा।

२. अमुक स्थान की अमुक उपाधि मान्य है या अमान्य।

३. अमुक संस्था को इतना रुपया देकर प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया है। रजिस्ट्रेशन करा दीजिये क्या व्यय होगा।

४. अमुक संस्था को इतना रुपया प्रमाणपत्र के लिये भेजा था। बाद मे अनेक पत्र लिखे लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता, क्या किया जाय।

इस प्रकार के पत्र प्राय और प्रतिदिन हमको मिलते रहते है। इन सभी प्रश्नो का उत्तर हमारा यही रहता है कि—

"कोई भी प्रमाणपत्र या उपाधि जो रुपया देकर प्राप्त की जा सकती है, एकदम बोगस और सर्वथा बेकार है। वह उपाधि आपका कोई कार्य पूरा नहीं करेगी तथा इसके विपरीत समय पडने पर आपको परेशानी मे डाल देगी।'

हमको ऐसे सज्जनो की बुद्धि पर तरस आता है जो रुपया देकर उपाधि प्राप्त करते तथा अपने को सम्मान्य चिकित्सक बन गए समझते है। ऐसे ही सज्जनो की अज्ञानता का लाभ कतिपय संस्थाओं के अध्यक्ष उठाते है और विभिन्न कल्पित विद्यालयों के प्रमाणपत्र भेजकर खूब पैसा पैदा करते है। सरकार भी इस प्रकार का अनैतिक व्यापार बन्द नहीं कर रही है या नहीं कर पाती है, यह कैसी विडम्बना है।

अञ्जीर और स्वास्थ्य

श्री डा० कुलरञ्जन मुखर्जी

संसार में जिन सब फलों ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की हैं उनमें अंजीर एक है।

इतिहास आरम्भ होने के पहले से ही लोग इसे बागानों में उपजाते आरहे है। भूमध्यसागर के देशों में यह हजारों वर्षों से लोगों का मुख्य आहार रहा है। ग्रीस में जौ के साथ साथ सूखा अंजीर ही निम्न श्रेणी के लोगों का एक प्रधान खाद्य है। दक्षिण यूरोप में यह गरीब लोगों का एक प्रमुख भोजन कहा जाता है और कभी कभी इसे रोटी के बदले में इस्तेमाल किया जाता है। अलजीरिया के कुछ भागों में प्रत्येक परिवार में इसकी औसतन १५०० पौंड प्रतिवर्ष की खपत है। इटली में भी अधिक परिमाण में इसका व्यवहार है।

उत्पादन की दृष्टि से क्रमानुसार स्पेन अलजीरिया इटली, टर्की, पुर्तगाल एवं ग्रीस में लोग बड़े पैमाने पर इसकी पैदावार करते हैं। अब तो अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका में भी इसे विस्तृत रूप से पैदा किया जाने लगा है।

साधारणतया इसमें साल में दो बार फल निकलते है। स्पेन में एक अंजीर का पेड जिसकी देख भाल अच्छी तरह हुई हो, १५० से २०० पौंड तक फल प्रतिवर्ष देता है।

अंजीर पैदा करने वाले देशों में शीतकाल में जबकि अंजीर इकट्ठा किया जाता है इसे जमा करने सुखाने तथा पैक करने के कामों के ऊपर बहुत से लोगों की जीविका चलती है।

अंजीर बेर के समान एक छोटा सा फल है। इसका रंग भूरा या लाल रंग लिये हुए बादामी रंग का होता है। इस फल में लगभग ८४ प्रतिशत गूदा, १६ प्रतिशत फल का बोकला तथा १.०२ से लेकर ६.४६ प्रतिशत बीज होते हैं।

फल मीठा और अति स्वादिष्ट होता है और ताजी एवं सूखी दोनों अवस्थाओं में खाया जाता है।

अंजीर पैदा करने वाले देशों में पके ताजे फल को एक स्वादिष्ट खाद्य समझा जाता है और इन्हें अक्सर क्रीम के साथ खाया जाता है। लेकिन सूखी अवस्था में ही ये फल संसार के बाजारों में बिकते हैं।

सूखे अंजीर में चीनी ही प्रधान तत्व है। सगूचे फल में यह ५१.४३ से ७४.२० प्रतिशत होता है। यह स्मरण रखने का योग्य है कि अंजीर में स्थित चीनी फल-शर्करा तथा डेक्सट्रोस से बनी हुई होती है। कुछ अंजीरों में तो डेक्सट्रोस ६० प्रतिशत तक होता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि अंजीर के फलों में श्वेतसार तथा इक्षु-शर्करा बहुत कम है। किसी किसी अंजीर में तो ये बिलकुल होते ही नहीं।

इसमें प्रोटीन ३.२८ से ५.१८ प्रतिशत, सीठी जातीय पदार्थ ४.७० से १०.१४ प्रतिशत और खनिज पदार्थ १.१५ से २.६५ प्रतिशत होता है। सूखे अंजीरों में बहुत से ताजे फलों से दो चार गुने मात्रा में अधिक धातु व लवण होते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि अंजीर स्वास्थ्य कायम रखने के लिए एक अच्छा खाद्य है और लम्बी बीमारी के बाद नष्ट हुए स्वास्थ्य को जल्द वापिस लाने में बहुत लाभ पहुचाता है। अंजीर में स्थित सहजपाच्य चीनी की प्रचुरता ने इसे एक शक्तिवर्धक खाद्य बना दिया है। पतले-दुबले लोगों को इसे खाने से बहुत अधिक लाभ पहुचता है। शक्तिशाली लोगों के लिये भी यह एक अच्छा खाद्य है। पुराने काल में ग्रीस के खिलाड़ी अधिक संख्या में अंजीर के फल प्रतिदिन वजन और शक्ति बढ़ाने के लिये खाया करते थे।

एक रेचक खाद्य के रूप में भी अंजीर का व्यवहार बहुत पुराने काल से चला आता है। अधिक परिमाण में सीठी रहने के कारण अंजीर को एक निर्भर योग्य रेचक खाद्य कोष्ठबद्धता दूर करने के लिये निर्दोष दवा जैसी माना जाता है।

विभिन्न तरीकों से अंजीर ग्रहण किया जाता है। बहुत लोग इसे ऐसे ही हाथ से लेकर खाते हैं। रोटी के साथ अंजीर खाने से बहुत लाभ होता है। दूध के साथ भी अंजीर का मिश्रण बहुत अच्छा होता है।

अंजीर को कभी कभी सिरप में रखा जाता है और अजीर से जितनी चीजें बनती हैं उनमें यह सबसे अधिक स्वादिष्ट होती है।

कभी कभी इन्हें कैक बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इससे बहुत स्वादिष्ट जैम प्रस्तुत होते हैं। जैम बनाने के पहले अंजीर के छिलकों को अलग कर लिया जाता है तथा छोटे छोटे टुकड़े कर चीनी के साथ इन्हें एक डेगची मे आधे घटे तक उबाला जाता है। जल न जाय इसके लिये इसे रह रह कर चलाना पड़ता है। जब यह गाढ़ा हो जाता है तो नीबू का रस इसमें छोड़ दिया जाता है और अन्त मे चूल्हे से उतार लिया जाता है। तब इसे गर्म बोतलों मे डालकर मुंह बन्द कर दिया जाता है।

अंजीर से बहुत अच्छा हलुआ भी बनाते हैं। सूखे अंजीर को कुछ समय तक जल में डुबाकर रखा जाता है। तब इनके टुकड़े कर लिये जाते हैं और दूध मे उबाल लिया जाता है। अंजीर के बीज जल्द ही इसमे गाढापन ले आते है। यह साधारण रूप से मीठा और स्वादिष्ट हो जाता है। थोडी सी भूरे रंग की चीनी या थोडा मधु इसमे मिला देने से अच्छा होता है।

सूखे फल का छिलका बहुत कडा होता है। इस लिये ठंडे पानी मे इसे १२ घंटे तक अक्सर डुबाकर रखा जाता है। इस प्रकार से भिगोया हुआ अंजीर अपने प्रारंभिक रूप में आ जाता है और खाने से जल्द हज्म हो जाता है। जब अंजीर को तरल पदार्थ में डुबाकर रखा जाता है तो इसका पौष्टिक गुण पानी मे आ जाता है। इसलिए पानी को कभी फेंकना नहीं चाहिए और सदा फल के साथ ही पी लेना चाहिये। अजीर को रात मे ही पानी मे भिगो देना चाहिए और सुबह इसे खा जाना उचित है।

कभी कभी इस तरह की शिकायत की जाती है कि सूखे अंजीर पेट या आंतों मे कुपित वायु पैदा करते हैं। पर अंजीर के कारण से ऐसा नहीं होता बल्कि इसे गलत तरीको से खाने से होता है। यदि अंजीर के छिलके एवं बीज अच्छी तरह से चबाकर खाये जांय तो ये भी कष्टकारक परिणाम नहीं पैदा होने देते।

डा० कुलरंजन मुखर्जी
११४-२बी एन्ड २ री हजारा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता—२६

मयूरशिखा

श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

'मयूरशिखा' वनस्पति सदृश कुछ द्रव्य पाए जाते है । यथा—Elephantopus-Scaber, Actinopteris-Dichotoma, Cleosia-Cristata. वास्तविक मयूरशिखा मैं राजस्थान (जिला झुंझनू) से लाया हू, जिसका कि परिचय यह है-प्राकृतिक वर्ग (*N. O.*) हंसपदी वर्ग (पोलियोडियेसी)

नाम—(Adiantum-Caudatum) (एडिएन्टम कोडेटम)

उत्पत्ति स्थान--पुरातन खण्डहरों मे, विशेषतः पार्वत्य प्रान्तो में प्राप्त होता है।

आकार--

(१) क्षुपक (Under-herb) वर्षायु (annual) और स्थलज (terrestrial) व हरित वर्ण का होता है। अपुष्पोद्भिज्ज होने के कारण इसे अपूर्णोद्भिज्ज (incomplete-plant) कहा जाता है। सुश्रुत ने इसे 'वनस्पति', शास्त्रीय वर्गीकरणानुसार कहा है।

(२) पर्ण (Leaf)-

(अ) पत्रवृन्त (Petiole)-मूल से २॥ इञ्च लम्वे, पतले, रक्ताभ रोमश, अभिमुख, पत्रवृन्त छोटे बड़े निकलते है। जो कि एक साथ निकलने के कारण काण्ड को अस्पष्ट, छोटा मोटा बनाते है।

(ब) पत्रफलक (Lamina)-पत्रवृन्तो के अत मे हरित मोरकी कलगी के समान सुन्दर पत्र होते है।

(स) पत्रक (Leaflets)-हरित, अग्रभाग पर स्थूल, संख्या मे ५-६ अर्थात् बहुदल (Multifoliate), अपर पृष्ठ हरित व नतोदर, अधर पृष्ठ श्वेताभ हरित व उन्नतोदर और भंगुर (Crustaceous) तथा मसृण सा होता है। इस प्रकार पत्र सदल (compound) होता है। पत्रक कुछ पुनः विभक्त भी होते हैं।

(३) मूल-रक्ताभ सूत्रवत् (Fibrous) मूलें

(४) अपुष्पा (Cryptogams)-

अफला होना स्पष्ट ही है। पुनरुत्पत्ति के लिये अलैंगिकी सन्तानोत्पत्ति मे पिष्ट सम परागो से युक्त, बीजकों (spores) से भरे सबीजक पत्र (sporophylls) माध्यम है।

उपरोक्त साधन को न बतलाने के साथ-साथ, मयूरशिखा के वर्णन मे कुछ सामयिक निघन्टुकारों ने पुष्प व फल की उपस्थिति या अनुपस्थिति को स्पष्ट नहीं किया है।

रस गुण पंचमहाभूत--

की उपस्थिति उत्तम-मध्यमावर के रूप मे देखिये

	गुण	रस	महाभूत
उत्तम	लघु	तिक्त	वायु
	रूक्ष	×	आकाश
मध्यम	कठिन	कषाय	अग्नि
	खर	×	×
अवर	विशद	मधुर	पृथ्वी
	सूक्ष्म	×	जल

वीर्य, विपाक, दोष प्रभाव –

मयूरशिखा के इस प्रकार है।

दोष		विपाक		वीर्य	
प्रभाव	कारण	कटु	कारण	शीत	कारण
वातकर	लघु, रूक्ष	तिक्त, कषाय रस की प्रधानता		तिक्त रस	
पित्तघ्न	तिक्त, कषाय				
कफघ्न	रूक्ष, लघु				

—शेषांश पृष्ठ १०६३ पर।

श्वास रोग या तमक श्वास

प्रोफेसर–गङ्गाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य।

फुफ्फुस की श्वासवाहिनियों मे आक्षेप होकर श्वास कष्ट का कारण होता है। यह रोग क्रमपूर्वक दौरे के साथ प्रगट हुआ करता है।

श्वास रोग के सम्बन्ध में विशेष विवेचन–

फुफ्फुस और श्वासवाहिनियों के एवं हृदय, मस्तिष्क और वृक्कादि के कितने ही ऐसे रोग हैं जिनमे श्वासकष्ट हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे शारीरिक एवं मानसिक रोग भी हैं जिनके कारण श्वास कष्ट असह्य हो जाता है। कितने ही भयंकर रोगो की घातक अवस्थायें भी ऐसी होती हैं जिनमें श्वासकष्ट हो जाता है। इसी प्रकार के लक्षणों मे माधवकर विरचित माधव निदान के महाश्वास, ऊर्ध्व श्वास, छिन्नश्वास, और क्षुद्रश्वासादि का समावेश होता है।

श्वासकष्ट किस किस रोग में या किस किस रोग की किस अवस्था मे किस प्रकार का होता है इस विषय का यदि पूर्णरूप से वर्णन किया जावे तो एक महान ग्रंथ तय्यार हो सकता है। जिसका वर्णन यहां अभीष्ट नहीं है। यहां तो केवल श्वास रोग जिसे दम्मा और ऐज़्मा या अस्थमा (Asthma) कहते है केवल उस ही एक रोग तमक श्वास का वर्णन करना है।

कारण—

माधवकर ने हिक्का, श्वास और कास तीनों रोगो के कारण एक साथ प्रतिपादन किये हैं। केवल डेढ श्लोक मे तीनो रोगो के कारण ऐसी सुगमता से और सक्षेप से बता दिये है जिससे अधिक आज की चिकित्सा पद्धतियों में कहीं भी नहीं मिलेगें।

> विदाहि गुरु विष्टम्भि रूक्षाभिष्यन्दि भोजनैः।
> शीतपानाशन स्थान रजोधूमातपा निलैः॥
> व्यायाम कर्म भाराध्व वेगाघातापतर्पणैः।
> हिक्काश्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते॥

विदाहि, गुरू, विष्टम्भि, रूक्ष और अभिष्यन्दि भोजन, शीतपान, शीत भोजन, ठंडा स्थान, धूलि धूम, धूप और शीतल वायु का सेवन, अधिक व्यायाम, अधिक भारवहन, वेग धारण समय पर, तर्पणीय पदार्थो का न मिलना इन कारणो से हिक्का श्वास और कास की उत्पत्ति होती है। इसमे विशेषता यह है कि वैसे तो उपरोक्त मिलित कारण हिक्का श्वास और कास तीनो के उत्पादक है। तथापि उन्होने जिस क्रम से वर्णन किया है उससे पता चलता है कि प्रथम अर्ध श्लोक मे वर्णित कारण यद्यपि तीनो रोगो के उत्पादक है तथापि विशेष रूप से हिक्का रोग के उत्पादक है। इसी प्रकार प्रथम श्लोक के द्वितीयार्द्ध भाग मे वर्णित कारण विशेष रूप से श्वास रोगोत्पादक और द्वितीय श्लोक के प्रथमार्द्ध भाग में वर्णित कारण विशेष रूप से कास रोगोत्पादक है। वास्तव में माधवकर ने इस प्रकार का संक्षिप्त और गंभीर वर्णन किया है जो वास्तव में कलात्मक है।

शीतल अर्थात् अत्यन्त शीतल वर्फ आदि का पान करना और इसी प्रकार के शीतलता विशिष्ट भोजन करना, ठंडे और सील वाले स्थान मे रहना, धूलि, धूवा, धूप, शीतल वायु का अत्यधिक सेवन करने से श्वासवाहिनियों में स्थित वायु अर्थात् वाततन्तु कुपित होकर वहा आक्षेप उत्पन्न हो जाता है। इसी का नाम तमक श्वास है।

यह रोग प्राय. वंशज हुआ करता है। पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को, प्रौढो की अपेक्षा वृद्धो को और युवाओं की अपेक्षा प्रौढो को विशेष होता है। इसके अतिरिक्त वालको को भी कंठ और श्वासनलिका प्रदाह, प्रतिश्याय, काली खासी और रोमान्तिका आदि के कारण हो जाया करता है। हृदय और फुफ्फुस के कतिपय-रोग, मस्तिष्क पर जोर पड़ना यथा-क्रोध, भय, शोक, चिन्ता, निराशा, गर्भाशय के कतिपय रोग, गर्भावस्था, अपतंत्रक और अपतानक वातरोग, वातरक्त, फिरंगोप-

दंश, आमाशय और आंत्रिक रोग, अजीर्ण और भोजन में अनियमितता आदि भी इस रोग के उत्पादक हो जाया करते है।

लक्षण —

इस रोग के पूर्वरूप में मलावरोध, आध्मान, खांसी और थोड़ा थोड़ा श्वास कष्ट होता है। इसके अतिरिक्त श्वेत रंग का मूत्र प्रचुर परिमाण में आता है।

श्वास का दौरा प्रायः अर्द्धरात्रि के बाद हुआ करता है मगर कभी कभी अचानक भी चाहे जिस समय हो सकता है। श्वास लेने में कष्ट, छाती भारी होकर अत मे श्वासकष्ट इतना बढ जाता हैं कि रोगी अत्यन्त बेचैन हो जाता है और छाती को आगे की ओर झुका कर श्वास लेने की खासते खांसते चेष्टा करता है। मुख मंडल रक्त वर्ण हो जाता है और रोगी बोल नहीं सकता। तदनंतर थोड़ा कफ खांसी के साथ निकल कर और पसीना आकर श्वास का आक्रमण दूर हो जाता हैं।

शरीर क्रिया सम्बन्धी लक्षण (physical siygns)—

छाती पर स्टेथिस्कोप यंत्र लगाकर सुनने से श्वासोच्छ्वास की ठीक ठीक आवाज सुनाई नहीं देती और उसके स्थान पर वंशीध्वनिवत् शब्द (Whisling Sound) सुनाई दिया करता है।

इस रोग का आक्रमण कभी कभी वीस या तीस दिन के बाद नियमित रूप से हुआ करता है और कभी अनियमित रूप से जैसे कभी एक मास बाद तो कभी पन्द्रह दिन बाद और २ मास बाद तो कभी १६ दिन बाद आक्रमण होते रहते हैं। इस रोग के आक्रमण की वैसे तो कोई अवधि नहीं होती है तथापि प्रायः १ मिनिट से लेकर दो घंटे तक इसकी अवधि मानी जाती है।

जिस श्वास रोग मे केवल श्वास वाहिनियो मे आक्षेप हो और कफ का संचय न हो तो इस प्रकार के श्वास को शुष्क श्वास कहते हैं। और जब श्वास वाहिनियों में आक्षेप के साथ कफ का संचय भी हो जाने के कारण श्वासकष्ट अधिक हो तो उसे श्लैष्मिक श्वास कहते हैं। इस प्रकार श्लैष्मिक श्वास यदि नवीन हो तो उचित पथ्य-पालन, संहित औषधि सेवन से दूर भी हो जाया करता है मगर यदि पुराना होजावे तो महान कष्ट साध्य होता है।

चिकित्सा -

इस रोग की दो प्रकार की चिकित्सा होती है। (१) श्वास कष्ट को दूर करना और आक्रमण काल की अवधि को घटाना (२) पुनराक्रमण को रोकना।

आक्रमण काल में—आक्रमण काल के पूर्वरूप मे मलावरोध, आध्मान, खांसी और श्वासकष्ट का जब अनुभव होने लगे तब तुरंत ही श्वास के आक्रमण को रोकने के लिए गर्म पानी, पोहकर मूल का फांट, गर्म चाय (चाय का फांट विना दूध और मीठे के) या थोड़ी सी मृतसंजीवनी सुरा या व्हिस्की थोड़े गर्म जल मे मिला कर रोगी को तुरन्त पिला देवे। इससे प्रायः श्वास का आक्रमण रुक जाया करता है। यदि भोजन के बाद रोग के आक्रमण की सम्भावना हो जावे तो तुरंत वमन करादें जिससे आमाशय खाली हो जावे और यदि मलावरोध हो वस्ति-कर्म करादें। आक्षेप को रोकने के लिए ऐमाईल नाईट्रेट का तीन बूंद का कैपशूल फोड़ कर रूमाल में डालकर रोगी को सुघावें या मार्फिया ½ ग्रेन और ऐट्रोपीन $\frac{1}{10}$ ग्रेन का पेश्यान्तर इन्जेक्शन दे। जब दम अधिक घुटने लग जावे और मुखमंडल लालिमायुक्त हो जावे तो फिर नाईटर पेपर जला कर उसका धूम्र दे। या धतूरे के पत्ते चिलम मे रख पिलावे या धतूरे का सिगरेट पिलावे या महायोगराज गूगल का धूम्र दे। यदि इस प्रकार के उपायो से आक्रमण रुक जावे तो ठीक है नहीं तो शोधित शिला ३ रत्ती, गोदंती भस्म ५ रत्ती, चतुषष्ठी पिप्पली ३ रत्ती—इस प्रकार की एक मात्रा तीन तीन घण्टे बाद मधु के साथ द अथवा श्वासकुठार रस ४ रत्ती और पोहकर मूल का चूर्ण ४ रत्ती मधु से दे। यदि खासी का वेग भी साथ मे हो तो खैरसार ४ रत्ती मधु से दे और

और ऊपर से १ चम्मच अद्रख का रस और पान का रस पिलाने या शृंगाराभ्रक, अद्रख और पान के रस अनुपान से दें।

विरामावस्था–विरामावस्था में औषधि प्रयोग से पूर्व निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

श्वास के रोगी को सायंकाल का भोजन ठीक सायंकाल में ही देना चाहिए रात्रि न होने दें और भोजन के उपरांत उसे ३ घंटे से पहिले न सोने दें। शीत से बचाये रखें। सील वाले स्थान में न रहने दें। मलावरोध, आध्मान और अजीर्ण पर विशेष दृष्टि रक्खे। भरपेट भोजन कदापि न दे। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार के आहार विहार से रोग का आक्रमण हो जाता हो उसे बिल्कुल त्याग दे। प्राय: रोगियों को शुद्ध अर्थात् जांगल देश का जलवायु अनुकूल पड़ता है अत: श्वास रोगियों को जांगल देश में जलवायु परिवर्तनार्थ भेज दें। मगर कतिपय रोगी इस रोग के ऐसे भी होते हैं जिन्हें शुष्क जलवायु प्रधान देश अनुकूल नहीं रहता। ऐसे रोगियों को ऐसे स्थानों पर ही भिजवा दे जहां का जलवायु उन्हें अनुकूल पड़ता हो।

यदि आमाशय विकार इस रोग का कारण हो तो उसकी चिकित्सा करे और यदि कोई नासा रोग, हृदय रोग या वृक्क रोग इसका कारण हो तो पहिले उसे दूर करे। कतिपय व्यवसाय जैसे रुई या आटे की चक्की का काम या संगतराशी आदि भी इस रोग के उत्पादक बहुधा हो जाया करते हैं। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के व्यवसाय त्याग देना ही उचित है। स्त्रियों मे गर्भाशय के रोगों के कारण भी श्वास रोग हो जाता है अत: उनकी चिकित्सा करें। सारांश यह है कि सर्व प्रथम हेतु विपरीत चिकित्सा पर पूर्णरूपेण ध्यान देना अत्यावश्यक है।

कभी कभी सगर्भावस्था में जब यह रोग हो जाता है तो प्रजनन के बाद ही उसमें आराम होता है पहिले नहीं।

औषधि व्यवस्था—

शृंगाराभ्रक ४ रत्ती प्रातःकाल खिलाकर ऊपर से आद्रक और पान का रस १ चम्मच पिला दें। तदनंतर शीतल जल का एक गिलास पिलादें। इसके तीन घंटे बाद जब खूब भूख लगे तब घृत युक्त आहार करें। इस प्रकार प्रतिदिन एक ही मात्रा ४० दिन तक लेते रहें अथवा २-२ रत्ती की २ मात्रा बनाकर प्रात: सायं भी ली जा सकती हैं। यह प्रयोग प्रति छै: मास बाद या १२ मास बाद करते रहने से अच्छा लाभ होते देखा गया है। अथवा—

शृंगाराभ्रक २ रत्ती, विषाण भस्म २ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती, रस सिंदूर १ रत्ती और च्यवनप्राश २ तोला सबको मिलाकर प्रात: सायं खिलावें और ऊपर से द्राक्षारिष्ट २ तोला पिलादे। यह प्रयोग भी पूर्ववत प्रति ६ या १२ मास के अनन्तर करते रहना चाहिए। अथवा—

व्याघ्री हरीतकी अवलेह (भैषज्य) १॥ तोला, अभ्रक भस्म १॥ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती, (यदि लौह भस्म सोमल योग से बनी हुई हो तो विशेष उपयोगी होती है।) परस्पर मिलाकर प्रात: सायं सेवन करें।

उपरोक्त चिकित्सा श्लेष्मायुक्त श्वास रोग में लाभ करती है। जिस श्वास रोग में श्वासवाहिनियों मे कफ का संचय न होकर केवल आक्षेप होता है जिसे शुष्क श्वास नाम से पुकारते हैं; उसके आक्रमणों को रोकने के लिये निम्नलिखित प्रयोग हम करते हैं जिससे बहुत कुछ लाभ होता है—

१—प्रात:काल वृहद्वातचिन्तामणि रस १ रत्ती, अनुपान मधु और ऊपर से गौ का गर्म दूध मिश्री मिला हुआ १ पाव मगर दूध अश्वगंधा और शतावरी डालकर क्षीर पाक विधि से तय्यार किया हुआ।

२—सायंकाल अमृतप्राश घृत या वृहत् छागलादि घृत मात्रा आधा तोला से १ तोला तक गर्म दूध में मिलाकर पीवे।

यह प्रयोग भी ४० दिन करके छोड़ देवें और बाद में ६-६ मास के अन्तर से पुन: पुन: करते रहें।

पथ्य—पौष्टिक और सद्य पचनशील भोजन।

अपथ्य—खटाई, नवीन गुड़, मिरच तथा अन्य विदाही और विष्टम्भी पदार्थ।

—श्री प्रोफेसर गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य
प्रधान–आयुर्वेद मंडल, भिवानी

ज्वर में होने वाले उपद्रव और उनकी चिकित्सा

श्री. सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

(२) मूर्च्छा

सन्निपात ज्वर में मूर्च्छा यदि ज्वर के तीव्रताप के कारण हो तो ताप को कम करने के लिये पहिले बताये गए शीतोपचार करने चाहिए। रोगी के मुंह और सिर पर खस आदि के शीतल पंखे की हवा करनी चाहिए। रोगी को शीतल सुगन्ध सुंघानी चाहिए जैसे—

(१) उशीर, सफेद चन्दन, धनियां, कपूर, गुलाब के फूल कूट पीस कर पोटली में बांध जल से तर कर रोगी की नाक के पास रखे। इससे ज्वर की तीव्रता, घबराहट कम होकर पित्त प्रधान मूर्च्छा दूर होती है।

(२) चन्दन, धनिया, कपूर ३-३, ४-४ माशे कूटकर एक शीशी में डाले। उसमें थोड़ा सा जल, नौसादर पिसा ४ माशे, चूना कलई ४ माशे डालकर शीशी का मुंह बन्द करदे और हिलाकर दो तीन सैकिण्ड रोगी की नाक के पास रखे। इस लख तखे के सूंघने से रोगी की मूर्च्छा शीघ्र दूर हो जाती है। परन्तु यह बात ध्यान में रखिए कि इसे अधिक देर तक कभी न सुंघाये।

(३) खाने को रोगी को प्रवाल पंचामृत रस शहद में चटावे।

(४) यदि सन्निपात में मूर्च्छा कफ प्रधान है, रोगी में सर्दी के लक्षण हैं तो रोगी की आंख में तीक्ष्ण अंजन आजिये, प्रधमन नस्य दीजिए, अवपीड़न कराइये, वैरेचन धूम्र दीजिए, सहसा उसके केश खींचिए। इन कियाओ से रोगी की मूर्च्छा बेहोशी दूर होकर रोगी होश में आजाता है।

अजन—

शुद्ध मैनशिल, रसौत और कबूतर की बीट तीनो चीजें समान भाग ले। घिसकर आंखों में आंजने से रोगी की मूर्च्छा तत्काल दूर होती है।

अवपीड़न—

१—अदरख को साफ कर कुचलकर नाक के दोनो नथनों में ४-४ बूंदे टपकावें। इससे मूर्च्छा दूर होती है।

२—नाक में प्याज के रस की बूंद टपकाने से मूर्च्छा दूर होती है।

३—श्वासकुठार रस पीसकर उसकी हुलास देने से मूर्च्छा नष्ट होती है।

४—पीपल, संभालू के बीज पीसकर नाक में फूंकने से चैतन्यता आती, मूर्च्छा नष्ट होती है।

वैरेचन धूम्र—

(१) नौला, उल्लू, बिल्ली, गीध, कौआ इनकी चौंच, पंख, बीट, साप की कैंचुली, बिच्छू का डंक ये सब वस्तुयें या इनमें से जितनी वस्तुये मिल सके उतनी लेकर रोगी को धूनी देने से बेहोशी दूर होती है।

(२) कुत्ते के पित्ते की घी के साथ धूनी देने से मूर्च्छा शीघ्र नष्ट होती है।

(३) श्वासकुठार रस १ या २ वटी अदरक के रस में घोलकर रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

(३) अरुचि--

सन्निपात ज्वर में यदि रोगी को अरुचि हो, खाने पीने की सुन्दर वस्तुओं को देखकर भी उनके खाने की इच्छा न हो तो रागी को लशुनादि वटी चूसने के लिये दीजिये।

लशुनादि वटी—

लहसन की प्रतियो को छीलकर २ तोले लेकर उसमें शुद्ध गंधक १ तोला, घी में तली हुई हींग १ तोला लेकर खूब घोटे। जब ये तीनो चीजे घुलमिल जांय तब इनमे सफेद जीरे का भुना चूर्ण १ तोले, काली मिर्च चूर्ण १ तोला, सौठ का चूर्ण १ तोला, पीपल का चूर्ण १ तोला, सेधानमक १ तोला

मिलाले—और अदरख का रस इतना डाले कि सब वस्तुयें उसमें डूब जांय। खूब खरल करके ३-३ रत्ती की गोली बनाले। मात्रा १-४ गोली तक।

गुण—इसके सेवन से पाचक रसो का स्राव बढ़ जाता है, इसलिए भोजन, आहार रस, आम का पाचन अच्छी प्रकार से होता है। वायु का अनुलोमन होता है। अफारा, पेट की गुड़गुड़ाहट दर्द आदि में लाभ होता है। अरुचि दूर करता है।

बृहत् अर्कादि वटी—

कालीमिरच का चूर्ण १ तोला, नौसादर १ तोले, काला नमक १ तोला, कलमी शोरा १ तोला, जीरा सफेद भुना १ तोला, सेंधानमक १ तोला, कांच का नमक १ तोला, सांभर नमक १ तोला इन सबको खूब महीन पीसले। फिर इसमें आठ तोला आक के ताजा फूल डालकर खूब खरल करे। जब गोली बनाने लायक हो जाय तो झड़बेरी के बराबर गोली बनाकर सुखावे। मात्रा १ से ४ तोली तक।

गुण—दीपन (अग्नि प्रदीप्त करने वाली), पाचक, अरुचि, अफरा, गुल्म को दूर करती है।

(४) छर्दि कै—

सभी प्रकार की छर्दियां (कै) आमाशय (मेदे) उत्क्लेद होने, महाप्राचीरा पेशी के उत्तेजन आक्षेप (बार बार संकुचित होने फैलने, झटके देने) से होती है। इसलिये जब कै हो रही हों तो उस समय रोगी को लंघन कराना चाहिए। कोई वस्तु खाने-पीने को न देनी चाहिए। यदि रोगी को कोई भी वस्तु अधिक मात्रा दोगे चाहे वह औषधि क्यो न हो कै को रोकने में असमर्थ रहेंगी। इसलिए वमनो (कै) की दशा में कै बंद करने लिए जो भी दवा दी जाय वह अधिक परिमाण में न हो। एक बार मे सारी दवा न चटाई जाय थोड़ी थोड़ी दवा कई बार १०-१० या ५-५ मिनट के अंतर से चटानी चाहिए।

छर्दि (कै) बन्द करने के लिए ऐसी औषधियां देनी चाहिए जो दोषों की गति को अधो भाग (नीचे) की ओर करें—

१—मुक्ता (मोती) भस्म या शुक्ति (सीपभस्म) अथवा प्रवाल भस्म (मूंगाभस्म) १ रत्ती, छोटी इलायची भुलभुला कर छीली हुई नग दो, बहेड़े की गुठली की मींग १ नग, लौंग की बौड़ी दो नग इन वस्तुओ को महीन पीस कर शहद ६ माशे मे मिलाकर रखदे। और ५—५ मिनट बाद एक एक पोरुए भर चटाने से कै, घबराहट, बेचैनी दूर होती है।

२—हिंगुलेश्वर रस १ वटी पीस कर उक्त अनुपान मे मिलाकर पूर्ववत् चटावे।

३—लौंग १ तोला ले कूटकर तीन पाव पानी में औटावे। जब आध सेर बाकी रह जावे तब तीन बार छान कर ६ माशे से १ तोला तक १५-२० मिनट के अन्तर से पिलाने से कै बद होती है और वायु अनुलोम होती है।

४—आक की जड़ की छाल का चूर्ण २ रत्ती पाव भर पानी मे औटावे। जब आध पाव शेष रह जाय ३ बार छान कर रखले। इसमें से ६-६ माशे जल रोगी को पिलाने से कै-दस्त, पेट का अफरा, दर्द दूर हो जाता है।

५—नारियल की जटा एक पाव लेकर जलाले। उनके अंगारे को एक सेर पानी मे बुझा दे। उस पानी को छान कर थोड़ा-थोड़ा पिलाने से कै, प्यास बंद हो जाती हैं।

६—पीपल वृक्ष की छाल के अंगारो से बुझा हुआ पानी पीने से भी सन्निपात ज्वर या अन्य ज्वरो या रोगो मे होने वाली कै, प्यास बद हो जाती है।

७—मयूर पुच्छ भस्म (मोर की पूंछ की भस्म) १ रत्ती शहद में चटाने से कै बंद होती हैं।

८—ताम्र भस्म ⅛ रत्ती शहद मे चटाने से कै बंद होती हैं।

९—एलादि चूर्ण शहद के साथ चटाने से कै बंद होती है।

एलादि चूर्ण—

छोटी इलायची के दाने, लौंग, नाग केशर, असली बेर की गुठली की मींग, चावल की लाई,

प्रियङ्गु, नागरमोथा, सफेद चन्दन, छोटी पीपल ये सब वस्तुएं बराबर लेकर कूट पीस छान महीन चूर्ण बना कर उसमें से २ रत्ती चूर्ण २ रत्ती मिश्री और शहद के साथ चटाने से सन्निपातज छर्दि नष्ट होती है।

१०–हरड़ का चूर्ण ३ रत्ती शहद में मिला कर चटावे। ऊपर से थोड़ा सा मद्य जल के साथ पिलाने से मृदु रेचन होकर छर्दि बंद होती है।

११–थोड़ी सी चकराराई को पानी के साथ चटनी की तरह पीसलें। यदि पीसते समय जरा कपूर भी डालदे तो बहुत अच्छा है। यदि न डालें तो न सही। एक मलमल आदि पतले कपडे पर इस चटनी को लहेम दें और एक कपड़ा इस पर ऊपर से और ढक दे। इस कपड़े को आमाशय पर (मेदे-पेट के ऊपरी भाग पसलियों के नीचे बीच में) बिछा दें। इसे ५-७ मिनट तक जब तक कष्ट दायक जलन न मालूम हो रखा रहने दें। जब जलन मालूम हो हटा दे। अधिक देर तक रखने से उस जगह फुंसियां होने का डर रहता है इसलिए अधिक समय तक न रखें। इससे वमन बंद हो जाती हैं।

५. तृष्णा–प्यास —

प्यास एक भयंकर उपद्रव है। यदि बढ़ी हुई तृषा में रोगी को जल न दिया जाय तो घबड़ाहट, बेचैनी, बेहोशी, चक्कर, बहरापन, अंगों का रह जाना, हृदयरोगादि होने की अधिक संभावना रहती है। रोगी की दशा और भी खराब हो जाती है। इसलिये सन्निपात में जब रोगी मुंह अधिक सूखने की शिकायत करे तो आपको समझ लेना चाहिए कि अब रोगी को तृषा बढ़ने वाली है, तभी से चिकित्सक को संभल जाना चाहिए। यदि तृषा बढ़ गई है या आप रोगी के पास तब पहुँचे जब कि तृषा का विशेष वेग बढ़ गया है तो आप नीचे लिखे उपचार काम में लाये–

सन्निपात ज्वर मे तृषा के होने का कारण प्रायः अभिष्यन्द (रस को बहाने वाले सूक्ष्म स्रोतों मार्गों का रुकना) होता है। इसलिए अभिष्यन्द को दूर करने की ओर चिकित्सक को ध्यान देना चाहिए। ज्वर के वेग के समय रस (जलीय धातुओं) का विशेष क्षय होने से प्यास प्रबल हो जाया करती है क्योंकि उसकी पूर्ति के लिए शरीर को जल की विशेष आवश्यकता होती है। ऐसी दशा में ज्वर के कम हो जाने पर तृषा कम हो जाती है। परन्तु अभिष्यन्द से उत्पन्न तृषा तब भी बनी रहती है। वह दोषों के पचने, रसवाही मार्गों के खुलने पर बन्द होती है। याद रखिये तृषा सदा अग्नि और वायु (पित्त और वात) की अधिकता से होती है। यही जलीय धातुओं का शोषण करते हैं। अभिष्यन्द आमदोष (कच्चे गाढ़े रस) और कफ संसर्ग से रसवाही स्रोत रुकते हैं इसलिए पिपासा स्थान क्लोम तक यथेष्ठ रस नहीं पहुँचता, फलतः यह सूखते हैं, प्यास लगती है। इसलिए ज्वर में विशेष कर सन्निपात ज्वर में दी जाने वाली औषधियों में अग्नि (ताप, गर्मी, ज्वर) शमन करने और वायु अनुलोम के निम्न उपाय करने चाहिये–

१. षडङ्ग पानीय—नागरमोथा, पटोल पत्र, उशीर, लाल चंदन, नेत्रबाला और सोंठ ये सब वस्तुये समान भाग लेकर जौकुट (जौ के समान मोटा चूर्ण) कर ले। इसमें से २ तोले पानी में औटावे। जब आधा पानी जल जाय तब उतार कर छान लें और ठंडा होने पर थोड़ा थोड़ा रोगी को पिलाते रहे। इसका नाम 'षडङ्ग पानी' है। इसके पीने से प्यास और ज्वर शांत हो जाता है।

२ दशमूलीय जल–दशमूल और वट शुङ्ग (बट के निकलते हुए पत्तों की जो तोते की चोंच के समान मुड़ा हुआ होता है।) १-१ तोला लेकर १२८ तोले पानी में औटा आधा रहने पर छान कर ठंडा होने पर थोड़ा थोड़ा पिलाने से सन्निपातिक ज्वरों की तृषा शमन होती है। यदि सन्निपात की दशा में तृषा के साथ हिचकी, श्वास, पसली का दर्द, गले के विकार, कफ का गाढ़ापन आदि विकार हो, आम कफ वात का जोर हो तो पीने को जो जल दिया जाय वह कुछ उष्ण, गुनगुना देना चाहिये। उष्ण जल आम और

कफ को पचाता, उन्हे पतलाकर उखाड़ देता है। इसलिए स्रोतो को खोलने मे सहायता होता है। फलतः तृषा के साथ अन्य विकार भी दूर हो जाते है।

३. यदि मुख अधिक सूखता हो तो मधु शहद के गंडूष (गरारे—मुंह मे इतना जल भर लिया जावे कि मुंह बन्द कर चलाया जा सके) और कवलग्रह (मुंह मे इतना मधु भरना कि मुंह बन्द कर खूब अच्छी तरह खलखलाया-मुंह चलाया जा सके) करने से मुख का सूखना, प्यास और मुखपाक को लाभ होता है।

४. तिन्तड़ीक को पानी मे औटाकर कुल्ले करने से प्यास शांत होती है।

५. जामुन, आम, बटशुङ्ग, कपल नीले, उशीर, सफेद चदन, सब वस्तुऐं समान भाग ले। कूट पीस कपड़छन कर शहद के साथ चने बराबर गोलिया बनाले। १-१ गोली मुंह मे पड़ी रहने दें और बराबर उसका रस चूसते रहे। इससे प्यास मुखशोष और दाह का शमन होता है।

६. छर्दि प्रकरण में बताये नं. १ से ७ तक के प्रयोग भी साथ में लाभदायी हैं।

६. अतिसार (दस्त)-

अतिसार या पतले दस्तों का होना सन्निपात ज्वरो मे अधिकतर होने वाला उपद्रव है। यह पित्त प्रधान विकारों मे है। परन्तु ज्वर अतिसार की चिकित्सा एक दूसरे के विपरीत पड़ती है। ज्वर में जो वस्तुऐ दी जाती हैं उनमें कुछ न कुछ रेचन (दस्तावर या शरीर के भीतर से दोषों और मल को दस्त, पेशाब, कै या पसीने के द्वारा निकालने) का गुण होना चाहिए। यदि अतिसार मे भी वे ही औषधियां दी जांय तो अतिसार और बढ़ता है। अतिसार मे रोधक (निकलने से रोकने वाली), स्तम्भक (रूक्ष, रूखी होने से द्रव मल, पतले मलो और दोषों को सुखाकर वहीं ठहरा देने वाली) वस्तुऐं दी जाती हैं। यदि ज्वर मे विशेषतया सन्निपातक ज्वरों मे रोधक स्तम्भक औषधि दी जाती है तो निकलते हुए मलो को रुकने से ज्वर प्रबल हो जाता है, शोथ, उदरशूल, आध्मान आदि उपद्रव उठ खड़े होते हैं। ज्वरातिसार (ज्वर मे उत्पन्न हुए दस्तो (मे आमपाचन, लघु, हलकी औषधियां व लंघन हितकर होते हैं। जब अतिसार का विशेष जोर हो तब ही स्तम्भक औषधियो का व्यवहार करना चाहिये। इन सब बातो को ध्यान में रखते हुए सन्निपात ज्वर में औषधि आदि का विधान करना चाहिए।

सन्निपात ज्वर मे अतिसार हो जाने पर रोगी को बार बार उठने बैठने न दीजिए। खाट पर लेटे लेटे ही मलपात्र द्वारा दस्त करा दीजिये। अधिक डोलने फिरने से आंतो के व्रण शोथ जल्द नहीं भर पाते, बल्कि और फट जाते है; फलतः दस्त के रास्ते से रक्त आने लगता है, शूल बढ़ता है। रोगी को सभी प्रकार के अतिसार (दस्त), प्रवाहिका (पेचिश) में आराम से लेटे रहना चाहिए। परन्तु ज्वर और उसमे भी सन्निपात ज्वर की अवस्था मे तो रोगी को खाट पर से उठने ही नहीं देना चाहिए।

—रसवैद्य श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
प्र. चि. - जैन धर्मार्थ चिकित्सालय
कीठम पो० रैपुरा (मथुरा)

बालकों की आंखों की रक्षा

श्रीमती सुमित्रा देवी अग्रवाल "विशारद"।

जब आप किसी काने, लूले, लगडे व्यक्ति को देखते है तब अनायास ही आप अपनी नाक भौं क्यों सिकोड़ते है ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जब शरीर का एक भी अंग विकृत होता है तब वह अंग न तो स्वयं को अच्छा लगता है और न देखने वाले को ही। शरीर के विभिन्न अवयवों मे आंख का जितना महत्व है, उतना अन्य भागों का नहीं। जिसके नेत्र नहीं हैं उसके लिए संसार अंधकारमय है। उसका जीवन निराशा का जीवन है। शरीर की सुन्दरता का मापदण्ड आंखे ही है। आंखों मे वह शक्ति है जो शरीर के सौन्दर्य में चार चांद लगाती है। भली आंख भला किसके मन को न मोह लेगी ? आप गोरे है किन्तु आपकी आंख कानी है तब आप यह सच माने कि आपकी न तो इज्जत ही होगी न आपका कुछ मूल्य होगा। एक आंख वाला अथवा काने के दर्शन तक अशुभ माना जाता है। प्रातः कोई भी काने को देखना पसन्द न करेगा।

हमारी ही असावधानी अथवा भूल के कारण हम अपने अंगों को विकृत कर लेते है। शरीर के अंगो में विकार आने के लिए पहले तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार होता है, बाद मे अन्य कारण इसके लिए जिम्मेदार होते हैं, जैसे वंश परम्परा का कारण अथवा प्राकृतिक कारण।

शरीर के सभी अंग जब सुगठित होते हैं तभी मनुष्य का रूप निखरता है। शरीर के अंग प्रत्यंग मिलकर ही सौन्दर्य की वृद्धि करते है। शरीर के एक ही अंग के विकृत हो जाने से शरीर तो नष्ट हो ही जाता है और सौन्दर्य भी सदा के लिए नष्ट हो जाता है। प्रकृति की सुकुमार प्रवृत्ति ने मानव मात्र के सौन्दर्य के विकास का पूरा ध्यान रख कर ही उसकी रचना का श्रीगणेश किया है। शरीर के अन्य अंगों में से जैसे यदि मुंह में दांत न रहने से पोपला सा हो जाता है और एक युवक भी वृद्ध की तरह दिखलाई पड़ने लगता है इसी प्रकार नेत्रों की ज्योति मंद पड़ जाने अथवा किसी कारण नेत्रों के नष्ट होने पर मनुष्य असहाय हो जाता है और मनुष्य का सौन्दर्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है।

किसी स्त्री अथवा पुरुष की गोल गोल आंखें इतनी आकर्षक होती हैं कि पूरे मुख मण्डल पर अपना व्यापक प्रभाव डालकर उस व्यक्ति को आकर्षक बना देती हैं। इसी कारण अन्य लोग भी सुडौल नेत्रों के कारण बार बार ऐसा मुखमण्डल देखने के लिए लालायित रहते हैं। इसी के विपरीत यदि किसी का मुख तो सुन्दर है, परन्तु उसकी ऐसी आंखे जो कंजी, चिमची और छोटी छोटी हों (जिस प्रकार हाथी की आंखें होती हैं) ऐसी आंखें रूप को कुरूप कर देती हैं।

कहने का आशय यह है कि आंख ही हमें इस विशाल संसार के सौन्दर्य की अनुभूति प्रदान करती है। और हमारे सौन्दर्य की वृद्धि करने में योग देती हैं। इसलिए शरीर के इस उपयोगी एवं महत्वपूर्ण अंग आंखों की रक्षा की ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए।

यदि एक बालक जन्म से ही सुन्दर हो, उसकी आंखे सुडौल एवं आकर्षक हों और बाद में यदि आंखो में दोष आ जाय, आंखों मे तिरछापन आ जाय, अथवा दृष्टि कमजोर हो जाय तब इसके लिए उस बालक की मां ही जिम्मेदार होगी न कि बालक जिसकी आंखे खराब हो गई है। इसलिए प्रत्येक माता पिता का यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि बालक का जन्म देने के साथ ही साथ उसके शरीर के किसी अंग को विकृत न होने दे। एक माता अपने बच्चे की आंखों को किस प्रकार सुडौल बनाए रख सकती है, इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्न प्रकार से है—

बालक के जन्म के कुछ समय के बाद ही बालक की आंखों मे काजल लगाना शुरू कर देना चाहिए। हमारी बहुत सी बहिने एवं माताएं बालको की

आंखो में गीले काजल का प्रयोग करती है यह भी ठीक है। किन्तु काजल लगाने का सबसे सरल अच्छा और सस्ता उपाय यह है कि शुद्ध सरसो के तैल मे शुद्ध और साफ रूई की बत्ती लगाकर उसे जलाकर किसी साफ फूला के बर्तन के ऊपर उसकी कालिख या स्याही जमने दे और गरम गरम ही बालक की आंखो मे लगा या आंज दे। इस प्रकार का काजल लगाने से बालको के नेत्रो की ज्योति बढ़ती है और नेत्रों का आकार भी सुन्दर होता है। गरम गरम काजल लगाने के बाद हाथ की हथेली को दीपक पर गरम करके बच्चे की आंखे सेंक देने से बच्चो की आंखो की सर्दी से रक्षा होती है और पलके भी भारी नहीं होने पातीं।

जब बालक कुछ बड़ा हो जाय तब उसी काजल के साथ जस्त, फूल के बर्तन मे तावे के पैसे घिसकर व छानकर अलग रखले और काजल से थोड़ा सा सफेदा डालकर प्रतिदिन लगाते रहने से नेत्रो के सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं और मुंह की सुन्दरता बनी रहती है। ग्रीष्म ऋतु मे गुलाब जल की दो-तीन बूंदे दो-तीन बार डालते रहने से नेत्र शीतल रहते हैं और भीषण गर्मी का विकार नेत्रो को नहीं होने पाता। कपूर जलाकर भी काजल बनाया जाता है। इस काजल का प्रयोग करने से भी नेत्रो को ठंडक मिलती है।

इतना सब कुछ होने पर भी, और आंखो के प्रति सावधानी रखने पर भी यदि किसी कारण आंख दुखने लगे तब सर्वप्रथम पहिले दो चार दिन तक किसी प्रकार की दवा करने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद घी कुआर का गूदा, अफीम, फिटकरी, अम्बा हल्दी, पठानी लोध्र, सभी को थोड़ा थोडा अथवा अन्दाज से लेकर घी कुआर के गूदे के साथ मिला ले और एक कटोरे मे रखकर आग मे पका ले। इसके बाद एक साफ कपड़े की पोटली में रखकर यही पोटली आखो पर फेरिए, इस पोटली का थोड़ा थोडा रस आख के अन्दर भी जाने दे। इससे यथा शीघ्र आखो की सुर्खी कट जायेगी और आराम हो जायगा।

आंखो की रक्षा के लिए एक अंजन बनाया जाता है। इस अंजन को आप घर पर ही बना सकते है। घर पर यह अंजन इस प्रकार बनाया जाता है। आवश्यक सामग्री इस प्रकार ले ले—

अपामार्ग की जडे, मसी या काकजंघा की जडे, पुत्रवाली स्त्री का दूध और बछड़े वाली गाय का घी ले ले। अंजन बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए तथा सावधानी रखनी चाहिए कि पुत्री वाली स्त्री का दूध और बछिया वाली गाय का घी कभी भी प्रयोग न किया जाय। अब उपरोक्त चारो वस्तुओं को फूल की थाली में रगड रगड कर रख लीजिए अंजन तैयार हो गया। इस अंजन को लोहे की छोटी २ डिब्बियो अथवा घोघे या सीपी मे रख लें। यह अंजन नेत्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है। इस अंजन का उपयोग करने से आंखो के विविध रोग जैसे मांडा फूली, दृष्टि की कमजोरी, रतौंधी (रात मे न दिखाई पडना) ढरका आदि नेत्र रोगो में लाभ होता है।

इस प्रकार सभी चतुर माताएं अपने अपने परिवार के सदस्यो, अपनी व अपने बच्चों की आंखे सुरक्षित रखने का प्रयास करेगी और किसी भी अवस्था मे आंखों को विकृत न होने देगी, जिससे मुंह का सौंदर्य खिले फूल की तरह बना रहे।

—श्रीमती सुमित्रादेवी अग्रवाल विशारद
द्वारा श्री जी० डी० अग्रवाल
पो० अजयगढ़ (पन्ना)

स्वास्थ्यरक्षा तथा दीर्घायुष्य प्राप्ति के कुछ साधन ।

आचार्य डा० गयाप्रसाद जी शास्त्री

मानव प्राणी को यदि सबसे अधिक अपेक्षित, वाञ्छित तथा अभिलषित कोई वस्तु है तो वह सुख है। प्रातः जागरण के समय से लेकर रात्रि में भगवती निद्रादेवी के नितांत शांत एवं पवित्र अङ्क में स्थान पाने तक उसके समस्त प्रयत्न सुख की प्राप्ति की कामना से ही चलते रहते हैं। यह और बात है, कि सुख के वास्तविक स्वरूप के निर्धारण या विवेचन में विचारकों में कुछ मतभेद अथवा मतिभ्रम हो। किन्तु यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है।

शरीर को भोगायतन माना गया है। कारण शरीर के द्वारा ही सुखों का उपभोग किया जा सकता है। फिर वह सुख चाहे लौकिक हो या पारलौकिक, आधिभौतिक हो या आध्यात्मिक। इस पाञ्चभौतिक शरीर में ही आत्मा और मन का विकास है। मन की अनुकूल वेदनीयता का नाम ही सुख है। स्वस्थ मन ही सुख की मुखच्छवि देखने में सक्षम है। स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ मन का आश्रय बन सकता है। जब शरीर अस्वस्थ होता है तब मन भी अस्वस्थ होता है। वृश्चिक दंशन से पीड़ित मनुष्य को किसी प्रकार का मनोरंजन या राग-रंग अच्छा नहीं लगता है। फलतः सुखभोग के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है।

स्वस्थ का अर्थ है नीरोग। आयुर्वेद शास्त्र में 'स्वस्थ' इस शब्द की व्याख्या और भी अधिक विस्तार से की गई है—

> समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
> प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिस व्यक्ति के शरीर में वात, पित्त और कफ आदि तीनों दोष समावस्था में हों, पाचकाग्नि समावस्था में हो, रस रक्तादि सप्त धातुओं तथा मलादि की क्रिया समान रूप में हो, आत्मा, इन्द्रिय और मन ये सब प्रसन्न अर्थात् निर्विकार हों, वही स्वस्थ कहा जाता है। "स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम्" स्वस्थ के भाव को ही स्वास्थ्य कहते हैं। स्वास्थ्य ही जीवन है और स्वास्थ्य धन ही सर्वोत्तम धन है। संसार की कोई भी सम्पत्ति सुन्दर स्वास्थ्य की तुलना में नहीं आ सकती है।

> "धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं सुखसाधनम् ।"

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चतुर्वर्ग कहलाते हैं। इन चारों की प्राप्ति ही किसी भी पुरुष का परम पुरुषार्थ है। इनकी प्राप्ति का साधन एक मात्र स्वस्थ शरीर ही है। अनेक प्रकार के व्यायामों के साथ दीर्घायुष्य प्राप्त करने वाले मृत्युञ्जयी योगियों के यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम आदि की साधना केवल शारीरिक, मानसिक और स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये ही होती है। इसीलिये केवल आयुर्विज्ञान के आचार्यों ने ही नहीं अपितु सभी तत्त्वदर्शी महापुरुषों एवं प्राचीन ऋषि मुनियों ने स्वास्थ्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। वास्तव में स्वर्ग और नरक की कल्पना भी स्वास्थ्य के आधार पर ही की गई है। जो व्यक्ति स्वास्थ्य और सदाचार के नियमों का उल्लंघन करने के कारण किसी न किसी भीषण रोग से पीड़ित होकर जीवन यापन कर रहे हैं, उनके लिए प्रकृति सुन्दरी की सुन्दर रंगस्थली, यह संसार रौरव नरक के समान है। इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वस्थ तथा सदाचार सम्पन्न है एवं जिनके मुखमंडल पर सदा ही स्वर्गिक तथा सात्विक आनन्द की आभा प्रस्फुटित होती रहती है उनके लिए यह संसार स्वर्ग है और वे ही इस लोक के देवता हैं या स्वर्गीय महापुरुष हैं।

एक वैद्य के रूप में मुझे प्रायः ऐसे कितने ही व्यक्तियों के साथ साक्षात्कार करने का अवसर मिलता ही रहता है, जिन्होंने स्वास्थ्य के नियमों की उपेक्षा करके अपने अमूल्य जीवन को नरक बना लिया है। अप्रैल १९५९ के प्रथम सप्ताह में मैं जगन्नाथपुरी में होने वाले 'संस्कृत विश्वपरिषद' के अधिवेशन में भाग लेकर कलकत्ता चला गया

था। वहां एक ऐसे सेठ साहब को देखने का अवसर मिला जो "उन्निद्र रोग" से पीड़ित थे। आयु लगभग ५० वर्ष की थी। विषय वासानाओ के चक्र में पड़कर उन्होंने कुछ ऐसी विषाक्त वस्तुओ का सेवन किया था, जिससे उनके मस्तिष्क के सुषुप्तिजनक सूक्ष्म नाड़ी चक्र इतने शिथिल तथा निष्क्रिय हो गए थे कि किसी भी औषधि या उपचार से उन्हे नींद नहीं आती थी। पाचनशक्ति तथा उदर यन्त्र पहले से ही अपना कार्य बंद कर चुके थे। फलत: सेठ साहब जल बिहीन दीन मीन के समान कोमल शैया पर तड़प तड़प कर मृत्यु का आवाहन करते रहते थे। किन्तु जिस व्यक्ति के मिथ्या आहार विहार तथा असदाचार के कारण जब अपना शरीर ही साथ नहीं देता है तो घर बाहर के लोग क्यो और कैसे साथ देंगे? यही नहीं, ऐसे लोगो के पास मृत्यु भी आने में संकोच करती है। स्वास्थ्य के नियमों का पालन न करना मानव प्राणी के लिए सबसे बड़ा पाप है और पाप का फल आज नहीं तो कल भोगना ही पड़ता है।

उपर्युक्त उदाहरण केवल पाठकों का ध्यान स्वास्थ्य रक्षा की ओर आकर्षित करने के लिए गया है। किंतु आज इस वैज्ञानिक युग की चकाचौंध मे प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करने के कारण ८० प्रतिशत लोग किसी न किसी रोग से ग्रस्त पाए जाते हैं, यह मेरा तथ्यपूर्ण अनुभव है। स्वस्थ रहने के लिए कुछ निश्चित प्राकृतिक नियमो का पालन अत्यावश्यक है।

उत्तम स्वास्थ्यके लिए सदाचार की आवश्यकता

स्वास्थ्य और सदाचार ये दोनों अन्योन्याश्रित है। एक दूसरे पर आधारित है—टिके हुए है। जिस प्रकार चन्द्र के बिना चन्द्रिका, प्रभाकर के बिना प्रभा और जल के बिना लहरिकाऐं अपना कोई अस्तित्व नहीं रखती हैं, उसी प्रकार सदाचार के बिना स्वास्थ्य का कोई मूल्य नहीं है। सत्ता नहीं है। सच तो यह है कि सदाचार ही स्वास्थ्य का संरक्षक है। कोई व्यक्ति शरीर से मासल. मोटा ताजा हृष्ट-पुष्ट और बलवान होने के कारण स्वस्थ नहीं माना जा सकता है। शरीर के साथ मन का स्वस्थ होना भी अत्यावश्यक है। किंतु सदाचार के बिना मन का स्वस्थ होना किसी भी रूप में सम्भव नहीं है। यही कारण है, आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त में शरीर और मन दोनों के स्वस्थ रहने के उपाय बताए गए है। मन को स्वस्थ रखने के जो उपाय या साधन है, उन्हीं को सदाचार कहते है सदाचार की व्युत्पत्ति है—सतां सज्जनानां साधुपुरुषाणां वा आचार: जीवन व्यापार: सदाचार.। महापुरुष अपने जीवन में प्रतिदिन जिस प्रकार का आचरण, कार्य, व्यापार या वर्ताव व्यवहार करते हैं, उसे सदाचार कहते है। आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त के आधार पर यहां कुछ ऐसे नियमो तथा आचरणो का उल्लेख किया जाता है, जिनका पालन करने से आरोगता तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।

प्रात:काल उठना—

जो व्यक्ति स्वस्थ रहकर दीर्घायुष्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनका सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि वे ब्राह्म मुहूर्त में उठे। रात्रि का अन्तिम प्रहर अर्थात् सूर्योदय से पहले ४ घड़ी का जो समय है, उसे ब्राह्म मुहूर्त कहते हैं। देश, काल और ऋतुओ के तारतम्य के अनुसार प्रात:काल ४ बजे से लेकर ५ बजे तक का समय ब्राह्म मुहूर्त माना जाता है। इस समय प्रकृति माता अपने पुत्रो के लिए शक्ति, स्फूर्ति और अमृत की वर्षा करती है। यह बड़ा ही सुहावना समय है। अत. प्रात. काल ४ बजे उठकर सब से प्रथम अपने दोनों करों का दर्शन करना, वेदमन्त्रों, श्लोको या मातृभाषा मे लिखित गीतों द्वारा ईश्वर स्तुति करना अथवा किसी प्रकार का भी मङ्गल पाठ करना। यह कार्य ५ मिनिट से लेकर १० मिनिट तक मे पूर्ण कर लेना चाहिये। अनन्तर अपने गुरुजनों, माता-पिता, ज्येष्ठ बन्धु आदि का श्रद्धाभक्ति पूर्वक अभिवादन करके भलीभांति मुख धोना और एक गिलास बासी जल पीना चाहिए। जल पीकर शौच, दन्तधावन, व्यायाम, तेल का मालिश, स्नान, सन्ध्या-वन्दन, पूजन, गीता, उपनिषद् या अपनी भावना के अनुसार अन्य स्तोत्रादि

पवित्र ग्रन्थों का पाठ तथा देव दर्शन आदि प्रातः-कालीन कृत्यों से निवृत्त होना चाहिये। इन सब पूर्वोक्त प्रात कृत्यों को प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक समाप्त कर देना चाहिये। यदि आसन, व्यायाम तथा प्राणायाम आदि में अधिक समय लग जाता है तो ये सभी प्रात कृत्य ३ घण्टे में समाप्त होते है। ३ घण्टे का समय बहुत ही पर्याप्त है। प्रातः-कृत्यो से निवृत्त होकर यदि सुलभ हो तो मधु या मिश्री मिश्रित आधा सेर गौदुग्ध पीना चाहिए। ऐसा करने से शरीर स्वस्थ रहता है, सत्व गुण का विकास होता है और जीवन शक्ति की वृद्धि होती है। दिनचर्या का यह प्रथम भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके विधिपूर्वक सम्पन्न होने से सम्पूर्ण दिवस उत्साह और प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

मिताशी मितभाषी च—

थोड़ा खाना और थोड़ा बोलना ये दोनों ऐसे गुण है जो मनुष्य को अपनी जीवन यात्रा मे सर्वथा निरामय तथा निरापद रखते हैं। परिमित भोजन करने वाला व्यक्ति रोगो के जाल में नहीं पड़ता है और परिमित या थोड़ा बोलने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार की सांसारिक विपत्तियो से बच जाता है। जिस प्रकार अत्यधिक भोजन करने से उत्पन्न उदर विकार अनेक रोगो का कारण बन जाता है, इसी प्रकार अधिक बोलने या वाणी का दुरुपयोग करने से लड़ाई झगडे, अशांति, युद्ध तथा सामूहिक विनाश तक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विश्व इतिहास के पन्ने पलटने से पता चलेगा कि वाणी के असंयम ने ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों के विनाश की होली कितनी ही बार खेली है। इसलिए थोड़ा बोलना सदाचार का प्रमुख अङ्ग है। मितभाषण और सत्यभाषण से वाणी की शक्ति बढ़ती है।

दिनचर्या के समान रात्रिचर्या का भी स्वास्थ्य की रक्षा मे महत्वपूर्ण स्थान है। जो लोग प्रात.काल ४ बजे ब्राह्म मुहूर्त मे उठते है उन्हे रात्रि में १० बजे अवश्य सो जाना चाहिए। १० से ४ बजे रात्रि तक कुल ६ घण्टों की गहरी नींद से शरीर के सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों को पूर्ण विश्राम मिल जाता है। शरीर दिन में व्यय की हुई अपनी शक्ति को प्राप्त कर लेता है। जागरण के समय के समान ही शयन से पूर्व भी ईश्वर स्तुति अत्यावश्यक है। ऐसा करने से शुभ संकल्पो की सृष्टि होती है, मानसिक शक्ति का विकास होना और दुःस्वप्नों की निवृत्ति होकर गहरी नींद आती है। जागने और सोने के समय का भी समय विभाग बनाकर उचित रूप से उपयोग करना चाहिए। मानव जीवन की प्राप्ति मंगलमय भगवान् का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। इस जीवन को प्राप्त करके कोई भी पुरुष पुरुष से पुरुषोत्तम बन सकता है, मोक्षपद को प्राप्त करके जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो सकता है।

सदाचार सूत्र—

स्वास्थ्य की रक्षा और दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए निम्नाङ्कित सदाचार-सूत्रो पर सदा ध्यान रखना चाहिए—

१—ब्रह्मचर्य पालन—

"मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात्" शरीर में शुक्र या वीर्य धातु ही एक ऐसी अमूल्य वस्तु है, जिसके पतन से मृत्यु और धारण से नव-जीवन की प्राप्ति होती है। अतः स्वस्थ या निरामय रहने के लिए समस्त मनोबल और दृढता के साथ वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

२—व्यायाम—

शरीर और मन इन दोनो को स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित रखने के लिए व्यायाम की नितान्त आवश्यकता है। व्यायामो में पौर्व या पाश्चात्य शैली के कोई भी व्यायाम क्यो न हों किन्तु भारतीयो के लिए प्राचीन ढग के व्यायाम दण्डासन (दण्ड-बैठक) योगासन तथा प्राणायाम आदि ही अधिक उपयुक्त है। किसी आचार्य के निर्देशन मे ही योगासन तथा प्राणायाम आदि का अभ्यास करना चाहिए।

३—पूज्य-पूजा—

माता-पिता, आचार्य, अतिथि तथा अन्य

साधु-महात्मा गुरुजन आदि पूज्य माने जाते है। इन सबका दान, मान और अभिवादन द्वारा पूजन करके शुभाशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए। पूज्य जनों की पूजा और परिचर्या से सुख, शान्ति, सुयश, समृद्धि तथा चिर जीवन प्राप्त होता है।

४-आत्मदर्शन—

प्राणिमात्र में आत्म-साक्षात्कार का अभ्यास करना चाहिए जो व्यवहार अपने आपको पसन्द न हो वह दूसरों के साथ न किया जाय। उदाहरण के रूप मे यदि हमें किसी व्यक्ति के द्वारा दी गई गाली या किया हुआ अपमान पसन्द नहीं है तो हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि न हम दूसरों को गालियां दे और न किसी का अपमान ही करे। हमे दूसरों से अपने लिए जिस व्यवहार की अपेक्षा है, दूसरों के साथ हमे वैसा ही बर्ताव, व्यवहार करना चाहिए। इस कर्म क्षेत्र संसार में जिस प्रकार के कर्म बीज बोए जायेंगे, फल भी उसी प्रकार के प्राप्त होंगे।

५-परोपकार—

यदि कोई व्यक्ति अपने मित्र, पुत्र, बन्धु बान्धव एवं निकटतम स्वजनो के साथ कोई उपकार करता है तो वह उपकार उपकार नहीं है, वह तो उसका एक सामान्य कर्त्तव्य है। किन्तु उपकार या भलाई तो वह है जो सात्विक दया से प्रेरित हो कर विपत्तिग्रस्त उपकारी शत्रु के प्रति की जाती है।

सदाचार के इन पांच सूत्रों के अतिरिक्त प्राणि-प्रेम, दया, क्षमा, तितिक्षा, सत्य भाषण, अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध तथा आत्म संयम आदि कुछ ऐसे विशिष्ट गुण हैं, जिनमें से किसी एक अथवा अनेक की साधना मे यदि सफलता मिल जाती है तो यह मानव जीवन कृतकृत्य होकर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। स्वास्थ्य और सदाचार के बिना कोई भी मानव प्राणी अपनी चिरवाञ्छित लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियो को प्राप्त करने मे सर्वथा असफल रहता है।

—श्री गयाप्रसाद शास्त्री
मुरलीधर बाग हैदराबाद (आ. प्र.)

खरबूजा और नीबू से लाभ

(१) ग्रीष्मकाल के लोकप्रिय फलों में 'खरबूजा' भी एक है।

(अ) खरबूजे के बीजों को जल में पीस कर शरीर पर लेप करने से 'लू' से रक्षा होती है।

(ब) वीर्य वृद्धिके लिए इसका सेवन करना हितकर है।

(स) खरबूजा खाली पेट नहींखाना चाहिए। इसे भोजन पचने पर ही खाना चाहिए।

(द) खरबूजे के साथ दूध का सेवन नहीं करना चाहिए। इससे हैजा होने की संभावना रहती है। खरबूजा खाकर चीनी का शर्बत पीना हितकर है। दूध कुछ देर बाद लिया जा सकता है।

(य) खरबूजे को जल में कुछ समय तक भिगो- कर रखना उचित है। इससे उष्णता कम हो जाती है और खरबूजे में मिठास आ जाती है।

निम्बू—

(अ) चीनी के साथ इसका रस हैजे की दवा होजाता है। हैजे के दिनो मे उपयोगकरना न भूले।

(ब) सूखे हुए मीठे नीम्बू को भूनकर और उसको शहद में मिलाकर देने से 'वमन'बन्द होजाती है।

(स) कुछ लोगों का कथन है कि नीम्बू का रस लेने पर इन्फ्लूएञ्जा और न्यूमोनिया नहीं होता है।

(द) पानी मे नीम्बू का रस मिलाकर प्रतिदिन पीने से स्वास्थ्य बढ़ाता है और रोग नाशक शक्ति बढ़ती है जो लोग इसका सेवन करते है, उन पर रोग का आक्रमण नहीं होता है।

—वैद्य श्री रामचन्द्र शाकल्य, इन्दौर।

मधुर ज्वर (मोतीझला)

श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

आयुर्वेद में मधुर ज्वर की उत्पत्ति, लक्षण, रूप आदि सभी की विशद् विवेचना की गई है, तथापि इसके विषय में अनेक स्वानुभव भी हो सकते है। इस रोग की उपयुक्त चिकित्सा, संतुलित आहार आदि के पूर्व इसकी उत्पत्ति एवं लक्षणादि का संक्षिप्त परिचय असामयिक नहीं होगा।

उत्पत्ति–

आयुर्वेद मे मधुर ज्वर की उत्पत्ति श्री महादेव शंकर द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंश किये जाने पर क्रोध से मानी गई है यथा–

"दक्ष प्रजापतिर्यज्ञो ध्वसितः शम्भुना पुरा।
रुद्र कोपात्समुत्पन्नो गदो मुंधोरकस्तव॥"

लक्षण -

आयुर्वेद के अनुसार मोतीझला के लक्षण इस प्रकार गिनाये गए हैं—

"जरो दाहो भ्रमो मोहोह्यतिसारो वमिस्तृषा।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति॥
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटका सर्षपोपमा.।
एतच्चिह्न भवेदस्य समधूरक उच्यते॥"

अर्थात रोगी को ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा (बेहोशी) आदि के साथ साथ दस्त होना, कै होना, प्यास का बार बार लगना, नींद न आना, मुख का रक्त-वर्ण बने रहना, तालू और जीभ का खुश्क रहना और गर्दन पर सरसों के समान फुंसियो आदि का निकलना होता है। इनमें से मुख्य लक्षण देखकर रोग का यथार्थ अनुमान हो जाता है।

अवस्थाऐं एवं उपद्रव–

उत्तरी भारत में यह रोग बहुत होता है। इसकी अवस्थाये मुख्यतः तीन मानी गई है, इन्हीं के अनुसार प्रत्येक अवस्था में उपद्रव भी भिन्न ही होते हैं।

प्रथमतः किसी किसी रुग्ण को ज्वर बहुत तेज रहता है, जब से चढ़ता है बराबर बना ही रहता है। इसमें रोगी को अतिसार, खासी, श्वास, बेहोशी, तन्द्रा, प्रलाप, अफरा, उदरशूल एवं मलावरोध की शिकायत भी बनी रहती है। ज्वर आने के ३ या ५ दिन पश्चात् कण्ठ में अनविधे मोती के समान चमकदार दाने निकलने लगते है और क्रमश बढ़ते जाते है। ये दबाये जाने पर फूटते नहीं। जब ये दाने रोगी की छाती तक आ जाते हैं तो ज्वर एवं उपर्युक्त उपद्रवों का वेग शिथिल होने लगता है। किसी किसी रोगी को पसीना आकर तुरन्त ज्वर उतर जाता है, ऐसे समय विशेष धैर्य एवं सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि कई कई रोगियों का इस दशा में प्राणान्त तक हो जाता है। प्रायः इस अवस्था मे रोगी को मृत्यु से बचा लिया जाता है इस स्वेदवाली अवस्था में उपद्रवों की ओर विशेष ध्यान दे। इस अवस्था में रोगी २७ दिन बाद ठीक हो जाता है।

दूसरी अवस्था में–ज्वर का वेग अपेक्षाकृत तीव्र नहीं होता। उपद्रव भी साधारण ही होते है। मोती के समान दानो के स्थान पर पतली झिल्ली के बड़े दाने जो दबकर फूट जाते हैं, निकलते है। कभी कभी २-४ दाने मिलकर जाले जैसा छाले का घाव सा बना देते है। दाने निकलने पर ज्वर एवं उपद्रव प्रायः शान्त हो जाते है। दाने भी गले से उतर कर दोनों पखवाड़ो की तरफ से पेड और जंघा तक जाकर भुसी के समान उड़ जाते है। यह भयानक नहीं है। प्रायः इसे पानीझरा की संज्ञा दी जाती है। यह १५ या २१ दिन में रोगी को छोड़ देता है। किसी को जाड़ा देकर भी ज्वर आते देखा है।

तीसरी अवस्था में—दानों का रंग एकदम काला होता है। इसी कारण इसे कृष्ण मधुरा कहा है। यह सर्वाधिक खतरनाक अवस्था है। प्रथमावस्था के सभी उपद्रव बड़े उग्र वेग से प्रकट होकर

रोगी का प्राणान्त हो जाता है। इसमे खांसी, बेहोशी, अतिसार, उदरशूल आदि उपद्रव अत्यन्त वेग से उठते हैं तथा चिकित्सा प्रायः असफल ही रहती है, अतः चिकित्सक इसे असाध्य कह दिया करते हैं।

आवश्यक नोट—मैंने अनुभव किया है कि इसका रोगी प्रायः ३ महीने तक कष्ट पाता है। ऐसा भी होता है कि एक बार निकलकर पुनः १४-२० दिन बाद निकल जाए। कभी कभी दो-तीन मास तक ज्वर बना ही रहता है। अन्त में जीर्ण ज्वर हो जाता है। इस प्रकार इसकी अन्यान्य अवस्थाएँ है, अतः वैद्य गणों को बहुत सोचकर चिकित्सा करनी चाहिये।

मधुर ज्वर की साधारण चिकित्सा–

रोगी का कक्ष बहुत साफ, सुन्दर एवं हवादार हो। द्वार पर नीम की हरी टहनी तथा शैया के समीप जल पात्र रखे जाय। कक्ष में प्रतिदिन ४-६ बार धूप बत्ती करे तथा हवन से भी शुद्ध करते रहे। रोगी के पास रजस्वला स्त्री एवं अशुद्ध पुरुष न जाने पाए। ध्यान रहे कि शुद्धता इस रोग का प्रमुख उपचार है।

रोग की प्रथम अवस्था मे अर्द्धावशेष, द्वितीयावस्था मे सेर का ३ पाव तथा तृतीयावस्था मे चतुर्थांश जल देना चाहिए। जल को मिट्टी के बर्तन मे औटाकर शीतल करले। जल दोनो समय ताजा बनाये। जल को औटाते समय स्वर्ण का टुकड़ा व अनबिंधे मोती उसमे डाल देने चाहिए।

आहार-विषयक—

प्रथम तो लंघन करना ही श्रेयष्कर है। यदि ज्वर का कोप घट जाय और रोगी को खाने की इच्छा हो तो ७ दिन बाद बालू मे भुनी हुई कूटू की खील थोडी थोडी करके कई बार दें। यदि श्वास, खांसी, अतिसार आदि उपद्रव शांत हो तो मिश्री मिलाकर गाय का दूध दे। अन्न का पथ्य तभी श्रेष्ठ है जब ज्वर निर्मूल हो जाय। यदि अतिसार आदि शान्त रहे तथा रोगी लघन न सह सकता हो तो सेकी हुई मुनक्का, कालीमिर्च और सैंधानमक मिलाकर दे देना चाहिए। भोजन देने मे अव्यवस्था और शीघ्रता रोगी के प्राण हर सकती है।

औषधि प्रयोग—

मधुर ज्वर की अवस्था एवं लक्षणादि के अनुसार चिकित्सक को उपयुक्त औषधि देने का प्रयत्न करना चाहिए। कुछ परीक्षित औषधियां इस प्रकार है—

[१] चन्दनादि क्वाथ–चन्दन लाल, सोठ, धनियां, खस, नेत्रवाला, पित्त पापड़ा इन सबको ४-४ माशे लेकर जौकुटकर के पाव भर जल में औटावे। जब यह एक छटांक रह जाए तो ठण्डा करके छान ले। इसे पीने से प्यास, दाह, बेचैनी और पित्तजन्य रोग शांत होते हैं। पित्त प्रधान ज्वर मे विशेष गुणकारी है।

[२] मुनक्का, पित्तपापड़ा, मुलहठी, नागरमोथा चारो को ६-६ माशे लेकर उपर्युक्त[१] रीति से काढ़ा बनायें और छः माशे शुद्ध मधु के साथ पिलावे। इसे दूसरी अवस्था मे देने से लाभ होता है।

[३] त्रिफला, मुलैठी, दालचीनी, कूठ, नील कमल, लाल चन्दन, बच, अडूसा, मुनक्का सिरस की छाल, पद्माक, मरोड़फली सबको १॥-१॥ माशा लेकर उपर्युक्त विधि से मिट्टी के पात्र मे औटाकर क्वाथ बनाये और ६ या ८ माशे मधु के साथ पिलादें।

आवश्यक नोट—तरुण ज्वर मे क्वाथ पूर्णतः निषेध है। अतः उपर्युक्त प्रयोग न० तीन उस समय दें जब ज्वर तरुणावस्था से पार हो। इससे मलावरोध तथा श्वास की निवृत्ति हो जाती है।

अन्य प्रयोग [४] गुलबनफशा, मुलैठी, उन्नाव, गिलोय [हरी], सौंफ, मुनक्का, गुलाब के फूल, पित्तपापड़ा इन सबको २-२ माशे लेकर जौकुट करके १ पाव जल में औटावे। जब आधा रह जाय तो गुलकन्द १ तोला मिलाकर पिलाये। इस काढ़े का प्रयोग तभी करे जब मलावरोध, दिमाग में गर्मी, व्यर्थ प्रलाप, खुश्की, प्यास, दाह आदि उपद्रव बढ़े हुए हो। ज्वर कम हो जाने पर भी ऊष्मा बनी हुई हो।

–श्री योगेन्द्रलाल शर्मा 'अरुण'
इमली मौहल्ला, कनखल [सहारनपुर]

कुचिला (Nuxvomica)

श्री शेखफयाज खा विशारद आयुर्वेदाचार्य, एम. सी. एस. ।

कुचला का चमत्कार सभी डाक्टर वैद्य हकीम जानते । दुनियां की सभी चिकित्सा पद्धतियां इससे लाभान्वित है । होम्योपैथी मे तो इसे बहुत वरता जाता है ।

आयुर्वेद और यूनानी भी इसे डाक्टरो से अधिक प्रयोग करते है । भारत मे प्राचीन काल से ही प्रयोग होता रहा है । अभी कुछ काल हुए डाक्टरो ने ड्रगएक्ट की ओट लेकर भोले वैद्यो को इसके प्रयोग से डराना आरम्भ कर दिया था और स्वयं इसके ठेकेदार बन गये थे। परन्तु जानकार तथा शास्त्रो के ज्ञाताओ ने उनको निरुत्तर भी कर किया दिया था ।

नाम -

अरबी—हब्बुल गराव, कातिलुल कल्त, खानिकुलकल्ब
फारसी—फालिस माही, कुचला
संस्कृत—विषदुर्म, रम्यफल, विषतिन्दुक, कालकूटक, विषमुष्टि, कारस्कर
हिन्दी उर्दू—कुचला, कुचीला
गुजराथी—जहर कुचला । तेलगू—मुष्टी चेट्टू ।
कर्नाटकी—कांजीतार
अंग्रेजी—वामिट नट (Vomit nut), डाग पायजन (Dog poison) आदि कहते हैं ।
लेटिन—नक्स वामिका (Nux Vomica)

इसके कड़वापन से सभी डरते है । कुत्ते कौवे और चूहे इसे खाते ही मर जाते है इसलिए साधारणतया इसे इन्हीं के लिये प्रयोग किया जाता था और अब भी ग्रामीण इसे इसीलिये काम मे लेते हैं ।

पहले पहल अरब वालो को इसके प्रयोग का दावा है परन्तु भारत मे भी प्राचीन काल से प्रयोग मे लाते रहे है । यूनान और योरप मे इसकी जानकारी बाद मे हुई है । सोलहवीं शताब्दी में अरबो द्वारा यूरोप में जानकारी प्राप्त हुई । सर्व प्रथम जर्मनी में डाक्टर वेलटी ने प्रयोग किया बताते है । सन् १६४० ई० मे यह इंगलैंड में भी पंसारियो के यहा पहुँच गया ।

इसका बीज गोल चपटा करीब १ इच तक होता है। ऊपर रूंये से होते है । तोड़ने पर दालो वाले बीजों की तरह दो भागों भागो में चिर जाते हैं और एक किनारे के पास अंकुर जिसे पित्ता भी कहते हैं निकलता है । इसमे कोई गंध नहीं होती । पुराने कथा साहित्य से ज्ञात होता है कि राजाओं ने अपने साथ विष से बचने के लिये कुत्ते आदि रखे और उनको खाना देने के बाद स्वयं खाते थे इसलिए कि वे विष से बचे रहे । वास्तव में कुत्ता गंध में दक्ष होने के कारण विषाक्त भोजन त्याग देता था । परन्तु कुचला मिले भोजन की गंध परीक्षा न होने से कुत्ते स्वाद के चाह मे खा लेते है और शीघ्र ही ३-४ घंटे मे ही मर जाते हैं ।

कुचले का पेड ३०-४० फीट ऊंचा होता है। पत्तियां पान के सदृश होती हैं । किनारे लालिमा लिए होते हैं । अन्य पत्तों मे प्रधान नस बीच में एक होती है परन्तु इसके पत्तों मे कई नसे होती हैं जो पत्ते को लम्बाई मे विभक्त करती हैं । इन्हीं के कारण पत्ते लम्बे सलवटदार होते है । पत्तो की गंध तेज और बुरी होती है । पत्रो को हाथ से मलने पर चिपचिपा पदार्थ निकलता है । डालियां पतली पर न टूटने वाली होती है । ग्रीष्म काल में नारङ्गी के के सदृश सुन्दर लाल फल लगते हैं । प्रत्येक फल मे ४ बीज होते है । यही बीज कुचला नाम से औषधियो मे प्रयोग होता है ।

कुछ लोगों का मत था कि कुचला और विषमुष्टि भिन्न भिन्न होते हैं। विषमुष्टि को संस्कृत में डोडिवा कद्‌खा कहते हैं और इनके फल खाये जाते हैं परन्तु कुचले के नहीं। पर साधारणतया विष्मुष्टि और कुचला एक ही मानते आये हैं।

कुचले का उत्पत्ति स्थान भारत में कोचीन, मद्रास, लंका, मालवा प्रान्त और ईस्ट इण्डीज, चीन आदि हैं।

एलोपैथी मे कुचले का जौहर अधिक प्रयोग होता है जो *Strichnine* के नाम से प्रयुक्त होता है।

रासायनिक विश्लेषण –

(१) स्ट्रक्नीन जो प्रत्येक बीज में ०.६ से २ प्रतिशत तक प्राप्त होता है। परतु पपीता के बीजों से भी स्ट्रकनीन प्राप्त किया जाता है जो कुचले से अधिक मात्रा में निकलता है।

(२) ब्रोसीन—यह ०.५ से १५ प्रतिशत तक प्राप्त होता है जो स्ट्रकनीन के साथ ही प्राप्त होता है। परन्तु स्ट्रकनीन से १३ गुना कमजोर होता है। आरम्भ में १/४० तक और बढाकर १/४ रत्ती तक खुराक दी जा सकती है।

(३) आइगेसोरिक एसिड—यह उपरोक्त दोनों द्रव्यो मे मिश्रित होता है।

(४) लोगेनीन-एक प्रकार का ग्लूकोसाइड है जो प्रभावहीन माना जाता है।

(५) कुछ मात्रा मे चर्बी व शर्करा भी होती है।

यूनानी मे इसे तीसरे दर्जे का गर्म व खुश्क माना जाता है। १ खुराक में १/२ रत्ती तक कुचला दे सकते है। फिर बढ़ाते हुए २ रत्ती भी दे सकते है। जौहर कुचला (स्ट्रकनीन) १/१२० रत्ती से १/३० रत्ती दे सकते हैं।

मारक मात्रा

कुचले को १½ माशा एक ही खुराक मे दिया जाय तो यह शीघ्र मारक प्रभावयुक्त होता है। दुबले मनुष्य को तो यह बहुत ही शीघ्र मार डालता है। प्राय १ घटे के पश्चात् जी मे घबराहट, बेचैनी शरीर मे अकड़न (खाइंट आना) होती हैं। कमर मे तेज दर्द होने लगता है, हाथ पैरो और रीढ़ की नसो मे खिचाब आने लगता है। प्यास बढ जाती है। रोगी हाथ पैर पटकने लग जाता है। आंखें बाहर सी निकलने लगती हैं, रोगी ऐसा प्रतीत होता है। कि वह हंस रहा हैं परन्तु तेज अकड़न और खिचाब के दौरे पड़ते है तब पास खड़े परिचारक भी घबरा जाते है। एडी और सर के बल कमर उठकर धनुष की की भांति कमर ऊपर उठ जाती है और दौरो मे तेजी आते हुए स्वांस रुककर रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

जब रोगी को दौरे पड जाते है तो असाध्यता ही मानी जाती है परन्तु वमन द्वारा दोष कम होकर रोगी बचते भी है। ऐसी अवस्था मे घी पिलाना चाहिए। ऐसी दवा दी जाय जिससे नसो मे फैलाब व ढीलापन हो। कपूर का पानी पिलाया जाय अफीम की कुछ मात्रा भी इसमे मिलाई जाती है। दूध घी मिलाकर पिलाया जाय। ×

इसका प्रयोग निरन्तर न करवा कर जब दी जाय एक सप्ताह तक देने के बाद १दिन छोड़ कर फिर

× आज से ६ वर्ष पूर्व मैने अपने शरीर पर इसका प्रयोग किया (वास्तव मे मैने ही गलती की) धन्वन्तरि कार्यालय का शुद्ध कुचला चूर्ण मैने हलवे के साथ लेने का विचार किया क्योंकि उन दिनों कमर मे दर्द सा रहता था। मेरी स्त्री ने पाव भर हलवे मे एक चम्मच (छोटा खाने का) भर कुचला-चूर्ण डाल दिया। मैने १ कौर तो खा लिया। पूंछने पर ज्ञात हुआ कि पहले से ही हलवे मे मिला दिया है। मैने १ ग्रास और खालिया। २ घण्टे बाद शरीर सुन्न सा होता देखकर मैने खूब पानी पी लिया इससे वमन होने लगे। प्रात का खाया हुआ सब भोजन निकल गया। ६ वमन होने के पश्चात् मैने कालीमिर्चों तथा अद्रक की चटनी खाकर घृत के घूंट पीये तब विष शमन हो गया। शाम तक स्वस्थ होगया। कटि पीडा भी चली गयी।

इस हलवे को जो शेष था सुखा दिया गया। एक दिन एक कुत्ता रसोई मे घुस गया और सूखा हलवा खा गया। २ घन्टे के भीतर ही कुत्ता तडफ तडफ कर मर गया।

सप्ताह भर तक दे सकते है।

नोट विष शमन के लिए—धन्वन्तरि विष चिकित्सांक (१६४३) विशेषांक मे विशेष अध्ययन करिये।

कुचला का प्रयोग से पहिले शुद्धीकरण—

एक सिद्धात ध्यान मे रखना चाहिए कि इसका विषैला प्रभाव दूर हो जाय परन्तु कड़वापन दूर होने पर इसका लाभकारी अश भी नष्ट हो जाता है।

एक सप्ताह तक कुचला बीज जल मे भिगो देना चाहिए। नित्य पानी बदलते रहना चाहिए। नर्म हो जाय तो छिलका दूर करके उसमें से बीज कुक्षि (पित्ता) निकाल देना चाहिए। फिर गर्म पानी से धोकर दूध मे जोश देना चाहिए। पोटली मे बाधकर लटकाना चाहिए। जब खोआ सा हो जावे तब पोटली से बीज निकालकर शीघ्र ही रेती से घिस कर चूर बना लेना चाहिए। इस कार्य में यदि देरी होती है तो यह रबर की भाति सख्त हो जाते है और फिर कूटना असम्भव सा हो जाता है।

कुचले के भिन्न प्रयोग -

१-कुचले के साथ फिटकरी मिलाकर (½ भाग) लेप करने से दाद मिटता है।

२—रोगन गुल में कुचला घिस कर लेप करने से भी दाद मिटता है।

३—गठिया, जोड़ो का दर्द लकवा, गृध्रसी (अर्कुन्निसा) आदि के लिए तेल में पकाकर तेल मर्दन से लाभ प्राप्त किया जाता है।

४ -कुचले को सांप की कैंचुली के साथ पानी मे घिसकर लगाने से बाल देरी से उगते है। लगाने से पहले बाल साफ करले। यदि त्वचा पर खराश या रगड़ आदि लगी हो तो न लगाये।

५—शीत प्रकृति पुरुष इसके प्रयोग से उष्ण प्रकृति वाले हो जाते हैं।

६—दमा व खासी में कफ को कम करता है।

७—बुढापे में बल देकर जवानी के समय को लम्बा करता है।

८—खोई हुई कामशक्ति को फिर से बढ़ाता है। नपुंसकता दूर करता है।

६—कुचले मे रक्तशोधक गुण भी है इसलिए सुजाक वालो को भी बिना हिचकिचाहट दे सकते हैं।

१०—कुचला तथा सत्व कुचला दोनो कटु होने से आमाशय को भी लाभ पहुंचाते है। आतो के रक्त प्रवाह को बढ़ाकर पाचक रस उत्पन्न करता है। कोष्ठबद्धता दूर कर शरीर को बल देता है। इसी लिए चतुर वैद्य लम्बी बीमारी के बाद कमजोरी मिटाने के लिए इसका प्रयोग करते है।

११—चतुर वैद्य, जब रोगी को लौह भस्म आदि देते है तब कुचला अवश्य प्रयोग करते है। इससे भस्म शरीर में शीघ्र लाभ देती है और पाचनशक्ति कम नहीं होती।

१२—हृदय को बल प्रदान करने की शक्ति होने के कारण किसी भी रोग मे जब रोगी मरणासन्न सा हो जाता है तो डाक्टर भी इसका प्रयोग करते है। टाइफाइड, चेचक आदि में भी इसके प्रयोग से रोगी बच जाते है।

१३—इसका प्रभाव रीढ़ तथा नीचे के अंगो पर तथा पेट पर पडता है और मस्तिष्क पर कोई प्रभाव
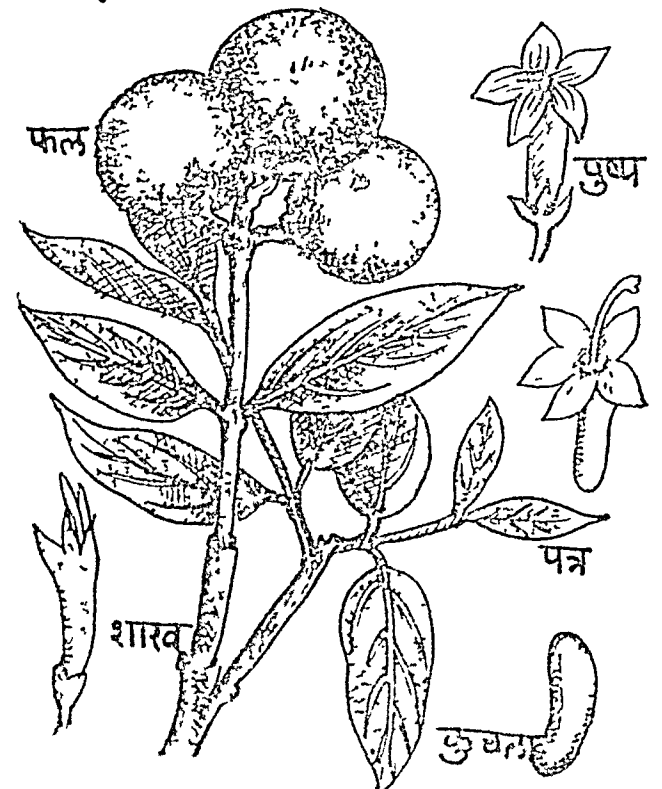
नहीं पड़ता इसलिए कुचला जहर खाने वाले रोगी को अन्त समय तक चैतन्यता बनी रहती है।

१४–लकवा आदि वातरोगो मे जब तक कि रोगी के जोड लटक न गये हो और बिजली के झटके का प्रभाव ज्ञात हो तो कुचला के प्रयोग से ठीक भी हो जाते है।

१५–अनिन्द्रा में भी इसका प्रयोग किया जाता है क्योकि अक्सर नींद में कमी आने का कारण कोष्ठबद्धता होती है। यह कब्जी मिटाकर शक्ति प्रदान करता है। इसलिए ऐसे रोगी को नींद लाने के लिए नशीली दवा न देकर इसका प्रयोग करना चाहिए।

१६–वृक्कों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है तथा मसाने के दोष भी मिटाता है। जब वृद्धावस्था या बालकों मे बहुमूत्र रोग हो तो इसका प्रयोग लाभदायक होता है। बच्चो को उचित मात्रा मे देने से बिस्तर मे मूतना बन्द हो जाता है।

१७–प्रातःथकान (*Morning Sicknness*) का कारण पिछली रात को ३ बजे बाद नींद न आना मुख्य कारण होता है। प्रौढावस्था मे और विशेष रोग के कारण से एसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में भी कुचाला लाभदायक होता है।

१८–कामशक्तिवर्द्धक गुण के कारण वृद्ध लोग जो पुन विवाह करते है उनके लिए भी लाभदायक है। कुछ डाक्टरो का मत है कि व्यभिचारियो को इससे लाभ नहीं होता। परन्तु ऐसा कभी देखा नहीं गया। कामशक्ति का क्षय होने के साथ साथ अन्य रोग भी हो सकते हैं। उचित निदान करने के *पश्चात वैद्य कभी गल्ती नहीं कर सकता।*

१९–इसकी मात्रा बढ़ाते (घृत आदि के अनुपान सहित शक्ति अनुसार) बढ़ाते लोग एक पूरा कुचला भी हजम करने योग्य हो जाते हैं और लाभ ही होते देखा है।

२०–कुत्ता काटने पर रोगी को इसका प्रयोग करने पर लाभ होता है। पागल कुत्ते के काटने पर भी इससे पूर्ण लाभ होता है।

कुचला और होम्योपैथी–

वैद्य बंधुओ को आयुर्वेद भक्त रहने के साथ साथ अन्य चिकित्सा पद्धति के नये अनुभवो से अनभिज्ञ भी नहीं रहना चाहिए। कुचले पर होम्योपैथी मे विशेष प्रयोग किए गए। मैने उनके इन्जेक्शन आदि आयुर्वेदिक योगो के साथ प्रयोग किये और सोने मे सुगन्ध की तरह नवीन ज्ञान तथा यश भी प्राप्त किया। होम्योपैथी मे भी कुचले की गुण गाथा संक्षेप मे देख लीजिए और लाभ उठाइए।

कब्जियत, उदरशूल, अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, दमा, अर्श, धातु क्षीणता, ध्वजभंग, कटिवात, आंत उतरना, प्रसवकष्ट, रक्तप्रदर, कृमि, मासिक स्रावाधिक्य, पक्षाघात, श्वास कष्ट आदि मे रोग लक्षण देख कर इसे प्रयोग किया जाता है।

(१) साधारण स्थिति वाले, सूखी सूखी खुराक खाने वाले, दिनभर महनत मजदूरी कर उदर पोषण मे लीन थके मादे से दिखाई देते है। उनको इसका प्रयोग लाभ पहुंचाता है।

(२) प्रातः थकान, भोजन के बाद शरीर भारी होना, रात के पिछले पहर मे जागना भोजन के पश्चात् कुछ देर बाद उदर मे पीड़ा होने वाले रोगियो को नक्स वोमिका [कुचला] प्रयोग कराया जाता है।

[३] स्त्री का मासिक स्राव कमजोरी के कारण अधिक हो जाना, इससे रुकता है।

[४] उदररोग में बार बार मलत्याग के बाद भी शंका बनी रहने की अवस्था मे प्रवाहिका [पेचिश] मे इसका प्रयोग लाभकारी होता है।

[५] निरन्तर जुकाम रहना, रात को नाक बंद हो जाना, चिड़चिडा स्वभाव, क्रोधी प्रकृति स्वभाव वाले को इससे लाभ होता है।

[६] सिर के पीछे का भाग, गर्दन भारी, आंखो के ऊपर दर्द, सर चकराना, सिर दर्द के साथ अर्श रोग, धूप में जाने से सिर दर्द होना, आंखो से पानी गिरना, कभी नाक बन्द और कभी नकसीर पड़ने वालों को कुचला लाभदायक है।

[७] भोजन के बाद कभी वमन, खट्टी डकारें आना, चरपरी वस्तु अधिक खाने का चाव, यकृत शोथ, शूल, श्वासकष्ट आदि में कुचला लाभ करता है।

[८] बार बार मूत्र उतरना फिर भी शंका, मूत्र नली में जलन, कमरदर्द, स्वप्नदोष, कामवासना की कमी में भी लाभकारी है।

[९] गर्भाशय शूल, अनियमित ऋतुस्राव, प्रदर में भी अशोकारिष्ट के साथ कुचला प्रयोग लाभकारी है। [विषतिण्दुक वटी आदि]

[१०] हाथ पैर बैठे बैठे सुन्न हो जाना, कटि पीड़ा, खट्टा पसीना आना, ऐसी अवस्था में भी लाभदायक होता है।

इसकी शरीर शक्ति के अनुसार से अधिक मात्रा निरन्तर देने पर हाथ-पैरो मे सुन्नता, लकवा और ऐठन [वाइटे] आने लग जावे तो कुछ काल के लिए प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। रोगी को घृत की मात्रा अधिक प्रयोग करने को कहे और कपूर का प्रयोग करे। होम्योपैथी में इसके दोष शमन हेतु मैग्नेशिया, काफी और केम्फर [कपूर] देते है।

एलोपैथी में कुचला प्रयोग—

डाक्टरो के मतानुसार कुचला प्रयोग होता है परन्तु बहुत कम। उपरोक्त रोगो को दुहराना ठीक न होगा। कुछ योग जो अधिक प्रयोग होते है वे निम्नांकित है। प्रधानतया कुचला चूर्ण (Nux vomica Powder), कुचला सत्व [Strichnine] और इसका टिंक्चर [Tincture Nux vomica] प्रयुक्त होते है।

(१) Liquor Stricknia [लाइकर स्ट्रकिनया]-४ ग्रेन जोहर कुचला, ६ बूंद हाइड्रोक्लोरिक एसिड, २ ड्राम शराब, ६ ड्राम पानी मिलाकर तैयार किया जाता है।

(२) Nux vomica Pills—कुचला चूर्ण २ ग्रेन या सत्व कुचला ३⁄० ग्रेन, लौंग २ ग्रेन, सौंठ १ ग्रेन, अडे की सफेदी मे १ रत्ती के बराबर गोली बनावे। २ गोली भोजनोपरांत दे।

(३) फेराई क्वाइनी साइट्रास ४ ग्रेन, शर्वत ६ ड्राम, लाइकर स्ट्रकनीया ४ ग्रेन, पानी इतना मिलावे कि १० तोला हो जावे। खुराक १ तोला—दिन में २ बार।

(४) कुचला सत्व ३ बूंद, शराब सूंठ १० बूंद और पानी १ औंस। ३ बार। यदि शरीर अधिक कमजोर हो तो फास्फोरिक एसिड १५ बूंद। प्रति खुराक मिलाने से लाभकारी अधिक होता है।

(५) अतिसार के रोगी को Emetine के इंजेक्शन देने से कमजोर व्यक्ति का हृदय दुर्बल होता जाता है। इसी अवस्था में चतुर डाक्टर इसी योग के साथ कुचला का सत्व प्रयोग करते है या 'युनी-एमेटिन' के इञ्जेक्शन देते है। इसमें कुचला सत भी होता है। यह हृदय तथा यकृत् को बल देता है और हानि नहीं होने देता।

एक अधकचरे वैद्य ने ऐसे रोगी को केवल एमेटिन ही दिये और रोगी कमजोर होता गया। उक्त रोगी को १ मास के निरन्तर एमेटिन प्रयोग से अतिसार रुकता गया पर शरीर सूखता गया। ज्वर के साथ दम व खासी ने जकड दिया और उनको मरना ही पड़ा।

(६) रक्ताल्पता मे—लौह, मल्ल तथा कुचला सत्व के इञ्जेक्शन दिये जाते है।

(७) कोष्ठबद्धता पर डाक्टरी योग—

टिंक्चर एलोज ४ मिनम, टिंक्चर बेलाडोना २ मिनम, टिंक्चर नक्स वोमिका ३ मिनम, सीरप सेना (सनाय) २० मिनम, ग्लेसरीन ५ मिनम, वाटर १ ड्राम। सबको मिलाकर दिन मे ३ बार दिया जाता है।

(८) ज्वरहर मिक्चर—कुनैन सल्फेट २ ग्रेन, टिंक्चर आयरन क्लोराइड १० मिनम, टिंक्चर नक्स वोमिका ४ ग्रेन, डाइल्यूट हाइड्रोक्लोरिक एसिड ३ ग्रेन, पानी १ औंस। कमजोरी दूर करके ज्वर हटाता है।

(९) अफीम छुडाने के लिए टिंक्चर नक्स वोमिका १० मिनम, पोटाशियम ब्रोमाइड १० ग्राम, पानी (एक्वा) १ औंस।

(१०) टोनिक पिल्स—फेरी आर्सेन ⅛ ग्राम, एक्सट्रेक्ट नक्स वोमिका ¼ ग्राम, क्विनाइन सल्फ २ ग्राम, पिल रेई को० २ ग्राम उचित मात्रा मे दे।

(१०) कोष्ठबद्धतानाशक-नक्स वोमिका पिल्स-ड्राई एक्सट्रेक्ट नक्स वोमिका ½ ग्रेन, ड्राई एक्सट्रेक्ट ¼ ग्रेन, ड्राईएक्सट्रेक्ट एलौज (एलुवा) १ग्रेन। यह एक गोली की मात्रा है। बड़े पैमाने पर तैयार करके इसी मात्रा की गोलियां बना सकते हैं। कब्जी मिटाता है।

वैद्य बन्धु उपरोक्त नुसखो मे घृणा न करे इन्हे देखकर ज्ञात करे कि हमारे आयुर्वेद ही की चोटी से प्राप्त की हुई वस्तुऐ है। नाम दूसरा होने से इनको छोड़ नहीं देना चाहिए।

कुचला के आयुर्वेदिक परीक्षित प्रयोग-

(१) आनन्द रसायन—कामशक्ति बढ़ाकर पाचनशक्ति, रक्ताल्पता, कब्जी, शीघ्रपतन तथा प्रमेह को मिटाता है।

शुद्ध कुचला १ तोला, लौह भस्म १ तोला, शिलाजीत १। तोला, काली मिर्च ६ माशा, केशर ३ माशा। शहद योग से १ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें। प्रात संध्या १ गोली हलुवे या घी मिले दूध के साथ सेवन करे।

(२) शक्तिदायक—शुद्ध कुचला २ तोले, लौंग, जावित्री, जायफल, ऊदसलीब, अकरकरा, जंद वेदस्ता प्रत्येक १-१ तोला, केसर, अफीम, शिलाजीत प्रत्येक ६-६ माशे। अफीम गाजवां के अर्क मे मिला के, फिर शेष सबको मिलावे। १ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनावे। रात को दूध से १ वटी दे। शीघ्र पतन, नामर्दी, नजला, जुकाम को हटाकर नवजीवन देती है।

(३) हुब्बे अजाराती—लकवा, फालिज, गठिया और कटिवात को गुणकारी है।

कुचला शुद्ध ४ तोले, गुड़ ८ तोले, गूगल ४ तोला सब मिला ले। १ गोली रत्ती प्रमाण दूध में देना चाहिए।

(४) विषतिन्दुक वटी (Nux vomica Pills) (ऊंझा कम्पनी का योग)—

शुद्ध कुचला ४० तोले, सोंठ २० तोले, २ रत्ती की गोलियां बनावे। २ गोली भोजनोपरांत जल से दे शक्तिवर्धक, वातनाशक है। सब गुणो से युक्त है। ऊंझा कम्पनी की तैयार इसी योग की गोलियां मैं लकवा, अशक्ति और उपरोक्त अन्य सभी अवस्थाओ मे प्रयोग करता हू। होम्योपैथी के इन्जेक्शन Nux vomica १ c. c. के साथ खतरनाक दशाओ पर भी इनके प्रयोग से यश प्राप्ति होती है। कोई हानि नहीं होती।

(५) विषमुष्टिक गुटिका—शुद्ध पारद, गंधक, बच्छनाग, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, यवक्षार, सैंधव, सौर्वचल लवण, चित्रकमूल, त्रिकटु, वायविडङ्ग सब समान और इन सबके समान तोल मे शुद्ध कुचला लो। पारे, गधक की कज्जली मे बच्छनाग चूर्ण मिलाकर फिर सबको मिलादे और ७ भावना नींबू रस की दे। पश्चात् २ रत्ती की गोलियां बनावे।

इसके सेवन से ग्रहणी, अजीर्ण, आंत्र शैथिल्य तथा वात का नाश होता है। श्लेष्मकला शोथ मिटता है।

(६) कुचला का तैल—कामशक्तिवर्द्धक, गठिया, कब्जी, कमजोरी आदि दूर करता है।

शुद्ध कुचला १ पाव, गाय का दूध ५ सेर मे पकाकर खोया करे। फिर शक्कर मिलाकर हलुवा बनावे। कढ़ाही मे हलकी आच पर रखे और ताजे दूध की लस्सी के छींटे दते जावे और मावा (खोये) को दबाते रहे, एक तरफ चिकनाई आती रहेगी। यह तेल शीशी मे रखे पान पर १ बूद डालकर खावे, ऊपर से हलवा ताजा बनाकर खावे।

(७) कुचला तैल—गृध्रसी, गठिया, कटिवात मे लाभदायक है। मर्दन के लिए उत्तम है।

अफीम २ तोले, गौदूध २० मे घोलकर कुचला १० नग टुकड़े करके मिलावें। तिल तेल ३० तोला मिलाकर पकावे। दूध जल जावे तब तैल प्राप्त करे। मर्दन करने के लिए उत्तम है।

(८) माजून कुचला—शक्तिवर्द्धक, कफनाशक, नजला जुकाम को दूर करता है। शुद्ध कुचला, मूसली श्वेत, सालम, कतीरा, गुलबाबूना प्रत्येक २ तोला, बहमन ४ तोला, पीपल, सोंठ, धनिया, गोरखमुण्डी प्रत्येक १ तोला, चिलगोजा ३ तोले, अखरोट गिरी ३ तोले, बादाम ६ तोले, फोलाद भस्म, मूंगा भस्म, अकीक भस्म प्रत्येक १ तोला, चांदी वर्क १ तोले, सोने के वर्क २ माशा, मुनक्का ५ तोले, शहद दुगुनी मिलाकर रखें। खुराक ३ माशा २ बार दिन में दूध के साथ खावें।

(९) मदनानन्द (तिला—अकरकरा, मिर्च, कूट, मालकांगनी, धत्तूरबीज (स्याम), श्वेत कनेर मूल की छाल, श्वेत चिरमटी, नकछिकनी, लौंग, जावित्री, बच्छनाग स्याम, कुचला, बीरबहूटी, तिल तैल से घोटकर पातालयन्त्र द्वारा तेल प्राप्त करें और जंदबेदस्तर मिलाकर तिला करे।

(१०) आनन्ददायद तिला—रीछ की इन्द्री, कुचला, समुन्दर सोख, समुन्दर भाग, मिर्च, कनेर श्वेत की छाल को पीसकर कूकनार श्वेत के जल में मिलाकर तिला करे।

(११) आनन्ददायक तिला—आक की जड़ की छाल २ तोला, कुचला चूर्ण १ तोला, कनेर श्वेत की छाल (जड़ की) ४ तोला सबको केवड़ा के डंठल के पानी में घोलकर छोटे बेर के बराबर गोली बनावें और आवश्यकता पड़ने पर पोस्त के डोडे के जल में घिसकर सुपारी छोड़ कर लेप करें और पान बांध दे। १ घण्टे बाद साफ करके स्त्री प्रसंग करे। धोने के लिए गर्म जल प्रयोग करें। फिर चमेली का तेल लगाकर स्त्री सेवन किया जाता है। स्तम्भनकारक है।

(१२) स्तम्भनकारक लेप—कुचला, श्वेत कनेर मूल का छिलका, धत्तूर स्याम पत्र, समान भाग शराब मे खरल करके लेप करने से लिंग दृढ़ होता है। जितने अधिक समय तक लेप रहेगा उतना अधिक स्तम्भन होगा। लेप करने के १ घंटे बाद गर्म जल से धोने के बाद प्रसग करने पर भी काफी समय तक रुकावट रहती है।

(१३) शक्तिदा वटी--कुचला और कालीमिर्च समान भाग पीसकर ज्वार बीज के समान गोलियां बना दे और पहले दिन १ दूसरे दिन २ इसी प्रकार ९ वें दिन ९ गोली तक बढ़ावे। इस प्रकार १ वर्ष पर्यन्त ९ गोली प्रतिदिन लेता रहे। वृद्ध को तरुण कर देने वाला योग है।

(१४) नपुंसकतानाशक तैल—कुचला, जायफल, शुद्ध जंपाल, जावत्री, अकरकरा, पलास, पापडी सब समान, ५-५ तोले, कबूतर विष्टा १० तोले पीसकर १६ सेर जल में पकावें। चौथाई रहे तब क्वाथ छान ले। फिर दूध ४ सेर, तिल तैल २ सेर, कालकागनी का तैल २ सेर। फिर उपरोक्त ही सब क्वाथ की वस्तुओं का १८ भाग लेकर पिण्टी बनावे। तीनों द्रव्यों (क्वाथ, तैल तथा पिण्टी) को एकत्र करके जलीयांश सूखने पर्यन्त अग्नि पर पकावें तैल ठण्डा होने पर छान कर शीशियों में भर कर रखा जाय।

उचित मात्रा में इन्द्री पर मालिश करके एरंड या ताम्बूलपत्र बांधा जाय। लिंग की मांसपेशियों को शक्ति प्रदान कर ढीलापन दूर करके दृढ़ बनाता है, सभी खराबियां मिटाने में अचूक परीक्षित योग है।

—श्री शेख फय्याज खा विशारद आयुर्वेद शास्त्री,
भीनमाल (जालोर)

कण्टकारी योग

श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

१—छोटी कटेली, भारङ्गी, गिलोय, सौंफ, इन्द्र जौ, वासा, चिरायता, रक्तचन्दन, नागरमोथा, परवलपत्र, कुटकी, तुलसी, करञ्ज पत्र इन १३ द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करें। २-४ तोले क्वाथ कर मिश्री मिला पिलावे। पित्त अधिक होने पर २ रत्ती प्रवाल पिष्टी की पुड़िया साथ में दे। यह क्वाथ पित्त श्लेष्मज्वर, तृषा, दाह, अरुचि, कफ श्लेष्मक ज्वर, वमन, श्वास, कास, शूल को दूर करता है।

२—छोटी कटेली, बड़ी कटेली, वासा, मुनक्का मिश्रित २ से ४ तोला लेकर क्वाथ करें। बताशा या मिश्री मिलाकर पिलाने से पित्तज कास, शुष्क कास, दाहयुक्त कास दूर होती है। विवेचनानुसार १ रत्ती कपूर साथ में दे।

३ छोटी कटेली, भारङ्गी, नागरमोथा, वासा, गिलोय मिलाकर २-४ तोले का क्वाथ कर मिलादें। इससे कास में लाभ होता है। साथ मे आवश्यकता होने पर चन्द्रामृत रस दे।

४ कटेली, हल्दी, वासा गिलोय, सोंठ छोटी इलायची, भारङ्गी, नागरमोथा, कालीमिर्च मिलित १ तोला ले। क्वाथ कर मिश्री मिला पिलावे। इससे श्वास, कास, श्लेष्मक ज्वर, कफ, अरुचि दूर होते है।

५—कटेली के स्वरस १ या २ तोला मे १ रत्ती कपूर या २ रत्ती हींग घोट कर पिलाने से श्वास का दौरा रुकता है। रोगानुसार मात्रायें देनी चाहिए।

६ कटेली, गिलोय, सोंठ, तुलसी, चिरायता मिलित २-४ तोला क्वाथ मधु या मिश्री या बताशा मिला पिलाने से श्लेष्मकज्वर, कास, कफज्वर, विषमज्वर दूर होता है। एक मात्रा मे कालीमिर्च के ५ दाने मिलालें।

७—कटेली, मुलहठी, पान की जड़, दालचीनी, वासा मिलित २-३ तोला का क्वाथ कर १ तोला मिश्री या बताशा मिलाकर पिलावे। कब्ज होने पर १ हर्र या ५ मुनक्का उक्त प्रयोग मे मिलाले। श्लेष्मिक ज्वर, कफ ज्वर, विषमज्वर, कास दूर होते है।

श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव,
मु० महदेवा पो० अरौल (कानपुर)

:: पृष्ठ १०६२ का शेषांश ::

कर्म, प्रभाव, प्रयोग—

(अ) तिक्त कषाय लघु रूक्ष होने से आंत्र में वात की वृद्धि तथा तत्रस्थ धातुओं का संकोच होकर स्तम्भन कर्म होता है।

मुख्यकर्म—स्तम्भन, इसके अतिरिक्त कृमिघ्न, रक्तपित्तहर, प्रमेहघ्न भी है।

(ब) आन्त्रप्रभावक (Acting on intestine)

(स) प्रयोग—

१. अतिसार मे पंचाङ्ग स्वरस १॥ तोला सेवन करते है।

२. मोरशिखा को चतुर्गुण गौघृत मे सिद्ध करके वातज शोथ मे देते है।

३. रक्तार्श मे भी उपरोक्त घृत उपयोगी है।

४. मयूरशिखा ज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त मे भी प्रयोग की जाती है।

—श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय
गुरुकुल कागड़ी, हरिद्वार।

सत्य की खोज मे—

लेखक—श्री कुलरंजन मुखर्जी, पृष्ठ ६०, मूल्य ६० नये पैसे। इसमे लेखक ने परोपकार, प्रेम, धर्म, कर्म, ससार, क्रोध, आलस्य आदि भिन्न भिन्न विषयो पर अपने स्वत के आन्तरिक विचारो को बहुत संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप मे पंक्तिबद्ध किया है। पुस्तक मननीय है।

उक्त लेखक की ही एक बहुत छोटी ११ पृष्ठो की पुस्तिका वेदगीत है, जिसमे उपनिषद के कुछ मंत्रो को अर्थ सहित प्रकाशित किया गया है। यह नित्य ही स्तोत्ररूप मे पठनीय है। मूल्य—६ न० पै०। प्राप्ति स्थान—प्राकृतिक चिकित्सालय, ७७४/२ बी० हाजरा रोड (पश्चिम), कालीघाट, कलकत्ता—२६।

कर्त्तव्य —

लेखक—श्री सुखदेव जी शास्त्री। प्रकाशक—आयुर्वेद प्रतिष्ठान, चौमूं, जयपुर। मूल्य—नित्य उपासना। इस पुस्तक मे लेखक ने भगवती स्तुति, संध्याविधि, मानस पूजा, गायत्री का ध्यान, कवच, जपविधि और कुछ आरतियो का उत्तम संग्रह किया है। सर्व साधारण के उपयोगार्थ हिन्दी मे सब श्लोको का भावार्थ भी दिया गया है।

journal of the clinical society

यह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज एव सर सुन्दरलाल अस्पताल का प्रमुख वार्षिक पत्र है। इसमे उक्त महाविद्यालय के वार्षिक समारम्भ की चर्चा के साथ ही कई पाश्चात्य तथा आयुर्वेद विषय के १५ सचित्र लेख है।

व्यास पञ्चाङ्ग- —

यह गुजराती भाषा का सम्वत् २०१७ का वृहत् रूप मे प्रकाशित पंचांग है। प्रतिवर्ष यह रसशाला औषधालय गोंडल (सौराष्ट्र) से प्रकाशित हुआ करता है। मूल्य—१.६६ रु० है। इसमे सम्पूर्ण श्रीमद्भागवद्गीता का गुर्जर भाषा मे पद्यानुवाद एवं गीता विषयक कई महत्वपूर्ण बातो पर प्रकाश डाला गया है। नारायण स्तोत्र आदि कई स्तोत्रो का सानुवाद संग्रह तथा ज्योतिष सम्बन्धी आवश्यक बातें लिखी हैं।

आरोग्य मन्दिर का विशेषाङ्क -

यह धूतपापेश्वर इन्डस्ट्रीज लि० पनवेल (बम्बई) का महाराष्ट्र भाषा का प्रमुख सचित्र मासिक पत्र है। इस विशेषाक मे महाराष्ट्र का आहार, शिवकालीन आयुर्वेद, षड्रस, योग विद्या का वैज्ञानिक संशोधन आदि उत्तम पठनीय लेख है। यह पत्र गत २३ वर्षो से आयुर्वेद की श्रेष्ठ सेवा कर रहा है। वार्षिक चन्दा (मूल्य) ४.०० रु० है।

साण्डू (त्रैमासिक)——

यह दत्तात्रेय के कृष्ण साण्डू ब्रदर्स चेम्बर प्रायवेट लि० का सचित्र मासिक त्रैमासिक पत्र इसी वर्ष से प्रारम्भ हुआ है। इसमे आयुर्वेद के विज्ञान और आरोग्य सम्बन्धी उत्तम लेख आते है। वार्षिक मूल्य २.०० रु० है।

आरोग्य मित्र——

यह भी मराठी भाषा का मासिक पत्र है। इसमे रोगो का सुलभ औषधोपचार दिया जाता है। वार्षिक मूल्य ३.०० रु० है। पता—स्लीटर रोड-ग्रान्टरोड, बम्बई—७

सुश्रुत संहिता-

टीकाकार—कविराज डा० श्री अम्बिकादत्त जी

शास्त्री ने इसमें आयुर्वेद तत्वसन्दीपना हिन्दी व्याख्या के साथ वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणी भी विस्तारपूर्वक लिखकर ग्रन्थ की शोभा एवं उपयोगिता को बहुत बढ़ा दिया है।

चरक, सुश्रुत आदि संहिताएँ ऐसे महान् त्रिकालज्ञ महर्षियों की कृतियां है, जिनका ज्ञान भंडार अगाध एवं अक्षय है। संहिताओं का जितना ही अवगाहन किया जाय उतना ही श्री मद्भागवद्गीता के सदृश उनके अर्थगाम्भीर्य का बोध होता जाता है। इसीलिये इन ग्रन्थों की अनेक टीकाकारों ने अपने २ बुद्धि वैभव के अनुसार व्याख्याएँ एव टीका टिप्पणियाँ की है। तथा आज विज्ञान की जागृति का काल होने से और भी इस प्रकार की टीकाओं का होना संभव और आवश्यक है।

प्रस्तुत टीका ग्रन्थ में टीकाकार ने अत्यधिक परिश्रमपूर्वक प्राचीन आर्ष टीकाओं का पूर्णतया आलोड़न कर उनका सारभूत अंश यत्र-तत्र अपनी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी के साथ व्यवस्थित ढंग से प्रकाशित कर विद्यार्थियों पर महान उपकार किया है।

ऐसे विस्तृत ग्रन्थ में ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थान्तर्गत विषयों की, वर्णनक्रमानुसार ग्रन्थसन्दर्भ सूची का होना परमावश्यक है। आशा है आगामी संस्करण में टीकाकार महोदय ऐसी सूची इसमें अवश्य ही लगाकर अध्यापक एवं छात्रों को विशेष उपकृत करेंगे।

११७० पृष्ठों के सुन्दर सजिल्द इस ग्रन्थ का मूल्य २४.०० रु० है। प्रकाशक—श्री जयकृष्णदास हरिदास गुप्ता, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

भावप्रकाश निघण्टु—

सविमर्श हिन्दी व्याख्योपेत।

इसके सम्पादक श्री गंगासहाय जी पाण्डेय ए० एम० एस० तथा विमर्शकार श्री कृष्णचन्द्र जी चुनेकर ए० एम० एस० हैं। प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी—१ पृष्ठ ६४४ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ९.०० रु० है।

इस निघण्टु में सम्पादक ने परिश्रमपूर्वक कई दो अर्थवाले शब्दों का (जैसे अश्मन्तक अम्ललोणिका कोविदारश्च अर्थात् आम्बिलोन और कचनार, कठिल्लक कारवेल्ल. रक्तपुनर्नवाच-करैला और लाल पुनर्नवा इत्यादि) एवं कुछ अनेक अर्थवाले शब्दों का (जैसे —काक = कौवा, मकोय काकोली, लालगुंजा, काकजघा, कोआठोड़ी और कठूमर इन सब अर्थों में काकशब्द का प्रयोग होता है) इत्यादि का संग्रह किया है। साथ ही साथ परिशिष्ट में अकीक, अंजरूत अगट, सैन्टोनीन आदि यूनानी, अंग्रेजी उपयोगी भेषज द्रव्यों का संग्रह एवं उनका संक्षिप्त वर्णन कर पुस्तक को विशेष उपयोगी बना दिया है। अन्य निघण्टुओं के समान इसमें व्यर्थ, भ्रमात्मक पर्याय संग्रह का दोष नहीं दिखाई देता प्रत्युत् वैद्यों और हकीमों के द्वारा प्रयुक्त प्रायः मुख्य २ भेषज द्रव्यों का यह एक उत्तम संग्रह ग्रन्थ हो गया है। इसकी आधुनिक चिकित्सक को बहुत बड़ी आवश्यकता थी। किन्तु इसमें भी इन्डेक्स या ग्रन्थ सन्दर्भ सूची का न होना बहुत खटकता है। वैसे यह सबके लिये उपादेय एवं संग्रहणीय है।
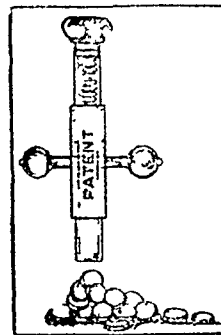
रक्त प्रदर के लिए--

गोदन्ती भस्म १ माशा, कहरवापिष्टी ३ रत्ती। इसकी ३ पुडियां बनावे।

अनुपान--सिरस पत्र १ तोला साफ पत्थर पर रगड़कर उसका जल बनावे। उसके साथ १ मात्रा प्रतिदिन ले।

गुण--तीन दिन में लाभ होगा।

अपथ्य--पित्तवर्द्धक पदार्थ वर्जित है।

—श्री वैद्य साधुराम शर्मा पाठक,
मुकर्जी धर्मार्थ औषधालय, धूरी (संगरूर)

सन्निपात नाशक--

चिरायता कड़वा, जटामांसी दोनो समान भाग चूर्ण कर ले और २ माशा को मात्रा मे दशमूल क्वाथ से मिलाकर पिलावे। सान्निपातिक अवस्था मे चमत्कार दिखावेगा। जहां मकरध्वज, कस्तूरी भैरव आदि असफल हुए है वहां इस प्रयोग ने सफलता प्रदान की है।

--श्री पं० बाबूराम शर्मा वैद्य विशारद
श्रीराम आयुर्वेदिक औषधालय संथल (बरेली)

श्वास रोग नाशक--

शृंग भस्म, कपर्दिका भस्म दोनो ४-४ रत्ती के साथ धन्वन्तरि मकरध्वज वटी २ गोली पीस कर २ मात्रा बनावे। शहद या शक्कर के साथ प्रातः सायं १-१ मात्रा दें। ऊपर से चाय या थोड़ा गर्म जल पिलावे। शीघ्र लाभ होगा।

हिस्टेरिया की दवा--

यह प्रयोग भावप्रकाश मूर्च्छाधिकार का है। मैंने परीक्षा की, उत्तम लाभ करता है। सरल सफल यह प्रयोग पाठक व्यवहार करावे।

प्रयोग—ताम्रभस्म, खस, नागकेशर तीनो ४-४ रत्ती मिलाकर २ मात्रा बनावें। भावप्रकाश मे पानी के साथ देने को लिखा है। किन्तु मैंने मधु के साथ दिया है। ८-१० दिन तक सेवन करने से अवश्य लाभ करता है।

—श्री मानकचन्द सोनी, बालोद (दुर्ग)

गठिया का चमत्कारिक तेल--

आक (मदार) के पीले पत्ते, धतूरे (कनक) के पत्ते, एरण्ड के पत्ते, अरणी के पत्ते, असगंध के पत्ते सब १-१ सेर लेकर रस निकाल ले। भूरिगनी मूलसहित १ सेर लेकर दो सेर तिली के तेल मे सब रसो के साथ मन्द अग्नि से पकावे। और जायफल, जावित्री, लौंग, सोंठ सब १॥-१॥ तोला को अलग अलग पीस कर तेल मे डालकर पकावे। जब तेल शेष रह जावे तब उतार कर छान ले। बस तेल को साफ अच्छे डाट वाली बोतलो मे भर देवे।

उपयोग--गठिया, बादी, कमर दर्द, सारे शरीर मे कांटे से लगना, अङ्ग सूखना, अण्ड कोष मे शूल होना, वात, वायु से जकडना, न्युमौनियां से छाती मे शूल चलना इत्यादि रोग मालिश करने से दूर होते है।

कुक्कर खांसी, दमा--

बढ़िया १ पाव (२० तोला) चावल को लेकर कोरे मिट्टी के बर्तन में डालकर मदार को दूध की सात भावना देवे। हमेशा दूध को बदलते रहे। फिर छाया मे सुखाकर मिट्टी के बर्तन मे लेकर कपड़ मिट्टी करके २ फुट गहरे गढ्ढे मे चारो तरफ कडा रखकर बीच में उस बर्तन को रख देवे। उसकी भस्म हो जावे तब बाहर निकाल कर बारीक कपड़े

से छानकर बोतल मे भर देवें।

मात्रा-(१) बच्चों को ½ आधा चावल के बराबर शहद से दिन मे ३-४ बार देवें। खांसी व दमा दूर होते है।

(२) बड़ो को चावल जितना पान से दिन मे ३ बार देने से कफ, दमा व खांसी मे फायदा करता है। —श्री एम. पी. सिंघवी

नवजीवन औषधालय, रोहत (राज०)

दन्त शूल--

अरणी तथा तुलसी के पत्ते समान मात्रा मे लेकर पानी मे उबाले। फिर उस जल के गुनगुने रहने पर कुल्ले करे। कुल्ला करने के बाद तुलसी की तीन पत्ती दांत से दबा कर सो जाय।

—श्री रामप्रसाद, खाजराणा (इन्दौर)

ज्वर—

समुद्र फल का चूर्ण कर रखले। मात्रा-४ से ८ रत्ती जलादि योग्य अनुपान से। गुण-मलेरिया आदि शीत प्रधान ज्वरों मे, ज्वर को रोकने मे कुनीन से भी अधिक काम करती है। चढ़े ज्वर मे देने से पसीना लाकर ज्वर उतार देती है।

ज्वरातिसार—

अतीस का सूक्ष्म चूर्ण कर रखले। मात्रा-५ से १० रत्ती तक शहद अथवा जल से दिन मे दो बार दें। गुण-शीत ज्वर, ज्वरातिसार, अशक्तता मन्दाग्नि तथा दस्तों के पतले होने मे लाभदायक है।

अतिसार--

ईसबगोल के बीज ८ माशे को २० तोला जल मे भिगोकर चार पहर तक रहने दे। बाद मे उसके लुआब को कपड़े से छान ले। मात्रा-१ तोला से २ तोला तक मिश्री मिलाकर दिन मे ३ बार दे। गुण-आमातिसार, गर्मी की ऋतु के दस्त तथा संग्रहणी को ठीक करता है।

अर्श रोग—

नाग केशर का चूर्ण कर रखलें। मात्रा-२ रत्ती से ८ रत्ती तक १ तोला मक्खन तथा मिश्री मिला कर दे।

रक्तपित्त—

अडूसे के पत्ते का रस २ तोला मधु तथा मिश्री मिलाकर दिन में दो बार पीवें। रक्त पित्त मे आशातीत लाभ होता है।

कास रोग —

कबूतर की बीट १ भाग, गुड पुराना दो भाग मिलाकर दो २ रत्ती की गोलियां बना ले। मात्रा-१ से २ गोली गरम जल से दे। गुण-भयङ्कर कास का वेग तुरन्त शान्त हो जाता है तथा रोग भी नष्ट हो जाता है।

हिक्का (हिचकी)—

हरड़ का छिलका हुक्के या चिलम मे रखकर धूम्रपान करे तो हिक्का का भयङ्कर वेग भी शान्त हो जाता है।

ग्रहणी—

कुडा की छाल का घन क्वाथ कर गोलियां बना कर रख ले और तक्र से सेवन करायें। साधारण तथा छोटा सा योग होने पर भी ग्रहणी रोग का नाश करने मे बड़े बड़े योगो से उत्तम है। विश्वासपूर्वक बना कर प्रयोग कर अनुभव करे और इसका चमत्कार देखे।

कृमि रोग —

कबीला मात्रा-४ से ८ माशे तक प्रातः काल शहद से अथवा पानी से दे। गुण-विरेचन हो कर कृमि निकल जाते है।

पाण्डु रोग --

कच्ची मूली का रस मिश्री मिला कर पीने से पाण्डु रोग एक सप्ताह मे समूल नष्ट हो जाता है।

राजयक्ष्मा--

मनुष्य की छाती की अस्थि की भस्म बना कर योग्य अनुपान से खिलाने से अत्यन्त कठिन तथा दुसाध्य राजयक्ष्मा जो किसी भी औषधि से ठीक न होता हो वह इस औषधि से अवश्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

छर्दि, तृषा रोग—

सोने का टुकडा आग में तपा कर जल मे बुझावे। इस जल को पिलाने से तृषा शान्त होती है।

उन्माद—

शंखपुष्पी को पानी मे घोट कर तथा २-३ काली मिरच मिलाकर प्रातः सायं पिलावे तो उन्माद रोग नष्ट हो जाता है।

अपस्मार—

ब्रह्मदंडी का स्वरस मिश्री मिलाकर पीवे तो अपस्मार रोग दूर होता है।

वात व्याधि—

एरण्ड की जड ३ तोले, जल १ सेर मे कुचल कर क्वाथ करे, जब २ छटांक रह जाय तो छान कर १ तोला मधु मिलाकर रखले। मात्रा-५ तोला प्रातः सायं काल दिन मे दो बार दे। गुण-इसके प्रयोग से शरीर पीडा, वात विकार तथा आमवात रोग दूर होता है।

गल गण्ड—

सर्प की अस्थि जला कर तेल मे मिलाकर लेप करने से कंठमाला रोग दूर होता है।

हृदय रोग—

अर्जुन की छाल तथा गुलाब के फूलों का क्वाथ या चाय बनाकर पीने से हृदय रोग नष्ट होता है।

उपदंश (फिरङ्ग)—

आक की जड की छाल तथा मुलैठी समभाग ले चूर्ण कर रखले। मात्रा—३ रत्ती प्रात सायं मधु से चटावे। गुण-उपदश दूर करती है तथा रक्त को शुद्ध करती है व पुरानी खासी भी इससे नष्ट हो जाती है।

मूत्र कृच्छ्र—

मेहदी के पत्तो को ठंडाई की तरह घोटकर तथा मिश्री मिलाकर ७ दिन तक पीवे तो मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

सुजाक—

कबाबचीनी १ तोला, कलमी शोरा १ तोला दोनों को सूक्ष्म पीसकर रखले। १ माशा प्रात सायं ताजे जल से दे तो सुजाक दूर होता है।

प्रमेह—

अनार की कली, कत्था मिश्री समभाग मिला चूर्ण कर रखे। ६ माशा ताजे जल के साथ दे तो सब प्रमेह दूर होते है।

सोम रोग—

अश्वत्थत्वक् का चूर्ण ३ से ६ माशे तक रात को हलुआ से रखकर दे तो सोम रोग नष्ट हो। मूत्र थोडा हो। अनुभूत है।

प्रदर —

विदारी कन्द तथा आम की गुठली समभाग पीसकर ४ माशे की मात्रा से चावल के धोवन के साथ दे तो घोर प्रदर भी नष्ट होता है।

कुष्ठ—

आक के फूल अन्तर्धूम विधि से भस्म कर ले। २ रत्ती शहद से दे तो सब प्रकार के कुष्ठ को को नष्ट करता है।

कर्ण रोग—

पीपल के पत्तो के रस मे थोडी अफीम मिला गरम कर कान मे डालने से सब प्रकार के कर्ण रोग दूर होते है।

नेत्र रोग—

जल जमनी के पत्ते के रस को निचोड कर जमने के बाद आंख पर बाधने से सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते है।

प्रसूत -

चावल, हरड का छिलका, बादाम की गिरी समभाग ले घी मे भून सबके समान खाड मिला कर रखे। ३ माशे जल के साथ दिन मे दो बार दें तो प्रसूता के अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि रोग दूर होते है।

—श्री गेबीअली पाठक
मु आकली दीवान पो० खजूरी पंथ,
मन्दसौर (म० प्र०)

विष नाशक कुछ सरल उपाय

श्रीमती सुमित्रा देवी अग्रवाल "विशारद"।

१—बैंगन के बीजों का रस मिश्री या दूध मिलाकर पीने से धतूरे का विष शांत हो जाता है।

२—सौठ का चूर्ण गाय के दही के साथ सेवन करने से भांग का नशा दूर हो जाता है।

३—अरहर की दाल का धोया हुआ पानी पिलाने से भांग का नशा उतरने लगता है।

४—नींबू का पुराना अचार खिलाने से भी भांग का नशा कम होने लगता है।

५—चौलाई के रस मे मिश्री मिलाकर पीने और ऊपर से दूध का सेवन करने से गुंजा का विष दूर हो जाता है।

६—मिश्री के साथ भैंस के दूध का दही मिला कर पीने से कनेर का विष शांत हो जाता है।

७—ठण्डे पानी के साथ मिश्री मिलाकर पीने से थूहर का विष दूर हो जाता है।

८—बड़ी कटेरी के रस में दूध मिलाकर पीने से अफीम का विष शांत हो जाता है।

९—घी गरम करके पिलाने से तथा दूध और मिश्री मिलाकर सेवन करने से संखिया का विष दूर हो जाता है। यदि विष अधिक हो गया हो तो जुलाब देकर उल्टी करानी चाहिए।

१०—इन्द्रायन की जड़, जायफल, हरताल, तीनो को पीस लगाने से बिच्छू का विष दूर होता है।

११—नौसादर, कली का चूना और सुहागा मिलाकर सूंघने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

१२—प्याज कूटकर शहद के साथ लेपकर देने से पागल कुत्ते के काटने का विष दूर हो जाता है।

१३—ऐसा कहा है कि यदि एक चूहा मार कर उसका पेट फाडकर सांप काटने के स्थान पर रख दिया जाय तो विष उतर जाता है।

१४—नींबू का रस और नमक मिलाकर लगाने से बिच्छू के काटने पर आराम होता है।

१५—नींबू के बीज और सेंधा नमक दोनों को पीस पिलाने से बिच्छू का विष शांत हो जाता है।

१६—बिजौरा नींबू का रस, हींग और हरताल इन तीनो को पीसकर गोलिया बना ले। एक गोली पानी के साथ पीसकर काटे हुए स्थान पर लेप करने से बिच्छू का जहर तुरन्त दूर हो जाता है।

१७—नींबू के रस में चना पीस कर लगा देने से मकड़ी का विष दूर हो जाता है।

१८—नमक के साथ नींबू का रस मलने से बर्रे और मधुमक्खी के काटने पर आराम मिलता है।

१९—बिजौरा नीबू के रस मे शक्कर मिलाकर पीने से धतूरे का विष दूर हो जाता है।

२०—लगातार तीन दिन तक नींबू का रस पिलाने से हरताल का विष दूर हो जाता है किन्तु पानी न देना चाहिए।

२१—जम्मीरी नींबू का रस शक्कर के साथ खाने से तूतिया या नीला थोथा का विष दूर होता है।

२२—बिजौरा नींबू के भीतर का भाग और अनारदाना खाने से शराब का नशा उतरता है।

२३—नींबू के रस मे जामुन के पत्ते पीस कर पीने से भांग का नशा उतर जाता है।

२४—नींबू के अर्क में जमालघोटा घिसकर बिच्छू काटने की जगह पर लेप कर देने से दर्द तुरन्त दूर हो जाता है।

२५—आम की सूखी खटाई पानी मे घिसकर लगाने से मकड़ी का विष दूर हो जाता है।

श्रीमती सुमित्रा देवी अग्रवाल 'विशारद
द्वारा श्री जी० डी० अग्रवाल,
पो० अजयगढ़ म० प्र०

औषधि विवेचन

कवावचीनी

श्री शेख फय्याज खां विशारद एम. डी. एस.

भारत में शीतलमिर्च चिर परिचित है। आयुर्वेद को इसके लिए गर्व है। चौदहवीं शताब्दी मे राजनिघण्टु में कंकोल के नाम से इसका वर्णन मिलता है। यह मुख्यतया जावा, सुमात्रा, बोर्नियो की उपज है। लका तथा चीन मे भी कुछ होती है। चीनी व्यापारियों द्वारा भारत और अरब में पहुँचती थी इसलिए इसको चीन नाम से प्रसिद्ध किया गया। यूरोप को इसका ज्ञान अरब वालों द्वारा बहुत समय बाद हुआ। मध्य यूरोप में यह मसालो के साथ प्रयोग किया जाने लगा था। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप मे औषधि रूप में प्रयोग किये। १८१६ मे डाक्टर विलसन ने फ्रास में इस पर कई प्रयोग किये। An introduction of the study of Meteria Medica में स्वीकार किया गया है कि यूरोप मे बहुत बाद में इस पर अनुभव किये गये। इसके कई नाम निम्नाङ्कित है—

हिन्दी—ककोल, ककोला, कवावचीनी, शीतलचीनी शीतलमिर्च।
संस्कृत—ककोलह कोषफल कटुफल कोलक।
अरबी—कवाव चीनी हब्बुल अरूस कवावा।
यूनानी—काकनून मसहलयून फरी फलयून
लेटिन—कुवेबी फ्रक्टस (Cubebae fructus)
अंग्रेजी—Cubebae tailed piper (पूछदार मिर्च)
मराठी—कापर चीनी।
गुजराती—तदमरी चिनकवावा।
वगला—काकला। कर्नाटकी—कंकोला दूवा।

आकृति—

इसका फल कालीमिर्च से मिलता जुलता है परन्तु पूंछ सा एक डंठल इसमें जुड़ा रहता है। पूर्ण बीज ½ इच के लगभग होता है। रंग काला भूरा-ऊपरी सतह पर झुर्रियां पड़ी होती है। गध तेज और अच्छी लगने वाली होती हैं। स्वाद कुछ कटु (चरपरा) सा होता है। इसके फलों के गुच्छे टहनी से चिपके रहते है और पकने पर अलग होते रहते है। पूंछ सा डंठल बढ़कर डाली से फल को अलग कर लेता है।

आजकल बेईमानी से बनावटी कवावचीनी भी बिकने लगी है। जंगली आस का पेड़ जिसके पत्ते रीहान (रामतुलसी) से मिलते जुलते होते हैं और उसका फल इसी रंग का होने के कारण मिलावट कर दी जाती है। असली की सुगंध विशेष होती है। असली कवावचीनी को कुचल कर गधकाम्ल छिड़कने पर एक लाल रंग सा निकलने लगता है। बनावटी का रंग भूरा सा गंध-हीन होता है। दूसरी पहिचान यह है कि बनावटी कवावचीनी का डंठल आसानी से अलग हो जाता है और असली का नहीं। इसका बीज फल में छिलके के साथ चिपका रहता है बनावटी में ऐसा नहीं होता। असली मे सुगधि विशेष होती है।

रासायनिक संगठन—

(१) ५ से १५ प्रतिशत तक उड़नशील तेल होता है।

(२) गूदा जिसे Cubebin कहते हैं।

(३) अम्लभाग (Cubebin acid)

(४) चरपरा भाग (Peperine)

(५) चिपचिपा भाग

प्रकार—

अरबी हकीम असलंजा (छोटी) हब्बाल अरूस (बडी कवाब) इसको हब्बुल अरूस इसलिए कहते है कि इसको कामवासना की तृप्ति के लिए इसे चबाया जाता है और थूक इंद्री पर लगाकर स्त्री

प्रसंग किया जाता है और ऐसा करने से स्त्री को अधिक आनन्द आता है। घमण्डी मदमस्त स्त्रियों को अन्य स्खलनकारी दवाओं मे मिलाकर शिश्न पर लगा उनका मान मर्दन किया जाता था।

प्रयोग मात्रा–कबाव चीनी का चूर्ण ४ माशे, क्वाथ ६ माशे, इसका तेल २ से २० बूंद तक प्रयोग किया जाता है।

प्रतिनिधि–असारून संबललतीफ, इलायची, दाल चीनी, कंठरोग में–अकरकरा, यकृत रोग में पीपल इसके स्थान पर प्रयोग करते हैं। दाल-चीनी भी प्रयोग की जाती है।

वाह्य प्रयोग—चमड़ी पर लेप करने या रगड़ने से त्वचा को लाल कर देती है। इसका भीतरी भाग रासायनिक संगठन की न्यूनाधिकता के अनुसार प्रभावकारी होता है। रगड़ से त्वचा में भीतरी रक्त प्रवाह बढ़ जाता है।

भीतरी प्रयोग–आमाशय तथा आंतों पर कालीमिर्च का सा प्रभाव होता है। परन्तु इसकी मात्रा साधारण ही ली जाय। अधिक मात्रा आंतों के लिए हानिकारक होती है। मूत्राशय पर प्रभाव विशेष होता है। मूत्रवाहनी कोषों को प्रभाव-युक्त करके उन्हे दोषरहित करती है। कंठ पर भी इसका प्रभाव होता है।

जामेडल अद्वियात यूनानी मतानुसार–

इसके बुरे प्रभाव को हटाने वाले मस्तंगी तथा चंदन है। आंतों तथा मसूढ़ों को बल देती है। मूत्र की मात्रा बढ़ाती है। प्लीहा तथा वृक्कों के रोगों का हरण करती है, चबाने से मुखदुर्गन्धि का हरण करती है, मुख के छाले मिटाती है। चबाकर लगाना आनंदकारी (स्त्री-प्रसंग में) है।

कबावचीनी के अन्य प्रयोग–

(१) दांत और मसूढ़ो को दृढ़ करके पायरिया मिटाती है, दांतो के रक्त प्रवाह तथा मुख दुर्गन्धि मिटाती है इसलिए मंजनों में इसको मिलाते हैं।

(२) श्वास नलिका को शुद्ध करती है।

(३) मुख में चबाने से मुख पाक मिटता है।

(४) प्रतिश्याय में छींक लाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(५) बच कुलिंजन और पान में मुलहठी के साथ रखकर चूसने से आवाज सुरीली करती है।

(६) यकृत् रोग, उदर रोग, पीलिया, रक्ताल्पता में प्रयोग की जाती है।

(७) पेचिस (मरोड़ युक्त अतिसार में) अहि-फेन के साथ गोली बनाकर देते हैं।

(८) मूत्रावरोध मे दूध के साथ फांकने पर मूत्र विरेचन होता है।

(९) सूजाक मे—इसका फल तथा तेल प्रयोग किया जाता है। इसका चूर्ण पिचकारी द्रव्य के साथ प्रयोग करते है परन्तु इसका प्रयोग उस समय ही करें जब कि इन्द्री की सूजन न हो।

घावों को शुद्ध करती है। चर्बी या तेल में मिलाकर लगाने से अवयवों की सूजन मिटाती है।

(१०) इसका तेल—उड़नशील होता है। यह १ भाग १८० भाग अल्कोहल में घुलनशील है। जलनकारी सुजाक में इसे प्रयोग किया जाता है।

होमियोपैथी और कबाबचीनी प्रयोग–

हानीमन महाशय (होम्योपैथी प्रवर्त्तक) ने अरबी पुस्तकों मे जैसा पाया वैसा प्रयोग किया और अपने होम्यो मेटेरिया मैडिका का अङ्ग बना लिया। इसे *Cubeba* या *piper cubeba* कहते हैं और लक्षणानुसार–प्रमेह या सुजाक में जब पीवयुक्त जलन के साथ मूत्र आता हो, गाढ़ा पीला रंगयुक्त स्राव किसी दवा से न रुके तब मूत्र की अम्लता इतनी दूषित हो जाती है कि शरीर के अन्य अवयव पर उसके अंश लगकर वहां की त्वचा विकृत करके घाव सा बना दे। ऐसी अवस्था मे कबाबचीनी के प्रयोग से आशातीत लाभ होता है।

कबावचीनी का सुजाक पर प्रयोग–

(१) कबाब चीनी ५ रत्ती, फिटकरी २॥ रत्ती, कलमी शोरा १ रत्ती, गोंद अरबी १ रत्ती यह १ खुराक है। दिन में ३ बार प्रतिदिन दे।

(२) कवाबचीनी १० रत्ती शोरा ५ रत्ती सोडाकार्ब ५ रत्ती दिन में ३ बार दे।

(३) कवाबचीनी १५ रत्ती, फिटकरी २ रत्ती (१ खुराक) ३ बार प्रतिदिन दे।

(४) कवाबचीनी ३ या ४ माशा ताजे दही (जो खट्टा न हो) में डालकर रातभर पड़ा रहने दिया जाय और प्रातः मिश्री युक्त सेवन करे। सुजाक में गुणकारी है।

(५) कबावचीनी, टेसू के फूल, मुलहठी प्रत्येक २४ मा. कलमीशोरा जौ खार प्रत्येक ४ माशे, धनियां बीज की गिरी, मेहदी पत्र, आंवला, मुनक्का प्रत्येक २॥ माशा मिश्री १० तोला मिलाकर रखें। १॥ तोला रात को जल में भिगोकर प्रातः मलकर छानकर पीवे।

(६) कबावचीनी, वंसलोचन, विरोजा प्रत्येक ६ माशे, मिश्री २ तोला, चन्दन तेल आध तोला मिलाकर २ माशा प्रातः संध्या दूध की लस्सी के साथ सेवन करे।

मूत्रावरोध पर—

(७) कबाब चीनी, जीरा, शोरा, इलायची छोटी समान भाग पीस कर ३ माशा दूध की लस्सी में २ बार पिलावें।

(८) कबावचीनी, इलायची, इन्द्रजौ, शोरा, श्वेत जीरा, रेवन्द चीनी सब समान भाग मिलाकर ७माशे प्रातःशाम दूध की लस्सी से २ बार पिलावें।

(९) राल ८ तोला शीतलचीनी २ तोला कूटकर १० पुड़िया बनावे। प्रतिदिन १ पुड़िया दही में मिला कर ले। सुजाक तथा प्रमेह मिटेगा।

(१०) कबावचीनी २ तोला, स्फटिका भस्म ४ माशे ताजे जल में ३ बार दूध से दे।

(११) शीतलचीनी १० माशे, कलमी शोरा ५ माशे, सोडाबाई कार्ब ५ माशे—एक बार में केवल १॥ माशे चूर्ण लेकर दूध की लस्सी से ३ बार पीवे।

मै सुजाक के रोगियों पर गोखरू चूर्ण के साथ प्रयोग करता हूँ और शीघ्रातिशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। उदाहरण—

रोगी धूड़सिंह—शुतर सवार पटवार मंडल भीनमाल

उक्त रोगी ने होली के अवसर पर (१६-५६ ई० में) मित्रो के साथ शराब पीकर आवारा स्त्रियों से सुजाक का इनाम प्राप्त किया। इन्द्री पर फुंसियां, शरीर के भीतर जलन, इन्द्री सूजी हुई, मूत्र रक्त तथा मवाद के साथ जलन यह लक्षण थे।

एक देशी अधकचरे डाक्टर ने कैथीटर का प्रयोग पहले किया था जिससे सूजन बढ गई थी। एक भंगी जो सुजाक के इलाज की दुहाई देता था उसने सौंफ घोर कर पिलाई और ऊपर भी सौंफ को पीसकर लगाया गया परन्तु लाभ न देख कर उसका मित्र मोहब्बत सिंह मेरे पास आया। मैंने उसे देखा। रोगी जीवन से निराश हो चुका था और विवाह से पहले बेकार बन जाने के लिए दुखी था। मैंने उक्त लक्षणों युक्त उसे पाया तथा निम्न इलाज आरम्भ किया—
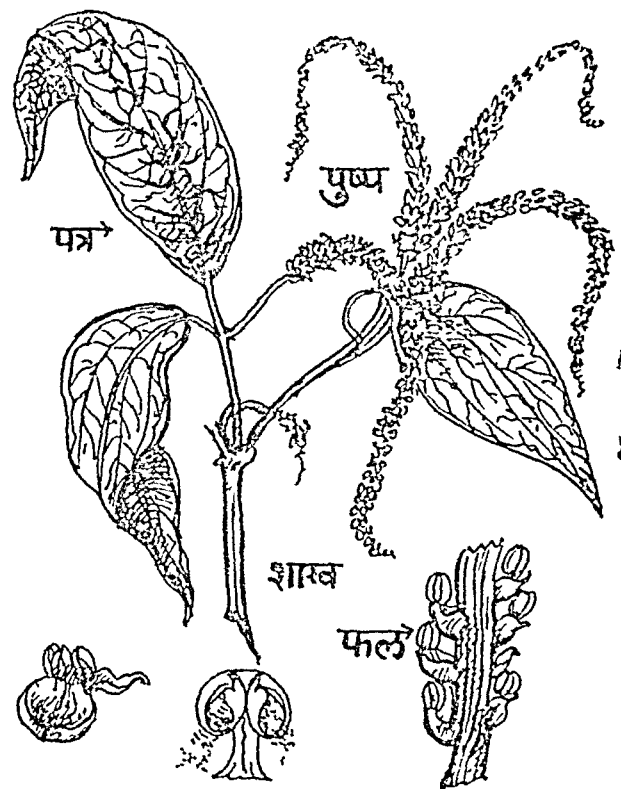
गोखरू आध तोले, कबाबचीनी १५ रत्ती, कलमी शोरा ५ रत्ती, चन्द्रप्रभावटी १ गोली--एक खुराक ३ बार प्रतिदिन और पोटाश परमेगनेट के जल में इन्द्री सेकन दिया गया। प्रतिदिन १० मिनट के लिए ३ बार ऐसा किया गया। पीने के लिए गोखरू का शर्बत बनाकर ३ दिन दिया गया। साथ मे सुबह की १ खुराक के साथ बताशे में चंदन तेल २ बूंद दिया गया। तीसरे दिन तक मूत्र की जलन रुकी और आसानी से मूत्र आने लग गया। २ पेनसलीन के इन्जेक्शन २ दिन तक लगाये गये। तीसरे दिन से चंदनासव और चन्द्रप्रभावटी और प्रताप आयु. फार्मेसी का गोनोरा इन्जेक्शन २ बार दिया गया।

सप्ताह मे इन्द्री की सूज मिट गई परन्तु शिश्न् की ऊपरी टोपी के अन्दर के घाव (जो टोपी हटाने के योग्य हो जाने पर दिखाई दिये थे) पर मरहम (*Sulpha powder* को वेस्लीन में मिलाकर) प्रयोग किया गया।

उक्त योग की मात्रा के साथ चन्द्रप्रभा वटी, तथा चंदनासव चालू रहा। १५ दिन में रोगी नौकरी पर जाने योग्य हो गया।

लेप-(छोटे लाल पीले दाने त्वचा पर निकले को दूर करता है)।

(१२) कबाबचीनी, मुर्दासींगी, फिटकरी, मेंहदी के पत्ते प्रत्येक ३ माशा, कालीमिर्च १ माशा पीसकर गाय के घृत (२१ बार धोया हुआ) में मिलाकर लेप करें।

(१३) स्त्री-प्रसङ्ग में आनन्ददायक-तेलिया, सुहागा, कबाबचीनी दोनों को मिलाकर थूक में घिस कर शिश्न पर लेप करके प्रसंग करना चाहिए। अति आनन्द देता है। उपरोक्त में थूक के स्थान में शहद मिला कर लेप करना भी यही गुण रखता है।

(१४) गन्दाबिरोजा १ पाव, सफेद चन्दन २ छ., शीतलचीनी १ छ., यवक्षार १ छ. का चूर्ण करे। लस्सी के साथ १॥ माशा दिन में ३ बार दें। सुजाक में लाभकारी है। अथवा—

(१५) ईसबगोल ३० रत्ती यवक्षार १ माशा शर्बत या लस्सी के साथ ३ बार दें।

(१६) शीतलचीनी ६ माशे, शोरा ३ माशे, सनाय ३ माशे की फंकी देने से लाभ होता है।

(१७) आनन्ददायक लेप-दालचीनी, शीतल चीनी, अकरकरा, मुनक्का प्रत्येक १३ तोला, कस्तूरी १रत्ती, सौंठ २ माशे जौकुटकर शहद मे गोली बना रखे। स्त्री प्रसंग से पहले थूक में घिस कर लिंग पर लेप करे। कामनियो का मद भंजनकारी लेप है।

(१८) स्तम्भन वटी-शिगरफ, शीतलचीनी, वच, अकरकरा, लौंग, मिश्री, शहद प्रत्येक ६ माशे, अफीम १ तोला—कूटकर चने के समान गोलियां बनावे। स्त्रीप्रसङ्ग के ६ घड़ी पहले १ गोली लेकर ऊपर खान पान कुछ भी न करे तो बहुत अधिक रुकावट होती है।

—श्री शेख फय्याज खां विशारद
भीनमाल (जालोर)

स्वास्थ्योपयोगी मधु

श्री राजकुमार गोयल।

जगत में उत्पन्न नाना प्रकार के पुष्प एवं परागों के रस से मधु मक्खियां मधु का निर्माण करती हैं जो कि हमारे शरीर एवं स्वास्थ्य, सौंदर्य को बनाने में सर्वश्रेष्ठ रसायन कही गई है।

आधुनिक विज्ञान मतानुसार मधु हमारे स्वास्थ्य रक्षा के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसकी बराबरी प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक वस्तु नहीं कर सकती। दूध, अण्डे आदि मे यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है कि वह पचकर शीघ्र ही अपने शरीर का अङ्ग बन जाती है, किंतु मधु इनकी अपेक्षा कहीं अधिक विशेषता रखता है। मनुष्य के द्वारा जो भी पदार्थ खाये जाते हैं उनसे शरीर का अङ्ग तब तक नहीं बनता जब तक कि वे आमाशियक रसों के प्रभाव से अंगूरी शर्करा में परिवर्तित नहीं हो जाते, किंतु मधु मे यह विशेषता है कि उसे मधु मक्खियां ही अंगूरी शर्करा में परिवर्तित कर देती है।

मधु के विभिन्न भाषाओं में नाम—

हिन्दी—महौषधि, स्वास्थ्य रक्षणी, मधु, शहद। बंगाली—मधु। मराठी-गुजराती—मधु। कन्नौजी—जेनतुप्प। तैलगू—तेनी। फारसी—शहद। अरबी—असल। ईरान—हई। लैटिन—मेल। आदि नामों से उल्लेख किया जाता है।

मधु के गुण—

मधु शीतल, ग्राही, हल्का, मधुर, नेत्रों के लिए हितकारी, अग्निदीपक, स्वाद में कसैला, शरीर के रङ्ग को निखारने वाला, दांतों में मञ्जन के रूप में करने से पायरिया, मुख की दुर्गन्ध, मसूड़ों को मजबूत एवं पेट के कीटाणुओं को नाश करने की शर्तिया दवा है तथा जो निरन्तर मधु को उपयोग मे लाते है उसकी मन्द बुद्धि को दूर कर उत्तम बुद्धि एवं स्मरण शक्ति प्रदान करता है। हृदय जो कि जन्म से लेकर मरण तक कभी रुकता नहीं उसके लिए यह अचूक औषधि है। जो मनुष्य इसे बचपन से प्रयोग करता है उसके लिए चर्म सम्बन्धी रोग, अजीर्ण, अपच, हाथ पैरों का कम्पायमान होना, लकवा, सुस्ती, मधुमेह, दमा, खांसी, जुकाम, गठिया, नासूरादि ये भयङ्कर रोग छू भी नहीं सकते।

रासायनिक विवरण—

इसमें निम्नलिखित मौलिक तत्व पाये जाते हैं—

१. फलों की शर्करा ४० प्रतिशत। २. अंगूरी शर्करा ३५ प्रतिशत। ३. पानी १८ प्रतिशत। ४. खनिज लवण १ प्रतिशत। ५. गन्ने की शर्करा २ प्रतिशत। ६. अम्लीय तत्व १ प्रतिशत। ७. लेसदार पदार्थ ८ प्रतिशत। ८. मोम ६ प्रतिशत। ६. प्रोटीन १.८ प्रतिशत। आदि।

शुद्ध मधु की पहिचान—

शुद्ध एवं श्रेष्ठ मधु गाढ़ापन लिए, चिपचिपाहटयुक्त, सुगन्धयुक्त एवं स्वाद में सुमधुर प्रतीत हो उसे श्रेष्ठ एवं विशुद्ध मधु जानना चाहिए।

मधु किसको खाना चाहिए—

(१) जो व्यक्ति मासिक काम अत्यधिक करते हो किंतु परिवार अधिक होने के कारण व कम आमदनी के कारण वे दूध, मेवा एवं फलादि नहीं खा सकते उन्हे चाहिए कि वे मधु का उपयोग करे, क्योंकि यह दूध मेवा आदि से काफी सस्ता पड़ता है। इसके उपयोग से खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो जाती है एवं बुद्धि शक्ति आदि भी बढ़ती है।

(२) जिस व्यक्ति के लिए रक्तविकार एवं रक्ताल्पता हो उसे मधु बहुत ही हितकर है क्योंकि मधु में बिटामिन बी० प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। विटामिन बी० की कमी होने के कारण ही से रोग होते है।

(३) जो मधु को बचपन से उपयोग में लाता है उसे चर्म सम्बन्धी किसी रोग से पीड़ित

नहीं होना पड़ता तथा उसकी जवानी काफी दिनों तक टिकी रहती है।

मधु किसको नहीं खाना चाहिए—

(१) त्रिदोष सन्निपात ज्वर में—त्रिदोष एवं सन्निपात ज्वर में ग्रस्त व्यक्तियों के लिए मधु वर्जित है। न उसे औषधि के रूप में ही दे सकते हैं और न अनुपान के ही रूप में।

(२) जो जन शराब, गांजा आदि के नशे में चूर रहते हों उनके लिए मधु बर्जित है।

मधु अनेक प्रकार के रोगों की अचूक औषधि है। इसके विधिवत प्रयोग से निम्नलिखित रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है—

थकावट—

जो मनुष्य कठिन परिश्रम से उत्पन्न हुई थकावट को यदि दूर करना चाहते हों तो वे मधु का सेवन कर लाभ प्राप्त करें। मधु में पाया जाने वाला जो कार्बोहाइड्रेट है वह खोई शक्ति को पुनः वापिस लाता है तथा स्फूर्ति और उत्साह बढ़ाता है।

मन्दाग्नि—

मधु में मन्दाग्नि नष्ट करने की बलवती शक्ति है। यदि मनुष्य सुबह साम मधु का उपयोग करे तो उसे मन्दाग्नि के रोग से शीघ्र मुक्ति मिल जायगी तथा बल और ओज की वृद्धि होगी।

यक्ष्मा—

यक्ष्मा से पीड़ित मनुष्य के लिये मधु का सेवन एक अच्छा पथ्य कहा है क्योंकि इसमे पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं तथा पाचन हल्का होने के कारण आंतो पर विशेष दबाव नहीं पड़ता तथा जीवन शक्ति को पनपने में काफी सहायता मिलती है।

हृदय रोग मे—

जिसका हृदय कमजोर एवं पीडित हो उसके लिए नींबू सन्तरा, नारंगी, आदि फलों के रस में मधु मिलाकर सेवन करने से हृदय के रोगों में शीघ्र लाभ होता है।

चर्म रोग और मधु—

मधु चर्म रोग का दुश्मन है। यदि मनुष्य प्रतिदिन सुबह शाम २ तोला मधु ५ तोला पानी में डाल कर उपयोग करे तो वह कुछेक दिन में ही चर्म सम्बन्धी सभी रोगों में जैसे—खाज, खुजली फोड़ा, फुन्सी आदि से मुक्त हो जायगा।

निद्रा न आना—

जिसके लिए मानसिक परिश्रम एवं चिन्ताओं के कारण निद्रा कम आती है उनके लिए चाहिए कि वे सोते समय १॥ पाव ताजे पानी में १॥ तोला मधु मिला कर पिये। इस तरह करने से कुछ ही दिनों में आराम प्राप्त होगा।

मस्तिष्क कमजोरी—

मस्तिष्क की कमजोरी मे प्रतिदिन १॥ पाव दूध मे ७ बादाम पीस कर डालें तथा मधु से मीठा करके पिये। इस प्रकार करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

—श्री राजकुमार गोयल, मणिहारों का रास्ता, आयुर्वेद कालेज, जयपुर।

(१) संक्रामक रोग [प्रथम भाग]—

लेखक महोदय श्री रघुवरशरण जी शर्मा आयुर्वेद बृहस्पति ने इस पुस्तक में वेद और आयुर्वेद के आधार पर आधुनिक विज्ञान की सहायता लेते हुए निम्नलिखित संक्रामक रोगो पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसमे यत्रतत्र प्राचीन तथा नवीन मत का समन्वय कर विषय प्रतिपादन बहुत सरल ढङ्ग से किया है। इस प्रकार इसमे गर्भस्राव, गर्भपात, वन्ध्यारोग, श्वसनक ज्वर, ब्रांकोनिमोनिया, ब्रोंकाइटिस, मथर ज्वर, पैराटाइफाइड, टाइफस, कालीखांसी, विषमज्वर, विशूचिका, गनोरिया, राजयक्ष्मा, प्रलेपक ज्वर, अपची, फिरङ्ग, उपदंश, उन्माद, अपतानक, कुष्ठ, इन्द्रलुप्त, कृमिदन्त, योनिकण्डू तथा रक्तजन्य कृमि आदि पर कुल १६ अध्यायो मे संक्षिप्त किंतु सारगर्भित विवेचन किया गया है। चिकित्सारहित केवल रोग विषयक विवेचन अधूरा मालूम देता है। आशा है आगे के भागो मे लेखक महोदय इस अभाव की पूर्ति करेगे। पुस्तक विज्ञजनों के लिए मननीय और सर्वसाधारण के लिए पठनीय है।

स्कूली साइज २२१ पृष्ठ अजिल्द पुस्तक का मूल्य ३.५० रक्खा गया है। उक्त लेखक के शुभ नाम से ही रसायनशाला बुलन्दशहर से प्राप्त होती है।

(२) सौन्दर्य लहरी—

श्री शंकराचार्य कृत, ललित सुन्दर १०२ स्तोत्रों से युक्त, भक्तिभावात्मक इस सौंदर्य लहरी नामक पुस्तक रत्न को श्री भुवनेश्वरी पीठाधीश आचार्य श्री चरणतीर्थ महाराज ने अपनी सरल त्रिपुराटीका सहित प्रकाशित कर तथा यत्र तत्र बीज मंत्रो का सचित्र स्पष्टीकरण कर शक्ति उपासको की महान कठिनाई को दूर कर दिया है।

पुस्तक पोथी साइज की १६० पृष्ठो की सजिल्द है। पंडितों के लिए उपादेय एवं सग्रहणीय है। मूल्य लिखा नही है। श्री भुवनेश्वरी पीठ गोंडल (सौराष्ट्र) से प्राप्य है।

(३) अनंग रंग—

महाकवि श्री कल्याणमल्ल विरचित यह कामशास्त्र विषयक एक प्राचीन ग्रन्थ है। स्वर्गीय श्री जादव जी त्रिकम जी आचार्य ने इसे बहुत वर्षों पूर्व छपाया था। किंतु वह अपूर्ण तथा खंडित था। अब यह पूर्णतया (मूल मात्र) रसशाला औषधाश्रम गोंडल (सौराष्ट्र) द्वारा प्रकाशित किया गया है। ६२ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य १.२५ है।

(४) भारती का आरोग्याङ्क—

पत्र से विदित हुआ कि भारती नामक यह संस्कृत मासिक पत्र, संस्कृत प्रचार परिषद् (जयपुर) द्वारा गत ११ वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। विशेषांक निकालने का यह इसका प्रथम ही आयोजन है। आरोग्यांक नामक इस अपने प्रथम विशेषांक द्वारा विशेष सम्पादक श्रीमान् जयरामदास स्वामी (संस्कृत प्रचार परिषदध्यक्ष) महोदय ने आयुर्वेद जगत की महान सेवा की है। इसमें वैद्यरत्न प. शिवशर्मा जी, कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी, श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी आदि विद्वानो के उत्तमोत्तम लेखों का सकलन किया गया है।

आदर्श स्वस्थ पुरुषलक्षणम्, स्त्रीणांकृते फलानां लाभप्रद प्रयोगा, मानसरोगा प्रतिबन्धश्च, आदि लेख बहुत ही उपादेय हैं। इस प्रकार कुल २५ लेखो का संग्रह इस ११७ पृष्ठो के धन्वन्तरि साइज के विशेषाक मे किया गया है। सब लेख सरल संस्कृत मे लिखे हुए होने से संस्कृत भाषा के प्रचार की दृष्टि से उपयोगी है। सम्पादक महोदय धन्यवाद के पात्र है।

इस विशेषांक का मूल्य २.५० रु० है किंतु भारती का वार्षिक मूल्य ४.०० प्रेषित करने से ग्राहको को यह अङ्क तथा अन्य साधारण अङ्क प्रतिमास प्राप्त हो सकते हैं।
पता—भारती भवन, गोपालजी का रास्ता, जयपुर

(५) आयुर्वेद प्रदीप—

यह मस्तनाथ आयुर्वेदिक कालेज अस्थल बोहर (रोहतक) का प्रमुख पत्र है। इसके प्रारम्भ का प्रथमाङ्क जनवरी १९६१ हमारे पास आया है। इस धन्वन्तरि के साइज के पत्र में कालेज की प्रगति विषयक आवश्यक जानकारी के साथ साथ त्रिदोष एवं जीवाणुवाद, मन के रोग, फुफ्फुसगत राजयक्ष्मा आदि लेख उत्तम विचारपूर्ण है। पत्रिका मे मूल्यादि के विषय मे कुछ भी उल्लेख नही है। उक्त कालेज के पते से ही प्राप्त होती है।

विदग्धाजीर्ण पित्तजन्य है। और दिवास्वप्न से श्लेष्मा वृद्ध होकर विदग्ध अन्न के अम्लभाव से मधुरभाव में परिणित हो जाता है। और अग्नि के द्वारा यथाविधि पाचित कर दिया जाता है।

अब इस का उत्तर देना है कि दिवास्वप्न को अजीर्ण का कारण क्यों बताया गया है ? यह वह अवस्था है, जिसमें कहा है । स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ सु० सू० ४६ । ४५ ॥ जब रात्रि में मनुष्य जागता है तो वात की वृद्धि हो जाती है, और उक्त क्रम से वह पित्त (अग्नि) का व्यतिक्रम कर देती है । एवं दिन में सोने से अजीर्ण उस अवस्था में होता है जबकि सोने से कफ इतना वृद्ध हो जाय, कि वह स्रोतोवरोध करके फिर अग्नि को भी उपहृत कर दे। अजीर्णिनः को केवल उतनी मात्रा तक सोने की आज्ञा है जितनी तक कि श्लेष्मा केवल अग्नि का अवरोधन करने के योग्य मात्रा में बढ़ सके किन्तु उसे आप्लावित न कर सके ।

वाग्भट व सुश्रुत दोनो ने शयीत् शब्द लगाया है। केवल चरक व अष्टाङ्गसंग्रह ने विदग्धाजीर्ण के लिए दिवास्वप्न का आदेश किया है । विदग्धाजीर्ण अजीर्ण की तृतीयावस्था है। इस अवस्था में पित्त काफी बढ़ा हुआ होता है, एवं अन्न को विदग्ध कर चुका होता है। अत. उसको दिवास्वप्न द्वारा कफ वृद्धि करके मधुर भाव में परवर्तित करता है।

रस शेषाजीर्ण के लिये तो 'शयीत' शब्द है। जो दिन मे केवल थोड़ी सी निद्रा लेने या लेट लेने का निर्देश करता है।

इस प्रकार दिवास्वप्न की निषेधावस्थायें निम्न चित्र से समझी जा सकती हैं।
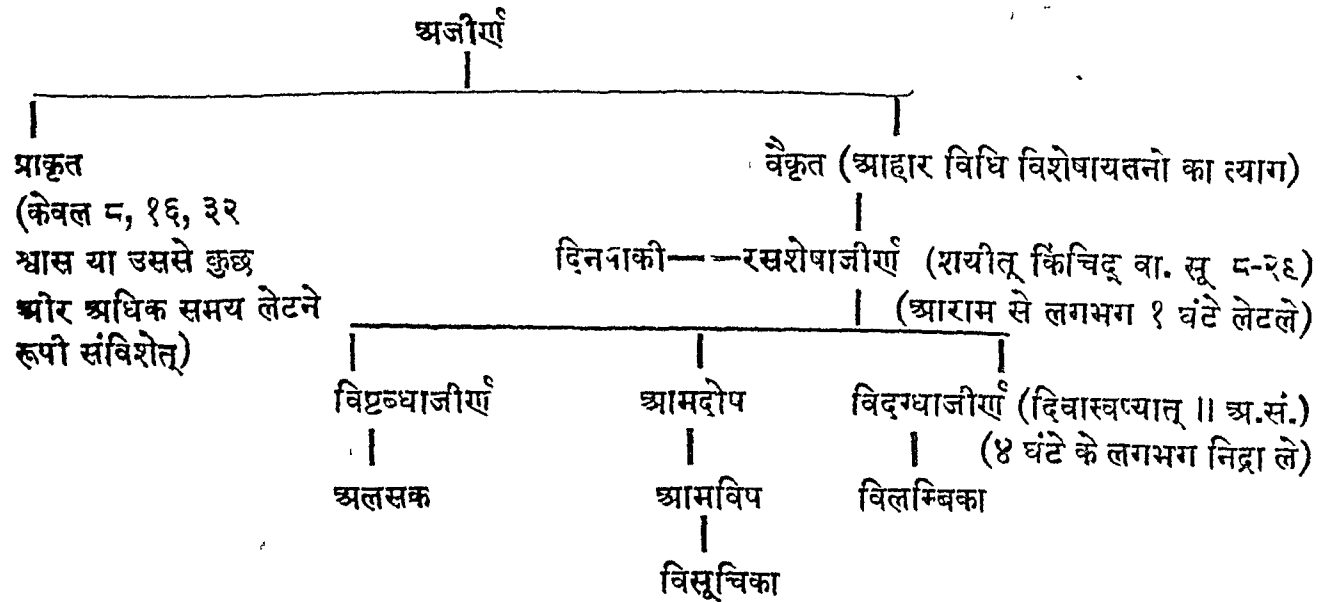
इन मात्राओं से अधिक या इन अजीर्णों के अतिरिक्त अजीर्णों में दिवास्वप्न वर्जित है । प्राकृत अजीर्ण मे भी अधिक सोने से वैकृत अजीर्ण हो जावेगा।

इस प्रकार हमारे तीनों सिद्धान्त ठीक है।

१—अजीर्ण में दिन मे सोना।

२—दिन में सोने से कफ की वृद्धि।

६—कफ वृद्धि से अजीर्ण की उत्पत्ति।

—कविराज दीनदयाल सौभरि एच. पी. ए.
भिषगाचार्य धन्वन्तरि प्रभाकर, हिन्दी भूषण
शिक्षा मंत्रालय, दिल्ली

ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा

श्री. सत्यदेव शर्मा

८--हिक्का (हिचकी)

हिचकी सब उपद्रवों से विकट उपद्रव है, यदि इसका शीघ्र शमन न किया जाय तो रोगी की बहुत जल्द मृत्यु हो सकती है। सन्निपात की दशा में तो हिचकी बहुत ही भयानक फल प्रदर्शित करती है। हिचकी में हृदयस्थ रस रक्तादि धातुयें तक सूख जाती हैं, रस रक्त के प्रवाह में अड़चन पड़ने से हृदयस्पदन बद होजाने से मृत्यु हो जाता है। इस लिए हिचकियों के उत्पन्न होने की आशका थोड़ी भी होने पर या हिचकियों के प्रारम्भ होते ही उनके शमन करने का प्रयत्न करना चाहिए। हिचकी और श्वास इन दोनों के उत्पन्न होने के कारण उत्पत्ति के स्थान और उत्पादक प्रधान दोष वात, कफ ही होते हैं। इसलिये इन दोनों की चिकित्सा भी बहुत कुछ एक सी होती है। यही कारण है कि जो औषधिया श्वास रोग से लाभदायी हैं वे हिक्का में भी लाभ करती हैं और हिचकी में फायदा करने वाली श्वास रोग में भी लाभ दिखाती है।

हिचकी की पहिली चिकित्सा है रोगी के गले से लेकर छाती, आमाशय और उसके नीचे महाप्राचीरा पेशीतक ऊपर नीचे की ओर तैल की मालिश कर प्रस्तर स्वेद (कपड़े में गरम ईट या पत्थर लपेटकर उससे सेकना) नाड़ी स्वेद या और कोई दूसरा स्वेद जो उस समय उपयुक्त और सरलता से किया जा सके, करना चाहिए। इससे स्रोतों में रुका हुआ कफ ढीला होकर बाहर होने से स्रोत खुलते, वायु अनुलोम (अपने ठीक मार्ग से निकलता है) होता है। प्राचीरा के आक्षेप शात होते हैं। फलत हिचकी बद होजाती हैं। साथ ही निम्न औषधोपचार करें—

१—मयूर पुच्छ भस्म (मोर के परों के चंदुओं की भस्म) २ रत्ती को ३-४ माशे शहद में मिला चटाने से हिचकी श्वास, और प्यास शमन होती है।

२—दशमूल २। तोले लेकर १० तोले पानी में औटाइए। जब २॥ तोले शेष रह जाय तब उतार छानकर उसमें ६ माशे मद्य मिला कर रोगी को पिला दीजिए। इससे श्वास और हिचकी दोनों एक साथ प्रबल हो, या कोई एक बलवान हो तत्काल शमन होते हैं।

३ -देवदार १। तोले को आध पाव पानी में औटावे। २॥ तोला शेष रहने दें। इसमें पहली तरह ६ माशे शराब मिलाकर रोगी के पिलाने से हिचकी श्वास का उपद्रव शीघ्र शात होजाता है।

यदि मद्य (शराब) न हो तो प्रयोग न० २-३ वैसे ही पिला देने से हिचकी श्वास और सन्निपात में लाभ करते हैं।

४—जल मिलाकर सन्निपात ज्वर में १-१॥ माशे मद्य दो-दो या एक एक घटे बाद देते रहने से हिचकी, श्वास और तृषा तीनों का नाश होता है।

५—भारंगी, सौंचर नमक, सौंठ, इनका चूर्ण १-१ भाग, शर्करा (शक्कर) २ भाग मिलाकर चूर्ण बनाले। इसमें से ३ माशे चूर्ण गर्म पानी से देने से हिचकी में लाभ होता है।

६—कचूर, पौहकरमूल, आमले का चूर्ण, लोह भस्म, इनको समान भाग मिलाकर २ रत्ती ले। शहद में चाटने से हिचकी में लाभ होता है।

७—लहसन का रस, या प्याज का रस या गाजर का रस या लाल चन्दन इनमें से कोई सी भी वस्तु स्त्री के दूध में मिला नाक में टपकाने से हिचकी बंद हो जाती है।

६—कास या खांसी—

खांसी सन्निपात ज्वरो मे होने वाला एक साधारण उपद्रव है जो प्राय' सभी सन्निपातो मे न्यूनाधिक प्रमाण होता रहता है। विशेषतया कफ या वात प्रधान ज्वरों मे होता है। सब ही कासों में प्राण, उदान और समान वायु का प्रकोप होता है। प्राय. गले, श्वासनलिका कोषो मे प्रदाह (सूजन, शूल, दाह तीनो का एक साथ होना) पाया जाता है। इसलिए गले छाती पर तैलाभ्यंग (तैल मलना) और सेक करना चाहिए ताकि वायु अनुलोम (अपने ठीक मार्ग से निकलने वाली) हो जाय।

१—एक चने बराबर सांभर नमक की कंकड़ी लेकर अग्नि मे गर्म कर चटकाले और इसे पान के रस तथा शहद मे मिलाकर रोगी को चटावे। इससे खासी और कफ का शमन होता है। दिन में ५-६ बार चटावे।

२—२ रत्ती जौहर नौसादर शहद और अदरख के रस मे मिला चटाने से कास श्वास शमन होते हैं, कफ आसानी से निकलने लगता है।

३—त्रिक्षार चूर्ण २ रत्ती, बांसावलेह १ तोले मे मिलाकर रखले और थोड़ी थोड़ी देर बाद अगुली से चटाने से कफ आसानी से निकलता और खासी शमन होती है।

त्रिक्षार चूर्ण—

सुहागा फुलाया हुआ १ तोला, जवाखार १ तोला, नौसादर 'जौहर १ तोला इनको पीसकर रखले। मात्रा—२ रत्ती से १॥ माशे तक। यह कफ निःसारक (कफ को निकालने वाला) मूत्रल (पेशाब लाने वाला) वायु अनुलोमन (वायु को अपने सीधे रास्ते से ऊपर की वायु को ऊपर के और नीचे की वायु को नीचे के मार्ग से निकालने वाला) पाचक (पाचक रसो के स्राव बढाकर भोजन और रस को पचाने वाला) है। अनुपान कास में—मधु या वासावलेह आदि। उदरादि रोगों मे गर्म जल।

वांसावलेह—

अडूसे के ताजा हरे पत्तो को ला, धोकर इमामदस्ते (खल्लड़) में कूट, निचोड़ कर रस निकाल ले। यदि रस एक सेर हो तो उसमें एक पाव शक्कर या मिश्री डाल कर अग्नि पर पकावे। जब चटनी जैसा गाढा होजाय तब नीचे उतार ले और उसमे बंशलोचन, काकड़ासिंगी, छोटीपीपल का चूर्ण १-१ तोला मिलादे। साथ ही २॥ तोला गाय का घी मिलाले। ठंडा होने पर पाव भर शहद मिलाकर शीशी या अमृतवान मे बंद कर रखले। मात्रा ३ माशे से २ तोले तक।

गुण—यह कफनाशक, त्रिदोषहर है। हर तरह की खासी में लाभदायक है। पुरानी खांसी, क्षय की खांसी में भी हितकारी है। श्वास, हिचकी, रक्तपित्त, कफ खांसी के साथ रक्त जाने में भी फायदेमद है।

४—लवंगादि वटी—चूसने के लिए देने से भी सन्निपात में खांसी थम जाती है। चूसने के लिए उन्हीं रोगियो को वटी देनी चाहिए जो बेहोश हों, जिन रोगियों को अपने तन का होश नहीं उन्हे चूसने की कोई वटी न देनी चाहिए।

लवंगादि वटी—

लौंग पिसी १ तोला, काली मिर्च पिसी १ तोला, बहेड़े का वकल चूर्ण १ तोला, शुद्ध कत्था ३ तोला सबको खरल से डाल बबूल के पेड़ की अन्तरछाल का काढा इतना डाले कि जिसमे वह लथपथ हो जाय और ऊपर भी थोड़ा सा काढ़ा रहे। इसे घोटकर मटर बराबर गोलियां बना सुखा कर रखले। मात्रा १-२ गोली दिन मे ४-५ बार चूसे। इससे कफ आसानी से निकल जाता है, खासी थमती है, मुख की दुर्गन्ध दूर होती है, मुखपाक (छालो) को लाभ पहुचता है।

५—कासघ्न शार्कर चटावे। यह किसी औषधि के अनुपान रूप में भी व्यवहार हो सकता है।

—शेषांश पृष्ठ ४४ पर।

धनुर्वात (Convulsions)

श्री लक्ष्मीनारायण जी 'अलौकिक'।

धन्वन्तरि जून १९६१ अंक पृष्ठ ५२ पर प्रकाशित प्रश्न मे धनुर्वात पर सफल प्रयोग जानने की जिज्ञासा प्रकट की गई थी उसीसे प्रेरित होकर 'अलौकिक' जी ने यह निबन्ध लिख भेजा है। आशा है पाठक इससे लाभ उठा सकेंगे। —सम्पादक।

यह अपस्मार की श्रेणी का भयानक रोग है जो कम्हेड़ा, मरोड़, भूत व्याधा आदि नामों से प्रसिद्ध है। किसी कारण से शरीर की दुष्ट वायु प्रकुपित होकर स्नायु मण्डल पर आक्रमण करके उन्हें धनुषाकार करने का यत्न करती है। इसीसे आयुर्वेद में इसको धनुर्वात कहते है।

यह रोग ४-५ वर्ष के बच्चो को ही और इनमें भी अधिकतर १-१॥ साल तक की आयु वाले बच्चो को ही होता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक होता है यह रहस्य गवेषणीय है।

इस बीमारी में बच्चा नींद में चौंकता है और वह बहुत ही कम रोता है। अचेतन की भांति पड़ा रहता है या धीरे धीरे हाथ पैरो का संचालन करता है। किसी बच्चे में इस सिद्धान्त का अपवाद भी पाया जाता है। किंतु अन्यमनस्कता अधिक बनी रहती है। धीरे धीरे दूध पीना छोड़ देता है। बदन ऐंठता रहता है।

स्मरण रहे बहुत से बालकों को नींद में चौंकने की आदत होती है अतः एकदम घबड़ाकर इस रोग की कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए। कुछ बच्चे नाड़ी मण्डल की सामान्य दुर्बलता से बदन ऐंठते व झटकाते है पर बच्चे के बड़े होने के साथ ऐसी शिकायतें स्वयमेव दूर हो जाती है।

धनुर्वात के दौरे के समय शरीर की मांसपेशियां अनैच्छिक व अनियमित कार्य करती हैं। बच्चे की गर्दन पीछे की ओर खिंचती है, आंखो की पुतलिया तेजी से घूमती हैं, वह मुंह पीसता है, हाथ-पाव में अनवरत गति से झटके लगते है। ऐसे समय में उसकी जांघों व भुजाओं के ऊपरी हिस्सो को गट्ठा पकड़ कर देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होगा मानो झटके के साथ खून के नाले बह रहे हो। दौरे के समय या बाद में मुंह से फैन निकलता है। दौरे के समय बच्चा संज्ञा शून्य रहता है। केवल उसके मुंह पर अन्दर की दारुण पीड़ा के कुछ भाव दृष्टिगोचर होते हैं।

दौरे के ठीक बाद या तो बच्चा अभिराम रोने लगता है या स्वस्थ होकर सो जाता है। यह आश्चर्य की ही बात है कि इस रोग में श्वास-प्रश्वास तो तेजी से होते हैं किंतु नाड़ी धीरे चलती है।

रोग का आक्रमण १५ सेकिंड से २ मिनट रहता है और ऐसा प्रात घण्टे में १ या २ बार होता है। यदि दौरे का समय और आक्रमण अवधि बढ़ जाय तो रोग खतरे की ओर प्रवृत्त हुआ समझना चाहिये। किंतु सबसे चिंता की बात तो तब है जब रोग का दौरा पूरे शरीर में न होकर स्थान विशेष मे ही होता है। जैसे एक हाथ या एक पैर मे अथवा एक हिस्से के हाथ-पैर मे और दूसरे अङ्ग निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य उपचारों से बालक को बचा लेना मुश्किल है।

कारण—

अब हम यह देखना चाहते है कि व्याधा इस खूबी से क्यों पेश होती है। बहुत से अधिकारी चिकित्सकों का कहना है कि बाल आक्षेप अधिकतर कई कारणों से दिमाग में प्रदाह (जलन) होने के कारण होते हैं। अलग अलग उम्र में इसके

अलग अलग कारण होते है। नये जन्मे बच्चे मे मस्तिष्क में चोट के कारण होते है। मस्तिष्क मे रक्तस्राव होने से या किसी भी बजह से शोथ होने से यह रोग शुरू हो जाता है और बहुत से चिकित्सकों का मत है कि यह अजीर्ण, वायु और कोष्ठबद्धता से होता है। किन्ही की मान्यमति में मां के दूध के दोष से भी ऐसा हो सकता है। किंतु मेरी नम्रमति में उपरोक्त सभी कारणों का महत्व होते हुए भी इस रोग का कोई भिन्न कारण है और वह है हृदय एवं मस्तिष्क के घनिष्ठ सम्बन्ध का अभाव। चूंकि अन्य कई लक्षणों के देखने से ऐसा ही अनुमान होता है। यह तो हम जानते ही हैं कि हृदय की गति का नियन्त्रण मस्तिष्क में स्थित विशेष ज्ञान स्नायुओं से होता है। यदि शरीर की बनावट में प्रकृति ने भूल करके हृदय को नियन्त्रित करने वाले स्नायुओ मे किन्ही को हृदय से संयुक्त न किया हो तो भी अपस्मार की व्याधा हो सकती है। अतः यह निश्चित रूप से समझना चाहिये कि रोग की जड गर्भ के अन्दर ही सम्पन्न हो चुकी होती है। गर्भावस्था में बहुत सी मातायें बहुत ही कम पानी पीती है। यह स्नायु मण्डल स्वस्थ रहने में बाधक सिद्ध होता है। गर्भस्थ शिशु की मां का मन ही मन घुटते रहना, कब्ज अजीर्ण आदि से पीड़ित रहना, आलस्य और द्वेषपूर्वक काम मे तत्पर होना, अनिच्छा और अन्य मनस्कता की हालत मे पुरुष का मैथुन करना, स्नायु मण्डल को पोषित करने वाले खाद्य पदार्थों से बचित रहना ही बच्चे के मनमस्तिष्क की एकरूपता में व्यतिरेक भर देते हैं।

प्रसव के पश्चात् नाल को गलत ढंग से काटने से भी यथा देहातों में अज्ञ दाइया अस्वच्छ कीट लगे किसी लोहे के चाकू, दरांती या कैंची काम में लेती हैं, शरीर की अपनय मूलक व्यवस्था में दोष आ जाता है। नाल हमेशा धोये हुए मजबूत सूत के धागे से या पक्की कैंची अथवा पक्के चाकू को नीम के गरम पानी मे धोकर कुछ तैल लगाकर काटनी चाहिये।

चिकित्सा—

इस रोग की कोई अनुभवी वैद्य डाक्टर या जानकार चिकित्सा करे तो १५ से ३३ प्रतिशत बच्चे मृत्यु के मुख से निकाले जा सकते हैं। चूंकि अनारोग्य की नींव पर आरोग्य का महल मुश्किल से भी खड़ा नहीं हो सकता। बच्चे का शरीर ही जब विकार का पिंड होता है तो उसे उस हालत में कैसे निर्विकार किया जा सकता है जब बाह्य प्रकृति का असम वातावरण उसे उपभ्रांत करने में सक्षम होता है। अस्तु। वैसे इस रोग की प्रचलित कई औषधियां व टोटके है जिनसे प्राय: लाभ होता है और इसी वजह से वह प्रचलित है। सामान्य बीमारी की रोकथाम में इनका असर जादू की तरह होता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। लगे हाथ कुछ नुस्खे व टोटके यहां लिख दूं जो शायद आपकी ज्ञानवृद्धि मे सहायक हो सकें।

१—१२ लौंग व ५ रत्ती कस्तूरी सफेद महीन वस्त्र मे तावीज की भांति बांधकर गले में बांधे। शरीर की वायु-प्रशमन एवं दिमागी चेतना का काम करेगा।

२–सरसो के तेल मे २० वें भाग की सिंदूर व ३० वे भाग की कालीमिर्च डालकर पकावें। छानकर सुरक्षित रखे। तलुवे पर मलने से लाभ होता है।

३–खरगोश का खून और गिलहरी का हृदय सूखा या ताजा २–३ रत्ती के प्रमाण में मां के या गधी के दूध के साथ दिया जाता है।

४–लता विशेष के नीचे पायी जाने वाली सफेद गाठ जो अत्यन्त कड़वी होती है घिसकर सूक्ष्म अफीम की मात्रा के साथ पिलाई जाती है। लाभदायक है।

५—लक्ष्मीनारायण रस प्रामाणिक मात्रा में तुलसी स्वरस या शहद के साथ चटाई जाती है। (योगराज गुग्गुल वात प्रशमन में चमत्कारी औषधि है अतः यदि उक्त रस के साथ इसे भी शामिल किया जावे तो अधिक लाभ की संभावना अनुमान

में आती है)।

६—केशर, कस्तूरी या गोरोचन की प्रामाणिक मात्रा तुलसी स्वरस के साथ देने से निःसंदेह लाभ की संभावना प्रत्यक्ष होगी।

७—अरण्ड अथवा बिल्व पत्रों को पानी में उबालकर गाढ़ा निखालस दूध के समान काढ़ा तैयार करें और बच्चे को स्नान करायें। बच्चा बहुत छोटा है तो उक्त काढ़े में हाथ गीला करके एक एक अंग को लेते जाय और स्नान कराते जाएं। नाड़ी मण्डल में स्थित विकार और वायु का इस तरह करते रहने से परिशमन होता है।

८—साप की कैंचुली, काकजंघा, घी ऊंट, और बकरी के बालों का धूपन करने का विधान आयुर्वेद में पाया जाता है।

९—पेट साफ करने के लिए अरण्डी का तेल शहद के साथ चटाया जाता है।

१०—प्राकृतिक चिकित्सक पेट को आरोग्य करने के लिए पेट की पट्टियां व ठण्डी मालिश का प्रयोग करते हैं। स्नायुओं को सक्षम करने के लिए वह मेरुदण्ड (पीठ की हड्डियों) में गर्म ठंडा पानी प्रयोग करते हैं जो फायदेमंद व निरापद भी है।

११—हल्दी, लोहे के तार या पक्के मूंगे को गर्म करके दोनों भौंहों की बीच की रग पर या नाभि के ठीक एक इंच नीचे या पीठ के मध्य ज्ञान नाड़ी पर जलाते हैं। कई बच्चों को ऐसा करने से लाभ देखा जाता है। देहातों में तो प्रधान चिकित्सा यही है। परंतु यह अनुभवी व्यक्ति ही कर सकता है।

इतना सब होने पर भी रोग की उग्र हालत में उपरोक्त तदबीजों पर आत्म संतोष नहीं होता। कई बालक ऐसे सैकड़ों उपचार व डाक्टर की शरण में जाने पर भी असार संसार छोड़ ही देते हैं।

प्रसंगवश एक मालिश की रोचक आपबीती प्रस्तुत करता हूं। उसका पहला बच्चा धनुर्वात के आक्रमण से काल कवलित हो गया तो वह बहुत दु:खी हुई। किसी के कहने से उसने दूसरे गर्भ के समय नित्य ५-१० भुने हुए लौंग खाये। फलतः इस गर्भ का बच्चा आज भी मौजूद है तथा उसे न तो कभी रोग हुआ न सूखा न धनुर्वात ही। तीसरे गर्भ के समय वह किसी कारण से कुछ ले न सकी फलतः वह बालक शिशु धनुर्वात में मृत्यु का ग्रास बन गया। चौथे गर्भ के समय पुनः उसने लवंग खाये और वह शिशु आज स्वस्थ और प्रसन्न है।

उक्त महिला का तो एक उदाहरण है जो स्वयं का अनुभव है। किंतु यह तो सत्य बात है कि बालक का धनुर्वात का होना गर्भकालीन दोष परिणाम है। क्योंकि बहुत सी ऐसी औरतें हैं जिनके प्रत्येक बच्चे को धनुर्वात की व्याधा होती है। और वह आफत में पड़ जाता है इसके विरुद्ध बहुत से बच्चों को कतई नहीं होता। अतः जिन माताओं के बालक धनुर्वात के प्रकोप से नहीं बचते उन्हें तथा अन्य सभी गर्भिणियों को निम्न बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न रहना चाहिए। कब्ज और अजीर्ण की हालत में मृदु विरेचक द्रव्य ले लेना चाहिए। सादा सुपाच्य भोजन सेवन करना चाहिए। २० घंटे पानी में भिगोकर २० घंटे भीगे वस्त्र में बांध रखे अंकुरित गेहूं की खीचड़ी बनाकर नित्य खाने से पेट की कोई बीमारी नहीं होती। कम भोजन व टहलने फिरने का काम करना चाहिए। भोजन के पश्चात् सुगंधित रोचक द्रव्य खाने चाहिए जैसे छोटी इलायची, सौंफ, लौंग आदि। तुलसी के ताजे पत्ते सर्वोत्तम हैं। नाड़ी विकार के मूल कारण विटामिन बी की पूर्ति के लिए चोकर समेत आटे की रोटी, छिलके सहित दालें व हरी सब्जियां, पक्के फल सेवन करना योग्य है। अधिक मिर्च मसाले अपनी खुराक में नहीं रखना चाहिए। इतनी सावधानी बर्तने पर भूतल पर अवतरित बालक इतना स्वस्थ प्रसन्न और निरोग होगा कि उसकी मां फूली नहीं समायेगी।

—श्रीलक्ष्मीनारायण 'अलौकिक'।
शामगढ़ (म० प्र०)

मृत्युञ्जय रस का पशुओं के डकहा (महामारी) पर प्रयोग

डा० श्रीरामचन्द्र झा आ० शा०
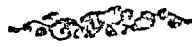
आयुर्वेद शास्त्र के अन्दर जितनी दवायें मनुष्यों के लिए बनी है वे दवाये पशुओं पर भी फायदा करेगी यह हमें दृढ़ विश्वास हो गया है।

एक बार देवकीसिंह मुकाम छतौना की स्त्री योनि व्रण रोग से पीड़ित थी दर्द के मारे बेचैन थी। ज्वाला और मृत्यु सन्निकट की तरह कष्ट, शरीर में झिनझिनाहट इत्यादि भयंकर उपद्रव था साथ साथ ज्वर भी था। मेरे पास उसके निराकरण की कोई खास दवा नहीं थी। मुझे हेनिमन सिद्धान्त के अनुसार एकोनाइट सूझ पड़ा किन्तु साथ में नहीं था। मैंने एकोनाइट युक्त मृत्युंजय को समझकर दो गोलिया मधु में मिलाकर देदीं। १० मिनटों में ही उसके सब कष्ट गायब हो गए। दूसरे दिन घाव फूट कर बह गया। रुग्ण की व्रण चिकित्सा की गयी एक सप्ताह में अच्छा हो गया। उस समय गांव के जानवरों पर डकहा (महामारी) रोग भयङ्कर रूप से फैल रहा था जानवर तेजी से मरते जा रहे थे। मवेसी अस्पताल के डाक्टर जानवरों को सूई देने की व्यवस्था में लगे थे।

मैं समस्तीपुर स्टेशन जारहा था रास्ते मे मोरदीवा मौजे के सहदेव पाण्डेय जी जो एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं उन्होंने बुलाकर कहा कि मेरी गाय गर्भिणी है, आठवां महीना है। वह डकहा से आक्रान्त हो गयी है। घास खाना छोड़ दिया है थर थर कांप रहीं है गाय लगभग ३५०) रुपये की है मवेसी डाक्टर को खबर दिया है कोई तात्कालिक उपचार बताइये।

मैंने डकहा रोग से एक मरे हुआ जानवर को खाल उतारते हुए देखा था अगले पैर के ऊपर के भागो मे सडा हुआ मांस देखा जिससे मेरा अनुमान हुआ कि इसमें भी भयकर व्रण होता है इसी से जानवर इतनी तेजी से मरते है।

अतः मैंने पहले के व्रण पर मृत्युंजय के प्रयोग का फल देखकर उस गाय को ८ गोलियां गरम भात के माड़ के साथ खिला दिया और उन्हें १६ गोलियां ४-४ घंटे पर २ बार देने के लिये दे दिया। तब तक दवा देने के आधा घंटा बाद ही सुधार होने लगा गाय अच्छी हो गयी उसे कोई डाक्टरी दवा इत्यादि नहीं दी गयी। मुझे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

इधर छतौना पंचायत सहयोग समिति का बैल (ठंढ से या डकहा से निश्चय नही हो सका) समूचा देह कांप रहा था खाना बन्द कर दिया था हालत खराब सी होचली थी। उसे १६ गोली मृत्युंजय ८-८ के हिसाब से देने को कहा। भगवान की कृपा से रात भर मे बैल स्वस्थ होगया। दोपहर को गाडी में जोता गया और अधिक रात बीतते घर आया। पुन. उसकी हालत पूर्ववत हो गयी। उनके पास जो आठ गोलियां बची थी उन्होने देदिया रातभर मे फिर सुधार हो गया। प्रात. मुझे बुलाया गया मैंने फिर ४-४ गोलिया प्रति खुराक से देने को कहा और १६ गोलिया दे दीं। दोपहर को दूध हल्दी और घी मिलाकर पीने को दिया गया। कुछ पेट मे अफरा सा हुआ बाद मे बैल अच्छी तरह स्वस्थ हो गया।

इस तरह के अनेक जगह प्रयोग कर चुका हूँ और लाभ हुआ है।

—श्री डा० रामचन्द्र झा आयुर्वेद शास्त्री
मु० पो० छताना वाया समस्तीपुर (दरभंगा)
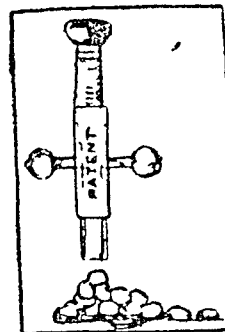
खून बन्द करने वाली (Haemostatic)
एलोपैथिक औषधियां

श्री डा० एल. बी. लोंगानी M. I. M. S.

बहते हुए रक्त को बन्द करने के लिए नीचे लिखी हुई औषधियों पर मेरा अनुभव है और सफल पाई गई हैं। मै आशा करता हूँ पाठक इन्हीं औषधियों से अपने रोगियों के रोग जल्द से जल्द दूर कर सकेंगे।

रक्त कहीं से भी किसी अङ्ग से बहता हो और बन्द नहीं हो रहा हो, जैसे नाक से (नकसीर), गुदा से पेचिस या बवासीर का खून आना, पेशाब में रक्त आना (Haematuria), बलगम में रक्त का आना याने क्षय रोग में फेफड़ों से खून आना [Haemoptysis], अत्यार्तव (Menorrhagia) आदि के लिये यह औषधियां उत्तम हैं।

कैपलीन (Kapilin-Glaxo Co.)—

यह विटामिन के [Vitamin k] है। यह कई कम्पनियों की बनी हुई गोलिया, सूइया व तरल रूप में बाजार से प्राप्त होता है। मगर कैपलीन के नाम से ग्लैक्सो कम्पनी की बनाई हुई यह औषधि बड़ी लाभदायक है।

लाभ—बहते हुए रक्त का बन्द करना इसका प्रमुख काम है। जैसे पेचिस, खून के दस्त, खून की उल्टी, रक्तस्राव, नकसीर, छपाकी याने पित्ती (urticaria) के लिए भी फायदा करती है। कामला रोग (Jaundice) में भी लाभदायक है। मूत्र मे रक्त आना तथा किसी जगह से रक्त आता हो तो इस दवा से बन्द हो जाता है।

मात्रा—एक गोली दिन मे २-३ बार पानी से।

इञ्जेक्शन—१-१ c. c के एम्पूलस आते हैं जिसमें १० मिलीग्राम विटामिन के होता है। दिन मे २-३ बार मास में लगाई जा सकती है।

एड्रेनेलीन हाइड्रोक्लोराइड (Adrenaline Hydrochloride)—

यह दवा तरल रूप में १/१००० प्रतिशत सोल्यूशन १ औंस की शीशी में और इञ्जेक्शन १/२ c. c. और १ c. c. के एम्प्यूल आते हैं।

इस औषधि में से रुई का फाया डुबोकर रखने से खून एकदम बन्द हो जायगा। जैसे नकसीर, दांत निकालने के बाद रक्त बन्द करने के लिए रुई का फाया। इस सोल्यूशन से तर [डुबोकर] नसवार [जिस तरफ से रक्त बह रहा हो] पर रखें। दांत की की जगह जहां से खून आ रहा हो रखे, रक्त बन्द हो जायगा।

छपाकी (Urticaria) और पेनसिलीन के इञ्जेक्शन से बुरा असर [Reaction] हो गया हो तो इसकी सूई लगाने से वह बुरा असर चला जाता है। दमा के लिए अक्सीर है।

मात्रा—एक एम्प्यूल त्वचान्तर्गत या मांस में लगाये। १० से १५ बूंद जल के साथ मिला कर पियें।

सेलीन (Celin-Glaxo Co.)—

यह भी ग्लैक्सो कम्पनी की बनाई हुई विटामिन सी का मिश्रण है याने Ascorbic acid से बनाई जाती है। ५०, १००, ५०० मिलीग्राम की बनी हुई टेबलेट आती है। १ और ५ c. c. के इञ्जेक्शन [Ampules] आते है। हरेक c. c. में १०० मिलीग्राम विटामिन सी का होता है।

बुखार, जुखाम, काली खांसी (whooping cough), मसूड़ों में से रक्त आना (scurvy), दांतो की बीमारी (carries), मसूड़ों की सूजन, (Gingivitis), जख्मों को जल्दी भरने के लिए, मुखश्लेष्मावरण रोहणी, (Diphtheria), आमाशय व्रण (Gastric ulcer और Duodenal ulcer) के लिए अकसीर है। हर जगह के बहते हुए रक्त का बहना इससे बन्द हो जाता है।

मात्रा—१०० से १००० मिलीग्राम तक मुंह या इन्जेक्शन द्वारा दी जा सकती है। इन्जेक्शन मांस में (Intramascular) तथा Intravenuos तरीके से लगाते हैं।

कुआगयोलीन (Inj Coagulen)—

यह सूई सीवा कम्पनी की बनी हुई है शिरा मे तथा मांस में लगाई जाती है। १.५ c. c. और ५ c. c. की बनी हुई सूई के रूप मे मिलती है। बहते हुए रक्त को बन्द करने के लिए रामबाण है।

दांत निकालने या आप्रेशन के बाद अगर रक्त बन्द न होता हो इसी इन्जेक्शन का डाक्टर लोग प्रयोग करते है।

किसी भी अङ्ग से खून बहता हो और आप तुरन्त उसे बन्द करना चाहते हैं तो इस इन्जेक्शन को प्रयोग कीजिये।

मात्रा–५ से २० c. c. दिन मे कई बार (जरूरत अनुसार) दे सकते है।

कैल्शियम गुलूकोनेट (Calcium gluconate)-

यह औषध टेबलेट, पाउडर और इन्जेक्शन के रूप में मिलती है।

रक्त बन्द करना, छपाका (urticaria), ताकत देना, कैल्शियम की कमी को पूरा करना, जिगर (liver) की बीमारियो मे लिवर एक्सट्रेट (liver extrate) के साथ दी जाती है।

खांसी मे भी लाभदायक है। इसकी सूई i/m और i/v तरीके से लगाई जा सकती है। मगर ज्यादातर i/v तरीके से लगाते है। १०% सोल्यूशन के ५ और १० c. c. के एम्प्यूल आते है। इसके साथ विटामिन सी का भी मिला हुआ सोल्यूशन आता है।

मात्रा—यह सूई सेन्डोज कम्पनी की बनी मशहूर दवा है। १ से २ गोली ३ या ४ बार दिन मे। १५ से ६० ग्रेन २-३ बार दिन में दे। १० c. c. १ से २ बार दिन मे आवश्यकतानुसार i/v or i/m तरीके से लगाऐ।

हेमोलीन (Haemolin)—

यह एडको कम्पनी का बनाया हुआ १० c. c. का एम्प्यूल मिलता है। देखने मे यह सुइयो की जैसी लगती है। मगर यह पीने की दवा है। एक एम्प्यूल तोड़कर थोड़े से पानी के साथ मिलाकर दिन भर मे ३-४ बार पिला सकते है। इन एम्प्यूलो को दोनों तरफ से से काटने से ही औषध बाहर आ सकती है अन्यथा नहीं।

बहते हुए रक्त को बन्द करने के लिए, गर्भपात (Abortion), रक्तस्राव (menorrhagia) के लिए अकसीर है। इससे बहता हुआ या ज्यादा खून आना वगैरा बन्द हो जाता है।

कैल्शियम लेक्टेट (Calcium lactate)—

यह कैल्शियम गुलूकोनेट की तरह है। इसलिए कैल्शियम गुलूकोनेट के समान ही इसे भी प्रयोग करे।

स्टाईपिटोबीओन (Styptobion)--

यह मरक कम्पनी का बनाया हुआ विटामिन के सी और पी का मिश्रण है। सुईयां और गोलियो के रूप मे आती है। रक्त बन्द करने के लिये अच्छा काम करती है।

दांतो से रक्त आना, दस्त में खून आना, नकसीर, फेफड़ों से रक्तस्राव, खून की कै होना, मूत्र में रक्त आना आदि इस औषध से बन्द हो जाते हैं।

मात्रा–१ से २ टिकियां दिन मे तीन बार जल के साथ।

-२ c. c. एम्प्यूल इन्ट्रामसक्यूलर (I/m] तरीके से दिन मे २-३ बार आवश्यकतानुसार लगा सकते है।

टिंचर फेरी पर क्लोराइड (Tr. Ferri Per-Chloride)—

यह पानी की तरह पीले रङ्ग की १ पौंड की बोतल मे मिलती है। यह फौलाद का मिश्रण है। दन्त चिकित्सक दात निकालने के बाद, खून बन्द करने के लिये इसका फाया रखते है।

—शेषांश पृष्ठ ७४ पर।

शरद पूर्णिमा व अमृतपान

सूर्यचिकित्सा विशारद श्री पं० नन्दकिशोर शर्मा

प्रकृति मानव-जीवन की सहचरी है। उसके नाना उपकरण मानव के निमित्त प्रभु प्रदत्त शुभाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। वसंत, शरद, ग्रीष्म, हेमत आदि विविध ऋतुये उस प्रकृतिनटी के परिधान है जो वह मानव-मन को आकर्षित करने के लिए, उसको अपने आकर्षण के प्रगाढ आलिगन मे आबद्ध करने के लिए समय समय पर धारण करती है। किंतु उसका आकर्षण जीवन को सुखी एव समृद्ध बनाने वाला है। उसकी नींव आध्यात्मिक आधार पर निर्भर है। वसत व शरद ऋतु अन्य समस्त ऋतुओ में श्रेष्ठ है। वसत यदि ऋतुराज है तो शरद भी ऋतु श्रेष्ठ है। वसत की प्राकृतिक सुषमा व सौंदर्य यदि अनुपम है तो शरद के दृश्य भी अविचारणीय नही। वसत का अलसाया हुआ मादक पवन एवं उसके रगबिरगे पुष्पो की सुरभिमय मधुरिमा यदि प्रेमी युग्म के हृदयो मे प्रणय की जाज्वल्यमान प्रतिमा की कल्पना साकार करती है तो शरद के झर झर करते झरने का शीतल अभिसारिकामय रूप मन को मोहित किये बिना नही रहता। वेदों मे शरद की महिमा का उल्लेख है—

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्।

शरद मे जितने त्यौहार है उतने वसंत मे नहीं। शरद में वसंत ऋतु की अपेक्षा कई विशेषताये रहती है। इसीलिए वेद ने भी शरद ऋतु का ही बारम्बार उल्लेख किया है—

वसतो स्यासिदाज्यं ग्रीष्म इध्म· शरद्धवि (वेद)

यहा वसंत ऋतु को आज्य (घृत) और शरद ऋतु को हवि कहा है। यहा आज्य और हवि का जितना सबध है उतना ही शरद व वसन्त का है। शरद मे एक विशेष आनन्ददायी त्यौहर है जो आश्विन शुक्ल १५ को होता है इसका नाम शारदीय पूर्णिमा है। इस दिन अनेको लोग खीर बनाते है व उसे देवार्पण कर प्रसाद रूप मे वितरित करते है। यह उत्सव हमारे पूर्वजो ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से नियत किया है। इसका कुछ न कुछ अवश्य महत्व होना चाहिए। आइये पहले इस पर एक विहगम दृष्टि डाले।

शरद का महत्व तो अमेय है ही। यह पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है अत इसका सबध अवश्य ही चन्द्रमा से है। यह तो सर्व विदित है ही कि चन्द्रमा अमृत जीवन का प्रदाता है। वृक्ष वनस्पति जड चेतन सभी मे नवस्फूर्ति एवं चेतना देने वाला अपरिमेय आगार है। तभी तो चन्द्र को औषधराज कहा गया है। अथर्व वेद के ७।८१।३ का यह मत्र द्रष्टव्य है—

सोमस्य शोयुधांपतेऽनूनानाम नासवा असि।
अनूनं दर्शमां कृधि प्रजया च धनेन च।

(सोमस्य) अमृत के (अंशों) बाटने वाले (युद्याम्) युद्धो के (पते) स्वामिन [वै] वास्तव में तू [अनून] न्यूनता हित [नाम] प्रसिद्ध [असि] है [दर्श] हे दर्शनीय [में] मुझे [प्रजया] प्रजा से [च] और [धनेन] धनसे [अनून] परिपूर्ण [कृधि] करो। 'अमृत के बांटने वाले यह सबोधन ही चंद्र की अनिर्वचनीय महत्ता का पुस्कल प्रतिपादक है।

चन्द्र-किरणो द्वारा यदि हम लाभ उठा सके तो अवश्य दीर्घायु हो सकते है। शारदीय पूर्णिमा चन्द्र-किरणो से लाभ उठाने का उपयुक्त दिवस है। अन्य पूर्णमाये उतनी लाभप्रद नही जितनी कि यह। इसका कारण यह है कि और महीनो की पूर्णमाओं मे चन्द्रकिरणो का पृथ्वी तल तक आने के लिये रोकने में कई बाधक पदार्थ आकाश मे मौजूद रहते है जैसे धूलि, धुंवा, गर्द, गुबारा आदि परन्तु इस शारदीय पूर्णिमा के दिन आकाश में चन्द्रकिरणो का बाधक एक भी परिमाणु नही होता। क्यो कि पानी बरसने के कारण जो कुछ भी आकाशस्थ कचरा होता है पृथ्वी पर पानी के साथ आजाता है। इस कारण आकाश अत्यन्त निर्मल हो जाता है। आषाढ़, श्रावण, भाद्र मास भी चन्द्र से अमृत-गुणकारी प्राप्ति हो सकती है किंतु वे वर्षा के मास है अतः आश्विन की निरभ्र पूर्णिमा को यह महत्व प्रदान किया गया है।

पूर्णिमा के अमृतपान का तरीका कुशाग्र बुद्धि-जीवियो ने दुग्ध को ही उपयुक्त पेय समझा। दुग्ध भूतल का अमृत है। चन्द्रमा की अमृतप्रद किरणों को गोदुग्ध रूपी अमृत मे मिलाकर यह अमृत करने की प्रथा हमारे पूर्वजो ने प्रचलित करदी। शारदीय पूर्णिमा इसीलिए महत्वपूर्ण है कि भाद्र, श्रावण और अषाढ पूर्णिमाओं पर उत्तम गो दुग्ध प्राप्त करना कठिन हो जाता है क्योकि दुग्धप्रदाता पशु के कच्ची सारहीन घास चरने के कारण दुग्ध के गुणों में भी न्यूनता आजाती है और आश्विन मास मे घास के सारयुक्त और पकी होने के कारण दूध मे कोई कमी नही रह जाती। साराश यह है कि प्रत्येक मनुष्य

--शेषश पृष्ठ ४४ पर।

औषधि विवेचन

आधुनिक रुदन्ती

श्री कविराज जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति

आज आधुनिक रुदन्ती (जो कपोल कल्पित नाम है) की आयुर्वेद जगत मे धूम है। इस बूटी की धूम का कारण श्री डा० जी कृष्णमूर्ति का अनुभवात्मक अन्वेषण है जिसके अनुसार आधुनिक रुदन्ती क्षय रूपी प्राणघातक व्याधि के विनष्ट करने के लिए आधुनिक दवाओ की अपेक्षा जिनके आविष्कार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को विशेष गर्व और अभिमान है, अधिक उपयोगी और उपादेय सिद्ध हुई है क्योंकि इसके प्रयोग से फेफड़ो के भीतर के व्रण निश्चित रूप से भर जाते हैं और एक्सरे लेने पर भी इन व्रणों के चिह्न बिलकुल दिखाई नहीं देते जबकि दूसरी औषधियों से व्रण भर भी जाते हैं तो भी चिह्न आयु भर मिटने नहीं पाते। क्योंकि उक्त बनस्पति के गुणो का, जिन का उद्घाटन श्री डा० जी० कृष्णमूर्ति के अनुभवात्मक आत्मत्याग के आधार पर हुआ है, बहुत कम वैद्यों को ज्ञान है। अत· उक्त बनस्पति के सम्बन्ध में अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर हमे जिन बातों का ज्ञान हुआ है उनका सार लोकोपकारार्थ धन्वन्तरि सहयोग के आधार वैद्य समाज की सेवा में प्रस्तुत है।

विभिन्न नाम–

श्री डा० जी कृष्णमूर्ति ने इसका नाम[1] रुदन्ती (Rudanti) लिखा है परन्तु यह उन का निराधार कपोल कल्पित नाम है। यह आयुर्वेदिक शास्त्रो में वर्णित रुदन्ती कदाचित नहीं है। डा० जी ने किस हेतु से इसे रुदन्ती नाम दिया है इस पर उन्होंने कोई प्रकाश नहीं डाला। तो भी यह बात तो निश्चयात्मक है कि डाक्टर जी की बतलाई गई रुदन्ती का आयुर्वेदिक शास्त्रो में विवर्णित रुदन्ती के साथ दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है और बनस्पति वर्गीकरण के अनुसार भी दोनो बनस्पतियों के कुल भी अलग अलग है।

एक ही नाम से दो विभिन्न गुण सम्पन्न बनस्पतियो का आयुर्वेदीय साहित्य में सन्निविष्ट होना न केवल भ्रामक ही है अपितु एक के स्थान में दूसरी बनस्पति के प्रयोग होने की भी सम्भावना है। अस्तु उक्त विचार के वशीभूत होकर ही मैंने उक्त बनस्पति को आधुनिक रुदन्ती संज्ञा से अभिहित

---

[1] आयुर्वेद साहित्य मे वास्तविक रुदन्ती का निम्नलिखित रूप मे उल्लेख आया है—

चणक पत्र समं पत्रं क्षुपं चैव तथाम्लकम्।
शिशिरे जल विन्दूनां स्रवन्तीति रुदन्तिका॥

इस क्षुप के चने के पत्र के समान पत्र होते है। इसका आस्वाद अम्ल होता है। शिशर काल में इसमें से पानी की बूंदे स्रवित होती हैं। इस प्रकार रुदन के करने अर्थात् रोने से पानी की बूंदे आसुओ के रूप मे स्रवित होने के ही कारण इसे रुदन्तिका कहते है। राजनिघण्टु में भी इसका वर्णन रुदन्ति के नाम से मिलता है।

खजाइनुल अद्विया में भी इसका रुदन्ती के नाम से ही उल्लेख आया है। इसका छोटा सा खडा क्षुप चने के क्षुप की तरह होता है जिसमे चने के पत्तो जैसे खट्टे पत्ते लगते है। इन पत्तो में कुछ खारीपन भी होता है। आकार में चने के पत्तो से जरा छोटे होते है। इनकी पृष्ठ आकाश की ओर और मुंह पृथ्वी की ओर होता है। शरद ऋतु मे इन पत्तो से पानी की बूंदे टपकने लगती है। इसी कारण से क्षुप के नीचे की जमीन सर्द पीली और काली मालूम होती है जैसे दीपक के तैल से चिकना कर देते है। इस क्षुप के आसपास चीवटिया रहती है। जब यह क्षुप बढ जाता है तो इस पर श्वेत रोम पैदा हो जाते है।

इसका लेटिन नाम CRESSA CRITICA है।

किया है। आशा है कि जब तक उक्त बनस्पति के वास्तविक नाम का नाम निरुक्ति सहित निरूपण नहीं होता तब तक वैद्य बन्धु आधुनिक रुदन्ती के नाम से ही इसे प्रयोग में लाने की कृपा करेंगे।

इसके अतिरिक्त श्री ए एन. नाथ जोशी एम. एस. सी. मंत्री आयुर्वेद अनुसन्धान बोर्ड बम्बई ने इसका प्राचीन आयुर्वेदिक नाम किंकणी लिखा है चुनाचे मदनपाल निघण्टु के फलादि वर्ग मे इसका वर्णन मिलता है। इसमे लिखा है—

किंकणी तुवरा तिक्ता पित्त श्लेष्म हराहिमा।
तत्फलं वातलं स्वसं पक्वं स्वादु त्रिदोषजित्॥

अर्थात् किंकणी स्वाद मे तिक्त है, शीत वीर्य है, पित्त और कफ नाशक है। इसका कच्चा फल वातकारक है और पक्का फल मीठा तथा त्रिदोष नाशक है।

हमें तो आधुनिक रुदन्ती और किंकिणी के उक्त गुणों में कोई विशेष समानता मालुम नहीं होती। सम्भवत' जोशी जी भी हर बनस्पति को आयुर्वेदिक शास्त्रो में से ढूंढ़ निकालने के इन्द्रजाल में फंस गए है और यह भी डा० जी कृष्ण मूर्ति की तरह का ही केवल मात्र एक दूसरा अनुमान है।

इसे कनाडी मे तुलीकाय और तुतीकाय कहते हैं। कनाडी में काय फल को कहते है अर्थात् लुतीकाय से अभिप्राय लुतीफल है। कोकण मे इसे मरजादुधाट (*Marja Dudhaut*) और लातीनी मे कैपिरस मुन्नाई (*Capparis Moonii*) कहते हैं।

इतिहास—

इस बनस्पति का न तो किसी आयुर्वेदिक शास्त्र मे वर्णन मिलता है और न किसी तिब्बी पुस्तक मे। यही नहीं जड़ी बूटियो से सम्बन्धित जो प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तके उपलब्ध होती है उनमे भी इसका कोई विवरण नहीं पाया जाता। परन्तु तो भी पश्चिमी घाट, कोंकण और दक्षिण कनारा में इसके प्रयोग की चिरकाल से परिपाटी चली आ रही है। वहां के वैद्य इसके लेप को चोट और सूजन की चिकित्सा के लिए प्रयोग में लाते हैं। कुष्ठ निवारणार्थ भी इसका प्रयोग होता है। फोड़े फुन्सियों और शरीर की ग्रन्थियां के प्रतिकार के लिये भी व्यवहार में लाते है। मैसूर के अविकसित आदिवासी (पिछड़े लोग) एवं जंगल में जीवन व्यतीत करने वाले कबायली घावों (अग्निदग्ध द्वारा होने वाले जख्मो एवं आघातजन्य व्रणों) की निवृत्ति के लिये भी प्रयोग में लाते हैं। दक्षिणी भारत के अतिरिक्त यह और कहीं भी व्यवहार मे नहीं आती।

डाक्टर जी कृष्णमूर्ति ने इसे सबसे पूर्व क्षय में कैसे प्रयोग किया इसके विषय में श्री पातञ्जली सेठी ने एक अति मनोरञ्जक घटना २७ जुलाई १९५८ के टाइम्स आफ इण्डिया देहली मे प्रकाशित की है। पाठकगण की ज्ञान वृद्धि के लिए संक्षिप्त रूप मे पाठको की सेवा मे प्रस्तुत की जा रही है।

पांच वर्ष से अधिक पूर्व की बात है जबकि एक डाक्टर जो मुंह के मुहासों के कष्ट से छुटकारा पाना चाहते थे एक परिचित व्यक्ति ने उन्हे रुदन्ती[1] के फल को प्रयोग में लाने के लिये प्रेरित किया। प्रेरणा के अनुसरणस्वरूप रुदन्ती फल को जल के सहयोग से पीसा गया और पिसे हुए पदार्थ को लेपवत् प्रयोग किया गया। डाक्टर जी ने इसे चमत्कारी रोगनिवारक पाया चूंकि इसने मुंह के मुहांसो के अन्तिम चिन्हो तक को भी नष्ट कर दिया था, सब पीपयुक्त भाग और कष्टप्रद फुंसियां कुछ दिनों में ही बिल्कुल विलुप्त हो गई थीं।

कुछ सप्ताह के पश्चात् मास जुलाई १९५३ में एक ढाई वर्ष का बालक जो क्षय रोग का लगभग मृत प्रायः रोगी था, उनके पास लाया गया। इस से पूर्व इसका एक क्षय के आतुरालय में एलोपैथी की नवीनतम प्रसिद्ध व विलायती औषधियो के द्वारा दस मास सतत चिकित्सा की जा चुकी थी। परन्तु लाभदायक प्रमाणित न हुई थी। अन्त में

[1] इस निबन्ध मे वर्णित रुदन्ती से अभिप्राय केवल मात्र आधुनिक रुदन्ती से ही है, ज्ञात रहे, चूक न होने पाये।

असाध्य घोषित करके रोगी को आतुरालय से मुक्त कर दिया गया था। डाक्टर की विचारधारा थी कि अब रोगी पन्द्रह दिन से अधिक जीवित न रह सकेगा।

मुक्त होने के तीन दिन पश्चात् जब डाक्टर ने इसका निरीक्षण किया तो उसकी दोनो क्षयज ग्रंथिया खुली हुई थीं और इनसे पूयस्राव हो रहा था। बालक बहुत व्याकुल था। आरम्भ में छूत को दूर करने और ग्रंथियों के व्रणो को साफ करने के निमित्त-रुदन्ती को चूर्ण के रूप में व्रणों पर छिड़कने के लिए प्रयोग किया क्योंकि यह प्रायः प्रसिद्धि थी कि यह पूय को मुक्त करती है। और डाक्टर के मुहासो को भी तो इसी से लाभ हो चुका था। अधिक प्रभावकारी बनाने के निमित्त इसने इसे आन्तरिक रूप में भी दिया।

एक बार फिर परिणाम चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्त हुआ। पांच दिन के अन्दर अन्दर पूय का स्राव कम हो गया। व्रण रोपण होने प्रारम्भ हो गये। चार मास चिकित्सा करने से रोग बिल्कुल जाता रहा। इससे डाक्टर जी कृष्णमूर्ति को प्रथम बार पता लगा कि रुदन्ती में कुछ क्षयघ्न गुण पाये जाते है। चूंकि अब डाक्टर जी इसके रोगनिवारक गुणों से बहुत प्रभावित हो चुके थे इसलिए उन्होंने इसे क्षय के अन्य रोगियो पर अधिक परीक्षण करके इसके रोगनिवारक प्रभावो का पूर्ण अन्वेषण किया और वह, इसके अद्भुत एवं आशुफलप्रद प्रभावों के कायल हो गये हैं।

एक अन्य सम्मति–

श्री ए. एन. नमजोशी एम. एल. सी. मन्त्री आयुर्वेद अनुसन्धान बोर्ड बम्बई लिखते हैं–

जब से रुदन्ती के क्षय रोग मे लाभकारी होने की चर्चा चली है तबसे इसकी पहचान एवं शास्त्रीय नाम सम्बन्धी जिज्ञासा वैद्यो तथा जनता दोनो मे उठ खड़ी हुई है। बम्बई आयुर्वेद अनुसन्धान बोर्ड के मन्त्री होने के नाते मेरे पास भी इस सम्बन्ध मे कई लोगो की प्रार्थनाएं इस प्रश्न पर प्रकाश डालने के लिए आई। इसीके परिणाम स्वरूप मैंने इस वनस्पति के सम्बन्ध में गम्भीर अनुसन्धान प्रारम्भ किया और यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया कि रुदन्ती द्वारा क्षय चिकित्सा ज्ञान का इतिहास क्या है तथा इसका नाम रुदन्ती कैसे पड़ा? मुझे यह बतलाते हुए प्रसन्नता है कि मेरे अध्ययन में मुझे सफलता मिली है।

आयुर्वेद में रुदन्ती नाम की एक बनस्पति का पहले ही उल्लेख है जिसके गुण धर्म और रोगनाशक प्रभाव इस नव्य रुदन्ती से नितान्त भिन्न हैं। इसलिए सर्व प्रथम मैंने यह मालूम करने का प्रयत्न किया कि एक ऐसे फल का जिसकी शास्त्र वर्णित रुदन्ती बनस्पति से तनिक भी समानता नहीं उसका नाम रुदन्ती कैसे पड़ गया। शास्त्र वर्णित रुदन्ती का बनस्पतिक नाम Cressa cretica है। यह एक जड़ी है। जिसके फल [1] बहुत छोटे छोटे होते हैं।

इस नव्य रुदन्ती के रोगनाशक प्रभाव के अध्ययन का इतिहास १९३७ से प्रारम्भ होता है। उस समय मगलौर के एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक पण्डित का पोता जो वैसे तो बीमा कम्पनी में मुलाजम था पर शौकिया चिकित्सा कार्य करता था। इस व्यक्ति मे अनुसंधान की प्रवृत्तियां विद्यमान थीं स्वभाव से वह चुपचाप, सन्तोषी और आडम्बरहीन व्यक्ति था। और प्रसिद्धि से घबराता था। थोड़े से रोगी उसके पास आते थे। और उन्हीं पर वह अपने निवास स्थान अर्थात् कारवाड़ जिले मे उत्पन्न होने वाली आयुर्वेदिक बनस्पतियों पर अनुभव करता रहता था। उसी अनुभव में उसने देखा कि लुतिकाय नाम की जो बनस्पति कारबाड़ जिले में उगती है वह क्षय रोगियो पर बड़ी लाभकारी है। उसने बड़े धैर्यपूर्वक यह अनु-

---

१ जहा तक मुझे ज्ञात है रुदन्ती के क्षुप पर बिल्कुल कोई फल नही आते। आज तक कई वार रुदन्ती के क्षुपो के देखने का अवसर प्राप्त हुआ है परन्तु कभी भी इसके क्षुप पर कोई फल देखने मे नही आया और नही किसी अन्य प्रमाणिक जड़ी बूटियों की पुस्तक मे ऐसा पढने को मिला है।

अत्र जारी रखे और इसमें कुछ प्रसिद्धि प्राप्त करली। यह देख कर उसके कुछ मित्रो और सहयोगियों को इस बनस्पति का नाम जानने की जिज्ञासा हुई। उस समय तक इस बनस्पति का कोई नामकरण नहीं हुआ था और इसके स्थानीय नाम लुतिकाय से भी अधिक लोग परिचित नहीं थे । परन्तु धीरे धीरे इस इलाज की प्रसिद्धि फैलती गई और फुफ्फुस क्षय के इस सफल इलाज के सम्बन्ध में अधिकाधिक लोगो की जिज्ञासा बढ़ने लगी। इसी तरह वह चिकित्सा लगातार १६ वर्ष अर्थात् १६५२ तक इस पर अनुभव लेता रहा और अब उसे विश्वास हो गया कि यह सचमुच क्षय की चिकित्सा के लिए उत्तम प्रभावकारी है। उधर उसके मित्रो ने इस बनस्पति का नाम पहचान आदि उससे बारबार पूछना प्रारम्भ किया। वह यह रहस्य प्रकट नहीं करना चाहता था। मित्रों के दबाव में आकर उसने उन्हे वह फल तो ठीक बता दिया परन्तु भ्रम मे डालने के लिए उसका नाम रूदन्ती बता दिया। पर नाम के भ्रम से वह रहस्य छिपा न सका। हा इतना अवश्य हुआ कि यह फल इसी अशुद्ध नाम से प्रसिद्ध हो गया। फल तो लोगों ने देख लिया था। और यह उस इलाके में उगता ही था। इसलिए इसका प्रचार बढ़ता गया और अब इसका प्रयोग व्यवसायिक स्तर पर आरम्भ हो गया है। संक्षेप में यही रूदन्ती के नाम का इतिहास है जिससे प्रकट है कि निश्चय ही यह घड़ा हुआ अशुद्ध नाम है। (आयुर्वेद-विज्ञान)

उत्पत्ति स्थान—

इसकी झाड़िया पश्चिमी घाट, कोकण और दक्षिण कनार, केरल और लंका के घने जंगलो में जो समुद्र धरातल से दो हजार से ढ़ाई हजार फुट की ऊचाई तक होते है स्वतः उत्पन्न होती है। यह मैसूर में शरावती नदी के किनारों के घने जंगलो में जिला कारवाड़ और मंगलौर के घाटों में बहुत अधिकता से प्राप्त होती है। यह दक्षिण भारत मे खिरली, कुमठा, सीलासा और खण्डाला आदि के चारों ओर के जंगलों में बहुत पाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय—

यह एक मध्यम ऊंचाई की स्वतः उत्पन्न होने वाली और अनियमित रूप में फैलने वाली वृक्षाश्रयी झाड़ी है। जिसकी ज्यादा से ज्यादा ऊंचाई पंद्रह अठारह फुट होती है। परन्तु प्रायः दस पंद्रह फुट ऊंची होती है। इसकी निर्लोम शाखाएं तीन से छः इच तक लम्बी और सवा से ढ़ाई इंच तक मोटी होती है। इसके जब नये २ पत्ते निकलते हैं तो उनका रंग ताम्र वर्ण का होता है। सुर्खी स्पष्टतः पाई जाती है परन्तु परिपक्व होने पर चमकदार हरे रंग के होते हैं। इनकी डण्डी आधे से एक इंच तक लम्बी होती है। यह तीन से चार इंच लम्बे और डेढ़ से दो इंच चौड़े होवे है। यह नोकरहित या थोड़े नोकदार और कड़े होते है। पत्र वृन्त के पास छोटे छोटे टेढे कांटों का एक जोड़ा होता है। पत्तो की मध्यसिरा से दस बारह जोड़े सिराओं के निकले रहते है।

इस पर मंजरियां आती हैं। हर मंजरी मे छः से बारह तक पुष्प होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के और लोमरहित होते है। यह चार से पांच इंच व्यास में होते हैं। हर पुष्प में चार चार पुष्प पत्र होते है जो आमने सामने होते हैं। पुंकेशर तथा स्त्री केशर स्पष्टतः दिखाई देते हैं।

इसके जो फल आते है वह अण्डाकार गोल होते है। छोटे से छोटे फल का व्यास प्रायः चौथाई इंच होता है। बड़े फल प्रायः छोटे अनार जितने आकार के होते है। बड़े से बड़े फल चौदह पंद्रह इंच व्यास तक के पाये जाते हैं। पत्तों के अनुकूल ही अपक्व फल भी सुर्खी लिए होते हैं। परन्तु पकने पर इनका रंग हरा होता है।

इसके छोटे छोटे फलो को तोड़ कर सुखा लिया जाता है तो इनका रंग काला हो जाता है। परन्तु बड़े बड़े मोटे फल शुष्क हो कर नसवारी रंग के हो जाते है। इनका छिलका दृढ और मोटा होता है और अन्दर से यह ठोस होते है। इनके फलो को काटने से इनमें से मीठी मीठी सुगन्ध निकलती है। इसके हरे बड़े फलों को काटने से इन

का गूदा हलका लालिमा युक्त हरा होता है । किन्तु साबत फलों को तोड़ कर चार छः दिन सुखाने के बाद काटने से गूदा हलके गेरू रंग का निकलता है।

फलों के अन्दर कई बीज होते है जो सेम के बीजो के बराबर और सदृश होते हैं। फलों का स्वाद औट के समान होता है। अप्रैल मास में यह फल एकत्र किए जाते है।

प्राकृतिक वर्ग--

बानस्पति वर्गीकरण के अनुसार यह कैपरीडेसी (Copparidaceae) परिवार से सम्बन्धित है।

रासायनिक पृथकीकरण--

इसके सक्रिय तत्व के पृथक करने का कुछ प्रयत्न किया गया है। परन्त कुछ अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। एलकोहल् (Alcohol) और सलफ्युरिक ईथर (Sulpuric ether) के मिक्सचर (mixture) तरल समुदाय में इसके फलो के पृथकीकरण करने से एक गाढ़ा, लेसदार और हरित रंग का तैल प्राप्त किया गया है । परन्तु इससे अधिक अभी तक कोई रासायनिक पृथकीकरण नहीं किया जा सका।

प्रयोज्य भाग-औषधि प्रयोगार्थ प्रायः साबत फल अर्थात् छिलका तथा गूदासहित प्रयोग किये जाते हैं परंतु तो भी कई इनके केवल छिलके के प्रयुक्त करने को श्रेष्ठता देते है। हम तो सदा समुदय फल को ही प्रयोग में लाते हैं।

अनुभव से मालूम हुआ है कि परिपक्व फलों (मोटे फलो) की अपेक्षा कच्चे फल (छोटे फल) चिकित्सार्थ अधिक गुणदायक प्रमाणिक होते हैं। छोटे फलों को इसी तरह कूट छान कर बनाया हुआ चूर्ण उपयोग में लाना चाहिए।

श्री रतिलाल हरकिशन दास गोरडिया बम्बई लिखते है—

मेरे अनुभव में रुदन्ती (*Caparis Mooni*) के छोटे फलों में अधिक गुण होता है। वड़े फलो में विशेष गुण नहीं होता। जिन फलों का व्यास २ से ४ इन्च होता है उनका थोड़ा सा गूदा निकाल कर शेष गूदा सहित फल का उपयोग करना उचित है। जो फल आकार में बड़े होते है उन की केवल छाल को ही उपयोग में लाना चाहिए।

(आयुर्वेद जगत)

मात्रा—चार ग्रेन (दो रत्ती) से बारह ग्रेन (छः रत्ती) तक है। दिन में ऐसी चार मात्राये दी जाती हैं।
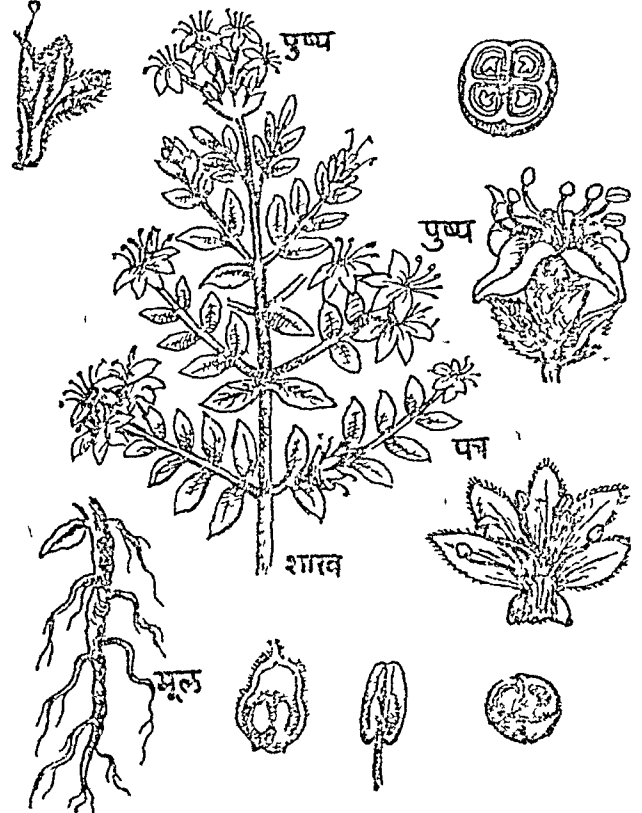
प्रयोग विधि—प्रायः साबत फलो को कूट कर तैयार किया गया चूर्ण दूध या पानी के साथ प्रयुक्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त चूर्ण की ६-६ ग्रेन की टिकिया भी तैयार करके काम में लाई जाती हैं। चुनाचे ऐसी दो दो टिकिया दिन में चार बार दूध या पानी के साथ दी जाती हैं। बच्चों को आधी से एक टिकिया दिन में चार बार देते है।

विदित रहे कि यह बिलकुल निर्विष दवा है इसलिये किसी भी अन्य चिकित्सा विधि के अध्ययन

में बिना किसी भय के प्रयोग कराई जा सकती है।

फोड़े फुंसियों और मुहासों आदि के लिये इस के चूर्ण का पानी मे लेप बना कर लगाया जाता है।

गुण व धर्म–

फोड़े फुंसियो, घावों, चोट, कील, मुहासों और ग्रंथियों के निवारणार्थ यह चिरकाल से प्रयुक्त होती है। कुष्ठ नाशक भी है। अब क्षय में अधिक लाभदायक प्रमाणित होने के कारण से इसे विशेष प्रसिद्धि प्राप्त होगई।

यह क्षय के कीटाणुओं (बैसिलस ट्यूबर क्युलोसिस) के लिए घातक है। यह उनकी क्रिया को कम करती है और उनकी वृद्धि में बाधा डालती है। रक्तविषाक्ता (*Toxaemia* टाक्सीमिया) को कम करती है। इसके प्रयोग से ज्वर कम हो जाता है। कफजन्य कष्ट की निवृत्ति हो जाती है। खांसी दूर हो जाती है। क्षुधा चमक उठती है। वजन बढ़ जाता है। विदित रहे की क्षय के रोगियों के अतिरिक्त इससे न तो अन्य रोगियों के शरीर भार में वृद्धि होती है और न क्षुधा बढ़ती है। फुफ्फुसीय व्रण भर जाते है। और इनका चिन्ह तक भी शेष नहीं रहता। रोगी की साधारण शारीरिक अवस्था बहुत सुधर जाती है। वह अपने भीतर नवीनता तथा स्फूर्ति अनुभव करता है। उसे नींद खूब आती है।

(क्रमशः)

--कविराज जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति,
चन्दोसी (मुरादाबाद)

:: पृष्ठ ३१ का शेषांश ::

कासघ्न शार्कर–

अडूसे के पत्ते, नीलोफर, उन्नाव, सूखे लिसोड़े, मुलैटी छिली, गुलबनफसा, वनफसा, हंसराज, गावजुवां, कुलिंजन प्रत्येक वस्तु ५-५ तोले लेकर जौकुट करले। फिर इसे ४ सेर पानीमें डाल कर औटावे जब १ सेर रहजाय उतार ले। टंडा होने पर मसलकर छान ले। इसमें १ सेर मिश्री मिलाकर चासनी कर चटनी सी गाढ़ी करलें। ठडी होने पर असली जवाखार १ तोला, काकड़ासिंगी बारीक पिसी १ तोला और मिला दे। इसके चाटने से सूखी खाँसी में लाभ होता है। क्षतज कास में भी लाभदायक है। हृदय को बल देती है।

–श्री. पं० सत्यदेव शर्मा' चिकित्साचार्य'
प्र. चि.—श्री बिहारीलाल हरचरनलाल जैन
धर्मार्थ चिकित्सालय, कोठम (मथुरा)

:: पृष्ठ ३७ का शेषांश ::

पेशाब में चर्वी का आना (Albumin) प्रदर, रक्तात्पता नष्ट कर ताकत देने तथा खून बढ़ाने के लिये अकसीर है।

मात्रा –५ से १५ बूंद थोड़े जल के साथ दे।

टिंचर बेनजाइन को (Tr. Benzoin co.)—

गिर जाने की वजह से छुरी, चाकू या किसी तेज औजार से कट जाने से बहता हुआ खून बन्द करना चाहते हो तो इसका फाया डुबोकर बहते हुये खून की जगह पर लगाये, एक मिनट में रक्त बहना बन्द हो जायगा। यह दवाई गोंद जैसी चुपकने वाली है। एकदम फाया इसका चिपक जाता है। जखम भी संक्रमित नहीं होने पाता।

--श्री डा० एल० बी० लौगामी M. I M. S.
जीवनदाता दवाखाना, व्यावर (राजस्थान)

:: पृष्ठ ३८ का शेषांश ::

को इस दिन गोदुग्ध की उपलब्धि करनी चाहिए और चन्द्र के प्रकाश मे औटावें। यदि चाहे तो उसमे सावूदाने, चावल, किशमिश, वादाम, चिरोंजी, छुहारे, केशर कस्तूरी आदि उत्तम चीजे डाले व विनाढ के एक पात्र मे उसे रात्रि भर चन्द्रमा के प्रकाश मे रखे। प्रातःकाल ४ बजे स्नान तथा ईश्वरोपासना आदि दैनिक कार्यों से निवृत होकर उषाकाल में इस अमृतमय पय अथवा खीर सानन्द पान करें। इस प्रकार अमृत पान करने से स्वास्थ्य उत्तम रह कर मनुष्य दीर्घायुषी हो सकता है एव क्षय, दमा आदि भीषण विभीषिकाओं से रक्षा प्राप्त कर सकता है। यदि पाठकगण इस अमृत का विधिवत् पान करेंगे तो लेखक अपने प्रयास को सफल समझेगा।

–श्री पं. नन्दकिशोर शर्मा सूर्य चिकित्सा विशारद
मन्त्री गायत्री परिवार, आगर।

पाठकों के प्रश्न

१—बाल अधिक झडने को रोकने की परीक्षित दवा बतावें।

२—भार बढाने की कोई सफल औषधि बतावे।

—ग्राहक नं० ६३३४

३—जलने के घाव अच्छे होजाने पर शेष रहे श्वेत दाग एव गांठ को मिटाने की सफल औषधि लिखे।

—ग्राहक नं० ५०२२

४—नारूरोग महान दुखदायी रोग है। पूर्ण परीचित सरल प्रयोग लिखे।

—वैद्य काशीराम चौधरी, गरौठ (मंदसौर)

५—कतिपय फार्मेसिया तैयार क्वाथ निर्माण कर सप्लाई करती हैं, उनको स्थायी रखा जा सकता है। इनके बनाने की प्रक्रिया जानकार व्यक्ति विस्तार से लिखे।

—श्री भानुकुमार राजकुमार जैन वैद्य,

६—फोतो में पानी उतरने [Hydrocele] की सफल एवं सर्व सुलभ चिकित्सा लिखे। धन्वन्तरि के एक अंक मे रीठा के पत्तो का योग निकला है वह सुलभ नहीं। गुप्तसिद्ध प्रयोगांक पृष्ठ ३२७ पर डा. मनमोहन लाल जी का अण्डवृद्धिहर मरहम योग ५-७ रोगियो को व्यवहार कराया, लाभ नजर नही आया। डा. साहब साथ मे कोई खाने की औषधि देते हो तो वह लिखें। एसा सरल-सफल योग लिखे जिसे प्राप्त कर वैद्य आयुर्वेद पर गर्व कर सके। बहुमूत्र के कई योगो को आजमाया मगर सफलता नही मिली।

—श्री अध्यक्ष-कुशल औषधालय
मु पो बेवर (मैनपुरी)

७—तबकी हरताल [वंशपत्री] को पूर्ण वजन के साथ भस्म बनाने की क्रिया लिखने का कष्ट करे। मैने सुना है कि तबकी हरताल की ऐसी भी भस्म बनाने की क्रिया है कि उस भस्म को पका हुआ कदलीफल मे डालकर रखदेने से फल हरा (कच्चा) हो जाता है। ऐसा भस्म यदि कोई साधु सन्यासी बनाना जानते हो तो सूचित करे।

८—ताम्र [तांबा] का पूर्ण सफेद भस्म बनाने की क्रिया लिखने का कष्ट करे। एक बार गजपुट देने पर भी सफेद भस्म हो जाता है। ऐसी क्रिया जानने वाले वैद्य हो या साधु सन्यासी लिखने का कष्ट करे।

—श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी
C/o श्री सहदेव शुकुल वकील बेतारोड
पो० लहेरिया सराय [दरभगा]

९—तत्काल प्रसव कारक दवा, इन्जैक्शन या मंत्र-यंत्र लिखे।

—ग्रा नं. १६६०२

१०—भारत मे आयुर्वेद की मान्य परीक्षाये लेने वाली संस्थायें कौन-कौन सी है। जानकार प्रान्त अनुसार लिखे।

ग्रा० नं० २०४६

११—पैर और हाथो की अंगुलियो के बीच में तीव्र कण्डु-युक्त घाव हो जाते है जिनमे कभी कभी पानी भी निकलता है खुजली बहुत चलती है। इधर इसे 'खरवा' के नाम से पुकारते है। अनेक औषधियां की गई लाभ नही होता। सुपरीचित दवा लिखे। आयुर्वेद मे यह रोग किस नाम से वर्णित है।

१२—ज्वर रोग है या लक्षण

१३—चिकित्सा क्षेत्र मे एलोपैथिक नवाविष्कृत औषधियां क्लोरोमाइसेटीन, सेन्थोमाइसेटीन, एन्ट्रोमाइसेटीन ने ज्वर कोमर्यादा रहित बना दिया है। ग्रन्थो के अनुशीलन से ज्वर अवधिवन्धिनी माना जाता आरहा है। किन्तु इन दवाओ के आविष्कर्ता ने सिद्धान्त को भी चुनौती दे रखी है। क्या मै आशा करू कि अभी भी आयुर्वेद जगत मे सफल चिकित्सको का अभाव नहीं है ? वे जब भी चाहे अपनी चिकित्सा सौकार्य से तथा अनुभव से प्रमाणित कर दे सकते हैं कि आयुर्वेद मे भी उस दवा से उच्चकोटि की महौषधि उपलब्ध है जिनकी बराबरी उपर्युक्त एलोपैथिक दवाये शायद नही कर सकती।

१४—ज्वर मे जब (Temperature) अत्यधिक हो जाता है उस समय रोगी बेचैन और उसमें अनेक भावी उपद्रव उठ खडे हो जाने की शका उठती रहती है। कौनसी आयुर्वेदिक औषधि उस समय की जाय जो ज्वर को काबू मे लाकर छोडे। बाह्योपचार सभी अस्थायी होते है। मन्थर ज्वर मे खास कर यह बात अधिक पाई जाती है।

—ग्रा० न० १५६३५

पाठकों की शंकाएँ

१—"पचगव्य और उनके विविध प्रयोग" (लेख जून ६१ मे प्रकाशित) मे—हेमान्ते शिशिरे चापि, वर्षा सुदधि शस्यते। तथा उसी अंक मे "ग्रामीण सूक्तियां" लेख मे—सामन साग न भादो दही प्रकाशित है। दोनो लेखक अपने अपने विचारो की पुष्टि करते हैं। विद्वान आयुर्वेदज्ञ अपने निर्णय दे।

—ग्रा० न० ४२२६

—शेषारा पृष्ठ ५९ पर

पाण्डुरोग नाशक चूर्ण–

त्रिफला ६ तोला, त्रिकुटा ३ तोला, रेवन्द चीनी १० तोला, सोंठ ७॥ तोला।

इनका बारीक चूर्ण कर ले। एक खरल मे कसीस हरा ३॥ तोला डालकर घोटे। खूब बारीक हो जाने पर उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर भली-प्रकार घोटकर शीशी में भर ले।

मात्रा—दिन में ३ बार ६ ६ रत्ती की मात्रा में ठण्डे जल के साथ लें। दवा ४२ दिन तक लें।

गुण–सम्पूर्ण प्रकार के पाण्डु रोग नष्ट होते हैं। प्लीहा यकृत् विकृति भी ठीक हो जाती है। जिस रोगी को यक्ष्मा हो या जिसे दस्त हो रहे हों उसके लिये उपयोगी नहीं है, शेष सभी दशा में लाभप्रद है।

नोट—१. यदि साथ मे ज्वर भी हो तो महासुदर्शन चूर्ण (बृन्निघण्टु रत्नाकर) दिन मे तीन बार दीजिये।
२. इस औषधि के सेवन से दस्त भी आते हैं। उदर शुद्ध करते हुए औषधि अपना प्रभाव दिखाती है।

पथ्यापथ्य–दूध-भात, घी-भात, शक्कर-भात, रोटी-दूध दीजियेगा। नमक, खटाई, मिर्च, तैल एवं मैथुन एकदम त्याग दे।

घाव का उत्तम तैल—

नीम की पत्ती २ छटांक खूब पीस ले, उसमे सरसों का तेल २ छटाक मिला कासे (फूल) के पात्र में अग्नि पर पकावे। जब अधपका हो जाय तब तूतिया १ माशा पीसकर डालदे। जब जल न रहे तेल पाक हो जाय तब छानकर शीशी मे रखें।

प्रयोग विधि–स्वच्छ रुई इसी तेल से तर कर घाव पर रखकर बांधे। घाव गहरा छिद्रयुक्त हो तो गाज तेल को भर कर उसमें भर दे और ऊपर से रुई तर करके रखकर पट्टी बाधे।

गुण—घाव भरने के लिये उत्तम तैल है।

चर्मरोग पर–

अशुद्ध पारद, अशुद्ध गंधक, तूतिया, मंसिल सुहागा भुना–समभाग।

पहिले पारद गन्धक की कज्जली करे। पश्चात् सभी औषधियाँ भली प्रकार घोट पीसकर मिलावें। १। तोला दवा में ५ तोला घी मिलाकर मलहम बनावें।

गुण—इस मलहम को लगाने से दाद-खाज आदि अनेक चर्मरोग शीघ्र नष्ट होते है।

आंखों की फुली के लिए—

शंख ४ तोला, शुद्ध मंसिल २ तोला, काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ माशा।

इनको पानी के साथ खूब पीसकर गोली बनावें। प्रातः सायं स्त्री के दूध के साथ स्वच्छ पत्थर पर घिसकर नेत्रो में लगावे।

गुण–आंखों में पड़ी छींट, फुली को काटकर नष्ट करती है। चेचक रोग से पड़ी फुली भी कटती है।

कुष्टरोग नाशक प्रयोग–

ताम्रभस्म १० तोला, कालीमिर्च ५ तोला, शुद्ध विष (वच्छनाग) २ तोला।

इनका चूर्ण बना खरल मे भलीप्रकार घोटले।

मात्रा—प्रातः सायं २-२ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ ले। उपर्युक्त चर्मरोग नाशक मलहम घावो पर लगावे।

गुण—गलित कुष्ठ, मंडल कुष्ठ आदि नष्ट होते हैं।

पथ्यापथ्य–तैल मिर्च खटाई एवं मैथुन त्याग देवे। चना की रोटी, चना को दाल सेवन करें। घी (वनस्पति नहीं) अधिक ले।

–श्री पं. अमोघदत्त पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य
रमवांपुर खुर्द, पो० अल्लीपुर बुजुर्ग (गोंडा)

अभ्यङ्ग से बल की विशेष अभिवृद्धि होती है, सिर पर तैल की मालिस से बाल काले तथा लम्बे होते है और इन्द्रिया प्रसन्न होती है। प्रतिदिन कानो में तैल लगाने से वातज कर्ण रोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ प्रभृति रोग नहीं होते और उच्चैः श्रुति तथा बधिरता भी नहीं होती।

पैरों पर तैलाभ्यङ्ग करने से पैरो का खरत्व, स्तब्धता, रूक्षता, श्रम तथा पैरो का सो जाना (सुप्तावस्था) शीघ्र ही शान्त होते है। इससे गृध्रसी प्रभृति वातरोग नहीं होते।

स्पर्श ज्ञान अथवा स्पर्शेन्द्रिय त्वचा में आश्रित है और अभ्यंग त्वचा के लिए हितकर है अतः तैलाभ्यङ्ग करना हितकर है।

आयुर्वेद में तैलाभ्यङ्ग करने के लिए विशेष रोगो के लिए विशेष-विशेष स्नेह अथवा तैल हैं। फिर देश कालानुसार उनके अनेक भेद है। विशेष अंगो के लिए विशेष औषधि सिद्ध तैल बताये गए है यथा—

सर्व प्रकार के ज्वर के लिये अंगार तैल, लाक्षादि तथा जात्यादि तेल। कर्णनाद, कर्णबाधिर्य आदि के लिए अपामार्गक्षार, बिल्व तथा क्षार तेल। इन्द्र लुप्त के लिए करञ्जतैल, लोमशातन के लिए करवीर तैल। शिरोरोग पर अभ्यङ्गार्थ भृंगराज, आमला, केशराज अथवा लक्ष्मीविलास तैल। वातरोगो के लिए महानारायण, रसोन अथवा विषगर्भ तैल। शोथ के लिये पुनर्नवादि, शोथशार्दूल तैल। यक्ष्मा रोग में चन्दनादि तैल उत्तम है। कुष्ठ के लिये गुंजामूलादि, मरिचादि तथा सिन्दूरादि तैल अच्छे है। सूखा रोग के लिये इरिमेदादि तैल श्रेष्ठ है। अर्श पर कासीसादि तैल और कृमिरोग में विडङ्गादि तेल लाभप्रद है। स्थूलीकरण के लिये त्रिफलादि तथा अश्मरी रोग मे वरुणादि तेल उत्तम कार्य करते है। गंडमाला रोग पर लांगली, इरिमेद और अजमोदादि काम आते है। इसी प्रकार मनुष्य शरीर के सभी रोगो के लिये शास्त्रो में तेलो के प्रयोग लिखे हैं। अर्दित रोग, हनुस्तम्भ तथा पक्षाघातपर बातहरस्नेह अथवा अर्धांगहर तेल जगत में प्रसिद्ध हैं। हमने संक्षेप में कुछ तैलो पर प्रकाश डाल दिया है।

सारांश यह है कि नित्य अभ्यङ्ग करने वाला पुरुष कोमल, स्पर्श तथा परिनष्ट अंगो से युक्त बलवान और प्रिय आकृति वाला हो जाता है। इसके शरीर पर वृद्धावस्था के लक्षण प्रायः प्रकट नहीं होते और सौंदर्य बना रहता है।

— श्री कविराज धर्मदत्त चौधरी वै० शा०
आयुर्वेदाचार्य
१२ बी. । १८ सी., चंडीगढ़ ।

(306)

मेरी सफल चिकित्सा-विधि

[१]

सन्निपात चिकित्सानुभव

वैद्य रामभरोस रामावतार गुप्त
फालेगाव (यवतमाल)

(१) रुग्णा का नाम—लरीफा बाई, पति नुरा भाई मुसलमान, आयु ३५ साल, निवास स्थान फालेगांव (यवतमाल), दिनांक १६-४-६१।

रुग्णा को वसंत ऋतु में एक सप्ताह से प्रतिश्याय ज्वर, खांसी का विकार था। उसे वातपित्त प्रकोपित कफज्वर रहा, जिसका इलाज आधुनिक डाक्टरों ने ऐलोपथिक पेटेन्ट औषधि, इन्जेक्शन तथा टेबलेट्स द्वारा किया था। परन्तु परिणाम में व्याधि भयङ्कर घोर रूप से उपस्थित हुई। रुग्णा का पति शे० नुरा भाई, शे० फरीद भाई के साथ हमारे पास आया। उन्होंने कहा हमारे यहां रुग्णा की हालत खराब है। आप जल्दी चलिये। उन्हीं के साथ मैं घर गया और रुग्णा को देखा, हालत यह थी—

डाक्टर ने इन्जेक्शनादि लगाए, टेबलेट सेवन कराए थे। तदुपरात रुग्णा को जोरों से अत्यन्त वमन (कै) हुए। २-३ दस्त भी हुए थे और स्वेदाधिक्य होते हुए सर्व शरीर हिम (बर्फ) तुल्य ठण्डा पड़कर निस्तेज बेहोश पड़ा था, नेत्रों में डबडबाता हुआ पानी बहता था। शीतागावस्था थी।

सीताग सन्निपात के लक्षण—

> हिम सदृश शरीरो वेपथु श्वास हिक्का-
> शिथिलित सकलाङ्गो खिन्ननादोग्रतापः।
> क्लमथु दवथु कासच्छर्द्यतीसार युक्त-
> स्त्वरित मरण हेतुः शीतगात्र प्रभावात्॥
> —सा० लि० १४

चिकित्सा में—रुग्णा के वमन, दस्त और स्वेदाधिक्य शीतागावस्था निवारणार्थ और आमाशयस्थ दोषों के पाचनार्थ जठराग्नि प्रदीपक प्रयोग किया।

चिकित्सा प्रयोग—

(१) सजीवनी वटी (शा. ध.) १+१+१ तीन मात्रा मधु के साथ १५ मिनट के अन्तर से।

(२) स्वर्ण सूतशेखर+अभ्रक भस्म—२ मात्रा मधु से आधा आधा घण्टे के अन्तर से।

(३) कायाग्नि (त्वचा की गर्मी) स्थापनार्थ रूक (बालुका स्वेद) किया।

(४) कल्पतरु रस का नस्य दिया।

परिणाम—एक घण्टे में वमन नहीं हुए तथा दस्त भी नहीं आया, प्रकृति ठीक रही, कुछ गर्मी प्राप्त हुई।

मात्रा प्रयोग—(१) वृहत् कस्तूरी भैरव (भै. र.) आधे आधे घण्टे से १-१ मात्रा मधु, अद्रक रस

।२ रससिंदूर, अभ्रक भस्म, पिप्पली चूर्ण (मिश्रण) १-१ मात्रा मधु, अद्रक रस।

(३) म. वातविध्वंस रस १ मात्रा मधु के साथ।

(४) सेक—ईंटों का दरदरा चूर्ण गरम कर पोटली बांध पुनः गरम कर सेक किया *

परिणाम—इस प्रयोग से रात को तीन बजे शरीर को गरमी ९८ प्राप्त हुई। स्वेदस्राव काफी तादाद में कम हुआ, परन्तु स्वेद चालू रहा था। हालत ठीक देख कुछ सन्तोष हुआ।

---

* स्वेदस्राव रोकने के लिये उध्वूलन का व्यवहार होता है। किन्तु उध्वूलन प्रयोग अनुकूल नहीं जंचता जो हमने किया नहीं। उध्वूलन से रोमछिद्र अवरुद्ध होकर स्वेदस्राव (पसीना) रोकने का कार्य होता है। सो स्वेदस्राव शरीर के क्लेदन कार्याधिक्य बढ़ने से होती है और वह क्लेदक कार्याधिक्य (कफदोषका) कार्य जब तक कम नहीं होता है तो रोमछिद्रों को अवरुद्ध कर देने से वह क्षुब्ध प्रकोपित स्वेद अवरुद्ध रहके अनेक रोगोत्पादक कारण होता है, इस कारण ठीक नहीं। जैसे शास्त्र में कहा भी है—'स्वेदरोधः न्मथरो जायते नृणाम्' इत्यादि।

दूसरे दिन प्रातः सूर्यनारायण के दर्शन हुये, रुग्णा का पति प्रफुल्लित होता आया और जाकर रुग्णा को देखा तो तापमान ९६ ९६।। मिला। स्वेद-स्राव होता था। प्रमाण कम रहा (वमन, दस्त नहीं थे) रुग्णा निस्तेज सुस्त बेहोश पड़ी थी परन्तु उसे दर्द, पीड़ा का अनुभव होता था। सिर भारी, शरीर ठण्डा बतलाया था।

औषधि प्रयोग—

(१) कस्तूरी भैरव (वृहत) प्रातः सायं और रात्रि में एक एक मात्रा मधु से।

(२) रससिंदूर, अभ्रक भस्म (श. पु) बीच के समय में १-१ मात्रा मधु से।

(३) महावात विध्वंस रस प्रातः और सायं १-१ मात्रा मधु के साथ।

(४) दशमूलारिष्ट १।। तोला समभाग उष्णोदक के साथ ३-४ बार पिलाया। तीसरे दिन उपरोक्त प्रयोग ही रखा (क्रमशः अनुकूल लाभ हुआ) चौथे दिन प्रकृति समाधानकारक देखा, तापांश ९७-९७।। मिला और रुग्णा होश में थी परन्तु (भूख) क्षुधा का अभाव होने से अन्न नहीं दिया गया।

औषधि प्रयोग—

(१) सुवर्ण मालती वसत (वृहत) नं. १ १।। माशा, अभ्रक भस्म (श पु.) १।। माशा, पिपरी चूर्ण १।।-२ माशे, सब मिलाकर मिश्रण करके ६ पुड़ियां बनाईं और तीन दिन में प्रातः साय १-१ पुड़िया मधु से दीं।

(२) वातविध्वंस रस १-१ मात्रा मधु के साथ बीच के समय और रात को दिया।

(३) दशमूलारिष्ट समभाग (जल) उष्णोदक के साथ २-३ बार पीने को कहा।

परिणाम—इतने प्रयोग से प्रकृति समाधानकारक होकर क्षुधा प्राप्त होती गई। भगवान की दया से रुग्णा स्वस्थ हुई। और स्वस्थता के विचार से शक्तिवर्धक, धात्वाग्नि स्थापक धातुपोषण के लिये—

(१) सुवर्ण मालती वसंत (वृहत) १।। माशा, अभ्रक भस्म (श. पु.) १।। माशा, पिपरी चूर्ण १।। माशा, सर्व मिश्रण की ७ पुड़िया बना दीं। प्रातःसायं ७ पुड़िया मधु से देने को कहा।

(२) द्राक्षारिष्ट मात्रा १।।-२ तोला समभाग जल से दो बार लेने को कहा।

नोट—पूर्ण क्षुधा प्राप्ति पर्यंत भूख लगने तक याने ६-७ दिन अन्न नहीं दिया, बाद में भूख लगने पर अन्न चालू किया गया। लंघन समय में सिर्फ चाय, काफी, उष्णपेय दिया था। यह रुग्णा अब भी स्वस्थ (तन्दुरुस्त) है। भगवान की दया से आरोग्य प्राप्त हुआ।

एक शीतगात्र का रोगी

(कुछ वर्ष पूर्व)

शीतांग के और भी रोगी हैं। उन रोगियों का प्रसङ्ग प्रस्तुत करने योग्य है किंतु विस्तार भय से पूर्ण वर्णन न कर संक्षेप में दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है।

यह रोगी पहिले ग्रहणी विकार ग्रस्त था। उसको कुपथ्य सेवन से वर्षाकाल में आमदोष से ज्वरोत्पत्ति हुई और आमदोषों का विबन्ध अफारा होकर आध्मानयुक्त दशा में कफदोष प्रबल बढ़कर बोलना (वाक) बन्द होते हुए सर्व शरीर हिम तुल्य ठण्डा पड़ गया, कण्ठ से कफ की घरघराहट थी, परन्तु स्वेद-थोड़ा था। शरीर ठण्डा पड़ा था, नाड़ी अति-क्षीण थी, कठिनता से ज्ञात होती थी।

चिकित्सा प्रयोग—

रोगी को आमदोष पाचनार्थ, अग्नि दीपनार्थ और वायु अनुलोमनार्थ, वातनाड़ी प्रसारक—

(१) अग्निकुमार रस २ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, एकत्र मिला के अद्रक के रस के साथ दिया।

उपयोग—आमदोष, पाचक, वायु अनुलोमक।

(२) कालकूट रस १।। रत्ती की एक मात्रा, मधु और अद्रक रस के साथ दी (इस एक मात्रा से आध: एक घण्टे में वातनाड़ी का प्रसार होकर बोलने का कार्य हुआ)।

(३) रस सिंदूर, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, पिपरी का चूर्ण सब मिलाकर १-१ मात्रा मधु से दिया गया था। हर रोज जरूरत के अनुसार १-२-

३ मात्रा सेवन करायी गईं।

उपयोग—कण्ठस्थ कफदोष हटाकर श्वासयन्त्र, हृदय को बलकारक एवं वायुशोधक प्रयोग होता है।

परिणाम—कालकूट रस की एक मात्रा से आधा एक घण्टे मे रोगी बोलने लग गया। अतः फल प्राप्ति होने से वह बन्द कर दिया।

अग्निकुमार रस, शखभस्म यह ४-६ मात्रा आधा एक घण्टे से सेवन कराने से आमदोषों का विबन्ध नष्ट होकर वायु अनुलोम हुआ, परन्तु शीतगात्रता, नाड़ीलुप्तता एवं कफदोष नष्ट होना बाकी रहा। इसलिए रससिंदूर, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, पिप्पली चूर्ण, यह मधु से उचित मात्रा मे २-३ बार ३-४ दिन सेवन कराया। भगवान की दया से आरोग्य लाभ हुआ।

वक्तव्य—आमदोषो के विबन्ध में भूलकर भी संशोधनार्थ विरेचन (वमन) नहीं देना। आमदोषों में विरेचनादि संशोधन से भयङ्कर घोर रूप आमदोषोपद्रव उपस्थित होकर भयानक हानि होने का मौका आता है, घातक है, आमदोष में विरेचन नहीं देना। यथोक्तं वागभट्टाचार्य—

पाययेद्दोष हरण मोहादाम ज्वरे तु यः।
प्रसुप्तं कृष्ण सर्पं स्तु कराग्रे ण परामृशेत् ॥१॥
—वाग्भट चि. १-१०३

ज्वरक्षीणस्य न हित वमनं च विरेचनम्।
—वाग्भट चि १-१०४

श्री धन्वन्तरि भगवान की कृपा से आयुर्वेद चिकित्सा के अनेक प्रसंग पर यथोचित अनुभव चमत्कार दिखाई देते हैं। परन्तु आयुर्वेद के गम्भीर सिद्धातो का विवेकपूर्ण पालन करना आवश्यक होता है।

—श्री वैद्य रामभरोसे रामावतार गुप्त आयु. वि.
फालेगाव (यवतमाल) विदर्भ।

[२]

योगराज गूगल का चमत्कार

श्री डा० श्यामदास प्रपन्नाश्रमी दौगवां

योगराज गुग्गुल की वायु-वात रोगो के क्षेत्रों में जो कार्यकारिता है उसके विषय मे प्रत्येक चिकित्सक को तो मालूम है ही परन्तु आज मैं एक ऐसा अनुभव आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं—जिससे इस साधारण प्रभाव दिखाने वाले प्रयोग पर आपका ध्यान सदैव जागरूक रहे।

रोगिनी—नाम जैमन्ती आयु ३० वर्ष की, तारीख २१ नवम्बर १६ ६० ई० को मेरे औषधालय में लाई गई। मालूम हुआ करीब १५/१६ दिन पहले एक रात्रि को इसके पेट में अचानक ही असहनीय यन्त्रणा और उससे बेहोशी होगई जो पसीना व घबराहट के साथ शुरू हुई थी। नजदीक के एक चिकित्सक को बुला उसे दिखलाया तो उस चिकित्सक ने बतलाया कि इस रोगिनी की आते खराब है। यानी आंतों की टी० बी० हो गई है। यह कह कर उसने रोगिनी के पेट पर एक पलास्तर जो लम्बाई-चौड़ाई मे आठ दस इंच होगा चढ़ाया और कुछ दवाइयां खाने पीने को दीं। लगातार आठ-दस रोज उसका ही इलाज चलता रहा पर मर्ज बढ़ता ही गया। इसके बाद दूसरे एक वैद्य जी का भी इलाज कई दिनों से चलने के बाद जब उससे कोई लाभ नजर नहीं आया तो आपके पास आया हूं। इसके बाद मैंने रोगिनी को अच्छी तरह जांच करके बताया कि यह न तो टी० बी० है और न आंतो की खराबी। यह है "अन्त्र पुच्छप्रदाह" यानी एपेंडिसाइटिस। मैंने योगराज की गोलियां गर्म जल के साथ खाने को दीं और धतूरे के पत्रो का स्वरस १ तोला, अदरख का स्वरस १ तोला, एलुआ आधा तोला और गौमूत्र १ तोला इन सबको मिट्टी के बर्तन मे गरम करके सुहाता लेप कई बार लगाने को आदेश दिया। रोगिनी को बिदा करते समय एक खुराक एरन्ड तैल कोष्ठ साफ होने के लिए सेवन कराया गया।

दूसरे रोज रोगिनी की हालत पूर्वापेक्षा सन्तोषजनक मालूम हुई। यन्त्रणा और घबराहट बन्द होगई थी। पीड़ित स्थान पर दर्द और सूजन अवश्य थी। आज भी तीन गोलियां योगराज की दी गईं। अनुपान जल के स्थान पर पुनर्नवारिष्ट दिया। प्रलेप पूर्ववत रहा। लगातार पाच दिन इसी क्रम से

योगराज का प्रयोग चलता रहा। सातवें दिन रोग के सारे उपसर्ग गायब हो चुकने से वह बन्द कर दी गई और निर्बलता व रक्ताल्पता के लिए लोहासव व पिप्पल्यासव भोजन के बाद एक खुराक तथा पुनर्नवा मंडूर सुबह शाम मधु के साथ कम से कम दो सप्ताह के लिए इस्तेमाल करने का आदेश दिया गया।

--श्री. डा० श्यामदास प्रपन्नाश्रमी आयुर्वेदाचार्य
सर्वोदय सेवा आश्रम, औषधालय, दोगवां
पोस्ट– कसेर कलां (बुलन्दशहर)

[२]

वातज उदररोग एवं उदरशूल

श्री पं० रामकुमार मिश्र G. A. M. S.

अनतिकाल में अपच की शिकायत दैनिक चर्या जैसा विषय बन चुकी है। इसका मूल कारण है दूषित भोजन मिथ्या आहार-विहार शोक चिन्ता, अधिक मानसिक कार्य, मल आदि वेगो का धारण, अति मैथुन, अधिक भोजन, रात्रि जागरण, अधिक ठण्डा भोजन, वातवर्धक पदार्थों का अधिक सेवन, अंकुरित अन्न का सेवन इत्यादि।

उपर्युक्त कारणो मे से अधिक चिंता एवं अधिक मानसिक कार्य अंशिक रूप से अपरिहार्य हो सकते हैं। किन्तु अन्य कारण तो हमारे द्वारा निर्मित शरीर मे व्याधियो के आगमन के लिए अशुभ आमंत्रण है। चिकित्सा करने के पूर्व यह भी विचारणीय है कि जब तक अमृततुल्य लाभकारी नियमो का पालन नहीं होता तब तक चिकित्सा में पूर्ण सफलता पाना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। मैं इस रोग से पीड़ित एक रोगी की सफल चिकित्सा कर चुका हूँ जो साघातिक रूप से वातज उदररोग एवं उदर शूल से पीड़ित था। उसका विवरण प्रस्तुत है—

आज से लगभग पाच छः वर्ष पहले उक्त रोगी आया। उसकी आयु ३७ वर्ष के लगभग थी। उसने बहुत दिनों तक होमियोपैथी एलौपैथी आदि की चिकित्साएं कराई थीं किन्तु इनसे उसे भला नहीं हुआ। उसका पेट बराबर कठोर रहता था और पेट मे गुड़गुड़ाहट रहती थी। नाभि कुक्षि मे वायु का अधिक संचार होता था। मल शुष्क हो कर अपान वायु का अवरोध हो जाता था। पेट में बराबर मीठा-मीठा और कभी कभी बहुत तेज दर्द हो जाता था। पेट कभी फूल जाता था तथा कभी कम हो जाता था। भूख नहीं लगती थी। पेट फूलने पर ठोकने से मशक पर ठोकने जैसा शब्द होता था। वह बहुत दुर्बल हो गया था और चलने फिरने में कमजोरी का अनुभव करता था।

मैंने उसे अनेक दवाएं दी किंतु उसका कुछ सतोषजनक परिणाम नहीं निकला। अतः निम्नांकित चिकित्सा से उसे लाभ हुआ—

पहले दिन मैंने उसे रात मे सोते समय आधा औंस नारायण तैल गाय के दूध में डाल कर पिलाया लेकिन इससे विशेष लाभ नहीं हुआ, अर्थात्—पूर्णतः मल साफ नहीं हुआ। तब एक रोज ठहरकर तीसरे दिन एक औंस नारायण तैल का उपर्युक्त विधि से पान कराया फिर भी जितना चाहिए था उतना लाभ नहीं हुआ। तब मैं चिन्तित हुआ कि वायुशामक स्निग्ध औषध-प्रयोग से विरेचन पूर्णत. नहीं हो रहा है और रूक्ष औषधि प्रयोग से वायु कुपित होगी। अंततः दूसरे दिन एक पाव गाय के दूध मे एक पाव जल एव आधा तोला अमलतास की गुद्दी डालकर दूध को सिद्ध कराया। पानी के पूर्णतः जल जाने के बाद जब केवल दूध बच गया तो उसे छानकर उसमे आधा औंस नारायण तैल मिलाकर रात मे सोने के समय पीने को दिया। इस बार सुबह चार-पाच बार कुछ काला, कुछ सफेद एवं मटमैले रंग और गुठलीदार तथा रेशायुक्त मल हुआ जिसमे अत्यंत दुर्गंध थी। इस क्रिया से रोगी को कुछ आराम मिला किंतु पेट का दर्द वैसे ही बना रहा। अनेक शूलनाशक दवाओं का प्रयोग किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ और कोष्ठबद्धता बराबर बनी रही। तब मैंने उसे चार-चार रत्ती शंख भस्म

और दो-दो गोली अग्नितुण्डी वटी देकर ऊपर से आधा औंस कुमार्यासव और आधा औंस दशमूलारिष्ट मिलाकर समभाग जल देकर पिला दिया। ऐसे ही दिन रात मे आरभ में चार बार और आगे चलकर तीन बार दवा देता रहा। कोष्ठबद्धता होने पर सप्ताह में दो या तीन बार दूध, पानी, अमलतास और नारायण तैल का उपर्युक्त योग का सेवन कराता रहा। उक्त प्रयोगों से आशातीत सफलता मिली और दो सप्ताह मे रोगी बिलकुल अच्छा हो गया लेकिन मैंने दवा कुछ दिन बाद तक भी चलाई। इस दवा (शख भस्म और अग्नितुण्डी आदि) ने पाच छः खुराक पड़ते ही अपना गुण दिखाया। पथ्य मे वातवर्द्धक पदार्थों का परहेज रखा और रोगी को यथाशक्ति सुबह शाम टहलने को बताया। रोगी को इस बात की भी चेतावनी दे दी कि वह जहा तक हो सके, शुद्ध वायु का सेवन करे।

रोगी को ब्रह्मचर्य से रहने को कहा तथा दाल, लाल मिर्च, तेल, गरम मसाला आदि से परहेज रखने को कहा। पथ्य में पुराने चावल का भात, साबूदाना, बार्ली, परबल, पपीता, शलजम, मूली आदि खाने को कहा। मसाले मे काली मिर्च, धनिया और जीरा अल्प मात्रा में डालने को बताया। कागजी नीबू का भी सेवन करता रहा।

उक्त व्याधि से पीड़ित मुझे कई रोगी मिले और उपरोक्त विधि से चिकित्सा करने पर मुझे बराबर पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इसी प्रसग में मैं अचानक होने वाले वातज उदर शूल की अनुभूत सफल चिकित्सा का भी उल्लेखकर देना चाहता हू। उदरशूल से पीड़ित छटपटाते हुए ऐसे रोगियों को जिनकी पीड़ा और कराहट से पत्थर-हृदय भी पिघल जाय, मैंने निश्चयात्मक रूप से अविलम्ब आराम पहुंचाया है। ऐसे रोगियो को चार रत्ती शंख भस्म मे दो गोली अग्नितुण्डी वटी डालकर आधा आधा औंस कुमार्यासव और दशमूलारिष्ट मिलाकर समभाग जल के साथ पुड़िया मिलाकर अनुपान कराया। इस दवा के एक या दो खुराक पड़ते ही रोगी के कठिन से कठिन वातज उदरशूल का निवारण होजाता है। अग्नितुण्डीवटी की मात्रा कभी कभी बढ़ाकर ३ गोली भी करदी जाती है। इस दवा का मैंने अब तक इस प्रकार के बीसियों रोगियों पर प्रयोग किया है और मुझे सफलता मिली है। कुछ रोगियों को दवा देने ही के हो जाती है। ऐसी स्थिति में कै होने के बाद तुरन्त दवा की दूसरी खुराक दे देनी चाहिए। यदि कै दवा खिलाने के १०-१५ मिनट बाद हो तो दूसरी खुराक नियत समय पर ही दी जानी चाहिए। दवा आवश्यकतानुसार आधा घन्टे से एक घन्टे के अन्तर पर दी जानी चाहिए। वैद्य समाज से मेरा निवेदन है कि वातज उदर शूल में इस दवा का अवश्य प्रयोग करें जिससे आयुर्वेद के इस चमत्कार का प्रभाव जनता पर पड़े और आयुर्वेद की यश वृद्धि हो।

वैद्य समाज के ध्यान में यह बात ला देना आवश्यक समझता हूं कि शख भस्म और अग्नितुण्डी वटी का निर्माण मैंने निम्नाकित विधि से किया है, जो आंशिक रूप से शास्त्रोक्त विधि से निर्मित औषध की अपेक्षा अधिक गुणकारी है—

शख भस्म—शंख के टुकड़ों को लेकर कागजी नीबू के रस मे तीन घंटे तक स्वेदन करके शुद्ध करें। इसके बाद टुकडों को निकाल कर फिर दूसरे कागजी नीबू के रस मे डालकर पट दे। इसके बाद उन टुकडों को श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर कागजी नींबू के रस की तीन भावना दे। अब प्रयोग के निमित्त शख भस्म प्रस्तुत हो गया।

अग्नितुण्डी वटी—शास्त्रोक्त विधि से अग्नितुण्डी के सभी औपधों को लेकर जम्बीरी नींबू की सात भावना दे और इसके उपरात दशमूल-क्वाथ की सात भावना देकर वटी बनावे।

उपरोक्त विधि से निर्मित शंख भस्म और अग्नितुण्डी वटी मेरे औषधालय में प्रयुक्त होते हैं।

—श्री रामकुमार मिश्र G.A.M.S.
श्री सतानन्द आयुर्वेदिक औषधालय
चौक, डुमरॉव (शाहाबाद)

[४]

जलोदर की सफल चिकित्सा

श्री. वैद्य मुरारीलाल शर्मा

नाम रोगी श्रीमती अमरसिंह जी धाकड़ ग्राम छोड़ी तहसील पचपाहड़ उम्र २४ वर्ष

उपरोक्त औरत के पेट में जलोदर की बीमारी होगई थी। इस रोगी का इलाज कोटा जैसे शहर के बड़े डाक्टरो से करवाया गया परन्तु रोगी का इस रोग से छुटकारा न हो सका। जिस समय रुग्णा मेरे पास लायी गई उसकी हालत बड़ी नाजुक थी। केवल हड्डियों का पिंजर थी। ज्वर बना रहता था। पेट में शूल था। मैंने रोगी को देखकर उसके रोग का निदान किया। मैंने विश्वास के साथ इस रोगी को निम्न औषधि दी व चिकित्सा चालू की —

स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती, शंख भस्म ४ रत्ती, बराटिका भस्म ३ रत्ती, गिलोय सत्व ६ रत्ती, शहद के साथ देकर ऊपर से काला जीरा १ तोला, त्रिफला चूर्ण १ तोला इसको पाव भर गौमूत्र मे औटाकर आधापाव शेष रहने पर उतार छान ४ रत्ती यवक्षार मिलाकर दिया। भोजन के पश्चात् कुमार्यासव १॥ तोला, शीतल पर्पटी १॥ माशा व गरम जल १॥ तोला मिलाकर दिया। पेट पर इन्डोली का गौंमूत्र के साथ पीस कर लेप करवाया गया। सात रोज बाद रोगी को पुनः मैंने देखा तो काफी सतोषजनक फायदा हुआ व रोगी के मर्ज लक्षण नष्ट हो गये। अब दवाई में निम्न परिवर्तन किया-

मडूर भस्म, शंख भस्म, गिलोय सत्व, प्रातः व सायंकाल शहद के साथ देकर उपरोक्त क्वाथ दिया जिससे रोगी को पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया। पथ्य में केवल गेहूँ की रूखी रोटी व पत्तेदार सब्जी दी गई।

—श्री. पं० मुरारी लाल शर्मा वैभव,
भवानीमंडी (राजस्थान)

[५]

गर्भपात पर अनुभव

वैद्य आचार्य श्री हुकमचन्द प्रेमी

इसी वर्ष की घटना है २५ फरवरी को लगभग १० बजे मैं चिकित्सालय मे रोगियों को औषध विवरण कर रहा था कि यकायक एक आगन्तुक ने घबड़ाते हुए कहा कि आपको ओवरशियर साहब बुला रहे है। कारण पूंछने पर बताया कि रात से उनकी श्रीमती जी बहुत ही बीमार है। शीघ्रता से कार्य से निवृत्त होकर मैं आवश्यक सामग्री से वहां पहुचा।

रोगी की दशा—रोगिणी बेहोश थी, कुछ बता नहीं सकती थी, परिचारको से पूंछने पर मालूम हुआ कि रोगिणी को करीब २॥-३ पाव खून निकल चुका है और ७ माह की सगर्भा है। खून अभी भी उग्र गति से जारी था, नाड़ी क्षीण होती जा रही थी। गर्भ यथास्थान टिका हुआ था। पेडू, उदर, कमर में दर्द का नामोनिशान नहीं था। मैंने चिकित्सा प्रारम्भ करदी।

चिकित्सा —

रक्त रोगामृत ३ माशा, गर्भपाल रस ४ गोली, मौक्तिक भस्म ४ रत्ती, सिद्ध मकरध्वज २ रत्ती मिलाकर शहद मे दिया गया। ऊपर से केले की जड़ का रस ५ तोला पिलाया गया। २ घण्टे बाद रोगिणी कुछ बोलने लगी और खून भी कम प्रमाण में हो गया।

दूसरी मात्रा में–बोलवद्ध रस (लाल) ४ गोली, कामदुधा ४ रत्ती, गर्भपाल रस २ गोली शहद के साथ देकर ऊपर से उशीरासव २ तोला, चन्दनासव २ तोला सम जल के साथ दिया गया।

शाम को जब मैं रोगिणी को देखने गया तो रक्त की शिकायत बन्द हो गई थी किंतु वमन ने उग्ररूप धारण कर लिया था। विविध उपाय करने पर भी वमन शान्त नहीं हुई। आखिर मुझे एलोपैथी की शरण लेनी पडी। अतः एवोमीन २ टेबलेट

देने के बाद कोरामीन २ C. C ग्लूकोज सेल्यूटोन विथ विटामिन सी २५ C. C शिरागत देने से आशातीत लाभ मिला।

रक्तरोगामृत प्रयोग--यह निम्न प्रयोग कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य जी का है और धन्वन्तरि के नारीरोगांक के १६७ पृष्ठ से लिया गया है-

गोदन्ती भस्म १ तोला, शुद्ध स्वर्ण गेरू ३ तोले, कच्ची फिटकरी २॥ तोले, गुडूची सत्व ५ तोले। सब को मिलाकर केले की जड़ के रस की ७ भावनायें दे। प्रयोग तैयार है। आचार्य जी ने नाम तो नहीं दिया किंतु मैंने अपने चिकित्सालय में इसका नाम रक्त रोगामृत रख दिया है।

—श्री. वैद्य आचार्य हुकम चन्द प्रेमी,
पठा—टीकमगढ़ (म० प्र०)

[६]

स्तन शोथ की सफल चिकित्सा

कविराज श्री रामपदार्थसिंह G.A.M.S.

नाम रोगी—श्रीमती सुराज देवी, आयु २५ वर्ष

उपरोक्त रोगिणी की लगभग २ वर्ष की बच्ची का स्वर्गवास हो गया, दूध का उपभोगकर्त्ता न रहने से उसके स्तनों में दूध जमा होने लगा और जमा होते होते उसमें काफी कठोरता और सूजन आ गयी। साथ ही उसमें काफी जोर से पीड़ा होने लगी। रोगिणी को काफी बैचेनी आ गयी। स्पर्श किया तो वह काफी कठोर और तापयुक्त था। वह स्पर्श सह नहीं सकती थी। उसमें भारीपन काफी आ गया था जिससे वह खड़ा रहने में विशेष कष्ट अनुभव करती थी। मैं सोच रहा था कि यह विद्रधि का रूप लेकर ही रहेगा। अन्त में मुझे रोगिणी को डाक्टर के पास ले जाना ही होगा तब तक मैं सुप्रसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थ भाग के किसी योग का प्रयोग कर देख लूं। इस हेतु मैं इस विशेषांक को उलट मारा और पृष्ठ १२६ का प्रलेप चुना जो निम्न है--

योग—मूंग, जौ, गेहूं २॥-२॥ तोला जल के साथ पीसकर और जरा गर्मकर उस पीड़ित स्थान पर प्रलेप कर दिया। उससे लाभ नजर न आया। पुन लेप पर विश्वास करते हुए वैद्य हरिदास कृत 'चिकित्सा चन्द्रोदय' पंचम भाग के श्लोक 'स्तन पाक हरं निम्ब तैल चुल्यं न चापरम्' का मनन कर पहले नीम तैल चुपड़ दिया। बाद में पूर्वोक्त लेप को ही जरा सा गर्म कर आधी अंगुल मोटा प्रलेप चढ़ाया। इस लेप से रोगिणी को काफी आराम मालूम पड़ा। आशा की विशेष झलक होने पर तीसरा लेप चढ़ाने का आदेश दिया।

इस लेप के चढ़ाने मात्र से ही रोगिणी के स्तन से दूध अपने आप बहने लगा। जो कार्य दुग्ध निकालने के यन्त्र द्वारा कठिनाई से होता था वह इस लेप से बड़ी सुगमता और अल्प व्यय से हो गया। उक्त श्लोक के आधार पर नीम तैल चुपड़ने को कहा तो इससे देखा कि इस तैल ने दूध को भी सुखा डाला।

—कविराज श्री रामपदारथ सिंह G.A.M.S
मु. पो. तेतरी (लखमनियां)

(७)

अति आर्तव की सफल चिकित्सा

श्री. द० रा० डायलकर

रोगी का नाम—सौ० कुसुम डायलकर। मेरी पत्नी, गाव धानोरा गुरव, जिला अमरावती।

पूर्ववृत्त—रोगिणी को ३ दिन पहिले मासिक धर्म हुआ था। चौथे दिन से रक्तस्राव में अधिक वृद्धि हुई। रक्तस्राव इतना बढ़ गया कि साड़ी बदलना ही कठिन हो गया। मूर्च्छा भी आने लगी।

चिकित्सा—

प्रति मात्रा अडूसा के हरे पत्ते का स्वरस २ तोले, शहद १ माशा और इसी में १ रत्ती चद्रकला रस मिलाकर देने लगा। (अडूसा की पत्ती नहीं मिले तो वासावलेह लेना चाहिए)।

—शेषांश पृष्ठ ३७ पर।

प्रश्नों के उत्तर

लघु-इन्द्रिय जन्य नपुंसकता—

(भाग ३५ अंक ४ पृष्ठ ३२)

१—प्रयोग-अशुद्ध संखिया ३० तोला, दूध, पान का पत्ता।

निर्माण विधि—प्रथम संखिया का बारीक चूर्ण करके दूध (१ सेर) में मिला दें। दूध को जमा दें। जब दूध जम जाय उसका मक्खन (नवनीत) निकाल लें। तक्र को किसी गड्ढे मे दबा दें।

प्रयोग विधि—उस नवनीत (मक्खन) को पान के पत्ते पर लगाकर पान को बीचो बीच दो हिस्से करदें। रोगी के लिंग के दाये बांये चिपका दें। ध्यान रहे कि रोगी के लिंग के ऊपर नीचे की तरफ पान का पत्ता न लगे।

२१ दिन तक ब्रह्मचर्य रहे। २१ दिन बाद पट्टी को निकालें। अगर लिंग पर दाने-दाने दिखाई दे तो इलायची (छोटी) का चूर्ण बुरक दें।

यह योग उपरोक्त रोगों के लिए उत्तम है जिससे कि उसकी मैथुन शक्ति बढ़ेगी, लिंग मे दृढ़ता रहेगी। —श्री श्रीकृष्ण बडोनी कम्पाउन्डर
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
गणाई गगोली (पिथौरागढ़)

२—इन्द्रियपुष्टि तेल—सफेद कन्नेर की छाल, कुचला, धतूरा, मालकागनी, अकरकरा, लोभान, वीर बहूटी, सूखे केचुवे प्रत्येक ५-५ तोले ले। जव-कुट कर डाले और बादाम के तेल से घोटकर लुगदी बनाले और पाताल यत्र से तेल बनाकर शीशी में रखले।

सेवन विधि—४-६ बूंद तेल लेकर १ कटोरी मे रखले। पुन. रात को उंगली से लेकर सीवन सुपारी छोड़ गुप्तेन्द्रिय में १५ मिनट तक मालिश करें। पुन: एरंड या धत्तूर पत्र उसमें बांध दे सुबह खोल दें। स्नान करते समय गुप्तेन्द्रिय मे ठडा जल नहीं लगना चाहिए। इस प्रकार १५ दिन तक करने से आपकी इन्द्री पूर्ववत सख्त तथा दृढ़ हो जायगी।

—वैद्यराज श्री भण्डारीलाल बरही (जबलपुर)

धनुर्वातनाशक चिकित्सा—

(भाग ३५ अंक ४ पृष्ठ ६२ तथा अंक ७ पृष्ठ ५२)

१—मयूर अण्डत्वक पिष्टि—मयूर (मोर) के अण्डे में से बच्चा निकल जाने के बाद जो छिलके बचते है उन्हे लाकर साफ कर अच्छी प्रकार से पीस कर कपड़छन चूर्ण बना ले। यही मयूर अण्डत्वक पिष्टी हुई।

मात्रा—इसे ४ रत्ती से १॥ माशा तक की मात्रा रोगी के बलानुसार रसोनादि स्वरस १सेर॥ तोले के साथ रोगी को १ से ३ घटे पर देते रहे। रोगी की हालत १-२ खुराक बाद ही सुधार पर आ जायगी।

रसोनादि स्वरस—छिलकारहित लहसुन ५ तो., अदरख ५ तोले, प्याज ५ तोले—तीनो को खरल मे पीस छान कर स्वरस निकाल ले।

नोट—इस रसोनादिस्वरस को रोगी को देते समय १-२ तोला देशी घृत अथवा गोघृत पहले और बाद मे अवश्य देना चाहिए। यह बात तीनो योगो मे ध्यान रखनी चाहिये।

मात्रा १ से ३ तोला उक्त स्वरस घृत पान के बाद ½ ½ रत्ती अफीम देवे तुरन्त लाभ होगा।

समीरगज केशरी रस—शुद्ध कुचला, शुद्ध अहि-फेन। (अफीम से अद्रक स्वरस की ७ भावना देने से शुद्ध हो जाती है) काली मिर्च—

तीनो समान भाग लेकर पीस कपड़छनकर तीन दिन तक पान के स्वरस से पीसे और १-१ रत्ती की गोलिया बनाले।

गुण—यह अनेक प्रकार की वात व्याधियो के एवं स्नायु दौर्बल्य, रोग के बाद की कमजोरी के दोनो प्रकार के धनुर्वात को अनुपान भेद से नष्ट

करते है। यहां पर धनुर्वात के लिए–१ से ४ गोली (१ से ४ रत्ती तक) बलाबल देख प्रथम, घृतपान करावे। गोली के ऊपर रसोनादि स्वरस १ से ३ तोला तक देवे और बाद में फिर १-२ तोला घृत पिलावे। १-२ घंटे बाद इसी प्रकार पुन. देवे। रोगी की हालत सुधार पर आते ही समीर गज केशरी रस की मात्रा हल्की करे, एवं रसोनादि स्वरस की मात्रा भी हल्की करे, परन्तु घृत, दूध एव हल्का भोजन देते रहे।

–श्री कान्तिलाल जैन वैद्य विशारद
धानमंडी, मंदसौर।

२–प्रात.काल एक गोली महायोगराज गूगल लहसुन के रस और शहद में चटा कर ऊपर से दो तोला अर्कमूल और २ तोला अर्क दशमूल २ तोला अर्क रास्नादि मिलाकर पिला देवे। दो बजे मध्याह्न पश्चात् और शाम को सात बजे एकाङ्गवीर रस १ रत्ती, श्री योगेन्द्र रस १ रत्ती लहसुन के रस और शहद में देकर उपरोक्त अर्क मिला देवे। महानारायण तेल १ छटांक जुदबेदस्तर ३ माशा, सतलोबान ६ माशा, लहुसन का रस १ तोला मिलाकर मालिश करे। भोजन के बाद दशमूलारिष्ट कस्तूरी युक्त आधा तोला से एक तोला तक बराबर जल मिलाकर पिला देवे। और लहसुन का इन्जेक्शन प्रात. सायं काल में १ सी. सी. मांस में लगावे।

–श्री. हकीम गुरचरन लाल वैद्य
सफीपुर (उन्नाव)

पायरिया नाशक प्रयोग एवं चिकित्सा–

(भाग ३५ अंक ६ पृष्ठ ५२)

१–आजकल पायरिया एवं दन्तवेष्टक रोग अधिक देखे जाते हैं। इसके प्रतिकारार्थ मजनादि की जिज्ञासा धन्वन्तरि भाग ३५ अङ्क ६ पृष्ठ ५२ में की गई है।

केवल मञ्जन के प्रयोग से पायरिया दन्तवेष्टक रोगो में स्थायी लाभ असम्भव है। स्थायी लाभ के लिए रोग का कारणो सहित विचार करना आवश्यक होता है। रोगोत्पादक प्रकोपक कारण ज्ञात होने से रोग का (निवारण) प्रतिकार सुगमता से किया जा सकता है।

आयुर्वेद शास्त्र में मुख रोगों की संख्या ६५ का वर्णन है तथा दन्तों की जड में होने वाले दन्तमूल रोग १५ प्रकार के बतलाये हैं।

> मुख रोगाश्च पञ्चषष्ठि भवन्ति।
> दन्तमूल गतान् पचदश व्याकरोति।
> दन्तमूल गतास्तु शीतादो दन्तपुप्पुटको।
> दन्तवेष्टकः शौपिरो, महा-
> शौपिर परिदरउपकुशो ॥ १ ॥
> दन्त वैदर्भो, वर्धनोऽधिमांसो नाड्य. पञ्चेति।
>
> —सुश्रुत।

भावार्थ—दन्तमूल में १५ प्रकार के रोग होते हैं—(१) शीताद (२) दन्तपुप्पुटक (३) दन्तवेष्टक (४) शौपिर (५) महाशौपिर (६) परिदर (७) उपकुश (८) दन्तवैदर्भ (९) वर्धन (१०) अधिमांसक और पाच प्रकार के दन्तनाड़ी (दन्त नाड्या विकार) इत्यादि १५ प्रकार के दन्तमूल रोग होते हैं। जिसमें से दन्तवेष्टक रोग आजकल 'पायरिया' कहलाता है जिसका प्रकोप कारणो सहित वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में देखिये—

> स्रवन्ति पूय रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
> दन्तवेष्ट स विज्ञेयो दुष्ट शोणित संभवा। १।
>
> —सुश्रुत नि १६–१७

भावार्थ—दांतो की जड़ (मूल) मसूढ़ों से पूय, रक्त निकलते हुए दन्त चलनादि (पीड़ा होना) यह दन्तवेष्टक नामक व्याधि रक्त प्रकोप से होने का वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में है।

वक्तव्य–यह दन्तवेष्टक आजकल पायरिया कहलाता है। इसमें प्रथम रक्त प्रकुपित होता है जो दुष्ट प्रकुपित रक्त दात की जड़ मसूढ़ो को सड़ाकर पूय निर्माण कर व्रण रूप धारण कर दुःखदायक पायरिया करता है। पायरिया मे प्रथम रक्त विकृति होकर रक्त में अम्लता बढ़ती है जोकि पित्त उग्रता का लक्षण अम्लता प्रतीत होती है। इसलिये पित्तकारक, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, अम्ल पदार्थ, चाय, काफी, ताम्बूल आदि का सेवन सर्वथा हानिकारक होता है अतएव त्यागना श्रेष्ठ है।

चिकित्सा--

प्रथम पायरिया रोगोत्पत्तिकारक कारणों का परित्याग कर शुद्ध सात्विक, सुपाच्य भोज्याहार का सेवन करना चाहिये तथा तीक्ष्ण, उष्ण, चरपरे, अम्ल (खट्टे) पदार्थ, चाय, काफी, मद्यपान, अत्यधिक ताम्बूलादि का सेवन और रक्त प्रकोपकारक द्रव्यों के परित्याग से पायरिया रोग का बचाव होता है।

(१) दन्तवेष्टक के रोगी को कब्जियत होवे तो शौच शुद्धि का उपाय किया जाय। पायरिया वाले को नित्य शौच शुद्ध होना ही चहिये। शौच शुद्ध के लिये पंचसकार चूर्ण २-३ माशे खाकर जल पीना चाहिये। अथवा छोटी हरड़ का चूर्ण २-३ माशे खाकर जल पीने से शौच शुद्ध होगा।

(२) पाचन क्रिया की खराबी होवे तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

(३) दन्तवेष्टक पायरिया रोग निवारणार्थ-रक्तगत दोषों की विवेचना कर चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तशामक, रक्तप्रकोप निवारक द्रव्यों के उपयोग से रक्तगत दोष अम्लता मिट जाने से इस रोग में काफी लाभ होते देखा गया है।

प्रयोग-(१) स्वर्ण माक्षिक भस्म १ भाग, प्रवाल (चं० पु०) १ भाग, गुडुचि सत्व २ भाग, सितोपलादि चूर्ण ४ भाग मिश्रण कर आवला मुरब्बा के साथ तथा गुलकन्द के साथ सेवन कर ऊपर से गौदुग्ध पीने से पित्त प्रकोप रक्तानुगत शांत होकर रक्त की अम्लता मिटती है तथा पूय, रक्त आना बन्द होता है। नेत्र, मस्तिष्क और दन्तमूल (मसूढ़े) बलवान होते हैं।

(२) श्वेत पुनर्नवा की जड़ ताजी लाकर पत्थर पर पीस कल्क कर मिश्री के साथ जल मिला पीने से रक्त प्रकोप शांत होकर दन्तमूल शोथ मसूढ़े ठीक होकर पूय, रक्त बहना बन्द होता है।

(३) चन्द्रप्रभावटी प्रातः सायं दूध के साथ अथवा जल से सेवन करना और आरोग्यवर्धिनी १ मात्रा सोते समय रात में लेना लाभ करता है।

नोट—उपरोक्त तीनों प्रयोग लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से स्थायी लाभ होता है।

दन्तमूल शोथ, पीड़ा निवारणार्थ

गण्डूषादि धारण--

(१) गूलर की कोमल कोमल पत्तियां साफ करके ५ तोला दरदरी कूटकर १ सेर पानी में उबाल कर क्वाथ कर छान लेवे और फिटकरी भूनकर बारीक चूर्ण १॥ माशा मिलाकर गण्डूष धारण करने से छाले सहित व्रणयुक्त दन्तवेष्टक, दांत के मसूढ़ों का शोथ, रक्त, पूय, व्रण, पाक, पीड़ा में लाभदायक है।

(२) बबूल वृक्ष की छाल (अन्दर की) और पत्ती ५-५ तोले को १ सेर पानी में औटाकर गंडूष धारण कर कुल्ली करने से मसूढ़ों के शोथ, पीड़ा में फायदा होकर मसूढ़े दृढ़ होते हैं।

(३) हरड़, बहेडा, आंवला (त्रिफला), वायविडङ्ग, मुलहठी, मुनक्का, गुरूच, नीम की अन्तरछाल, हल्दी, चमेली के पत्ते।

— इनको दरदरा कूट पानी में उबाल कर गण्डूष धारण करना विशेष फायदा करता है।

नोट—प्रकृति के अनुसार इस काढे में शहद तथा मिश्री मिलाकर प्रयोग करने से अधिक फायदा (गुण) होता है। मुख के छाले शीघ्र मिटाकर व्रण ठीक करने में सर्वोपार है।

(४) अरिमेदादि तैल का गण्डूष धारण करना शोथ, दन्तचलनादि, पीड़ा व्रण, पूय, रक्तस्राव को यथाशीघ्र मिटाता है।

(५) जात्यादि तैल का उपयोग—कृमिनाशक होता है।

(६) केवल शुद्ध तिल तैल का गण्डूष धारण करने से दन्तमूल (मसूढ़े) दृढ़ होकर दन्तवेष्टक रोग में लाभदायक होता है।

मंजन प्रयोग—

(१) हरड, बहेडा, वायविडङ्ग, मुलहठी, सफेद अनार का छिलका, सेंधानमक।

—सब १-१ तोला और सबके बराबर नीम की लकडी का कोयला तथा कपूर ३ माशा।

इन सबको एकत्र कर बारीक सूक्ष्म चूर्ण कर दांतों पर मलना लाभदायक है।

(२) सेंधानमक सरसों के तैल (कडवा तैल) के साथ मलने से दन्तपीड़ा में लाभ होता है।

(३) मौलसिरी (बकुल पुष्प) वृक्ष की छाल का चूर्ण मंजन करने से दांत मजबूत होते हैं।

सावधानी—दांत मलने के लिए ब्रुश का उपयोग नहीं करना चाहिये। ब्रश के उपयोग से मसूढ़े कमजोर होते है। दांतों की जडे खुरच जाती हैं। अतः अंगुलियों के सहारे मंजनादि का प्रयोग करे।

—श्री वैद्य रामभरोस रामावतार गुप्त आयु. वि.
फालेगॉव (यवतमाल)

२—श्वेत फिटकरी १० तोला, धतूरा बीज काले ३ माशा, लवंग ६ माशा, छोटी इलायची १ तोला, मिश्री २॥ तोला।

निर्माण विधि—पहिले तवा चूल्हे पर रख कर उस पर फिटकरी पिघला ले। उसमें धतूरा बीज व लवङ्ग डाल दे। अच्छी तरह फूला हो जाने पर उतार कर खरल करे। बारीक होने पर मिश्री और इलायची बीज बारीक करके मिलाकर मंजन बनाले। गुण—पायरिया नाशक अत्युपयोगी मंजन है।

—वैद्य श्री प्रतापसिंह साखला
श्री भोमिया संजीवन औषधालय
मु. पो गुढा गौड़ जी का (झुंझुनूं)

३—तुवरक दाल २० तोले, भल्लातक बीज सुपरिपक्व) १० तोले। मिट्टी के वर्तन मे १० तोले दाल रख भिलावा रखे। पुन ऊपर से १० तोले दाल रख शराब सम्पुट कर सुखाले। अन्तर्धूम पाक कर स्वाग शीतल होने पर खरल कर बारीक कर लेवे। कपूर देशी, अकरकरा असली, बच, प्रत्येक ½-½ तोला, कुठ आधा तोला सबको कपड़छन कर ऊपर की भस्म मे मिलाकर रखले। हमेशा दन्त मञ्जन करे। बीमारी का जोर हो तो दिन भर मे ३ वार भी लगावे।

विशेष गुण के लिये—

फिटकरी फूली हुई, इलायची, लौंग, कवाब चीनी १।-१। तोला, माजूफल, पठानी लोध २॥-२॥ तोला। कूटने की चीजों को कूट कपड़छन करें।

एसिड कार्बोलिक १। तोला, एसिड बोरिक २॥ तोला, कपूर देशी १। तोला।

कपूर और एसिड कार्बोलिक मिलाकर रख देने से गल जाता है। पहिले कपूर को गलाकर फिर सब दवाई मिला लेवे।

१। तोले तेल पिपरमेंट भी मिलाना चाहिए।

यदि एसिड कार्बोलिक अधिक मालूम पड़े तो संगजराहत (सेलखडी) या धुला चाक पाउडर मिलावें। दांतों की बीमारी के लिए यह अवश्य लाभ करता है।

—श्री रामपाल मिश्र वैद्य,
खलारी (रायपुर)

४—बज्रदन्ती २० तोला, कालीमिर्च ५ तोला, सोंठ २। तोला, अकरकरा २॥ तोला, भुनीफिटकरी ५ तोला, सेंधा नमक ५ तोला, हींग भुनी १ तोला —इनको कूट पीस मंजन बनावे। नित्य मंजन करे। पायरिया के रोगी को मंजन करने के एक घंटे बाद कुल्ला करना चाहिए।

—श्री वैद्य अमरचन्द अग्रवाल वैद्य विशारद
ग्राम-मुहामी पो० गेगल आरवरी (अजमेर)

५—हल्दी २॥ तोला, सैंधानमक १० तोला, देशी कपूर ६ माशा।

इस मञ्जन को कूटपीसकर महीन कपड़े से छानकर शीशी मे रखले। सुबह चुटकी भर शुद्ध कडुवा तेल मिलाकर मञ्जन करे। यह मञ्जन दांतों की समस्त खराबियों पर सफल प्रमाणित हुआ है।

—श्री शारदा बख्शसिंह वैद्य
कुछुही पो. कछोना, (हरदोई)

मोतिया बिंद की होम्योपैथिक चिकित्सा

(भाग ३५ अंक ६ पृष्ठ ५२)

(१) सायनेरिया मारीटीना सक्कस १-१ बूंद शाम सवेरे आंखो मे डाले (१ से ६ मास तक)।

(२) कल्केरिया फ्लुअर १२× चूर्ण ४ ग्रेन

एक मात्रा मे सवेरे और शाम गरम पानी के साथ खावें। १ से ६ माह तक उपरिलिखित इलाज करने से मोतियाबिन्दु निश्चित आराम होता है।

—श्री डॉ० ए० एम० अडसोड
नन्दगांव खण्डेश्वर (अमरावती)

सिर में फुंसियों (अरुंषिका) की चिकित्सा–

(भाग ३५ अङ्क ६ पृष्ठ ५२)

१–अरुंसिका फुन्सियो के लिये निम्न वस्तुओं से तेल बनाया जाता है–

नीम का तेल ५ तोला, केले का तेल १॥ तोले, चमेली का तेल २ तोला, आंवला का तेल २ तोला, सरसों का तेल ५ तोला, खोपरे का तेल ५ तोला, देशी शराब शुद्ध ३ तोला, कपूर ६ माशा।

इन वस्तुओं को मिलाकर यह तेल तैयार कर लेना चाहिये।

गुण—हर चर्म रोग, दाद, खाज, फोडा, फुंसी, गंज आदि पर यह तेल लगाना चाहिए। इसको लगाने से पूर्व स्थान को लाल दवा (पोटास परमेग्नेट) डाले हुये गुनगुने पानी से धो लेना चाहिए। इसके पश्चात् उस स्थान पर उपरोक्त तैयार किया हुआ तेल लगा लेना चाहिये।

बिशाली, विषकण्ठा आदि रोगों मे पहले लेप या नीम के पत्ते बाधकर उस स्थान को पका लेना चाहिये। इसके बाद चीरा लगाकर उसका सारा बलगम निकाल कर इस तेल को लगाकर फोआ बांध देना चाहिए और फिर हमेशा प्रात: यह तेल लगाकर फोआ बदल देना चाहिए। इससे शीघ्र आराम हो जाता है। यह तेल मैंने हर चर्मरोग पर आजमाया है।

—वैद्य श्री अमरचन्द्र अग्रवाल वैद्य विशारद
मुहामी, पो. गेगल आखरी (अजमेर)

२–महंदी के सूखे पत्ते, रसौत।

दोनो समभाग ले, ठण्डे पानी के साथ पीस सिर पर लेह करे। १२ घण्टा बाद गरम पानी मे नीम के पत्ते डालकर धो डाले। केवल ३-४ दिन में सिर की पीली पीली फुंसी व फोड़े नष्ट होंगे।

—वैद्य श्री प्रतापसिंह सांखला,
गुढ़ा गौड जी का (झुंझुनू)

३–अरूंषिका के रोगी को प्रथम मृदुविरेचन देकर कोष्ठ साफ कराना चाहिए, कोष्ठ साफ करने के लिये मृदुविरेचनार्थ—

सनाय १ तोले, मुनक्का आधा तोले, गुलाब के फूल ४ नग, छोटी हरड आधा तोले, सौंफ आधा तोले।

सबको दरदरा कूटकर २-२ भाग कर लेना, एक भाग को (सायं समय) एक पाव पानी मे औटाकर आधा पाव शेष रहते, उतार छान लेना और १ तोले मिश्री मिलाकर सायं भोजन के बाद सोते समय पीने से कोष्ठ शुद्धि होती है।

अरूंषिका के रोगी का सिर—फुन्सियो के स्थान को न्यग्रोधादि क्वाथ से परिसिंचन कर धोना चाहिए।

न्यग्रोधादि (गण) क्वाथ—

बड़, पीपल वृक्ष, गूलर, पाकड़ वृक्ष इनकी अन्तरछाल लाकर साफकर पानी मे उबालकर छान लेना चाहिये और इसी काढ़े से अरूंषिका पीड़ित स्थान का सिंचन कर धोने से दाह, पीड़ा, शोथ, रक्तप्रकोप पूय आदि शांत होते है।

अरूंषिका स्थान को न्यग्रोधादि काढ़े से धोके कपड़े से शुष्क करके त्रिफलादि तेल लगाना चाहिए।

त्रिफलादि तेल—

हरड, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता और लाल चन्दन समभाग लेकर कल्क बनाकर कल्क से चौगुना तिल का तैल तथा पाकार्थ चौगुना जल मिलाकर मन्द मन्द अग्नि से पकाके तैल अवशेष रहने पर छान लेवे। सिद्ध तेल का परिसिंचन करने से अरूंषिका-फुन्सिया नष्ट होती है।

यह त्रिफला तेल अरूंषिका के लिये अनेक बार रोगियो पर सफल प्रमाणित है।

—श्री वैद्य रामभरोस रामावतार जी गुप्त आ वि.
फालेगाव (यवतमाल) विदर्भ।

रक्त विकार पर
(भाग ३९, अंक ७ पृ ४२)

१—रक्त विकार पर रक्त शोधक वटी—

नीम के बीज की गूदी १॥ तोला, बकायन के बीज की गूदी १॥ तोला, नींबू के बीज छिले हुए १॥ तोला, शुद्ध चाकसू बीज २॥ तोला, पवार के बीज २॥ तोला, बावची १। तोला, गंधक आंवला-सार शुद्ध ६ माशा, नीला थोथा शुद्ध ६ माशा, चन्दन सफेद ६ माशा, नीम की पत्ती के स्वरस में एक दिन खरल कर ३-३ माशे की टिकिया बना ले। एक टिकिया प्रातः एवं सायंकाल रक्तशोधक अर्क अथवा अर्क उश्वा या अर्क मुण्डी अथवा मजि-ष्टादि क्वाथ के साथ देने से हर प्रकार का रक्त विकार फोड़ा, फुंसी, दाद के चकत्ता, दांतों से रक्त आना इत्यादि रक्त विकार एवं चर्म रोग दूर होते हैं। ददोड़ों पर बृ० मिरिच्यादि तैल की मालिश करें। —हकीम श्री गुरूचरण लाल सफीपुर (उन्नाव)

२—रक्त विकार होने पर—मरहम, बावची, तुत्थ, फिटकरी, पारा, गंधक आमलासार समभाग, गेरू दो भाग। वस्त्रपूत चूर्ण कर नित्य कड़वे तैल में मिला लगावें तथा एक या दो घड़ी पश्चात् साबुन से धो दें या नहा लें। खुजली, पामा, ददोड़े, सबका नाश चार दिन में होगा।

३—रक्तशुद्धी वटी—ब्राह्मी, पित्तपापड़ा, कूट गिलोय, अनन्तमूल, छिलका हरड़ सूखा दो दो तोला अथवा गीला एक एक छटांक का विधि-पूर्वक स्वरस निकालें। पश्चात् शुद्ध रसौत २½ तोला मिला मंद मंद आंच पर पकावें। गाढ़ा होने पर उतार लें तथा शुद्ध गंधक आमलासार एक छटांक, सत्व गिलोय दो तोला मिला कर इतना घोटें कि वटी बन सके, तीन रत्ती प्रमाण वटी बना लें। प्रातः सायं एक या दो वटी नित्य ताजे पानी से दें। यह कई दिन प्रयोग करें। रक्त विकार नहीं रहेगा ❀

पथ्यापथ्य—अचार चटनी खट्टा कटु कच्चा मीठा न खाये। घी दूध हितकर हैं।

—वैद्य श्री ब्रजरोहन शर्मा, फतेहाबाद (हिसार)

❀ हर सप्ताह विरेचन दें।

३—आयुर्वेद शास्त्र में रक्त विकार की परिभाषा—

आयुर्वेद शास्त्र में व्याधियों का वर्णन विस्तृत रूप से बतलाया है। और वह सदैव मार्ग दर्शन कराने में सर्वोपरि सिद्धान्त है। इसलिए जिज्ञासु पाठकगण चरक संहिता सूत्र स्थान चौबीसवां अध्याय, और सुश्रुत संहिता को ध्यान से देखें। विशेष वर्णन कर लेख का कलेवर बढ़ा ठीक नहीं।

यहां प्रसंगोचित रक्त विकार के ददौड़े फैलने वाले शुष्क एवं रसिकायुक्त खुजलाने वाले जो ददौड़े उठते हैं उभार के साथ शोथ लालिमा के साथ दाह सहित ददौरे जो विसर्प के समान फैलते हैं उसीका अनुभव सरल उपाय प्रस्तुत किया जाता है—

रक्त विकार के प्रकोप से उठाने वाले मंडला-कार फैलते हुए ददौड़ों से आक्रान्त फोड़े फुंसियां खुजली एवं रसीला स्रावयुक्त लालवर्ण ददौड़ों का रोगी हमने केवल कटुकी का चूर्ण मात्रा ४-६ रत्ती आधा तोला मिश्री के साथ सेवन कराया और जल पिलाया। ५—६ दिन में उसने आरोग्य प्राप्त किया है।

परिसेचनार्थ (धोने का) प्रयोग—

(१) बड़, पीपल, गूलर, पिलखन आदि (न्यग्रो-धादि गण) वृक्ष की अंतर्छाल को पानी में उबाल क्वाथ कर छाने। परिसेचन कर धोने से दाह, शोथ (रक्तमंडल) में फायदा होता है।

(२) नीम की कोमल पत्तियां पानी में उबाल कर स्वेदन करते हुए परिसेचन करने से ददौड़ों का शोथ रसीका स्राव से यथोचित लाभ होता है।

(३) त्रिफला का क्वाथ कर स्वेदन करते हुए परिसेचन करना लाभदायक है। तथा प्रकृति के अनुरूप त्रिफला के क्वाथ में गौमूत्र मिला के परिसेचन करना लाभदायक है।

लगाने के लिये उपयोगी—

(१) चालमोगरा तैल लगाना—दाह, शोथ, खुजली स्राव में लाभदायक होता है।

(२) महामरिच्यादि तैल-लगाना-शोथ-कण्डु खुजली स्राव में लाभदायक होता है।

(३) महामरिच्यादि और चालमोगरा तैल मिला के लगाना भी लाभदायक है।

(४) विसर्पनाशक लेप-कदली (केला) वृक्ष का गूदा १ तोला, नागरमोथा १ तोला, बड (बरगद) वृक्ष की बारीक जटा १ तोला इन सबको खूब महीन पीस लेवें और मक्खन (घृत-नवनीत) १०० बार धोके ५ तोला के साथ खूब घोटकर रख लेवें। उपयोग—दाह, शोथ, रक्तविकार के मंडलाकार ददौडे खुजलीयुक्त स्रावरहित नष्ट होता है। दाह, ज्वर उपद्रव सहित विसर्प विकार में लाभदायक हैं। (अनुभव किया है।) (चरक संहिता नूतनामृत सागर विसर्प चि.)।

—श्री वैद्य रामभरोस रामअवतार गुप्त
फालेगांव (यवतमाल)

वृश्चिक (बिच्छू) काटे पर-
[भाग ३५ अङ्क ७ पृष्ठ ५२]

१-वैसे तो इस वृश्चिक दंश पर बहुत ही प्रयोग प्रचलित है जिनसे फायदा होता है यथा १-पोटाशियम परमैगनेट को दंश स्थान पर कुरेद कर रख दें तथा २-३ दाने मल कर सुंघा दे जिससे छींक आकर विष दूर हो जाता है।

२-नवसादर तथा चूना दोनो समभाग पानी मे घोल एक शीशी भर कर सुंघाने से भी सब प्रकार के दर्द व विष दूर हो जाते हैं। तथा अपामार्ग की पत्ती की लुगदी बनाकर बाधने से भी विष दूर हो जाता है। पर जिस सर्व सुलभ औषधि ने चमत्कार शत प्रतिशत सफल हुआ वह है 'बबूल की पत्ती'— प्रायः बबूल की पत्ती को सभी पहचानते हैं अतः उसकी विशेष जानकारी न देकर केवल विधि ही बतला रहे है। कहीं कहीं इसे कीकर भी कहते है।

विधि— बबूल की पत्ती १ तोला लेकर अच्छी तरह से मुख में चबा ले। और एक छिद्रवाली नली जैसे अरण्ड की पोगी (एरण्ड पत्ते के नीचे का भाग या अन्य कोई ऐसी ही छिद्र वाली नलिका ले ले जिससे कान के छिद्र में पूरी मुख की वायु चली जाय। अब आप काटे हुए व्यक्ति के कान मे (जिस तरफ काटा हो उसके विपरीत कर्ण में) पोगी (नली) से फूके। केवल २-३ बार ही फूकने पर दर्द दूर हो जायगा तथा दंशित व्यक्ति से अवश्य पूछ लें अन्यथा पुन वायु प्रविष्ट करे यद्यपि पुन करना नही पड़ता है। इस बात का अवश्य ध्यान रखे कि वायु संपूर्ण प्रविष्ट हो जाय।

—श्री डा० कृष्ण बिहारी दीक्षित
श्री कृष्ण आयुर्वेदिक फार्मेसी रूरा (कानपर)

३-बिच्छू के डङ्क पर मयूर (मोर) के अण्डे का छिलका जल से पीसकर लेप करदे एव हल्का सेक करें। बात की बात मे बिच्छू का विष गायब हो जायगा

—श्री कान्तिलाल जैन वैद्य विशारद
धानमण्डी (मन्दसौर)

४-बिच्छू दंश पर चमत्कारिक प्रयोग—

माघ माह मे आम्र वृक्ष के फूलों को ऊपर न देखते हुए तोडिये और दोनो हाथों से मलिये और हाथो को तालियां बजाकर झाड़ डालिये। ऐसा २-३ बार उसी समय करिये। हाथ किंचित गरम होते हैं। डरे नहीं फिर हाथ धो डालिये। जब कभी बिच्छू उतारने का काम पड़े तो हाथो को मलते जाय और तालियां बजाते जाय तथा रोगी से कहा तक बिच्छू का दर्द बाकी है? पूछते जाय। अगर वह बोले कि अमुक स्थान पर है तो आप कहिये 'हट! आप झूठ बोलते हैं। सच बताओ।' तब वह रोती सूरत रोगी कहता है। नहीं जी मैं झूठ नहीं बोल रहा। फिर वैसे ही कीजिये जब तक दर्द गायब न हो तब तक वैसे ही मजाक जैसा करते रहे। पाच दस मिनट मे दर्द गायब हो जाता है।

यह प्रयोग हाथ या पाव म बिच्छू काटले तो काम देता है। क्योकि दंशित स्थान को जमीन पर पटकना पड़ता है। —श्री डा० रा० कृ० देशमुख
प्रजावैद्य, नागपूर।

मेरे अनुभव लेखमाला-६

ज्वर के उपद्रव और उनकी चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

दाह

दाह—जलन ज्वरों विशेषतया पैत्तिक प्रधानता-युक्त विशेष ज्वरों में होने वाला बडा दुःखदायी उपद्रव है। रोगी अपने सारे शरीर में दाह अनुभव करता है, जलन के मारे बेचैन मछली की तरह तड़फता है घर वाले भी उसकी तड़फन और जलन से बेचैन होते हैं। ऐसी दशा में प्रायः संताप (टेम्परेचर) बढ़ा हुआ होता है, कभी ताप तो अधिक नहीं होता किन्तु शरीर में जलन होती है। ऐसी दशा में पित्तज्वर के प्रकरण में जो क्रियायें और औषधियां बताई हैं उनका विचारपूर्वक प्रयोग करे।

(१) वंशलोचनादि चूर्ण ब्राह्मी शर्बत के साथ देने से सन्निपात ज्वर में दाह और ज्वर की तीव्रता शमन होती है।

(२) प्यास के लिये षडङ्ग जल दें।

(३) आंवले का चूर्ण ३ माशा, शर्करा ३ माशा जल के साथ फक्का देने से दाह नष्ट होती है।

कर्णमूल शोथ

प्रायः सन्निपात ज्वर की अवस्था में रोगी के मुंह दांतादि के साफ करने के लिये दांतोन, मंजन, ष्ठीवन करने की ओर विशेष ध्यान न देने से मुख का मल लालाग्रन्थियों द्वारा शोषित हो जाने से कर्णमूल शोथ, (कान की जड़ में सूजन) हो जाती है। इसलिये ज्वरों में रोगी को नित्य मुंह साफ करते रहना चाहिए।

चिकित्सा—

मैनफल को पानी में घिसकर उसमें थोड़ा सा चुकर गोंद (ढाक का गोंद) डालकर गरम करे और रुई का फाहा बना उस पर उक्त लेप लगाकर शोथ पर चिपका दे। ऊपर से सेक करें। इससे शोथ बैठ जाता है, यदि इसमें पूय पड़ गई है तो इससे वह जल्द पक जायगा। पकने पर शोथ को काट के चीर कर उसकी व्रणवत् चिकित्सा (घाव की तरह इलाज) करे या भेदक लेप से फोड़े।

रूमी मस्तंगी असली, गूगल भैंसा दोनों को समान भाग लेकर कूटे। जब वे पिघल कर मुलायम हो जांय तब कपड़े पर लगाकर गरम कर शोथ पर चिपका दे। इसके बाद ऊपर से सेक करें। इससे भी शोथ और गांटें बैठ जाती हैं या पक कर फूट जाती है।

भेदक लेप—करंज के पत्ते, चित्रक, जमालगोटा की जड़, कनेर की जड, कबूतर की बीट, गृद्ध की बीट ये वस्तुयें अथवा इनमें से समय पर जो भी मिल सके चटनी की तरह पीसकर पके स्थान गांठ पर लेप कर दीजिए। सूखने पर जब यह लेप चटकेगा तो साथ ही पकी खाल चटककर व्रण बन जायगा। चारों तरफ दाब कर पीव और पीव की गांठे निकाल दीजिए। फिर पानी में खौलाई हुई रूई निचोड़ कर पीव खूब साफ कर दीजिए। नीचे लिखी शोधक-रोधक लूपड़ी लगा दीजिए—

करंजुए (कंजा) के पत्ते, सम्भालू के पत्ते, नीम के पत्ते बराबर लेकर चटनी की तरह पीस ले और एक कटोरी में थोड़ासा घी डालकर पका ले और लूपड़ी (पुल्टिस) की टिकिया बनाकर गुनगुनी बांध दे।

पिचु [फाहा]—इनका पिचु भी बना सकते हैं। वह इस तरह कि इनको पीसकर कपड़े में रख दाबकर रस निचोड़ ले। एक रूई का फाहा बना इस रस में डोबकर तर करले। एक कटोरी में थोड़ासा घी डालकर अङ्गारों पर रखे। जब घी कडकड़ा जाय तब उसमें यह तर फाहा डाल दे और फाहे का पानी जल जाने पर उतार ले। इसे घाव पर गुनगुना बांधें। इससे घाव शुद्ध भी होता है और भर भी जाता है। इसी प्रकार सागरा, चमेली के पत्ते, गेंदे के पत्तों के फाहे भी घाव को भरते हैं।

—श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
जैन धर्मार्थ औषधालय, कीठम
पो० रैपुराजाट (मथुरा)

आधुनिक रुदन्ती

श्री कविराज जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति

[गतांक से आगे]

अतिविशेष प्रयोग —

श्री डा जी कृष्णमूर्ति जो डा. बाला भाई नानावती हासपिटल वाईल पारले बम्बई में देशी औषधियों के क्लीनीकल रिसर्च सेन्टर के प्रधान हैं और जिनको चौथाई शताब्दी से भी अधिक काल से फुफ्फुसीय क्षय की चिकित्सा करने में विशेष रुचि है उन्होंने २८ सितम्बर १९५७ को नानावती अस्पताल बम्बई में चिकित्सा सभा मे ट्रीटमेंट आफ पलमोनरी ट्यूबरक्युलोसिस विद रुदन्ती एण्ड इन्डिजएनस इण्डियन ड्रग (Treatment of pulmonary tuberculosis with Rudanti and Indigenous Indian drug) अर्थात् फुफ्फुसीय क्षय का रुदन्ती तथा स्वदेशी भारतीय औषधियो द्वारा चिकित्सा नाम का एक लेख पढ़ा था जो कि मार्च १९५८ के करेन्ट मेडीकल प्रेक्टिस (Current Medical Practice) मे प्रकाशित हो चुका है। इससे लिखा है—

जुलाई १९५३ में एक दो वर्ष का बालक मेरे पास लाया गया। वह टाक्सीमियां (रक्तविषाक्तता) और असाधारण क्षीण परिस्थिति मे था। इसकी परीक्षा करने पर इसकी मुखाकृति फुफ्फुसीय पाई गई और ग्रीवा के दोनो ओर की लसीका ग्रन्थियां सूजी हुई थीं। ग्रन्थियो का टोसपन गठीला था और इनमे पूय पड़ रहा था। कक्षा का तापमान १०१ दर्जा फारेन्हाइट था। जबकि बालक तीन माह का ही था। स्ट्रेप्टोमाइसीन (Streptomycin) आई एन. एस. (I. N S.) (अर्थात् आई. जी. नैक्स) और पी. ए. एस. (PAS अथात् पास) की आवश्यकतानुसार मात्रा से इसकी चिकित्सा पहिले की जा चुकी थी परन्तु उसकी दशा में कोई समुचित सुधार न हुआ था प्रत्युत रोगी की दशा बराबर बिगड़ती जा रही थी।

यह प्रथम अवसर था जब मैंने रुदन्ती का चूर्ण प्रयोग किया जो कि मुझे एक जानकार ने प्रदान किया था और पूय पड़ रही विकृत रचना के लिये प्रभावकारी स्वीकार किया जाता था। इस रोगी को चूर्ण इस आशा से दिया गया था कि केवल असुख्य छूत दूर हो जायगी तो भी एक हफ्ता के पश्चात् पूय पड रही। विकृत रचना आरोग्य होनी प्रारम्भ हो गई थी और पूय का स्रवित होना समाप्त हो गया था। रोगी बहुत अच्छी अवस्था में था और उसकी क्षुधा बढ़ गई थी। मैंने और छ. हफ्ता के लिए चिकित्सा जारी रखी। इसकी ग्रन्थियो के आकार से अनुभव योग्य न्यूनता हो गई थी। लगभग ३ माह मे ग्रन्थियों का आकार बहुत न्यून हो गया था और एक माह की चिकित्सा से कोई भी लसीका ग्रन्थि बढ़ी हुई न थी और बालक का भार पाच पौंड बढ़ गया था।

इन निरीक्षणो ने मुझे यह सोचने की प्रेरणा दी कि रुदन्ती जोकि स्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococci अर्थात् बिन्दुकाकार पक्तिबद्ध कीटाणु) और स्टेफिलोकोकाई (Staphylococci अर्थात् बिन्दुकाकार समूह रूप कीटाणु) की छूत से होने वाले रोगो के लिये प्रभावकारो विचार की जाती है। इसमें कुछ क्षयघ्न क्रियाशील शक्ति भी पाई जाती है। मैंने तदन्तर ३२ वर्ष के एक रोगी को०

ए० डी० को छाटा जो एक क्षय के आतुरालय से मुक्त किया जा चुका था। इसके दाहिनी फुफ्फुस के ऊपर के भाग में दो क्षयज कोटर (Cavaties-केविटीज अर्थात् रिक्त स्थान या गारे) थे। बायां फुफ्फुस बिल्कुल स्वस्थ था। रोगी को रुदन्ती का चूर्ण प्रतिदिन १२ ग्रेन (६ रत्ती) की मात्रा में ४ समान मात्राओं में विभक्त करके दिया गया था। चूंकि मैं इस औषधि की प्रयोग योग्य मात्रा और इसकी विषैली प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में अधिक अनुभव और ज्ञान न रखता था इसलिये मैंने रोगी की देखभाल बहुत सावधानी से की। प्रत्येक हफ्ता इसकी छाती की स्क्रीन (Screen) हो जाती थी। तीसरे हफ्ता से रोगी की साधारण अवस्था में सुधार दिखाई दिया और पांचवे हफ्ता में एक्सरे से मालूम हुआ कि इन दो कोटरो में से एक अब तक भर चुका था। इस रोगी के परिणाम ने मुझे रुदन्ती के सम्बन्ध से अपने अनुसंधान को जारी रखने पर विवश कर दिया और मैंने फुफ्फुसीय क्षय के कुछ और अधिक रोगियो को इसके द्वारा चिकित्सा करने के निमित्त चुना। वर्तमान बर्णन बहुत से रोगियों पर रुदन्ती द्वारा की गई क्लीनीकल परीक्षाओं का परिणाम है।

चिकित्सा विधि–

रुदन्ती द्वारा चिकित्सा करने के लिये प्रधानतया रोगी डा० बालाभाई नानावती हास्पिटल से चुने गये थे। सब रोगियो को अस्पताल से बाहर रखकर उनकी चिकित्सा की गई थी और उनमें से किसी एक को भी अस्पताल में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। इनमें से कुछ रोगियों को पन्द्रह से ३० दिन के अवसर के लिये शय्या पर लेटे रहने की सिफारिश की गई थी और बाद में इनको लघु कार्य करने की आज्ञा दे दी गई थी। इस अनुसधान की प्रारम्भिक अवस्था में थूक की परीक्षा और ई. एस. आर. (E. S. R. अर्थात् Erythrocyte Sedimentation Rate) नहीं किये गये थे परन्तु बाद में इन अनुसंधानो के ज्ञात प्रमाण रखे गये थे।

वर्णित रोगी तीन श्रेणियों में विभक्त करने योग्य है—

(१) एक वह जिनकी चिकित्सा पूर्व में एन्टीबायोटिक (Antibiotic) और कीमोथैराप्यूटिक (Chemotherapeutic) औषधियों (जीवाणुओं को नाश करने वाली रसायनिक औषधियां) यथा स्ट्रेप्टोमाइसीन) आई.एन.एच. और पी. ए. एस. के द्वारा संकोचपूर्वक की जा चुकी थी। मैंने विशेष करके वह रोगी चुने जो २०० ग्राम से अधिक स्ट्रेप्टोमाइसीन ले चुके थे।

(२) रोगी जिनमें क्षयज कोटर थे या जिनका विकृत स्थान विस्तृत रूप में रेशेदार पनीरी अवस्था (Fibrocaseous फिबरो केजिअस) में था।

(३) जीर्ण रोगी जो एक वर्ष से अधिक काल से बीमार थे।

चूंकि कुछ रोगियों में कफ का निकास न होता था इसलिये कफ की परीक्षा सब रोगियों में क्रियात्मक रूप से नहीं लाई जा सकी। सुधार की निर्धारिता भार के बढने, भूख की वृद्धि और एक्स रे पर आश्रित थी।

इस अनुसधान के आरम्भ में रुदन्ती की दो टिकियाँ (हर एक छ. ग्रेन चूर्ण निर्माणित) दिन में दो बार दी जाती थी परन्तु अधिक अनुभव करने पर मैंने प्रतिदिन ३६ ग्रेन की तीन समान मात्रायें बहुत अच्छी प्रभावकारी पाई तो भी बाद में मैंने प्रतिदिन ४८ ग्रेन की चार समान मात्रायें (२-२ टिकियो की ४ मात्रायें) बहुत अधिक प्रभावकारी पाई थीं। यह वर्णन कर देना उचित है कि कुछ रोगी जो प्रतिदिन ९६ ग्रेन रुदन्ती चूर्ण चार दिन लेते रहे उन्होंने किसी कष्ट को प्रकट नहीं किया।

शय्या पर विश्राम करने की केवल तब अनुमति दी जाती थी जब तीव्र ज्वर और टाक्सीमिया (रक्तविषाक्तता)होता था। तो भी यह विश्राम सम्पूर्ण नहीं होता था क्योंकि रोगियो को अपने घरों में प्रतिदिन थोडा हिलने की आज्ञा थी। ज्यादा प्रोटीन वाला आहार तजबीज किया जाता था परन्तु बहुत से रोगी अत्यन्त दरिद्र थे जिससे कि वह इस तजबीज का दृढ़ता से अनुकरण नहीं कर सकते थे।

जहां तक सम्भव था रुदन्ती के अतिरिक्त कोई अन्य ओपधि नहीं दी गई था। कुछ रोगियों को अत्यन्त गम्भीर रक्त न्यूनता की चिकित्सा के निमित्त रुदन्ती एक मौखिक लोह योग के सहित दी गई थी।

अब तक कुल ९७ रोगियों की चिकित्सा रुदन्ती द्वारा की जा चुकी है। ५५ नर और ४२ नारियां। रोगियों की आयु समुदाय निम्न प्रकार थी—

- बीस वर्प से कम के ११
- बीस और तीस वर्प के मध्य के ४२
- तीस और चालीस वर्ष के मध्य के २५
- चालीस वर्प से अधिक के १

इस समुदाय में सबसे कम आयु का रोगी ९ वर्ष का था और सबसे बड़ी आयु का रोगी ६५ वर्ष का था। रोगी विभिन्न व्यवसायों के अनुसायी थे परन्तु अधिकतर समाज की बहुत दरिद्र श्रेणी में से थे (उच्च श्रेणी के ७, मध्यम श्रेणी २३, कनिष्ट श्रेणी के ६७)।

९७ रोगियों में से ८१ रोगियों का कीमोथैराप्यूटिक् या एन्टीबायोटिक औषधियों यथा स्ट्रेप्टोमाईसीन, आई० एन० एच० और पी० ए० एस० के द्वारा पहिले कोई चिकित्सा नहीं की गई थी। १६ रोगियों की चिकित्सा पहिले की जा चुकी थी। ७ रोगी २०० ग्राम से अधिक स्ट्रेप्टोमाईसीन और प्रर्याप्त मात्रा में आई० एन० एच० और पी० ए० एस० प्रयोग कर चुके थे। ६ रोगी १०० ग्राम से कम स्ट्रेप्टोमाईसीन ले चुके थे। एक रोगी थोरैकोप्लास्टी (*Thoracoplasty*) अर्थात् सीना का प्लास्टिक आपरेशन) करा चुका था और दो रोगी न्यूमोपैरीटोनियम् (*Pneumoperitoneum* अर्थात् पेट में हवा भरना) करा चुके थे।

मेरे इस चिकित्सा क्रम की औसत अवधि चार मास थी। चिकित्सा की कम से कम अवधि एक मास थी और अधिक से अधिक चिकित्सा अवधि बारह मास थी।

परिणाम—

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। परिणाम का निर्णय वजन के बढ़ने, क्षुधा में सुधार और एक्सरे में सुधार होने से किया जाता था। सुधार की श्रेणियां ठहराई गई थीं यथा 'बहुत अच्छी' 'मध्यम अच्छी', 'अल्प' और निरप्रभाव'।

बहुत अच्छी	३७	मध्य अच्छी	४१
अल्प	१३	निरप्रभाव	७

(इनमें से दो की मृत्यु होगई)

निरीक्षण—

इन रोगियों की अवस्था के अध्ययन के बाद प्राप्त किये निरीक्षण निम्न प्रकार है—

(१) प्राय. दो सप्ताहों के अन्दर ही अन्दर क्षुधा में वृद्धि हो गई थी। जिसका परिणाम यह था कि रोगी अधिक आहार के लिये कहते थे। कई रोगी तो अति अधिक खाने वाले हो गये थे परन्तु तो भी अजीर्णता से पीडित नहीं होने पाये थे।

(२) यदि ताप बढ़ा हुआ होता था तो दो सप्ताह के अन्दर अन्दर नार्मल (*Normal* प्राकृतिक) हो जाता था।

(३) [1]वजन में निश्चत रूप से बढ़ोत्तरी होती थी। औसतन अधिक से अधिक चौदह से पन्द्रह पौंड।

---

[1]डा० जी कृष्णमूर्ति ने अपने ९७ रोगियों में से जिन दस रोगियों के विषय में चित्रसहित प्रकाश डाला है, इनके अध्ययन से विदित होता है कि इसके प्रयोग से विशेष कर भार वढ जाता है चुनाचे दूसरे रोगी का भार चार सप्ताह में ७१ पौंड से ९४ पौंड हो गया था अर्थात २३ पौंड वढ गया था। तीसरे रोगी का भार चार मास में ११५ पौंड से १५० पौंड होगया था अर्थात् ३५ पौंड वढ गया था। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य ७१ स के चार वर्ष पश्चात् जब इसका एक्स रे लिया गया जबकि इसने रुदन्ती का प्रयोग करना छोड़ दिया था तो भी इसका विकृत फुफ्फुस क्षय क प्रभाव से बिलकुल वंचित था। पांचवा रोगी २४ वर्ष का एक लडका था जिसका दो मास में बारह पौंड भार घट गया था। रुदन्ती के प्रयोग से दो सप्ताह में ही इसका ज्वर जाता रहा, तेजी से इसकी भूख वढ गई और इसका सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य बहुत शीघ्र अच्छा हो गया, साढे चार मास में वह बिलकुल ठीक हो गया और इसका वजन ११० पौंड से १२३ पौंड हो गया था यानी १२

(४) द्रव्य के स्रवित होने की क्रिया बहुत शीघ्र नियन्त्रण में आजानी जान पड़ती थी, साथ ही टाक्सीमिया में भी सुधार हो जाता था। इसकी प्रमाणिकता रोगी की सामान्य अवस्था की उन्नति और एक्स-रे द्वारा प्राप्त जानकारी से की गई थी।

(५) स्रवित हुआ द्रव्य दो या तीन मास में शोष हो जाता मालूम पड़ता है जैसा कि रोगियों के विषय में चित्र सहित प्रकाशित जानकारी से जान पड़ता है।

(६) यह औषधि कोटरों के तनाव को बन्द करने के लिए प्रभावकारी मालूम हो चुकी है। यह विलक्षण अवस्था सम्भवतः दो स्थितियों में होती है। प्रथम स्थिति में श्वास की नलियों में ट्यूबरक्युलोसिस् ग्रेन्युलेशन टिशू (*Tuberculosis Granulation Tissue*—अर्थात् क्षयज व्रणों में दानेदार मांस बनाने वाला द्रव्य) की कमी हो जाती है जिसका परिणाम होता है कि कोटर में वायु के अन्दर और बाहर जाने का मार्ग खुल जाता है। कोटर में वायु का तनाव वायुमण्डल के दबाव तक कम हो जाता है। अतः कोटर की जीविका और फैलाव जो कि बिलकुल दबाव में विभिन्नता होने के कारण थे समाप्त हो जाते हैं।

दूसरी स्थिति में श्वास की नलियों और विकृत श्वास की नलियों के चारों ओर रेशे उत्पन्न हो जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि श्वास की नलियां पूर्णतया और दृढ़ता से बन्द हो जाती हैं। इस स्थिति में कोटर के भीतर की वायु का पूर्णतया सोख हो जाता है और इसका क्षय के होने को प्रेरणा देने वाले आधारभूत हेतु के साथ सम्बन्ध हो जाता है जिसके कि परिणामस्वरूप कोटर बन्द हो जाता है।

दोनों स्थितियों में इस औषधि का स्पष्ट रूप से क्षयघ्न प्रभाव ही इन कोटरों को बन्द करने का जिम्मेदार होता है जो कि अब तक सम्पूर्णतया (सरजरी) शल्यक्रिया के अधिकार सीमा में आते थे। जब एक बार कोटर का तनाव बन जाता था तो अब तक कोई ऐसी औषधि मालूम न थी कि जो इसे बन्द करने का प्रभाव रखती हो, इसका कारण यह है कि अब तक जो औषधियां प्रयोग की जाती हैं वह क्षयघ्न होने के सम्बन्ध में मन्दगति की हैं इसीलिये वह इस प्रकार के क्षयज कोटरों के परिमाण शीघ्रता से बढ़ने के साथ समानता से चल नहीं सकती है। कोटरों के तनाव के बन्द होने की यह विलक्षण अवस्था उन रोगियों में अधिक स्पष्ट रूप में थी जिन्हें कि स्ट्रेप्टोमाईसीन और अन्य क्षयघ्न औषधियों की वृहत मात्रा के उपरान्त भी अब तक फुफ्फुस विकृत थे और कोटर थे।

इन निरीक्षणों से मैंने यह परिणाम निकाला है कि यह औषधि या तो बैसीलाई (Bacilli-शलाकार कीटाणु) के छूत फैलाने की क्रिया शक्ति को निर्बल कर देती है और इस प्रकार टाक्सिन्स (Toxins) अर्थात एक विशेष प्रकार के विषैले मवाद जो कीटाणुओं के शरीर में उत्पन्न होकर किसी विशेष रोग का कारण बन जाते हैं कम से कम हो जाते हैं या यह डीटाक्सीकेशन (Detoxication—टाक्सिन्ज का उत्पन्न न होना) में सहायता करती है या दोनों कार्य करती है। (करेंट मैडीकल प्रैकटिस)

पौंड भार में वृद्धि हो गई थी। छटे रोगी का भार ८६ पौंड से ९६ पौंड हो गया अर्थात् १० पौंड बढ़ गया था। सातवें रोगी का वजन ८२ पौंड से ११० पौंड हो गया था यानी २८ पौंड बढ़ गया था और दसवें रोगी का वजन ९८ पौंड से ११८ पौंड हो गया था अर्थात् २० पौंड की वृद्धि हो गई थी।

एक अमरीकी डाक्टर की सम्मति

एक प्रसिद्ध अमरीकी डाक्टर ने भारत पर्यटन करते हुए रुदन्ती के नमूने प्राप्त किये। इस औषधि के विषय में कांच की नलिका में विस्तृत परीक्षणों के करने के उपरांत उसने प्रकट किया कि यह औषधि परम कीटाणुघ्न है। इसने हाल ही में डा० कृष्णमूर्ति को लिखा है कि उसने इसे क्षय को आरोग्य प्रदान करने का एक निश्चित रूप का आविष्कार पाया है. (टाइम्स आफ इण्डिया २७ जुलाई १९५८)

आधुनिक रुदन्ती के लाभदायक गुणों से प्रेरित होकर पोद्दार आयुर्वेदिक कालिज और हस्पताल बम्बई के आयुर्वेदिक क्लिनीकल रिसर्च वार्ड में भी इसके सम्बन्ध में बिलकुल हाल ही से परीक्षण प्रारंभ

किये गये हैं और क्षय के निरोध करने में इससे निश्चिततापूर्वक सफलता प्राप्त होने की बड़ी प्रबल आशा लगी हुई है।

जबकि भारत में प्रतिवर्ष सात लाख लोग क्षय से मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं और लगभग तीस लाख लोग क्षय से ग्रसित रहते है तो इस पर काबू पाने के लिए वास्तव में ही आधुनिक रुदन्ती प्रकृति का एक अनमोल और आश्चर्यजनक उपहार है। इस से हमें पूरी २ तरह लाभ उठाना चाहिए।

—कविराज श्री जगन्नाथ वैद्यवाचस्पति,
चन्दौसी (मुरादाबाद)

पृष्ठ २८ का शेषांश

परिणाम—दवा सवेरे से प्रारम्भ कर शाम तक चार मात्रा दीं। इस समय तक रक्तस्राव एकदम से कम हो गया। बाद में ऊपर लिखी दवा दिन में ३ मात्रा में देने लगा। दो दिन में रक्तस्राव बन्द हो गया। तीसरे दिन से चद्रकला रस बन्द करके अडूसा रस २ तोले और १ माशा मधु के साथ देने लगा। दवा आरम्भ से ७ दिन तक दी गई। इस रक्तस्राव में रुग्णा को कमजोरी बहुत आ गई। कमजोरी के लिये नीचे लिखा टॉनिक दिया—

विटामिन बी कम्पलेक्स लिक्विड और मैक्राबिन लिक्विड इसका मिक्श्चर बनाकर दिन में दो बार दिया। एक सप्ताह में उसका स्वास्थ्य पूर्णत जैसा था वैसा होगया। अभी तक मासिक स्राव नियमित चालू है। —श्री द० रा० डायलकर (शिक्षक)
धानोरा गुरव, ता. जिला अमरावती।

कूट प्रश्नाः

यदाऽऽहारबिहाराणां ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानञ्च दोषाणां तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
दुष्टाना देहनाशाय वैद्याना पालनाय च ।
चर्यासंस्थापनार्थाय संभवामि यदा कदा ॥१॥

कथं रोगमहं मन्ये त्वा च गदसूदन ।
त्रिदोषशामकं पथ्यं भोजनान्ते पिबाम्यहम् ॥२॥

येन मुग्धो सूतराजः शिवपुत्रो महाबल. ।
तेन कण्डूं च पामां च नित्यं नाशयाम्यहम् ॥३॥

त्रिनेत्रो जटाधारी जलदो देववल्लभ. ।
तज्जटाभस्म तोयेन पीतं तृषाबान्तिनुत् ॥४॥

निवसति तडागे नैव मत्स्यो न नक्रो ।
न च भवति भूभुजंगो पकमध्येपि जात' ॥
अरुणकिरणवर्णो दृश्यते नैव सूर्यो ।
सकलजनप्रसिद्धो शोणपित्तं जहाति ॥५॥

मोहिनी नैव बाला स्याच्छिवप्रिया न च पार्वती।
मादिनी नैव हाला स्यात् स्तंभिनी नाहिफेनसर्प ॥
दीपनी नैवअरुणीस्यान्निद्राकारिणि निशा न च।
बुद्धिदा नैवब्राह्मी स्यात्तयाऽऽक्षेपो विनश्यति॥६॥

—आचार्य श्री दौलतराम रसशास्त्री
जबलपुर म० प्र०

भाग ३५ अंक ८ मे प्रकाशित पहेलियों के उत्तर —

(१) दुरालभा(जवासा-धमासा) (२) कांचनार (युग्मपत्रक) (३) श्योनाक. (अरलू-सोनापाठा) (४) पेरुक (जाम्वा-अमरूद) (५) बड़ (न्यग्रोध, वट)

—श्री उद्धव सखाराम पंत निलेकर
सिद्ध नागार्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय
नागपुर।

कफजकास में निशा का प्रयोग

(The use of Nisha in Eosinaphelia)

श्री शिवचरण ध्यानी बी. आई. एम.. एस. आयुर्वेदाचार्य

कफज कास (*Eosinophelia*) के निदान, सम्प्राप्ति और चिकित्सा के सम्बन्ध मे अभी तक कोई निश्चित सिद्धान्त स्थापित नही किया जा सका है। यद्यपि 'एलर्जी' इसका कारण और सोमल के योग इसकी चिकित्सा है, तथापि इनके सम्बन्ध मे भी अभी तक मतमतान्तर विद्यमान है। मुझे हरिद्रा के प्रयोग करने का अवसर मिला और मुझे यह कहते हुए संतोष एवं प्रसन्नता है कि निशा के प्रयोग से इयोसिनोफीलिया मे बहुत लाभ होता है। इसी सम्बन्ध में मैने एक लेख नागार्जुन, मार्च १९६१ मे प्रकाशित कराया था। उस लेख मे व्यक्त किये गये अनुभवों तथा विवरणों से कई चिकित्सकों ने इसे अपने रोगियों को देना प्रारम्भ कर दिया है और मुझे भी इसके परिणामों की सूचना देने का आश्वासन दिया है।

हरिद्रा चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों मे कई व्याधियों की चिकित्सा मे प्रयुक्त है, निघण्टुओं मे भी इसका पर्याप्त विवरण मिलता है।

सिद्ध सम्प्रदाय के अनुसार हरिद्रा वर्ण्य, व्रणघ्न प्रतिश्यायघ्न तथा कासघ्न है।

यूनानी मतानुसार हरिद्रा कफनिस्सारक व्रण-शोधक एवं रोपक, कृमिघ्न, वर्ण्य, श्वासघ्न, कासघ्न एवं त्वग्विकारों मे प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेद मतानुसार हरिद्रा लेखनीय, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, विषघ्न महाकषायों मे गिनी गई है। इसका परिगणन तिक्त स्कंध मे भी किया गया है (चरक) यह शिरो विरेचन द्रव्यों मे भी परिगणित है (चरक सू० २) सुश्रुत ने इसे मुस्तादिगण, हरिद्रादिगण तथा श्लेष्म प्रशमन वर्ग मे गिना है। (सु० सू० ३९)

धन्वन्तरि निघण्टु के मतानुसार हरिद्रा तिक्त, रूक्ष, उष्ण, कुष्ठघ्न, विषघ्न, प्रमेहघ्न, कण्डूघ्न, व्रणघ्न कृमिघ्न, वर्ण्य, अरुचिघ्न एवं पीनसघ्न है।

कैयदेव निघण्टु के मतानुसार हरिद्रा तिक्त, कटु, उष्ण, रूक्ष, कफ पित्तघ्न, पाण्डुघ्न, व्रणरोपक, प्रमेहघ्न, शोथघ्न एवं वर्ण्य है।

चरक सुश्रुतादि के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हरिद्रा का सफल प्रयोग श्वास, कास, शीतपित्त एवं नेत्र रोगो मे भी बतलाया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हरिद्रा का प्रयोग नवीन नहीं है। इसका प्रयोग चिकित्सक किसी न किसी रूप में करते ही थे। जिन व्याधियों में हरिद्रा का उपयोग बतलाया गया है, उन सब व्याधियों को अपने समझने की सुविधा के लिए हम दो भागो मे बाट सकते है ताकि उनके दोष दूष्यादि का विमर्श सरलता से किया जासके। ये दो भाग समान दोष-दूष्य-अधिष्ठान के आधार पर किये गए है।

वर्ग १—१. कुष्ठ, २. कण्डू, ३. विष, ४. व्रण, ५. क्रिमि, ६. अपची।

वर्ग २—१. श्वास, २. कास ३. शीतपित्त, ४. पीनस, ५. अरुचि, ६. प्रमेह, ७. पाण्डु, ८. शोथ, ९. नेत्र रोग।

यदि किसी औषध का प्रयोग विभिन्न व्याधियों मे होता है तो इसका यह अर्थ होता है कि उन रोगो में कहीं कुछ समानता है। प्रथम वर्ग की व्याधियों मे से कुष्ठ, कण्डू, व्रण, अपची मे त्वक् समान अधिष्ठान है। अपची मे रस दूष्य और बाकी सब में रक्त दुष्टि होती है। क्रिमि और विष पर कैसे कार्य करती है? सम्भवत: ये दोनो व्रण की अवस्था विशेष के द्योतक हैं। यदि व्रण में क्रिमि उत्पन्न हो जाय और उससे शरीर में विष के लक्षण उत्पन्न हो जाय तब हरिद्रा के आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रयोग से लाभ हो सकता है। द्वितीय वर्ग को व्याधियों मे प्राय समान दोष-दूष्य-अधिष्ठान है। जिनमें कुछ असमानता है, उनके सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक होगा। इनमें दोष-दूष्य समानता द्योतक कोष्ठक नीचे दिया जारहा है।

कफजकास में निशा का प्रयोग

व्याधि नाम	दोष	दूष्य	समुत्थान	पाश्चात्य नाम	पाश्चात्य कारण	विकृति सूचक
१. श्वास तमक	कफ+वात	रस	आमाशय	Asthma	Allergy	Eosinophelia
२. शीतपित्त	कफ+पित्त	रस	आमाशय	Urticarica	Allergy	Esinophelia
३. नेत्ररोग (विशेष)	कफ+पित्त	रस	आमाशय	Spring catarrh	Allergy	Eosinophil in lacrimal fluid
४ पीनस	कफ+वात	रस	आमाशय	Coryza	—	Eosinoohil may increase
५. अरुचि	कफ+—	रस	आमाशय			
६. शोथ	त्रिदोषज	रस	आमाशय पक्वाशय			
७. पांडु	पित्त	रस+रक्त	आमाशय			
८ प्रमेह	कफ	रस, मेद, मूत्र आदि	आमाशय पक्वाशय			

इन सब रोगों में रस दूष्य और समुत्थान-आमाशय समान हैं। दोषों में पाण्डु को छोड़कर सब में कफ की प्रधानता बतलाई जासकती है। पाश्चात्य दृष्टि से जो समानता थी वही दिखाई गई है। सभी नेत्र रोगों में हरिद्रा कार्य नहीं कर सकती। पाश्चात्य विज्ञानानुसार जिसका निदान Spring catarrh हो, उसमें हरिद्रा अच्छा कार्य कर सकती है।

पूर्व दर्शित कोष्ठक से ज्ञात होता है कि हरिद्रा कफ का शान्त करने, रस को शुद्ध करने और आमाशय की शुद्धि के लिए आवश्यक है। कास, शीतपित्त, नेत्र रोग, पीनस और अरुचि कफ प्रधान व्याधियां हैं। और सबमें रस दूष्य है। परन्तु पाण्डु, प्रमेह और शोथ में कुछ भिन्नता है।

यदि हरिद्रा कफ-रस आमाशय पर कार्य करती है तो स्वभावत. यह क्लेदक कफ होना चाहिए। यह क्लेदक कफ विकृत होकर प्रमेह भी उत्पन्न करता है। शोथ में भी क्लेदक कफ की ही विकृति मिलती है। प्रमेह में क्लेद को दूष्यों में गिना है। और कफ को प्रधान दोष माना है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि हरिद्रा प्रमेह और शोथ पर भी कार्य कर सकती है। पाण्डु पित्त प्रधान व्याधि है। अतः यदि हरिद्रा का प्रयोग पाण्डु पर हो तो केवल कफज पाण्डु पर ही होना चाहिए। यह मेरा तथा अन्य चिकित्सकों का भी अनुभव है कि कुछ श्वास एवं कास के रोगियों में हरिद्रा का कोई प्रभाव नहीं देखा जाता। इसका कारण मैं यह समझता हूं कि हरिद्रा कटु एवं तिक्त है तथा कफ पित्तघ्न बतलाई गई है। गुणों में रूक्ष एवं उष्ण है। यदि श्वास कफ प्रधान लक्षणों को व्यक्त करता हो तो हरिद्रा से अवश्य लाभ होना चाहिए। यदि वात प्रधान लक्षण वाला हो तो हरिद्रा से कोई लाभ नहीं होगा। कारण कि रूक्ष और उष्ण गुण तथा कटु और तिक्त रस वात को शान्त नहीं कर सकते। यही बात कास के साथ भी समझनी चाहिए।

गत तीन वर्षों में गुलाब कुंवरबा आयुर्वेद महाविद्यालय में मैंने ६० रोगियों पर हरिद्रा का प्रयोग किया है। इन सब रोगियों का निदान पाश्चात्य चिकित्सकों द्वारा ट्रोपिकल इयोसिनोफिलिया किया गया था। सभी आवश्यक परीक्षण यथासमय किए गए और निदान पक्का हो जाने के बाद केवल घृतभ्रष्ट निशा या केवल निशा का प्रयोग ४ ५ माशे की मात्रा में दिन में तीन बार किया गया। प्रति सप्ताह रक्त परीक्षण होता था और रोगी की व्यथाओं में कमी या वृद्धि को लिखा जाता था। इन ६० रोगियों में से २५ रोगी आतुरालय में प्रविष्ट हुए और शेष बहिरंग विभाग से औषध लेते रहे। बहिरंग विभाग के रोगियों में विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु अन्तरंग विभाग के रोगियों के सम्बन्ध में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने औषधि का प्रयोग उचित मात्रा में और समय पर किया। इस अन्वेषणात्मक कार्य से बहुत संतोषजनक परिणाम निकले।

[illegible] लाभ नहीं [illegible] सकता है [illegible] [illegible]

[illegible] रोगी [illegible]

[illegible] जा सकता है—

रोगी	रोग के समय प्रतिशत संख्या	[illegible]							
		1	2	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
1 S. J. A	75	70	80	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	10	6
2 D D R.	80	60	51	37	[illegible]	27	[illegible]	9	[illegible]
3 J D J	67	60	70	40	35	[illegible]	16	7	5
4. P D S.	60	57	65	47	[illegible]	[illegible]	[illegible]	—	—
5 A B S	55	40	57	[illegible]	25	20	9	7	3
6. S S D	40	30	31	28	10	10	3	—	—
7 C S S.	38	35	40	25	15	7	[illegible]	—	—
8 R B J	35	27	42	21	10	2	—	—	—
9 P H. R	35	30	37	14	4	—	—	—	—
10 I S D	30	20	6	—	—	—	—	—	—

नागार्जुन में प्रकाशित लेख से प्रभावित होकर मेरे पास कई प्रश्न भी आये हैं जिनका मैं उत्तर दे भी चुका हूं, प्रसन्नता है कि 'फार्म प्रोडक्ट्स, थान्जावूर (Pharm products LTD Thanjavur,)' ने उक्त लेख की प्रतिलिपि छापने तथा बांटने की अनुमति मुझसे मांगी है। मैने सुझाव दिया है कि वे प्रथम अपने 'अन्वेषण विभाग' से इस पर अन्वेषण करवाले और पश्चात कोई पुस्तक छापें। वहा भी यह काम चल रहा है और उनके पत्र के अनुसार ६ माह के अन्दर उक्त अन्वेषण के परिणाम सामने आसकेगे।

आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र, जामनगर में भी एक बन्धु ने इस पर कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इसके परिणाम उनकी थीसिस पूर्ण होने पर ज्ञात हो सकेंगे।

इससे प्रेरणा मिलनी चाहिए और अन्य विद्वज्जनो को भी निशा के प्रयोग से लाभ-हानि के सम्बन्ध मे अपने अनुभव व्यक्त करने चाहिए। इसी प्रार्थना के साथ यह लेख समाप्त करते है।

—श्री शिवचरण ध्यानी जी आई एम एस.
आयुर्वेदाचार्य, ए. पी. ए.
आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर

पांच उपयोगी वनस्पतियां

आयुर्वेदाचार्य श्री डा० एस० एन० खरे

अर्क–

१—आक के पत्ते का अर्क गर्म करके कान मे टपकाने से अथवा आक की जड़ को गर्म करके दांतो के बीच दबाने से शीघ्र ही दांत का दर्द शान्त हो जाता है।

२–आक की जड की छाल को बकरी के दूध मे पीस कर गर्म करके कंठमाला पर लेप करने से कंठमाला बैठ जाती है। यदि पुरानी हो तो पक-कर फूट जाती है।

३–आक की जड दूध में औटा कर दही जमा-कर घी निकाले। उसी घी को चावलों के साथ खाये। इससे नहरवा (नारुआ) कभी नहीं निकलते है।

४–आक का दूध लगाने से पुराना दाद ठीक हो जाता है लेकिन पहले कष्ट काफी होता है।

५—जहा पर कांटा लगा हो वहा आक का दूध लगाने से काटा ऊपर आ जाता है।

६–जहां साप ने काटा हो उस घाव पर आक का दूध उस समय तक डालते रहें जब तक घाव स्वयं दूध चूसना बन्द न कर दे। इस प्रयोग से शीघ्र ही लाभ होता है।

७-यदि किसी के पेट मे दर्द हो तो आक के पत्तो पर एरण्डतैल अथवा तिल का तेल लेप करके फिर उनको गर्म करके पेट को सेकना चाहिए। इससे पेट मुलायम हो जाता है और दर्द भी ठीक हो जाता है।

८–बिच्छू काटने पर आक की जड़ या पत्तों को पीस कर उसी जगह लेप कर देने से तुरन्त लाभ होता है।

९–लकवा (पक्षाधात) लगने पर आक के पत्तों को तेल से चुपड़ कर गर्म करके बांधना चाहिए। इससे लाभ होता है।

१०–पार्श्वशूल और अन्य स्थान के दर्द में आक के पत्तो पर तेल चुपड कर गर्म करके दर्द वाले स्थान की सैक करना चाहिए। इससे शीघ्र ही दर्द शान्त हो जाता है।

अडूसा--

१–अडूसा (रुसा) का रस(पत्तो एवं फूलों दोनो का) दो तोला लेकर इसमे शहद और शक्कर चार चार माशे लेकर मिला कर पीना चाहिए। इससे अम्लपित्त एवं कामलायुक्त पित्त कफ ज्वर ठीक हो जाता है।

२–अडूसे के पत्तो के स्वरस में शहद तथा मिश्री मिला कर पिलाने से अत्यन्त दारुण रक्त-पित्त शान्त हो जाता है और उदर की जलन भी नष्ट हो जाती है।

३—वासा स्वरस दो तोले मे ६ माशे शहद मिला कर पीने से क्षतज कास ठीक हो जाती है। अनुपान से बकरी का दूध पीना चाहिए।

४—अडूसा के पञ्चाग को उखाड़ कर इसका क्वाथ तैयार कर लेवे। फिर दिन मे ३-४ बार ३ तोला क्वाथ लेकर ६ माशे शहद मिलाकर पीने से श्वास का दौरा ठीक हो जाता है।

५-श्वासकुठार रस १ रत्ती को २ तोला वासा स्वरस मे मिलाकर फिर उसी मे ६ माशा शहद मिलाकर सेवन करने से श्वास रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यह इञ्जेक्शन के समान योग है।

६—श्वास, खांसी, रक्तपित्त एवं राजयक्ष्मा की सबसे बडी चिकित्सा 'अडूसा है। कुछ भी उपलब्ध न हो सके तो इसके इसके पत्तो के स्वरस को शहद मे मिलाकर सेवन करने से उपरोक्त रोग स्वतः शान्त हो जाते है।

७—अडूसे के फूल और गुड को मिलाकर

सेवन करने से ... शूल शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

८—अडूसे के छोटे पौधे को जड़सहित उखाड़ कर छाया में सुखावें। फिर उसका चूर्ण बनाकर नित्य छै आना भर शहद के साथ खाने से हर रोग नष्ट हो जाता है।

इमली –

१–इमली की छाल जला कर और गाय के घी मे मिला कर जलने के घाव पर लगाने से जलन मे उसी समय ठन्डक पड जाती है।

२—इमली के बीजो को भून कर उनका छिलका उतार कर बारीक पीस लेना चाहिए। फिर उसके बराबर शक्कर या मिश्री मिला कर २ तोला प्रतिदिन प्रातः एवं सायकाल में सेवन करना चाहिए। अनुपान में ऊपर से गाय का ताजा दूध पीना चाहिए। इससे स्त्रियों मे सफेद पानी (धातु) गिरना बन्द हो जाता है।

३—इमली का बीज भिगोकर उसके ऊपर का काला छिलका उतार डाल जावे। फिर उस सफेद बीज को घिस कर बिच्छू काटने की जगह पर लगा देना चाहिए। बीज फौरन चिपट जायगा और बिच्छू का पूरा जहर खींच लेगा। इसके बाद बीज स्वत अलग हो जाता है।

४—इमली का बीज घिस कर लगाने से आंख की गुहेरी शीघ्र ही ठीक हो जाती है।

अदरख –

१–असगंध को पत्थर पर बारीक पीसकर नाभि के चारो ओर दीवार सी बना देवे जिसके किनारे ऊंचे हो। फिर उसके अन्दर अदरख का रस भर देना चाहिए। इससे भयंकर दस्तो का प्रवाह बन्द हो जाता है।

२–अदरख के रस को पुराने गुड मे मिला कर सेवन करने से शीतपित्त नष्ट हो जाता है। तथा मन्दाग्नि दूर हो जाती है।

३—अदरख का रस शहद मे मिला कर चटाने मे श्वास, कास और प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

४–अदरख और तुलसी के पत्तो की चाय बनाकर पीने से बातश्लेष्म ज्वर और प्रतिश्याय में ज्यादा लाभ होता है। विशेष रूप से शीत ऋतु मे इसका प्रयोग किया जाता है।

अमलतास---

१—२ तोले अमलतास का क्वाथ बनाकर इसमें ६ माशे तुरंजबीन मिलाकर पीने से पित्त प्रकोपजन्य कास नष्ट हो जाती है। और गले का कव्वा (देहात में लोग उसे कौआ कहते है) ठीक हो जाता है। यहा पर अमलतास का गूदा प्रयोग मे लाना चाहिए।

२–अमलतास का गूदा ६ माशा और मिश्री ६ माशा दोनो मिलाकर गुनगुने जल के साथ इसे प्रातः एवं सायं काल मे सेवन करने से कोष्ठ-बद्धता और कफवृद्धि नष्ट हो जाती है।

३—अमलतास के फल का गूदा २ तोला और आवले का चूर्ण २ तोला लेकर दोनो का क्वाथ बनाकर मिश्री और शहद एक-एक तोला मिलाकर पीने से कोष्ठशुद्धि हो जाती है। और ऊर्ध्वग रक्त-पित्त नष्ट हो जाता है।

४–अमलतास का गूदा और आवले दोनो बरा-बर लेकर सायंकाल मे एक बर्तन मे पानी डाल कर भिगो देना चाहिए। प्रात काल में इसके गूदे को मसलकर पानी छान कर पीने से कोष्ठबद्धता नष्ट होकर कामला रोग ठीक होजाता है।

–श्री डा० एस० एन० खरे ए०, एस० बी० एस
सेवक औषधालय, ककवारा (झांसी)

सूखारोग पर—

पीपल वृक्ष की जटा १ भाग, हरड २ भाग विधि—इनको कूट पीस कर कपडछन करके शीशी में सुरक्षित रखलें। मात्रा १–२ रत्ती माता के दूध से प्रात: साय देवे।

(२) मुक्ताशुक्ति २ रत्ती, प्रबाल पिष्टी १ रत्ती २ मात्रा प्रतिदिन दही के पानी से दें। साथ में दधि का खूब प्रयोग करावें।

—वैद्य श्री पं. नथमल शर्मा निम्बीजोधां निवासी
श्री महावीर दातव्य औषधालय
मेनसर (राजस्थान)

रिकेट्स रोग (Rickets)—

१–यदि रोगी बलवान हो तो साधारण वमन विरेचन देवें।

२–प्रवालपष्टी, शृंगभस्म, मण्डूर इन तीनो को १–१ रत्ती की मात्रा बनाकर ३ समय प्रात. सायं, मध्याह्न बकरी के दूध के साथ देवें।

(३) इसके २ घटे बाद तीनो समय अरविंदासव ½ तोला समभाग जल मिलाकर दे।

(४) प्रात: प्रतिदिन एक मुर्गी का अंडा दूध में फोड़ कर पिलावे।

(५) प्रात: मध्याह्न सूर्य की ज्योति मे लाक्षादि तैल से अगमर्दन करें।

पथ्य—पौष्टिक पदार्थ, घी, दूध, रस, गेहूं, मूंग, अरहर आदि।

—श्री उत्तमचंद नायक, जनपद डिस्पैंसरी
लालपूर (पेन्ड्रारोड)

जलोदर पर—

छोटी हरड़ १ पाव कुटकी १ पाव, दोनों का बारीक चूर्ण कर लें। ४-४ माशा की पुडिया ३ टाईम गौमूत्र के साथ दें। इससे कष्टसाध्य जलोदर नष्ट हो जाता है। आहार के लिए सिर्फ दूध दें अन्न तथा पानी बंद। इससे शोथोदर भी नष्ट हो जायगा। ताकत के लिए स्वर्ण माक्षिक ३ समय दूध के साथ दें।

—श्री भगवानदास वैद्य, शेगांव

मसूड़ों पर—

रैक्टीफाइड स्प्रिट १ तोला, काष्टिक सोडा २ माशा मिला कर रखले। मसूडों के दर्द पर लगावे, शीघ्र लाभ होगा।

वृश्चिक दंश—

रैक्टीफाइट स्प्रिट २ बूंद, डिस्टल वाटर १६ बूंद मिलाकर दंश स्थान के पास सूचीवेध करे। फौरन लाभ होगा।

दुखती आंखो को—

बनतुलसी का स्वरस २ बूंद डाले। एक बार मे ही लाभ होगा।

पसीना अधिक आना—

दुद्धी एक तोला मिश्री ५ तोला ठडाई तैयार कर पीने से ५-६ दिन मे ही किसी भी भाग से पसीना अधिक आने की शिकायत नष्ट होती है।

—श्री वैद्य बत्तूलाल जी शर्मा,
चिकित्सक—राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय
मु० पो० कमालपुरा (सवाई माधोपुर)

गर्भदान योग—

कस्तूरी १½ माशा, अफीम ११ माशे, केशर ११ माशे जायफल ११ माशे, भाग १३ माशे,

सेवन ... तोले, गुड़ ५ तोले, लवंग (लौंग) जात ... को बारीक पीस छानकर बेर ... गोलियां बनावें, रोज नित्य सवेरे ...आ खाये।

नोट—ऋतु स्नान होने के पहिले दिन से ऋतु आने के दिन तक खाये।

मासिकधर्म चालू होता है। उस दिन से ७ दिन तक सुबह शाम ६ माशे हाथी दांत का बुरादा, मधूनिर, या मधूमादक के साथ ७ दिन खाये और ऋतु स्नान होने के चौथे दिन से ४ माशा हाथी दांत के महीन बुरादे की पोटली बनाकर गुप्तस्थान में रखें। इस योग से बांझ स्त्री भी गर्भधारण करती है।

सूचनायें—

(१) जिस स्त्री को गर्भ नहीं रहता उसके पति के साथ दोनो पति पत्नी की परीक्षा करनी चाहिए।

(अ) स्त्रियों का मासिक समय पर न होना, ज्यादा होना, प्रदर, रक्त की कमी, राजयक्ष्मा, वातज, कास, इत्यादि कारणों से स्त्रियां गर्भधारण नहीं करती हैं।

(ब) पुरुषों की नपुंसकता, प्रमेह, उपदंश धातु सम्बन्धी बाधायें दूर करने के बाद ही गर्भ धारण होता है।

परीक्षा—

पति और पत्नी का मूत्र अलग अलग छोटे छोटे मिट्टी के पात्र में लेकर उसमें कच्चे चने डाल दे। तीन दिन के बाद देखे कि किसके मूत्र में चने के अंकुर निकल आये हैं। जिस पात्र से चने अंकुर लिये निकलेंगे वह स्त्री हो या पुरुष निरोगी माना जायगा और जिसके मूत्र से अंकुर नहीं निकले उस पर औषधोपचार करना होगा। बाद में इसी तरह परीक्षा करने के बाद ही गर्भाधान योग देने से बांझ स्त्री को भी अवश्य गर्भाधान होता है।

मधूनिर—मधूमादक—मधू (शहद) के साथ पानी मिलाकर औटाने पर मधूनिर होता है। इसी शहद में शराब मिला औटाने पर मधु मादक होता है।

आहार—सात्विक और थोड़ा होना चाहिए। लाल मिर्च, लहसुन, प्याज, करेला, बैंगन आदि गरम वस्तुयों का त्याग करे।

—श्री डा० डी. पी. मेश्राम वैद्यभूषण
एक्स-डिप्टीमेयर गौतम नगर, नागपुर

गौमूत्र के सफल प्रयोग—

(१) पांडु कामला पर—सुबह शाम गाय के ताजे गौ मूत्र १-१ तोले से निम्न दवायें लेवें शीघ्र लाभ करती है—

शंख भस्म १ तोला, मण्डूर १ तोला, कसीस भस्म १ तोला, शृंग भस्म १ तोला सबको मिला कर १-१ माशे की पुड़िया बनाकर ले।

(२) प्लीहाहर योग—बढ़ी हुई तिल्ली काटने के लिए नौसादर १ तोला, कलमीशोरा १ तोला, शंख भस्म १ तोला, अर्कक्षार १ तोला, चने का क्षार १ तोला, सुहागा फूला १ तोला, शु० हीराकसीस १ तोला, काला नमक ५ तोला, सबको मिलाकर १॥-१॥ माशा की पुड़िया बनाकर सुबह शाम गौ मूत्र से लेवे। इससे बढ़ी हुई तिल्ली यकृत की गाठ, शोथ, वायु गुल्म रोग ठीक होते है।

(३) मेद हर अर्क—गौ मूत्र का भवका द्वारा अर्क खींचकर रखे। ५-५ तोले दिन में ३ बार लेने से बढ़ा हुआ मेद हलका होता है।

(४) बच्चों के डब्बा (पसली) पर—१ बोतल गौमूत्र में १ तोला केशर, १ छटाक रेवन्दचीनी का सत्व मिलाकर रखें। गोमूत्र में पहले सत्व पका लेवे बाद में छानकर केशर घोटकर मिला देवें।

बच्चों के पसली चलना, श्वास उठना, सर्दी लगने पर १०-१० बूंद बच्चों को पिला देवें, शीघ्र लाभ करती है।

(५) कनपेड (प्लेग की गिल्टी) पर—काली मिर्च, काली जीरी, कुचला, गोमूत्र में पीसकर लेप कर देवें। इससे कनपेड (प्लेग की गिल्टी-गाठ) फोड़ा उठना ठीक होता है।

(६) कुकर खासी पर—अर्क क्षार ३-३ रत्ती दिन में ३ बार गोमूत्र से देने से कुकर खासी

(काली खांसी) जाती है।

—वैद्य विशारद श्री मांगीलाल राजवैद्य
लखेरी (राजस्थान)

श्वास (दमा) पर—

(१) भटकटय्या (कटेरी) पंचाग, अपामार्ग की पत्ती, अडूसा की पत्ती, केला की पत्ती, पीपल वृक्ष की छाल, ढाक की पत्ती, सुट्टी (सफा) की छोई (खाकर बचा हुआ) इनको समभाग ले और सब की अलग अलग भस्म करे। बाद मे एक ही में मिला ले। फिर इन भस्मों को किसी चौड़े मुख के पात्र में डालकर आठ गुना जल डाल दें। दिन में ३ बार डंडा द्वारा चला दिया करे। चौथे दिन ऊपर का पानी सावधानी से नितार लें। नीचे का जमा हुआ (गाढ़ा) द्रव फेंक दें। निथरे हुए पानी को कढ़ाई मे डालकर अंगीठी पर चढ़ादें और मन्दाग्नि से पकावें। जब गाढ़ा होने पर आजाये तब आग निकाल लें। साधारण गर्मी द्वारा खुश्क करलें। यह सफेद रङ्ग का क्षार प्राप्त होगा।

मात्रा—१ माशा से २ माशा तक काकडाश्रिंगी १ रत्ती, पीपल ४ रत्ती, मयूरचन्द्रिका भस्म १ रत्ती असली शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम देने से श्वास (दमा) खांसी एवं वायु की नलियां साफ करता है। यह योग अपूर्व गुणकारी सिद्ध हुआ है।

(२) कुलथी को पानी मे पकने को रखदें और उसी में थोडा नमक (खाने का), थोड़ी हल्दी गठान वाली और डाल दे। पक जाने पर उतार लो और छान ले। छने हुए पानी को फेंके नहीं बल्कि रोगी को ठंडा होने पर पिलादें। थोडी थोडी देर मे पकी हुई कुलथी को भी श्वास के रोगी को खिलाये। भूख लगने पर उसी कुलथी को ही खिलाये। दूसरा भोजन न दें। इस प्रयोग द्वारा भी श्वास के रोगी ठीक हो जाते है।

(३) सफेद आक के फूल आधा सेर, अडूसा के पत्ते आधा सेर, लौंग १ छटाक, सौंठ १ छटाक, जायफल २ नग, काली मिर्च १ छटांक, नौसादर (थप्पी वाला) इनको हंडिया मे भर कर मुख बंद कर गजपुट मे लगा भस्म करें। इस भस्म में १।। तोला कलमी सोरा पीसकर मिलाले। फिर पुराना गुड़ मिला गोली (झरबेरी के समान) बनालें।

मात्रा—१ गोली सुबह शाम या दिन मे ३ बार भी दे सकते हैं।

गुण—श्वास (दमा) कास इत्यादि पर अचूक गुणकारी है।

(४) श्वास खांसी पर बूटी-सफेद शरपुंखा की जड़ चिलम में भरकर तम्बाखू की भांति पीने से श्वास, खांसी मिट जाती है।

(५) काले धतूरे के सूखे पत्ते चिलम से भरकर पीने से श्वास ठीक होता है।

(६) अडूसा के पत्ते (छाया में सूखे हुए) चिलम में भरकर तमाखू की भांति जोर से कस लगाकर पीयें। श्वास का दौरा शान्त हो जाता है।

(७) ऊंटकटारा की जड छाया मे सुखाकर रखें। मात्रा ४ रत्ती पान मे रखकर सेवन करे। इससे दमा खांसी मे लाभ होता है।

—वैद्यरत्न श्री आत्माराम बर्वे आयु० शास्त्री
घन्सौर (सिवनी) म० प्र०

१—शार्ङ्गधर संहिता—

[कृष्णा नामक हिन्दी भाषाटीका सहित] भाषाटीकाकार—आचार्य श्री राधाकृष्ण पाराशर, आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० गुप्ता लेन कलकत्ता—६।

आयुर्वेद की लघुत्रयी मे शार्ङ्गधर संहिता अपना वैशिष्ट स्थान रखती है। इसकी कई भाषाटीकायें प्रकाशित हो चुकी है। किन्तु सुबोध एव सर्वांगपूर्ण व्याख्या सहित कोइ टीका अभी तक हमे दृष्टिगोचर नही हुई। आलोच्य ग्रन्थ इस दिशा मे बहुत कुछ सफल हुआ है। इसमे प्राय सब क्लिष्ट स्थलो का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया गया है। अग्रेजी माध्यम से अधीत आधुनिक आयुर्वेद के या अन्य वैद्यक के उपाधिधारी वैद्यो की सुविधा के लिए इसमे स्थान स्थान पर अग्रेजी प्रतिशब्दों की योजना की गई है। तथा विशेष वक्तव्यों द्वारा भी विषय को समझाया गया है। जहां तक हो सकता है लेखक ने इस पुस्तक को आयुर्वेद के विद्यार्थियो के लिए अधिक उपयोगी बनाने का सराहनीय प्रयत्न किया है। ७०२ पृष्ठा की उत्तम आकर्षक जिल्द वाली इस पुस्तक का मूल्य ९ ७९ कुछ अधिक नही है।

२—सुलभ आयुर्वेदीय औषधि योजना—

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध वैद्यराज श्री वेणीमाधव शास्त्री जोशी जी इसके लेखक है। महाराष्ट्र राजकीय आयुर्वेदीय अनुसधान समिति की ओर से प्रकाशित इस महाराष्ट्र भाषा की मौलिक पुस्तक मे अग्निमाद्य, अजीर्ण, वमन, अम्लपित्त, अतिसार आदि कुल ५१ सर्व सामान्य विकारों का सुन्दर सक्षिप्त विवेचनासहित उपयुक्त सुलभ योग दिये गये है। साथ ही साथ प्रत्येक रोग पर पथ्यापथ्य एव सेवन आदि का भी विचार किया गया है। इस पुस्तक मे वर्णित रोग के तात्कालिक घरेलू उपचार के लिये बहुत उत्तम मार्गदर्शन हुआ है। पृष्ठ १५४ की यह स्कूली साईज की पुस्तक उत्तम पुष्ट कागज पर छपी हुई अजिल्द है। मूल्य छपा नहीं है। मत्री—महाराष्ट्र राजकीय आयुर्वेदीय अनुसधान समिति, मुस्तफा बिल्डिग, सरफिरोजशाह मेहतारोड बम्बई न० १ से प्राप्त हुई है।

३-चिकित्सा पद्धति

यह भी उक्त महाराष्ट्र राजकीय अनुसंधान समिति द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति की उत्कृष्टता प्रगट करने के लिए प्रकाशित हुई एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। यह सरल हिन्दी भाषा में है।

शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से रोग परीक्षण कर उसकी शास्त्रोक्त प्रणाली द्वारा चिकित्सा कैसे, किस प्रकार करनी चाहिए, इसका यथायोग्य मार्गदर्शन इस पुस्तक मे सूक्ष्म विचारपूर्वक किया है।

इसमे प्रारभिक परीक्षण एव चिकित्सा के लिए ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, शोथ, उदर, श्वास, कामला, आमवात, सधिगतवात और अस्थिमज्जागत वात इन १३ रोगों पर, प्रत्यक्ष कई रोगियों का परीक्षण कर उनकी चिकित्सा का सरल शास्त्रोक्त मार्ग का स्पष्टीकरण किया गया है। जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि आयुर्वेदिक सिद्धान्त काल्पनिक नहीं, प्रत्युत पूर्ण वैज्ञानिक है। निरापद चिकित्सा के लिए आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ एव सुलभ है। इसे सबका सहयोग प्राप्त होना अत्यावश्यक है। जिससे भारत की गरीब जनता इसके द्वारा ठीक ठीक लाभ उठा सके।

उक्त अनुसन्धान समिति का यह ठोस कार्य परम प्रशंसनीय है। आशा सब समंजस विद्वान वर्ग तथा जनता जनार्दन की ओर से इसका पूर्ण सहयोग पूर्वक समादर होगा। पुष्ट कागज पर उत्तम छपी हुई २७८ पृष्ठ की इस पुस्तक पर मूल्य अंकित नही है।

४-स्वास्थ्य और संगठन—

यह उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विकास खड के लिए स्वीकृत, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका, बहुत छोटे साईज की, स्वास्थ्य और सुगठन सघ, कटरा, अहियागज लखनऊ से प्रकाशित हो रही है। वार्षिक मूल्य १० ५० है। तथा सम्पादक श्री एच. डी श्रीमाली बी एच. सी एल. डी है।

इसमे स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्राकृतिक साधनो पर उत्तम लेख प्रकाशित होते है। हम इस पत्रिका का

शीतपित्त एवं ऐलर्जी (Allergy)

कविराज लाला बदरी नारायण सैन जी. ए. एम. एस. मोतीझील, मुजफ्फरपुर।

कुछ चिकित्सक शीतपित्त एवं ऐलर्जी नामक रोगों को एक मानते है मगर वास्तव मे बात ऐसी नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐलर्जी के किसी किसी अवस्था मे शीतपित्तवत् त्वचा पर चकत्ते उभर आया करते हैं मगर यह ऐलर्जी की हर अवस्था में हो ऐसा आवश्यक नहीं—मगर शीतपित्त के लिए यह एक आवश्यक बात है। दूसरे शीतपित्त की एक निश्चित सम्प्राप्ति है जिसके होने पर शीतपित्त होगा ही मगर ऐलर्जी के लिए ऐसी कोई एक सम्प्राप्ति (आवयविक विकृति) नहीं जिसके आने पर ऐलर्जी हो ही। एलर्जी एक विकृति विशेष का नहीं बल्कि एक अवस्था विशेष का नाम है। ऐलर्जी के उस अवस्था में जिसमें शीतपित्तवत् चकत्ते उभर आये शीतपित्त-वत् चिकित्सा से लाभ भले ही हो जाये मगर ऐलर्जी की हर अवस्था मे शीतपित्त की चिकित्सा से लाभ नहीं होने का। दोनो की अलग अलग व्याख्या से यह स्पष्ट हो जायगा।

शीतपित्त

इस रोग का मूल वर्णन आयुर्वेद में मिलता है। आयुर्वेद में इसकी सम्प्राप्ति निम्नलिखित रूप मे मिलती है—

> शीतमारुत सम्पर्कात प्रवृद्धौ कफमारुतौ।
> पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तविसर्पतः॥

यह अत्यन्त सूत्र रूप मे है फिर भी इससे यह स्पष्ट है कि इसका दोष पित्त धातु का स्वाभाविक मल है, दूष्य त्वचा एवं त्वचागत सूक्ष्म सिराजलक है और कारण शीत का सम्पर्क है। इसका अर्थ यदि निम्नलिखित रूप से लगाया जाये तो इसका अर्थ एकदम स्पष्ट हो उठता है।

प्रवृद्धोदूषित, कफश्लेष्मा धातु (श्लेष्मा धातु वह धातु विशेष है जो किसी भी वस्तु के आकार को धारण किये रहता है), मारुतौस्पर्शधातु (यह वह धातु विशेष है जो किसी भी वस्तु विशेष के स्पर्श विशेष को धारण किये रहता है), पित्तेन पित्त धातु का स्वाभाविक मल (पित्त धातु विशेष है जो किसी भी वस्तु विशेष के रूपवर्ण को धारण किये रहता है); बहिः त्वचा, अन्तत्वचा के नीचे।

अर्थात् जब त्वचा के कफ एवं वायु धातु (याने वह वस्तु विशेष जो त्वचा का आकार विशेष एवं स्पर्श विशेष दिये रहता है) शीतल पवन के सम्पर्क से दूषित हो जाये और इसके साथ यदि पित्त धातु के स्वभाविक मल का संयोग हो जाये तो पित्त धातु का यह मल त्वचा के नीचे जमा हो कर फैलता है।

अति शीतल पवन के सम्पर्क से त्वचा एवं त्वचागत सूक्ष्म सिराजालको (*Cappillaries*) के निर्माता परमाणु ठिठुरकर कड़े होजाते है और सिकुड़ कर आपस में कस कर चिपक जाते है। इससे त्वचा का जो स्वभाविक आकृति एवं स्पर्श है वह नहीं रहता, वह स्वभाविक से भिन्न हो जाता है। जैसे त्वचा की जो स्वभाविक आकृति है उससे परमाणु एक दूसरे से इस प्रकार संयुक्त है कि एक पतली चादर सी प्रतान का निर्माण करते है जिसमें यत्र-तत्र रन्ध्र भी रहते है— यह ऐसा निर्मित रहता है कि स्पर्श का लहर एक से होता हुआ यह सर्वत्र फैलता है मगर त्वचा के सिकुड़न से यह जाता रहता है। अतिशीत सम्पर्क से त्वचा के कुछ परमाणु सिकुड़ कर आपस में एक दम चिपट जाते है—परमाणुओं का ऐसा चिपटा समूह एक नहीं अनेक सारे शरीर पर होता है। इससे इसके रन्ध्र तो अवरुद्ध हो ही जाते है और साथ साथ एक सिकुड़े समूह एवं दूसरे सिकुड़े समूह के बीच एक दरार सा पड़ जाता है जिससे स्पर्श का लहर सर्वत्र फैल नहीं पाता एक तो परमाणु के कडापन के कारण दूसरे उस पड़े दरार के कारण-चूंकि इसे फैलने के लिये जिस चिकने एवं समतल अधिष्ठान की आवश्यकता है वह वैसा नहीं रह उससे भिन्न हो जाता है। इसे ही सूत्र रूप में

"प्रवृद्धो कफ मारुतौ" कहा है।

स्वभावतः यह होता है कि सभी पोषक पदार्थ एवं धातुयां को धमनी संवाहित करता हुआ धमनी जालको द्वारा सारे शरीर से फैलाता है। धमनी जालक अपेक्षाकृत कुछ अधिक गहराई मे होते है और सिराजालक कुछ ऊपर अतः शीत सम्पर्क का प्रभाव इस पर भी पड़ता है-रस के निर्माता परमाणु भी सिकुड़ कर कडे होते है जिससे इनमें स्रोतोरोध होता है। पोषक पदार्थ एव धातु अपने संवहन काल मे स्वभाविक रूप से मलिन भी होते रहते है जिन्हें शरीर के तन्तु ग्रहण कर उसे शरीर से बाहर निकाल फैंकते है। जो मल तन्तुओ द्वारा बाहर निष्काषित नहीं हो पाता, वह सिराजालको द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और संवाहित कर इसे अन्य तन्तुओ के पास पहुचाता है जो इसे निष्कापित कर देते है।

पित्त धातु भी सवाहित होता हुआ स्वभाविक रूप से मलीन होता ही है जिसका निष्कापण स्वभाविक रूप से शरीर के तन्तु कर दिया करते हैं, इसके एक अंश का निष्कापण त्वचा तन्तु भी करते है। जब इसका यह अंश सवाहित होता हुआ धमनी जालको द्वारा त्वचा के नीचे पहुँचता है और यदि त्वचा शीत मारुत सम्पर्क से उपरोक्त रूप से विकृत या दूपित है तो परिणाम यह होता है कि (क) त्वचा तन्तु के परिमाणु ठिठर कर कड़े पड़ने के कारण न उसका शोपण कर बाहर निकाल सकते है न उसका उदाशीकरण ही कर सकते हैं, (ख) त्वचा रन्ध्रो के अवरुद्ध होने के कारण बाहर निकल नहीं पाते, (ग) सिरा जालको के मार्गावरोध से (उनके परमाणुयो के ठिठुर जाने से) न उसका शोषण होता है न सवहन हो पाता है। परिणाम यह होता है कि वह त्वचा के नीचे ही जमा होता है और पसरता है। चूंकि धमनीजालक गहराई मे होने के कारण शीत के प्रभाव से बचे रहते है इसलिए पित्त का यह स्वभाविक मल का त्वचा के नीचे आने का क्रम जारी ही है। इसे ही सूत्र रूप मे कहा है "पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पत." याने पित्त धातु के स्वभाविक मल का त्वचा के नीचे आना जारी रहता है और त्वचा उनका निष्काषण नहीं कर सकता न सूक्ष्म सिरा जालक उसे संवाहित कर उस स्थान से हटा पाते हैं। अतः यह त्वचा के नीचे जमा होकर स्वगुणानुसार दाह, कण्डू तोद एवं ज्वर युक्त चकत्ते के रूप में उभर आते है। यह विकृति जब भी होगी शीतपित्त होगा अन्यथा नहीं।

चिकित्सा--

इसका चिकित्सा सूत्र है त्वचा तन्तु के परमाणुओं को त्वचागत सूक्ष्म सिराजालको का प्रसादन करना ताकि पित्त धातु का यह संचित मल निष्काषित हो जाये। इसमे स्वेदन, उद्धवर्तन एवं अभ्यङ्ग अधिक प्रशस्त है।

१ वाष्पस्नान—इसके रोगी को एकदम नग्न कर खाली खाट पर लिटा दे और कम्बल से उसे ऐसा ढ़के कि खाट भी एकदम ढंक जाये। खाट के नीचे से वाष्प छोडे।

२. दूर्वा स्वरस में हल्दी खूब महीन पीसले। बाद इसमें कूठ, चक्रमर्द एव जौ का आटा (कच्चे जौ का) मिला दे। इसमें अन्दाज से सरसो का तेल, कपूर एवं दूर्वास्वरस मिला ढीला कर उद्वर्त्तन जैसा प्रयोग करे।

३. सोठ, मिर्च, पीपर, यवक्षार (Sodi Bicarb) एव अजवाईन सम भाग मे मिला-दो-दो आने भर की मात्रा मे हर एक एक घन्टे पर अदरख के रस के साथ चाटे।

४. स्वर्ण सिन्दूर, अभ्रक भस्म एक-एक ग्रेन मिला कर हर दो-दो घंटे पर अदरख के रस एव गुड़ (एक एक तोला) के साथ खाये।

५. स्वर्ण सिन्दूर-२५ ग्रेन, अभ्रक भस्म २५ ग्रेन, रस माणिक्य ५० ग्रेन, एव शुद्ध गुग्गुल २ तोला। पहले रससिन्दर आदि को खूब खरल करे। बाद गुग्गुल डाल पानी के छींटे दे खूब कूटे और मिलावे। इसमे ५० गोलिया बनावे। एक एक गोली हर ३-३ घटे पर खाकर ऊपर से अदरख का रस १ तोला एवं गुड़ चार आना भर मिलाकर पीवे।

—एलर्जी आगामी अङ्क मे।

मेरे अनुभव लेखमाला १०—

प्रमुख रोग और उनकी चिकित्सा

श्री सत्यदेव चिकित्साचार्य

प्रथम हमने लेखमाला मे सन्निपात ज्वरो की चिकित्सा शैली का वर्णन सिद्धान्त सहित दिया है। इन सिद्धान्तों को ध्यान मे रखते हुए किसी भी प्रकार के सन्निपात ज्वर और उसमे होने वाले उपद्रवों का सरलता से उपचार कर सकते है। अब हम आगे प्रमुख प्रमुख रोगो का जो अधिकतर होते रहते है वर्णन करते हैं। आप उक्त सिद्धान्तो के अनुसार ही इनकी चिकित्सा करे।

आन्त्रिक ज्वर—मोतीझला

मधुरक ज्वर, मन्थर ज्वर, टाइफाइड आदि इसके नाम है।

इस ज्वर का विशिष्ट कारण टाइफाईड वेसीलस नामक जीवाणु है जो कि खाने पीने की चीजो में छूतछात या गर्द गुबार के साथ पड़कर मनुष्य शरीर में पहुँच जाता है और वहां अपनी संख्या बढाकर इस रोग को उत्पन्न करता है। ये कीटाणु दुर्गन्धित स्थानो जहां 'मल मूत्र, कूड़ा कर्कट इकट्ठा होता है वहां और उसके आसपास के वायु मण्डल में अधिक होते है, इसलिये ऐसे स्थानो में बसने वाले लोगो मे यह रोग अधिक होता है। इन कीटाणुओं को रास्ता चलने से थके मांदे, भूखे-प्यासे, कमजोर मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट होकर बढ़ने में बड़ी सुविधा मिलती है। यो तो ये ज्वर सब ही ऋतुओ में होता रहता है किंतु यह ग्रीष्म और शरद ऋतु में विशेषता से होता है। क्योकि इस रोग के उत्पन्न करने वाले कीटाणु पित्त, कफ प्रधान होते है, इसलिये यह ऋतुये इसकी वृद्धि के अनुकूल है।

ये टाइफाईड वेसीलस नामक कीटाणु जिन्हे प्राचीन आयुर्वेद में 'आत्राद' आंतो को खाने वाले नाम दिया है, आंतो मे पहुँचकर अपना अड्डा जमाते है और रस रक्त, वातादि दोषो को कुपित करते है। ये कीटाणु क्षुद्रान्त्र (छोटी आंत) के अन्तिम भाग और कभी कभी उससे संलग्न बड़ी आंत के प्रारम्भ के हिस्से को भी घुन नामक कीड़े की तरह काटकर घाव कर देते हैं। यही नही कभी कभी तो ये वृक्क (गुर्दे) फेफड़े आदि शरीर के दूसरे अङ्गो मे भी पहुँचकर वहां पर विकार पैदा करते हैं। इनका विष सभी अङ्गो में रस रक्त के साथ जाता है किन्तु वह जिस भी अङ्ग को अपने अनुकूल पाता है रुककर विकार पैदा करता है। इनके द्वारा खाई हुई आंत रक्त स्रवित होकर गुदाद्वारा बाहर निकलता है और कभी कभी मल की कठोरता से घाव बढ़कर विशेष रक्तस्राव होकर रोगी के जीवन को खतरे मे डाल देता है। यदि रक्त का स्राव आंत के बहिपृष्ठ की ओर छिद्र हो जाने से उदर गुहा मे हो जाता है तो हालत काय चिकित्सको (दवा देकर इलाज करने वालो) की शक्ति से बाहर हो जाती है। फिर तो कोई विशेष कुशल शल्य चिकित्सक (चीडफाड करने वाला बहुत होशियार डाक्टर जिसके पास चीड़फाड़ के सब सामान हो) ही शायद ठीक कर सके।

लक्षण —

शिरःशूल, शरीर मे जकड़न, अरुचि, बेचैनी, उठते-बैठते आँखो के आगे अंधेरा सा हो जाना आदि लक्षण आन्त्रिक ज्वर के प्रारम्भ होने से पहिले हुआ करते है। कभी कभी यह लक्षण नहीं भी होते हैं और होते भी है तो बहुत कमी के साथ होते हैं, ज्वर चढ़ा रहता है, उतरता नहीं। प्रतिदिन क्रमशः बढ़ता ही चला जाता है, ज्वर के बढ़ने के साथ ये लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसके

बढ़ने का क्रम प्रायः ऐसा रहता है कि प्रतिदिन सायंकाल एक अंश ज्वर बढ़ता है, प्रातःकाल कम हो जाता है और दूसरे दिन शाम को फिर पहले दिन से एक डिग्री और अधिक ज्वर बढ़ता है, सुबह १-१।। डिग्री कम हो जाता है और फिर सायंकाल पहिले दिन से एक डिग्री ज्वर अधिक बढ़ता है। इस प्रकार ३-४ दिन बढ़कर ज्वर का बढ़ना रुक जाता है और प्रायः सप्ताह तक ज्वर एकसा बना रहता है, सुबह शाम मे १-२ डिग्री का अन्तर अवश्य होता रहता है। इसके बाद क्रमशः १-१ डिग्री ज्वर कम होता जाता है। तीसरे सप्ताह के अन्त तक प्राय. रोगी ज्वर मुक्त हो जाता है।

इस ज्वर में प्रायः पहले ही हफ्ता से गले छाती पेट पर सफेद सरसो के बराबर फुंसियां क्रमशः निकलती है। किसी के श्वेत, किसी के लाल या काली भी होती है। लाल, काली फुंसियां भयानक समझी जाती है, यह दोषो के विशेष कोप को प्रकट करती है।

इस रोग मे प्रायः प्लीहा, तिल्ली बढ़ जाया करती है। यदि किसी रोगी को पहले विषम ज्वर आता रहा हो तो फिर वह आंत्रिक या संतत (सम ज्वर, बराबर एकसा रहने वाला बुखार) मे परिणत हो गया हो तो उस दशा मे प्लीहा का बढ़ जाना इससे पृथक् कहा है। प्रायः इसमे प्लीहा बढ़ जाती है, कभी ऐसा नहीं भी होता।

अधिकतर ५ दिन के बाद कभी इससे भी और अधिक दिन से रोगी को चने की दाल के यूष (फोल, रस, शोरवे) की तरह मल के दस्त होने लगते है। कभी दस्त बिल्कुल भी नहीं होते। प्रायः ऐसा होता है कि दस्तों के साथ अफरा भी होता है, यदि दस्त रुक जाते है तो अफरा और बढ जाता है, अफरा मोती ज्वर का एक भयङ्कर उपद्रव समझा जाता है।

जब दूसरे हफ्ता मे ज्वर बढ़कर ठहर जाता है तब प्रायः तन्द्रा (आंधा नींदी), वेहोशी, गुदा का सूखना, खांसी, श्वॉस, प्रलाप (अनर्गल वकत्र), दुर्बलता, अफरा आदि लक्षण होते हैं। जीभ के सिरे लाल, बीच में मैली, खुर्दरी, फटीसी हो जाती है। ज्वर का संताप १०४ से १०५ तक होने पर भी नाड़ी उतनी तीव्र नहीं होती जितनी कि उतने ताप पर होनी चाहिए थी क्योंकि दोष प्रायः शाम होते है। इसके अतिरिक्त सन्निपात ज्वर के दूसरे और और लक्षण भी होते हैं।

इस समय में यदि दोषो का पाक हो जाता है तो रोगी स्वस्थ हो जाता और यदि दोषो का पाक होने में कुछ कमी होती है तो रोगी तीन हफ्ता से भी कुछ और आगे चौथे हफ्ता के अन्त तक रोग से पीड़ित रहता है और ठीक हो जाता है किंतु यदि धातुपाक हो जाता है तो रोगी मर जाता है।

आन्त्रिक ज्वर में ज्वरावरोहण (ज्वर का बढ़ना) दो प्रकार से होता है। एक तो क्रम से १-१ अंश प्रतिदिन बढ़ते जाना दूसरे विषम गति से। प्रायः सर्वथा ज्वर का मोक्ष २२ या २८ वें दिन होता है। कभी कभी ज्वर २८ वे दिन के बाद फिर पहिली तरह क्रमश. बढ़ने लगता है ऐसी दशा मे ज्वर ४२ वे दिन के बाद क्रमशः उतरता है। १० से ४२ दिन के बीच में आंतो के घावो से यकायक रक्तस्राव होता है, नाड़ी लोप हो जाती है, रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—

इस रोग का सदेह होते ही रोगी को शय्या पर आराम से शयन करना चाहिए। इसमें अधिक उठने-बैठने-टहलने आदि श्रमजनक कार्य करने से आंतो के शोथ-व्रण के बढ़ने, फटने तड़कने का भय रहता है। रोगी चुपचाप पड़े रहने से शोथ (सूजन) तहवील (विलीन) होने और घावो के भरने में सहायता मिलती है।

आन्त्रिक ज्वर का मुख्य कारण दोषो की सामता, अजीर्ण दोष होता है इसलिए इस रोग में रोगी को लंघन कराना सर्वोत्तम उपाय है। लंघन से दोषो का पाचन बहुत जल्द होता है और रोग से छुटकारा शीघ्र मिल जाता है। यदि रोगी को लंघन और शृतशीत (औटाकर ठण्डा किया हुआ) पानी ही दिया जाय तो रोगी बिना दवा के भी

शीघ्र ठीक हो जाता है। इसलिये बहुत से लोग तो मोती ज्वर से कुछ औषधि ही नहीं देते। किन्तु आजकल डाक्टरो की देखादेखी वैद्यो में भी लंघन कराने की परिपाटी हटती जाती है। रोगी के घर वालो के सिर पर भी रोगी के निर्बल होने के भय का भूत डाक्टरो ने सवार कर दिया है, इसलिये वे भी कहते हैं कि रोगी को कुछ भोजन देना ही चाहिए। परन्तु अब डाक्टर लोग भी इसमें लंघन की उपयोगिता को स्वीकार करने लगे हैं।

यदि आप रोगी को आहार देना ही उचित समझते है तो हलका जल्द हजम होने वाला शक्तिवर्धक आहार देते रहिये। इसके लिए दूध को फाड़कर इसका छना हुआ जल थोड़ी शक्कर या गुलूकोज मिलाकर दीजिये। यह बिना फटे दूध की अपेक्षा उत्तम रहता है। शीघ्र पचता, पेट मे भारीपन या अफरा पैदा नहीं करता। दूध से अफरा होने की सम्भावना रहती है।

यदि दूध ही देना है तो १ पाव गाय के दूध में एक सेर पानी मिलाइये। साथ ही एक साफ कपड़े में आधी छटांक राख बिना थपे कण्डे (बिने हुए जङ्गली उपले) की बांधकर डाल दीजिए। जब करीब १४ छटांक पानी जल जाय तब उतार कर पोटली निकाल मलाई हटाकर थोड़ी शकर मिला गुनागुना गुनगुना पिलावे। एक साथ पिलाने के वजाय २-३ घण्टे के फासले से आधी छटांक या १-१ छटांक दूध पिलाना चाहिये।

फलो के रसो में मौसम्मी, अनार या मीठे संतरे का रस दिया जा सकता है। परन्तु देखा यह गया है कि फलो का रस देते रहने से रोग मुक्ति विलम्ब से होती है।

आन्त्रिक ज्वर मे रोजाना ठीक समय पर ३-३ या ४-४ घण्टे बाद थर्मामीटर लगाकर तापमान रखना और एक कागज पर लिखते जाना चाहिए इससे आपको रोग के क्रम का ज्ञान और होने वाले उपद्रवो के रोकथाम मे सहायता मिलेगी।

साधारण औषधि योजना–

(१) इस रोग मे सजीवनी वटी १ नग, प्रवाल भस्म या मुक्ता (मोती) या मोती सीप की भस्म आधी रत्ती, शहद और इलायची के साथ ४-४ घंटे बाद देते रहे तो यह रोग सरलता से शमन हो जाता है।

संजीवनी वटी–

शुद्ध भिलावा, शुद्ध तेलिया मीठा, वायविडङ्ग सौंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वच, नीम गिलोय सब चीजो को बराबर बराबर लेकर कपड़छन कर गौमूत्र के साथ खूब खरल करें। तीन दिन तक लगातार घोटना चाहिए। जब गोली लायक हो जाय तब एक एक रत्ती की गोली बना सुखाले। मात्रा—१ से ४ रत्ती तक।

गुण—यह अग्नि को बढ़ाने वाली और दोषो को पचाने वाली है। अजीर्ण, विशूचिका, उदरशूल, ज्वर विशेषतया सन्निपात के ज्वरो मे लाभदायी है। इसे पित्त प्रधान ज्वरो में नहीं या बहुत ही कम मात्रा मे देना चाहिए।

विशेष—इस संजीवनी वटी में खुरासानी अजवायन एक भाग और शुद्ध हिंगुल एक भाग और मिलाते है। इससे यह विशेष गुण दिखा सत्वर लाभ करती है।

२—हिंगुलेश्वर १ वटी आधे माशे सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ मिला चटावें।

सितोपलादि चूर्ण–

मिश्री ८ तोला, वंशलोचन असली ४ तोला, पीपल २ तोला, छोटी इलायची के दाने आधा तोला। विधि—इन सब चीजो को कपड़छन कर रखले। मात्रा–४ रत्ती से ३ माशे तक।

गुण–यह चूर्ण पित्त का संशोधन करता है अन्तर्दाह को शमन करता है, भीतरी अंगो के व्रणो को भरता है। शरीर के फुफ्फुस, हृदय, अन्त्रादि अवयवो मे हुए व्रण शोथ को शमन कर श्वास, खांसी, खास कर क्षय और क्षत (छाती मे हुए घावों) के कारण हुई खांसी को विशेष लाभ करता है, पार्श्वशूल (पसलियों का दर्द) ऊर्ध्वग रक्तपित्त (नाक, मुख आदि ऊपर की ओर के भागो से निकलने वाले पित्त मिले रक्त निकलने) को लाभ करता है। हाथ, पैरों और शरीर की जलन

को दूर करता है। मंदाग्नि और अरुची विनाशक है। पुराने बसे हुए ज्वरो मे तो इसकी उपकारिता प्रसिद्ध है ही, यह दीपन पाचन होने के साथ ही व्रण रोपक होने के कारण आन्त्रिक ज्वरो में विशेष लाभदायक है। इससे ज्वर तीव्र नहीं होता तथा घबड़ाहट बेचैनी दूर होती है।

३–प्रवाल या शुक्ति अथवा शृंग भस्म में से कोई भी १–१॥ रत्ती लेकर सौंठ, जायफल, और काला-नमक पानी के साथ १-१ रत्ती घिस कर बनाई चटनी से मिला कर चटावे। ४-४ घंटे बाद दें। इससे अति-सार युक्त मथर ज्वर ठीक होता है।

४–कुमकुमादि चूर्ण १॥-१॥ रत्ती ४ बार मधु में चटावे। इससे दाने दबने नहीं पाते, दबे हुए दाने बाहर निकल आते है। हृदय को बल-कारक है। निम्न प्रकार बनाये—

केशर १ तोला, नागकेशर १ तोला, छोटी पीपल १ तोला, कालीमिर्च १ तोला, सौंठ १ तोला, लौंग १ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला। इन सब वस्तुओ को सूक्ष्म पीस कर मिला कर खूब खरल कर शीशी मे बंद कर रखे।

मात्रा—१॥-२ रत्ती।

गुण—यह प्रकृति को नर्म कर दोषों को बाहर निकालता है। बलकारक, स्निग्ध और उष्ण है, वात कफ नाशक है।

५—मोती ज्वर में दस्त हो रहे हों तो उस समय निम्न जीरकाद्य अवलेह चटाने से बड़ा लाभ होता है--

जीरकादि अवलेह—

जीरा सफेद, सौंफ, बड़ी इलायची, सोंठ, पोस्त के डोडे, छोटी हरड़ प्रत्येक २-२ तोले-एक तोले गाय का घी तवे पर डालकर चूल्हे पर रखे। इसमे पहिले एक तोले पोस्त के डोड़े भूने फिर एक एक तोले उक्त सब वस्तुयें भून ले। इन भुनी हुई और बची हुई एक-एक तोले वस्तुओं को कूटकर चूर्ण बनाले।

गुण—दीपन, पाचन ग्राही है, आमावस्था में विशेष हितकर है। अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, शूलनाशक है। मात्रा १॥ माशे से ४ माशे।

६—अफरा के लिये पेट पर स्वेद और नीचे लिखा हुआ लेप हितकारी है—

मैथी का साग यदि ताजा हो तो १ पाव, और सूखा हो तो आध पाव लेकर पानी में उबाल पीस कर चटनी बनावे। इसमें ६ माशे हींग, १ तोला सोंठ पीस कर पिलादे और आग पर गर्म कर गुन-गुना टुण्डी (नाभि) के चारो ओर पेट पर लेप कर ऊपर एक कपड़ा डाल दे। रुई के नासे (पुराने रुई के टुकड़ो) या कपडे की ५-६ तह कर उसे तवे पर गर्म करले और पेट पर सिकाई करे—

गुण—इससे पेट का अफरा बहुत शीघ्र शमन होता है।

७—कृष्ण लवणादि चूर्ण १॥ माशे गर्म जल के साथ फकादे। निम्न प्रकार निर्माण करे—

कालानमक १ छटांक, नौसादर सत्व १ छटांक खाने का सोड़ा १ छटांक।

विधि-तीनो चीजो को कूट पीस कपडछन करलें।

मात्रा-१॥ माशे से ६ माशे तक। गर्म जल से दें।

गुण-अफरा, शूल को नष्ट करता है।

८—कोष्ठबद्धता होने पर यदि रोगी के उदर में भारीपन है, पेट गुड़गुड़ करता है तो एक तोला निसोथ को भी पीस कर १ तोला घी और २ तोला शहद से मिलाकर रोगी को चटा दे। इससे खुलकर दस्त होकर कोठा शुद्ध हो जाता है।

९. १तोला अमलतास का गूदा गर्म दूध के साथ देने से उदर शुद्ध होकर ज्वर शान्त हो जाता है।

१०. निसोथ और त्रायमाण का चूर्ण दूध के साथ पीने से दस्त साफ होता है।

११. दो तोले दाखें (मुनक्का) चबाकर दूध पीने से उदर की शुद्धि हो जाती है।

१२. दाख, कटेरी, बड़ी हरड़ इनका चूर्ण खाकर ऊपर से दूध पीने से या क्षार पाक विधि से दूध औटाकर पीने से खांसी, श्वास, शिर.शूल, पसली के दर्द युक्त पुराना ज्वर ठीक होता है।

मोती ज्वर में होने वाले उपद्रवो की चिकित्सा सन्निपात ज्वर के उपद्रवों की तरह करे।

—श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
प्र० चि० जैन धर्मार्थ औषधालय,
कीठम, रैपुराजाट (मथुरा)

नेत्र रोगों की आयुर्वेदिक सरल चिकि

श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

नेत्र विकार के कारण एवं निवारण—

(१) विलासी माता पिता को रतिज रोग उपदंश, सुजाक आदि हो जाते है उनके विष से नेत्रहीन शिशु जन्म लेता है। ऐसे दम्पति सावधान रहें नीरोग होकर ही गर्भाधान करे। सन्तति का सर्व नाश न करे।

(२) नवयुवक छाया पट, पाठशाला या नगर के दूषित वातावरण मे पड़कर चाट, मादक द्रव्य, तामस भोजन करते हैं जिससे कर्मेन्द्रियो को उत्तेजना मिलती है। कुसंगत में पड़कर वीर्यनाश कर बैठते है। फलस्वरूप असमय मे यक्ष्मा, नेत्रो की निर्बलता प्राप्त होती है।

(३) वीर्यनाश करने के पश्चात् छात्र अधिक अध्ययन करते है उष्ण ऋतु या निशा में अधिक जागरण करते है जिससे नेत्रों में विकार प्राप्त होते है। असमय मे चश्मा लगाते है जिससे रही सही ज्योति भी क्षीण हो जाती है। बहुत से छात्र बिना नेत्ररोग के चश्मा लगाने लगते है। कुछ समय से उनकी आदत पड़ जाती है फिर वे बिना चश्मा लिख पढ़ नहीं सकते। लेखक ने १०-१२ वर्ष के लड़को को चश्मा लगाते हुए देखा। अतः नेत्रो से अति कार्य न ले। प्रकाश को आंखो के सामने न रखे। पढ़ते समय प्रकाश को पीछे से पुस्तक पर पड़ने दे। दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करे। सायंकाल, चन्द्र प्रकाश या अल्प प्रकाश मे अध्ययन न करे।

(४) मुख दांत या पैर को स्वच्छ रखे। नसो के द्वारा पैरो का असर नेत्रो पर पड़ता है यह न भूले। दांतों में मंजन लगावे।

(५) नेत्रो के अधिक पास सटाकर पुस्तक न पढ़े। नेत्रो से अति दूर की वस्तु, चमकदार वस्तु, सूर्य आदि मंडल, बिजली बल्ब न देखे। धूल आदि से नेत्रो की रक्षा करे। त्रिफला जल ४-४ बूंद दिया करे।

(६) स्नान करते समय शिर पर उष्ण जल डालना नेत्रों के लिए हानिकारी है।

(७) चाय काफी, बीड़ी सिगरेट, नेत्र ज्योति के लिए अति हानिकारी हैं। इन सभी मे अल्पमात्रा मे विष होता है। अतः इनका त्याग करे। तुलसी पत्र डाल कर चाय बनाया करें। इलायची मुख में पान के स्थान पर डाल लिया करे।

(८) यदि भोजन बनाना पड़ता हो तो उष्ण ऋतु मे दोपहर को न बनाया करे। चूल्हा फूंकने के लिये दो हाथ लम्बी पोली नली रखे। आंखो में आंच लगने से नेत्र ज्योति न्यून हो जाती है।

(९) इस समय रबर के जूते बहुत चलते है। ये उष्ण ऋतु में नेत्रो को बहुत हानि करते हैं। कम से कम उष्ण ऋतु में रबड़ के जूते या चप्पल न पहिने।

(१०) शिर पर उष्णऋतु मे बडे बडे बाल न रखे। यदि अन्य ऋतु में रखे तो तिली से बने हुए तैल डालते रहना चाहिए। युवा पुरुष अधिक बडे बाल न रखे तो अच्छा है क्योंकि उनमें उष्ण ऋतु की उष्णता सहन नहीं होती है। सूर्य की किरणे सीधी शिर पर न पड़ें टोपी आदि रखनी चाहिये उष्ण ऋतु में छाता लगाइए। उष्णऋतु में साफा न बाधे। उष्ण ऋतु मे विशेष रूप से प्रातः दूर्वा-कुंज (पार्क) मे नग्न पैर ओस परे हुए दूर्वा पक्तियो पर चलना नेत्रो के लिए लाभकारी है।

(११) मलमूत्र, वमन, क्षुधा, प्यास, कास आदि वेगो को रोकना हानिकारी है। काम आदि का वेग रोकना उचित है। उसके लिए ईश प्रार्थना करे। स्नान करें। धर्म ग्रन्थो का अध्ययन करे।

(१२) अधिक उपवास न करें। समय पर

भोजन करे। अति कम या अधिक न खावे। दुग्ध, उर्द, घृत, गेहूँ का प्रयोग अवश्य करे। किशमिश, नारङ्गी, अनार आदि फल भी सेवन करें।

(१३) एक दिन में भी मल साफ न उतरे, मल-रोध प्रतीत हो तो प्रयत्न करें। कब्ज रहने से नेत्र रोग की ज्योति क्षीण हो जाती है।

(१४) मुख पर मुस्कान रखे। शोक चिन्ता से दूर रहे। शोक चिन्ता को दूर न कर उसे बढ़ा देता है। यदि दुख दूर करने का कोई प्रयत्न है तो उसे करे। विदेशी या मल्ल, मनःसिला, हरताल, आदि द्रव्यों का प्रयोग जहां तक हो सके न करें।

औषधि प्रयोग—

अष्टामृत लोह—मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आमला (तीनों गुठली रहित) सनाय, जवाखार, मधुमण्डूर, लोह भस्म, ये ८ द्रव्य लेकर चूर्ण कर रखे।

मात्रादि—१ माशा, ३ माशा घी और ६ माशा शहद से सेवन करे। गोदुग्ध पीवे। महात्रिफलादि घृत खावें, नेत्र प्रभाकर अंजन लगावे।

उपयोग—इसके प्रयोग से नेत्र के सभी रोगों में लाभ हो जाता है। वमन, तिमिर, शूल, अम्ल-पित्त, आनाह, मूत्राघात, शोथ, पाण्डु, हलीमक आदि विकार भी दूर होते है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। चश्मा लगाना छूट जाता है। सप्तामृत-लोह (चक्रदत्त) में जवाखार, सनाय, मधुमण्डुर नहीं है।

सुखावती वर्ति प्रथम—

> कतकस्य फलं शंख सैन्धव त्र्यूषण सिता।
> फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मन शिला॥
> कुक्कुटाण्ड कपालानि वर्तिरेषा व्यपोहति।
> तिमिर पटल काच मल चाशु सुखावती॥
>
> —च० चि०

निर्मली का फल, शंख, सेधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल (मिलित), मिश्री, समुद्रफेन, रसोत, मधु, विडंग, मन शिल, मुर्गी के अंडा के छिलके। सभी द्रव्य समान भाग एकत्र लेकर जल में (या गोमूत्र में) घोट कर सुखावत्ती नाम की वटियां बना रखे। इसे मधु में घिस कर लगाते रहने से नेत्र के रोग काच, तिमिर पटल और मल दोषों को दूर करती है। (अर्श, क्रण्डू, क्लेद, अर्बुद के नाश करने का गुण भै० र० में अधिक हैं।)

सुखावती वर्ति द्वितीय

निर्मली का फल १ तोला, शंखनाभि १ तोला, सेधानमक ६ माशा, त्रिफला (मिलित) १ तोला, मिश्री ६ माशा, समुद्रफेन १ तोला, रसौत १ तोला, मधु २ तोला, विडंग १ तोला, मनःशिल १ तोला, मुर्गे के अंडो के छिलके १ तोला, नौसादर १ तोला, नीलाथोथा ६ माशा, कपूर २ तोला, फिटकरी का फूला २ तोला।

कपूर को छोड़ कर सबको सहिजना स्वरस से ४-५ दिन खरल करे। वर्ति बनने योग्य हो जाय तब कपूर मिला १ दिन खरल कर वर्तियां बना रखे। आवश्यकता पडने पर मधु, गौमूत्र, त्रिफला जल, सहजना स्वरस, एरण्डपत्र रस, पुनर्नवा रस, पलास या अपामार्ग स्वरस आदि किसी में वर्ति रगड़ कर नेत्र में लगावें। नेत्र के भयंकर असाध्य रोग भी ३-४ मास में ठीक हो जाते है। नेत्रों मे क्षत हो तो मात्रा अति कम लगावे। साथ ही महात्रिफलादि घृत और अष्टामृत लोह खावें। दुग्ध, फलों का अधिक प्रयोग करे। २-४ रत्ती वर्ति को १ तोला गुलावजल में घोलकर छानलें। यह नेत्र बिन्दु दिन में २–३ बार नेत्रों में डालना चाहिए। जाला, माड़ा, फूली १ मास में दूर हो जाता है। शरीर का शोधन या पंचकर्म के प्रयोग करने से १५ दिनों में ही लाभ हो जाता है। साधारण नेत्र लाली में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नयन रञ्जन अंजन प्रथम—

शुद्ध काला सुरमा ८ तोला, कपूर २ तोला इलायची के दाने ६ माशा, शीतलचीनी ६ माशा, मुक्ताशुक्ति उदर-पिष्टी २ तोला, सफेद मिर्च ६ माशा, फिटकरी का फूला ६ माशा, नीलाथोथा १ माशा। कपूर को छोड़ कर सबको गुलाबजल से ३-४ दिनों तक खरल करे। फिर कपूर मिला १ दिन खरल कर नीली शीशी में मजबूत डाट लगा कर बन्द कर रखे।

उपयोग—इसके अंजन करने से नेत्र की निर्बलता, अश्रु स्राव उष्णता लालिमा तिमिर आदि रोग नष्ट होते हैं। साथ में अष्टामृत लोह और महात्रिफलादि घृत का सेवन करने से ६० वर्ष के ऊपर भी नेत्र ज्योति क्षीण नहीं होती। चश्मा लगाने वाले का चश्मा छूट जाता है। प्रयोग कर देख लें। मुक्ताशुक्ति उदर पिष्टी के लिए मोती वाली बड़ी सीप के उदर का चमकीला भाग ही ले। एक सीप से १-२ तोला केवल। इसे गुलाबजल से चन्द्र किरणों में ४-५ दिन खरल करने से उत्तम पिष्टी बनेगी।

त्रिफला—

त्रिफला नेत्र मल को दूर करता है—

जाता रोगा विनश्यन्ति, न भवन्ति कदाचन।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयन धावनात् ॥ भै० र०

त्रिफला के कषाय का बिन्दु आंखों में टपकाते रहने से नेत्रों का मल शोधन होता है और साधारण रोग नहीं होने पाते।

यस्मैफलं चूर्णमपथ्य वर्जी,
सायं समश्नाति हविमधुभ्याम्।
समुच्यते नेत्र गतैर्विकारैः,
भृत्यै. यथा क्षीण धनो मनुष्यः ॥
—भै० र०

जो जन अपथ्य का सेवन नहीं करता वह यदि प्रतिदिन सायंकाल त्रिफला चूर्ण घृत मधु से खावे तो वह सम्पूर्ण नेत्र रोगों से रहित रहे जैसे धनहीन जन के पास नौकर नहीं आते। त्रिफला चूर्ण की मात्रा ४-६ माशा ६ माशा घी, १ तोला मधु। यह पूर्ण मात्रा है।

नेत्रामृत अर्क प्रथम—

गुलाब-जल २० तोला, अनारदाना ८ तोला, फिटकरी फूला १ तोला, रसौत १ तोला, मिश्री १ तोला, निर्मली के बीज १ तोला, त्रिफला (मिलित) १ तोला, अफीम १ माशा, कपूर २ माशा, नीलाथोथा १ माशा, सेंधा नमक १ तोला।

कपूर को छोड़ सबको पीस कर गुलाबजल में रखलें। ३-४ दिनों के बाद महीन कपड़े में २-३ बार छान कर कपूर मिला नीले रंग की शीशियों में मजबूत डाट लगाकर रखे। आवश्यकता पर दिन में २-३ बार ३-३ बूंद आंखों में टपकावे और रोगी को कुछ देर पड़ा रहने दें। साथ में नेत्र रोग हर खाने वाले योग भी देने चाहिए। कानों में रूई लगा लें। आंखों में वायु न लगे यह ध्यान रखें। नेत्र की पीडा, लालिमा, अश्रु-स्राव आदि १ दिन में ठीक हो जाते हैं।

नेत्रामृत अर्क द्वितीय----

गुलाबजल १० तोला, फिटकरी का फूला ६ माशा, कपूर १ माशा, नीलाथोथा ४ रत्ती, निर्मली के बीज १ तोला, एरण्ड तैल १ तोला, निम्ब के पत्र १ तोला।

कपूर को छोड़ शेष पीस डाल दें। ३-४ दिनों में महीन कपड़े से ३-४ बार छान कर प्रथम विधि के अनुसार उपयोग में लावे।

यदि साधारण आंख आई हो तो नीलाथोथा निकाल कर दवा तैयार करें। १ दिन में फायदा होगा।

—श्री जगदम्बा प्रसाद
महदेवा, पो० अरौल (कानपुर)

पथ्य का दोष-गुण विचार

श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी "पीयूष पाणि"

आयुर्वेद शास्त्र में कहा गया है—

विनापि भेषजैर्व्याधि पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्य विहीनाना भेषजानां शतैरपि॥

अर्थात् पथ्य ही रोगारोग्य की मूल भित्ति है। औषधि का सेवन न करते हुए यदि केवल सन्तुलित सुपथ्य का विधान विवेचना के साथ किया जा सके तो बहुत से कठिन रोगों को भी आसानी से आराम करना सम्भव होता है। इस बात का उज्ज्वल प्रमाण आज के युग में प्राकृतिक चिकित्सकों ने हमारे सामने रखा है। अत यह कहना अनुचित न होगा कि रोगारोग्य के अभिलाषी चिकित्सकों को पथ्य पर महत्वपूर्ण विवेचन करना चाहिए। जितना ध्यान हम औषधि निर्वाचन पर देते हैं उससे अधिक पथ्य के बारे मे दिया जाय तो चिकित्सा कार्य मे सफलता क्यों न प्राप्त होगी?

चिकित्सा क्षेत्र में पथ्यापथ्य का विचार और उससे ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है। हमारे दैनन्दिन भोजन पदार्थों में किसी वस्तु का कैसा गुण और अवगुण तथा किस शक्ति के लिये कौनसी वस्तु अनुकूल या प्रतिकूल सिद्ध होगी इसका गहन ज्ञान प्रत्येक चिकित्सक होना चाहिए। अगर यह अधूरा सा रह जाता है तो कुपथ्य को सुपथ्य और सुपथ्य को कुपथ्य समझ कर सेवन करने कराने से रोग आरोग्य तो होगा ही नहीं उपरान्त हित में विपरीत फल मिल जायगा। अगर पथ्यापथ्य का विचार स्थिर मस्तिष्क से किया जायगा तो रोगी के रोगारोग्य के बारे में सफलता मिलेगी ही और साधारण स्वास्थ्य सम्पन्न मनुष्य भी व्याधि के आक्रमण से कुछ न कुछ सुरक्षित रह सकेंगे। जो वस्तु हमारे नित्य उपभोग्य है उनका उल्लेख अति संक्षिप्त रूप से किया जा रहा है।

फल, कन्द, मूल—

कच्ची आमिया—त्रिदोषवर्धक, रक्त दूषित करने वाली।

आम (पके हुये) त्रिदोषनाशक, पौष्टिक, धातु, कान्ति व तृप्तिदायक, तृष्णा तथा क्लान्तिनाशक।

आमसी या अमचूर—रेचक, वायु व कफनाशक।

आमट या आमसत्व – तृष्णा, वमन, वात पित्त नाशक, सारक गुण विशिष्ट।

कटहल—गुरुपाक, बल-वीर्य का पोषक, शुक्र व कफ को बढाने वाला। रक्तपित्त, दाह, शोथ आदि रोगों पर लाभदायक।

नारियल (परिणत अवस्था प्राप्त)—गुरुपाक, पित्तनाशक।

नारियल (अपरिणत अवस्था प्राप्त)—पैत्तिक रोगनाशक।

नारियल का जल—वस्तिशोधक, तृष्णा, दाह और अम्लपित्त में लाभदायक।

अमरूद—गरिष्ठ, पित्त वा वातनाशक।

नासपाती—लघुपाक, त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्धक।

सरीफा—गुरुपाक, बल व मासवर्धक, रक्त-पित्त और वायुरोग में हितफल देने वाला।

केले (पके हुये)—शुक्र, कफ व मासवर्धक, मेह व नेत्र रोगनाशक।

लाल आलू—गुरुपाक, पौष्टिक, हृदयस्थ कफ-नाशक।

श्वेतालु—शीतल व त्रिदोषनाशक।

शकर कन्द—गुरुपाक, पौष्टिक, स्तन्यकारक।

कपित्थ (कैथ)—मलावरोध, वातपित्तनाशक, कफ, व्रण, श्वास-कास में हितकारी। हृद्रोग और विषदोषनाशक।

बेल (कच्चा) अग्निवर्धक, मलावरोध, वायु व कफ का नाश करने वाला। ज्वरातिसार व आमातिसार, ग्रहणी आदि रोगों मे लाभदायक है।

बेल (पका हुआ)—गुरुपाक, त्रिदोषवर्धक।

ककड़ी—पित्तनाशक, तृष्णा व दाह निवारक।

फूट—वायुवर्धक, पौष्टिक।

खीरा–गुरुपाक, वातजनक, शुक्रकारक। कफ, कुष्ठ व कृमिरोग में लाभ दिखाता है।

तरबूजे–कफकारक, कुछ अंश मे वायुनाशक।

खरबूजे–लघुपाक, रोचक, दाह, पित्तनाशक, पौष्टिक, अग्निवर्धक।

पपीता–अग्निवर्धक, कफ-पित्तनाशक, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कामला, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, मेह, रक्तपित्त, स्वरभंग, नेत्ररोग, यकृत् आदि रोगों मे हितकारी।

जामुन (काले)–वायुवर्धक, कफ व पित्तनाशक।

जामुन (गुलाबी)–गुरुपाक, शीतल, रोचक।

अनन्नास–कृमिनाशक, रसवर्धक।

जामरूल (सफेद जामुन)–गुरुपाक, वात-कफ नाशक।

अनार (मीठे)–लघुपाक, त्रिदोषनाशक, रोचक, बल-बीर्य व मेधावर्धक, तृष्णा, दाह, अतिसार, ग्रहणी रोग में उपयोगी है।

बेर (मीठे व बड़े)–गुरुपाक, पौष्टिक, रेचक, दाह, तृष्णा, रक्तपित्त व क्षतक्षीण रोग में लाभ देने वाले हैं।

बेर (छोटी)—वात, पित्तनाशक।

कामरांगा–रोचक, वायु व कफनाशक।

चालता–गुरुपाक, मलावरोध, त्रिदोषनाशक।

तिन्तिड़ीक (इमली) कच्ची–रक्तपित्त व आम दोष को बढ़ाने वाली, वायु व शूल रोग में फायदेमन्द है।

तिन्तिड़ीक (पकी हुई)-लघुपाक, अग्निवर्धक, रेचक, वायु व कफ को नाश करती है।

आमलकी–लघुपाक, त्रिदोषघ्न, दाह, वमन, शोथ, मेह, अम्लपित्त रोग मे लाभदायक। जरा-व्याधि विनाशक।

किशमिश, मुनक्का–गुरुपाक, मृदुविरेचक, पौष्टिक, शुक्रवर्धक, पित्त कफनाशक। ज्वर, तृष्णा, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, मेह, शोथ, मदात्यय, स्वरभंग व नेत्र रोग में हितकर हैं।

बादाम–गुरुपाक, शुक्र व कफवर्धक, रक्तपित्त में अनिष्टकर।

पेस्ता–उष्णवीर्य, पौष्टिक, बल व शुक्रवधक।

अंगूर–तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, श्वास रोग मे लाभदायक।

सतरे–पाचक, रोचक, अग्निवर्धक, अजीर्ण, ज्वर, वमन, तृष्णा, कास, गुल्म, कुष्ठ, विसूचिका, उदर रोग, नेत्र रोग मे लाभदायक।

नीबू (कागजी)–लघुपाक, पाचक, वमन निवारक, कफनाशक।

जम्बीरी–रोचक, अग्निवर्धक, बल, पित्त, वायुवर्धक, वमन निवारक।

बातावी नीबू–अग्निवर्धक, वायुनाशक, कोष्ठशोधक, स्वास, कास, हिक्का, वमन, शूल, हृद्रोग, गुल्म, प्लीहा, उदराध्मान, मलमूत्र की विबन्धता नाशक।

साग-सब्जियां—

लौकी–गुरुपाक, पौष्टिक, पित्त, श्लेष्मानाशक, शुक्र व बलवर्धक।

सेम–गुरुपाक, अग्नि व बल और शुक्र क्षय कारक।

सेम (सफेद)—कफ, पित्त व व्रणदोषनाशक।

बेगन—लघुपाक, पौष्टिक, अग्निबल, शोणित वर्धक, कफ, वायु, ज्वर, हिक्का, श्वास, कास, अरोचकता मे फलप्रद।

बारहमासी बेंगन–त्रिदोषनाशक, रक्तपित्त को शमनकारक।

श्वेत डिम्बाकृति बेगन—अर्श रोग पर फायदेमन्द।

कटहल के बीज–वायुवर्धक, चर्म दोषनाशक, मूत्रल, मलावरोध, शुक्रवर्धक।

सेम के बीज—कोष्ठाश्रित वायुवर्धक।

मटरे—गुरुपाक, दग्निवर्धक।

पालक–पौष्टिक अग्निवर्धक, शोणित शोधक

सोये पालक–वायुनाशक, रोचक, लघुपाक, पौष्टिक।

मेथी शाक—गुरुपाक, वातनाशक, मृदुविरेचक

बथुआ–लघुपाक, कृमि, उदरविकारनाशक, रक्त, बल, अग्निवर्धक।

मूली–लघुपाक, अग्निवधक, पाचक, रोचक,

पाण्डु, कामला आदि रोग में अत्यन्त लाभदायक।

साधारणतया पत्ती शाक का अधिक सेवन से शरीर में अपकर्षता आ जाती है। मलादि का अधिक निःसरण होता है इसलिये इनका कम से कम ग्रहण करना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित ही है।

दाल—

कच्ची मूंग की दाल—लघुपाक, सारक गुण विशिष्ट, किंचित् वायुवर्धक, मलावरोध, ज्वर व नेत्र रोग में फायदेमन्द।

भुनी हुई मूंग की दाल—उपरोक्त गुण विशिष्ट, मृदुरेचक।

चने की दाल—उदर स्तब्धकारक, वायुवर्धक, रक्तपित्त व कफ रोग में हितकारी।

कसे (खेसारी) की दाल—अत्यन्त वायुवर्धक, खंजता, पंगुता, शूल, भ्रम, दाह, अर्शरोग व हृद्-रोग उत्पादक, पित्तश्लेष्मा रोग में लाभदायक।

मसूर—वायुकारक, मलावरोध, शूल, गुल्म व व ग्रहणी रोगवर्धक, ज्वर, रक्तपित्त व मूत्रकृच्छ रोग में लाभदायक।

मटर की दाल—वायुवर्धक, कफपित्तनाशक, पौष्टिक।

अड़हर की दाल—गुरुपाक, मलावरोधक, किंचित् वायुवर्धक, कफ व पित्तनाशक, ज्वर, कास, वमन, मुखव्रण, गुल्म, हृद्रोग व अर्श में फायदेमन्द।

उड़द की दाल—गुरुपाक, मृदुरेचक, रोचक, बल, वीर्य, मेद, पुष्टि कफ व पित्तवर्धक, वायु, अर्श व शूल रोग में लाभदायक।

मछलियां—

रोहित् मत्स्य—गुरुपाक, अग्नि, बल-वीर्यवर्धक, सर्व प्रकार वात व्याधियों में लाभदायक।

इलिश (हिल्सा)—अग्नि, शुक्र, कफ व पित्त-वर्धक, वायुनाशक।

सिंगी—लघुपाक, कफजनक, बलवर्धक, मल नाशक।

मागूर—शुक्र, बल व रक्तवर्धक, मल संग्राहक, ज्वर, अतिसार, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत, पाण्डु, कामला, आदि में लाभदायक।

शफरी—शुक्रवर्धक, कफ, वायुनाशक, मुख-कण्ठरोग नाशक।

सोल (सौर)—गुरुपाक, मलावरोध, पित्त व रक्त शोधक।

शीलन—वात-पित्तनाशक, बल, कफवर्धक, आमवातजनक।

सूखी हुई मछलियां—गुरुपाक, वायुवर्धक।

लवणाक्त मछलियां—सारक गुण विशिष्ट, वायु-वर्धक।

मछलियों के अण्डे—कफ, मेद पुष्टि तथा अत्यन्त शुक्रवर्धक।

मछलियों का तेल—पित्त-कफवर्धक।

मांस—

बकरा (शिशु)—लघुपाक, बलकारक, प्रमेह-नाशक।

बकरा (खस्सी)—गुरुपाक, कफ-बल-मांसवर्धक वातपित्तनाशक।

भेड़ा—गुरुपाक, वायुनाशक, पित्त व कफवर्धक।

मृग—लघुपाक, त्रिदोषनाशक, आग्नेय, क्षय निवारक।

कछुवे का—शुक्र, बल, मेधावर्धक, वायुनाशक, नेत्ररोग में हितकर।

कछुवे के अण्डे—रतिशक्तिवर्धक।

कबूतर—पौष्टिक, बल-वीर्य वर्धक, वायु-पित्त, रक्तदोषनाशक।

मुरगी—गुरुपाक, पौष्टिक, बल व कफवर्धक।

बतख—गुरुपाक, पौष्टिक, बल-वीर्यवर्धक, कफ जनक, वायुनाशक, स्वरयन्त्र संस्कारक, तिमिर रोग पर अच्छा लाभ दिखाता है।

मुरगी के अण्डे—लघुपाक, सद्यः बलप्रदायक, अत्यन्त शुक्रवर्धक, शुक्रक्षय, कास, हृद्रोग आदि में फलप्रद।

पूरी-कचौड़ी—

गेहूं की फुलकियां—लघुपाक, बल-पुष्टिकारक, त्रिदोषनाशक।

गेहूं की मोटी रोटियां-गुरुपाक, पुष्टि-बल-वीर्य-कफवर्धक।

घी की कचौड़ियां-रक्तपित्त, नेत्ररोग में हितकारी।

पूरी (खस्ते)-वातपित्तनाशक, धातुओं का पोषक।

चिपिटक (चुड़ा), मुरमुरा आदि-

धान की खील-लघुपाक, अग्निवर्धक।

मुरमुरा-लघुपाक, पित्तवर्धक, कफनाशक।

चिपिटक-मलावरोधक, कफज, कामोद्दीपक।

मिठाई

ईख- गुरुपाक, शुक्र, कृमि, कफ, पुष्टि, कान्ति व बलबर्धक, वायु व पित्त नाशक।

गुड़- गुरुपाक, कफ, कृमि, बल वर्धक, वा पित्त नाशक।

चीनी- बल व शुक्र वर्धक, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, ज्वर कास, रक्त पित्त में हितकारी।

मिश्री- कफ निःसारक के अतिरिक्त उपरोक्त सभी गुणों में श्रेष्ठतम्।

दूध

गाय का- बल, बुद्धि, मेधा, आयुवर्धक, जरा-व्याधि विनाशक। वात-पित्त, रक्त दोष, विष दोष नाशक।

बकरी का- लघुपाक, मल-रोधक, त्रिदोष नाशक, पित्त-ज्वर, कास, क्षय, रक्त दोष निवारक।

भैंस का- गुरुपाक, बल-वीर्य, कफ, निद्रा कारक, रक्त पित्त, दाह पर लाभदायक।

मलाई-पौष्टिक, बल वीर्य, रक्त शक्ति वर्धक, वायु व रक्त पित्त नाशक।

दधि -

किंचिदम्ल दधि-गुरुपाक, अग्नि, बल वीर्य मेद, कफ, शोथ, रक्तपित्त वर्धक, मूत्र कृच्छ, विषम ज्वर, अतिसार, अरोचकता, तथा कृशतानाशक।

अम्ल दधि-रक्तपित्त व कफ वर्धक, गो दुग्ध से बनी हुई दधि की अपेक्षा महिषी दधि अधिक गुरु पाक, कफ वर्धक, निद्रा ग्लानि, और त्रिदोष को बढ़ाने वाली है।

तक्र (मट्ठा)

ताजा बना मट्ठा-वमन, विषम ज्वर, पाण्डु, मेह, ग्रहणी, अतिसार, अर्श, भगन्दर, प्रमेह, मूत्राघात, बहुमूत्र, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदरी, शोथ, चकता, पिपासा, कृमि, धवल कुष्ठ व कोष्ठाश्रित के लिए अतिहितकारी, क्षत रोग, ग्रीष्म कालीन दुर्बलता, मूर्च्छा, भय और रक्तपित्त पर इसका सेवन निषिद्ध है।

छैना, मक्खन, घी

छैना-गुरुपाक, वायुबर्धक, निद्राकारक।

गौ दुग्ध से बना मक्खन- रक्तपित्त व शुक्र वर्धक नेत्र रोग मे लाभदायक।

गौ दधि से बना मक्खन-पौष्टिक, बल, अग्नि वर्धक, वायु, पित्त, कफ, अर्श और कासनाशक।

बकरी दूध से बना मक्खन--लघुपाक, अग्नि, बलवर्धक, नेत्र रोग, कफरोग, क्षय, कास, त्रिदोषनाशक।

भैंसा मक्खन--वायु, कफ, मेद, शुक्रवर्धक, दाह, पिपासा शमन करने वाला।

गाय का घी--रोचकता, अग्नि, बुद्धि मेधवर्धक, वातघ्न, पित्तनाशक। रक्तपित्त, नेत्र रोग, पाण्डु, कामला, क्षय रोग, विषदोषनाशक। ज्वर, कोष्ठबद्ध, मन्दाग्नि, मदात्यय रोग मे अहितकर।

भैंसा घी--गुरुपाक, बल, कान्ति, शुक्रवर्धक, पौष्टिक, वात पित्त नाशक, स्तन रोगो में लाभदायक।

बकरी का घी-- अग्नि, बलवर्धक, श्वास-कास, यक्ष्मा कफ नाशक।

तेल

सरसों का—दाहक, पित्तवर्धक; कफ, कृमि, पाण्डु, कुष्ठ, अर्श, वायु, व्रण, मेदोरोग व कर्णरोग में हितकर।

तिल का तेल—बल, शुक्र, कफवर्धक। नेत्र व केशों के लिये हितकर। वायु, व्रण, कृमि, कण्डु नाशक।

एरण्ड तेल—विरेचक, वेदना निवारक, उदर रोग, अण्ड वृद्धि, गुल्म, विषमज्वर, शोथ, कृमि, कटिशूल, कुष्ठ रोग में हितकर।

लवण (नमक)

लवण (साधारण)—पाचक, सारक, शारीरिक शिथिलता सम्पादक, कफ पित्तवर्धक, वायुनाशक, शुक्र तथा नेत्र-ज्योति नाशक।

सैंधव लवण—त्रिदोषनाशक, नेत्र के लिये हितकर, खाने के कामों में यह सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

मुख शुद्धि सामग्री

पान—मलभेदक, मलवर्धक, श्लेष्मानाशक, वायुशामक, ज्वर, रक्तपित्त, मूर्च्छा व मत्ततारोग में अनिष्टकर है।

सुपारी—आग्नेय, कृमि, कफ, पित्त व शुक्र-नाशक।

कत्था—पाचक पित्त व कफनाशक, दन्त व मुख रोगनाशक, कुष्ठ, विसर्प, कास, रक्तस्राव, शोथ, पाण्डु, व्रण, अरोचकता, कृमि, मेह, मेदोदोष, ज्वर व श्वेत कुष्ठ में लाभदायक।

चूना—वातश्लेष्मानाशक, शूल, अम्लपित्त, कृमिव्रण वेदना नाशक।

हरीतकी—अग्नि वर्धक, मृदुविरेचक, पौष्टिक, आयुष्य, त्रिदोषघ्न, नेत्र, वात, कास, प्लीहा, यकृत, हिक्का, ग्रहणी, कामला, पाण्डु, हृद्रोग, प्रमेह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, जरा व्याधि में अति हितकारी। उपवास करने वाले, श्रम से थके हुए, कृश, पित्त-प्रधान प्रकृति वाले मनुष्यों तथा गर्भिणी के लिए इसका सेवन निषिद्ध है।

जीवतिक्ति या खाद्योज

आज के युग में स्वास्थ्य संरक्षण के लिए भोजन पदार्थों का जो महत्वपूर्ण अनुसन्धान चल रहा है, उसमें खाद्योज का स्थान सर्व प्रथम है। जब किसी रोगी को उसके अनुकूल पथ्य का विधान किया जाता है तो सबसे पहले यह देखना पड़ता है कि उसके पथ्यों में किस परिमाण में और कौन कौन विटामिनों यानी खाद्योजों की प्रचुरता मौजूद है। जिससे रोगी की स्वास्थ्योन्नति हो सके।

पिछले जमाने में खाद्य तत्व वेत्ताओं ने खाद्य पदार्थों के पांच मौलिक उपादानों का आविष्कार किया और उन्होंने इस सिद्धांत को स्वास्थ्य दृष्टि में पोषण करके चिकित्सकों के समक्ष एक अनमोल भेंट दी। खाद्य-पदार्थों में बताये गये पांचों उपादान इस प्रकार हैं—

(१) प्रोटीन अर्थात मांस जातीय तत्व।

(२) फैट अर्थात् चर्बी जातीय।

(३) कार्बोहाइड्रेट अर्थात् श्वेत सारीय—परिणाम में शर्करा।

(४) साल्ट अर्थात लवण तत्व।

(५) जल।

किन्तु वर्तमान युग में उक्त सिद्धांत से सन्तुष्ट न होने वाले वैज्ञानिकों ने देखा कि स्वास्थ्य पोषक तत्व जो भोजन पदार्थ का मूल उपादान माना जाता है शारीरिक पुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं, क्योंकि पूर्वोक्त पांचों उपादान से सम्पन्न कृत्रिम भोजन के कई दिनों तक परीक्षात्मक प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हुआ कि सामान्य स्वास्थ्य का अपकर्ष होता ही गया है। शरीर की पुष्टि की बात तो दूर की रही, रक्तात्पता व रक्त विकार आदि रोगोपसर्ग आ जुटते हैं। और स्वाभाविक अवस्था में पूर्वोक्त उपादान युक्त खाद्य ग्रहण कराने करने से कोई भी रोग नहीं होता है।

अत. इससे प्रतीत हो जाता है कि पूर्वोक्त पांचों उपादान के अतिरिक्त ऐसा जीवनीय तत्व

हमारे भोजन पदार्थों में अन्तर्निहित है जिसके बिना शरीर का पोषण नहीं हो पाता है। इसी जीवनीय तत्व का नामकरण हुआ 'विटामिन' यानी 'खाद्योज'। जिस भोजन पदार्थ में इसका अभाव अधिक होगा वह मानव शरीर के लिए हितकर नहीं है।

खाद्योज का सम्पन्न समावेश तो हरी शाक-सब्जिओं तथा फलादि में पाया जाता है। इसका यह सिद्धांत जो पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मस्तिस्क की उपज है ऐसा माना जा रहा है और इसके बारे मे तरह तरह की चर्चायें चल रही है परन्तु यह सही नहीं क्योंकि खाद्य सम्बन्धी गंभीर गवेषणा हमारे आयुर्वेदाचार्यो ने उस समय ही कर चुकी थी कि जिस समय आयुर्वेद की प्राण प्रतिष्ठा उनके द्वारा हुई थी। आयुर्वेद के महान ज्ञानी त्रिकालदर्शी ऋषि खाद्योज को "अचिन्त्य वीर्य" के नाम से बता गये है।

पश्चिम के प्रसिद्ध डाक्टर मुनरो साहब का कहना है कि 'विटामिन' तो संग्रहीत सूर्यालोक के सिवाय और कुछ नहीं।

खाद्योज साधारणतया दो श्रेणियों में रखे गये है। एक वर्ग के जो चर्बी मे घुलनशील है और दूसरे वर्ग के जल में। विटामिन ए बी सी डी ई आदि कई नामो के होते हैं। विटामिन 'ए' नेत्र सम्बन्धी, 'बी' पाचन-क्रिया व स्नायु सम्बन्धी, 'सी' शोणितापर्षण के, 'डी' अस्थि सम्बन्धी और 'पी' दूषित रक्त सम्बन्धी विकारो को विनाश करने वाले होते हैं। इनमें फिर विटामिन 'डी' के दो रूप और 'बी' के कई रूप होते है। विटामिन 'इ' मांस-पेशियो को बल देने और मजबूत करनें के लिये कार्यकारी है।

"संग्रहीत सूर्यालोक" यानी विटामिन के गुण, तत्व का वर्णन आयुर्वेद के अति पुरातन कृतियों के पृष्ठों मे देखने मिलता है। कई स्थानो मे अनिल वीर्य, सूर्य-रश्मे अथवा सप्ताश्व रोगनाशक शब्द का उल्लेख पाया जाता है। सम्भवत. विटामीन का यह मतलब हल करने के उद्देश्य से आयुर्वेदीय किसी २ कल्पना के लिए रौद्र पक्व यानी धूप लगाकर पकाने का आदेश दिया गया है। इस विटामिन को चाहे अचिन्त्य वीर्य या संगृहीत सूर्यालोक अथवा खाद्योज ऐसे और कोई भी नामकरण इसका हो पर इसमें क्या कोई सन्देह होसकता है कि आयुर्वेद के आचार्य इस विषय मे उदासीन किम्बा अनभिज्ञ थे ?

श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी 'पीयूषपाणि' आयु.
दौगवां (बुलन्दशहर)

औषधि विवेचन

आलू और स्वास्थ्य

श्री. डा० कुलरंजन मुखर्जी

आलू को सब्जी बाग का राजा कहा जाता है। इसका आदिवास स्थान दक्षिण अमरीका है। अमरीका के आविष्कार के पश्चात् जब कोलम्बस दूसरी बार समुद्र यात्रा से लौटा तब वे साथ में आलू लेकर आये। स्पेन वासियों ने उसे यूरोप मे प्रवर्तन करने की कोशिश की थी। किंतु प्राय: एक सौ वर्ष तक उन्होंने उसे ग्रहण करने पे अनिच्छा प्रकाश किया। सभी के मनों में ऐसी एक धारणा हुई थी कि वह एक विषैली सब्जी है। अन्त मे सन् १७३१ मे जब फ्रांस ने घोषणा की, कि दुर्भिक्ष के समय गेहूँ के बदले मे व्यवहार किया जाय ऐसा एक अच्छा खाद्य जो अविष्कार कर सकेगा उसे एक अच्छा पुरस्कार मिलेगा। तब सभी की नजर आलू के ऊपर आकृष्ट हुई थी।

वर्तमान समय में संसार के हर एक देश में कुल खाद्यो का यह एक विशेष अंग ग्रहण कर रहा है। यह देखा गया है कि सन् १९३४ से सन् १९३८ के बीच मे इंग्लैंड के हर एक आदमी ने औसत मे २१० पौंड आलू ग्रहण किया था। उसी समय में डेनमार्क में ग्रहीत हुआ था २४६ पौंड, जर्मनी में ३९८, फ्रांस मे ४००, और बेलजियम के हर एक आदमी ने लिया था ४४० पौंड।

आलू विभिन्न खाद्य मूल्य से समृद्ध है। विश्लेषण करके देखा गया है कि आलू के भीतर औसत से १.६ भाग प्रोटीन, ०.६ भाग धातव लवण, २२.९ भाग शर्करा, ०.०१ भाग कैलसियम, ०.०३ भाग फासफोरस, ०.०१ (मिलिग्राम) भाग लोह तथा ७५.७ भाग जल है। यह विभिन्न विटामिनो का भी आधार है। इसमें विटामिन ए, थियामिन, विटामिन सी रिबोफलाविन तथा नयासीन भी पाये जाते है।

विटामिन सी आलू का एक प्रधान उत्स है। पुराने जमाने में यूरोप मे लाखो आदमी स्कर्वी रोग से मृत्यु के शिकार होते थे। आलू की खेती शुरू होने के बाद यूरोप से स्कर्वी रोग लुप्त हो गया जब आलू के फसल नष्ट होते थे सिर्फ तब ही स्कार्वी का आविर्भाव होता था इसलिए सी. विटामिन को स्कर्वी निरोधक विटामिन कहा जाता है।

आलू का प्रोटीन यद्यपि अल्प है तो भी उसे एक उच्च श्रेणी का प्रोटीन जैसे गिना जाता है। तथा वयस्क लोगो का यथेष्ठ मात्रा में आलू खाने से ही प्रोटीन का काम चल जाता है। आलू के भीतर शर्करा खाद्यो का परिमाण भात रोटी के समान है। इसलिये यथेष्ट मात्रा मे आलू खाया जाय तो भात रोटी नही खाने से भी काम चल जाता है।

किसी किसी का ऐसा विचार है कि ज्यादा आलू खाने से मधुमेह रोग पैदा हो जायेगा। किन्तु यह एक गलत धारणा है। वास्तव मे इसका जो विपरीत वही सत्य है। एक विख्यात डाक्टर ने कहा है कि भात रोटी के बदले में आलू खाने से मधुमेह रोग नही हो सकता है। कारण भात या रोटी अम्लधर्मी खाद्य हैं एवं आलू क्षार धर्म विशिष्ट होता है।

आलू के भीतर जो धातव लवण रहते है वे रक्त का क्षारत्व जारी रखने में और देह से यूरिक एसिड बाहर करने में विशेष रूप से सहायता करते है इसके अलावा आलू अत्यन्त सुपाच्य है। आलू का सैकडा ९२ से ९९ भाग तक परिपाक पाता है।

आलू विभिन्न रूप से खाया जाता है। किन्तु

जब इसका छिलका नहीं फेंककर उबाल कर खाया जाय तभी वह सबसे अधिक उपकारी होता है। क्योंकि आलू के छिलके के ठीक नीचे ही आलू का अधिकांश प्रोटीन धातव लवण तथा पुष्टिकर चीजें मौजूद रहती है। यदि इसे फेंक दिया जाय तो आलू खाना ही बेकार होता है।

आलू का छिलका भी एक अच्छा खाद्य है। वह सीठी जातीय पदार्थ से समृद्ध है और यह ऐसा है कि पेट के भीतर जाकर कुपित नहीं होता। असल में वह एक कोष्ठ की सफाई करने वाली चीज है। बहुत वर्ष पहले एक जर्मन जहाज के नाविक एक नये तथा अपरिचित रोग से आक्रांत हुए थे। बहुत डाक्टरों ने उनको देखा और चिकित्सा की। किंतु उससे कोई फल नहीं निकला। इसके बाद खाद्यों के बारे में एक विशेषज्ञ ने खोज कर देखा कि जहाज के नाविकों का प्रधान खाद्य ही आलू था। वे आलू का छिलका उतार कर सिर्फ भीतर की चीजे खाते थे। अन्यान्य तरकारियों को भी ऐसा किया जाता था। तब वे आलू तथा अन्यान्य सब्जियों के छिलका रख कर भीतर के अंश फेंक देने को बोले एवं छिलकों को सिझा कर सूप के साथ खाने का उपदेश दिया। यह आश्चर्य की बात है कि जिन्होंने यह चिकित्सा ग्रहण की उनमें से सभी ने आरोग्य लाभ किया।

जब भी आलू खाना हो तभी पूरा आलू छिलके के साथ उबाल कर खाना चाहिए। सिझाने के जितने तरीके प्रचलित है उनमें से भाप से सिझाना ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ है। ऐसा सिझाने से इसके भीतर इतना सी विटामिन मौजूद रहता है कि सी विटामिन के लिये खट्टे फलों के बदले में खाया जा सकता है।

सिझ जाने के बाद ही आलू को बाहर कर और उसके ऊपर थोड़ा सा चाय देकर अंदरूनी भाप बाहर कर देना चाहिए। यदि सिझे हुए आलू को ऐसे ही रख दिया जाय तब वह मोम के समान चिपचिपा और कठिनता से पचने वाला होजाता है। सिझाने के बाद आलू जब वालू के समान होता है तभी वह सबसे अधिक पचने वाला होता है।

किन्तु तला हुआ तथा भुना हुआ आलू खाने से आलू खाने का कोई लाभ ही नहीं होता। बल्कि वह पेट के भीतर पेट तथा शरीर के विभिन्न रोग उत्पन्न कर सकता है।

सिझे हुए आलू के साथ यथेष्ठ परिमाण में तेल या मक्खन मिलाना उचित है। चर्बी जातीय खाद्य सिर्फ शर्करा की आग में ही दग्ध होता है। आलू के साथ चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण करने से वह आसानी से पच जाता है। आलू के भीतर चाहे तो आलू के वजन का सैकड़ा ४० से ५० भाग तेल आदि मिला सकते हैं।

आलू जब नया रहे और पूर्ण रूप से परिणत हो तभी वह सर्वोत्तम होता है। पुराने आलू से इसमें तीन गुना अधिक सी विटामिन रहता है। यदि आलू को एक वर्ष तक गोदाम में रखा जाय तब उसका ५० से ७० भाग सी विटामिन नष्ट हो जाता है। बहुत छोटे तथा अंकुरित आलू भी अत्यंत क्षतिकर होते हैं। इनके भीतर सलामिन नाम का एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है। सन १९१७ में अंकुरित आलू खाने से ग्लासगो शहर में एक महामारी का अविर्भाव हुआ था एवं बहुत आदमियों ने उससे प्राण त्याग किया था। इसलिये छोटा तथा अंकुरित आलू हमेशा बर्जित है।

—श्री डा० कुलरंजन मुखर्जी प्राकृतिक चिकित्सालय
११४/२ बी, हजारा रोड, कलकत्ता–२६

पुनर्नवा

श्री. डा० नन्दलाल शर्मा

नाम-

संस्कृत—पुनर्नवा, श्वेतमूला, भौमा। हिन्दी—साठी। अंग्रेजी—Spreading Hogweed. लेटिन-Boerhavia Diffusa उर्दू-वर्शाखरा। बगला-श्वेतपुष्पा, गीधपूर्णा। बम्बई-घेट्टली, खापरा, पुनर्नवा।

वर्णन-

यह बनस्पति सारे हिन्दुस्तान, बिलोचिस्तान, सीलोन, एशिया, अफ्रीका और अमरीका में होती है। यह जमीन पर फैलने वाली झाड़ीनुमा वनस्पति होती है। इसके पत्ते चौलाई के पत्तों के समान होते हैं। यह २.५ से ३.८ सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। फूलों के भेद से यह बनस्पति सफेद, लाल और नीली तीन जाति की होती है। सफेद फूलों वाली जाति को विषखपरा कहते हैं। इसके पत्ते गोल और लाल किनारीदार होते हैं और फूल सफेद होते है। लाल फूल वाली जाति को साठी कहते हैं। इसके फूल लाल होते हैं। नील पुनर्नवा के फूल नीले होते है।

पहचान-

लाल और सफेद पुनर्नवा की पहचान यह है कि सफेद पुनर्नवा के पत्ते चिकने, दलदार और रस भरे होते है तथा लाल पुनर्नवा के पत्ते सफेद पुनर्नवा के पत्तों से छोटे और पतले होते हैं। सफेद जाति की शाखाये रस से भरी हुई और टूटने वाली होती है। लाल जाति की शाखाये मजबूत होती हैं। सफेद जाति की सिर्फ बरसात के मौसम मे हरी मिलती है जबकि लाल जाति बारह महीने हरी मिलती है।

गुण, दोष और प्रभाव-

राज निघण्टु के मतानुसार श्वेत पुनर्नवा उष्ण-वीर्य, दस्तावर, धातु परिवर्तक तथा कफ, वात, बवासीर, सूजन और उदर रोग को दूर करने वाली होती है। निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार श्वेत पुनर्नवा कड़वी, गर्म, चरपरी, कसैली, रुचिकारक, अग्निदीपक, रूखी, मधुर, खारी, दस्तावर, हृदय को हितकारी तथा सूजन, कफ, बवासीर, खांसी, घाव, पाण्डुरोग, विष, उदरशूल हृदयरोग और उर:क्षत रोग को दूर करती है।

नेत्ररोग में विशेष लाभकारी-

सफेद पुनर्नवा की जड़ को पीसकर घी में मिलाकर आजने से आख की फुली कट जाती है।

इसकी जड़ को शहद में मिलाकर आंजने से आख की ललाई दूर होती है। इसकी जड़ को भांगरे के रस के साथ आखों में लगाने से आखों की खुजली दूर होती है। उसकी जड़ को केवल बाष्प जल के साथ आंखों में लगाने से तिमिर रोग दूर होता है। तिमिर रोग (आखों के सामने काले काले चक्कर से दिखाई देना, धुंधला नजर आना, सूर्य ग्रहण देखने से जो विकार पैदा होते हैं) में गाय के गोबर के रस मे इसकी जड़ और पीपल को उबालकर आंख में आंजने से रतौंधी (Night Blindness) दूर होती है।

सूर्य ग्रहण से होने वाले नेत्र रोग—

१५ फरवरी १९६१ को होने वाले सूर्य ग्रहण से बहुत से मनुष्यों की नेत्र ज्योति बहुत मन्द हो गई और वह हमारे पास हास्पीटल में आये। डाक्टरी मतानुसार सूर्यग्रहण देखने से Solar, Retinites हो जाता है। मैंने इसकी जड़ को मगवाकर पानी मे घिसकर दो टाइम आखो में लगवाया। जिससे बहुत रोगियो को लाभ हुआ। यदि ग्रहण से होने वाले नेत्र विकार शीघ्र ही ठीक

न किये जांए तो यह कमी हमेशा के लिये रह जाती है और रोग असाध्य समझा जाता है। अगर किसी भी रोगी को यह बीमारी हो तो वह इसका अवश्य प्रयोग करें।

पुनर्नवा में दीपन, विरेचन, मूत्र विरेचक, स्वेदजनक, कफघ्न, वामक और शोथनाशक धर्म पाये जाते हैं। इसका मूत्रल धर्म उत्तम और प्रथम श्रेणी का होता है और दुगुना पेशाब आने लगता है। इससे रक्त का दबाब (Blood Pressure) बढता है और Digitalis का काम करता है।

रासायनिक विश्लेषण—

घोषाल ने १६१० में इसका रासायनिक विश्लेषण किया और तीन तत्व पाये। (१) उपक्षारीय सल्फेट पाया गया। (२) इसमें चर्बी से मिलता जुलता एक सुगन्धित पदार्थ पाया गया। (३) इसमे सल्फेट तथा क्लोराइड, और राख मे नाइट्रेट एवं क्लोरेट पाया गया। इसमें उपक्षारीय तत्व बहुत कम मात्रा में पाया गया। यह स्वाद मे कीनाइन से मिलता जुलता था। इसके रासायनिक सगठन का विस्तृत विश्लेषण कर्नल चौपड़ा ने अपने सहायक के साथ किया। इसके हरे पौधे में पानी की तादाद अधिक होने से हवा में सुखाये हुए पौधे को परीक्षण के लिए उपयोग में लिया गया। इसका परिणाम इस प्रकार है। इस बनस्पति मे पोटाशियम नाइट्रेट (Pottassium Nitrate) काफी तादाद में पाया जाता है। इसकी मात्रा ४१% थी। इसमें उपक्षार ०.०१ और स्वाद में कड़वा होता है। इसमें हाइड्रोक्लोराइड 'Hydro chloride' भी पाया जाता है इसका नाम पुनर्नवाइन रखा गया।

(१) इसमे मूत्रल गुण है और हृदय के द्वारा गुर्दों पर भी अपना असर पहुचाता है।

(२) श्वास क्रिया प्रणाली पर इसका कोई विशेष असर नहीं होता।

(३) यकृत् के ऊपर इसका प्रभाव बहुत साधारण होता है। वह भी दूसरे पदार्थों के साथ दिया जाने पर।

(४) शरीर के दूसरे अवयवों पर इसका कोई असर नहीं होता।

कर्नल चौपड़ा ने इसकी सर्वाङ्गीण शोथ और हृदय की बीमारी से हुए जलोदर मे इसका रस दिया जो बहुत लाभदायक पाया गया। इसके रस को १-४ ड्राम की मात्रा मे देने से जलोदर और सूजन की बीमारी मे मूत्र की अधिकता हो जाती है। इसको अदरख के रस के साथ मिलाकर गर्भाशय की पीड़ा को दूर करने के काम में लेते है। डा० ई० एक बोरिङ्ग फार्माकोपिया आफ इण्डिया नामक पुस्तक मे लिखते हैं—

It has been found a good expecctorant and been prescibed in Asthama with marked success It is given in form of powder, decoction infuion. If taken in large dcse acts as an emetic.

सफेद पुनर्नवा की जड़ की छाल का चूर्ण करके गाय के दूध के साथ छ महीने तक लेने से मनुष्य दीर्घ आयु हो सकता है और उसका बुढ़ापा दूर हो जाता है। —श्री डा० नन्दलाल शर्मा

जैपुरिया नेत्र चिकित्सालय, नवलगढ़ (राजस्थान)
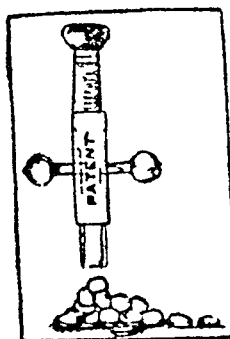
पीपल वृक्ष के सफल प्रयोग

श्री. ठाकुर रामसिंह वैद्य

(१) विषम ज्वर (इकतारा, तिजारी, चातुर्थिक) ज्वर आने के एक घण्टा पहले से ही पीपल वृक्ष की तर्जनी उंगली जैसी मोटी हरे तने की दातुन करना शुरू कर देवें। इसका कुछ रस चूसने से उसी दिन से ज्वर आना बन्द हो जाता है।

(२) फोड़ा पर—पीपल की छाल घिसकर लगावे या दूध को कपड़े मे या रुई में भिगोकर व्रण पर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

(३) बालतोड़ मे—इसका दूध लगाने से लाभ होता है।

(४) पेट दर्द में—२॥ पत्ता पीपल पत्र गुड़ के साथ खाने से पेट दर्द दूर होगा।

(५) प्रमेह—पीपल के फल खाने से प्रमेह नष्ट होता है।

(६) मुंह पाक—दूध को लगावे या पीपल छाल लाकर क्वाथ बनावे और उस क्वाथ से कुल्ला करने से मुंहपाक ठीक होता है।

(७) दग्ध—जली हुए जगह में पीपल वृक्ष की छाल की राख (भस्म) अलसी तेल के साथ लगाने से शीघ्र फायदा होता है। केवल छाल की राख भी फायदा करती है।

(८) हैजा—हैजा की प्यास या किसी तरह से भी उत्पन्न हुई प्यास और सब तरह के वमन के लिये पीपल के वृक्ष के सूखे छिलके को जलाओ। जब अंगार हो जाय तब पानी मे डालो, थोड़ी देर बाद बगैर हिलाये इस पानी को दूसरे बर्तन में छानकर रखलो। राख न जाने पावे और रोगी जब पानी मागे तो इसी पानी को दो। बहुत फायदा करता है। सन्निपात ज्वर में भी यह पानी पिलाने से प्यास और दाह शान्त होती है।

सर्पविष पर पीपल का अचूक प्रयोग—

चाहे जैसे भी भयङ्कर फन वाले सर्प ने काटा हो तथा बेहोश हो जाने के बाद भी यह प्रयोग काम करेगा बशर्ते खून की चाल बन्द न हुई हो। जब सर्प किसी को काटले तो शीघ्र ही पीपल की एक ऐसी डाली (तने) तोड़कर मगावें जिसमें २०-२५ हरे चमकदार पत्ते लगे हो। उसमे से दो पत्ते मय डंठल के (नकुनों सहित) तोड़िये। टूटा हुआ हिस्सा जहां से दूध निकलता हो वह पत्ते का डण्ठल बड़ी सावधानी से कान मे डालिये। डण्ठल कान में जावेगा; वह व्यक्ति जिसे सर्प ने काटा है खूब चिल्लाने लगेगा, जैसे कि उसे कोई मार डाल रहा हो। वह उठ कर भागने, पत्ता पकड़ने, या सिर हिला कर पत्ता बाहर निकालने को सैकड़ों प्रयत्न करेगा। इसलिए पहले से ही जिसे सर्प ने काटा हो उस व्यक्ति को खूब मजबूती से पकड़वाना चाहिए, जिससे वह बिलकुल हिल डुल न सके। उसकी चिल्लाहट से घबरा कर पत्ता छोड नहीं देना चाहिए अन्यथा पत्ता आप खिचकर कान मे चला जावेगा और पर्दा फाड देगा। जहां से रोगी चिल्लाने लगे बस वहीं से पत्ता न आगे जाने दे न पीछे आने दें। पत्ता जब सब विष खींच लेगा तो वह खुद चिल्लाना बन्द कर देगा यदि चिल्लाना बन्द नहीं करे तो पत्ते ४-५ मिनट बाद बदल दीजिए। दूसरा पत्ता उसी प्रकार ही डालिये तथा जब तक चिल्लाना बन्द नहीं करे तब तक पत्ते बदलते जाइए। चाहे जैसे जहरीले सर्प का विष हो १० या १५ मिनट मे बिलकुल ठीक हो जावेगा।

कान से निकाले पत्तो को या तो जला दो या जमीन खोदकर गाढ़ दो, क्योकि यदि कोई जानवर उस पत्ते को खा लेगा तो वह मर जाएगा।

जब तक जहर कमर और सीने के ऊपर नहीं पहुँचेगा तब तक पत्ता काम नहीं करेगा। बंध बंधा होने पर यदि जहर रुका होता है तो पत्ता काम

—शेषांश पृष्ठ ४२ पर।

अमृत फल नीबू

वैद्य—रामनिरंजन हारीत

यूं तो प्राय: सभी फल मनुष्य के लिए किसी न किसी प्रकार से उपयोगी हैं लेकिन नीबू से बढ़-कर शायद ही कोई है। इसीलिये तो इसे अमृतफल, फल शिरोमणी व प्राणदाता आदि संज्ञायें दी जाती हैं। नीबू प्राय: साल भर व देश के हरेक भाग मे उपलब्ध होते है। यूं इसकी दो फसले होती हैं। एक बसंत की व एक वर्षा की इन दिनों यह बाजार में प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। नीबू अनेक किस्म के होते हैं जिनमे कागजी नीबू जो पतले पीले त्वक् का व रसदार होता है, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

तत्व व गुण —

नीबू में लगभग पोटेशियम ४५ प्रतिशत, चूना ३० प्रतिशत, तेजाब १३।। प्रतिशत, सत्व ३ प्रतिशत, मेगनेशियम ५ प्रतिशत, लोहा ०.११ प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट ८ प्रतिशत, चर्बी ० १ प्रतिशत, क्लोरीन ०.५८ प्रतिशत, सल्फर ३ प्रतिशत, प्रोटीन १ प्रतिशत। इसके साथ फासफोरस, विटामिन बी व सी भी नीबू मे प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसीलिए नीबू खट्टा, दीपक, पाचक, कीटाणुनाशक, तीक्ष्ण, वातनाशक, वात-पित्त-कफ तीनो दोषों को शमन करने वाला एवम् सभी उदर विकारो का नाश कर रुचि को बढाने वाला है।

प्रयोग —

(१) नीबू में पोटेशियम की बाहुल्यता होने से यह स्नायु मंडल को बलवान बनाने वाला, रक्त वृद्धि करने वाला एवम् मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाने वाला है।

(२) गर्मियो में प्रात काल अगर नीबू की शिकंजबीन का प्रयोग किया जाये तो तृष्णा बिलकुल नहीं लगेगी।

(३) मोटापा दूर करने के लिए दोनो समय एक तोला नीबू रस मे तीन तोला शहद मिलाकर शिकंजबीन का एक माह प्रयोग करे। यह आपके शरीर को अवश्य ही मेदरहित व स्फूर्तिवान देता है।

(४) अगर आपके गले में शोथ है, टोंसिल फूल गए हैं व स्वर बिगड़ गया है तो गरम पानी में नीबू स्वरस डालकर गरारे करें, अविलम्ब फायदा महसूस होगा व स्वर साफ हो जाएगा।

(५) कब्ज होने पर नियमित रूप से दोनो समय गुनगुने जल में एक नीबू निचोड़ कर पीवें। हमेशा के लिए कब्ज से छुटकारा मिल जावेगा।

(६) अरुचि व मन्दाग्नि होने पर खाली पेट बीज रहित नीबू की फांकों पर सेंधव लवण व काली मिर्च का चूर्ण बुरकाकर कुछ गर्म कर रस चूसें। रुचि बढ़ेगी व मुंह का स्वाद खुल जावेगा।

(७) नीबू रस में सेंधव का कुछ काल प्रयोग करने से पेट की पथरी गल जाती है एवम् काले नमक के साथ इसी प्रकार प्रयोग करने से यकृत् सम्बन्धी सभी विकार दूर हो जाते है।

(८) नीबू की जड को अनार की जड व केशर के साथ घोटकर देने से अतिसार शीघ्र दूर होता है।

(९) अनेक गर्म पदार्थों व औषधियो के सेवन से प्राय: सिर चकराने लगता है। ऐसे समय भी नीबू का प्रयोग बहुत लाभप्रद होता है।

(१०) नीबू सक्रमण-निरोधक व कीटाणुनाशक भी है, अत. इसका प्रयोग करते रहने स छूत की बीमारियों के आक्रमण का भय नहीं रहता। पेचिश, हैजा, संग्रहणी व मोतीझला आदि मे इसे बराबर देते रहना चाहिए क्योंकि यह उनके कीटाणुओं को नष्ट करने वाला है।

(११) मलेरिया में भी इसका प्रयोग काफी लाभ पहुचाता है।

(१२) बिषैले कीड़ो के दंश करने के स्थान पर

से विष का प्रभाव नष्ट

व दांतों पर नीवू रस
रिया, कीड़े लगना,
पर शोथ आदि रोग नष्ट

(१४) अगर दूध का पाचन नहीं होता हो तो दूध पीने के आधा घण्टा उपरान्त नीवू पर थोडा नौसादर पुष्प लगाकर चूसिए। पाचन शक्ति प्रदीप्त होगी व रक्त का निर्माण होगा।

(५) यदि बच्चा दूध पीते ही डाल देता हो तो नीवू रस व शहद मिलाकर चटाना लाभप्रद रहेगा।

(१६) अगर चाय में दूध के स्थान पर नीवू रस का प्रयोग किया जायगा तो चाय स्वादिष्ट होने के साथ साथ अधिक गुणकारी भी होगी।

(१७) कलौजी चूर्ण, दूध व नीवू रस के मिश्रण को रात्रि में मुंह पर लेप कर सुबह उतार देने से (मलकर) मुंहासे व झाईयां दूर होती हैं एवम् त्वचा कोमल सुन्दर हो जाती है।

(१८) गुनगुने पानी से नीवू निचोड़कर स्नान करने से रोमकूप स्वच्छ हो जाते हैं तथा त्वचा कांतिवान हो जाती है एवम् खाज खुजली नहीं होती।

(१६) सिर में व बालों पर नीवू रस युक्त जल का मर्दन करने से भूसा दूर हो जाता है एवम् जूं नहीं होतीं।

(२०) नीवू रस को गुनगुना कर जरा सा सोडा बाई कार्ब मिलाकर कान में डालने से कान बहना बन्द हो जाता है।

(२१) मोटर के धुंये आदि से जी घबराता हो तो नीवू के पत्तो को तोड़कर सूंघने से ठीक हो जाता है।

(२२) नीवू के अनेक प्रकार के सुस्वाद आचार, मुरब्बे व शर्बत आदि व्यञ्जन बनाये जाते हैं। इसके अलावा नीवू रस की भावना से अनेक आयुर्वेदिक रस रसायन सिद्ध किये जाते हैं। प्रत्येक हालत में नीवू का खाली पेट प्रयोग अधिक लाभदायक होता है। नीवू का अपना एक विशेष स्वाद व रस है। यह मनुष्य के निकटतम साथियों में से है। अतः अगर ऐसे फल को अमृत फल कहा जाये तो क्या अतिशयोक्ति है?

—श्री वैद्य रामनिरंजन हारीत
रामगढ़ (जयपुर)

॥ पृष्ठ ४० का शेषांश ॥

नहीं करेगा। चाहे जितना ही बंध हो धीरे धीरे जहर बंध को पार करके कुछ देर में जहर ऊपर आयेगा। जब पत्ता लगाने पर रोगी चिल्लाने लग जावे तब उसी समय बंध खोल देना चाहिये। अन्यथा पत्ता बंध के ऊपर का ही जहर खींच सकेगा। बंध के नीचे का जहर ज्यों का त्यों रह जावेगा। जहर कमर और सीने के ऊपर चढ़ा है या नहीं इसकी परीक्षा के लिये नीम की पत्ती रोगी को चबाने के लिये दीजिए। नीम की पत्ती कडवी लगे और थूक दे तो समझिए जहर नहीं है। यदि चबाता जाय तो जहर है। रोगी को नीम की पत्ती चबाने से जहर मरता है और जहर मरते ही पत्ती कड़वी लगने लगती है। फिर रोगी उसे चबाता नहीं। यदि सर्प काटे स्थान को चीर दिया गया हो तो फिर उस जगह में पोटाश परमेंगनेट भर देनी चाहिए। चिरा हुआ स्थान घाव नहीं होगा ५-१० दिन में आप ही ठीक हो जावेगा।

रोगी के ठीक हो जाने पर भी कुछ दिनों तक १-१॥ छटांक तक शुद्ध गाय के घृत में १०-१२ काली मिर्च पीसकर पिला देना चाहिए और कम से कम सर्प काटने के बाद ६ घण्टा सोने नहीं देना चाहिए क्योंकि सर्प काटे रोगी के सोने से जहर बढ़ता है।

—श्री ठा० रामसिंह वैद्य
जेवरा, पो० रांका (दुर्ग)

उदरामृत वटी—

सफेद जीरा, जवाखार, कालीमिर्च, नौसादर काला नमक, सेंधानमक, सामर नमक प्रत्येक ३-३ माशे। आम के फूल २ तोले ले। सबको महीन, पीसकर चने के बराबर गोली बनाले और सुखा लें। जिस समय उदरशूल अधिक हो रहा हो २ गोली गर्म जल के साथ दे तो शीघ्र ही दर्द बन्द हो जाता है और विशूचिका में २-२ गोली गुलाब जल के साथ आध आध घण्टे मे देनी चाहिए। इस दवा से आमाशय के विकार भी दूर हो जाते हैं।

विषम ज्वरांतक चूर्ण -

त्रिफला ६ माशा, त्रिकुटा ६ माशा, तीनों नमक ६ माशा, अजवाइन ६ माशा, नीम का कोयला १।। तोला। इन सबको महीन पीसकर चूर्ण बनाले। मात्रा तीन माशे ताजे पानी के साथ प्रातःकाल देना चाहिए।

गुण—एकतारा, दुतारा, चौथिया, द्वन्द्वज ज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर और अन्येद्युष्क धातुगत ज्वर दूर होते है।

घूमनी (चक्कर आने) को औषधि—

पीपल, सौंठ, सौंफ, बड़ी हर्र का बक्कल १-१ तोला। इन सबको एक में पीस लो, बाद में पुराना गुड़ ६ तोला मिला कर १-१ तोले की गोलियां बना लो। ताजे पानी के साथ दिन में तीन बार खाने से सर का दर्द या घूमना या सिर चक्कर खाना तथा घूमने के कारण वमन होना, इन सब बीमारियो को शीघ्र ही दूर करता है।

बाल सुधा काजल—

बड़ी हर्र जला लो और उसका कोयला १ तोले और द्वितीय जली हल्दी १ तोला, कपूर ३ माशे, सफेदा (जिंक आक्साइड) ६ माशा।

बनाने की विधि—प्रथम ही हर्र का कोयला और हल्दी का कोयला तथा कपूर इन तीनो को महीन कपड़े से छान लो फिर उसमें सफेदा मिला दो। फिर स्वच्छ तिल का तेल इतना छोड़ो कि वह गीला हो जाय और कांसे के पात्र मे खूब रगड़ो। फिर उसको डिबियों मे रखलो। इसको प्रातः सायंकाल नेत्रों में लगाया जावे। बच्चो के अनेक रोग दूर होते है।

—श्री पं. देवीचरण वैद्य
लगलेसरा, रसूलाबाद (उन्नाव)

अस्थिमार्दवता (Rickets) पर स्वानुभूत—

(१) *मृगशृङ्ग भस्म, प्रवाल भस्म, शौक्तिक भस्म,* शङ्ख भस्म, कपर्दिक भस्म, गोदन्ती हरताल भस्म, जहरमोहरा खताई, वंशलोचन, शुद्ध सुहागा, शुद्ध फिटकरी, हल्दी, सब ३-३ माशा लेकर इसमे निम्न दवाओं को खरल करें। आधाझाडा चूर्ण ६ माशे, तुलसी की पत्ती का कल्क १ तोले, पान पीपली १ तोला। सब द्रव्य खरल मे डालकर चूने के पानी की १ भावना दे। १-१ मासे की गोली बना ले। दवा तैयार है।

शाम सवेरे ४ से ६ गुना अरविन्दासव अथवा मधु के साथ दे। बृहन्मरिचादि तैल और शङ्ख पुष्पी तैल सम प्रमाण मिलाकर सर्वाङ्ग पर मालिश करे।

(२) अच्छी केशर १ तोला, लाल गाय का मूत्र १ सेर मिलाकर रखो। एक चाय का चम्मच सवेरे, दोपहर-शाम मे गाय के दूध के साथ दे।

ऊपर लिखित सब प्रयोग एक साथ प्रयोग करने से भयानक अस्थिमार्दवता ठीक होती है।

नैचरल मल्टी विटामिन ड्रोप्स—

मधु २ भाग, तिल का तेल १ भाग, गाय का घी १ भाग। एक शीशी में डालकर खूब हिलाकर रखे, दवा तैयार है।

मात्रा—१ से ४ चाय के चम्मच आवश्यकता नुसार।

नन्हे बच्चों को अच्छा टानिक है।

वृश्चिक दंश पर अनुभूत—

इमेटिन हाइड्रोक्लोर का इन्जेक्शन जिस जगह बिच्छू ने काटा हो वहीं अथवा शरीर पर आवश्यक जगह देना चाहिए। रोता हुआ रोगी हंसते चला जायगा।

—श्री डा. ए० एम० अडसोद
नन्दगांव खण्डेश्वर (अमरावती)

मूत्रावरोध पर—

बेल पत्थर, जिसे हजरत जहूर कहते हैं, सिल पर पानी से पीस कर पेडू पर लेप करा दीजिए। अथवा टेसू के फूल, चूहे की मींगनी, सोरा कलमी प्रत्यक १-१ तोला। पानी से पीसकर थोड़ा गुन-गुना कर पेडू पर लेप करा देवे।

कबाबचीनी, कलमी सोरा, बेल पत्थर, खरा-रैन (खारा ककड़ी के बीज), जवाखार ३-३ माशा पीसकर चूर्ण बना लेवे। ३ माशा चूर्ण गौ के दूध की लस्सी के साथ सेवन करने से पेशाब खुलकर आता है।

मलावरोध पर—

बनफसा, बिहीदाना, सनाय, गुलाब के फूल, बड़ी हर्र का बक्कल १॥–२॥ तोले, जमालगोटा शुद्ध ६ माशा, सबको बारीक पीसकर गुलाब जल से खरल कर ४–४ रत्ती की गोलिया बनावे। १ से २ गोली रात को सोते समय गर्म दूध से देने से बिना किसी कष्ट दस्त साफ हो जाता है।

शिवाक्षार (उदर शूल पर)—

हिंग्वाष्टक चूर्ण ५ तोला, छोटी हर्र भुनी हुई १५ तोला, सोडा बाई कार्ब ५ तोला, नौसादर २॥ तोला, टाटरी १ तोला, मूली क्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला, सबको मिलाकर चूर्ण बना लेवें। ध्यान रहे छोटी हर्र को भून करके कूट लेवें। और उसका महीन चूर्ण बना लेवें। तीन माशा शिवाक्षार चूर्ण उष्ण जल के साथ लेने से हर प्रकार का उदरशूल दूर हो जाता है।

वमन—

साधारण वमन में बेर की गुठली की गिरी को निकाल कर शहद में २-३ बार चटाने से वमन शान्त हो जाती है अथवा [illegible], दरियाई नारियल, पुदीना सूखा, जीरा सफेद भुना, कमलगट्टा की गिरी, दाना इलायची छोटी, मयूर पुच्छ की भस्म ३-३ माशा, गुलाब के फूल का जीरा १॥ माशा, पपीता ३ माशा, सबको बारीक पीसकर नीबू के शर्बत अथवा अनार के शर्बत में घोटकर और इसी में लाल मुनक्का १० दाना गुठली निकाल कर सिल कर पीसकर एक कासे की कटोरी में रख लेवे। १–२ अंगुली यानी १॥ या २ माशा १–१ घण्टे में चटावें। इस प्रयोग से हर प्रकार के वमन और हिचकी शान्त होती है।

—हकीम श्री गुरुचरण लाल वैद्य
श्री कुशवाहा औषधालय
शफीपुर (उन्नाव)

थनैल (स्तनपाक)—

सुपाड़ी समूची कोयले के अंगारों पर रखकर जला ले। जब वह लाल हो जाय तो उसे शुद्ध देशी घृत मे छोड़ते जाय जिसमें वह डूब जाय। लगभग १० तोले सुपाड़ी मे १० तोले घृत चाहिये। जब वह शीतल हो जाय तो सिल पर या खरल में सुरमा जैसी पीस या घोटकर उसमे १॥ माशे काली मिर्च मैदा सी मिलाकर रखले।

प्रयोग—स्तन को शुद्ध कर अर्थात् नीम के उष्ण जल से धो-पोंछ कर इस मलहम को १–२ बार लगावे। प्रथम बार ही नीम के पानी से धोने की आवश्यकता है। मलहम लगाने के पश्चात् धोने

की आवश्यकता नहीं है। उसी पर बराबर लगाते जांय।

गुण—पके हुए स्तनपाक के लिए अत्युत्तम है। इसी मलहम से हमने बालक बालिकाओं के सिर की विषैली फुड़ियाओं को अच्छा किया है तथा अन्य फोड़े-फुन्सियों में भी लाभप्रद है।

—वैद्य श्री पुरुषोत्तमदास मेहरोत्रा
उत्तरटोला, पो. मऊनाथ भंजन (आजमगढ़)

कुछ सफल प्रयोग—

(१) नीम के पुष्पों को छाया में सुखाकर उनमें बराबर कलमी शोरा पीस कपड़छन कर नेत्र आंजने से धुंधली तथा रतौंधी मिटती है।

(२) १ रत्ती फिटकरी को फुलाकर २॥ तोला गुलाब जल में डाले, २-३ बूंद नेत्र में डालने से ललाई तथा ढीड़ (मैल) बन्द होती है।

(३) अरहर (तूर) की जड को पानी में घिसकर आंजने से आंख का जाला कट जाता है।

(४) इमली के पुष्पों की पुल्टिश बांधने से आंख की सूजन मिटती है।

(४) प्याज के रस को नेत्र में डालने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

(५) कपूर के चूर्ण को बड़ के दूध में घोटकर अंजन बनावे। आंख में आंजने से दो महीने का फूला कट जाता है।

(६) अलसी को प्याज के रस में पका के कान में डालने से कर्ण पीड़ा शान्त होती है।

(७) फिटकरी का बीसवां भाग हल्दी लो, बारीक पीस कान में बुरकाने से कान का बहना बन्द होता है।

(८) मूली के टुकड़ों को नमक लगाकर दंश पर लगाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है।

—श्री रामदयाल गोयल उपवैद्य
राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय,
कमालपुर (सवाई माधोपुर)

गठिया [वातरोग] की परीक्षित दवा—

रेवन्दचीनी, मुसब्बर दोनों का सम्भाग चूर्ण बनाकर सहिजन के रस में गोली बनाकर १-१ गोली सुबह-शाम ताजा जल के साथ खिलाई जाय। बच्चों के लिए अवस्थानुसार मात्रा देनी चाहिए।

—श्री रामचन्द्र राय श्रीवास्तव
देवशर, गोरखपुर

पेट दर्द पर—

आक के फूलों में एक छोटी चरकेखड़ी सी होती है। वह निकालकर उसमें उतनी ही काली मिर्च और बराबर का नमक डालकर ५-५ दानों के बराबर गोलियां बनाकर रखे और गर्म जल के साथ १ गोली २ घण्टे के बाद दे, १-२ गोली से अवश्य और शीघ्र आराम मिलता है।

मसूड़े फूलने पर—

तवा जिस पर रोटियां पकाई जाती है उसके निचले भाग पर जो आग की लपट से स्याही लग जाती है उसमें बादाम की गिरी खूब घिसकर मसूड़ों पर दो तीन बार लगाने से शीघ्रातिशीघ्र आराम मिलता है।

कान के दर्द पर—

कान में चाहे कितना भी क्यों न दर्द होता हो उसमें दारू (शराब देशी) की तीन बूंदें डालने से उसी समय पीड़ा शान्त हो जाती है। अनेक बार का अनुभव है, आजमायें।

बालों का सीकरी रोग—

सिर के बालों में जो मिट्टी के रङ्ग की धूल सी उड़ती हो उसको सीकरी या अंग्रेजी में Scarp or Dandarf कहते हैं। प्रयोग निम्नलिखित है—

आमला के पानी से बालों को १ माह तक अच्छी तरह साफ करते रहने से यह सीकरी फिर कभी पैदा नहीं होती और बाल मुलायम उगते हैं।

—कविराज श्री ज्ञानचद शर्मा
हिजरावां खुर्द, फतेहाबाद (हिसार)

पाठकों के प्रश्न

१–अर्धाङ्गवात (पक्षाघात) की सफल चिकित्सा विधि लिखे ।

२–कोई भी विष भक्षण करने पर विष-निकालने को वमनकारक एव विष को निष्क्रिय करने की दवा लिखे । —ग्रा० नं० ६१३०

३–कुत्ते के काटने पर प्राथमिक चिकित्सा बतावें जिससे विष फैलने का भय न रहे ।

४–बहुत दिनों से कान बहता है, बदबू आती है । सफल औषधि लिखें ।

—श्री सुखदेव प्रसाद, शेखपुर बाजार पो० नीसो (मुंगेर)

५–१५ वर्ष पुराने सुजाक की सफल औषधि लिखे । —ग्रा० नं० ८४८

६–मै २-३ वर्षो से आश्विन-कार्तिक से प्रतिश्याय पीड़ित होता हूं उसके बाद गले में खराश, कास-श्वास होजाता है । श्वास रात्रि में अधिक दुख देता है । फरवरी तक यह क्रम बना रहता है । फिर नाक से पपडा पैरो के मांसल स्थान को दबाने से पीडा यह रूप प्रकट होता है । गर्मी बढने के साथ पैरो मे पीड़ा बढ़ती है । वर्षा होने पर शान्ति मिलती है । अनुभवी सज्जन रोग मुक्ति का उपाय बतावें ।

—श्री वैद्य बालादीन बाजपेयी श्री दीन ओषधालय, लखीमपुर खीरी

७–मुझे नजला प्राय. रहता है जिससे जुकाम, सिर-दर्द, गले की नसो का फूलना आदि शिकायते बनी रहती हैं, सर्दियो में अधिक रहता है । आयुर्वेदिक सफल औषधि लिखें ।

—ग्रा० न० ६६७

८–मेरी आयु ५५ वर्ष की है, सीधी आंख से दूर की वस्तु धुंधली दीखती है, बाइ के सामने पतगा सा उडता नजर आता है । कारण एवं औषधि लिखे ।

९–ऐसे उपयोगी काजल का प्रयोग एवं निर्माण प्रक्रिया लिखें जो बालक से वृद्धजन सभी के लिए उपयोगी हो और नेत्र ज्योति को बढ़ावे ।

१०–यात्रा करते समय पानी बदलने से जुकामादि उपद्रव प्राय: होजाते हैं एसी औषधि लिखे जिससे कि चाहे जहां घूमें यह उपद्रव न हो ।

—ग्रा० न० १३४२३

११–हैजे मे अत्यधिक कै और दस्तों के होजाने से रोगी के हाथ पाव ठंडे पड़ जाते है खून गाढ़ा होजाने पर शरीर मे दौरा करने में असमर्थ हो जाता है । इस अवसर पर ऐलोपैथिक पद्धति मे नार्मल सैलाइन से खून पतला किया जाता है, जिसमें पूर्ण सफलता मिलती है । इस अवस्था में वैद्यजन संजीवनी वटी, अर्क कपूर, अर्क पोदीना और प्याज रस आदि औषधियो का सेवन करते हैं परन्तु लाभ नहीं होता । उसके पश्चात् डाक्टर को बुलाया जाता है । डाक्टर साहब नार्मल सैलाइन (नमक के पानी) से रक्त को पतला करते है जिससे रक्त शरीर मे फिर दौरा करना शुरू कर देता है और रोगी होश मे आजाता है । ऐसे अवसरो पर वैद्यवर्ग को ऐलोपैथिक डाक्टरो के सामने झुकना पडता है । ऐसे अवसरो पर हैजे के लिए आयुर्वेद में कौनसी औषधि का प्रयोग किया जाये जिससे वैद्य तथा जनता आयुर्वेद पर गर्व कर सकें ।

—ग्रा० नं० ३०२४

१२–घरो व नालियों के गन्दे रहने के कारण मच्छरो की काफी अधिकता है सो कोई ऐसी सुगन्धित धूप का प्रयोग लिखे जिससे मच्छर भी नष्ट हो जांय और घर भी सुवासित हो जाय ।

१३–पं. जीवानन्द जी की टीका का 'पंचतंत्र' एव 'शकुंतला' जो सज्जन मुझे भेज सके मूल्य लिखते हुए सूचित करे या प्राप्तस्थान की सूचना दे ।

—श्री मेहता व्यासदेव ११०/१९ रेलवे क्वार्टर्स पो. किशन गज (दिल्ली)

चिकित्सानुभव

[१]

रोगी का नाम— श्री आनन्द राव जी खड़से

रोग—पागलपन ।

रोगी हमारे पास मे १९६० मे आया । रोगी को एकबैल गाड़ी पर लाये । चार आदमी उसके साथ थे तथा चमड़े के बेल्ट (पट्टे) से हाथ पैर बंधे थे । रोगी कुछ भी अनाप सनाप बकता था । किसी को गाली देता था । किसी को भी पहचानता नहीं था । रोगी की आखे सुर्ख लाल थी तथा हाथ ढीले करके किसी ओर भागने का प्रयत्न करता था । विशेष कर सफेद टोपी वालो को देखते ही गाली गलौज करता । स्मरण शक्ति पूर्ण नहीं थी—परन्तु किसी को पहिचानता था और किसी के पहचानने में पुर्लक्ष करता था बाद मे दो चार बार पूंछने पर उसका नाम भी बताता था । इस प्रकार की हालत थी तथा साथ मे कुछ स्मरण होने पर एसा भी कहता था कि शादी कराकर रहेगे । इस प्रकार की हालत थी । पहिले रोगी के अभिभावक रोगी को एक मिशनरी अस्पताल ले गये । जहा पर उसको स्ट्रिकनीन २ सी. सी. का एक इन्जेक्शन दिया गया तथा पोटाशियम ब्रोमाईड मिक्चर व नींद लाने के लिये सोनेरिल टेबलेट दी गई । इससे रोगी को एक घंटे के अन्दर नींद आगयी । परन्तु जाग्रत होने पर पूर्वोक्त हालत रही । उसके बाद रोगी मेरी चिकित्सा मे आया और मैंने निम्न प्रकार उसका इलाज किया ।

निदान—आखो का लाल होना तथा बुखार का न रहना नाड़ी वेगवती रहना तथा अनाप सनाप बकना, स्मरणशक्ति का भ्रंश इत्यादि हालत देखने से पागलपन का निदान किया । इसके साथ-साथ उसको कब्जियत (कोष्ठ बद्ध) का विकार पुराना था एसा पूंछने पर ज्ञात हुआ । इलाज इस प्रकार चालू किया—

चिकित्सा—सर्प गन्धा चूर्ण २ तोला मकरध्वज सिद्ध ½ तोला दोनो को मिलाकर २४ पुड़िया तैयार कीं तथा रोजाना १ पुडिया सवेरे १ पुड़िया दोपहर तथा १ पुडिया शाम को शहद से दीं । रात को सोते समय आधा तोला गरम पानी से पंचसकार चूर्ण दिया तथा भोजनोपरान्त सारस्वतारिष्ट १। तोला पानी भी १। तोला दोनों समय दिया तथा रात्रि मे शिर में ब्राह्मी तैल की मालिश करायी गयी । इसी प्रकार करीब ८ दिन उपचार किया । रोगी ८ दिन मे अपने मत के अनुसार सब नित्यकर्म करने लगा । तथा दवा भी अपने आप लेने लगा इसी प्रकार दुबारा कोर्स चालू किया तथा तीसरी बार कोर्स चालू किया । तीसरे कोर्स के बाद रोगी पूर्ण स्वस्थ होगया । हल्का भोजन दूध तथा फल वगैरह खाने को दिये गए ।उसके बाद अभी तक रोगी स्वस्थ है ।

श्री मुरारीलाल त्रिपाठी बी. आई. एम. एस.
आयुर्वेदिक औषधालय, पेलावारा (यवतमाल)

[२]

नाम—सौ उपाध्याय आयु—३० वर्ष
रोग—अतिसार । ग्राम—नांदगांव खन्डेश्वर

रोगिणी छः मास से ग्रहणी रोग से पीड़ित थी । दिन मे १०-१२ बार पतले दस्त आते थे । पेट मे घडघडाहट थी । शरीर मे खून की कमी थी । चलने फिरने में असमर्थ थी । अग्निमाद्य और पेट मे नाभि प्रदेश से एक गोला सा उठता था और हृदय प्रदेश की तरफ उसका बढ़ाव था । उस समय पेट में मरोड का बहुत दर्द होता था ।

सर्व प्रथम मरीज का अनाज बन्द कर दिया सिर्फ मट्ठा, दूध, मुनक्का, फलो का रस इस पर ही मरीज को रखा ।

दवा के रूप मे धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित ग्रहणी रिपु १ तोला और पंचामृतपर्पटी नं १ (धन्वन्तरि) ६ माशा खरल किया । इसमे से ४ रत्ती फाक

कर ऊपर से भुना जीरा, सैंधव और कालीमिर्च मिश्रित तक्र का सेवन कराया। ऐसी मात्रा दिन में, शाम सवेरे दी।

साथ में विटामिन बी काम्प्लैक्स १ सी. सी., फोलिक एसिड आधी सी. सी. और मैक्राविन (१००० एम जी.) आधी सी. सी. को मिलाकर प्रतिदिन १० दिन सूचीवेध किया।

ऐसी चिकित्सा लगातार १ मास तक चालू रखी। ६ दिन के बाद ही दस्त और उपर्युक्त लक्षण धीरे-धीरे कम हुए और एक मास में रोगिणी पूर्णत. स्वस्थ हुई। हां थोडी कमजोरी रही थी इसलिए स्मिथ कम्पनी का हेमोलविट (*Hemolivit*) टॉनिक भोजनोपरांत दिया। तीन सप्ताह दवा चालू करने के बाद मरीज को थोड़ा-थोड़ा अनाज चालू किया। अब रोगिणी अपने को पूर्णः स्वस्थ अनुभव कर रही है।

डा० एच. एम. अडसोद *H. B. C.T. S.*
नन्दगांव खण्डेश्वर (अमरावती)

[३]

रोगिणी का नाम — श्रीमती विन्ध्याचली देवी
वय — लगभग २५ वर्ष
पति का नाम — श्री शिवानन्द प्रसाद।
रोग—उदर शूल।

रोगिणी को अचानक एक दिन रात्रि के १२ बजे जोरों का दर्द शुरू हुआ। दर्द दाहिनी पसली के नीचे था। साथ में वमन भी प्रारंभ हो गया। धीरे धीरे उदर-शूल और वमन दोनों ही भीषण अवस्था को पहुँच गये। रात्रि का समय था, इसलिए औषधि व्यवस्था कुछ भी नहीं हो सकी। प्रातः काल एक वैद्य जी की दवा लाकर दी गई किन्तु उसका किंचित प्रभाव नहीं पड़ा। तुरन्त रोगिणी को नगर के प्रसिद्ध लेडी डाक्टर को दिखाया गया। डाक्टर ने मार्फिया का इंजेक्शन लगाकर रोगिणी को भेज दिया तथा साथ में कोई टेवलेट भी खाने को बता दिया था। इंजेक्शन के फलस्वरूप अत्यंत अल्प काल तक शूल कम रहा किन्तु पुनः पूर्व स्थिति में आ गया। उदर शूल और वमन की मात्रा इतनी बढ़ गई कि रोगिणी असह्य दर्द से चिल्ला रही थी। रोगिणी के पति-देव जी को आयुर्वेद पर कम विश्वास था। किन्तु अन्ततः उन्होंने आकर मुझे से सारा विवरण बताया। साथ ही मे उन्होंने आग्रह भी किया कि किसी तरह से पहले वमन को रोकिए। मैंने साफ साफ बता दिया कि मैं पहले उदर-शूल की चिकित्सा करूंगा और उसी से दोनों ठीक हो जायंगे। एलोपैथिक के भक्त का सन्देह यह विरोधी-चिकित्सा (उनकी समझ के अनुसार) सुन कर कुछ बढ़ा। किन्तु चिकित्सार्थ आ चुके थे, अत. एक बार औषधि लेनी ही थी। मैंने शूलगजकेसरी की एक मात्रा उनको देदी। रोगिणी को औषधि दी गई जो थोडी देर बाद वमन से निकल गयी। पुन. उसकी एक मात्रा दी गई। इस मात्रा ने इतना चमत्कार दिखलाया कि शूल और वमन एक ही साथ बन्द हो गये और फिर किसी औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ी। किन्तु रोगिणी के पेट में लगभग पिछले ३ साल से हल्का हल्का दर्द सदा ही बना रहता था।

रोगिणी के पति ने उसे विक्टोरिया हास्पीटल मे दिखाया। डाक्टर ने कोई 'मिक्सचर' बता दिया था। जब कोई लाभ नहीं हुआ तो फिर एक वैद्य जी की चिकित्सा कराने लगे। इस तरह लगभग दो महीने व्यतीत हो गये, किन्तु कोई लाभ रोगिणी को नहीं हुआ। अन्तत. निराश होकर मेरे पास आये। उस समय रोगिणी की दशा इस प्रकार थी। पेट मे दाहिनी पसली के नीचे निरन्तर हलका-हलका दर्द, नित्य दोपहर के समय दर्द का बढना, और धीरे धीरे स्वयमेव कम हो जाना, अर्द्धरात्रि के बाद भी दर्द का बढना और क्रमश. कम हो जाना, भूख न लगना, दर्द पसली के नीचे से शुरू हो कर पीछे पीठ की ओर जाता था। दर्द के स्थान पर कठोरता मालूम होती थी। पाखाना शुद्ध नहीं होता, पाचन शक्ति का पूर्ण ह्रास। कमर मे भी थोडा-थोड़ा दर्द कभी कभी मालूम

होता था, आर्तव दोष भी विद्यमान था। सभी बातों पर विचार कर निम्न औषधि व्यवस्था की—

(१) महावात विध्वंसन रस १ रत्ती, (२) विषमुष्ट्यादि वटी १ रत्ती (३) रोहितक लोह २ रत्ती (४) प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, (५) शंख भस्म २ रत्ती

प्रातः मध्याह्न एवं सायं शहद के साथ। तथा (१) कुमारी आसव १ तोला (२) पुनर्नवारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर दोनों समय भोजनोपरान्त दिया। रात्रि में त्रिफला चूर्ण या पंचसकार चूर्ण की मात्रा दी जाती थी।

धीरे धीरे रोग में लाभ दिखाई देने लगा। कुछ दिन बाद जब शूल अचल हो गया तो महावात विध्वंसन की मात्रा निकाल दी गई। साथ ही कुमारी आसव के साथ रोहितकारिष्ट दिया जाने लगा। इस तरह ३ महीने की निरन्तर चिकित्सा से रोगिणी पूर्णतः स्वस्थ हो गई। और ३ साल पुराने रोग से उसे मुक्ति मिली। तब से उन लोगों की आयुर्वेद में निष्ठा बढ़ी। आज एक वर्ष से अधिक हो रहे हैं, रोगिणी को किसी प्रकार की शिकायत नहीं हुई। अब पूर्ण स्वस्थ है।

—श्री सत्यनारायण प्रसाद गुप्ता बी. काम.
४६ नैपियर टाउन, निर्मल-छाया,
जबलपुर (म० प्र०)

[३]

रोगी का नाम—शम्भू, उम्र-४ साल, निवासी लाखेरी
रोग—जीर्ण अतिसार।

रोगी वृतांत—उपरोक्त रोगी ८ माह से अतिसार से पीड़ित था जिसको वर्षाकाल में तीव्र अतिसार हुआ। कई दवाइयां दी गई कोई लाभ न हुआ। एलोपैथिक चिकित्सा भी ६ माह तक कराई जिससे दस्त कुछ कम हुए लेकिन प्रतिदिन ३ ४ पतले दस्त रोजाना होते थे। रोगी की शारीरिक शक्ति कमजोर होती जाती थी। बीच बीच में कभी-कभी ज्वर भी हो जाता था। ८ माह तक यही क्रम रहा। रोगी व उसके संरक्षक चिकित्सा से हताश हो गये। अन्त में १–११–५६ को रोगी मेरे पास लाया गया। मैंने रोगी का पूर्व इतिहास सुना एवं उसे देखा। शारीरिक शक्ति कमजोर थी लेकिन फिर भी भूख खूब लगती थी। सुबह जल्दी ही भोजन के लिये रोने लगता था। भोजन थोडा थोडा दिन में ४ बार करता था लेकिन पाचन नहीं होता था। दस्त दिन में ४ बार पतले कभी कभी श्लेष्म युक्त आते थे। (रात का दस्त नहीं होता था) मैंने निम्न दवा चालू की—

रामबाण रस १ रत्ती, शंख भस्म आधी रत्ती, जहरमोहरा १ रत्ती, संजीवनी १ रत्ती यह एक मात्रा। इस प्रकार ३ मात्रा दिन में तीन बार शहद से दे एवं तक्र का सेवन चालू रक्खा। कुछ काल तक दस्त में कमी हुई लेकिन पुनः वही क्रम चालू हो गया। १ माह तक यही दवा चालू रही। बीच बीच में कुछ परिवर्तन भी किया लेकिन लाभ न हो सका।

मैंने खूब सोच विचार कर केवल पित्त प्रकोप निराम अवस्था का निश्चय किया क्योंकि पेट में दर्द नहीं था एवं रात को दस्त नहीं होते थे। भूख लगती थी। इन सब लक्षणों को देख मैंने उपरोक्त दवा बन्द कर दी और निम्न दवा दी गई जिसकी एक ही मात्रा ने जादू सा असर दिखाया। जिसे ६ माह से कभी बंधा दस्त और वह भी दिन में एक ही बार नहीं आया था, वह निम्न दवा की १ ही मात्रा ने दस्त बन्द कर दिये। दवा निम्न प्रकार है—

यशद भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, कहरवा मिक्चर—यह एक मात्रा इस प्रकार २ मात्रा। चावल की धोवन के साथ प्रातः सायं दी गई। पहले ही दिन से रोगी दिन में केवल एक बार बंधा दस्त जाने लगा। बाद में १ मात्रा प्रतिदिन ८ दिन तक चालू रक्खी और ८ दिन दवा

बन्द करदी। ८ दिन बाद फिर चालू की। रोगी अब पूर्ण स्वस्थ है।

—श्री वैद्य मदनलाल शर्मा
राजकीय आयु० चिकित्सालय
जामना (बूंदी)

[४]

नाम रुग्णा-नेतराम गुप्ता, उम्र-२८ साल,
रोग--शोथ

उस रोगी को यह मर्ज करीब ४ माह पूर्व से था। रुग्णा का पेट बिल्कुल तना हुआ (हृदयके निम्न भाग से पेड़ू तक), पसलिया १-१ गिनने में आरही थी, पाव का ऊपरी तल तथा गालों पर भी कुछ चिकनापन लिए थलथली सी उभर आया था, कपडे पहनना भी दुस्तर था, रोगी चल फिर व ठीक तरह से बैठे भी नही सकता था। फिर भी मै इलाज करने को उद्यत हो गया।

उसके रूप को देखकर मैंने उसे वृक्क व यकृत् दोष से उत्पन्न शोथ निश्चय किया। रुग्ण को भोजन से बिल्कुल अरुचि, मल बंध, व अग्निमांद्य हो गया था। शरीर रूखा पीला हो गया था। निम्न-प्रकार से चिकित्सा की।

प्रथम उसे हलका जुलाब-अश्व कंचुकी सुबह शाम २-२ गोली गोमूत्र से दीं तथा पंचतृण क्वाथ पीने को दिया। इस तरह दो तीन दिन तक लगातार दिया। इससे मल मूत्र साफ होकर कुछ शोथ मे भी कमी हो गई। फिर दिन में २ रत्ती मंडूर भस्म, १ गोली पुनर्नवा मंडूर को पुनर्नवादि क्वाथ के साथ तथा रात्रि के वक्त १ गोली अश्वकचुकी और १ गोली रसोन वटी गौ मूत्र के साथ दी जाने लगी। इससे शोथ मे बराबर कमी होती गई तथा दस्त खुलासा होने लगे और अधो वायु निस्सरण अच्छी तरह से होने लगा। रुग्ण दिन व दिन स्वास्थ्य लाभ करने लगा।

पथ्य मे—पहले कुछ दिन केवल मीठा तक्र दिया गया, साथ में थोडा सैंधानमक भी स्वाद के लिए डाल दिया जाता था। बाद में रोगी को भोजन की इच्छा हुई तब पुनर्नवा क्वाथ से साधित पुराने भुने चावल की खिचडी लवण भास्कर चूर्ण डाल कर दी जाने लगी।

जब शोथ मे कमी होने लगी तब रोगी को कुछ आलस्य का अनुभव होने लगा और हृदयगति भी कमजोरी की वजह से मंद सी प्रतीत हुई। तब उसे सुबह सुबह कुछ दिन मकरध्वज स्वर्ण घटित की १-१ खुराक मधु से चटा दी जाती थी। भोजन के पश्चात् पुनर्नवारिष्ट भी दिया जाने लगा।

जो रोगी बैठ भी नहीं सकता था वह १५ दिन के इलाज से बाहर शौचादि के लिये जाने लगा। २० दिन के पश्चात् गांव का बाजार व गांव का परिभ्रमण सानन्द करने लगा और २५ दिन के बाद यहां से बिदा होकर अपने निजी स्थान को चला गया।

रोगी को तेल, मिर्च, गुड़ तथा गरम चीजो से एक दम अलग रक्खा गया।

—श्री वैद्य मदन सिह शिक्षक वैद्यभूषण,
कटनई।
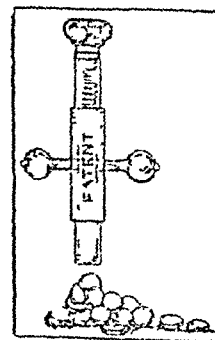
बाल शोष

श्री दुर्गाविजयसिंह *D. I M. S.*

पर्याय–

अंग्रेजी मे *Ricket* [रिकेट्], लेटिन *Rachitis* [रेंचाइटिस], संस्कृत फक्क एवं अहिंडिका सूखा आदि नामो से पुकारा जाता है।

नव्य मतानुसार यह विटामिन 'डी' की भांति होने वाले रोग है। बालको मे ६ माह से ऊपर तीन वर्ष तक की आयु मे अधिक होता है। आयुर्वेद मतानुसार शोष उत्पन्न करने मे वात पित्त ही प्रधान दोष होते हैं। इनकी क्रियाओ के द्वारा कफ का ह्रास होता है, फलतः शरीर के प्रत्येक अवयव मे यथा मांस, अस्थि आदि मे शिथिलता और शुष्कता के लक्षण उत्पन्न होते हैं और आंतरिक कलाओ में भी शुष्कता होकर एक प्रकार का शुष्क प्रतिश्याय होता है।

विटामिन 'डी' एक तैलिक पदार्थ है जिसका निर्माण मत्स्य तैल मे इतनी उष्णता देने से होता है कि वह *zeropthalmia* मे कोई लाभ नहीं करता है। आयुर्वेदीय सिद्धान्त से वातशामक, शुष्कता व रुक्षता को दूर करके पोषण करने के लिये तैल व घृतो का प्रयोग लिखा है परम्परा अनुभव से शास्त्रो मे अनेक तैलो व घृतो का प्रयोग आता है परन्तु मध्यकालीन अनुभव से मत्स्यतैल ही इस रोग मे विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यही उपयोगिता हमे इस ओर ले जाती है कि इस तैल मे ऐसा कौनसा पदार्थ है जो लाभ करता है। विद्वानो के अनुभव व अन्वेषणो से हमे अपना ध्यान विटमिन 'डी' की ओर ले जाना पडता है, वैसे इसकी साधारण कमी मक्खन, अंडे, दूध के सेवन से भी पूरी की जा सकती है तथा इन पदार्थों के गुण 'वात' के विपरीत पडते है और पित्त शामक भी। अत. यह सिद्ध होता है कि विटामिन 'डी' वात पित्त शामक तथा कफ का पोषक है और पृथ्वी अंश की वृद्धि करने वाला है। फलतः इन्हीं कारणो से वात का बढ़ना तथा रोग ह्रास क्रिया कराना इसके मुख्य गुण है।

मुख्यत. शोष रोग वात पित्त प्रधान तथा कफ हीन गुणो से युक्त होता है। ऐसा मेरा निजी अनुभव है। इन्हीं कारणो से यह वर्षा ऋतु में अधिक होता है।

कारण –

स्वस्थ माता का दूध पीने से यह रोग नहीं के बराबर होता है। माता का दूध न मिलने से, पाचन शक्ति से अधिक मात्रा मे बार बार दुग्ध पान कराने से (अध्यशन) दूध को बिना उबाले तथा अनियमित क्रम से सेवन कराने से, सूर्य किरणो के उचित मात्रा मे न मिल पाने से यथा शहरो मे, वर्षा के बादल घिरे रहने से। माता या बालक का भोजन संतुलन ठीक न होने से। माता को अस्थि शोष या अन्य अस्थि रोग हो। माता के फिरङ्ग या उपदश के कारण। शरीर मे स्थानिक, ऋतुज व संस्थानिक ऐसे परिवर्तन होने से वातपित्त प्रधान कफहीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

विकृति—

दोष कुपित होकर आमाशयान्त्र, मांस, अस्थि, मांस कलाओ पर अपना प्रभाव प्रदर्शित करते है।

आमाशयान्त्रिक—आमाशय आन्त्र की कलाओ मे शुष्कता उत्पन्न होती है तथा पाचक रसो की कमी होती है और वे इतने उत्तेजित हो जाते है कि अन्न का ग्रहण त्याग देते है। अतः रस धातु का निर्माण रुक जाता है।

रक्त—मे रक्ताणुओ का निर्माण कम हो जाता है और रक्त रञ्जक की कमी हो जाती है तथा

इस प्रकार रक्ताल्पता में तीव्र लक्षण प्रतीत होते हैं। मानसिक अङ्गों का ह्रास होता है। नव्य मत से रक्त में प्लाज्मा फोस्फेट (Plasma Phophate) की कमी होती है। यह प्रति रूप में ५ mgm (१०० सी०सी०में) होता है। लेकिन रुग्ण होने पर कम होकर २ mgm (१०० सी०सी०) में हो जाता है।

मांस—मांस शोष होकर ढीला तथा कमजोर होता है और अस्थियां को आवर्णित नहीं कर पाता है। इसलिए अस्थि अधिक उभरी हुई तथा स्पष्ट प्रतीत होती है।

अस्थिगत—मज्जा धातु की कमी हो जाती है। अस्थियो की वृद्धि रुक जाती है। अस्थियो के अन्त मोटे, उभरे प्रतीत होते हैं। कुछ समय बाद अस्थि मुड़ जाती है। दात देर से निकलते हैं। अस्थि उभार, अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगते हैं। अस्थि संधियां ढीली प्रतीत होती हैं।

मानसिक—स्वभाव मे चिरचिराहट, निश्चेष्टता, कातर दृष्टि आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

X-ray की स्पष्टता—मणि बन्ध में अन्तः प्रकोष्ठास्थि के अन्त अस्पष्ट होते है तथा बहिः-प्रकोस्थास्थि के अन्त चौड़े होते हैं। अस्थि शुषिरता के लक्षण देखने मे आते है। अस्थि संधान के स्थानो की वृद्धि में हीनता होती है। अस्थि मज्जा गह्वर चौड़े हो जाते है।

लक्षण—

रोग के लक्षण मुख्यत वर्षा ऋतु मे प्रकाश में आते है। लक्षण विशेषतः ६ माह से ३ वर्ष तक के बालकों मे अधिक पाए जाते है। रोग का आक्रमण अचानक होता है।

आमाशयिक तथा आन्त्रिक लक्षण—दुग्ध पान के बाद वमन, अतिसार, आमाशय स्थान व उदर मे आध्मान सा, वमन मे फटा हुआ दूध, अत्यन्त उष्ण, जलीयांश अधिक होता है, मल में अपचित दुग्ध के कारण जमे हुये, श्वेत, पीत, हरित, वर्ण के तथा एक विशिष्ट गंध युक्त [देहाती भाषा मे इसे मधिरयांद कहा जा सकता है—जो एक बार सूंघ ली जाय तो कभी नहीं भूली जा सकती] ;जलीयांश अधिक मल की कुहकियो से अलग अलग होता है। कभी कभी विबन्ध भी रहता है। बालक सूखता जाता है। अग्निमांद्य रहता है।

स्वेदाधिक्य—यह मुख्यतः शिर मे सोते समय अधिक होता है। पश्चात् दन्तोद्गम लगभग १२ माह मे और दंतकृमि होने की प्रधानता। मांसपेशियां शिथिल, क्षीण, पतली हो जाती हैं। अतः बालक को बैठने व चलने मे देरी होती है। कास होती है, इसी प्रकार यदि श्वासगत ज्वर (Broncho Pneumonia) हो जाय तब रोग अधिक कष्टसाध्य होता है। मानसिक विकृति यदि हो तो आक्षेप व अन्य सम्बन्धित नाड़ी रोग भी होते है। ताप साधारण तथा अतिसार व वमन के बाद तो साधारण से भी कम। यदि कोई उपद्रव हो तो तापमान बढ़ता है फिर भी हाथ पांव व शिर जलता ही रहता है। नेत्र श्वेत, चिकने तथा कातर प्रतीत होते है। रक्ताल्पता कुछ हद तक स्पष्ट दिखाई देती है। शिर बड़ा, ब्रह्म रन्ध्र मे गढ़ा पड़ा रहता है तथा देरी से बन्द होता है। ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश चोकोर होता है। कभी कभी शिर सामने पीछे की ओर बढ़ जाता है तथा शिर की अस्थियां के उभार प्रत्यक्ष हो जाते है। शिर बड़ा, छूने मे गरम प्रतीत होता है। शिर दबाने से बच्चे को आराम सा प्रतीत होता है। वक्ष मे पर्शुका तथा वक्षास्थि के जोड़ उभरे हुए अलग अलग प्रतीत होते है। कभी कभी यह इतने उठ जाते है कि वक्ष कपोत वक्ष के समान प्रतीत होता है। मेरुदण्ड मध्य मे सामने की ओर झुका हुआ प्रतीत होता है। यकृत् तथा प्लीहा स्पष्टतः प्रतीत होते है। सन्धि बन्ध ढीले पड़ जाते है। अस्थियों मे विकृति प्रथमतया शिर वक्ष तथा लम्बी अस्थियों मे उर्वास्थि तथा पूर्व जंघनिका मे प्रतीत होती है।

साध्यासाध्यता—

रोग यदि प्रारम्भ में ही मिलता है तो साध्य होता है। उस समय कुछ लक्षण आमाशय, आंत्र

तथा कुछ अस्थियो में ही प्रारम्भ हुए होते हैं। जब रोगी अधिक क्षीण हो गया हो, रोग की तीव्रता हो तो कृच्छ्र व असाध्य होता है। विद्वान इसका निर्णय परिस्थिति के अनुसार ही स्वयं कर सकते है। फिर भी इस रोग से मृत्यु कम होती हैं। इसका मुख्य कारण गरीबी ही है।

उपद्रव —

कास, श्वसनक ज्वर, अस्थिबक्रता, अस्थि भग्न, तथा जीर्ण आमाशयान्त्र की विकृतिया।

निदान–

रोग हलका हो तो संदिग्ध निदान होता है। तीव्र प्रकोप मे सही निदान होता है। परन्तु (1) लाक्षणिक, (11) *xrays* के द्वारा (111) रक्त के साज्मा फास्फेट की परीक्षा के द्वारा शीघ्र निश्चित निदान किया जा सकता है।

चिकित्सा–

दीपन, पाचन, स्नेह मर्दन तथा स्नान, स्नेहपान कराना, पोषक पदार्थों का सेवन, यह रोग औषधि चिकित्सा के द्वारा साध्य होता है।

पूर्ण विश्राम—लगभग २ या ३ मास तक बालक को पूर्ण आराम से खुली हवा में रखना चाहिए जहां धूप भी मिल सके। आराम से रखने से विकृतियां इत्यादि भी नहीं होने पातीं तथा मानसिक उपद्रव भी नहीं होने पाते हैं।

भोजन—मा तथा बालक के भोजन की समुचित व्यवस्था करना, यदि मां को विबन्ध इत्यादि कोई हानिकर रोग या परिस्थिति हो तो उसका इलाज तथा निराकरण करना चाहिए। बालक की आहार व्यवस्था मुख्य रूप से दुग्ध का आहार जिसके साथ चूने का पानी आवश्यक है मिलाकर देना चाहिए। तथा दीपन पाचन क्रिया को बढ़ाने के लिए "बाल जीवन घुटी" (र. सि. संग्रह–१ भाग) का प्रयोग कराना चाहिए। जातीफलादि चूर्ण (ग्रहणी), महागंधक योग या सर्वाङ्गसुन्दर रस का सेवन कराना चाहिये।

आमाशयान्त्र—के उपद्रव को शात कराने के लिये हिंग्वाष्टक चूर्ण अति लाभप्रद है। साथ साथ यह दीपन, पाचन, वातशामक है और पित्त की वृद्धि भी करता है अत. इस पित्त का ह्रास कराने के लिये तथा उस पित्त से रंजन, रक्त वर्धन कार्य कराने के लिये इसके साथ स्वर्ण माक्षिक भस्म या इसके योग यथा 'बालरस' का मिश्रण किया जा सकता है। शरीर मे खटिका की पूर्ति के लिए 'प्रवाल या शुक्ति' का प्रयोग तथा उससे निर्मित योग अति लाभप्रद होते है। यदि रोगी व्यय कर सके तो मुक्ता तथा स्वर्ण का प्रयोग भी कराना चाहिये। आमाशयान्त्र के उपद्रव अधिक दिन के हो तो अन्य औषधियो के साथ किन्हीं लाभप्रद पर्पटी का सेवन अवस्थानुसार मुक्ता या स्वर्ण के साथ कराना चाहिये।

स्नेह मर्दन—लाक्षादि तैल, चन्दनादि तैल, बला तैल पंचगव्य घृत, केंचुओं को तैल मे पकाकर व छान कर मालिश कराना चाहिये। तथा तैल पान के लिये गुडूच्यादि तैल १० बूंद से २० बूंद तक दिन मे दो बार।

रक्ताल्पता—के लिये लौह घटित योगो का प्रयोग यथा लोह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मांडूरभस्म आदि का प्रयोग करना चाहिये।

अतिसार—के लिये लज्जालुक मूल १ रत्ती से ४ रत्ती तक का प्रयोग तक्र से या दही से किया जाता है तथा साथ मे अन्य ग्राहक योग यथा मोचरस इत्यादि का प्रयोग लाभप्रद रहता है। मेरा अपना योग इस प्रकार है – हिंग्वाष्टक चूर्ण १ रत्ती, बाल रस ½ रत्ती, शुक्ति भस्म ½ रत्ती, माण्डूर भस्म ¼ रत्ती ऐसी एक मात्रा दिन मे तीन बार सहस्रमूल की जड़ ४ रत्ती के साथ मधु से देते है। इस योग को लगभग १० या १२ दिन तक प्रयोग करना पड़ता है। यदि विबन्ध हो तो अरविन्दासव देना चाहिये।

श्वसनक ज्वर—(*Bioncho Pneumonia*) हो तो *Penicaillin 'B' Sodium* का १०००० यूनिट से ३०००० यूनिट तक मांसगत सूची देनी चाहिए। ऐसी सूची दिन मे तीन बार देना चाहिए।

सहस्रमूल—यह एक क्षुप है जिसके तना नहीं होता है पत्ते पृथ्वी पर फैलते है, महुआ के पत्तों से मिलते जुलते होते है, बीच मे से दो चार दण्ड पुष्प युक्त निकलते हैं जो ४ इंच या ६ इंच लम्ब होते है। वर्षा मे अधिक पाई जाती है पेड के नीचे छाया म तथा खेत की मेढ़ा पर झाडियो के नीचे अधिक होती है, जड़ें झकडा होती है और इतनी होती है कि उनका मिलना मुश्किल होता है अत: इसका नाम सहस्रमूल पडा है। यह अतिसार मे मल के जलीयांश को तुरन्त कम करता है, वमन रोकता है, और आमाशयान्त्र पर उत्तेजक क्रिया कर दोषो को शमन कराता है।

फलो मे नीबू, नारङ्गी और सेव का रस देना चाहिये।

मत्स्य तेल का पान, मर्दन दोनो करना चाहिए। अथवा स्वतंत्र विटामिन '*D*' का प्रयोग १०००० *I.U.* से २०००० *I-U.* तक प्रतिदिन करना चाहिये। आवश्यकतानुसार इसमें विटामिन '*A*' भी उचित मात्रा मे मिला दिया जाय तो अत्यन्त हितकारी होता है।

दूध को निम्बू रस से फाड कर जब तक देना चाहिए कि जब तक आमाशयक्षोभ शांत नहीं होता। पश्चात् उचित आहार की व्यवस्था और पोषण का ध्यान रखना चाहिये।

प्रात: काल की सूर्य किरण का सेवन या बच्चे को खुली हवा मे प्रात.काल गोद मे लेकर टहलना चाहिये।

अस्थियो मे विकृति हो तो 'कुशाओ' का प्रयोग करा, रोगी को खुली हवा मे सूर्य की उपस्थिति मे रखना चाहिए।

यदि बालक चलने मे देरी करे तो शास्त्रोक्त "त्रिचक्र" का प्रयोग या उसके साथ टहलना चाहिये।

इतना सब करते हुये भी शारीरिक चिकित्सा को सदैव ध्यान मे रखना चाहिये।

—श्री दुर्गविजयसिंह *D. I. M. S.*
राज० आयु० चिकित्सालय
हरदोई गूजर (जालौन)

पृष्ठ १०६३ का शेषांश

हाथ गङ्गाजल ही नहीं पहुँच पाता जल भी नहीं पहुँच पाता व पात्र भरा का भरा रह जाता है। इस प्रकार की ऐसी क्रियाऐं इसी काल को महत्वता देती है।

मृतावस्था के पूर्व जीवितावस्था के आखरी समय मे ही गङ्गाजल का उपयोग हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि भीष्मपितामह खुद अपनी शक्ति पर रणभूमि मे लड़ते हुए घायल अवस्था मे रहते हुए भी मृत्यु समय गङ्गाजल को प्राप्त कर तृप्त हुए व सुख से मृत्यु को प्राप्त हुए। इस प्रकार इस जल को अमृत तुल्य अनुपान मानना आवश्यक है।

इसी प्रकार बहते जल का उपयोग श्रेष्ठ माना है, व महाभारत मे इसका उपयोग शास्त्रोक्त औषधि रूप मे महायोगी (सारथी) श्री कृष्ण ने अपना कार्य अश्वो को जोकि घायल अवस्था में थे उन्हे नदी पर ले जाकर उस जल एव काई व दूब के द्वारा औषिध कर घायलावस्था को ठीक किया। श्रीकृष्ण ने महायोगी व शास्त्रो के ज्ञाता होने के कारण सारथी का कार्य निभाते हुए भी अनेक कार्यो को निभाया इस प्रकार जल एक प्राकृतिक एव देशी चिकित्सा का अङ्ग है।

—श्री मुनिदेव तिवारी
महू छावनी, खजराना (इन्दौर)

ज्वर और उसकी चिकित्सा

श्री सत्यदेव शर्मा

कफज ज्वर—

शरीर मे भारीपन प्रतीत होता हो, कुछ शीत (सर्दी) मालूम हो, (विषम ज्वर-जाड़ा बुखार की तरह जोर की सर्दी न हो), जी मिचलावे, कै नहीं, रोगटे खड़े होते हो, नींद अधिक आती हो, स्वेद (पसीना), मूत्र, मल आदि के निकलने के मार्ग रुके हुए से हों, पसीना, मल मूत्र कम हो (सामज्वर मे मूत्राधिक्य भी देखा जाता है,) शिर आदि मे पीड़ा कम होती है, मुंह से लार बहती है, मुख का स्वाद मीठा सा हो जाता है, शरीर अधिक गर्म नहीं होता कै भी होती है, अङ्ग ढीले पड़ जाते है, खाये हुये पदार्थ भली भाति नहीं पचते, प्रतिश्याय जुकाम) अरुचि, खासी हो जाती है। नेत्रादि का रंग सफेद होता है। ये लक्षण कफज ज्वर के होते हैं।

चिकित्सा -

कफज ज्वर के रोगी को सर्दी से बचाकर उष्ण रूक्ष (गर्म-खुश्क) कमरे मे रखना चाहिये। यदि रोगी को सर्दी प्रतीत हो, शरीर अधिक शीतल हो तो गर्म पानी बोतल मे भर कर उससे सर्वाङ्ग का सेक करना चाहिये यदि छाती मे दर्द प्रतीत हो तो छाती पर सरलादि तेल (तारपीन का तेल), विषगर्भ तेल मलकर ऊपर से नामा तवे पर गर्म करके सेके। सेकने से पहले. तेल लगाने के बाद छाती पर एक कपड़ा डाल देना लाभदायक है, ताकि रूई के गर्म हो जाने पर भी उससे रोगी को चहका न लगे वह जलने न पाये। नामे के टुकड़े दो होने चाहिए ताकि एक के बाद दूसरे से लगातार सेका जा सके। यदि नामे के बजाय नीचे लिखी पोटली से सेका जाय तो बहुत ही उत्तम है —

कायफल महीन पिसा ४ तोला, हल्दी पिसी २ तोला, पिसा सामर नमक २ तोला, खोया आध पाव (खोया यदि भेड़ का हो तो बहुत उत्तम है। अन्यथा गाय-भैंस, बकरी आदि किसी का भी मिल जाय) लेकर सबको मिलाले—फिर इसमे इतना तिल तेल मिलावें कि वह तर होजावे पर तेल चूये नहीं। इसकी दो पोटलियां बांध लीजिये। तवे पर इन्हे गरम कर कपड़े से छाती पर एक पोटली से सेक करे जब वह ठंडी होजावे तो उसे तवे पर रख दे। और दूसरी पोटली से सेके। इसी प्रकार क्रमश. १५-२० मिनट से पौन घण्टे तक आवश्यकता के अनुसार सेक करा सकते है। यदि लगाने के लिये कोई तेल न हो तो केवल इन्हीं पोटलियो से सेकने से भी लाभ होता है।

एक चौड़े मुंह की पतीली या भगौने को पानी से पौन भर कर अग्नि पर रखे—जब पानी खूब खौलने लगे तब नीचे उतार उसमे २॥ तोले सरल तेल (तारपीन का तेल) डाल दे। हाथ भर लम्बे चौड़े दो कम्बल या और किसी ऊनी कपड़े के टुकड़े ले और उसे पानी मे डाल दे। दो आदमी एक साफी या तौलिया के सिरो को पकड़े, चीमटे से कम्बल के एक टुकड़े को निकाल साफी मे डाल ऐंठ कर खूब निचोड ले, और इस निचुड़े हुए कम्बल से छाती को सेके। जब तक यह टुकडा ठडा हो तब तक दूसरा टुकड़ा निचुड जावेगा। तब उससे सेके। और टुकड़े को तर होने के लिये गर्म पानी मे डाल दे। इस प्रकार १५-२० मिनट तक सेक करे।

इन सेको मे से जो भी सुविधा के अनुसार बन पड़े करे। इनसे पीडा दूर होती है, जमा हुआ कफ पतला होकर आसानी से उखड़ कर निकल जाता है, खांसी, श्वास मे बड़ा आराम मिलता है। ये सेक कफासन्न और निमोनिया होजाने की हालत मे बड़े उत्तम रहते है। ऊपर बताया सरल तेल वाला

सेक पेट में अफरा या दर्द होने पर पेट को सेकने से बड़ा लाभ करता है।

कमरे में अगर की धूनी जलने देना कफ ज्वर में बडा हितकारी है।

कफ ज्वर में शिर में शूल, प्रतिश्याय, या भारीपन, हो तो नकछिकनी, वर्ग तिब्बत, बड़ी इलायची, कायफल, ये चीजें समान भाग पीसकर नस्य (हुलास) देने से छींके आकर शिर हलका हो जाता है, दर्द मिट जाता है।

नाक के दोनों नथनों में अदरख साफ कर पिसे हुए रस की ४-४ बूंद टपकाने, या फणिज्जक (दौना मरुए) के पत्तों को पीस उनका रस नाक में ४-४ बूंद टपकाने से लाभ होता है।

हिंगुलेश्वर वटी की २-२ गोली ८-८ काली मिर्चों के साथ पीस ६ माशे शहद में मिलाकर चटावे। ३-४ घण्टे के बाद दिन रात में ४-५ बार ऐसी ही मात्रा देने से कफ ज्वर प्रतिश्याय (जुकाम) शिर. शूल सर्वाङ्ग पीडा में लाभ होता है।

अर्क वटी—

आक के मुंह मुदे फूल १० तोला, भुना सफेद जीरा, नौसादर, काली मिर्च, सेंधा नमक, काला नमक, असली जबाखार १-१ तोला।

सबको घोटकर चने के बराबर गोलियां बना डालो। २-२ गोली ३-३ घण्टे बाद गर्म पानी से लेने से सर्दी लगना, जुकाम, खासी, उदर पीडा, जी मिचलाना में लाभ होता है।

आरोग्य वटी—

यह यूनानी की प्रसिद्ध गोली हब्बुलशफा है। शिर:शूल, प्रतिश्याय, विषम ज्वर (मलेरिया), आमाशय (मेदे-पाकस्थली) के कष्ट, शीत कफ के रोगों में लाभकारी है। योग निम्न है—

धतूरे के बीजों की मिंगी ३ तोला, रेवन्द चीनी १॥ तोला, सोंठ १ तोला, गोंद बबूल १ तोला। सबको कूट पीस पानी के साथ घोटकर चने के बराबर वटी बनावे। मात्रा १-२ वटी गर्म पानी से दिन में २-३ बार दें।

पथ्यापथ्य—रोगी को हर प्रकार की सर्दी से बचावे। अरहर की दाल, दलिया आदि गर्म खुश्क पदार्थ सेवन करे।

द्विदोषज ज्वर—

जो ज्वर दो-दो दोषों की प्रधानता में होते हैं, उनके लक्षणों में उन्हीं-उन्हीं दोनों दोषों के लक्षण अधिक होते हैं। जिन दोषों के लक्षण अधिक हों उन्हीं के अनुसार दोनों दोषों को दूर करने वाली औषधियां दें।

सन्निपात ज्वर—

वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषों और आमरस के संयोग से सन्निपात ज्वर होता है। सन्निपातज्वर गम्भीर धात्वावगाही रस, रक्त, मासादि धातुओं और मलों जिनसे शरीर बना है में गहराई तक पहुँचा हुआ होता है। इसलिये भयङ्कर कष्टदायक होता है। सन्निपात ज्वर में जिस दोष की प्रधानता होती है, उसके लक्षण बढ़े हुए होते हैं। इन दोषों के लक्षणों के घटे बढ़े होने के हिसाब से दोषों के स्थान विशेष पर संश्रय करने से सन्निपात ज्वर के बहुत से भेद होते हैं और भेदों के अनुसार ही उनके नाम भी रख दिये जाते हैं। चिकित्सा करते समय दोषों की स्थिति, स्थान संश्रय, कारणों पर विचार कर चिकित्सा करते है। साधारणतया सन्निपात ज्वर में निम्नलिखित लक्षण होते हैं—

नींद नहीं आती या अल्प आती है, अथवा रोगी महा नींद में सोता ही रहता है, रात्रि में जागता, दिन में सोता है, तन्द्रा में (औंघानींदी-आधी आंखें खुली आधी बंद किये) पड़ा रहता है. रोगी को घुमेर सी आती हैं, श्वास कम या बढ़ जाते हैं, अङ्ग सो से जाते हैं मक्खी बैठने आदि का रोगी को ज्ञान नहीं होता, मुंह पर मक्खी बैठने पर उसको उडाने के लिये मुख आदि की कोई चेष्टा करता प्रतीत नहीं होता। अङ्ग बिल्कुल

सुन्न नहीं होते, वह नशे की दशा में बेहोश सा पडा रहता है, कभी मूर्च्छा (बेहोशी) भी आजाती है, सिर दर्द के कारण रोगी सिर को दांये-बांये घुमाता रहता है, एक स्थिति मे अधिक देर तक नहीं रह सकता, रोगी क्षण मे दाह-जलन, गर्मी और क्षण मे शीत अनुभव करता है, अस्थि संधियो (हड्डियो के जुडने के स्थानो) मे दर्द होता है, छाती मे पीड़ा प्रतीत होती है, दोप देर मे पचते है, प्रलाप (अंट-सट बकता है) हंसता है, तरह-तरह की विकृत चेष्टाये-(पागलों जैसी बाते और काम) करता है, नेत्र से स्राव होता रहता है, किसी किसी के नेत्र संकुचित होते है, किसी के फटे से हो जाते है टेढ़े-मेढ़े भीतर की ओर धंसे हुए या आगे की ओर निकले पड़े से प्रतीत होते, नेत्रो का रङ्ग मट-मैला सा लाल हो जाता है, कानो मे आवाज होती रहती है, उनमे दर्द होता तथा कम सुनाई देने लगता है, मुख, नाक आदि मार्ग पक जाते है। दांत काले पड़ जाते है, जीभ काली खुरदरी, कांटेदार, शिथिल हो जाती है, कफ खांसी बढ़ जाती है, कफ गले मे घरघराने लगता है, चेतना नष्ट होजाती है, स्वेद, मूत्र, मल देर मे और थोड़े उतरते है, कभी बड़े वेग से पसीने आते है, दस्त भी हो जाते है। इनके अति-रिक्त और भी अधिक लक्षण सन्निपात ज्वर मे होते है।

सन्निपात ज्वर की मर्यादा –

प्राय: वात प्रधान सन्निपात ज्वर ७ दिन, पित्त प्रधान १० दिन, और कफ प्रधान १२ दिन मे दोषो का पाक हुआ तो रोगी को छोड़ देता है और यदि धातुओ का पाक हुआ तो मार देता है। परन्तु दोषो के अधिक बलवान होने पर क्रमश: इनसे दुगना समय भी लगता है, अथवा कम भी।

सन्निपात ज्वर के अन्त में होने वाले उपद्रव–

बाधिर्य (बहरापन), अङ्गवैकल्प (हाथ पैर आदि अङ्गो का रह जाना, सूख जाना, टेढ़े-मेढ़े हो जाना), उन्माद (पागलपन), मूकता (बोलना बन्द हो जाना, हकलाना आदि) अन्धता—दिखाई न देना कम दिखाई देना आदि लक्षण होते हैं। किसी रोग मे एक, किसी मे दो या अधिक और किसी मे कोई भी उपद्रव शेष नहीं रहता। सन्निपात ज्वर के अन्त में किसी किसी रोगी के कान की जड़ मे दारुण शोथ (सूजन) होता है। इसी से रोगी बड़े चिकित्सा कौशल से छुटकारा पाता है।

ज्वर के १० उपद्रव–

(१) श्वास, (२) मूर्च्छा, (३) अरुचि, (४) छर्दि [कै होना], (५) तृष्णा (प्यास), (६) अतिसार (पतले दस्त होना), (७) विड्ग्रह (मल पाखाने का बन्ध जाना, कब्ज हो जाना, (८) हिक्का (हिचकी), (९) कास (खांसी), (१०) दाह (जलन होना)।

सन्निपातज्वर की साध्यासाध्यता–

मल मूत्र (बिगड़े हुए) वात पित्त कफ ये दोष और दूपित मल मूत्रादि दोष विबद्ध हो, (बंध गये हो, संश्रय स्थान से न टले, न सरके, न चूसे, न निकलते हो) अग्नि (पचाने की शक्ति) नष्ट हो गई हो, सारे ही लक्षण अपने पूरे बल के साथ उपस्थित हो तो सन्निपात ज्वर को असाध्य समझना चाहिये और यदि इसके विपरीत दशा हो तो सन्निपात ज्वर को कष्ट साध्य समझना चाहिए। सन्निपात ज्वर सुख साध्य तो शायद ही होता है। प्राय कष्टसाध्य (कठिनता से ही ठीक होने वाला) होता है।

चिकित्सा-

सन्निपात से उत्पन्न सब ही ज्वरो में चाहे वे किसी भी दोष की प्रधानता से उत्पन्न हुए हो, उनमे आमदोष कच्चे रस की प्रधानता होती है। आम दोप कफ धर्मी (कफ के समान गुण वाला) होता है, वह रस रक्त मे पिच्छलता, सान्द्रता (लिबलिबापन, गाढ़ापन) पैदाकर उसे निक-लने मे रुकावट पैदा करता है। इसलिये सन्निपात ज्वर मे पहिले आम और कफ को शमन करने का प्रयत्न करना चाहिए। आम के क्षय होने पर सन्नि-पात मे पित्त का, फिर वायु का शमन करना चाहिये।

जो दोष बढ़ा है उसे घटाना, जो घटा है उसे बढ़ाना और जो दोष साम्यावस्था (ठीक हालत, समान दशा) में हैं उनका पालन करना, उसे घटने बढ़ने न देना, यह चिकित्सा का सामान्य सिद्धान्त है। इसही सिद्धान्त को ध्यान में रखकर सारे रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए।

सान्निपातिक ज्वर में सामता निवारण के साथ प्रधान दोष को, उसके संचय स्थान के उपयुक्त क्रिया के द्वारा विनष्ट करना चाहिये। सन्निपात ज्वर में निम्न क्रियाओं का व्यवहार आवश्यकतानुसार होता है। किसी भी क्रिया को करते समय रोग और रोगी की दशा, देश, काल, स्वभाव (प्रकृति मिजाज), सात्म्यासात्म्य (अनुकूल और स्वभाव के विपरीत) आयु, बल आदि को ध्यान में रखना बहुत ही आवश्यक है। उदाहरण के लिए रोगी को पित्त प्रधान सन्निपात ज्वर है, उसमें आम दोष की अधिकता है जिससे रोगी को बार बार बार कै हो रही है, जी मिचलाता है, रोगी पानी आदि पीता है, पेट में वेदना तथा भारीपन है, ज्वर १०५°–१०६° हो गया है, नेत्र लाल हैं प्यास-घबड़ाहट बढ़ी हुई है, गर्म देश है, गर्मी की ऋतु है, ऐसी दशा में हमें आम पचाने के लिये उष्ण औषधि और पेट पर उष्ण सेक न करना चाहिए। इससे आम का पाचन तो होगा किन्तु ताप (शरीर की गर्मी-टेम्परेचर) बढ़ेगा, ताप के बढ़ने से ज्वर बढ़ेगा जिससे इन्द्रियों (इन्द्रियो के अधिष्ठानों के निमापक सूक्ष्म सूत्र विध्वंश होंगे। फलतः रोगी की दशा और भी बिगड़ जायगी। इसलिये ऐसी दशा में सिर पर शीतल स्पर्श आदि शीतल क्रियाएं लाभदायी होंगी। यदि कफ प्रधान श्वसनक ज्वर (निमोनिया) में भी ज्वर तीव्र हो, गर्मी की ऋतु, दोपहर का वक्त हो, परन्तु पार्श्वपीडा (छाती में दर्द) अधिक होने के कारण सेक करना बहुत ही आवश्यक प्रतीत हो तो हमें पेट पर गर्म सेक करते समय रोगी के सिर पर शीतल जल से तरकर निचोड़ वस्त्र को रखना न भूलना चाहिए। इस प्रकार करने से गर्म सेक से छाती का और सिर के शीतल सेक से ज्वर वृद्धि का निवारण हो जायगा। विपरीत क्रियाएं एक साथ ऐसे ही की जाती है।

सन्निपात ज्वर क्रियाएँ–

(१) लङ्घन, (२) बालुका स्वेद, (३) नस्य, (४) ष्ठीवन, (५) अवलेह, (६) अंजन।

ये क्रियाऐं प्राय: सन्निपात ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त होती हैं परन्तु सब क्रियाऐं सब ही रोगियो में प्रयुक्त नहीं होतीं। किस क्रिया की किस अवस्था में आवश्यकता होती है यह विचारना वैद्य का काम है। हम फिर भी यहां संक्षेप में इन क्रियाओं की विधियों का इनके प्रयोग काल के सहित वर्णन करते हैं।

(१) लंघन—(यानी उपवास) आम और कफ का नाशक है, रूक्ष है। यह आम और कफ की स्निग्धता (चिकनेपन), पिच्छलता (लिबलिबेपन) को नष्ट कर रस रक्तादि धातुओं और मलों के स्रोता (मार्गों) को खोल देता है, जिससे रस रक्तादि का संचार ठीक ठीक होने लगता उनकी रुकावट से भीतरी अङ्गों में पड़ने वाला तान (तनाव-खिचावट) दूर हो जाता है। इसलिये उदर और अन्य सारे अङ्गों में हलकापन और क्रिया क्षमता बढ़ जाती है, पेशाव, पाखाना ठीक ठीक उतरने लगता है, इसलिये सन्निपात ज्वर में तीन, पांच, दश या जितने वे आवश्यक समझें, लंघन कराने चाहिए। लंघन रोगी को आरोग्य दर्शन तक कराने चाहिए। जहां रोगी को आरोग्य हो जाय वहां फिर लंघन कराने का कोई काम नहीं। रोगी लंघनों को तभी तक सह सकता है जब तक कि शरीर में दोष हैं। इन लङ्घनों को सहने की शक्ति दोषों में ही है। ज्यों ज्यों दोषों का क्षय होता जाता है, रोगी को क्षुधा का बोध होने लगता है। दोषों के क्षय हो जाने पर रोगी भोजन के लिए विशेष बेचैन होता है। तब रोगी को उचित पथ्य उचित मात्रा में दे देना चाहिये। यहां तक रोगी अपने में कोई विशेष निर्बलता अनुभव नहीं करता। इसके बाद भी यदि और लंघन कराये जांय तो रोगी निर्बल होने लगता है, चक्कर आने लगते हैं, भूख मारी जाती है, इसलिये शास्त्रकारों ने अधिक लंघन कराने की घोर निन्दा की है।

जिन दिनों रोगी को लंघन कराये जा रहे हों उन दिनो रोगी को जल बराबर देते रहना चाहिये। जो चिकित्सक ऐसा नहीं करता है वह यह नहीं जानता कि शरीर मे जल के पहुँचने ही से तो रस रक्तादि पतले होंगे, उनमे अपने अन्दर के विषो को घोलने और संकीर्ण हुए स्रोतो मे से भी उन विषों को बाहर निकालने की शक्ति बढ़ेगी, मूत्रादि मल सरलता से बाहर होंगे, इसलिये सब ही ज्वरो मे विशेषकर सन्निपात ज्वर मे बार बार, थोडा थोड़ा जल देते रहना चाहिये। एक दम अधिक पेट भरकर जल पिलाना ठीक नहीं। अत्यधिक जल पिलाने से उदर में भारीपन, और अतिसार (दस्त) हो सकते है। अतिसार का उपद्रव हो तो जल कम कर दीजिये परन्तु दीजिये अवश्य।

हां, जल के सम्बन्ध मे यह सदा ध्यान मे रखिये कि सन्निपात मे जल सदा शृत शीत (औटाकर ठंडाकर किया हुआ) ही दिया जाय। जल कच्चा कुए आदि से लाकर बिना औटाया या पर्युषित [वासी–आज का औटा कल देना] बहुत हानिकारक होता है। सन्निपात मे जल पिलाने के लिए प्रातःकाल औटाकर शीतल किया सायंकाल तक और सायंकाल के समय गर्म किया प्रातःकाल तक देना चाहिये। स्वेदनकाल तक भी जल देते रहे।

(२) स्वेदन—स्वेदन या सेकना, आम, वात और कफ के रोगो मे विशेष हितकर है। जब सन्निपात ज्वर कफ प्रधान हो और यदि वात कफ प्रधान हो तब भी रूक्ष स्वेद [सेक] कराना चाहिए। इससे जकडा हुआ कफ, स्तम्भित अङ्ग और स्रोत कोमल हो जाते है। वायु दोषों को उखाड कर अपने आशय [स्थान] में लाकर उन्हे उपयुक्त मार्ग से निकालने में समर्थ हो जाता है। उदाहरण के लिए–सन्निपात ज्वर मे पार्श्व स्तम्भ पीडा [पसलियों में जकडन और दर्द] है सांस लेने या खांसने मे छाती मे दर्द होता है, कफ कठिनता से निकलता हो तो इस दशा मे बालुका स्वेद बहुत उत्तम होगा।

बालुका स्वेद विधि—

भाड़ की भुनी बालू या मिट्टी के पके बर्तन का महीन चूर्ण आध पाव लेकर कपड़े के दो टुकडो मे रखकर दो पोटलिया बनावे। अंगीठी या चूल्हे पर तबा रखकर उसे गर्म करे। इन पोटलियो को कांजी मे डुबोकर तवे पर गर्म करे। जिस स्थान पर स्वेद करना हो उस स्थान पर एक वस्त्र फैला दे। अब इस गर्म पोटली से उस स्थान को सेके। परन्तु इस बात का ध्यान रक्खे कि पोटली टपकती न हो, पोटली तनिक तर हो, अन्यथा जलने का भय है। इस स्वेद से जकड़न दूर हो जाती है, दर्द मिट जाता है, शीत हट जाता है। शीत हट जाने और शरीर पर पसीने झलकने पर स्वेदन बन्द कर देना चाहिए।

कफ ज्वर की चिकित्सा मे जो दूसरे स्वेद लिख आये है, वे भी सब सन्निपात ज्वर मे हितकारी है। उन्हे भी आवश्यकतानुसार काम मे लाइये।

हमेशा ध्यान रखिये कि जहा भी स्तम्भ, कफ, वात, आम का जमाव और शीत उल्वण [सर्दी का जमाव] होता है वहा ही स्वेदन [सेकना] लाभदायी है। परन्तु वृषण [अंडकोष, फोते] हृदय और नेत्रो पर सेक न करना चाहिए और यदि करना ही आवश्यक हो तो मृदु [हलका थोड़ा] स्वेद करना चाहिये।

सन्निपात ज्वर मे भी यदि दोनो नेत्र लाल हो, कै हो रही हो, प्रलाप हो, रोगी बकता हो, मस्तिष्क को इधर-उधर चलाता हो तो सेक न कराइये बल्कि शीतल क्रियाएं कीजिये।

—रसवैद्य श्री सत्यदेव शर्मा 'विद्यासागर'
कीठम, पो० रैपुरा जाट [मथुरा]

शुक्रमेह (धातुश्राव)

वैद्य गोवर्धन दास चागलानी

प्रमेह के २० प्रकारों में से एक 'शुक्रमेह' है। शुक्रमेह को 'धातु स्राव' भी कहते हैं। उर्दू में इसे 'जिर्यान' तथा अंग्रेजी भाषा में 'स्पर्मेटोरिया' (Spermetorrhoea) कहते हैं। ग्रामवासी इसे बोलचाल की भाषा में 'हड्डी काटने की बीमारी' कहते हैं। आजकल के ६० प्रतिशत नवयुवकों में यह रोग अपना डेरा डाले दृष्टिगोचर होता है। आजकल का दूषित वातावरण, खान पान वस्तुओं की अशुद्धता, पाचन का बिगड़ जाना, अधिक पौष्टिक एवं गरिष्ट चीजों का सेवन कर आलसी की तरह पड़े रहना, साईकिल की अधिक सवारी करना, दही खोवा की बनी वस्तुओं तथा अन्य कफकारक पदार्थों का अधिक सेवन, गन्दे अश्लील उपन्यास आदि के अधिक पढ़ने से, अश्लील नाटक सिनेमादि (जिनसे मन विकृत होकर वीर्याशय में क्षोभ उत्पन्न होता है) के दृश्य देखने से, हस्त मैथुन और गुदा मैथुन करने, शराब (मद्य) का अधिक सेवन करने से, अंडे, मासादि का अधिक सेवन करने से और मन में कुविचार भरे रहने से, शक्ति से अधिक मैथुन करने से और वीर्य स्तम्भन करने के लिये (क्षणिक सुख के लोभ में) मादक तथा विषैली चीजों का सेवन करने से इस महाभयङ्कर रोग का प्रादुर्भाव होता है। उपरोक्त कारणों से वात, पित्त, कफादि दोष वस्ति में जाकर अपने प्रभाव से क्षोभ उत्पन्न कर 'शुक्रमेह' को जन्म देते हैं। इस रोग में शुक्र या शुक्रवत द्रव बिना मैथुन तथा बिना इच्छा के भी पुरुषेन्द्रिय से जाग्रत या स्वप्नावस्था में स्रवित होता रहता है।

रोग के लक्षण—

जब यह रोगी मनुष्य को अपना शिकार बनाता है तो उस व्यक्ति के दांत, नेत्र, गला, तालु, जिह्वा (जीभ) अधिक मैले हो जाते हैं। साथ ही बगल (कक्षा प्रदेश) में तथा पुरुषेन्द्रिय की त्वचा और मणि के बीच स्थान पर दुर्गन्धित श्वेत मल अधिक जमता है। हाथ पांवों के तलुओं में जलन होने लगती है। शरीर में भारीपन, सुस्ती, चिक्कणता बढ़ जाती है। प्यास अधिक लगती है। मुंह का स्वाद मीठा सा लगने लगता है। इन्हीं लक्षणों को देखकर समझदार व्यक्ति प्रमेह रोग रूपी खतरे की घन्टी समझकर सावधान हो जाय। अन्यथा आगे बढ़कर यह रोग सुरसा के मुंह की तरह बढ़ता जायगा। रोग बढ़ने पर मूत्र विकृत रूप से आने लगता है। मूत्र में गंदलापन और गाढ़ापन हो जाता है। मूत्र अधिक आने लगता है। मूत्र में धातु निकलने लगती है। रोगी के चेहरे पर पीलापन आ जाता है। आंखे अन्दर को धंस जाती हैं। दिन या रात में सोते समय पुरुषेन्द्रिय उत्तेजित होकर स्वप्नदोष हो जाता है। पुरुषेन्द्रिय का उत्तेजित न होना अथवा हो तो शीघ्र ही शिथिल हो जाना, स्त्री सम्भोग के समय वीर्य का शीघ्रपात हो जाना, वीर्य में उष्णता और पतलापन हो जाता है। साफ कपड़े पर वीर्य लग कर सूखने पर निशान का न होना, शरीर ढीला ढाला हो जाता है। शिर, कमर, घुटनों, पिण्डलियों में दर्द होने लगता है। मस्तिष्क की दुर्बलता होकर स्मरण शक्ति का ह्रास होना और बिना कारण कई प्रकार की चिन्ताओं का घेरना, बिना कारण मन का उदास रहना और भय का उत्पन्न होना, अपने को अर्धपागल समझना, गालों का पिचक जाना, चहरे पर निशानों का होना, कार्य करने की हिम्मत न होना, जबरन शारीरिक कार्य करने पर शीघ्र थक जाना और दिल (हृदय) का धुक-धुक करना तथा पसीना आना, जीवन से निराश होना। 'मलावरोध और मन्दाग्नि' तो इस रोग के बहुत घनिष्ठ मित्र ही नहीं, किन्तु

सहोदर भाई है। कभी कभी इस रोग से नपुंसकता (नामर्दी) भी हो जाती है। अतः इस रोग को साधारण समझकर उपेक्षा न करें।

चिकित्सा –

साधारणतया चन्द्रप्रभावटी, प्रवाल पिष्टी, बङ्गभस्म, अथवा स्वर्ण बङ्ग, लोहभस्म, गिलोयसत्व, का मिश्रण बनाकर सुबह शाम दूध से। दूध में छोटी इलायचा, कालीमिर्च, मिश्री डालकर। भोजन के पश्चात द्राक्षासव १-१ तोला दुगुना जल मिलाकर रात्रि को सोते समय सुख बिरेचन चूर्ण (सनाय, मिश्री का समभाग चूर्ण) ३ से ६ माशा तक गर्म दूध या गुनगुने जल से (पाखाना ढीला होने पर दूसरे तीसरे दिन दे) कभी कभी त्रिफला चूर्ण ४-६ माशे मे २-४ रत्ती हल्दी पिसी मिलाकर भी देता हूँ। यकृत् विकार के साथ शुक्रमेह मे चन्द्रप्रभादि मिश्रण में शङ्खभस्म और आरोग्यवर्धिनी अवस्थानुसार मिश्रण कर या अलग देते है। भोजन के पश्चात् द्राक्षासव में कुमार्यासव या लोहासव मिलाकर देते है। कुछ रोगी प्रतिश्याय आदि के साथ शुक्रमेह के आते है। उनको कुछ फेर बदल के साथ उपरोक्त मिश्रण चन्द्रप्रभादि मे या अलग से लक्ष्मीविलास रस, स्वर्ण या अभ्रक प्रधान अवस्था तथा हैसियत के अनुसार देता हूँ। इस प्रकार चिकित्सा से रोगी को १ सप्ताह (८ दिन) मे ही लाभ प्रतीत होने लगता है। रोगी के मुर्झाये चेहरे पर कुछ सुर्खी दीखने लगती है। पेट ठीक होने लगता है। मलावरोध दूर होने लगता है। पाचन शक्ति बढ़कर भूख खुलकर लगने लगती है। पेशाब मे गंदलापन कम होने लगता है। नवीन रोगी को २ सप्ताह मे और पुराने रोगी को ३-४ सप्ताह में औषधियो से स्रवित होने वाला 'शुक्र' बन्द हो जाता है। पेशाव ठीक होने लगता है। रोगी की शक्ति, स्फूर्ति और बल बढ़ने लगता है। रोग पूर्ण होने पर भी हम रोगी को १-२ सप्ताह औषधि अधिक सेवन करवाते है चिकित्सा से छुट्टी होने पर चन्द्रप्रभावटी और द्राक्षासव या अश्वगन्धारिष्ट कुछ समय तक सेवन करने की सलाह हम प्रत्येक रोगी को देते हैं। इस रोग मे पाचन शक्ति का ध्यान अधिक रखना पड़ता है। कुछ रोगी ठीक होने के बाद पाचन शक्ति से अधिक गरिष्ठ चीजे खोवा, मलाई, भैंस का दूध, घी, बादाम, अंडे, मांसादि अधिक मात्रा मे खाकर फिर से रोग के शिकार हो जाते है। पौष्टिक चीजे खायी जांय लेकिन पाचन शक्ति के अनुसार। स्वप्नप्रमेह के रोगी को हम निम्नलिखित योग देते है। इससे शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। कुछ समय तक लेने से 'स्वप्नदोष' नष्ट हो जाता है।

स्वप्नदोषारि वटी–शीतल चीनी २॥ तोला, सोनागेरू ६ माशा, त्रिफला १॥ तोला, कपूर ३ माशा, गिलोय सत्व, सफेद चन्दन, गोखुरू बड़े, इमली के बीज (अध भुने) प्रत्येक ३-३ माशे, मिश्री २॥ तोला कूट कपडछन कर थोडा जल मिलाकर, घोट कर १-१ माशे की गोली बनाकर रखले। २ गोली सुबह, २ गोली शाम को शीतल जल से। भोजन के बाद द्राक्षासव और चन्दनासव समभाग मिला कर दे। रात को सोते समय उदर शोधनार्थ कोई चूर्ण या ईसबगोल की भुसी दे अथवा निम्नलिखित जीवन सखा चूर्ण दे।

जीवन सखा चूर्ण—

असगंध नागौरी, शतावरी, सौंठ, श्वेत मूसली, सफेद चन्दन, ईसबगोल की भुसी, छोटी हरड़, प्रत्येक १-१ तोला, इन सबको कूट कपड़छनकर ३-३ माशा गौदुग्ध मे मिश्री डालकर प्रातःकाल और रात को सोते समय दें। ❀

गुण—इसके सेवन से आंते साफ होती है। बल, वीर्य बढ़ता है। प्रमेह-स्वप्नदोष में लाभप्रद है। कम से कम ४० दिन तक अवश्य सेवन करना चाहिये।

—शेषांश पृष्ठ १११६ पर।

❀ यह प्रयोग सर्दी जुकाम और कफ खांसी के रोगी को न दे। यह प्रयोग मैने धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग) पृष्ठ ४५२ से लिया है।

जीर्ण श्वास कास ज्वर

कविराज एस० एन० वोस

सभी प्रकार के तरुण श्वास कास ज्वर की परिणति जीर्णरूप मे हो सकती है, अतः जीर्ण श्वास कास ज्वर के प्रकार भेद तरुण श्वास कास ज्वर के समान ही मानने चाहिए। इनके भीतर श्लेष्मज तरुण श्वास कास ज्वर के जीर्ण रूप मे कुछ विशिष्टता रहती है जिससे इस व्याधि का पूर्ण विवेचन आवश्यक है। अन्यान्य प्रकारो के सम्बन्ध मे संक्षिप्त विवेचन किया जावेगा।

जीर्ण श्लेष्मज श्वास कास ज्वर --

सज्ञा—तरुण श्लेष्मज श्वास कास ज्वर यदि सफलतापूर्वक चिकित्सित नहीं हुआ तो अधिकाश क्षेत्र मे श्वास-नलिकाओ से जीर्ण प्रदाह उत्पन्न होकर रोगी को समय-समय पर विशेषत शीत ऋतु मे श्वास कास, कभी कभी मामूली ज्वर ताप वृद्धि आदि से कष्ट होता है। इसको तरुण श्लेषमज श्वास कास ज्वर की जीर्ण परिणति कहा जाता है।

निदान—साधारणत' तरुण श्वास कास ज्वर की परिणति से यह व्याधि उत्पन्न होने के कारण इस व्याधि का निदान तरुण श्वास कास ज्वर के समान ही माना जाता है। परन्तु साधारणतः ऐसी जीर्ण परिणति मध्य वयस्क तथा वयोवृद्ध व्यक्तियो मे अधिकाधिक पाई जाती है, यद्यपि सभी उम्र मे ऐसी जीर्ण-परिणति हो सकती है। स्त्रियो से पुरुषो मे ज्यादा मिलती है। कभी-कभी किसी घराने मे इस व्याधि का प्रकोप अधिक दिखाई पडता है। आर्द्र जलवायु विशिष्ट प्रदेशो मे विशेषतः शहरो की धूम-धूलि-धूसरित वायु मण्डल मे इस व्याधि का आक्रमण सुलभ है। जीर्ण परिणति से यह व्याधि साधारणत शीत ऋतु के प्रारम्भ मे तरुण श्लेष्मज श्वास कास ज्वर के स्वल्प आक्रमण के रूप मे शुरू होकर शीत ऋतु के अन्त तक प्रगट रहती है और ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ से ही धीरे धीरे शात हो जाती है। परन्तु प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु के समय पर स्वस्थ रहने की अवधि कम होते होते कुछ वर्ष के पश्चात् एक ऐसी परिस्थिति आ जाती है जिस समय करीब-करीब वर्ष के कुल वारह महीने रोगी अत्याधिक रोग पीडित रहता ही है। जीर्ण श्वास कास ज्वर मे फुफ्फुसस्थित वायु कोषो का स्थायी विस्फारण हो सकता है—जिससे रोग का स्थायित्व वन जाता है। हृत्पिण्ड की स्थायी हानि, धमनी का स्थायी परिवर्तन, रक्तवात, जीर्ण वृक्क प्रदाह, फिरङ्गरोग तथा मदात्यय आदि तरुण श्वास कास ज्वर की जीर्ण परिणति म सहायक होते हैं। अन्यान्य कास उत्पादक व्याधिया जैसे कि फुफ्फुस के वायु कोषो का विस्फारण, श्वास रोग, निष्क्रिय फुफ्फुसीय क्षयरोग, मुंह से श्वास ग्रहण, धूम्रपान आदि से जीर्ण श्वास कास का उपयुक्त क्षेत्र प्रस्तुत होता है।

इस रोग मे तरुण श्लेष्मज श्वास कास ज्वर के कारण सभी रोग जीवाणु पाये जाते हैं। कभी-कभी दो अथवा अधिक प्रकार के रोग जीवाणुओ का मिश्रित आक्रमण भी मिलता है। आयुर्वेद मतानुसार यह व्याधि वात श्लेष्मज है जिसकी जीर्णावस्था मे वाताधिक्य ही अधिक प्रगट होता है।

शारीरिक विकृति विज्ञान—इन व्याधियो से श्वास नलिकाओ के भीतर जीर्ण श्लेष्मज प्रदाह दिखाई पडता है। पुरातन रक्ताधिक्य के कारण श्वासनलिकाओ की दीवारो मे स्थूलता आ जाती है। श्वास नलिका स्थित श्लेष्मज ग्रन्थियां सिकुड जा सकती हैं अथवा स्थूलतर हो सकती है। दीर्घ काल व्यापी आक्रमण मे श्वास नलिका की बाह्य-दीवारो मे जीर्ण प्रदाह होकर श्वास नलिकाओ का विस्फारण हो सकता है। कभी-कभी तन्तुमयता के कारण श्वास नलिकाओ के आकार मे विकृति आ सकती है।

साधारणतः इस व्याधि में वायु कोषो मे अत्याधिक विस्फारण आ जाता है–चाहे वह विस्फारण सर्व फुफ्फुस व्यापी हो या चाहे किनारों मे ही सीमित हो। मृत्यु के पश्चात् फुफ्फुस का रङ्ग साधारणत लाल दिखाई देता है। इसमे कुछ अधिक रक्त संचार दिखाई पडता है, परन्तु अगर वायु कोषों का विस्फारण हुआ होगा तो फुफ्फुस पाण्डुवर्ण दिखाई पड़ते हैं। टुकडे करने के पश्चात् दबाने पर कटे हुए श्वास नलिकाओ से पूय अथवा कफयुक्त पूय निकलता रहता है तथा साधारणत. फुफ्फुस तल मे कुछ शोथ के चिन्ह दिखाई पड़ते है।

पूर्वरूप—इस रोग के पूर्वरूप मे तरुण श्लेष्मज श्वास कास ज्वर की अन्तिमावस्था प्रगट होती है–जैसे कि सुबह उठते ही तथा शाम को थोडी बहुत कास जिसमे कभी मामूली कफयुक्त अथवा पूय कफ युक्त निकलता है सामूली श्लेष्मा का प्रकोप रहता है। शरीर मे विशेषत' छाती मे भार बोध, अङ्गमर्द तथा आक्रमण के पहिले मामूली ज्वर (ताप वृद्धि) हो सकता है।

रूप—जीर्ण श्वास कास ज्वर के रोगी साधारणतः खासी, थूक निकलना तथा चलने फिरने मे श्वास फूलना आदि शिकायते करते हैं। कास वेग अत्यधिक हो सकता है। कभी-कभी ग्रीष्म ऋतु मे बिलकुल खासी नहीं रहती है, परन्तु प्रतिवर्ष शीतऋतु मे लगातार खांसी से वर्षो तक परेशान होते रहते है। यह कास दिन मे बार बार आजाता है–परन्तु रात को दौरे के रूप मे भी आ सकता है अथवा केवल सुबह तथा शाम को खासी आती है। थूक के परिमाण मे भी काफी अन्तर आ सकता है। कभी तो बिलकुल थूक नहीं निकलता है और कभी-कभी अत्यधिक मात्रा मे निकलता है। साधारणत. थूक मे केवल कफ अथवा पूय निकलता है जिसमे हलके काले रङ्ग के टुकडे फेनयुक्त पतले स्राव के साथ दिखाई पडते है। फुफ्फुसीय वायुकोषो के विस्फारण के कारण ही श्वास कष्ट अनुभूत होता है जिससे रोग की जीर्णता की मात्रा समझी जा सकती है। शुरू शुरू मे केवल सीढ़ी चढ़ने से अथवा ऊपर चढ़ते समय श्वास फूलता है परन्तु बाद मे समतल क्षेत्र मे चलने पर भी श्वास फूलना शुरू हो जाता है। जीर्ण श्वास-कास ज्वर मे रोग वृद्धि के समय मामूली तापवृद्धि होती है। कभी-कभी परिश्रम के पश्चात् चेहरे पर मामूली श्यामवर्णता प्रगट होसकती है। वायुकोषो के विस्फारण के कारण वक्षः प्राचीर की गति सीमित होजाती है तथा ताडन-ध्वनि अत्युच्च सुनाई पड़ती है। वक्षपरीक्षा यन्त्र की सहायता से निःश्वास ध्वनि दीर्घतर तथा सम्पूर्ण फुफ्फुस के ऊपर गम्भीर अथवा तीक्ष्ण वंशीध्वनि के समान सुनाई पडती है। सूक्ष्म श्वासनलिकाओ के भीतर तरलस्राव रहने से बुद-बुद ध्वनि भी सुनाई पड सकती है। किसी-किसी क्षेत्र मे उक्त वशीध्वनि अति अल्प मात्रा मे अथवा कभी-कभी सुनाई पड़ सकती है। जीर्ण व्याधि के प्रतीक अगुलियो के अग्रभाग मे कुछ चौरस सा हो जाना प्रगट हो सकता है। गन्ड देश मे कुछ शिराओ की अभिव्यक्ति हो सकती है।

उपसर्ग व परिणति—जीर्ण श्वास कास ज्वर की परिणति मे फुफ्फुसा मे कई प्रकार के परिवर्तन हो सकते है। श्वास नलिकाओ मे तथा वायुकोषो मे विस्फारण इनमे प्रधान है। इसके अलावा श्वास नलिकाओ के बहि' प्राचीर मे तन्तुमयता आ सकती है। जीर्ण ज्वर की परिणति मे श्वास रोग की उत्पत्ति अति साधारण है। इस रोग के भोगकाल मे बीच-बीच मे श्वास नलिकाओ मे आक्षेप उत्पन्न होकर रोगी को दुखी बना देता है। तीव्र खासी के कारण हृत्पिन्ड पर जो प्रभाव पड़ता है उसके फल स्वरूप हृत्पिन्ड को अधिक कार्य करना पडता है। अन्त मे हृत्पिन्ड का दक्षिण निलय प्रसारित हो जाता है साथ ही साथ फुफ्फुसतल मे रक्त संचय से उदररोग तथा पैरो मे शोथ उत्पन्न हो सकता है। रोग की अन्तिमावस्था मे एक विशिष्ट प्रकार का चित्तविभ्रम उपस्थित हो सकता है जिससे रोगी प्रलाप करता है रात को यह प्रलाप अधिक प्रगट होता है।

रोग निर्णय—जीर्ण श्वास कास ज्वर के साथ फुफ्फुसीय क्षय रोग, हृद् दौर्बल्य जनित श्वास

नलिका प्रदाह तथा श्वास नलिकाओं के विस्फारण का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। श्वासनलिकाओं के प्रदाह समन्वित फुफ्फुसीय क्षयरोग में बलसासक्षय अधिकतर प्रगट होता है। फुफ्फुसों में तन्तुमय परिवर्तन के कारण वक्ष. प्राचीर चौरस सा प्रतीत होता है। जिन क्षेत्रों में जीर्ण श्वास कास ज्वर रोगियों में ग्रीष्मकालीन उपशय धीरे-धीरे समाप्त न होकर अकस्मात् समाप्त होता है वहां क्षय रोग का सन्देह होना चाहिए। अवश्य ही थूक में क्षय रोग जीवाणु की उपस्थिति रोग निर्णय में निश्चयात्मक मानी जाती है। हृद्दौर्बल्यजनित श्वास नलिका प्रदाह में हृत्पिन्ड चिन्ह वर्तमान रहते हैं। इसके सिवाय विशेषत. फुफ्फुस के तल देश में बुद्‌बुदध्वनि सुनाई पडती है तथा वशीध्वनि इतने विस्तृत रूप में नहीं मिलती है। श्वास नलिकाओं के विस्फारण में विशिष्ट लक्षण प्रगट होते हैं तथा प्रसारण एक ही खण्ड में सीमित रहता है। रंजनरश्मि की सहायता से रोग निर्णय सरलता से हो सकता है।

रोगप्रगति—श्वास कास ज्वर में जीर्णता एक बार सुप्रतिष्ठित होने के पश्चात् उससे मुक्ति मिलना करीब-करीब असम्भव हो जाता है। प्रतिवर्ष शीत ऋतु में रोगवृद्धि के पश्चात् फुफ्फुस में अधिकतर हानि पहुँचती रहती है। क्रमशः वायुकोषों में विस्फारण के कारण फुफ्फुस में रक्तशुद्धि की शक्ति का ह्रास होता जाता है, तथा अन्त में हृदय का अवसाद उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—यह व्याधि याप्य मानी जाती है। प्रतिवर्ष सुचिकित्सा तथा ऋतु परिवर्तन की सहायता से रोग शान्ति सम्भव है परन्तु अन्तिम परिणति सदा ही दु.खदायी होती है। इस रोग से जीवनीय शक्ति का काफी ह्रास हो जाता है।

चिकित्सा -

प्रतिरोधात्मक—जीर्ण श्वास कास ज्वर रोगी के लिए समशीतोष्ण शुष्क प्रदेश में अवस्थान ही हितकर है। हिन्दुस्तान में पुरी, बम्बई तथा मद्रास महीशूर प्रदेश इसके लिए श्रेष्ठ माना जा सकता है। जीर्ण श्वास कास ज्वर रोगियों के लिये शीत सेवा, पानी में भीगना आदि मारात्मक है। इसके लिये रोगी को घर के अन्दर रहना चाहिए यह बात भी ठीक नहीं है। ऐसे रोगियों को अधिकांश समय घर से बाहर रहना ही उचित है,परन्तु ऋतु की प्रखरता से बचना अति आवश्यक है। सदा ही उपयुक्त गरम वस्त्रादि पहन कर (विशेषत. वक्ष को) सर्दी के प्रकोप से बचाना चाहिए। ऐसे रोगियों में जीविकोपार्जन के हेतु वृत्ति के पक्ष पर अधिक ध्यान देना चाहिए। फुफ्फुसों में धूल,धूम्र अथवा उत्तेजक अन्य सूक्ष्म रेणु का प्रवेश न हो सके ऐसे स्थान में रहकर शक्ति के अनुकूल कार्य करते रहने से रोगी अधिकतर स्वस्थ रह सकते हैं। इस रोग में बार बार सीढ़ी चढना तथा श्रम का कार्य करना अहितकर है। भोजन में भी गुरू द्रव्य सदा ही वर्जनीय है। शराब तथा तम्बाकू, बीडी, सिगरेट, चुरट आदि पीना बन्द करना चाहिए। साधारण हल्के तथा पुष्टिकर भोजन से शारीरिक स्वस्थता कायम रखना इस रोग के आक्रमण से बचने का विशिष्ट उपाय है।

प्रतिविधानात्मक—जीर्ण श्वास कास ज्वर में कास ही सर्वाधिक पीडादायक है। जहां कफ बहुत शुष्क, चिपचिपा हो जाता है वहां कफ को ढीला करने के लिए शृंग्यादि चूर्ण, शुद्ध नौसादर, अष्टांगावलेह, भ रंग्यादि लेह, अपराजितालेह, विश्वादि लेह आदि हितकर हैं। स्थानिक क्रिया के लिए तालीसादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण आदि चाटना तथा चन्द्रामृत रस, लवङ्गादि चूर्ण चूसें। रोग की वर्द्धितावस्था में तरुण श्वास कास ज्वर के समान चिकित्सा करनी चाहिए। जीर्णावस्था में अभ्रक भस्म घटित औषधियां जैसे शृंगाराभ्र, डामरेश्वराभ्र आदि के प्रयोग से फुफ्फुसीय परिवर्तन में लाभ हो सकता है। व्याघ्रीहरीतकी, वृ० वांसावलेह, च्यवनप्राश, शृङ्गीगुडघृत, भार्गीशर्करा आदि के दीर्घ काल तक के प्रयोग से रोगी को काफी लाभ हो सकता है। विशेषत रोगोपशम के समय उपरोक्त औषधियों के प्रयोग से रोगाक्रमण को

दीर्घ काल तक रोका जा सकता है। हृत्पिन्ड की दुर्बलता मे तदनुरूप चिकित्सा अतीव प्रयोजनीय है। उपशम के समय पर बांसारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, पार्थारिष्ट आदि रोगोपशामक तथा बलवर्द्धक औषधियो का प्रयोग हितकर है। कोष्ठबद्धता इस व्याधि मे एक विषम उपसर्ग है। इस उपसर्ग को सर्वथा नष्ट करने के लिए सचेत रहना चाहिए नहीं तो केवल रोग की ही चिकित्सा से विशेष लाभ नहीं होता है। कोष्ठबद्धता से पेट मे वायु उत्पन्न हो कर रोगी को खांसी से परेशानी हो सकती है। श्वास रोग का आक्रमण होने से श्वास रोगोक्त उपचार करना चाहिये। पाश्चात्य शास्त्रोक्त औषधियों में से कफ ढीला करने के लिये *Pot. iodide*, आक्षेप कम करने के लिये Belladona, Stremoniam, lobelia आदि तथा Penicillinका वाष्पग्रहण सहायक है। प्रतिदिन प्रात. काल अथवा शयनकाल मे तुलसी की पत्ती की चाय मे नमक डालकर लेते रहने से कासवेग कम रहता है।

जीर्ण पूयःज श्वास कास ज्वर

संज्ञा— यद्यपि इस व्याधि को एक विशिष्ट श्रेणीयुक्त करना सम्भव नहीं है – परन्तु जीर्णश्वासकास[illegible] की कुछ श्रेणियो मे श्वास नलिकाओ के भीतर स्राव संचित हो कर वहां सडन उत्पन्न होती है, जहा से थूक के रूप मे दुर्गन्धयुक्त कफ का स्राव होता है। किसी किसी क्षेत्र मे ऐसा दुर्गन्धयुक्त थूक मृत्यु पर्यन्त निकलता रहता है। इस दुर्गन्धयुक्तस्राव का प्रधान चिन्ह नियत कर उन क्षेत्रो मे जीर्ण पूय ज श्वास कास ज्वर की संज्ञा दी जाती है। अतः इसको दुर्गन्धयुक्त जीर्णश्वास कास ज्वर भी कहा जाता है।

विकृति विज्ञान—इस व्याधि मे श्वास नलिकाओ मे जीर्ण प्रदाह के साथ उसके बहिः प्राचीर मे स्थूलता भी मिलती है। इसमे श्वास नलिकाओ की दीवारो मे छाले पड जाना अथवा उसके विकारो मे प्रमारण मिलता है। -वहां से पूय युक्त स्राव होता रहता है। मृत्यु के पश्चात् फुफ्फुस मे कोमलता पाई जाती है तथा टुकडो में श्वासनलिका तथा वायुकोषो के प्रदाहयुक्त स्थान नजर आते है। फुफ्फुसतलो मे शोथ भी मिलता है। कटी हुई श्वासनलिकाओ से दुर्गन्धयुक्त कफ का स्राव होता है

लक्षण—इस व्याधि मे जीर्ण श्लेष्मजश्वास कास ज्वर के सभी लक्षण मिलते है। इसके अतिरिक्त एक विशिष्ट प्रकार का थूक पाया जाता है। साधारणतः ऐसे थूक मे छोटे छोटे पीले रंग के अति दुर्गन्धयुक्त गाढ़े कफ के टुकड़े मिलते है। रोगी के श्वास से भी दुर्गन्धि आती है। रोगी स्वयं भी यह दुर्गन्धि अनुभव करता है।

उपसर्ग व परिणति—श्वास नलिकाओ की दीवारो मे क्षत व्रण शोथ या सडनशील क्षत अथवा फुफ्फुस के किसी–किसी अंशो मे श्वास नलिका तथा वायु कोषो का सम्मिलित प्रदाह आदि उत्पन्न हो सकते है। इससे कभी–कभी रक्त मे पूयः संचार हो कर रोग की तीव्रावस्था प्रगट हो सकती है। उसके फलस्वरूप कभी–कभी मस्तिष्क मे भी व्रणशोथ उत्पन्न हो सकता है।

रोग निर्णय—फुफ्फुसीय व्रणशोथ अथवा सडनशील क्षेत्रो मे, श्वासनलिकाओ के विस्फारण मे तथा फुफ्फुस खण्डान्तर्गत पूय संचार मे दुर्गन्धियुक्त थूक का निर्माण हो सकता है। रंजन रश्मि की सहायता से फुफ्फुस की अवस्था का पता लगा कर इस रोग का वास्तविक निदान सरलता से हो सकता है।

रोग प्रगति—यह रोग प्रगतिशील है अर्थात् दिन प्रतिदिन रोग बढ़ता जाता है। परन्तु प्राथमिक अवस्था मे बीच–बीच मे काफी दिनो तक दुर्गन्धियुक्त कफ का निकलना बन्द रह सकता है, परन्तु जीर्ण श्वास कास ज्वर के अन्य लक्षण विद्यमान रहते है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—यह रोग असाध्य माना जाता है क्योकि रोगी की भित्ति सुदृढ़ हो जातीः है। इसमे रोगी क्रमशः हीनबल हो जाते है। पूय युक्त स्राव से बराबर विषशोषण के कारण कुछ

वर्षों के भीतर मृत्यु हो जाती है। अन्त मे चाहे अत्यधिक दुर्बलता तथा अवसाद हो, चाहे रक्त की विषमयता अथवा पूयमयता हो-रोगी की मृत्यु का सन्निकृष्ट कारण बन जाता है।

चिकित्सा—इस व्याधि मे अन्यान्य चिकित्सा पूर्णरूपेण श्वासकास ज्वर के समान है। थूक का दुर्गन्धयुक्त निकलना ही इस व्याधि की चिकित्सा मे महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसलिये आयुर्वेदोक्त औषधियों के भीतर लहसुन तथा गधप्रसारणी प्रधान है। प्रतिदिन प्रात साय लहसुन का क्षीरपाक सेवन करने से अवश्य ही लाभ होगा। कुछ दिनो तक नियमित रूप से सेवन करना चाहिये। भोजन मे भी लहसुन का उपयोग करते रहना चाहिये। यद्यपि गधप्रसारणी (ताजी व हरी) विशेष रूप से आन्त्रिक दुर्गन्धि नष्ट करने मे प्रयुक्त होती है, परन्तु इन क्षेत्रों मे भी इसका स्वरस लाभदायक सिद्ध होगा। हरिद्राचूर्ण के प्रयोग से काफी लाभ हो सकता है। पश्चात् शास्त्र के अनुसार Creosote का प्रयोग विशेष हितकर है। *Creosote* के साथ ही साथ जीर्ण श्वास कास ज्वरोक्त औषधियो का प्रयोग भी वाछनीय है।

जीर्ण औपसर्गिक श्वास कास ज्वर—

इन क्षेत्रों में—जैसे कि पहिले ही बताया गया है हृत्पिन्ड व वृक्क की बीमारी मे साधारणत तथा रक्तवात की बीमारी मे कभी-कभी जीर्णश्वासकास ज्वर प्राथमिक न हो कर दूसरी बीमारियो के उपसर्ग के रूप मे उत्पन्न हुआ है-इस के सम्बन्ध मे निश्चित हो जाना विशेष आवश्यक है, क्योंकि प्राथमिक रोग की चिकित्सा उपेक्षित रह जाने से श्वासकास ज्वर की चिकित्सा से आशानुरूप फल लाभ नहीं हो सकता है। अत इन क्षेत्रों मे प्राथमिक रोग के लिये मुख्य चिकित्सा तथा श्वासकास ज्वर के लिये गौणचिकित्सा होनी चाहिये।

बाह्य पदार्थ अथवा रासायनिक वस्तुओ से जीर्ण श्वास काम ज्वर उत्पन्न होने से फुफ्फुस के अन्दर विशिष्ट परिवर्तन आ जाते हैं। अतः रोग का पता लगते ही रोगी को अपनी वृत्ति को बदलने के लिये अथवा स्थान त्याग करने के लिये परामर्श देना चाहिए। साधारणत. शारीरिक पुष्टि के ऊपर विशेष ध्यान देकर अन्यान्य लक्षणानुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

जीर्ण जालिकामय श्वास कास ज्वर मे तरुण जालिकामय श्वास कास ज्वर के समान चिकित्सा पद्धति का अवलम्बन करना चाहिये।

—कवि. श्री एस एन.बोस. L.A.M.S., D Sc.A.
प्रिन्सीपल—दयानन्द आयु० कालेज,
जालन्धर।

: पृष्ठ ११११ का शेषांश। ::

वात कफ प्रधान रोगो को जिन्हे कमर, घुटनो मे दर्द, पिण्डलियों मे हडकल मस्तिष्क की दुर्बलता के साथ साथ धातु की दुर्बलता, शारीरिक कमजोरी हो उन्हे अश्वगन्धादि रसायन अधिक लाभदायक है। गरीब रोगियो के लिए भी बहुत उत्तम है।

अश्वगन्धादि रसायन —

असगन्ध नागोरी ५ तोला, सोंठ ५ तोला, मिश्री १० तोला तीनो कूट कपडछन करके घृत लगाकर ढक्कनदार शीशी मे रखले।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक। प्रात सायं गौदुग्ध से।

धातु की निर्बलता, उत्तेजना का अभाव, शीघ्र पतन, यन्त्रों की दुर्बलता, शारीरिक कमजोरी पर अवस्थानुसार वसंतकुसुमाकर रस और मकरध्वज वटी प्रयोग करने के लिये देते है।

—श्री वैद्य गोवर्धनदास चागलानी,
श्री घनश्याम आयुर्वेद भवन,
पटियालीदरवाजा,एटा।

सूतिका-सन्निपात-ज्वर चिकित्सा

[१]

श्री डा० सन्तोषकुमार जैन M. Sc. A., A. M. S.

इस भयंकर व्याधि का ठीक निर्णय होने के बाद इसकी चिकित्सा अत्यन्त सावधानी एवं ध्यान पूर्वक करने में कभी भी आलस्य नहीं दिखाना चाहिए। बाह्य कारणों को दूर करने का आवश्यक प्रयत्न करना चाहिए। प्रसव होने के पूर्व सब साधन अच्छी तरह जुटा लेने चाहिए। प्रसूतालय वाल प्रजनन सम्बन्धित उपकरणों में सुसज्जित अच्छा स्वच्छ सुन्दर और शास्त्रोक्त लक्षणानुसार बना लेना चाहिए। प्रसूति चिकित्सक दाई और नर्स एवं विशोधित औजारों का प्रबन्ध भी अच्छी तरह से कर लेना जरूरी है। जीवनीय, बृंहणीय और वातहर औषधियों का संग्रह प्रथम ही कर लेना आवश्यक है। वेदना शामक औषधियों में भारंगी, पीपलामूल अजवायन और उत्तम सुरा, मृत संजीवनी कमरे में रख लेना अच्छा है। भूत-बाधा को दूर करने के लिए, अगर, चन्दन, कपूर, देवदारु, राल, तगर और कचूर की धूप बनाकर प्रयोग के लिये रख लेते हैं। वायु शोधन और कीटाणु नाश के लिए सरसों, नीमपत्र, गंधक, लोबान, सरसों, एवं राई का तैल और राई आदि को प्रसूतालय में जलाने के लिए इकट्ठा कर लेते है।

गर्भिणी को प्रसव के पूर्व बल्य, हृद्य एवं सुपाच्य भोजन देकर स्वस्थ रखना चाहिए। जनन संस्थान की अन्तस्थ परीक्षाएं जहां तक हो सके बहुत ही कम करनी चाहिए और गर्भिणी के साथ प्रसव के अन्तिम दिनो में कभी भी संभोग नहीं करना चाहिए जिससे जीवाणुओं को संक्रमण करने का कभी भी मौका न मिल सके। प्रसव से पूर्व जननसंस्थान के बाह्य भाग को साफ करके विसंक्रामक विलयनों से जैसे पारद लवण के विल-यन से, कार्बोलिक या लाइसोल या डिटोल के विल-यन से विसंक्रमित कर लेना चाहिये।

स्थानिक संक्रमण की दशा में गर्भाशय को उत्तेजित करके उसके संकोचों को बढ़ा देना चाहिये जिससे कि गर्भाशय में स्थित गलित एवं विषाक्त अपरा इत्यादि के भाग बाहर निकल जावें तथा गर्भाशयस्थ व्रण भी साफ हो जावे। इसके लिये 'गुह्य रोगे च तत् सर्वं कार्य सोत्तर बस्तिकं' के शास्त्रोक्तानुसार क्षीरीवृक्ष कषाय का या व्रण शोधन द्रव्यों के कषाय का लवण विलयन या मृदु संक्रामक विल-यन का अथवा दशमूल कषाय का या केवल १०५ से ११० डिग्री तापमान के उष्णजल की आधा गैलन प्रमाण की उत्तर बस्ति देवें। जब योनि से पूययुक्त स्राव होता है तो उत्तर बस्ति देना आवश्यक ही होता है। इससे व्याधि की वृद्धि रुक जाती है और गर्भाशयस्थ क्षत साफ होजाते है। पूय भी बनना रुक जाता है एवं रक्त का शुद्ध संचार होने लगता है। उत्तर बस्ति के बाद कभी कभी बलातैल, वाग्भट्टोक्त बृहद सहचर तैल का गर्भाशय में अन्तः क्षेप करने या पिचुधारण करने से काफी लाभ होता हुआ देखा गया है। यदि वेदना अधिक बढ़ जाय और कमर में दर्द होने लगे तो इसका प्रयोग करके
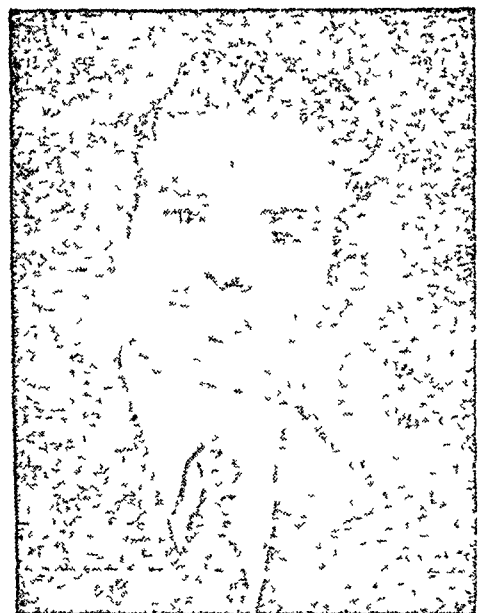
बला तेल ही लगावें। नाभि के नीचे वस्ति प्रदेश पर सरसों को पीस गरम करके प्रलेप करें तथा वातघ्न द्रव्यों से स्वेदन करें। त्रिफला क्वाथ का आच्योतन देना या उदुम्बरसार को गरम पानी में घोल कर उससे आच्योतन करना एवं उत्तर बस्ति देना भी श्रेयस्कर सिद्ध हुआ है।

यह तो सर्व संगत सिद्धान्त है कि सूतिका सान्निपातिक ज्वर वात प्रधान होता है अतः वात नाशक स्वेदन, बलातैल, लाक्षादि तैल, हेम सुन्दर तैलादि की मालिश, प्रलेप एवं औषधि आदि देना श्रेयस्कर है। वातदोष नाशक क्रिया में दशमूल का क्वाथ बना कर उसमें गौघृत मिलाकर मन्दोष्ण पान कराने से अथवा दशमूल की औषधियों के साथ गौ दुग्ध को पकाकर उसमें मिश्री मिलाकर पान कराने से प्रसूता के समस्त उपद्रव निःसदेह शान्त हो जाते हैं। यह क्वाथ प्रसूता के लिए अमोघ उपाय है और प्राण संजीवन देने वाला है। शास्त्र में कहा भी है कि—

"सिद्ध द्विपंचमूलाभ्यां पय शर्करया युतम्।
सूतिकोपद्रवान्हन्ति पीत मात्र न संशयः॥

आन्तरिक अशुद्धता को दूर करने के लिये एवं जेर आदि अवांछनीय वस्तुओं को गर्भाशय से बाहर निकालने के लिए "देवदार्व्यादि क्वाथ" प्रसिद्ध शास्त्रोक्त योग है। इसके देने पर प्रसूताको किसी रोग का आक्रमण नहीं होता है और इसके जन्तुघ्न होने के कारण गर्भाशयादि जनन संस्थान के अंगों में किसी भी प्रकार से पूयमयता नहीं उत्पन्न होती है और न रक्त जन्तुओं के विष से दूषित हो पाता है। इस तरह यह प्रसूता के सम्पूर्ण दोषों को शमन करके बल देता है।

प्रातः काल 'देवदार्व्यादि क्वाथ' शास्त्रोक्तानुसार बनाकर उसमें भुनी हींग १ रत्ती और सेंधा-नमक का चूर्ण २ रत्ती मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे प्रसूतज्वर तथा प्रसूत रोग के उपद्रव-शूल, खांसी, श्वास, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, शिर शूल, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन तथा पित्त और कफ से उत्पन्न हुए समस्त रोग शान्त हो जाते हैं। वास्तव में देवदार्व्यादि क्वाथ प्रसूतिका रोग में बहुत ही उत्तम साबित हुआ है।

गर्भाशय स्थित क्लेद यदि जल्दी ही बाहर निकाल दिया जाय तो प्रतापलंकेश्वररस्थ वत्सनाभ कज्जली और चित्रक विशेष कार्यकारी होने से योग्य अनुपान द्वारा शुरू से आखिर तक देते रहने से रुग्णा को फायदा होता जाता है और प्रातः सायं प्रतापलंकेश्वर के साथ त्रिभुवनकीर्ति २ रत्ती, चित्रक चूर्ण १ माशा मिलाकर देने से एवं भोजनोपरांत दोपहर रात में दशमूल काथ या चिरायता काथ ४-४ तोले की मात्रा में देते रहने से व्याधि नष्ट करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

मैंने अपने अनुभव द्वारा इस रोग में प्रतापलकेश्वर रस २ रत्ती, हिंगुलेश्वर २ रत्ती, शीतभंजी रस २ रत्ती, इन तीनों को एकत्र मिलाकर ३ मात्रा बना सुबह दोपहर एवं शाम को घी के साथ दिया है ऊपर से दशमूल काथ २ तोला पिलाया है। इस योग को सूतिका रोगों को दूर करने में अति लाभदायक पाया है।

सूतिका रोग में रुग्णा की आन्तरिक प्रतिकारक शक्ति बढ़ाना आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसके अभाव में पुनः पुनः कुछ समयान्तर से सूतिका ज्वर आजाया करता है और दिनों दिन स्वास्थ्य क्षीण होता जाता है। इसके लिए निम्नोक्त योग लाभप्रद है—मल्ल १ तोला, वत्सनाभ ३ तोला, प्रवालभस्म ४ तोला, कज्जली ४ तोला, शिलाजीत ४ तोला, त्रिफला ८ तोला, व्योष ८ तोला, गुग्गुलु ८ तोला, इनको एकत्र करके कड़वे निम्ब की अन्तः छाल के कषाय की २१ भावना देकर त्रिफला काथ की भी २१ भावना देनी चाहिए। इसको यथावस्था एवं यथा मात्रा मे दशमूलारिष्ट के साथ देना उपयुक्त है। वैसे दशमूलारिष्ट का भोजनोत्तर २-२ तोले की मात्रा में ताजा जल के साथ मिलाकर

लक्षणानुसार प्रयोग करते हैं।

इस सन्निपात ज्वर में उपद्रवों को नष्ट करने के लिए सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि उपद्रवों के अभाव में तो इस सन्निपात के साध्य होने की बहुत कुछ आशा रहती है। यदि उपद्रव उत्पन्न हों तो उनकी चिकित्सा दोष दूष्य तारतम्य देखकर यथावस्था करनी चाहिए।

विबन्धावस्था में एरण्ड तैल १ से २ तोला दशमूल क्वाथ में मिलाकर दें अथवा अभयादि मोदक दशमूल क्वाथ से दें।

सर्वांगमर्दावस्था में—महायोगराजगुग्गुल या समीरगज केशरी या वातगजांकुश १-१ गोली दशमूल क्वाथ से देते हैं और सारे शरीर पर महानारायण तैल, बला तैल, दशमूल तैल या महामाष तैल की मालिश करवाते हैं। दाह विशेष होने पर सूतिका दशमूल तैल को शरीर पर मालिश के लिए देते हैं।

कंपनावस्था में प्रतापलंकेश्वर रस १-२ रत्ती आर्द्रक स्वरस एवं मधु के साथ चटाकर ऊपर से दशमूलारिष्ट २ तोला या सुदर्शन अर्क ४ तोला देते हैं। कभी लक्षण विशेषानुसार दशमूलारिष्ट भी देते हैं।

आक्षेप एवं मूर्च्छावस्था में नस्य विशेष देकर मूर्च्छा हटाकर मल्लसिंदूर ½ से १ रत्ती की मात्रा में या कस्तूरी भैरव १ से १½ रत्ती की मात्रा में पान के स्वरस तथा मधु से देते हैं। शिर पर गुलरोगन या हिमसागर तैल की मालिश देते हैं।

अतिसारावस्था में आनन्दभैरव या कर्पूररस या अगस्त्य सतराज रस या शंखोदर रस यथावत् लक्षणानुसार १ से २ रत्ती की मात्रा में प्रतापलंकेश्वर रस के साथ मधु मिलाकर देते है।

जीर्णज्वर एवं यक्ष्मा की प्रवृत्ति होने की आशंका में स्वर्णवसन्तमालती १ रत्ती, अभ्रक ½ रत्ती, सत्वगिलोय १ रत्ती, एक मात्रा में सुबह शाम मधु के साथ सेवन कराते हैं। कभी सर्वज्वरहर लोह २ रत्ती की मात्रा में सुदर्शन अर्क से देते हैं। इस प्रकार संक्षेप में उपद्रव के लक्षणानुसार चिकित्सा करते रहने पर इस सन्निपात ज्वर को ठीक करने मे काफी सहायता मिलती और रोग ठीक हो जाता है।

इस रोग के लक्षणों के साथ संग्रहणी के विशेष लक्षण मिलने पर जीरकाद्य मोदक का सेवन कराया जाता है। यह मोदक स्त्रियों के सम्पूर्ण रोगों को दूर कर भूख को बढ़ाता है और संग्रहणी के विशेष लक्षणों को दूर करता है। इससे शूल अफरा और विबंध भी नष्ट होते हैं।

इस रोग के साथ पांडु और अर्श रहने पर "भद्रोत्कटाद्य घृत" का सेवन कराया जाता है। इससे अग्नि दीप्त होकर रसरक्तादि धातुओं का बनना बराबर शुरू हो जाता है और पांडु एवं अर्श के लक्षण दूर होजाते हैं। यह घृत अग्नि दीप्त करने के साथ दुग्ध को भी शुद्ध करता है—यह इसकी विशेषता है।

प्रसूत रोग में समयानुसार सूतिका विनोदरस, सूतिकारि रस, ताम्रभस्म, मकरध्वज, मृतसंजीवनी सुरा, रसशार्दूल, महारसशार्दूल एवं प्रसारिणी घृत भी सेवन कराने से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

प्रसूता को ज्वर की अधिकता एवं प्रलापादि होने पर सौभाग्यवटी १-१ गोली आर्द्रक स्वरस एवं मधु से चटाकर ऊपर से दशमूल क्वाथ में शुण्ठी चूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाने से तत्काल लाभ होता है। शुण्ठी चूर्ण के प्रक्षेप में एक विशेषता यह है कि अतिसार, ग्रहणी, शोथ, ज्वर और कोष्ठबद्धता इनमें से किसी एक की विशेषता रहने पर अथवा भाग्यवशात् सभी लक्षण मिलने पर भी शुण्ठी सभी दोषो का शमन करके प्रसूता को जीवनदान देती है।

जब मै सन १९५० से सन् १९५४ तक कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी एवं श्री विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल में गृहचिकित्सक के

स्थान पर कार्य कर रहा था तब उस समय में अपने अनुभव से सूतिका सान्निपातिक ज्वर में निम्नोक्त औषधियों का प्रयोग किया करता था एवं अभी भी करता रहा हूं—

नं० १—बृ. कस्तूरीभैरव २ रत्ती या वातकुलान्तक २ रत्ती, बृ. जहरमोहरा २ रत्ती—२ मात्रा प्रातः सायं आर्द्रक स्वरस से दी गई थीं।

नं० २—अभ्रकभस्म ४ रत्ती, शंखभस्म ४ रत्ती, शुद्ध यवक्षार ६ रत्ती तीनों को मृत संजीवनी अर्क में खरल में लेकर मिलाया गया। बाद में उसमें महासुदर्शन अर्क १ औंस एव जल १ औंस मिलाकर ३ खुराक बनाईं। फिर एक-एक खुराक ४-४ घंटे बाद दिन में ३ बार प्रसूता को दी गईं।

नं० ३—सौभाग्यवटी २ रत्ती रात्रि में सोते समय मृतसंजीवनी ½ तोला में घिसकर पिलाई गई।

मैं यह क्रम बराबर आवश्यकतानुसार ७ दिन, १२ दिन एवं २१ दिन तक चलाता था और इस प्रकार के प्रयोग से प्रसूता के सान्निपातिक विकार और सहयोगी दुर्बलता ज्वर, प्रलाप, शिर शूल बेचैनी, अनिद्रा, शोथ, उदरशूल, मक्कलशूल एवं अधिक पसीना आना आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

कई प्रसूताओं में विशेष बेहोशी, प्रलाप एवं हृदौर्बल्यावस्था में नं. १ में योगेन्द्र रस २ रत्ती २ मात्रा प्रातः सायं मधु से देकर मिश्रण नं. २ का योग बराबर दिन में ३ बार ४-४ घंटे से दिया गया था और पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। चन्द्रोदय और अमृताबिन्दु (कोरामीन) का भी अवस्था एवं लक्षणानुसार यथावश्यक मात्रा में प्रयोग किया गया था।

भयंकर मक्कलशूलावस्था में ज्वर, बेचैनी, अनिद्रा, दर्द प्यास, वायुविकार, रुके हुए स्राव एव अधिक पसीना होने पर प्रतापलंकेश्वर रस ३ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती—२ मात्रा प्रात सायं आर्द्रक स्वरस एवं मधु से दी गई और दोपहर तथा रात्रि में यवक्षार ३ रत्ती, लौहभस्म २ रत्ती, दोनों को अजवायन अर्क १ तोला में अच्छी तरह घिसकर कुमार्यासव १ तोला, दशमूलारिष्ट २ तोला धीरे-धीरे मिलाया गया और आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर दोनों समय प्रसूता को दिया गया और इस तरह आवश्यकतानुसार ५-१०-१४ दिन चिकित्सा करते रहने से पूर्ण लाभ होते देखा गया है।

प्रसूतिका सान्निपातिक अवस्था के साथ उदराध्मान (अधिक डकार का जोर), जोड़ों में, गर्भाशय एवं योनि में विशेष वेदना के लक्षण मिलने पर बृहत् वातचिन्तामणि या रसराज रस या वातगजेन्द्र रस २ रत्ती, स्वर्ण सूतशेखर रस २ रत्ती, शंखभस्म ४ रत्ती—इस प्रकार २ मात्रा सुबह शाम मधु से खिलाकर ऊपर से सूतिका दशमूल क्वाथ या देवदार्व्यादि क्वाथ में बला शुण्ठी का प्रक्षेप देकर पिलायें। एक दिन में केवल ४ मात्राओं से काफी लाभ होते देखा गया है। इस तरह आवश्यकतानुसार विशेष लक्षणावस्था मिलने पर अलग-अलग चिकित्सा देते रहने से ही इस रोग में मुक्ति मिलने में काफी आसानी पाई गई।

प्रसूतिकोन्मादावस्था (Peurperal insanity) में उन्मादगजकेशरी २ रत्ती, भूतभैरव रस ४ रत्ती २ मात्रा वातारिगणसिद्ध घृत के साथ दिया गया। दिन में ३ बार और दोपहर रात्रि में ब्राह्मी घृत ½-½ तोला से १-१ तोला तक खाने को दिया गया। इसके साथ चाटने को सारस्वत चूर्ण ३ माशा ३ मात्रा दिया गया। निद्रा के लिए अफीम या तान्त्रिक योग-पीपलामूल गुड़ के साथ दिया गया। इन्द्रयव की बकरी के दूध में पीसकर तलुओ पर मालिश की गई इन योगो से पूण लाभ मिला।

कुछ रोगियों में प्रातः सायम् स्वर्णवसन्तमालती २ रत्ती की २ मात्रा मक्खन तथा मिश्री के साथ दी गई और कुछ में बादाम के हलुए के साथ दी गई, अच्छा लाभ होता हुआ पाया गया। प्रसूतिका सान्निपातिक ज्वर के साथ रक्तस्राव विशेष होते

रहने पर 'अर्गट' के इन्जेक्शन मांसपेशी में या एक्सट्रेक्ट अर्गट लिक्विड १ ड्राम पीने के लिए अथवा अर्बोलीन की गोलियों का मुख द्वारा प्रयोग करना उचित लाभप्रद रहा। 'ओपियम' को वाईन में घोलकर उसका फाया योनिद्वार पर रखने से भी आशातीत लाभ हुआ। "कैल्सियम ग्लूकोनेट" का सूचीवेध सिरा में देने से भी लाभ हुआ है। इस प्रकार की चिकित्सा देने से प्रसूतावस्था में स्थानिक संक्रमण होने की विशेष सम्भावना नहीं रहती है। क्योंकि इससे गर्भाशय उत्तेजित हो करके संकोच बढ़ जाते हैं और बाहर से किसी प्रकार के जीवाणुओं का संक्रमण नहीं हो पाता है और गर्भाशय में स्थित गलित एवं विपाक्त अपरा आदि बाहर निकल जाते हैं। इसके लिए निम्नोक्त पाउडर भी प्रयुक्त किया है। 'अर्गो-टीन ६ ग्रेन+कुनीनसल्फ १॥ ग्रेन+एक्सट्रेक्ट नक्स वोमिका ¾ ग्रेन+पल्व डिजीटेलिस ¾ ग्रेन। इनको मिलाकर ३ मात्रा में ३ गोलियां बनाकर सुबह, दोपहर और शाम को पानी के साथ प्रयुक्त करते हैं। आवश्यकतानुसार तीव्र विरेचन देना भी लाभप्रद है, लेकिन इसके पहले प्रसूता के बलाबल पर विचार करना एवं रोग के लक्षणों पर ध्यान देना जरूरी है।

गर्भाशय के शोधन के हेतु प्रसव के ५-६ घंटे बाद साधारणतया प्रसूता स्त्रियों को अभी भी गांवों में निम्न काष्ठ औषधियां देने की प्रथा है जो एक पौष्टिक खाद्य का भी काम देती हैं—सौंठ, पीपल, पीपलामूल, अजवायन, हल्दी सभी ६-६ माशे का कपड़छन चूर्ण लें। पहले घी में गुड़ डाल कर गरम करके चूर्ण डाल दें और कुछ पुनः गरम करके ऊपर से पिस्ता, बादाम, चिरौंजी, किशमिश आदि मेवा यथावश्यक डालकर खाने को दें। मैं भी प्रसवोत्तर काल में प्रसूताओं को इन काष्ठौ-षधियों का योग खिलाने को देता हूँ। प्रजाता की चिकित्सा बालक होने के बाद ही शुरू हो जाती है। अपत्यपथ की बराबर सफाई करने के बाद डिटोल या बला तैल का पिचु रखकर विसंक्रमित रूई रखकर बन्धन लगा देता हूँ। पेट पर भी बंधन लगा देता हूँ। शीतल जल में उत्तम सुरा या मृतसंजीवनी या कोरामीन मिलाकर पिलाता हूं। बाद में प्रजाता की अवस्थानुसार १२ घण्टे १६ घण्टे या २४ घण्टे के बाद गुड़, पीपल और घी से साधित हल्दी का पेय देता हूं। इसके बाद पंचकोल साधित घी से अधिक भर्जित सौंठ का पेय मिश्री मिलाकर देता हूं।

प्रसवोत्तर पीड़ाओं एवं मूत्रावरोध को दूर करने के लिए जन्तुनाशक औषधि जैसे डिटोल, लाइसोल, पोटाश परमेंग्नेट, उदुम्बरसार या त्रिफला क्वाथ से युक्त गरम पानी से योनि को सिकवाता हूं और पिट्यूट्रिन का सूचीवेध मांसपेशी में देता हूँ। दुर्गन्धित स्थान को दूर करने के लिए आइडो-फार्म की १० से १५ ग्रेन तक की गोल गोलियां योनि में रखने को देता हूं। इसके साथ अवस्था एवं लक्षणानुसार पेनसिलीन पांच लाख, सेक्लो-पीन ४ लाख, स्ट्रेप्टो पेनसिलीन, डाइक्रिस्टेसीन या स्यूनोमाइसीन इनमें से किसी एक का सूची-वेध २४ घण्टे में एक बार मांसपेशी में देता हूं। और खाने के लिए सल्फाट्रायड, सल्फाडायजीन, सीवाजोल, सेप्टीनीलम इनमें से कोई एक गोलियां यथावश्यक मात्रा में प्रसूता को देता हूं। कभी-कभी इन्हीं गोलियों के साथ शैलजक्षार (सोडा-सिलीसिलास), मृदुक्षार (सोडाबाई कार्ब), मूत्रल-क्षार (यवक्षार, श्वेतपर्पटी, गोमूत्रक्षार), यथावश्यक मात्रा में मिलाकर देता हूँ। कभी शैलजक्षार के स्थान पर ज्वरांतक (एन्टीपायरीन) का भी प्रयोग किया है। सूतिकोन्माद में आयुर्वेदिक चिकित्सा के साथ पोटाशियम ब्रोमाइड या क्लोरल हाइड्रेट औषधि का एवं निद्रा के लिए अफीम का सूचिका-वेध देने का प्रयोग किया है। इसमें तान्द्रिक रोग लाभप्रद रहते हैं।

प्रसवोत्तर काल मे स्वस्थावस्था रहने पर सौभाग्य शुण्ठी पाक का सेवन करना अत्यन्त हितकर

सिद्ध हुआ है ।

पथ्य—दूध, बार्ली, दूध की वस्तुऐं, अनार, मौसम्बी, पुराने चावल का भात, मूंग की दाल, बथुआ का शाक, परवल, करेला, पालक, नेनुआ, ताजा मांस रस, चावल की रोटी और हल्की एवं वातनाशक वस्तुऐं खाने को देना हितकर है। इसके साथ कमरे को साफ सुथरा एवं बिस्तर को स्वच्छ रखना जरूरी है खुली हवा का साधारण आवागमन कमरे में होना ठीक है ।

प्रसवकालेऽपथ्यानि—

श्रम नस्य स्नानुनि मैथुन विषमाशनम् ।
विरुद्धान्न रोगरोष्मगात्म्यगतिभोजनम् ॥
दिवानिद्रामभिष्यन्दिचविष्टम्भगुरु भोजनम् ।
योषितां प्रसवे प्राहुरपथ्यानि महर्षय ॥

—डाक्टर सन्तोषकुमार जैन एम. एस सी. ए., ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य आर. एम. ओ. शास्त्राचार्य
शासकीय आयुर्वेदिक हास्पिटल, ग्वालियर ।

[२]

श्री लीलाधर शर्मा आयुर्वेदाचार्य

तीन उद्देश्यों को हृदयस्थ कर चिकित्सा करनी चाहिये ।

(१) यथा रोगोत्पादक विषोत्पत्ति का ज्ञान होने पर उस विष को शरीर में शोषित न होने देना (२) शोषित विष की क्रिया शान्त होने तक रोगी को जीवित रखने की चेष्टा करना (३) बढ़े हुए उपसर्गों (उपद्रवों) की चिकित्सा करना । इनमें पहिले और दूसरे उद्देश्यो मे सफल हो जाने से चिकित्सा में बड़ा सौकर्य होगा ।

(१) योनि में दुर्गन्धित क्लेद के होने पर या, यह सन्देह होने पर कि जरायु में कोई सड़ने वाली वस्तु है तो इस दशा में सर्व प्रथम योनि के भीतर या गर्भाशय की ग्रीवा पर्यन्त सड़न निवारक औषधि जैसे टिंचर आयोडीन १ ड्राम पानी गरम २ पौंड (१ सेर) में नीम के पत्तों को पीसकर पकाये पानी में छानकर धुलाई कर देनी चाहिये । धुलाई दिन मे ३-४ बार तथा रात्रि में भी ३-४ बार होनी आवश्यक है । इसके लिए डूस का प्रयोग करना चाहिये । इस तरह के सड़न शील पूयज ज्वरों में पंचक्षीर कषाय बड़े सिद्ध फलप्रद है । या केवल गूलर की पत्ती पीसकर पकाकर छानकर डूस दे सकते हैं । इससे रोग वृद्धि एवं ज्वर वेग अवश्य शांत होगा । फिर भी यदि योनि या गर्भाशय में सड़न शील मांस का टुकड़ा, झिल्ली आदि की आशंका हो तो किसी योग्य लेडी डाक्टर या नर्स के द्वारा उसे निकलवा देना चाहिए । एलोपैथी वाले इस स्थिति में पैनसिलीन का इन्जैक्शन देते हैं । किन्तु मेरे पास आयुर्वेदोक्त अजमोदादि वटी नाम की
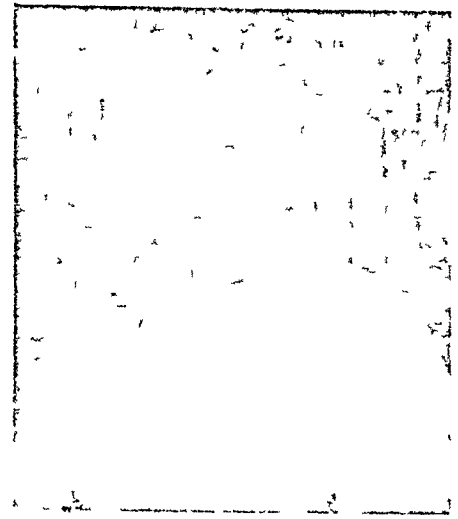
रक्त गुल्म

श्री वैद्य ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री

निदान—यह रोग स्त्रियों को होता है। जो स्त्रियां मासिक धर्म व प्रसूति के समय रूक्ष वात-वर्धक अहित आहार का सेवन करती हैं, तथा जिनके अपक्व गर्भ गिर जाते हैं, या जो योनि रोग से पीड़ित हैं उनको यह विकार होता है। गद निग्रह में—

"ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणैर्वेग विधारणैश्च।
सस्तम्भनोल्लेखन योनिदोषै' गुल्म' स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति॥"

सम्प्राप्ति—उपरनिर्दिष्ट कारणों से प्रकुपित वायु योनि में आर्तव को अवरुद्ध करता है और प्रति मास आर्तव की प्रवृत्ति बन्द हो जाती है जिससे गर्भाशय में गर्भ के समान रक्त गुल्म बढ़ने लगता है।

लक्षण—ज्वर, पिपासा, विदाह, स्वेद, शूल, हृल्लास, अरुचि, अनुत्साह, विवर्णता आदि गर्भ के समान लक्षण प्रतीत होते हैं। आरम्भ में गर्भ और गुल्म का भेद करने में कठिनाई होती है क्योंकि इसमें भी गर्भ के समान हृल्लास, ग्लानि, पादशोथ, नाभि प्रदेश में लोम राजी दर्शन, स्तनाग्र तथा स्तन मंडल में कृष्णवर्णता और काठिन्य, आर्तवादर्शन और दौहृदादि लक्षण
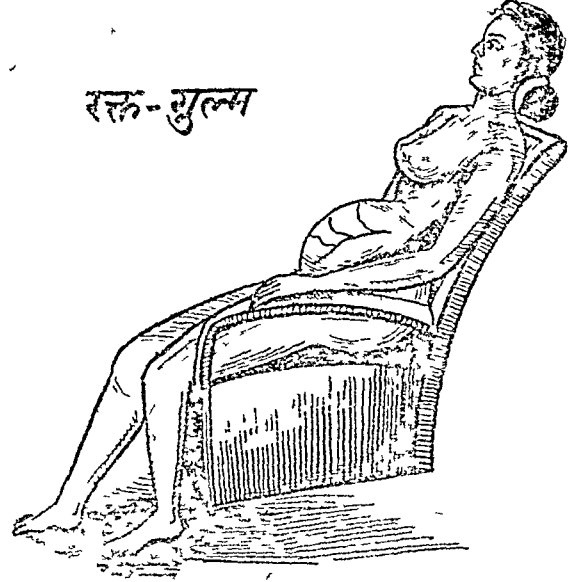
चित्र ११६

भी दिखाई देते है। परिणामतः प्रारम्भ में गर्भ का ही भ्रम होता है। किन्तु रुग्णा को उद्गार बाहुल्य, कठिन मल प्रवृत्ति, कुछ न खाने पर भी खाने का सन्तोष, उदर में गुड़गुड़ाहट, अफरा, अग्निमान्द्य, विवर्णता, रक्ताल्पता आदि पूर्व लक्षणों से गुल्म के निदान में सहायता मिलती है। इनके विभेदक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

गर्भ	गुल्म
१—हाथ-पांव-सिर-जैसे अंगों से स्फुरण होता है।	१—गुल्म के अवयव पृथक् न होने से उसका स्फुरण पिंडित जैसा होता है।
२—स्फुरण शूल युक्त नहीं होता।	२—स्फुरण के साथ शूल भी होता है।
३—स्फुरण-काल-गति-दिशा-कुछ नियम बद्ध सी होती है।	३—काल-गति-दिशा में स्फुरण की अनियमितता दिखाई देती है।
४—मासानुमास उदर वृद्धि क्रमशः होती है।	४—केवल गुल्म की ही वृद्धि पाई जाती है, और वह भी अनियमित। कुक्षि वृद्धि नहीं दिखाई देती है।
५—गर्भ वृद्धि क्रमशः होती है।	५—गुल्म अनियमित रूप से बढ़ता है।
६—चतुर्थ मास से गर्भ ध्वनि सुनाई देती है।	६—गर्भ जैसी हृदय ध्वनि नहीं सुनाई देती।

विवेचन—इन व्यवच्छेदक लक्षणों द्वारा गर्भ और गुल्म का निदान करना सुगम हो जाता है। उपशयानुपशय द्वारा भी इसका निर्णय किया जा सकता है । गुल्म एक विकृति है, अतः तीक्ष्णोष्णादि आहार-व्याचार द्वारा अपेक्षाकृत कुछ शीघ्र ही वह प्रभिन्न होकर नष्ट हो सकता है और उस समय रक्तस्राव ही एक मात्र लक्षण दिखाई देता है।

"अवस्थित लोहितमंगनाया वातेन गर्भ ब्रुवतेऽनभिज्ञा ।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः स्रुते पुन केवल एव रक्ते।।"
गर्भ जडा भूतहृत वदन्ति । ।" अ हृ. शा २

इससे यह प्रतीत होता है कि गुल्म का रक्त स्राव के साथ निकल जाना अथवा बने रहना उसकी कठिनता पर भी निर्भर है। गुल्म तैलाभ्यंग, मृदु स्वेद से भी कम हो सकता है । परन्तु केवल उपशय द्वारा गर्भ से गुल्म का व्यवच्छेद यथार्थ रूप से नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम लंघनादि वातप्रकोपक आहार-विहार का कारण तथा "वयोऽहोरात्रि भुक्तानां सोऽन्तगः। अर्थात् आयु अहोरात्र और भोजन के अन्त में वायु की स्वाभाविक वृद्धि होती है और गुल्म की वेदना भी इसी समय उग्र होती है।

गुल्म का निदान निश्चित होने पर भी चिकित्सा के लिये–"मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ।" अर्थात् गुल्म की चिकित्सा दशम मास के बाद करनी चाहिये ऐसा आदेश है। क्योंकि यह गुल्म गर्भ के समान बढ़ता है और उससे शरीरातिगामी पीडायें नहीं होती। अत दस मास तक गुल्म होने पर भी गर्भ की आशंका में दस मास प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि दसवें मास के अनन्तर भी प्रसूति नहीं हुई तो गुल्म समझकर उसका उपचार करना चाहिये। इसी उद्देश्य से आचार्यों ने "मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य. " का निर्देश किया है ऐसी धारणा हो जाना संभव है । किन्तु ऐसी बात नहीं है। यद्यपि प्रसूतिकाल दशम मास निश्चित है, फिर भी इसके बाद भी गर्भ उदर मे रह सकता है और निश्चित समय के बाद भी प्रसूति हो सकती है।

"आहारमाप्नोति यदा न गर्भः
शोषं समाप्नोति परिस्रुतिं वा ।
तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं
पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् ।।"
(च शा)

तथा—
"वर्षात् विकारकारीस्यात् कुक्षौ वातेन धारितः ।"
(अ. हृ शा.)

गर्भ को उचित आहार प्राप्त नहीं होना, अथवा रक्त स्राव द्वारा उसका पोषण न होकर शोषण होता है और दसम मासावधि के बाद भी उसकी पुष्टि होने पर प्रसूति हो सकती है । अत गर्भ विकारकारी बन जाता है। फिर भी इससे यह निश्चित है कि केवल गर्भ की आशंका-निरसनार्थ गुल्म की दसम मास के बाद चिकित्सा करने का विधान शास्त्रकारों ने नहीं किया। किन्तु दसम मास के बाद चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य गुल्म चिकित्सा की सुलभता है। 'रक्त गुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ।" यानी रक्त गुल्म की सुख साध्यता के लिए उसका पुराण होना आवश्यक है। पुराण रक्तगुल्म ही चिकित्सा में सुकर होना यह व्याधि प्रभाव है। इसलिए निदान का विनिश्चय होने पर भी चिकित्सा के लिए प्रतीक्षा की आवश्यकता है। हां, सौम्य उपचार किये जा सकते हैं। किन्तु तीव्र और तीक्ष्ण उपचार प्रातः,काल में ही करने चाहिये, अन्यथा गुल्म व गुल्मिनी दोनो को धोखा हो सकता है।

चिकित्सा—

उपरिनिर्दिष्ट विवेचन से गर्भ या गुल्म का व्यवच्छेदक निदान तथा चिकित्सा का सुयोग्यकाल इत्यादि विषय से पाठक सुलभता से परिचित हो सकते है। अतः रक्तगुल्म की शास्त्रीय सुयोग्य चिकित्सा के विषय में लिखते हुए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) प्रथम रोगिणी को स्नेहन तथा स्वेदन कर स्नेह विरेचन देना चाहिए और अन्तः शुद्धि करनी चाहिए। तदनन्तर

(२) गुल्म को शिथिल करने के लिए पलाशक्षार में सिद्ध किया हुआ सर्षप तैल पिलाना चाहिए और

(३) योनि द्वारा शोधक द्रव्यों की उत्तर बस्ति देनी चाहिए।

(४) उष्णोपचारों से गुल्म का भेदन करना चाहिए और भिन्न होने पर प्रदर के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

इन चिकित्सा सूत्रों के अनुसार—

यदि वेदना अधिक हो तो जलौका द्वारा अथवा सिरा मोक्षण द्वारा रक्तस्राव करना चाहिए।

रक्तपित्त नाशक क्षारों का घी व शहद से प्रयोग करना चाहिए। भोजन में लहसन, मद्य व तीक्ष्ण-मत्स्य खिलाना चाहिए। तिल के काढ़े में सोंठ, मिर्च, पीपर तथा भारंगी चूर्ण मिलाकर गुड़के साथ पिलाना चाहिए। वाराहपित्त व मत्स्यपित्त से कपड़े के टुकड़े को भिगोकर योनि में रख देना चाहिए।

भारङ्ग्यादि चूर्ण—भारंगी, पीपल, करंजछाल, पीपरामूल व देवदारु का चूर्ण तिल के क्वाथ के साथ देना चाहिए।

दन्त्यादि गुटिका—दन्ती, हींग, जवाखार, तोरई बीज, पीपल, गुड़ इनको थूहर के दूध से गोली बनाकर प्रयुक्त करनी चाहिए।

हिंग्वादि चूर्ण—हींग, वच, धनियां, जीरा, चव्य, चित्रक, पहाड़मूल, आमलोल, सैंधानमक, विड़नमक, समुद्री नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, दाड़िम छाल, हरड़, पोखरमूल, अम्लवेतस, हपुषा, अजाजी इन चीजों का कपड़छन चूर्ण कर अदरख व मातलुंग की भावना देकर रख ले। इस चूर्ण का उपयोग भी लाभदायक है।

अर्कपुष्प तैल—अर्कपुष्प में पकाये (सिद्ध) तैल का सेवन कराना चाहिए।

उपरनिर्दिष्ट कल्पों के अतिरिक्त वज्रक्षार, भास्कर लवण, कन्यादिरस, कुमार्यासव इन औषधियों का भी दोषानुसार व अवस्थानुसार रक्तगुल्म में उपयोग करना लाभदायक होता है।

पथ्य—एक वर्ष पुराने चावल, कुलत्थों का यूप, गाय व बकरी का दूध, मुनक्के, फालसे, छाछ, एरण्ड तैल, लहसुन, बथुआ, सहजना, नीबू, हरड़ तथा वातानुलोमक अन्नपान हितकर हैं।

अपथ्य—उड़द, जौ, वल्लूर (शुष्क मांस), मूली, मीठेफल आदि वर्ज्य हैं। अपान वायु, मल, मूत्र, श्वास, आंसू इनकी प्रवृत्ति को नहीं रोकना चाहिए तथा वमन व अधिक जलपान भी गुल्म रोगी के लिए अहितकर होता है।

—श्री ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
सुसावल

:: शेषांश पृष्ठ ३६४ का ::

योनि शोधनार्थ योग—

क्षारेण युक्तं पललं सुधा क्षीरेण वा पुनः।
आभ्यां वा भावितान् दद्यात् योनौ कटुकमत्स्यकान्॥

योनि शोधनार्थ पलाश क्षार से अथवा सेहुन्ड क्षार से युक्त तिल कल्क को योनि में देवें। वा क्षार एवं सेहुन्ड दुग्ध से भावित कटुक मत्स्यों को योनि मार्ग में देवे।

गुल्म रोगिणी के लिए अन्नपान—

लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्य प्रदापयेत्।
वस्ति सक्षीर गोमूत्रं स क्षारं दाशमूलिकाम्॥

अन्नपान में लहसुन, तीक्ष्ण मद्य एवं मछली का प्रयोग प्रशस्त है। दूध, गौमूत्र एवं क्षार से युक्त दशमूल क्वाथ की उत्तर बस्ति दे।

- श्री मणिराम जी शर्मा भिषगाचार्य आयुर्वेदा०
आयुर्वेद विश्वभारती, ज्योति केन्द्र,
सरदार शहर (राज०)

रक्त गुल्म निदान एवं चिकित्सा

श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य

चरक संहिता कथित निदान—

ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च ।
सरताम्भनोल्लेखन योनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिय रक्तभवोऽभ्युपैति ॥

अर्थात् ऋतुकाल में अनशन करने से, भय से विरूक्षण के द्वारा, वेग का निग्रह करने से तथा संस्तम्भक पदार्थ सेवन करने से, वमन से, योनि दोषों से स्त्री को रक्तज गुल्म हो जाता है ।

गुल्म क्या है—

गुल्म को एब्डामिनिल ट्यूमर्स (Abdominal tumours) कहते है । उदरगुहा में स्थिर या अस्थिर (फिरने वाला) धीरे-धीरे बढ़ने वाला या घटने वाला आलू आदि कन्द के समान गोला उत्पन्न होता है । उसे ही गुल्म नाम से कहा गया है ।

गुल्म प्रकार—

रोगानुसार इसको पांच प्रकार का बताया गया है । वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और स्त्रियों को होने वाला रक्तज कहलाता है । इन सब प्रकार के गुल्मों में अनुबन्ध रूपता (मुख्य कारणता) वायु की ही रहती है ।

रक्तगुल्म—

आयुर्वेद मतानुसार प्रसूतावस्था में योनि रोग या गर्भस्राव के हो जाने पर अथवा मासिक धर्म आने पर अपथ्य वातप्रकोपक भोजन, उपवास, भय, रूक्ष पदार्थ का सेवन, मूत्र आदि वेग का धारण, दूषित रक्त के प्रवाह को रोक देना, वमन योनि विकार या अन्य कारणों से वायु प्रकुपित होकर रक्त को खञ्चित कर दाह और पीड़ा सहित स्त्रियों के गर्भाशय में सौत्रिकतन्तुयुक्त गुल्म या बीजकोष पर गुल्म की उत्पत्ति करा देती है ।

ऋतुकाल में जब कि ऋतुमती की एक विशेष चर्या होती है, उसकी ओर ध्यान न देकर उसका पालन नहीं किया जाता है और ऋतुमती जब भूखी रहती या रक्खी जाती है या अकस्मात् कोई भय का कारण बन जाता है तो गर्भाशय में स्वाभाविक बीज की प्राप्ति की गति रुक जाती है । वेग निग्रहण विशेषकर मल मूत्र के वेगों का निग्रह, वमन तथा संस्तम्भकारक योग जो स्त्री को देर तक मैथुन सामर्थ्य प्रदान करने के विचार से वाजीकरण के सेवी प्रयोग कर सकते हैं उनके द्वारा भी बीज का ठीक से क्षरण नहीं हो पाता । बीज का क्षरण न होते हुए भी स्त्री के शरीर में कुछ ऐसी मानसिक स्थिति बन जाती है कि उसे गर्भ धारण हो गई है । गर्भ के सब लक्षण स्त्री पर प्रगट होजाते हैं पर वह गर्भ न होकर रक्तजगुल्म (रक्त का गोला) बनता है । (इसके लक्षणों को देखने से भी गर्भ का भ्रम होता है)

डाक्टरी में गर्भाशय मे गुल्म होने पर यूट्राइन फाइब्रस ट्यूमर (uterine fibrous tumour) और बीजकोषो पर गुल्म होने पर ओवेरियन ट्यूमर (ovarian tumour) कहलाता है । चरकाचार्य जी लिखते हैं कि—

यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैः
चिरात् सशूलः समगर्भलिङ्ग ।
सरौधिर स्त्रीभव एव गुल्मो
मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥

अर्थात् जो अग विशेष से नहीं (अपितु सम्पूर्ण) पिण्ड रूप ही देर से स्पन्दन करता है, शूलयुक्त गर्भ के समान लक्षणयुक्त (होता है) रक्तज, स्त्रियों में ही होने वाला गुल्म (होता है)। वह दसवा महीना बीत जाने पर ही चिकित्स्य है ।

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (करीर आदि) और रूक्ष भोजन, क्रोध, अति मद्यपान, सूर्य के ताप और अग्नि का अति सेवन, आम

(विदग्धाजीर्ण से उत्पन्न) दुष्ट रस, चोट और रक्त विकार आदि कारणों से वातानुबन्ध सह पित्त प्रकुपित होने पर पित्तज गुल्म की उत्पत्ति होती है। ये पित्तज गुल्म के निदान ही रक्तज गुल्म के भी कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भाशय या बीज कोष पर चोट लगने से भी क्वचित अर्बुद (रक्त गुल्म) की उत्पत्ति हो जाती है।

कभी कभी प्रसव के पश्चात् जब गर्भाशय अपनी प्राक्गर्भीयावस्था प्राप्त करने में असमर्थ रहता है और जब आम गर्भ का पात हो जाता है उसके बाद भी गर्भाशय में वैसी अवस्था बन जाती है। वहां पर वायु दुष्ट होकर गर्भाशय के मुख को अवरुद्ध करके गुल्म की उत्पत्ति करती है। यह गुल्म सरुज और सदाह होता है। इसे सुश्रुत ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है।

'नवप्रसूताऽहित भोजनाया या चाम गर्भं विसृजेदृतौवा।
वायुर्हितस्याः परिगृह्यरक्त करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥'

पूर्व में विवेचन किये गये हेतुओं से, या गर्भाशय को अति शीत लग जाना या शीतल जल से स्नान या शीतल वायु का सेवन, इतर हेतु से मासिक धर्म में बाहर निकलने वाला रक्त जब रुक जाता है तब वायु प्रकुपित होकर उसे गुल्माकार बना देती है। पहले छोटे बेर समान फिर सुपारी समान बनता है। पश्चात् शनैः शनैः बढ़ता जाता है।

मतान्तर में जिन आचार्यों ने गुल्म और विद्रधि को पृथक नहीं माना है वे पुरुषों को भी रक्त गुल्म होना लिख सकते हैं। वस्तुतः शास्त्रकारो ने पुरुषों के लिए रक्त गुल्म का निषेध किया है क्योंकि पुरुषों के गर्भाशय और बीजकोष न होने से रक्त गुल्म पुरुषों को नहीं होता है। भगवान धन्वन्तरि और आत्रेय के मतानुसार वह अंतर्विद्रधि ही कहलाती है।

अस्तु यदि किसी कारणवश प्रारम्भ में कहे हुए पार्श्व, नाभि आदि स्थानों में रक्तपित्त आदि रोग का रक्त रुक जाय तो वह अन्तर्विद्रधि रूप बन जाता है, रक्त गुल्म नहीं होता।

अन्तर्विद्रधि और गुल्म दोनों के स्थान एक होने से दोनो के निर्णयार्थ भगवान् धन्वन्तरि सुश्रुत संहिता में लिखते है कि–

'मांस शोणित बाहुल्यात् पाक गच्छति विद्रधि।
मास शोणित हीनत्वाद् गुल्म पाकं न गच्छति ॥'

अर्थात् शोणित की प्रधानता के हेतु से विद्रधि का पाक हो जाता है तथा रक्त मांस का हीनयोग होने से गुल्म का पाक नहीं होता।

इस रोग में ज्वर, प्यास, दाह, बेचैनी, देह का रंग लाल-पीला हो जाना, भोजन के पचने के समय अधिक शूल होना, स्वेद, खट्टी डकार, अन्न का विदाह हो जाना आदि की प्रतीति (पैत्तिक गुल्म के सदृश) तथा मासिक धर्म न आना, स्तनो के अग्रभाग काले हो जाना, उबाक, मुंह का पोलापन, आहार आदि के भाव अभाव, योनि में से दुर्गन्धयुक्त स्राव होना, तोड़ने समान पीड़ा, गर्भ समान गुल्म का फड़कना आदि लक्षण गर्भ धारण के समान प्रतीत होते हैं। परन्तु सगर्भा के शरीर में बालक के हाथ पैर आदि अङ्ग जैसे फड़कते हैं, ऐसा नहीं होता। बहुत समय के बाद क्वचित् सारे गुल्म रूप पिण्ड का स्पन्दन होने का भास होता है, साथ में शूल समान वेदना भी रहती है। ऐसी वेदना (शूल) गर्भ होने पर नहीं होती है। केवल इतना ही गर्भ और गुल्म में भेद रहता है।

निर्णय—

१—गर्भ धारण के ५-७ मास होने पर उसके स्थान के हटाने पर गर्भ नहीं रहता और रक्तगुल्म बांयी दाहिनी ओर कुछ हट जाता है। फिर स्त्री को चित्त लेटा, गुल्म को मूल स्थान से इतर स्थान पर हटा फिर दबाकर रक्खे। पश्चात् स्त्री को सावधानीपूर्वक बैठी करने से दबा हुआ गुल्म अपने स्थान पर आजाता है।

२—आठ-आठ अंगुल के चौकोर सफेद कपड़े को गेरू के जल में भिगोसमान परिमाण में निचोड़ एक टुकड़े को गुल्म पर और दूसरे को उदर पर फैलावे। गर्भ होने पर दोनों कपड़े सम समय में सूख जाते हैं। गुल्म होने पर गुल्म पर रक्खा हुआ कपड़ा देर से सूखता है।

३—ध्वनिवाहक यन्त्र (Stethescope) से सुनने से गर्भ होने पर उसके हृदय के स्पन्दन की आवाज सुनने में आती है। गुल्म होने पर आवाज नहीं आती।

४—गर्भाशय और बीजकोप में गुल्म (अर्बुद) होने पर अर्बुद गति और स्थान के अनुसार रोग लक्षण भी कुछ प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा उपयोगी स्मरणीय—

> ज्वरे तुल्यर्तुदोपत्वं प्रमेहे तुल्य दूष्यता।
> रक्त गुल्मे पुराणत्वं सुख साध्यस्य लक्षणम्॥

अर्थात् ज्वर में (रोग) ऋतु और दोप की समानता, प्रमेह में प्रकृति और वात आदि दूष्यों की समानता तथा रक्तगुल्म का पुरानापन अर्थात् १० मास व्यतीत होना, ये सुखसाध्यत्व के लक्षण है। आचार्यों ने रक्त गुल्म की चिकित्सा दश मास व्यतीत होने होने पर ही करने का आदेश दिया है। कारण (१) पिण्डत, स्पन्दन और शूल आदि कारणों से निर्णय हो जाने पर भी व्याधि महिमा की दृष्टि से १० मास व्यतीत होने पर गर्भाशय आदि अङ्गों में चिकित्सा सहन करने योग्य बल आ जाता है। कच्चा दोष पक जाता है, अन्तर्लीन दोष बाहर आकर संचित हो जाता है। इन हेतुओं से अग्निवेश, धन्वन्तरि आदि आचार्यो ने रक्त गुल्म को जीर्ण होने पर सुख साध्य माना है। आधुनिक चिकित्सक (डाक्टरो) रक्त गुल्म के निर्णय होजाने पर शीघ्र ही आपरेशन कर डालते हैं। उनकी मान्यतानुसार १० मास तक प्रतीक्षा नहीं की जाती।

रक्त गुल्म की चिकित्सा में विधानानुसार अर्थात् १० मास के पश्चात् स्नेहन, स्वेदन देकर स्निग्ध विरेचन देना हितकर है। यदि जल्दी रक्तस्राव न हो तो योनि विरेचक औषधि देनी चाहिए।

रक्त गुल्म में पिप्पल्यादि घृत की उत्तर वस्ति दें या उष्ण पदार्थों से रक्त गुल्म का भेदन कर योनि द्वार से रक्त को निकाल कर चिकित्सा करनी चाहिए।

पञ्चानन रस, दन्त्यादि गुटिका या स्नुहीक्षीर गुटिका आदि औषधियों के प्रयोग से गुल्म नष्ट हो जाता है। रक्त गुल्म के नष्ट हो जाने के कई उदाहरण हमें (३-४ मास में बिना कष्ट स्नुहीक्षार गुटिका से) मिले हैं।

वृन्तयुक्त रक्त गुल्म (Polyp) होने पर गर्भाशय को प्रसारित कर संदंश यन्त्र (Forceps) द्वारा गुल्म को बाहर निकाल, गुल्म की जड़ में डोरी, या तार (Ligature) को बांध तारयुक्त आरी एक्रेजर द्वारा या कांच द्वारा सावधानी पूर्वक जड़ को काट गुल्म को अलग कर देना चाहिए।

प्रबल रोगावस्था में शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना ही उचित माना गया है।

चिकित्सा—(चरकोक्त)

> रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकाल व्यतिक्रमे।
> स्निग्ध स्विन्न शरीराय दद्यात् स्नेहविरेचनम्॥

रक्त गुल्म में गर्भकाल बीत जाने पर स्निग्ध, स्विन्न शरीर वाले के लिए विरेचन देवे।

> पलाशक्षार पात्रे द्वे द्वे पात्रे तैल सर्पिषो।
> गुल्म शैथिल्य जननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्।

पलाशक्षार २ आढक, तैल तथा घी दोनों २ आढक यथाविधि पकाकर (इस सिद्ध मिश्रण की) गुल्म को शिथिल कर सकने वाली मात्रा का प्रयोग करे।

(३) नित्य प्रातःकाल चित्रकमूल, पीपलामूल, करंज की छाल, देवदारु, और भारंगी का चूर्ण ४ माशे खाकर ऊपर से ४ तोले काले तिलो का क्वाथ (गुड मिलाकर) सेवन कराने से रक्तगुल्म

का नाश होता है।

(४) गोरखमुण्डी के फूल और वंशलोचन को समभाग मिलाकर चूर्ण करे। फिर चूर्ण, मिश्री और शहद तीनों ६-६ माशे मिलाकर देते रहने से रक्तगुल्म गर्भाशय विकार और गुदा सम्बन्धी दोष दूर होते हैं।

(५) रक्तपित्त नाशक क्षार को शहद घी के साथ चाटे। लहसुन, तीक्ष्णमद्य तथा मछलियां इसको (रोगी को) दिलावें। दूध गोमूत्र सहित (अथवा) क्षार सहित दशमूल की गुल्म भेदक वस्ति को रुधिर न दिखाई दे तो देवें। यथा—

रक्तपित्तहर क्षार लेहयेन्मधुसर्पिषा।
लशुनं मदिरां तीक्ष्णा मत्स्या चास्यै प्रदापयेत्॥
वस्तिं सक्षीरगोमूत्र सक्षार दशमूलकम्।
अदृश्यमाने रुधिरे दद्याद् गुल्म प्रभेदनम्॥
—चरक

(६) अर्थात् रक्त निकलने पर मांस रस तथा भात देवें। घी तथा तैल से अभ्यंग (तथा) पीने के लिए नई सुरा को देवें। यथा—

प्रवर्त्तमाने रुधिरे दद्यान्मासरसौदनम्।
घृत तैलेन चाभ्यग पानार्थं तरुणी सुराम्॥
—चरक

(७) शक्ति का संरक्षण करने के लिए नागभस्म वंशलोचन और शहद के साथ देते रहें।

(८) दन्त्यादि गुटिका—दन्तीमूल, हींग, जवाखार, कड़वी तुम्बी के बीज, पीपल और गुड़ को समभाग लेकर (मिला) थूहर के दूध में १२ घण्टे खरल कर आध-आध माशे की गोली बनावे। फिर रोज सुबह १-१ गोली देते रहने से जीर्ण रक्तगुल्म के रक्त का योनि द्वार से स्राव होकर धीरे-धीरे गुल्म नष्ट हो जाता है।

(९) रक्त के बहुत अधिक निकलने पर तो रक्तपित्त नाशक (तथा) वातरोग से पीड़ित स्त्री के लिए फिर सब प्रकार की वातहर क्रिया करनी चाहिए। घी तैल का सिंचन, मुर्गों तथा तीतरों को (भोजन निमित्त) मण्डयुक्त सुरा तथा अम्ल द्रव्यों से सिद्ध घृत का पान (भोजन से पूर्व) प्रयोग करना चाहिए। रक्त के अधिक प्रवृत्त होने पर तिक्त रस प्रधान द्रव्यो से साधित अनुवासन वस्ति अथवा जीवनीय पदार्थों के द्वारा सिद्ध घृत से उत्तर वस्ति दें।

(१०) ४ तोले तिल का क्वाथ कर पुराना गुड़ २ तोले, त्रिकटु १ माशे, भुनी हींग ४ रत्ती और भारंगी का चूर्ण ३ माशे मिलाकर नित्यप्रति प्रातःकाल सेवन कराने से रक्तगुल्म का रक्त योनि द्वार से बहकर निकल जाता है। यदि मासिक धर्म बन्द हो गया हो, तो इसके क्वाथ के सेवन से पुनः जारी हो जाता है।

(११) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह में लिखी हुई औषधियां स्नुहीक्षीर गुटिका (पपीते के साथ)— स्नुहीक्षीर गुटिका २-२ दिन में ३ समय जल के साथ देते रहें, और प्रतिदिन रोगिणी को पका पपीता एक फल १-२ या ३ समय में करीब १ सेर वजन का हो खिला देवे। इस तरह ४-६ मास तक प्रयोग करें। इस चिकित्सा से स्नेहन स्वेदन, छेदन, भेदन आदि किसी भी क्रिया के किये बिना ही अति बढ़ा हुआ गुल्म भी नष्ट हो जाता है। पपीता प्रातःकाल स्नुहीक्षीर गुटिका देने से पूर्व सेवन कराना चाहिए तथा मधुर पदार्थ सेवन करना वर्जित रखे। गुल्म कुठार रस और कुमार्यासव भी रक्तगुल्म का नाश करने में अति हितकारक सिद्ध हुए हैं।

गुल्म के सामान्य चिकित्सा सूत्र निम्न है—

लध्वन्न दीपन स्निग्धमुष्ण वातानुलोमनम्।
बृंहण यद्भवेद् सर्वं तद्हित सर्वं गुल्मिनाम्॥
स्निग्धस्य भिषजा स्वेद कर्त्तव्यो गुल्म शान्तये।
स्रोतसा मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्वणम्॥
भित्वा विबन्ध स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति।
स्यानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यध.॥

स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्त सर्वं गुल्मिनाम् ॥
— चक्रदत्त

गुल्म में दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वातानुलोमन, लघु पञ्चकर पदार्थों का प्रयोग करे। स्नेहन हो जाने पर स्वेदकर स्रोतों को खोल कर कुपित वात को जीते और विबन्ध दूर करें। स्थिर गुल्म में रक्तावसेक, बाहुमध्य में शिरावेध, स्वेदन एवं अनुलोमन करे।

रक्तज गुल्म मे—रक्त का मोक्षण करें। स्नेहन, स्वेदन एरण्ड तैल के साथ विरेचन करें। पलाशक्षार के साथ घृत पान करावें। तिल का क्वाथ घृत, पुराने गुड तथा त्रिकटु और भारङ्गी के साथ दे। अष्टांग हृदय में रक्त गुल्म के प्रकरण में योनि विरेचन का विधान है तथा गुल्म प्रभेदन के लिए शस्त्र-कर्म करना चाहिए।

शास्त्रानुसार १० माह पश्चात् स्नेहन, स्वेदन कराके स्निग्ध विरेचन देना हितकर है। त्रिकटु, भुनी हींग, भारङ्गी समभाग लेकर चूर्ण २ माशा तिल क्वाथ १ छटांक के साथ पान करावें।

अथवा यवक्षार तथा त्रिकटु चूर्ण को मद्य के साथ पान कराना चाहिए।

(१२) पञ्चानन रस, प्राणवल्लभ रस, पलाश घृत आदि भी रक्त गुल्म में हितकर हैं।

(१३) यदि पलाशक्षार सिद्ध घृत से भी गुल्म का प्रभेद न हो तो फिर योनि विशोधन दे। यव-क्षार से युक्त अथवा इन दोनों से भावित कटुक मत्स्य अथवा सुअर तथा मछली दोनों के पित्तों से भली प्रकार भावित कपड़े के पिचु को योनि में लगावे।

अथवा अधोहर (विरेचन) द्रव्यों से और ऊर्ध्वहर (वमन) द्रव्यो से भावित अथवा शहद से युक्त कपड़ो को योनि में धरे। किण्व (Yeast) अथवा क्षार सहित गुड़ को योनि शोधन के लिए देवें।

(१४) रक्तस्राव अधिक होने पर—

(अ) रसतन्त्रसार में लिखी हुई औषधियां— बोलबद्धरस, उशीरासव, दूर्वादिघृत, चन्द्रकला रस, ह्रीवेरादि क्वाथ। ये सब रक्तस्राव को दूर करने वाले होते हैं। इनमें से कोई भी रक्तस्राव को बन्द करने में प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) मौक्तिक भस्म, प्रवालपिष्टी, उशीरासव के साथ। शोक्तिक भस्म या शङ्खभस्म का सेवन कराने से रक्तस्राव और पित्त प्रकोप दोनों दूर होते हैं।

(१५) रजःप्रवर्तक वर्ति योनि में धारण करने से रजःस्राव होकर गुल्म दूर हो जाता है।

(१६) अन्य प्रयोग (विभिन्न)—

(क) सूतशेखर १-१ रत्ती दूध मिश्री के साथ या २ माशे अदरख के रस और ६ माशे शहद के साथ दिन में २ समय देते रहने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। साथ में इसके अतिरिक्त वात प्रकोप और पित्त प्रकोप का शमन हो जाता है।

यदि प्रयोगों के द्वारा रक्त प्रवृत्त नहीं होता हो तो पुन भेदन चिकित्सा करना हितकर है। भेदन दो प्रकार से किया जाता है (१) शस्त्र कर्म द्वारा आपरेशन करके गुल्म को निकाल देना अथवा (२) बाजार में वर्त्ती न० ३ की मिलती है, इस वर्त्ती को अंगुली के सहारे गर्भाशय (Uterus) के मुख में बलपूर्वक डाल देना चाहिए। तीसरे दिन वह वर्ती मोटी होकर निकलती है तथा मुख को खोल कर सद्यः रक्त सञ्चार कर देती है। इस फलस्वरूप पुराना रुका मासिक धर्म भी खुल कर प्रारम्भ हो जाता है। यह परीक्षित प्रयोग है।

यदि गर्भाशय के मुख पर झिल्ली प्रतीत हो तो अर्क दुग्ध लगाकर इक्थ्यौल ग्लिसीन का फोया लगाना हितकर है क्योंकि इससे झिल्ली फट जाती है तथा शोथ भी शान्त हो जाता है।

यदि बीज कोष में रसार्बुद तरलमय हो तो व्रीहिमुख यन्त्र का प्रवेश (Paracentesis) कराके जल को निकाल देना चाहिए। एवं रसार्बुद की

दीवार का छेदन पिचकारी द्वारा रक्तशोधक रोपण और जन्तुघ्न द्रव (आयोडिन या इतर) का प्रवेश कराना चाहिये। यह प्रयोग जिन स्थानों पर रसार्बुद की दीवार में प्रादाहिक विकृति हो, अथवा बीज कोष को तोड़ कर अर्बुद को निकाल लेने की आवश्यकता न हो, उन स्थानों के लिए लाभदायक है।

डाक्टरी मतानुसार बीजकोषस्थ अर्बुद (रक्त-गुल्म) प्रथमावस्था में संचालन विशिष्ट है, और क्रमश बढ़ता जाता है। ऐसा निर्णय हो जाने पर उसे औषधि अथवा शस्त्र कर्म की चिकित्सा द्वारा सत्वर समूल नष्ट कर देना चाहिए।

(क) शराब के नीचे जमा हुआ गाद (Sediment). गुड़ और पलाश की राख को मिला वर्ति बनाकर योनि-विशोधन के लिये योनि मार्ग में धारण करे।

(ख) सिंघाड़े का चूर्ण १ तोला और मिश्री १ तोला मिला कर बकरी या गौ के धारोष्ण दूध के साथ देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(ग) कमल केशर और नागकेशर का चूर्ण ६ माशे, मक्खन २ तोले और मिश्री १ तोला मिला कर देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

पक्व गुल्म चिकित्सा—

भगवान् आत्रेय जी कहते हैं कि—

'तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकार क्रियाविधौ'

पक्व गुल्म की चिकित्सा धन्वन्तरि तन्त्र के जानने वाले शल्य विदों से आपरेशन द्वारा करानी चाहिए। प्रारम्भ में क्षार प्रधान औषधि लाभ पहुचाती है। रोग बढ़ने पर शास्त्रानुसार शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना हितकर है।

पथ्यापथ्य—

कहावत है कि 'भोजन मारे भोजन तारे' अर्थात् भोजन पर ही रोग की वृद्धि और नाश होने का प्रभाव पड़ता है। अतः पथ्यापथ्य (अत्यावश्यक) आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक अपना अलग ही श्रेष्ठ स्थान रखता है।

पथ्य—

'लंघनं दीपन स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्।
बृंहणं यद् भवेत्सर्वं तद्हितं सर्वं गुल्मिनाम् ॥'

भोजन में लहसुन तीव्र मदिरा आदि का प्रयोग करना चाहिए।

रक्त गुल्म में रक्तस्राव कराना हो तब वातघ्न गुण वाले लहसुन, शराब गुड़, तैल, मिर्च, मछली आदि उष्ण अन्नपान देवें, तथा रक्तस्राव बन्द करने के समय वातपित्त शामक भोजन देना चाहिए। यदि रक्त गुल्म की अति वृद्धि हो जाने से अधिक कृशता आगई है तो शारीरिक बल के संरक्षणार्थ विश्रान्ति, शुद्ध वायु का सेवन, मांस रस अण्डे, दूध और लघु पौष्टिक भोजन हितावह माने जाते है।

अपथ्य—

'वल्लूर मूलक मत्स्यान् शुष्क शाकानिवैदनम्।
न खादेच्चालुक गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥'

शुष्क मांस, मूली, मछली, शुष्क शाक, दाल आलू, मधुर फल सेवन न करें।

रक्त गुल्म की रोगिणी को मासिक धर्म आने पर ३ दिन के भीतर स्नान करना, और तेज शीतल वायु का सेवन करना, मलावरोध करने वाला आहार, मधुर आहार का अधिक सेवन, शुष्क भोजन (आहार) और वातवर्धक आहार ये सब हानिकर है। एवं रोगिणी को अधिक निर्बलता आने पर अधिक परिश्रम, चिन्ता और शुष्क भोजन से सब अपथ्य माने जाते है।

गुल्म रोग में समय-समय पर बारम्बार विरेचन स्नेहपान, स्वेदन, लेप करना, बस्ति देना आदि हितकर है। पुराने साठी चावल का भात, कुलथी, मूंग, गेहूँ, बथुआ, नेनुवां आदि अरहर की पतली दाल हितकर हैं। लहसुन, आम, मनुक्का, अदरख,

:: शेषांश पृष्ठ ४०४ पर ::

(3493)

रक्त गुल्म चिकित्सा

[१]

श्री श्रेयान्सकुमार 'वड़कुल"

रक्त गुल्म की चिकित्सा के लिए पूर्व में ही बतलाया जा चुका है कि दश मास के अनन्तर ही इसकी चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि जब गुल्म पर्याप्त मात्रा में बढ जाता है तब उसको निकालने अथवा उसका धारण करने में अन्दर से स्वाभाविक सहायता मिल जाती है। यह रोग कुछ पुराना हो जाने पर सुखसाध्य हो जाता है।

विशेषकर रोगिणी के आहार विहार पर विशेष ध्यान देना अत्यावश्यक है क्योंकि रोगिणी अपथ्य का सेवन करती है तो रोग में लाभ होना मुश्किल हो जाता है। अतः रोगिणी का आहार-विहार अनुकूल होना अत्यावश्यक है।

रक्त गुल्म में उदर के तनाव होने के कारण कब्ज की शिकायत रहती है, अतः औषधि देने के पूर्व एक अथवा दो दस्त कराने के लिए दूध में एरण्डी का तेल देना चाहिये। यह मृदु विरेचक है। अथवा सनाय, हरड, दाख और मिश्री से तैयार किया हुआ चूर्ण गरम जल के साथ दें। तत्पश्चात् गुल्म के स्थान पर नारायण तैल को मलकर कुछ-कुछ गरम कांजी का स्वेद दें। उडद की रोटी पर नारायण तैल चुपड़कर गुल्म के स्थान पर बांधना भी हितकर है। त्रिकटु, यवक्षार चूर्ण को यव के साथ पिलाना भी हितकर है। तिल के कल्क में पलाश क्षार एवं सेहुण्ड का दुग्ध मिलाकर रोगिणी की योनि में धारण कराना चाहिये। दशमूल क्वाथ, गोमूत्र एवं गोदुग्ध की उत्तरवस्ति देनी चाहिए।

इस प्रकार की क्रिया से रक्त प्रवृत्त होने लगता है तथा संचित पुराना आर्तव (मासिक धर्म) भी खुल जाता है तथा रक्त गुल्म में लाभ होता है। घृतकुमारी के रस में सोंठ, मिर्च, पीपल, कालीमिर्च एवं काला नमक का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन नियमित सेवन करने से गुल्म नष्ट हो जाता है। कुमारी तथा मुंडी का बनाया गया आसव रक्त गुल्म में लाभ पहुंचाता है।

यदि उपरोक्त औषधियों से भी रक्त गुल्म में लाभ न हो तो पलाशक्षार घृत का सेवन कराना चाहिए। इससे रक्त का स्राव होकर रक्त गुल्म में शीघ्र लाभ हो जाता है। इस प्रकार से यदि रक्त का स्राव अधिक मात्रा में हो गया हो तथा रक्त स्राव के कारण अधिक दौर्बल्यता आगई हो तो रक्तातिसार के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

इस प्रकार की चिकित्सा के द्वारा स्त्रियों की इस भयङ्कर व्याधि को नष्ट कर उनके जीवन को निरोग एवं सुखद बनाया जा सकता है।

—श्री श्रेयान्सकुमार "बड़कुल"
जैन संस्कृत कालेज (आयुर्वेद विभाग)
मणिहारों का रास्ता, जयपुर

:: पृष्ठ ४०३ का शेषांश ::

आंवला, चीनी, गरम पानी, गाय बकरी का दूध, मट्ठा, बिजौरा नीबू, रेंडी का तेल, अंगूर, अनार, हींग, हलके पौष्टिक पदार्थ हितकारी हैं। इसके विपरीत मूत्रादि का वेग रोकना, ठण्डा पानी, वातकारक पदार्थ, विरुद्धाहार, सूखी तरकारी, अधिक पानी पीना अहितकर हैं।

—श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य,
४५ शनिगली, जूनी, इन्दौर

मसूरिका (माता ज्वर)

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य।

मसूरिका या माता यह रोग प्राचीनकाल मे बहुत ही कम होता था इसलिये चरक आदि प्राचीन आचार्यो ने इसे क्षुद्र रोगो (छोटे रोगो) मे स्थान दिया था और बहुत थोडा बर्णन इस रोग का किया है, किन्तु श्री भाव मिश्र जी के समय मे समय के प्रभाव से यह घोर भयकर रूप से होने लगा था, इसलिये उन्होने इसकी चिकित्सा विस्तार से लिखी है। इसमे होने वाली फुन्सियो के छोटे वडे आकार से तीन प्रकार का है—

१—वृहन्मसूरिका—बडी माता

२—लघु मसूरिका—छोटी माता

३—रोमान्तिका—कसूमी माता

मसूरिका रोग जीवाणुजन्य है। ये जीवाणु अनुकूल भूमि, वायु, जल पाकर पलते-बढते और फैलते है। इन वस्तुओ और रोगी के स्पर्श, मक्खियो आदि के द्वारा ये कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुच रोगी से स्वस्थ पुरुषो मे होता है, इसलिये पुरानी बूढी औरतें जिन दिनो कही चेचक निकल रही हो उन दिनो अपने बच्चो को उन मुहल्लो, उन घरो मे नही जाने देती, जहा किसी के चेचक निकल रही हो। इस रोग के कीटाणु कफ रक्तपित्त प्रकोपक होते हैं। इसलिये कफ और पित्त की ऋतुएँ इनकी वर्द्धक होती हैं, यही कारण है कि यह वसत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के आदि के दिनो मे अधिक होता है इसलिये बगाल मे तो वडी माता का नाम ही 'वसत रोग' पड गया है।

पूर्व रूप—

जब किसी को मसूरिका होनी होती है तो पहिले ज्वर होता है, शरीर मे खुजली सी चलती है, अग टूटे से लगते है, भोजन से अरुचि होती है, चक्कर से आते हैं, शरीर की त्वचा मे कुछ सूजन सी हो जाती है, साथ ही त्वचा का रग विवर्ण हो जाता है, नेत्र लाल से प्रतीत होते हैं, प्रतिश्याय (जुकाम) का भी लटका हो जाता है। ऐसा अधिकतर होता है किन्तु कभी कभी ज्वर कण्डू आदि कुछ नही होती और माता निकल आती है। इसे जनसाधारण 'ठडे आग माता दर्श आना' कहते है। कही कही इसे 'हसनी—खेलनी' माता भी कहते है।

शीतला—

वृहन्मसूरिका, बडी माता, शीतला, चेचक, स्माल पाक्श आदि इसके नाम है।

यह रोग तीव्र सक्रामक है। इसको उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवाणु इतने सूक्ष्म है कि अभी तक उनकी आकृति का ठीक ठीक पता नही लगा है। ये इसके पीव खुरंड आदि मलो मे होते हैं। रोगी के स्पर्श उसके प्रयोग किये उसके पास रक्खे वस्त्रादि पदार्थो के द्वारा धूल मे मिले खुरटो के टुकडो, मक्खियो आदि से यह रोग फैलता है। इसका प्रभाव बालक, वृद्ध और युवा सभी पर, यहा तक कि गाय, बैल, भैस, गधादि जानवरो पर भी होता है। यह रोग एक बार हो जाने पर प्राय फिर आयु-भर मे किसी के शायद ही दुबारा होता है। जिनके इसका टीका लगा दिया जाता है उनके भी नही होता। टीका भी एक प्रकार से शीतला ज्वर का उत्पन्न करना ही है। एक बार टीका लगने का प्रभाव प्राय ६-७ वर्ष तक शरीर मे रहता है। टीके से उत्पन्न प्रतिविष मसूरिका के कीटाणु विष को मृदु कर देता है। इसलिये टीका लग जाने के बाद मसूरिका नही निकलती। अगर निकलती भी है तो बहुत ही कमजोर हलकी। इसके जीवाणु रक्त मे पहुँचकर उसके द्वारा उपचर्म मे जाकर अपना आश्रय बनाते हैं। यदि त्वचा पर हाथ से देखा जाय तो टटोलने से खाल के नीचे मसूर के दाने की तरह की कुछ गाठे सी मालूम पडेगी। इन ग्रथियो मे स्राव इकट्ठा होने लगता है जिससे वे छाले की शक्ल मे बदल जाती है। कुछ समय पश्चात् यही स्राव पीव के रूप मे वदल जाता हैं। ये छाले कभी कभी फूट कर व्रण (घाव) के रूप मे वदल जाते हैं। कुछ समय बाद पीव जमकर खुरट के रूप मे परिवर्तन होकर

फट जाते है और उस जगह अपना चिन्ह छोड जाते है।

लक्षण—

प्राय प्रारम्भ मे जाडा कभी कभी लगकर चढना है जो प्रारम्भ से ही तेज होता है, शिरशूल, कमर-पीठ मे जोर का का दर्द होता है। इसके बाद वमन, उत्क्लेद, मोह, प्रलाप, इन्द्रियो का ज्ञाननाश आदि उपद्रव उठ खडे होते है और कभी कभी तो -मृत्यु भी हो जाती है। ऐसी दशा का निर्णय रोगी के मृतक शव की परीक्षा द्वारा भीतर निकली हुई पिडिकाओ को देखकर हो सकता है।

तीसरे या दूसरे दिन ज्वर घट जाता है और त्वचा के नीचे पिडिकाऐ दर्शने लगती है जो १-२ दिन दर्श कर मिट जाती हैं। इसके बाद ही अर्थात् तीसरे या चौथे दिन असली पिडिकाऐ निकलती हैं। ये बालो के नीचे ललाट (माथे), मुह और सारे अग मे क्रमश निकलती फैलती है। ये पिडिकाऐ मुह, गुदा की श्लेष्मकला मे भी हो जाती है। यह पिडिकाऐ जब निकलती हैं तो पहिले त्वचा पर छोटे छोटे निशान से होते हैं फिर वे दाने बन जाते हैं। इन दानो मे ४८ घण्टे के भीतर स्राव सचय होने लगता है। इनके चारो ओर की जगह लाल और कडी होती है, पूरी तरह भर जाने के बाद पिडिका नीचे बैठ जाती है। प्राय आठवें दिन फूलो (दानो) मे पीव भर जाता है। आठवे दिन वदन पूरी तरह भर जाता है और ज्वर कम होता जाता है और प्राय १२ दिन मे पिडिकाये सूख जाती हैं। १५-२० दिन मे खुरण्ट फट जाते है और उनके स्थान मे चिन्ह रह जाते हैं जोकि या तो धीरे धीरे मिट जाते है या जीवन भर रहे आते है। प्राय मुख के दाग देर मे जाते है अथवा नही मिटते।

इस रोग मे रोगी निर्बल हो जाता है। कोष्ठनद्धता प्राय रहती है।

नाडी तीव्र किन्तु भरी हुई चलती है, यदि ज्वरादि लक्षण तीव्र हो, पिडिकाऐ न निकली हो या बहुत कम हो तो रोग भयकर समझा जाता है क्योकि ये पिडिकाये विष को अपने मे सचित कर शरीर से बाहर कर देती है। यदि पिडिकायें विशेष बढी हो और वे बढकर आपस मे मिलकर एक हो गई हो तो भी दशा को भयानक समझना चाहिये क्योकि ऐसी दशा मे प्राय सौ मे से १० ही बचते हैं।

यदि स्फोटो से—उनके चारो ओर से रक्त का स्राव होने लगे तो वे कुछ काले रग की दिखित होती हैं। इन्हे साधारण तौर पर छाया बढ जाना कहते है या माता का बिचल जाना बोलते हैं। ऐसी दशा मे प्राय बहुत कम रोगी बचते है।

उपद्रव—

१ फेफडे या उसकी प्रणाली का प्रदाह, २ नाश, ३ विसर्प, ४ सन्धिशोथ, ५ वृक्कशोथ और ६ पार्श्विया प्रतिबन्ध। चिकित्सा—

(१) जिन दिनो शीतला फैल रही हो उन दिनो शीतला का सक्रमण हो जाने के चार दिन बाद भी टीका लगवाया जाय तो भी बच सकते है क्योकि कीटाणु शरीर के भीतर पहुँचने पर १२ दिन बाद रोग पैदा करने मे समर्थ होते ह। इस बीच मे प्रतिविप के पहुँचने से वे विनष्ट हो जाते हैं।—

(२) जिस समय मसूरिका फैलती हो उस समय सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भोजन को धूल, ककड और विशेषकर मक्खियो से बचाना चाहिये क्योकि मक्खियो द्वारा कीटाणु एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने मे बडी मदद मिलती है।

(३) रोगी के स्पर्श और उसकी प्रयोग की हुई प्रत्येक चीज से बचना चाहिये। यदि छूनी पडे तो तत्काल परमेगनेट पुटास आदि के पानी से धो ले।

(४) रोगी के कमरे या कमरे के पास खाने पीने के पदार्थ मे सक्रमण पहुँचने से घर के अन्य लोगो को होने की सम्भावना रहती है।

(५) जिन दिनो मसूरिका फैल रही हो उन दिनो यदि महुए के फूल खाते रहे तो शीतला नही होती।

(६) गवैया का दूध पीने से भी शीतला कम निकलती है।

(७) रुद्राक्ष और कालीमिर्च दोनो बराबर पीस कर बासी पानी मे २-२ माशे की गोलिया बनाले, इन्हे सुबह-शाम लेते रहने से शीतला का भय नही होता।

(८) घर मे विशेषतया रोगी के कमरे मे रोजाना धूप सुलगानी चाहिये, उसमे चन्दन, गूगल, कपूर निश्चय

ही डालना चाहिये।

औषधि चिकित्सा—

ऊपर जो रुद्राक्ष वटी बतलाई है उसे ४-४ घण्टे मे शीतल जल से लेने पर मसूरिका शान्त होती है।

ऊट कटेरी की जड या अनन्तमूल को चावल के पानी मे घिस कर पीने से सब प्रकार की मसूरिका शात होती है।

केशर १-२ रत्ती लेकर गधी के दूध या गाय के दूध मे घिसकर देने से शीतला मे बडा भारी लाभ होता है। इससे हृदय को शक्ति मिलती है, रक्तशोधन होता है।

हरिद्रा वटी २-२ गोली दिन मे ४ बार मधु मे चटाने से लाभ होता है।

हरिद्रा वटी—

हल्दी, पपीता, जहरमोहरा, दरियाई नारियल, सफेद चन्दन, ऊट कटेरा की जड सब वस्तुऐं समान भाग लेकर पीसकर महुए के क्वाथ, रूह गुलाब, केवडा मे मर्दन कर मटर सी गोलिया बनावे।

गुण—ये गोलिया शीतला एव दूसरे विवाई रोगो मे लाभ करती है।

पटोलादि क्वाथ भी उत्तम है। योग यह है—

पटोल पत्र, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा, धनिया, जवासा, चिरायता, नीम की अन्तरछाल, कुटकी ये सब वस्तुऐं समान भाग ले जौकुट कर ले। इसका मिला हुआ चूर्ण २ तोले पाव भर पानी मे औटावे, जब १ छटाक रह जावे छानकर ठडा होने पर पिलावे।

अमृतादि क्वाथ अच्छा लाभ करता है। योग यह है—

गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतौना, कत्था, नीम के पत्ते, दोनो हल्दी, तेंदू, बेंत के पत्ते ये सब वस्तुये समान भाग लेकर जबकुट करे। इसमे से २ तोला लेकर पाव भर पानी मे औटावे। १ छटाक शेष रहने पर छानकर पिलावे।

गुण—इनके अनेक प्रकार के विष, विसर्प, कुष्ठ स्फोटक, खुजली, मसूरिका, शीतपित्त (पित्ती) और ज्वर को शमन करता है। बिजौरे के फूलो की केशर काजी मे पीसकर लेप करने से मसूरिका की पिडिकायें शीघ्र पकती और दाद को नष्ट करती है।

चमेली के पत्ते, मजीठ, दाख, हल्दी, सुपाडी, छौकर के पत्ते, आमला, मुलैठी इन वस्तुओ को समान भाग लेकर क्वाथ करे और उसमे शहद मिलाकर रोगी को गंडूष (गरारे) करावे। इससे मुख के व्रण, कण्डू, कठ का रुकना ठीक होता है।

पच वल्कल (वड, पीपल, गूलर, पाखर के पेडो की छाल) का चूर्ण घावो पर छिडकने से भी व्रण शीघ्र सूखते है। आरने (सूखे गाय के गोबर या गधे के लेंडो) की ताजी राख छिडकने से भी व्रण शीघ्र सूखते है। कृमियो से व्रणो को बचाने के लिये सरलादि धूप देते है।

गूगल और त्रिफला का क्वाथ पीने से वेदना, दाह और पीव आदि के स्रावो का शोधन होता है।

अष्टाङ्ग अवलेह (सन्निपात प्रकरण मे देखे) चटाने से कठ शुद्ध होता है। खुरंटो के पड जाने पर उन पर पचतिक्त घृत लगाना चाहिये। पचतिक्त घृत खिलाना भी चाहिये।

पचतिक्त घृत—

नीम की अन्तर्छाल, पटोलपत्र, कटेरी, गिलोय, और अडूसा ये सब वस्तुऐं आध आध सेर लेकर जौकुट करले। इसे बीस सेर पानी मे औटावे, जब पाच सेर शेष रहे उतार छानले। नीम आदि पाचो पदार्थ एक एक छटाक और लेकर महीन कूट पीस कर पानी के सहारे चटनी सी पीसले। सवा सेर गाय का घी लें। तीनो चीजो को एक बडी साफ लोहे की कढाई मे डालकर चूल्हे पर चढावे। नीचे मदी आग जलावें। जब सब पानी जल जाय तब घृत को उतार छानले। मात्रा ३ माशे से १ तोला तक।

गुण—यह खाने और लगाने दोनो के काम मे आता है। आयुर्वेद का प्रसिद्ध घृत है। यह त्रिदोषनाशक सर्व रोगहारक है। रक्त का शोधन करता, दुष्ट बल, कृमि रोग, कुष्ठ, पाण्डु, खासी, विषमज्वर, मसूरिका आदि रोगो मे विशेष उपयोगी है।

वातज मसूरिका मे चावल की खीलें दे सकते है। प्राय रोगी को भूने चने गुड के साथ देने की चाल है। यह लघु रेचक और द्रव शोधक है। पिडिकाओ के पकते समय गुड से देना उत्तम रहता है। शास्त्रकार कहते है—

पाककालेतु दातव्य भेषज गुड सयुतम्।
तेन पाक व्रजत्याशु न च वायु प्रकुप्यति ॥

—शेषाश पृष्ठ २८ पर।

जलोदर

श्री शङ्करलाल वैद्यभूषण

जल + उदर— इन दो शब्दो से मिलकर बना है। जल (पानी) उदर (पेट) इसका अर्थ हुआ पेट मे पानी का इकट्ठा हो जाना। यह एक साधारण सी बात हुई। अब विविध मत मतान्तरो से इसके लक्षण लिखकर फिर इसकी चिकित्सा और इसके पश्चात् अपना अनुभूत चिकित्सा क्रम लिखूंगा।

जलोदर के लक्षण आयुर्वेद मत से—

य स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा
वान्तोविरिक्तोऽप्यथवा निरूढ·।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य
स्रोतासि दूष्यन्ति हितद्वहानि॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवाऽपितेषु
दकोदरं पूर्व वदभ्युपैति।
स्निग्ध महत्तत्परिवृत्त नाभि
समन्तत· पूर्णमिवाम्बुना च।
यथा दृति क्षुभ्यति कम्पते च
शब्दायते वाऽप्यदकोदरं तत॥

स्नेहपान, अनुवासन, वस्ति, वमन विरेचन अथवा निरूह वस्ति लेने के पश्चात् जो मनुष्य तत्काल शीतल जल को पी लेता है उसके जलवाही स्रोत दूषित हो जाते है। जलवह स्रोतो के दुष्ट हो जाने पर जिस प्रकार जल के साथ पकाये हुये अन्न मे घी बाहर निकल जाता है उसी प्रकार यह जल पेट मे आकर गुदा द्वारा बाहर निकलने लगता है। इस उदर रोग को जलोदर कहते है।

लक्षण—नाभि गहरी और नाभि के चारो तरफ पेट बडा स्निग्ध और जल से भर जाता है। पेट मे स्थित जल जल से भरे हुये मशक के समान हिलाने से डोलता है। बाहर से कपता हुआ दीखता है और कपते हुए अवस्था मे शब्द भी होता है। इसको जलोदर कहते है।

जन्मनैवोदर सर्व प्राय कृच्छ्रतम मतम्।
लिनस्तद जातम्बु यत्न साध्य नवोत्थितम्॥
वलिनोऽजाताम्बु नवोत्थितन्च यत्नसाध्यमित्यन्वय॥

प्राय सम्पूर्ण उदर रोग उत्पन्न होने के समय से ही कष्टसाध्य होते हैं। बलवान पुरुष का उत्पन्न हुआ तथा जिसमे अभी तक जल नही उत्पन्न हुआ है और थोडे ही समय का उत्पन्न हुआ हो ऐसा उदर रोग यत्न साध्य है।

चरक के मत से जलोदर के लक्षण—

पयः पूर्ण दृतिरिव क्षोभे शब्द करसं मृदु।
अप्रव्यक्त शिरा शून्य निरार्त्तमुदर महत्॥
आलस्यमास्य वैरस्य मूत्र बहुसकृद् द्रुतम्।
जातोदकस्यलिङ्ग स्यात् मन्दाग्नि पाण्डुताऽपि च॥

पेट पानी से भरे हुए मशक के समान क्षोभ उत्पन्न करने पर शब्द करता हो, मृदु हो तथा पेट पर की शिराये व्यक्त हो और पेट बडा हो ऐसे उदर रोग को जलोदर समझना चाहिये। आलस्य, मुख की विरसता, मूत्राधिक्य, मल का पतला होना, मन्दाग्नि तथा पाडुता-यह सब पेट मे जल उत्पन्न हो जाने के लक्षण हैं।

जलोदर के असाध्य लक्षण—

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्न तनु त्वचम्।
बल शोणित मासाग्नि परिक्षीणञ्च वर्जयेत्॥

अर्थात् जिस जलोदर रोगी की आखे शोथयुक्त हो, लिङ्ग टेढा हो गया हो, त्वचा गीली तथा पतली हो गई हो, बल, मास तथा अग्नि क्षीण हो गयी हो तो ऐसे रोगी की चिकित्सा नही करनी चाहिये।

पार्श्वभङ्गान्न विद्वेष शोफातिसार पीडितम्।
विरक्त चाप्युदरिण पूर्यमाणं विवर्जयेत्॥

जिस जलोदर रोगी की पसली टूट गई हो, अन्न मे अरुचि हो, शोथ अथवा अतिसार से पीडित हो और विरेचन देने पर भी उदर पूर्ण हो गया हो ऐसे रोगी की चिकित्सा नही करनी चाहिये।

एलोपैथिक मत से जलोदर के कारण—

जलोदर को पाश्चात्य वैद्यक मे एसाइटिस कहते हैं। इसके निम्नलिखित छ कारण माने जाते है—

(१) यकृत् वृद्धि के कारण या यकृद्वाह्य अङ्गो की

वृद्धि के कारण (प्रतिहारिणी महासिरा) के रक्त सचार मे बाधा उत्पन्न होना, (२) हृदय रोग, (३) वृक्करोग, (४) उदरावरण शोथ, (५) रक्तदोष प्लीहावृद्धि, (६) रस प्रवाह मे बाधा उत्पन्न होना। इनमे से प्रतिहारिणी सिरावरोधजन्य जलोदर मे अग्निमाद्य, मलावरोध, अर्श, कामला, सिराओ की कुटिलता, यकृत तथा प्लीहावृद्धि इत्यादि लक्षण होते हे। हृद्विकारजन्य जलोदर मे दिल की धडकन तथा पादशोथ इत्यादि लक्षण उदर मे जल सचय से पूर्व दिखाई पडते है। वृक्कविकार जन्य जलोदर मे समस्त शरीर पर विशेष करके आखो के आसपास तथा पाव पर शोथ होता है और मूत्र मे मूत्रनलिका निर्मोक मिलते है। उदरावरण शोथजन्य जलोदर मे स्थानिक लक्षण अधिक होते है। रक्तदोषजन्य जलोदर मे प्लीहावृद्धि प्राय होती है और रक्त परीक्षा करने से निदान होता है तथा जल की राशि अल्प रहती है। रस प्रवाह के अवरोधजन्य जलोदर मे जब उदरस्थ कृमि बडी बडी रसवाहिनियो मे निवास करके रसप्रवाह मे रुकावट उत्पन्न करते हैं तब रस उदर गुहा में सचित होकर जलोदर होता है।

उदर प्राय धीरे-धीरे सचय से बढता जाता है और जब काफी जल इकट्ठा हो जाता हे तो उसका दबाव शिरा के ऊपर पडता है जिनके कारण उदर प्राचीगतशिराओ की विस्तृति और स्पष्टता प्रतीत होजाती है, पैरो तथा जननेन्द्रियो पर शोथ आजाता है। वृक्को के ऊपर दबाव पडने से उनका कार्य ठीक नही होता जिससे मूत्र की राशि अल्प होजाती है और उसमे अल्ब्यूमिन आने लगता है। आन्त्र के ऊपर दबावपडने से मलावरोध होता है महाप्राचीरापेशी, हृदय, यकृत-तथा प्लीहा आदि अङ्ग दबाव के कारण ऊपर की ओर चले जाते है। इससे श्वासकृच्छ्र, दिल मे धडकन तथा हृदय की गति मे अनियमितता इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते है। छाती और उदर की पेशिया कृश हो जाती हैं। उदर की दीवार पर शिरायें स्पष्टतया दीखती हैं। इन स्थानिक लक्षणो के सिवाय जिस कारण से जलोदर उत्पन्न हुआ है उसके भी लक्षण मिल सकते हैं। अपने यहा भी ठीक ऐसा ही वर्णन मिलता है किन्तु अपने यहा के वर्णन मे विशेषता है कि हमारे यहा नेत्र लिङ्ग-योनि इत्यादि मार्मिक अङ्गो के शोथयुक्त होजाने पर असाध्य मानना है जब उनके साथ अन्य सहवर्तित लक्षण भी उपस्थित हो जैसे—

अन्ननकांक्षापिपासागुदस्राव शूल, श्वास, कास, दौर्बल्यादतिन्यपि—च दरं नानावर्णराजिसिरासन्तमुदकपूर्ण क्षोभसंस्पर्शभवति एतदुदकोदरं विद्यात ।

—च चि अ १२ सू ४७

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनु त्वचम् ।
बल शोणित मांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत ॥
श्वयथुः सर्वमर्मोत्थ. श्वासो हिक्काऽरुचि. सतृट ।
मूर्च्छा छर्द्यतिसारौ चनिहन्त्युदरिणम् नरम् ॥

—च. चि. अ १२ श्लोक ९२-९३

भौतिक चिन्ह—

दर्शन—जल की राशि के अनुसार उदर न्यूनाधिक फूला हुआ रहता है। यदि जल की राशि अधिक हो और थोडे दिनो मे इकट्ठा हुई हो तो उदर का उभार आगे को अधिक दिखाई पडता है। यदि जल धीरे धीरे इकट्ठा हुआ हो तो आगे की अपेक्षा दोनो पार्श्वो मे उदर का उभार अधिक रहता है। जल के दबाव से नीचे की दोनो तरफ की पसलिया आगे की ओर निकली हुई दिखाई पडती है। और उनके महाराव कुछ अधिक चौडे हो जाते है। त्वचा तनावयुक्त और चमकीली होती है। यदि जल की राशि कम हो तो लक्षण उत्पन्न नही होते। रोगी की स्थिति उसके आसन के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। करवट या पार्श्व मे सोने पर नीचे का पार्श्व अधिक उभरा हुआ रहता है। पीठ के बल सोने पर दोनो पार्श्व उभरे हुए दिखाई देते हैं। और नाभि का प्रदेश बैठा हुआ या चपटा हो जाता है। बिस्तरे पर बैठने से नाभि तथा उसके नीचे का भाग उभरा हुआ रहता है। जब पानी की राशि बहुत अधिक हो जाती है तब आसन बदलने से उभार मे फर्क बहुत कम हो जाता है। अधिक जल राशि होने पर नाभि की आकृति बदल जाती है। कभी वह सपाट और दोनो पार्श्वो की ओर खिची हुई रहती है और कभी प्राय जल की विशेष अधिकता से उलटी हो जाती है। अपने यहा भी इस रोग मे नाभि की अवस्था पर सुश्रुत मे प्रकाश डाला गया है। यथा—

स्निग्धं महत्त परिवृत्तनाभि भृशो.न्न त पूर्णमिवाम्बुना च ।

—सु. नि. अ ७ श्लोक [illegible]

श्वास मे उदर बहुत कम हिलता है या नहीं हिलता

है। उदर दीवार की शिरायें विस्तरित और स्पष्ट दिखाई देती है।

स्पर्शन—स्पर्श करने पर उदर दीवार के तनाव का कुछ अन्दाजा हो जाता है। इनके सिवाय उदर पर जरासा आघात करने से जल की लहरिया स्पष्टतया प्रतीत होती है। इसको कम्पन परीक्षा कहते है।

अंगुली ताडन—जब रोगी पीठ के बल लेटता है तब दोनो पार्श्व ताडन करने पर मन्द मालूम पडते है, और नाभि के आसपास का भाग उसके पीछे जल के ऊपर अन्त्रियो के तैरने के करण कुछ निनादित मालूम पडता है। जब रोगी एक करवट लेटता है तब नीचे का पार्श्व और नाभि प्रदेश मन्द और ऊपर का पार्श्व नाद युक्त या निनादित होता है। आसन बदलने से ध्वनि का बदलना यह जलोदर का एक महत्व पूर्ण चिन्ह है। जब जल की राशि बहुत अधिक हो जाती है तब इस प्रकार का फर्क नही मिलता। इस प्रकार ऊपर लिखे स्पर्शन तथा अगुली ताडन परीक्षा से वही फल मिलता है जोकि यथा—दृति. क्षुभ्यति कम्पतेच शब्दायते चापिदरोदरं तत। सु नि. अ. ७ श्लोक २१। तथा—तोयपूर्णदृतिस्पर्श--शब्द प्रक्षोभवेपथुः (अष्टाग सग्रह) और उदकपूर्ण दृति-क्षोभ संस्पर्शनम्। च. चि अ. १३ के इन वाक्यो से मिलता है। इन परीक्षाओ के अतिरिक्त भी दो प्रकार की परीक्षा जलोदर के किए की जाती है। यथा नाप परीक्षा और जल द्वारा परीक्षा। यह परीक्षा रासायनिक तथा सूक्ष्म दर्शक यन्त्रात्मक होती है यह द्वितीय परीक्षा सर्वसाधारण के लिए बिलकुल आवश्यक न होने के कारण नही दी जारही है। किन्तु नाप परीक्षा बहुत महत्व की है क्योकि इस परीक्षा से (बीजकोष ग्रन्थि) तथा जलोदर मे भेद करने मे बहुत सहायता मिलती है। बीजकोष ग्रंथि केवल स्त्रियो मे ही होती है। अब यहा पर बीजकोष ग्रंथि तथा जलोदर भेदक कोष्ठक दिया जाता है जिससे नाप परीक्षा का महत्व तथा दोनो मे भेद यह दोनो बातें समझ मे आजांयगी।

	बीजकोष ग्रन्थि	जलोदर
१—दर्शन	कुक्षीपार्श्व सपाट तथा कुक्षीमध्य भाग उभरा	कुक्षिपार्श्व उभरा हुआ तथा कुक्षिमध्य सपाट
२—आघात	कुक्षि पार्श्व पर डिमडिम ध्वनि—कुक्षि मध्य मे मदध्वनि-तथा करवट बदलने से कुक्षि पार्श्व की ध्वनि मे कोई अन्तर न होना।	कुक्षिपार्श्व पर मन्द ध्वनि-कुक्षिमध्य मे डिमडिम ध्वनि, करवट बदलने पर ऊपर की ओर डिम-डिम ध्वनि तथा नीचे की ओर मन्द ध्वनि
३—नाप परीक्षा	१ जघन कपाल पुर कूट से नाभि की दूरी दोनो तरफ बराबर नही होती।	१ दोनो तरफ समान होती है।
	२ नाभि पर ऊपर का घेरा नीचे की अपेक्षा कुछ कम होता है।	२ किन्तु इसमे कुछ अधिक होता है।
-	३ उर फलकाग्र पत्र से नाभि की लम्बाई नाभि से भगास्थि की लम्बाई से कम होती है।	३ किन्तु इसमे उर फलकाग्र पत्र से नाभि की लम्बाई-नाभि से भगास्थि की अधिक होती है।

यूनानी मत से जलोदर के कारण और लक्षण

जलोदर को यूनानी वैद्यक मे इसतिसका कहते हैं। इसके उत्पन्न होने के कारण प्राय' वही है जो आयुर्वेद में वर्णन किए गये हैं। तब भी सक्षेप से लिखता हूँ—सम्भोग या किसी परिश्रम के पश्चात् या धूप मे मार्ग चल कर आते ही पसीना सूखने से पहले ठ़डा पानी पी लेना या सर्दतर वस्तु अधिक सेवन करते रहने से यकृत कमजोर होकर कफ अधिक उत्पन्न करता है। और वह सारे शरीर मे फैलकर शरीर के छिद्रो मे घुस जाता है या प्लीहा यकृत रोग के पुराना होने पर या वृक्को के रुग्ण होने पर भी यह रोग हो जाता है। इसतिसका तीन

प्रकार का होता है । १–लहमी २–जकी ३–तवली

१—लहमी–इसमे शरीर फूल कर कुप्पा सा हो जाता है और समस्त शरीर मे सूजन हो जाती है। शरीर को अगुली से दबाने पर गढा पड़ जाता है और अगली हटाने पर थोडी देर मे गढा भर कर शरीर एकसार हो जाता है।

२—जकी—जब गिजाफासिद होकर रतुवत मे मुन्तकिल हो जाती है। और जिगर उसे हज्म करने से मजबूर हो जाता है तो वह जिगर से नाफ की तरफ पेट मे भर जाती है जिसको इसतिसका जकी कहते है। सर्वसाधारण मे पेट मे पानी पडना कहते है। पेट बढ जाता है परन्तु तमाम शरीर पतला रहता है। छाती की हड्डिया निकल आती है। श्वास मे खिचावट और खासी भी हो जाती है।

३—तवली–जब कफ मे खुशकी आ जाती है तो वायु बढकर पेट मे आ जाती है और भर जाती है पेट फूल जाता है और हाथ मारने पर तबले की तरह बजता है। यह तीनो किस्मे रोगी के जीवन को बिगाड देती है। और रोगी बडे कष्ट से रोगमुक्त होता है।

आयुर्वेद मत से जलोदर की चिकित्सा—

चिकित्सा क्रम—उदर रोग मे मल की बहुत अधिकता होती है इसलिये वैद्य को चाहिये कि वारम्बार शोधन कराना-विरेचन कराना हितकर है। इसके लिए एरण्ड तैल और दुग्ध को अथवा गोमूत्र के साथ एरण्ड तैल को वारम्बार रोगी को पिलाये और पथ्य मे गेहूँ, जौ, शालिचावल, दुग्धपान इत्यादि हल्का सुपाच्य भोजन दें और आनूप देश तथा जल मे रहने वाले जीवो का मास, शाक-पीठी के बने पदार्थ, तिल उडदादि गरिष्ठ पदार्थो का का त्याग आवश्यक है। व्यायाम,मार्ग चलना, दिन मे सोना, स्नेहपान इनका रोगी से त्याग करावे। तीक्ष्ण नमकीन, उष्ण विदाही तथा गुरु अन्नो का भक्षण न करावे जल पीना भी छुडादे।

१–नागरादि तैल या घृत—सोठ-हरड-बहेडा-आवला इनको दही के पानी मे पीसकर कल्क बनावे। कल्क से चतुर्थांश तैल या घृत डालकर पाक करे। तैल या घृत शेष रहने पर उतार छान कर रखे। रोगी को बलाबल देख कर सेवन करावें तो उदर के आठो रोगो का नाश करता है।

२–कुष्ठादि चूर्ण–कूठ-दती-यव क्षार-सोठ-मिर्च पीपल-सैधानमक-कालानमक-साभरनमक--वच-कालाजीरा, अजवायन-हीग-सज्जीखार-चव्य-चित्रक समभाग लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को गरम जल से सेवन करने पर आठो प्रकार के उदर रोग नष्ट होते है।

३–नाराच घृत—थूहर का दूध दती-हरड-बहेडा आवला-बायविडङ्ग छोटीकटहली-निसोत तथा चित्रक सब औषधि १-१ तोला ले कल्क बनाले। फिर इसमे १६ तोले घृत को पकावें। विरेचन के लिए इस घृत को १ तोला या ६ माशे जल के साथ पीकर उष्ण जल का अनुपान करे। विरेचन हो जाने पर पेया या मास रस का पान करें। युक्तिपूर्वक सेनन करने से समस्त उदर विकारो को नष्ट कर देता है।

४–नारायण चूर्ण – अजवायन-हाऊवेर-धनिया-हरड बहेडा--आवला--कालाजीरा--कलौजी--पीपलामूल--अजमोद कचूर-वच-सोया-जीरा--सफेद--सोठ मिर्च--पीपल-स्वर्णक्षीरी चित्रक-सज्जीखार-जवाखार-पोहकर मूल-सौफ-कूठ-पाचो नमक-वायविडग इन सबको १-१ तोला ले। दती ३ तोले, निसोत २ तोले, इन्द्रायण २ तोले, सेहुण ४ तोले सबको महीन कूटकर चूर्ण बनाले। मात्रा ६ माशे या १ तोला ऊटनी का दूध या गौ की छाछ से ले। यह नारायण चूर्ण विविध अनुपान से समस्त उदर रोगो को नष्ट करता है। लोलिम्वराज ने वैद्य जीवन मे एक श्लोक कहा है—

नारायणं भजरे जठरेणयुक्ता नारायण भजरे पवनेन युक्ता। नारायण भजरे भव भीरु युक्ता नारायण प्रात न किंचिदस्ति॥

अर्थात् हे जठर रोगियो तुम नारायण चूर्ण का सेवन करो। हे वायु के रोगियो तुम नारायण तैल का सेवन करो और हे ससार के दुखो से दुखित लोगो तुम नारायण भजन करो नारायण से परे कुछ भी नही है।

एलोपैथिक मत से जलोदर चिकित्सा—

पहिले नेपटाल या मरसिलिल इञ्जेक्शन दो शीशी का मासान्तरगत दे। यह इञ्जेक्शन तीसरे दिन। लगावें साथ मे नवसादर पीसकर १-१ माशे की तीन पुडिया बनाले। रोगी को सूई लगाने के २ घन्टे पश्चात् १-१ पुडिया दिन मे तीन वार दे दे। रोगी को नमक खाने को

न दे। केवल दूध पिलावे। पहिले दिन ही काफी मूत्र आकर उदर हलका हो जावेगा तथा शरीर पर शोथ भी कम हो जावेगा। यह चिकित्सा क्रम कम से कम तीन दिन तक चालू रखे। इसके पश्चात् विटामिन बी की गोलिया नित्य प्रति ३ गोली प्रात मध्याह्न व सन्ध्या को पानी से देते रहे। यह चिकित्सा क्रम २४ दिन तक चालू रखे। आवश्यक समझे तो लीवर एक्स्ट्रेक्ट, विटामिन बी एण्ड सी का इन्जेक्शन मासान्तरगत तीसरे दिन देते रहे। यह मेरी अनुभूत चिकित्सा है। रोगी यदि दूध पर गुजारा न कर सके तो चने या बाजरे की रोटी दूध से देते रहे। दूध ऊटनी, बकरी या गऊ का होना चाहिये भैस का नही। इस रोग मे एनेडेमीन-नेप्टाल-थीयोसिलीन और सिल्लेरीनादि एलोपैथी पेटेन्ट औषधि नेप्टाल एसीड्रोन और सलिगानादि इन्जेक्शनो के प्रयोग भी उत्तम है।

यूनानी मत से जलोदर चिकित्सा—

(१) मतबूत इसतिसका—मकोय खुशक ५ माशे, मवेजमुन्नका ६ दाने बेखकाशनी ७ माशे, बेख सौफ ७ माशे, हसराज ७ माशे, गुलगाफिस ५ माशे, तुखम खयारीन, मुलहठी तुखम कसूस [पोटली मे रखा हुआ] ५-५ माशे। रात को १॥ पाव पानी मे भिगोये। प्रात काल इसका निथरा हुआ पानी लेकर शर्बत दीनार से मीठा करके दिन मे तीन बार पिलावे।

शर्बत दीनार बनाना—त्रिस्फ ईज फिस्तकीर्तु दी-प्रत्येक ५॥ तोला, गुलसुर्ख, बेख काशनी प्रत्येक ४॥ तोला, तुखम कासनी ३ तोला, पोस्त बेख सौफ २॥ तोला, सौफ १॥ तोला, गुलनीलोफर, गुलबनफशा, गाजवान, अफतीमून, उस्तखद्दूस प्रत्येक १४ माशे, सनाय मकी, कालादाना प्रत्येक २ तोला ७ माशे, तुखम कसूस २ तोला सब औषधि रात को ४॥ सेर पानी मे भिगो रखे, प्रात जोश दें, जब १॥ सेर पानी रहे छान लें और उसमे १ सेर खाड मिलाकर पकावें। शर्बत की चाशनी होने पर उतार कर १२ तोले रेवन्द खताई पीसकर मिला लें। शर्बत दीनार तैयार है। ऊपर लिखे मतबूख मे डालकर पिलावें।

(२) इसतिसका लहमी मे नीचे लिखा योग इतना अनुभूत है कि तीन दिन मे पूर्ण लाभ हो जाता है। सनाय पत्ती, लौंग, शहद १-१ तोला, सनाय व लौंग को पहिले अलग अलग पीस ले। पीसने के पश्चात् इनका मान १-१ तोला होना चाहिये। फिर शहद मिलाकर तीन मात्रा बनालें। रोगी को सन्ध्या से २ घण्टे पहले भोजन करा दें। फिर सूर्यास्त होने के पश्चात् औषधि की १ मात्रा खिला दे। औषधि लेने के पश्चात् रोगी को जल या खाना कोई भी वस्तु न खिलाये, रोगी को रात मे दस्त होगे। किसी को ४-५, किसी को २० तक भी हो जाते है। उनको बन्द न करे और न घबरायें, रोगी को प्यास न लगेगी। प्रात काल तक आधी से अधिक सूजन कम हो गई होगी, प्रात काल सूखी रोटी और कबाब खाने को दे और गरम पानी पिलाये। फिर सन्ध्या से पहिले यही रोटी और कबाब खाने को दे। सन्ध्या के पश्चात् औषधि का दूसरा भाग खिलादें। इस रात्रि को दस्त बहुत कम होगे। रोगी प्रात काल निरोग हो चुका होगा। फिर वही सूखी रोटी और कबाब दोनो समय खिलायें। यदि आवश्यकता समझे तो तीसरी मात्रा दे नही तो आवश्यकता नही है। हा पथ्य वही दे। तीन दिन के पश्चात् मण्डूर भस्म या लोह भस्म आठ दिन तक खिलाऐ ताकि रोग का पुन आक्रमण न हो। जो रोगी मास न खाये वह अरहर की दाल से रोटी खा सकते हैं।

(३) बबूल के छिलके १० तोले को २ सेर पानी मे पकावें। जब आध सेर रह जावे तो उतार कर छान लें और फिर पकावें। जब १ छटाक रह जावे तो उतार कर आध पाव गऊ की छाछ मिलाकर पिलावें।

(४) इस भाति प्रात साय दे। भोजन मे गऊ की छाछ ही दे। यह भी इसतिसका लहमी मे लाभदायक है। इसतिसका जकी मे लालमिर्च के हरे पत्ते २५ नग, कालीमिर्च १० दाने, नौसादर १ माशा, नमक १ माशा सबको १ छटाक पानी मे घोट छानकर पिलावे, प्रात साय दोनो समय दें।

(५) इसतिसका तबेला मे—हरड़ बडी, हरड़ काली, अजवायन, सौफ, सोठ, जायफल प्रत्येक ३-३ तोला कूट छानकर दो बार ६-६ माशे की मात्रा पानी से दें। भोजन मे ऊटनी के दूध के सिवाय और कुछ न दे।

जलोदर पर लेप—इसको यूनानी भाषा मे खारजी इलाज कहते है। गौ का गोबर सूखा, बकरी की मीगनी, अगूर का लकडी की राख, सुहागा, गन्धक आंवलासार समान भाग मिला पीस सिरके मे मिलाकर लेप करे। यह लेप तीनो भाति के इसतिसको मे लाभकारी है। इसतिसका लहमी मे सारे शरीर पर, जकी मे पेट पर और तलवी मे हाथ पैरो पर लेप करना चाहिये। स्वेद देने के लिये गर्म हमाम मे रोगी को रखे ताकि पसीना खूब आवे, उसको पोछते रहे।

अपना चिकित्साक्रम और अनुभूत योग

मलसचय इस रोग का मुख्य कारण है। अत रोगी को तीव्र विरेचन इच्छाभेदी रस या नाराच रस देकर विरेचन कराता हूँ। फिर प्रात जलोदरारि रस २ रत्ती, ऊंटनी के दूध या गोमूत्र से देता हू। मध्यान्ह मे पुनर्नवासव या अभयारिष्ट २ तोले, जल २ तोले मिलाकर पिलाता हू और सायकाल नारायण चूर्ण ३ माशा जलोदरारि क्वाथ से देता हूँ। जलोदरारि क्वाथ का योग निम्नहै—

कुटकी १ तोले, निशोथ, भारगी, देवदारु, दारुहल्दी, चीतामूल, बडी हरड, सफेद पुनर्नवा मूल, कटहेरी की जड प्रत्येक ३-३ माशा, एरण्डमूल, गिलोय, रास्ना की जड ६-६ माशे अधकुटा कर डेढ पाव पानी मे प्रात को भिगो दे। सायकाल क्वाथ बनाकर दे। यह नारायण चूर्ण के साथ देता हूँ।

चार अनुभूत योग जिनको श्री स्वर्गीय पिता जी रोगियो को देकर सफल होते थे। निम्न हैं—

(१) जलारि रस—सिगरफ रूमी १तोला, कलमीशोरा ३ तोले, वेर पत्थर ३ तोले महीन पीस कर ठंडा थूहर के रस मे खरल करें। यहा तक कि पाव भर रस खप जावे। सूखने पर शीशी मे रखें। मात्रा २ रत्ती हलुवे मे लपेट कर दे। भोजन मे मासरस या चने या अरहर की दाल के पानी से रोटी दें। हर प्रकार के जलोदर मे लाभकारी है।

(२) सिरका अगूरी, नीबू स्वरस, आकाश वेल स्वरस, मूली स्वरस ८-८ तोला सबको १ बोतल मे मिलाकर उसमे नौशादर ५ तोला डाल दे। फिर बोतल को ४-५ दिन धूप मे रखें।

औषधोपचार क्रम—पहिले दिन रोगी को प्रातकाल १ तोले दें, दूसरे दिन २ तोले, तीसरे दिन ३ तोले, चौथे दिन ४ तोले पिला दे। फिर ४ तोले ही पिलाते रहे। आठ दिन मे काफी लाभ दिखाती है (आकाश वेल यदि बेरी के वृक्ष की हो तो अच्छा है)।

(३) भुने हुये चने की दाल इच्छानुसार लेकर उसे डडा थूहर के दूध मे सात बार तर करके छाया मेसुखाकर बारीक पीसकर वटी चने प्रमाण बना ले।

सेवन विधि—प्रात काल रोगी को १ वटी गर्म जल से निगलवा दे। इससे खूब दस्त होगे और पीला पानी पेट से निकलेगा। इसी भाति नित्य प्रति १ वटी रोगी को खिलाते रहे। यदि रोगी अधिक दुर्बल हो तो वही तीसरे दिन खिलाते रहे। जब पेट का पानी साफ हो जावे तो प्रात काल नवायसलोह ४ रत्ती शहद से चटाकर आधापाव गाय की छाछ पिला दे। सन्ध्या को माण्डूर वटी या पुनर्नवादि माण्डूर एक या दो वटी-छाछ के साथ खिलावें। भोजन के पश्चात् लोहासव या पुनर्नवासव १। तोला, जल १। तोला पिलाते रहे। इस चिकित्सा क्रम से चने की रोटी बकरी या गौ दुग्ध से खिलाता हूँ। नमक या साग दाल कुछ नही देता।

उदाहरण—

६ दिसम्बर सन १९५८ को श्री सरनामसिंह जाति गूजर निवासी शेरपुर आयु ६० साल मेरे पास आया। उसने बताया कि तीन साल हुये मेरे पेट मे पानी बढ जाता है डाक्टरी इलाज कराकर थक गया दो बार पेट से पानी भी निकलवाया है परन्तु कुछ दिनो पश्चात् फिर पानी बढ जाता है। मैने रोगी का निरीक्षण किया हाथ-पाव पतले, पेट फूलकर घडा सा हो रहा था हाथ मारने पर पानी बोलता था पेट की नसे नीली स्पष्टतया दिखाई देती थी नाभि उलट गई थी पहिले दिन इच्छाभेदी रस की ८ गोली ठडे जल से खिलाई जिससे आठ ही दस्त हुये परन्तु पेट हलका नही हुआ। अगले दिन नेपटाल की सूची मांसगत दी और ३ माशे नौशादर पीस कर तीन पुडिया बनाकर प्रात मध्याह्न सध्या को ताजा जल से लेने को कह दिया, अगले दिन रोगी ने बतलाया कि मुझे एक घडा सारा पेशाब हुआ है मैने पेट देखा तो आधे से अधिक पानी निकल चुका था। आज कलमी शोरा १॥ माशा और नौशादर १॥ माशा पीस

कर तीन पुडिया बनाकर देदी और तीनो समय खाने को कह दिया। तीसरे दिन रोगी को फिर नेपटाल सूची दी और वही पुड़िया पूर्ववत दी। यह चिकित्साक्रम ६ दिन चालू रहा। फिर ८ दिन तक जलोदरारि रस दिया गया फिर २४ दिन तक नवायसलोह व पुनर्नवादि मांडूर गौमूत्र से दिया गया, इस बीच मे सब आहार बन्द रखे केवल गौ दुग्ध ही दिया गया क्योकि उटनी व बकरी का दुग्ध यहां अप्राप्य था। जब दूध से रोगी की भूख पूरी न हुई तो चने की रोटी दूध से दी जाने लगी। दो महीने तक यही क्रम चालू रहा कि शनै शनै सब वस्तु खिलाई गई। रोग का पुन आक्रमण नही हुआ।

९।३।६० को श्री मूपा जाति वाल्मीक आयु ५० वर्ष निवासी जाटौल मेरी चिकित्सा मे आया। वह कई जगह चिकित्सा कराकर निराश होगया था। इसे यकृत रोग पुराना होने से यह रोग हुआ था। इसको मैंने योग नम्बर ३ जो ऊपर लिखा है की ६ वटी दी। उसने ६ दिन तक खाई काफी दस्त हुये पेट हल्का हो गया परन्तु उसने इसके पश्चात् कोई और औषधि नही खाई इसके कारण ६ महीने पश्चात् रोग पुन हो गया और रोगी इसी रोग मे परलोक गमन कर गया।

६।४।६० को रामोदेवी जाति जाट आयु ३५ वर्ष निवासी नागल जि सहारनपुर चिकित्सार्थ आई। इसके पति ने मुझे बतलाया कि ४ साल से हम इसकी चिकित्सा करा रहे है जब तक दवाई खाती रहती है कुछ आराम सा होता है परन्तु दवाई छोडने पर फिर वैसी ही हालत हो जाती है। अब आपका नाम सुनकर आपके पास लाये है। रोगिणी को देखने से निम्न लक्षण ज्ञात हुये—सारे शरीर पर शोथ था शरीर फूलकर कुप्पा होगया था शरीर के किसी भी स्थान पर अगुली से दवाने पर गढा पड जाता था, शरीर का रग कलापन साथ मे वायु से कामला था भूख बहुत कम लगती थी प्यास अधिक थी कई स्थानो पर डाक्टरी चिकित्सा कराई थी।

उसका चिकित्सा क्रम निम्न प्रकार चालू किया गया—प्रात काल पुर्ननवादि मण्डूर २ वटी पुनर्नवाष्टक क्वाथ मे २॥ तोला गौमूत्र भी मिलाय: जाता था मध्याह्न को अर्क यकृत २॥ तोला साम के ४ बजे प्लीहा वटी दो पुनर्नवाष्टक क्वाथ से रात को अर्क यकृत २॥ तोला। यह अर्क यकृत दूध पिलाने के १ घण्टा पश्चात् दोनो समय दिया जाता था। यह चिकित्सा क्रम १ महीना चला रोगिणी ठीक होगई और अब तक रोग का पुन आक्रमण नही हुआ। चिकित्सक यह ध्यान अवश्य रखे कि जलोदर किस रोग के पश्चात् हुआ है। यह यकृत से, प्लीहा से या वृक्को या मसाने के रुग्ण होने से अर्थात् जिस रोग के कारण से हुआ हो चिकित्सा का ध्यान रखना ही इस रोग के पुन आक्रमण को रोकना है। मेरे चिकित्सा क्रम मे जो योग शास्त्रीय है उनके लिखने की यहा आवश्यकता नही है उनको पाठक पुस्तको से देखलें परन्तु २ योग प्लीहा वटी तथा अर्क यकृत मेरे स्वकल्पित हैं। अत वे योग निम्न हैं—

प्लीहा वटी—सुहागा शुद्ध १ तोला, एलुवा १ तोला, नौशादर १ तोला, राई १ तोला, फेरी-एट कोनेन साइट्रास ७॥ माशा सब औषधि खरल करके पानी का छीटा देकर चने प्रमाण, वटी बनाले। मात्रा ८ गोली अर्क यकृत, चिरायता, गिलोय, अजवायन, कासनी, खूबकला, मु डी, प्रत्येक ५-५ तोले लेकर अधकुटी करके ३ सेर पानी मे भिगो दे। तीन दिन के पश्चात् पकावे। आधा पानी शेष रहने पर छान दे। फोक मे २ सेर पानी डालकर दोबारा पकावे। आधा जल रहने पर छान ले। फिर ८ सेर पानी डालकर तीसरी बार पकावे और आधा रहने पर छान ले। तीनो पानी को एक मे मिला कर उसमे ७ तोले नौशादर और २१ माशे गन्धक तेजाब डालकर दो दिन पड़ा रहने दे। फिर नितार अर्क बोतल मे भरकर रखे। अब यह अर्क १। तोला कुमारी या लोहासव १। तोला, कलमीशोरा ४ रत्ती, नौसादर ४ रत्ती मिलाले। यह अर्क यकृत की एक मात्रा है। इसी हिसाब से जितनी मात्रा चाहे बनाले। यह अर्क यकृतप्लीहा मे भूख न लगना मे उत्तम है।

—श्री शकरलाल वैद्यभूषण
साडोली पो झबरेडा (सहारनपुर)

कोष्ठबद्धता

लेखक—कविराज श्री नन्दकिशोर मिश्र आयुर्वेदाचार्य, जी. ए. एम एस.
चिकित्सा प्रोफेसर—गवर्नमेण्ट आयुर्वेद कालेज, पटना।

प्रस्तुत लेख हमारे प्रिय मित्र और आयुर्वेद के यशस्वी चिकित्सक श्री नन्दकिशोर मिश्र का है। पटना आयुर्वेद कालेज मे आप प्राध्यापक है। इस समय आपको सरकार ने स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के लिए जामनगर भेजा है। कोष्ठबद्धता सब रोगो की मुख्यत: कायरोगो की जननी मानी जाती है इसी कारण इस प्रसंग मे पाठको के लिए विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह लेख पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। भाषा की लेखक की अपनी शैली है जो विषय विवेचन मे सहायक सिद्ध हुई है तथा जो कही भी पाठक को शिथिल नही होने देती। र० प्र० त्रि०

भारत भाग्य विधाता गाधी जी के पावन जन्म स्थान से कुछ मील दूर, समुद्र की उत्ताल तरङ्गो से उत्थित मधुर-संगीत से मुखरित, माया सी मोहक, मलयानिल सा समशीतोष्ण, सुखद समीर की हिलोरो मे अहर्निश उतराता हुआ भी कोष्ठबद्धता से पीडितो के उदास चेहरो को भूल नहीं सकता हूं, और न उनके उस उल्लास को, जो 'खुलासा' दस्त आने के दिन 'यह समाचार' मिलने वालों से सनसनीदार खबर की तरह सुनाते समय उनके अंग अंग से छिटकी पडती है।

४७६ लक्षण–

कोष्ठबद्धता के लक्षण तीव्र नहीं होते, और बहुधा इससे आक्रान्त व्यक्ति इसे पहिचान नहीं पाते, फिर भी यह बहुत से रोगो की जननी है और अनुक्षण सर्वाङ्ग शरीर मे विष (toxin) का सञ्चार करती रहती है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति मे स्नायु-दौर्बल्य, किसी कार्य मे मन न लगना, अनुत्साह, शारीर एवं मानसिक अवसाद, मस्तिष्क मे भारीपन, शिरोघूर्णन, अग्निमान्द्य, जिह्वा अपरिष्कृत, दांतो मे मल वृद्धि, मुख मे दुर्गन्ध, हृत्पिण्ड का स्पन्दन, सामान्य श्रम से थकावट, अकाल वार्धक्य, चिडचिडापन आदि अनेक शिकायते पैदा होती रहती हैं।

४७७ कहां पाई जाती है?

भुक्त पदार्थ के घन असार अंश का मलाशय मे उचित समय से अधिक समय तक रुका रहना अथवा असम्यक् रूप से निकलना, कोष्ठबद्धता है। इसके अनेको कारण है, उनमे से कुछ का विवेचन निर्देशन रूप मे किया जा रहा है। यह निजागन्तुक कारणो से उत्पन्न तो होता ही है, पर बहुधा वह व्यक्ति जो अजीर्ण, अग्निमान्द्य या कोष्ठतारल्य आदि रोगो से बार-बार पीडित होता है, उसमे मलबद्धता घर कर लेती है।

(क) कोष्ठबद्धता भोजन के प्रकृति, करण आदि अष्टविध नियमो को पालन न करने एवं इच्छा या अनिच्छा पूर्वक अपथ्य भोजन तथा दूषित पेय पान से पैदा होती है। आमाशय हिताहार प्रेमी है। जब उसमे दूषित खाद्य, पेय पहुचता है, तब उसके संस्पर्श से यहां के कोमल आस्तरण, प्राणदा नाडियां, रसस्रावक ग्रन्थिया प्रभृति प्रदाहित एवं उत्तेजित हो जाती है। शरीर स्वास्थ्य के जागरूक प्रहरीस्वरूप आमाशय की क्षुब्ध पेशिया, अपने

सतत आक्षेपों से शरीर के लिए हानिकर पदार्थों को ऊर्ध्वभाग से वाहर निकालने की कोशिश करती है। यदि वे इसमें सफल न हो सकीं, तब वे उसे निर्धारित समय से पहले ही अधोभाग में फेंकती जाती है। इस उत्तेजना के परिणामस्वरूप आमाशय और आन्त्रो की गति मे वृद्धि हो जाती है। उनसे पाचक रसो का स्राव अत्यधिक मात्रा में होता है, भुक्त द्रव्य भी द्रुतवेग से सञ्चालित होता रहता है और आमाशयिक एवं आन्त्रिक स्राव से मिलकर अति तरल रूप धारण करता है, अत अच्छी तरह से परिपाचन और रस का शोषण न होकर द्रवमय मल के रूप मे मल मार्ग से बाहर निकल जाता है। इस तरह बार-बार होते रहने पर कोष्ठबद्धता आ जाती है।

४७८ कोष्ठतारल्य—

कोष्ठतारल्य से कोष्ठबद्धता मे परिणति की बात शायद पाठको को कुछ अट-पटी सी लगे पर बात साफ है, भुक्त द्रव्य शरीर के अन्दर अपने कर्म-तापोत्पत्ति, पोषण आदि कर्मो के करने मे तभी समर्थ होते है जब वे पाचकाग्नि, भूताग्नि और धात्वग्नि से परिणमित होकर आत्मसात् कर लिये जाते है और उसका मल भाग बहिर्गत हो जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रदाहित एवं उत्तेजित आमाशयादि की क्रिया में व्यत्तिक्रम होकर उनकी गति की वृद्धि से स्राव, उसमे भुक्त पदार्थ का घुलना और विधिवत् परिणमित न होकर आम विप का रूप धारण करना, रसांकुरिकाओ द्वारा शोषित होकर रक्त मे मिलकर आमदोषयुक्त रक्त मस्तिष्क मे पहुँचकर, नाडीमण्डल को, जो देहघटक एक-एक कोपाणु मे व्याप्त है प्रभावित करता है। इस तरह बार-बार व्यत्तिक्रम से आमाशयादि की प्राणदा नाडिया शिथिल एवं निष्क्रिय होती जाती है और उनके समुचित कार्य न कर पाने से स्थायी कोष्ठबद्धता का रूप धारण कर लेती है जो सहज ही अनुपेय है।

४७९ मलबद्धता का दूसरा कारण—

शारीरिक श्रम से दूर भागना भी है। परिश्रम से तन और मन मे स्फूर्ति आती है और नयी-नयी भावनाऐ मूर्त्तरूप धारण करती है। कारण श्रम से शरीर मे शुद्ध रक्त त्वरित गति से परिभ्रमित होता है। प्रत्येक कोपाणु मे विष्णुपदामृत (oxygen) युक्त ताजा खून पहुच कर उसके क्लेश को दूर करता है और पसीना के रूप मे बाहर निकालकर शरीर को तरो-ताजा बना देता है। फलस्वरूप नाडीमण्डल भी सक्रिय एवं सतेज बन जाता है और वह पाचक यन्त्रो को भी स्वस्थ, सवल एवं सक्रिय बनाये रखता है। सामान्य पथ्य का व्यतिक्रम होने पर भी परिपाक क्रिया समुचित होकर सारभाग का शोषण और मल भाग का मलमूत्रादि के रूप से नियमित विसर्जन होते रहने के कारण कोष्ठबद्धता नहीं हो पाती है।

पुष्टिकर आहार करने पर भी शारीर श्रम के अभाव मे कोष्ठबद्धता धर दबाती है। ऐसी अवस्था मे यदि शरीर को आराम से रख कर अधिक मानसिक श्रम किया जाय तो और भी बुरा परिणाम होता है। कारण, अतिरिक्त मस्तिष्क सञ्चालन से रक्त का अधिकांश भाग मस्तिष्क मे पहुंच जाता है तथा आमाशयादि पाचक संस्थान मे रक्त प्रवाह की कमी से निष्क्रियता आती है और पाचक रस का स्राव अत्यल्प होता है। पित्त-रक्त से ही बनता है और उसकी कमी से वह पूरी मात्रा मे बन नहीं पाता फिर त्वरित कहां से होगा। अत कोष्ठबद्धता की शिकायत पैदा होती है।

४८० यकृत की विकृति--

से भी कब्जियत होती है। यकृत मे रस से रक्त का निर्माण और उसी से पाचक पित्त निर्मित और निस्सृत भी होता है। यह पित्त पाचन कार्य के साथ-

साथ आन्त्र की कृमिगति बढ़ा कर मृदु विरेचक का भी कार्य करता है। यकृत के विकार ग्रस्त होने से रक्त की सतेजता मे कमी होती है। फलत तेजो-गुणयुक्तपित्त का निर्माण एवं निस्सरण कम हो जाने से कोष्ठबद्धता आ जाती है। बच्चों को यकृत विकार होने पर मांटी के रङ्ग का कठिन मल आने लगता है, ऐसी अवस्था मे यकृत की चिकित्सा से ही उनकी कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है। बडो के लिये यही क्रियाक्रम लाभप्रद होगा। कुछ ऐसे भी द्रव्य है जिनके खाने से कोष्ठबद्धता होती है। किस चीज के खाने से किसे मलबद्धता होगी यह कहना जरा मुश्किल है, फिर भी कुछ निर्देश किया जा रहा है। चायपान से मलबद्धता बढ़ती है। कारण, उसका प्रधान उपादान टेनिन (tanin) है। मांसाहार से भी यह पैदा होता है। कुछ स्थान विशेष के जल, जिनमें लौह अभ्र आदि के अंश अधिक होते है कब्जियत की शिकायत पैदा करते है। बिहार के रांची, वैद्यनाथधाम, झरिया, मधुपुर आदि स्थानो के जल मे ये दोष मौजूद है।

४८१ बहुत दिनो तक रोग-भोग के कारण—

शरीर के दुर्बल हो जाने पर कब्ज बनी रहती है, जिसकी वजह आमाशय एवं अन्न आदि के स्नायु सम्बन्धी निस्तेजता है। रोग मुक्ति के बाद शरीर के सबल होने पर वह आपसे आप दूर हो जाती है। बार बार विरेचक औषधियो का सेवन भी कब्ज को आमन्त्रित करता है। कारण, विरेचन आदि से आन्त्रस्थ कलाऐ बार बार अतिरिक्त उत्तेजित होते रहने के कारण, उनमे शिथिलता उत्पन्न होती है और इस व्याधि की उत्पत्ति मे सहायता पहुँचाती है। इसी प्रकार उग्र औषधियो का अधिक सेवन, चरपरे मसालेदार 'चाप' आदि की चाट इस दु खदायी उपसर्ग को पैदा करती है।

४८२ हिस्टीरिया—

रक्ताल्पता, मूर्च्छा, मधुमेह प्रभृति रोगो मे भी इसका प्रावल्य पाया जाता है। अनेक गर्भवतियां भी इससे कष्ट पाती है, पर प्रसवान्त मे यह आपसे आप उनका पिण्ड छोड़ देता है।

४८३ शिष्य-गुरु संवाद—

श्री अग्निवेश ने महर्षि आत्रेय से प्रश्न किया कि कौन मनुष्य सदा आतुर रहते है और उनके लिये हित क्या है? गुरु आत्रेय ने जो उत्तर दिया था, वह आज भी उतना ही तथ्यपूर्ण है। चरकसंहिता सिद्धि स्थान के ११ वे अध्याय में उन्होने बतलाया कि वेदाभ्यासी ब्राह्मण, राज-सेवक, वेश्या और दुकानदार सदा रोगी रहते है। कारण ये सब मल मूत्रादि वेगो को अपने कार्य की चिन्ता मे रोका करते है और समय पर भोजन भी नहीं कर पाते। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि इनके अतिरिक्त और भी जो कोई अकाल मे मल मूत्र का त्याग, वेगो का विनिग्रह और आहार विहार करते है वे सदा रोगी ही रहते हैं। इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए बतलाया कि वेगो के रोकने से वायु विबद्ध होकर प्रकुपित हो जाता है और वह सब अङ्गो मे वेदना भी पैदा करता है, ऐसी परिस्थिति मे उनके हित के लिये मल मार्ग मे स्नेहयुक्त फलवर्ति (suppository) का प्रयोग करे।

४८४ रंगीली स्त्रियां—

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया ही इसके चंगुल मे अधिक फँसती है, खासकर वे, जो देह की सजावट, बनावट एवं शृंगार मे ही लगी रहती है इसका कारण कटिभाग को पतला रखने के शौक मे खूब कसकर साड़ी पहनना और बनने ठनने की चिन्ता मे अपने आपको भूले रहना है। रज प्रवृत्ति के समय परिस्थितिवश या उपेक्षा से उसके नियमों का पालन न कर सकना तथा लज्जा अथवा असुविधा के कारण नियमित मल मूत्र अपान वायु के त्याग मे रुकावट होना है।

४८५ सम्प्राप्ति-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पाचन यन्त्रो की नाडियो का अवसाद ही स्थाई कोष्ठबद्धता का हेतु है, यह काठ के घुन की तरह अत्यन्त धीरे-धीरे शरीर को जर्जरित कर छोटे बड़े अनेक रोगो का अखाडा बना देती है। विरेचक औषधियो से सामयिक लाभ तो होता है, पर उससे मूल कारण—पाचन संस्थान का नाड़ीशैथिल्य दूर न होने की बजह से शिकायत बनी ही रहती है। अपान वायु की विगुणता से उसका सम्यक् अनुलोमन नहीं होता, वह आमपक्वाशय की समान वायु को भी प्रदुष्ट कर देता है परिणामत: पेट का भारी रहना, अफरा, अपचन, आध्मान, गुड्गुडाहट, दुर्गन्धयुक्त अधोवायु का निस्सरण आदी अनेक शिकायतो मे से कोई न कोई मौजूद ही रहती है।

४८६ सावधानी और उपचार-

आन्त्रशैथिल्य को दूर करने के लिये आसन एवं ऐसे व्यायाम, जो उदरगत पेशियो को सबल तथा सक्षम बना सके, करे। चोकर सहित आटे की रोटी, चने की दाल, कढी, परवल, पपीता, तोरई, कद्दू बथुआ का शाक, धनियां की पत्ती डाली हुई खट्टे अनार, आंवला, आलूबुखारा, आदी की चटनी, बीजू आम, अमरूद, सेव, नारङ्गी, पपीता, गन्ने का रस, तक्र, दूध, घी, वगैरह विविध खाद्य पेय को दोष दूष्य, देश, बल, काल, प्रकृति, सात्म्य और पाचन शक्ति का विचार कर सेवन करे।

मलायनो की स्वाभाविक सफाई पर पूरा ध्यान रखे, त्वचा की सफाई के लिये प्रवाहमयी नदी या मीठे कूप के जल से सर्वाङ्ग को तौलिया से मर्दन कर स्नान करे। स्नान से पहले सरसो तेल की मालिश की प्रथा, जो अज्ञात काल से चली आरही है, वह आज भी उतनी ही उपादेय है। यह चर्मगत विविध जीवाणु नाशक है, त्वचा पर उत्तेजक क्रिया करने की वजह से वहा की धमनियाँ स्फीत होकर उसे सबल एवं त्वग्गत स्वेद और स्वेद को निकाल कर अभिनव स्फूर्ति का संचार करता है। त्वचा के तैलांश को स्नान करते समय साफ तौलिये से रगड़ कर दूर कर देना चाहिए। अन्यथा धूलकण पड़ कर रोम कूप के छिद्र को बन्द कर सकते है।

४८७ राजगृह के वे उष्णोदक स्रोत—

महात्मा बुद्ध की लीला एवं तपोभूमि राजगृह के पर्वतो के उष्ण प्रस्रवण जिसकी प्रशंसा वीर सेनानी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने हरिपुरा कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण मे की है, जल का पान और उसमे स्नान इसके लिये आश्चर्यजनक लाभप्रद है। दयामयी प्रकृति ने उस कुण्ड के जल मे रेडियम गन्धक आदि रसायन गुणयुक्त महदुपकारक औषधियो के सूक्ष्मतम अणुओ को मिश्रित कर रखा है। उस निरापद एन्टीवायोटिक (antiviotic) उष्ण जल के स्पर्श से औदरिक धमनिया अधिक सक्रिय होकर मल की सफाई कर देती है, साथ ही उसकी स्थितिस्थापकता गुण मे वृद्धि होती है, नाडी वितान मे स्फुर्ति, तुष्टि, पुष्टि तथा नवशक्ति संचार होजाता है। हमारे देश मे ऐसे नैसर्गिक उष्ण प्रस्रवणो की कमी नहीं फिर भी उनमे नहाने की जिन्हे सुविधा न हो, वे हमाम या टबबाथ से भी लाभ उठा सकते है, हां इतना याद रखना चाहिए कि उष्ण जल से स्नान करने के पहले वे शिर को शीतल जल से खूब धो लिया करे और उसे गरम जल के प्रभाव से बचा कर रखे।

४८८ शास्त्राधार-आहार एवं आचार—

निदान परिवर्जन चिकित्सा का सूत्र सिद्धान्त है ही, इसके सिवा आचार्य सुश्रुत ने रोगो के निग्रह के लिए—"संशोधन संशमनाहाराचारा: सम्यक्

प्रयुक्ताः निग्रह हेतव."–कहा है। संशोधन और संशमन चिकित्सा किसी योग्य चिकित्सक की राय से करना उचित है, पर उससे भी अधिक स्थायी लाभदायक आहार और आचार चिकित्सा कोष्ठ-बद्धता के लिए है। काश्यप संहिताकार ने शायद इसी रोग को मद्देनजर रखकर कहा है कि आहार के समान कोई भी भेषज नहीं मिलती। सिर्फ अन्न के समुचित उपयोग से मनुष्य निरामय किया जा सकता है। इसलिये उनके कथनानुसार आहार रूपी 'महाभेषज' को नियत समय पर विचारपूर्वक सेवन किया करे। आचार और विहार को भी तदनुरूप बनावे और इस 'रोगग्राह' से बच कर अपना तेजोमय उज्ज्वल जीवनयापन करते रहे।

—श्री नन्दकिशोर मिश्र।

:: कृमि रोग ::

:: पृष्ठ २६४ का शेषांश ::

चूर्ण शहद के साथ चटवाया करता हूँ। इसी क्रिया द्वारा अनेकों रोगियों पर सफलता प्राप्त की है। आशा है वैद्यवन्धु भी इस प्रयोग को अवश्य प्रयोग करके सफलता प्राप्त करेंगे।

दूसरा प्रयोग–खुरासानी अजवायन, पलाश बीज, कबीला, वायबिडंग, दूधिया वच, हल्दी, निशोथ १-१ तोला, उशारेरेबन्द, हींग, पीपल, बावची, हरड़ ६-६ मापा, इन सबको कूटकर जल के साथ १ माषा प्रमाण की गुटिका को उष्ण जल से प्रयोग करने पर पूर्ण लाभ प्राप्त होता है। यह योग वैद्य सहचर का है। मेरा इस योग पर भी पूर्ण अनुभव है।

४७५ रक्तजन्य कृमि–

रक्तजन्य कृमि अति सूक्ष्म होने के कारण दिखलाई नहीं पड़ते है। ये ताम्र वर्ण के और पादहीन होते है तथा आकार मे वृत्ताकार और सूक्ष्म। ये कृमि विरुद्ध भोजन अथवा अजीर्ण मे तथा रक्त को दूषित करने वाले पदार्थों के सेवन करने से उत्पन्न हो जाते है। इनका निवास स्थान रक्तवाहिनी शिरायें है। इनके केशादा, लोमाद, लोमद्वीप सौरस औदुम्बर प्रभृति नाम है। ये शरीर में बढ़ कर बाल नख पक्ष्म इत्यादि को गिराना आरम्भ कर देते है। तथा शरीर मे सूची-वेध के तुल्य पीड़ा और कण्डू तथा तरुणास्थियो का भक्षण करके रोगी को कृश कर देते है।

रक्तजन्य कृमि पर मेरा अनुभव–

इसी ग्राम का रिसालसिंह नाम का एक व्यक्ति जिसकी उम्र लगभग ५५ वर्ष थी ३ वर्ष से रक्तज व्याधि से ग्रस्त था उसके शरीर पर फुंसी निकलना शरीर में सूची के तुल्य पीडा होती थी तथा लिंग पर भी फुन्सी निकल कर फूट जाती थीं और उनसे मवाद वहता था। मूंछ के भी कहीं कहीं से बाल उड़ने आरम्भ होगये थे तथा हाथों पैरो मे दाह होती थी। यह रोगी अनेकों चिकित्सकों की चिकित्सा कराकर निराश हो चुका था यह मेरे पास आया मैंने उसके लिए रसतन्त्रसार सिद्ध प्रयोग संग्रह मे वर्णित रक्तशोधक क्वाथ की व्यवस्था की। अनन्तमूल, उशवा, मुलहठी, सफेद मूसली, गोरखमुण्डी, रक्त चन्दन, सनाय, असगन्ध, आठों ५-५ तोले तथा सौंफ पीपल इलायची गुलाब के फूल २॥-२॥ तोले लेकर और कुटवाकर १-१ तोले का क्वाथ दिन मे दो बार पिलाया। यह क्वाथ ४० दिन तक चलाया गया तथा इसके साथ २-३ इंजैक्शन सोडियम पेनसिलीन के लगाये और डेढ़ माह तक उसको वेसनी रोटी घी के साथ खिलाई। तेल खटाई नमक इत्यादि तीक्ष्ण पदार्थों का परहेज कराया गया, अब वह स्वस्थ है।

वमन या छर्दि

लेखक—आयुर्वेदाचार्य श्री वैद्य युगलकिशोर लाल [illegible] बी. एस. एम. ([illegible])
वैद्य प्रभारी राजकीय औषधालय, [illegible] ([illegible])

यह लेख मेरे प्रिय बन्धु श्री युगलकिशोर [illegible] ने [illegible] लिखा [illegible] ने एक उदीयमान लेखक हैं। उन्होंने [illegible] चिकित्सा पद्धतियों के गहरे अध्ययन के बाद यह लेख लिखा है। कोई भी व्यक्ति इस कथन की सत्यता उनके लेख से [illegible] है। [illegible] आयुर्वेद के [illegible] और ख्यातिप्राप्त [illegible] हैं। मुझे विश्वास है [illegible] द्वारा वाङ्मय की यथार्थ एवं पर्याप्त सेवा होगी।

र. प्र. [illegible]।

४८९ कारण—

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः ।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ।
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैः द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ।
छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥

—माधवनिदान

आयुर्वेद ने अनेक कारणों से बलात् उत्क्लेश को प्राप्त हुआ दोष मुख को छादित या पूरित करता हुआ अङ्ग को पीडित करके उसकी दिशा को भंग करके जब मुख द्वारा बाहर आता है तब वह वमन कहलाता है। इसी को आङ्गल भाषा में forcible ejection of gastric contents by reverse peristalsis कहा जाता है। दोनों का एक ही भाव है।

आयुर्वेद ने इतने कारण गिनाये है—

१ अत्यधिक मात्रा में द्रव या जलीय पदार्थों का सेवन, २. अतिस्निग्ध पदार्थों का सेवन, ३. अहृद्य पदार्थों का भक्षण, ४. अत्यधिक लवणयुक्त पदार्थों का भक्षण, ५ अकाल भोजन करना, ६ अतिमात्रा में भोजन सेवन करना ७. असात्म्य पदार्थों का ग्रहण करना. ८ अत्यन्त श्रम ९ अत्यन्त भय १० उद्वेग ११ अजीर्ण, १२. कृमिदोष, १३ आपन्नसत्त्वा (गर्भिणी) स्त्री, १४ बहुत शीघ्र भोजन करना, १५ बीभत्स कारण तथा १६ अन्य कारण।

वमन के कारणों पर पाश्चात्य चिकित्सकों ने बहुत विचार किया है जो संक्षेप में इस प्रकार है—

कण्ठगतकारण—प्रक्षोभ—सगर्भता—कुकर कास

अन्नप्रणालीय कारण—सकोच आक्षेप पीडन

आमाशयिक कारण —श्लेष्मलकला में शोथ—मुद्रिकाद्वारीय अवरोध—असात्म्य भोजन—वामक द्रव्यों का सेवन—कैंसर—आमाशयिक व्रण।

आन्त्रिक कारण—कृमि-तीव्र अपेण्डीसाइटिस (उण्डुकपुच्छपाक की तीव्रावस्था)-आन्त्रिक अवरोध

हैजा

पित्ताशयिक कारण—पित्ताशयशूल-पित्ताशयजन्य अजीर्ण

वृक्कीय कारण—वृक्कशूल

केन्द्रिय कारण—मूत्रविषमयता या अम्लोत्कर्ष-क्षारोत्कर्ष

मानसिक कारण - हिष्टीरियाजन्य-अभिघात जन्य-मस्तिष्क मे अर्बुद उत्पन्न होना, फिरङ्ग रोग का मस्तिष्क पर प्रभाव—दुर्गन्ध

सज्वर कारण—ज्वर (विशेष कर मलेरिया मे)-मेनिंनजाइटिस-शीतला-प्लेग आदि

शिशुओ मे-अधिक भोजन—असात्म्य भोजन-वायु का निगल जाना-ज्वर-मुद्रिका द्वार का सहज स्थैर्य-कृमि-उपसर्ग-शिर मे पीडन की वृद्धि-कस कर बांध देने से।

४६० वमनक्रिया मे क्या होता है ?

वमन होते समय पहले आमाशय की प्राचीरे सिकुडती है। रोगी श्वास भी लेता है और उसकी महाप्राचीरापेशी बलात् नीचे को धसक जाती है साथ ही बड़े वेग के साथ आमाशय की पेशियां संकोच करती हैं। इसी समय आमाशय का ऊर्ध्व-द्वार ढीला होकर खुल जाता है। आमाशय महा-प्राचीरा पेशी और आमाशयिक पेशियों के बीच दब जाता है जिसके कारण बड़े वेग से उसके अन्दर का सामान ऊपर की ओर फेक दिया जाता है। इस क्रिया मे उद्वेग (reverse peristalsis) खूब सहायता करता है। मुद्रिकाद्वार प्रायः बन्द रहता है पर कभी कभी वह भी ढीला होजाता है जिसके कारण पित्त भी वमन के अन्दर आने लगता है। आयुर्वेद के पञ्चकर्म मे वमन कर्म तभी साधु माना जाता है जब पित्त का आगमन हो जावे।

प्राण ग्रन्थि या मैड्यूला आवलांगाटा के अन्दर एक वमन केन्द्र रहता है। इस केन्द्र के उत्तेजित होने से वमन होती है। इसकी उत्तेजना की लहरे आमाशय से जाती है। वागस के संज्ञावाही सूत्र वमन केन्द्र को उत्तेजित करते है। दूसरे अन्य अंगो के संज्ञावाही सूत्र भी वमन केन्द्र को उत्तेजित कर सकते है। कभी कभी वमन केन्द्र सीधा भी प्रभावित हो सकता है। एपोमार्फीन का इञ्जैक्शन सीधा ही कार्य करता है।

इस प्रकार वमन केन्द्र की उत्तेजना के दो रूप है एक *प्रत्यक्ष प्रभाव* दूसरा *अप्रत्यक्ष प्रभाव*। प्रत्यक्ष प्रभावकारक कारणो मे एपोमार्फीन की सुई तम्बाकू-अनीस्थीसिया-मूत्र विषमयता-मधुमेह-यकृत् का तीव्र पीत नाश-एडीसनीयरोग-किसी तीव्र रोग का आरम्भ जैसा कि बालको मे प्राय देखा जाता है-सगर्भावस्था-बालको की समय समय पर पुनः पुन होने वाली वमन आते है।

अप्रत्यक्ष-प्रभावकर कारणों मे—आमाशयिक कारण-आमाशय पर प्रक्षोभकारक कारण-वामक-द्रव्य-विष-आमाशय शोथ-मुद्रिकाद्वारीय अवरोध-मारात्मक रोग-संकोच-बाह्यक्षेत्र से पीडन-आमाशय की विस्तृति-व्रण-कैंसर-यकृत् की सिरोसिस-आमाशय की रक्तसिराओं मे रक्ताधिक्य-आन्त्रिक तथा अन्य कारणों में अवरोध-उण्डुकपुच्छ शोथ-कृमि-वस्ति प्रयोग-पर्पूरा-उदरावरण पाक-पित्ताशय शूल-वृक्कशूल-चलित वृक्क-पैंक्रियाज का शोथ-स्त्री प्रजननांग के रोग-गर्भता-गर्भाशय का पीछे को झुक जाना-बीजकोश के रोग-शोष-अत्यधिक कास के दौरे से या अन्य कारणो से गले या श्वासनलिका मे प्रक्षोभ-कुकुरकास-शौक लगना-पेट के ऊपर मुक्के मारना या जानुसन्धि पर घातक चोट आदि आते है। मस्तिष्कगत रोगो में चोट-अर्बुद-मेनिंजाइटिस-उदकशीर्ष-रक्तस्राव, संहनन, मध्यकर्ण रोग, अर्धावभेदक, अपस्मार, समुद्रीयात्राजन्य रोग, ट्रेन या मोटरकार की यात्रा जन्य विकार,

वायुयान में यात्रा करने के साथ होने वाला विकार-हिस्टीरिया आदि कारणों से होने वाले वमनों का समावेश होता है।

४६१ वमन के पूर्वरूप

हृल्लास (nausea), उद्गार (eructation) का अवरोध, प्रसेक (catarrh), नमकीन एवं पतले लालारस का स्राव, अन्नपान में द्वेष ये वमन के पूर्वरूप बतलाये जाते हैं।

४६२ वमन के भेद

आयुर्वेद की दृष्टि से किसी भी कारण से होने वाली वमन को ५ प्रकारों में बांटा जा सकता है।

४६३ वातज छर्दि—

यह अत्यन्त कष्टप्रद है। वमन के साथ जोर की आवाज होती है। इस वमन के साथ मुख्य निम्न लक्षण मिलते हैं इन रोगों में होने वाली वमन को वातिक वमन मानें —

१. हृदय में शूल २. पार्श्व में पीड़ा ३. मुख का सूखना ४. शिरःशूल ५. नाभिशूल ६. कास ७. स्वरभेद ८. तोद।

वमन में बहुत से झाग होते हैं। फटी-फटी और काले वर्ण की होती है। थोड़ा द्रव भाग होता है। कषाय रस प्रधान होती है। बहुत कष्ट से बहुत थोड़ी मात्रा में वमन होती है। वमन के समय प्रबल शब्द और वेग बहुत जोरदार होता है। हैजे में होने वाली छर्दि में भी किसी-किसी में ये लक्षण मिलते हैं।

४६४ पित्तज छर्दि—

पित्त के कारण होने वाली वमन निम्न रोगों में मिलती है या लक्षण मिलते हैं:—

१. मूर्च्छा २. तृष्णा ३. मुखशोष ४. शिर में सन्ताप ५. तालु में जलन ६. नेत्रों में जलन ७. तम ८. भ्रम।
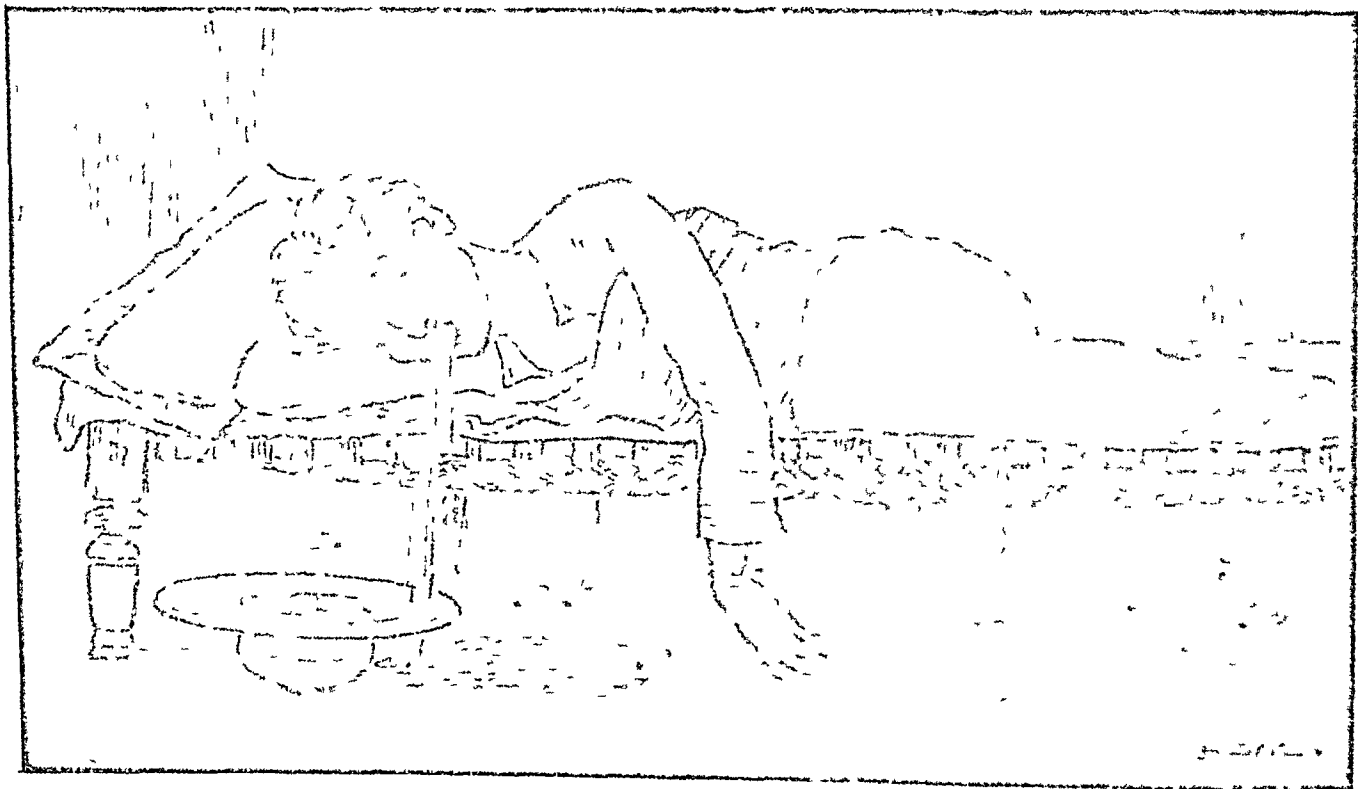
इस वमन का वर्ण पीला या हरा होता है। जो कुछ निकलता है उसका स्वाद तिक्त (कडवा) होता है। रोगी को धूँआ सा निकलता रहता है और दाह होता है।

४९५ कफज छर्दि —

इसमें अधोलिखित लक्षण मिलते है एवं इन रोगों मे जो छर्दि होती है वह कफज ही मानी जाती है:—

१. तन्द्रा २. मुख की मधुरता ३ कफ का प्रसेक ४ सन्तोष ५ निद्रा ६. अरुचि ७. गौरव।

रोगी स्निग्ध और घनी वमन करता है। स्वाद मीठा रहता है वमन करने मे खास कष्ट नहीं होता और उसे रोमहर्ष हो जाता है।

४९६ त्रिदोषज छर्दि —

इस वमन मे निम्न रोग या लक्षण मिलते है:—

१ उदर मे शूल २. पित्ताशय या वृक्क मे शूल ३. अविपाक ४ अरुचि ५. दाह-तृष्णा ६. श्वास ७. मोह।

यह वमन प्रबल और बार-बार होती है, स्वाद नमकीन-खट्टा, रंग नीला, देखने मे गाढ़ी और रक्त से भी युक्त होती है।

४९७ आगन्तुजछर्दि—

बीभत्स पदार्थों के देखने से, आपन्नसत्त्वा होने पर, आमदोष से, असात्म्यजनित या कृमिजन्य पांचवीं वमन आगन्तुज कहलाती है। इसके लक्षणों को देख कर उसे भी दोषानुसार समझने की कोशिश करनी चाहिए। कृमिज छर्दि मे उदर मे शूल, बार बार कभी हृल्लास मिलता है तथा क्रिमिज हृद्रोग के लक्षण भी मिलते है।

* तीव्रार्तितोदं क्रिमिज मकण्डूम्। (चरक)
उत्क्लेद ष्ठीवन तोद शूलं हृल्लासकस्तम।
अरुचि श्यावनेत्रत्वं शोथश्च क्रिमिजे भवेत्।
(सुश्रुत)

४९८ असाध्य वमन—

मल-मूत्र के समान गन्ध वाली वमन असाध्य समझनी चाहिये। उसके साथ तृष्णा, श्वास, हिक्का के लक्षण भी मिलते है। आंतो मे तीव्र अवरोध होने पर ये दशा बनती है।

यदि रोग क्षीण हो, बार बार वमन आती हो। वमन में रक्त अथवा तथा पूय बार बार निकलता हो या चन्द्रिकाऐ दीखती हों तो उसे असाध्य मान ले।

४९९ चिकित्स्य वमन—

निरुपद्रव और साध्य वमन की चिकित्सा सरल और सम्भव है। शेप मे अतिप्रयत्न पर अल्प लाभ होता है।

५०० वमन के उपद्रव—

कास श्वास (dyspnoea), ज्वर, हिक्का तृष्णा, वैचित्य, हृद्रोग (हृदय की धडकन की वृद्धि), तमक श्वास इनके साथ होने वाली वमन कष्टसाध्य होती है। यह न भूलना चाहिये कि वमन के साथ उपरोक्त उपद्रव जिस अवस्था मे मिलते है उसे विषमयता (toxaemia) की अवस्था कहते है। उसके साथ क्लेदाभाव (dehydration) भी रहता है। दोनों का ध्यान रख कर चिकित्सा करनी होती है। मूत्राघात का लक्षण भी उपद्रव स्वरूप मिल सकता है।

५०१ लक्षणरूप वमन--

आयुर्वेद ने वमन रूप लक्षण निम्नलिखित रोगो मे स्वीकार किया है—

१ वातपित्तज्वर—

शिरोर्तिमूर्च्छावमिदाहमोहकण्ठास्यशोषारतिपर्वभेदाः उन्निद्रतातृड्भ्रमरोमहर्षा जृम्भाऽतिवाक्त्वं च चलात् सपित्तात्।

२ रसगतज्वर—

उत्क्लेशो गौरवं दैन्यं भङ्गोऽङ्गानांविजृम्भणम्।

अरोचको वमि. माद सर्वस्मिन् स्मृतो ज्वरे ॥

३ मेदोगतज्वर—

मेदसि स्थिते । स्वेदोऽतितृष्णा वमनं दुर्गन्ध-स्यासहिष्णुता । प्रलापो ग्लानिररुचिः ।

४ यमलाहिक्का—

प्रलापच्छर्दि-अतीसारनेत्रविप्लुतिजृम्भिणः ।
यमला वेगिनी हिध्मा परिणामवती च सा ॥

५ राजयक्ष्मा—

पीनसश्वासकासासमूर्धस्वररुजोऽरुचिः ।
ऊर्ध्वविट्स्रंसमंशोषावधः च्छर्दिस्तु कोष्ठगे ॥

६ कफजयक्ष्मा—

कफादरोचकच्छर्दि. कासो मूर्धाङ्गगौरवम् ।

७ कफजतृष्णा—

आध्मानं शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्दि अरोचका.

८ मदात्यय—

प्रलापश्छर्दिरुत्क्लेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम् ।

९ कफज मदात्यय—

श्लेष्मणा छर्दिहृल्लासनिद्रोदर्दाङ्गगौरवम् ।

१० [illegible] ([illegible])—

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

११ अर्श—

[illegible] [illegible] [illegible]

१२ [illegible] अर्श—

[illegible]

१३ उदावर्त—

वर्चो न मूत्रं शूलं [illegible] ।
पवनस्योर्ध्वगामित्वं [illegible] ॥

१४ कफ ग्रहणी—

श्लेष्मणा पच्यते दुःखमन्नं छर्दिररोचकः ।

१५ ग्रन्थिविसर्प—

श्वासकासातिसारास्यशोषहिध्मावमिभ्रमैः

१६ आमाशयगत वातरोग—

आमाशये तृड्वमथुश्वासकासविषूचिकाः ।

१७ कफावृत प्राणवायु—

श्लेष्मणा त्वावृते प्राणे सादस्तन्द्रारुचिर्वमिः ।

५०२ विविध छर्दियों के निरूपक लक्षण—

वातजछर्दि	पित्तज छर्दि	कफज छर्दि	सान्निपातिक छर्दि
१ अल्पाल्प वमन होना	१ अत्यन्त उष्ण	१ प्रसक्त (निरंतर वद्ध)	१. पूययुक्त
२ कृष्णवर्णता	२. क्षारोदक सदृश	२. भूरि	२. प्रसक्त (दीर्घ-कालिक)
३. फेनिल	३. पित्तयुक्त	३. लवण	३. सचन्द्रिक
४. विछिन्न	४. सरक्त	४. रोमहर्षयुक्त	४ वेगवत्
५. वेगवत्	५ हरित	५ स्निग्ध	५ शकृद् गन्धि
६. शब्दयुक्त	६. धूम्र कृष्ण लोहित वर्ण	६. श्वेत	
	७. पीत	७. श्लेष्मतन्तु गवाक्षित	

५०३ वमन की चिकित्सा—

स्मरण रहना चाहिए कि वमन एक लक्षण है। यह लक्षण किस कारण से हुआ है इसका ज्ञान परमाश्यक है। कारणज्ञान के विना वमन की पूरी पूरी रोकथाम सम्भव नहीं। जब तक कारण का ज्ञान न हो सके तब तक लक्षण दृष्ट्या उपचार करना चाहिए।

५०४ वमन का लाक्षणिक उपचार—

(आधुनिक)

१. भोजन देना रोक दें।
२. थोड़ी थोड़ी मात्रा में मुख से तरल पदार्थ दे सकते हैं।
३. रोगी को चुपचाप पड़ा रहने दें।
४. उसे पूर्ण विश्राम दें।
५. बीभत्सदृश्य, गन्ध, अरुचिकर पदार्थ हटादें।
६. उदर को थोड़ा थोड़ा सेंके।
७. उदर पर पट्टी बांध सकते हैं।
८. आक्सीजन सुंघावे।
९. २ माषा सोडाबाईकार्ब गर्म पानी में मिला कर चुसावे।

यदि लक्षण फिर भी शान्त न हों तो—

१. आमाशय को साफ करने का यत्न करे—

अ—५०० से १००० सी सी गरम जल जिसमे पिसी राई या सोडाबाईकार्ब २ चम्मच पड़ा हो पिलादें।

आ—या एपोमार्फीन हाईड्रोक्लोराइड ५ से ८ मिलीग्राम त्वचा के नीचे इंजेक्शन दें। या—

इ—रायलस्यूब पेट में उतार दें और फिर जल डाल कर आमाशय को धो डाले।

२—एनीमा या बस्ति देकर पेट साफ करे।
३—१५ से ३० ग्रेन सोडियम ब्रोमाइड या क्लोरल-हाइड्रेट मुख या गुदमार्ग से देने से शान्ति मिलती है।
४—१/१०० ग्रेन एट्रोपीन की सुई दी जा सकती है।

क्षीण रोगियो मे—

१—रोगी के शरीर से जल और क्लोराइड बराबर घटता जाता है अत इन दोनों को पहुचाने के लिए उसे लवणोदक (सैलाइन सौल्यूशन) साथ में ग्लूकोज भी सुई द्वारा चढ़ावे।

२—रोगी को तसल्ली दें और कहे कि यह कोई रोग नहीं लक्षण है। अधिक वमन से होने वाली विभीपिका को भी बतलावे।

यदि वमन फिर भी चालू रहे तो—

१—मुख से खाना-पीना-दवा सब बन्द कर दें।
२—केवल प्यास बुझाने के लिए बरफ चुसावे।
३—सिरा द्वारा सैलाइन सौल्यूशन, ग्लूकोज, विटामिन सी दें।
४—जब २४ घण्टे में २००० सी. सी. जल पीने योग्य रोगी हो जावे तब उसे कुछ अन्नरस दे सकते हैं।

५०५ वमनहर आधुनिक दवाइयां-

वमन केन्द्र पर कार्यकरने वाली दवाइयां—

एमाइल नाइट्राइट—१ से ३ बूंद
क्लोरलहाइड्रेट—१ से ५ ग्रेन
भांग—४ ग्रेन
मार्फीन सल्फेट १/४ ग्रेन तथा एट्रोपीन सल्फेट १/१५० ग्रेन

स्थानिक औषधिया—

क्लोरोफार्म १ से ५ बूंद मिश्री के साथ
क्लोरोव्यूटानोल (मर्क) ५ से १० ग्रेन
प्रोकेनव्यूटाइरेट ५ ग्रेन कैपसूल में भर कर दें
पाइरीडोक्सीन ५०-१०० मि. ग्रा. सप्ताह में ३ बार। सगर्भा की वमन मे लाभप्रद है।

कुछ नुस्खे—

(१) फीनोबार्बीटोन १/३ ग्रेन
एट्रोपीन सल्फेट १/१०० ग्रेन
एम्फीटैमीन सल्फेट १/१२ ग्रेन
लैक्टोज ४ ग्रेन

—कैपसूल में रख दिन में तीन बार भोजन के बाद।

(२) कैलोमल १ ग्रेन

सोडाबाईकार्ब १२ ग्रेन

--६ मात्रा बनाकर १५-१५ मिनट पर दे।

लार्गैक्टिल, एवोमीन आदि औषधियों का आजकल पर्याप्त व्यवहार किया जाता है।

५०६ वमनचिकित्सा (आयुर्वेदीय)--

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वा
छर्द्यो मता लघनमेव तस्मात्।
प्राक् कारयेन्मारुतजा विमुच्य
सशोधन वा कफपित्तहारि॥

यतः सब वमन आमाशय में उत्क्लेश होने से होती है अत. सभी में लंघनकर्म करावे। वातिक को छोड़ शेष में संशोधन कर्म, कफज में वमन, पित्तज में विरेचन पहले करा लेना उचित है।

यदि दोष अल्प हो तो लंघन, यदि दोष अधिक हो तो संशोधन कराना चाहिये।

विरेचनार्थ मधु और हरीतकी एवं हृद्य पदार्थ दे। वमन के लिये जीमूत-इक्ष्वाकु आदि का प्रयोग करे। दुर्बल रोगियो को संशोधन न करावे उन्हे मनोज्ञ, लघु, शुष्क, भक्ष्य, भोज्य एवं पान पदार्थों से संशमन चिकित्सा करे।

५०७ वातिक छर्दि में--

१—क्षीरोदक पान।

२—घृत मे सैन्धव मिला पिलावे।

३--मुद्‌ग, आमलक का यूष घृत सैन्धव के साथ दे।

४--यवागू मे मधु मिलाकर तथा पञ्चमूल के क्वाथ मे पका कर दे।

५--तित्तिर, मयूर, लावक के मांसरस सुसंस्कृत दे।

६--बेर, कुलथी, धान्यक, बिल्वादि पञ्चमूल से शृत क्वाथ मे पके यवो का यूष दे।

७--धान्यक, शुंठी, दही।

८--दाडिम, त्रिकटु, लवण के साथ घृत प्रयोग करे।

९--दधि, दाडिमादि अम्ल पदार्थों के साथ स्निग्ध हृद्य पदार्थ दे।

५०८ पित्तजन्य छर्दि में—

१—द्राक्षा, विदारीकन्द, इक्षुरस के साथ त्रिवृत दें।

२—शुद्ध होने पर मधुशर्करायुक्त लाजामण्ड या मेदा या मुद्‌गरस के साथ या जांगल मांसरस के साथ शाल्योदन दे।

३—चन्दन, मृणाल, सुगन्धवाला, शुण्ठी, अडूसा को तण्डुलोदक एवं मधु से दे।

४--पर्पटक्वाथ मधु से दे।

५—हरीतकी चूर्ण मधु से दे।

६--खर्जूरफल, नारिकेल, द्राक्षा या बदर चाटे।

७--स्रोतोजन+लाजा+कमल, कोलमज्जा मधु हरीतकी के साथ।

८--केवल द्राक्षारस पिये या मृद्‌भ्रष्टलोष्टप्रभव जल पीवे।

९--आम, जामुन के पत्तों का कषाय मधु के साथ ले।

१०—रात्रि मे मुद्‌ग पिप्पली उशीर धान्य चणक मिला सवेरे पिलावे।

११--गुडूची स्वरस या इक्षुरस+दुग्ध ले।

१२. स्वर्णगैरिक+सुगंधवाला तण्डुलोदक के साथ ले

१३ आमलकरस+श्वेतचन्दन मधु से ले

१४. गैरिक+शालिचूर्ण शीतल जल से

१५. मूर्वा तण्डुलोदक के साथ दे

५०९ कफजन्य छर्दि में—

१ कफात्मिकायां वमन प्रशस्त-
सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोय।
पिण्डीतकैः सैन्धवसम्प्रयुक्तै-
श्छर्द्याकफामाशयशोधनार्थम्॥ भै. र.

कफ एवं आमशुद्धि के लिये पिप्पली सरसो नीम की छाल के क्वाथ में मदनफल का चूर्ण एवं सैन्धव डाल कर वमन करावे।

२ विडंग-त्रिफला-शुंठी-मधु से दे

३. विडग-मोथा-शुंठी मधु से दे

४ जामुन की मींग वेर की मींग मुस्ता कर्कटश्रृंगी को मधु से दे।

५. दुरालभा को मधु से दें।

६. गेहूँ-चावल-जौ पुराने के साथ पटोल-गुडूची चित्रक या त्रिकटु नीम तक्र के साथ बने यूप या फलो को कटु एवं अम्ल पदार्थों के साथ दे।

७ द्राक्षा-कपित्थ बीजपूर स्वरस का प्रयोग करे

८. मनःशिला बीजपूर कपित्थ पिप्पली मरिच चूर्ण मधु के साथ दे।

५१० त्रिदोपज छर्दि में–

१. तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम्

२. दोषतु रोगाग्निबलान्यवेक्ष्य
प्रयोजयेच्छास्य विदप्रमत्तः।

३. गुडूची का शीत कषाय मधु से दें।

४. बिल्व या गुडूची क्वाथ मधु से दे।

५. आमलक-अंगूर-मिश्री ४-४ तोला मधु ४ तो. १६ तोला जल मिला छान कर पिलावे।

५११ आगन्तुज छर्दि में–

१. मनोभिघात में मनोनुकूल कार्य करे, आश्वासन दें, हर्षवर्धन करें

२. श्रृंगारिक कार्य करे

३. सुगन्ध द्रव्य प्रयोग करे

४. षड्रस व्यंजन सेवन करावे

५. गन्ध रस स्पर्शमथापि शब्द रूप च यद्यत् प्रियमप्यसात्म्यम्। तदेव दद्यात् प्रशमाय तस्यास्तज्जो हि रोग सुखमेव जेतुम्। –चरक

५१२ सावधानी–

बार बार वमन होने से धातुक्षय (dehydration) होकर वायु बढ़ती है उसे दूर करने के लिये छर्दिघ्न बृंहण द्रव्य दें सर्पिगुंड-क्षीर कल्याणघृत-त्र्यूषणघृत-जीवनीयघृत-वृष्य मांसरस आदि दे।

५१३ कतिपय महत्त्व के योग—

(१) पीपल के पेड की छाल जलाकर पानी मे बुझा दे। इस पानी को छान कर पिलावे।

(२) एलादि चूर्ण—तीनो प्रकार की छर्दि में दे। (एला, लवंग, नागकेसर, बेरमज्जा, लाजा, प्रियंगु, मोथा, चन्दन, पिप्पली, मधु, मिश्री के साथ)

(३) रुधिरच्छर्दि मे—१–यष्टीमधु+चन्दन, गौदुग्ध मे पीस कर दूध मे घोल कर पिलाते रहे।
२. वृषध्वज रस दे।

(४) रसेन्द्रयोग—श्वेतजीरा, धान्य, पिप्पली, त्रिकटु। छर्दिसंहाररस–रससिंदूर, समभाग मधु से ३ रत्ती।

(५) पद्मकाद्यघृत—पद्मक, निम्ब, गुडूची, धान्यक, चन्दन, के साथ विधिवत् घृत सिद्ध करे। यह वमन, तृष्णा, अरुचि, दाह, ज्वरहर है।

(६) छर्द्यन्तकरस (योगरत्नाकर)–पारद[४], स्वर्ण[१], ताम्र[१], नाग[१], वंग[१], मुक्ता[१], लोह[६], अभ्रक[६], गंधक[६], को बीजपूर आर्द्रक स्वरसो की ३-३ भावना दे, फिर ७ दिन आमलक स्वरस मे घोटे, फिर शराव मे रख ३ याम क्रमबद्ध अग्नि मे पाक करे. फिर चूर्ण कर छान, श्वेतजीरा यमानी त्रिकटु त्रिफला, विडंग, तज प्रत्येक १/२७ भाग लेकर मिलावे। मात्रा ३-३ रत्ती। यह दुःसाध्य छर्दि, हृद्रोग, अम्लपित्त, रक्तपित्त, आमवात, यक्ष्मा को तत्तत् अनुपान से दे।

(७) नीलकण्ठरस (रसकामधेनु)—
वेणीफलाना[१] स्वरसैर्विभाव्य
रसेन्द्र[२] लेलीतक[३] शङ्खतुत्थम्।
त्रिसप्तवाजम्भरसे[४]न वान्तौ
गुञ्जोन्मित स्यादिति नीलकण्ठः।।

–शेषांश पृष्ठ २८४ पर।

[१]बन्दालफल का रस, [२]पारद, [३]तुत्थ, [४]जम्भीरी नीबू।

अर्श

लेखक—वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य
"अमृतधारा" देहरादून।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष, प्रसिद्ध व्यावसायिक एवं ख्यातनामा वैद्य और उनके आविष्कार अमृतधारा को कौन नहीं जानता। कायचिकित्साङ्क के सम्बन्ध में जब प्रकाशित किया गया कि लेख भेजने आवश्यक होंगे तो मुझे सबसे पहला पत्र पूज्य शर्मा जी का ही प्राप्त हुआ। वयोवृद्ध अनुभववृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध इस मनस्वी वैद्य को आलस्य छू तक नहीं गया। देश विभाजन के सम्पूर्ण कष्ट को झेलकर भी ये उसी लगन से आयुर्वेद की सेवा में तत्पर हैं। मनस्विता के साथ सम्पन्नता का यह निस्सन्देह मणिकाचन संयोग है। आयुर्वेद संसार चाहता है कि शर्मा जी शतायु हों और इस सम्पूर्ण जीवन में स्फूर्ति के स्रोत ही बने रहें। अर्श भी कायचिकित्सा के अन्तर्गत आता है। अग्निमान्द्य ही अर्श का जनक है इसलिए इसी लेखसूची विभाग में इसका समावेश किया गया है। विद्वान् लेखक ने आयुर्वेद और यूनानी के ज्ञान को साथ-साथ प्रस्तुत किया है। लेख की भाषा और शैली उनकी जन्मभूमि पंजाब की झलक देती है।

र० प्र० त्रि०।

५१५ ठगी—

बवासीर को अंग्रेजी में पाइल्ज (piles) और वैद्यक में अर्श कहते हैं। यूनानी में बवासीर ही कहा जाता है। यह गुदा का रोग है और बिना ननुनच के यह कहा जा सकता है कि अत्यन्त कष्ट देने वाले रोगों में से एक है। यद्यपि पहिले पहल तो रोगी इसको कुछ नहीं समझता, परन्तु अन्त में उठने बैठने काम काज करने से भी असमर्थ हो जाता है। एक दिन बाज़ार में एक आदमी पेशाब कर रहा था, गिर पड़ा। मैंने उसका मुख देखा। यह मालूम होता था कि रक्त तो नाम मात्र को नहीं है। कमजोरी इतनी ज्यादा कि वर्णनातीत। पूछने पर मालूम हुआ कि उसको १० साल से अर्श है। बहुत से लोगों ने अर्श के मस्से निकालने का झूंठा काम कर रखा है और अजब ठगी करते हैं जो कि इस प्रकार है कि कसाई की दुकान से बकरे का फेफड़ा खरीद लेते हैं और उसके मस्से बना कर शिंगरफ से रंग लेते हैं ताकि उनकी सफेदी निवृत हो जावे और यह असली रंग के मस्से मालूम हों। ऐसे कृत्रिम मस्से यह लोग अपने पास छुपा रखते हैं। चूंकि यह सूख जाते हैं इसलिये जिस दिन आवश्यकता पड़े और जितने मस्सों की आवश्यकता हो उनको रात भर पानी में भिगो रखते हैं। प्रात यह रेशम की तरह नर्म हो जाते हैं। धोखा देने के कई साधन हैं। साधारण यह है कि जुलाब देकर मस्से निकालना। रोगी के जो असली मस्से होते हैं उन पर ऐसी दवाई लगाई जाती है कि वह बिल्कुल नर्म और कुछ समय के लिये समाप्त हो जाते हैं फिर रोगी को जुलाब देते हैं। यह जुलाब बहुत सख्त होता है। थोहर के दूध और जमालगोटा से तैयार करते हैं और रोगी को आदेश किया जाता है कि गढ़े में जुलाब करता जाये। इस गढ़े में यही कृत्रिम मस्से आते जाते आंख बचा कर फेंक देते हैं। जब जुलाब हो चुकता है तो पानी से सारे मल को धुलाते हैं। जब लम्बी लम्बी जड़ों वाले मस्से रोगी देखता है तो

आश्चर्य मे पड जाता है। फिर हकीम साहब तेल गरम करने का आदेश देते है। जब खूब गरम हो जाता है तो उसमे मस्से डाल देते है ताकि जल कर कोयला हो जावे। इसका अभिप्राय यह है कि कोई बुद्धिमान देख कर भेद खोल न दे। परन्तु रोगी को यह कह कर तसल्ली कर देते है कि इस क्रिया के करने से मस्से पुनः नही होते। विचार करो कि मस्से कहां जलते हैं और प्रभाव कहां पहुंचता है। कई बार यह कृत्रिम मस्से हलवे मे छुपा कर लिखा देते है। जब हलवे मे जुलाब दिया जाता है, उस समय यह चालाकी होती है।

५१६ अर्श गुदा का रोग—

यह गुदा का एक रोग है। गुदा के किनारे की नाडियों मे रक्त की अधिकता होकर यह मस्से पैदा होते है। यह मस्से कभी अन्दर और कभी बाहर होते है। भीतर के मस्से तो दिखाई नहीं देते परन्तु बाहर के शौच के समय हाथ से टटोले जा सकते है रंग जरदीमाइल। गुदा मे दर्द, कब्ज। शरीर का दुबलापन, बहुत डकार आना, कभी कभी संग्रहणी, पेट मे गडगडाहट. रक्तार्श मे रक्त आना, चलने फिरने की शक्ति का कम होजाना, बैठने से गुदा मे दर्द, खारिश का भी होते रहना आदि इसके चिह्न है।

५१७ मस्सो की किसमे—

मस्से कई प्रकार के होते है। साधारण तौर पर सात प्रकार के प्रसिद्ध है।

१. छोटे छोटे सख्त मसूर या चने के दाने जैसे।
२. भिन्न भिन्न लम्बे अंगूर की तरह।
३. लम्बे नर्म ऊपर लाल चपटे और पीछे बारीक तूत की भांति।
४. सफेद दर्द रहित।
५ तनिक सख्त खजूर की भांति।
६ गोल और चपटे अंजीर की भांति।
७. कुछ-कुछ सख्त।

५१८ गुदा की तीन वल्लियां—

गुदा ४½ अंगुल है। इस ४½ अंगुल जगह मे १½, १½ अंगुल की ३ वल्लियां है। गुदा के अन्दर सबसे पीछे जो है, उसका नाम वैद्यक मे प्रवाहनी है। बीच वाली वल्ली का नाम विसर्जनी है और गुदा के बाहर जो वल्ली है, उसको वैद्यक मे संवरणी या ग्रहणी कहते है। पित्त, कफ, वात दोषयुक्त होकर रक्त, मांस और चर्बी को दोषयुक्त कर देते है तब इन तीनो वल्लियो मे से किसी मे मस्से पैदा हो जाते है। यदि बाहर वाली वल्ली मे पैदा हो तो साफ दिखाई देते है और जो विसर्जनी मे पैदा हो तो कुछ मालूम होते है और यदि प्रवाहनी मे पैदा हो तो बिलकुल मालूम नहीं होते। कभी-कभी नाक, आंख वगैरा मे भी मस्से पैदा होते है। स्मरण रहे कि इनका कारण भी वही है।

५१९ कारण—

दूषित दोप होजाने से जठराग्नि मे दोप आ जाता है। इस मंदाग्नि के कारण मल अधिक जमा होना शुरू होजाता है। तब अधिक सम्भोग करने से, बहुत सवारी पर रहने से, सख्त कुर्सियो अथवा सख्त जमीन पर बहुत बैठने से, बहुत ठंडे पानी के लगते रहने से, वायु, मूत्र, मल के रोकने से, अतिसार, पेचिश, संग्रहणी, सूजन वगैरा रोग हो जाने से, ठंडी, कसैली-कडवी, रूखी, हल्की चीजे खाने से, अधिक व्यायाम करने से या बिलकुल न करने से, बहुत धूप सहने से, खारी, तेज, खट्टी, भारी गर्म चीजे खाने से, चिन्ता क्रोध करने से, अधिक गर्मी सहने से, दिन मे सोने से, हमेशा गद्दे पर ही पड़े रहने से अर्श होजाता है।

५२० भेद व चिन्ह—

यूनानी २ किस्मे बताते है (१) रक्तज (२) वातज या शुष्क। यदि मस्सो से रक्त आता है तो उसको रक्तज कहा जाता है और रक्त न आवे और कष्ट बिना रक्त के हो तो उसे शुष्क अर्श कहते है। एक

तीसरी क़िस्म भी यूनानी वाले मानते है और उसको बवासीर रीही कहते है। आन्तो मे दूषित वात पैदा होकर दर्द पैदा करती है जो कभी नीचे को उतरती है और कभी पीठ की ओर अथवा कभी बायें या दक्षिण की ओर उतरती है। पेट में गुड-गुड की आवाज आती है और पेचिश भी होती है। आयुर्वेद में ६ क़िस्में लिखी है—

१ वात अर्श —

इस बवासीर मे मस्सो से रक्त नहीं निकलता, मस्से कुमलाये हुये होते है। लगभग काला रङ्ग, फैले हुये सख्त खुरदरे, भिन्न भिन्न आकार के, टेढ़े, तीक्ष्ण फटे हुए मुंह वाले, बेर, खजूर या कपास के फल के आकार के, कुछ गोल सरसो के आकार के होते है। सिर, पसलियां, कमर, छाती, रानो मे दर्द, छींक का आना, ढकार, कब्ज और अरुचि, खाना कभी हजम और कभी न हजम हो। कानो मे आवाज, कभी कभी आवाज करता हुआ झाग लिये हुए थोडा थोडा दस्त आवे। त्वक्, नाखून, मुख मूत्र और मल कुछ कुछ स्याहीमाइल होना वात अर्श के चिन्ह है।

२ पित्त-अर्श—

इसमें मस्सो का मुंह नीला, सुर्ख, पीला, कुछ सफेदी लिये हुए होता है। इनसे बारीक धार मे रक्त टपकता है। मस्से नर्म, तोते की जिह्वा के प्रकार के होते है। जलन, गुदा का पकना, बुखार, पसीना, प्यास,बेहोशी,अरुचि, त्वक्-नाखून-मुख-मूत्र-और मल वगैरा का रङ्ग पीला व हरा या हल्दी के रङ्ग का। यह चिन्ह पित्त अर्श के है। मस्से छूने से गरम मालूम होते हैं। मल का रङ्ग नीला, पीला, लाल और गरम आंव के साथ आता है।

३ कफ-अर्श—

इसमे मस्से लम्बे होते है अर्थात् उनकी जड दूर तक होती है, यह मस्से सख्त थोड़े थोडे दर्द वाले, सफेद रङ्ग, मोटे, चिकने, भारी, कफ से भरे हुए, करीर के कांटे अथवा गाय के स्तन के आकार के होते हैं। इनमें मीठी मीठी खारिश होती रहती है। इस अर्श में गुदा, मसाना और नाभी मे दर्द, दमा, खांसी, लार का गिरना, अरुचि, सुजाक, प्रमेह, सिर का भारी रहना, नपुंसकता, मंदाग्नि, अतिसार (कफ और चर्बी के दस्त प्रायः आते हैं) हो जाते है। मस्सों से रक्त निकलना और मियाद के भर जाने पर भी नहीं छूटते। इसमें शरीर चिकना और रङ्ग सफेद भी होता है।

४ रक्तार्श—

रक्तार्श लगभग पित्त अर्श से मिलती है। मस्से मूंगा के आकार के होते है या वट की जटा के आकार के। मल कष्टपूर्वक आने मे मस्से फूट कर उनसे दूषित गरम गरम रक्त निकलता है और उस रक्त के बहुत निकलने से मनुष्य का रङ्ग पीला होजाता है। ऐसा जैसा कि वर्षाऋतु मे मेढको का होता है। शक्ति, पुरुषत्व शक्ति सब दूर होजाती है। मल काला सख्त रूखा होता है।

आगे रक्तार्श के दो भेद है—

(अ) वात रक्तार्श (ब) कफ रक्तार्श। यदि मस्सो मे रक्त थोडा लाल और झाग लिये हुये निकले और रोगी की कमर, पिण्डली, गुदा मे दर्द होवे, कमजोरी बहुत हो जावे, तो समझ लो कि रक्तार्श मे वात की मिलावट है और यदि रक्तार्श मे रक्त गाढ़ा, लेसदार, पीला और बुलबुलाता हुआ निकले। सफेद, पीला, चिकना, भारी और ठंडे दस्त आवे। बुलबुले निकलने के कारण गुदा गीली रहे, प्रात. ही कुछ चिकनाई पाई जावे तो समझ लो कि रक्तार्श मे कफ की मिलावट है।

५ सन्निपात-अर्श—

(तीनो दोषो की बवासीर)

इसमे वात अर्श, पित्त अर्श और रक्तार्श मे जो चिन्ह कह आये है वह सब होते है।

६ सासर्गिक-अर्श—

(पैतृक अर्श)

माता पिता से विरासत मे मिलती है। इसके

चिन्ह लगभग वही होते है जो नं० ५ मे सन्निपात की अर्श के है। बल्कि यह कहना अनुचित नहीं है कि सन्निपात अर्श ही प्रायः सांसर्गिक अर्श हुआ करती है।

५२१ साध्य और असाध्य—

पहली वल्ली मे हुई बवासीर साध्य है और दूसरी वल्ली में हुई कष्टसाध्य और तीसरी में हुई असाध्य है। जिस बवासीर के रोगी के हाथ, पांव, गुदा, नाभी, कन्धे और अण्डकोष मे सूजन हो। रक्त जिसके शरीर से बहुत निकल गया हो, अतिसार की बीमारी हो, उसे असाध्य समझना चाहिए।

५२२ चिकित्सा—

अर्श की चिकित्सा के वास्ते सैकडों योग लिखे जा चुके हैं। और यह देखा भी है कि प्रायः सब प्रयोग गुणकारी होते है क्योकि किसी को एक प्रयोग गुणकारी बैठता है तो दूसरे को दूसरा बैठ जाता है। जो चिकित्सक अच्छी तरह रोगी की प्रकृति और रोग के दोष आदि समझ लेवे, वह एक ही प्रयोग से उसका रोग दूर कर सकता है। नहीं तो कभी कुछ बदल भी करना पड़ता है और प्रकृति ऐसी भिन्न-भिन्न देखी गई हैं कि कई बार उनका समझना कठिन हो जाता है। एक बार एक रोगी हमारे पास आया उसने बतलाया कि उसको रक्तार्श है, परन्तु वह कितनी ही मिर्च खाले, उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु जिस दिन खोये का पेडा खा लेवे, उसी दिन उसको रक्त आ जाता है। यह एक आश्चर्यजनक समस्या थी, अस्तु।

बहुत योग लिखने का तो अवसर नहीं। अनेक सज्जनो को कुछ न कुछ लिखना ही है थोड़े से उत्तम योग लिखे देता हू।

(१) यह योग मेरे अनुभव मे आचुका है। प्राय. सब प्रकार के अर्श को दूर करता।

एलवा १० तोला, रसौत ५ तोला, निमौली नीम छिलका सहित ५ तोला, गूगल भैसा ७॥ तोला, जंगहरड़ ५ तोला, सुहागा खील २॥ तोला, गेरू २॥ तोला सबको मिलाकर मूली के रस मे खरल करे। कम से कम आधा सेर रस खतम होना चाहिये। इसकी गोली २॥ रत्ती की बना ले। १ प्रातः १ सायं पानी से खिला दे। एलवा, रसोत, गूगल शुद्ध करके डालने चाहिए जो सब वैद्य जानते ही है।

(२) रक्तार्श मे एक टोटका—

नींबू काट कर आधा ले ले। इसमें ३ माशा असली कत्था लाल मल कर रात को ओस मे रख दे। प्रातः चूस कर खा जावे। प्रायः पहले दिन ही रक्त बन्द हो जाता या बहुत कम हो जाता है।

(३) एक साधु का बतलाया हुआ योग—

जंगली पोदीना ६ माशा, कालीमिर्च ७ अदद सरदाई की तरह रगड कर ७ दिन पीने से कई रोगियो को आराम हुआ, खास कर रक्तार्श के रोगियो को।

(४) वातअर्श का एक अक्सीर योग—

करेला सबज का छिलका ५ तोला, गाय के ५ तोला घी मे डाल कर जला ले और आग से उतार कर छानकर कुछ गरम रहने पर २ माशा कपूर मिला ले। इस घी को गुदा मे, दिन मे २-३ बार अन्दर बाहर लगा देना चाहिये। खारिश दर्द तो पहले दिन ही प्रायः बन्द होती है। कुछ दिन लगाना चाहिये।

(५) सरल टोटका—

रीठे का फल पीसकर गोलियां चने बराबर बनाले। एक प्रात' एक साय पानी से खावे। रक्तज व वातज दोनो को लाभदायक है। इसको घिस कर मस्सो पर लगाने से दर्द सूजन नष्ट होकर मस्से मुरझाते है।

(६) कोपल बड लाल १ छटांक, पोस्त आमला १ छटांक, गाय का मक्खन १ छटांक इन सब चीजो को कडाही में डाल कर चूल्हे पर रखे और नीचे हल्की हल्की आंच करे। जब सडने पर आवे तो उतार कर कड़ाही ही मे उनको पीसते पीसते जब गोली बननी शुरू हो जावे तो जंगली बेर के बराबर गोलियां बनाले। वात अर्श मे बासी जल के साथ एक गोली प्रातः खावे और रक्तार्श मे बकरी के दूध की लस्सी अथवा नीम के पानी के साथ खावे। सेवनकाल मे छटांक या आध पाव घी खा लिया करे। लालमिर्च, तेल की चीजे और खटाई वर्जित है।

(७) बकायन की गिरी १ तोला, नीम की निमौली की गिरी १ तोला, बेर की गिरी १ तोला, पीचके की गिरी १ तोला, रीठे की गिरी १ तोला, कुकडछड्डी बूटी १ तोला, गुड ३ तोला इन सब औषधियो को कूट पीस कर चने बराबर गोलियां बनावे। रक्तार्श मे रसौत के पानी के साथ प्रातः प्रतिदिन १ गोली खावे।

(८) एलवा ४ तोला, बिनौले की गिरी ४ तोला, कपूर २ तोला सबको बारीक करे और ४ तोला रसौत मिलावे। फिर रसौत का पानी (रसौत को काट कर पानी मे घोलने से पीले रङ्ग का जो पानी सा तैयार होता है, उसको रसौत का पानी कहते है) मिला देवे। इस तरह कि तमाम चीजे पतली लेई जैसी सी मालूम हो, उनको सूखने देवे यहां तक कि गोली बनने के योग्य हो जाये। जंगली बेर के बराबर गोलियां बनादे। प्रात व सायं २-२ गोलिया रसौत के पानी के साथ खावे और उन्हीं को रसौत के पानी मे घिस कर मस्सो पर लगावे। खट्टी चीजे, गरम मसाला और लालमिर्च वर्जित है। यह दवाई रक्तार्श के लिये अधिक लाभदायक है।

(९) गूगल १ तोला, मुनक्का बीज निकाली हुई ५ दाने, चांदी के वर्क १५ अदद। ३-३ रत्ती की गोलियां बनावें। १ गोली प्रातः वासी जल के साथ खावे।

गुग्गुलु
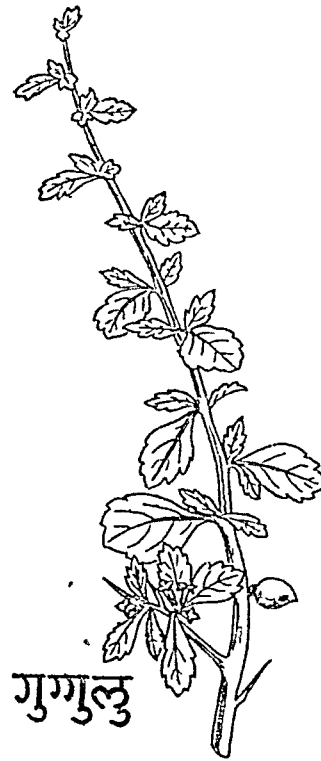
(१०) भंगरासफेद के पत्ते १ भाग, भंग चौथाई भाग, अफीम चौथाई भाग। इन तीनो को लोहे के बर्तन मे लोहे के दस्ते से भली भांति कूट कर कालीमिर्च के बराबर गोली बनावे। प्रातः सायं बासी जल के साथ १ गोली खावे। कुछ बडी गोलियां भी बना रखे और उनको नींबू के रस मे रगड कर मस्सो पर लगावे। यह दवाई वात अर्श की है।

(११) पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, लोह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक २॥-२॥ तोला। पीपल ४½ तोला, कालीमिर्च ४½ तोला, सोठ ४½ तोला सुहागाफूल १०½ तोला, लालकथा २½ तोला, अमलतास की गिरी २½ तोला, जवाखार २½ तोला, सेधानमक १०½ तोला। पहिले पारा और गन्धक को २ पहर खरल करके कज्जली करे। फिर दूसरी औषधियां बारीक करके मिलावें और खूब खरल करे। फिर एक लोहे की कडाही मे सेहुड़ (थोहर) का दूध और गौ-मूत्र मिलाकर नर्म अग्नि पर रख कर पकावे। जब सूख जावे और थोडा सा पानी केवल औषधियो मे बाकी हो, उतार ले। मात्रा आधा माषा से २ माषा तक मक्खन मे मिलाकर खावे और ऊपर से गरम-गरम दूध पी लेवे। सब प्रकार की बवासीर जड से दूर हो, इसका नाम अर्शकुठार रस है।

नोट—पारा गन्धक और बच्छनाग को शुद्ध करने की तरकीबे वैद्य जानते ही है।

(१) नीम की निमोली की गिरी वकायन के बीज की गिरी, रसौत, गूगल सब बराबर बजन गन्दना के अर्क मे खरल करके मूँग के दाने के बराबर गोलियां बनावे। मात्रा ४ गोली से ८ गोली तक। सोते समय पानी से खानी चाहिये। २१ दिन ऐसा करने से बवासीर दूर होती है।

(१३) मूली का पानी २ छटांक निकाले, एक छटांक रसौत नगरकोटी और २ तोला कलमीशोरा उसमें घोल लें। यहां तक कि गोली बनने पर आवे और जङ्गली वेर जितनी बनावें और एक गोली प्रात काल बासी पानी अथवा दही की लस्सी से खाया करे।

(१४) यूनानी अतरीफल जो अर्श के वास्ते अति लाभदायक है, उसको अतरीफल कबीर भी कहते हैं। अतरीफल कबीर का योग यह है—काबुली हरड़ का छिलका पौने दो तोला, काली हरड़ पौने दो तोला, हरड़ का छिलका पौने दो तोला, कूटा हुआ आमला पौने दो तोला, मिर्च पौने दो तोला, पीपल पौने दो तोला, शकाकल ७ माशा, सोठ ७ माशा, तोदरी सफेद व सुर्ख ७ माशा, इन्द्रजौ ७ माशा, वाहमन सफेद व सुर्ख ७ माशा, इलायची ७ माशा, तिल छिले हुये ७ माशा, कूजा मिश्री ७ माशा, पोस्त ७ माशा, बादामरोगन या गाय का घी सब औषधियो का चार भाग, लेकर सब औषधिया कूट छानकर घी मे मिला ले और सब औषधियो का तीन गुना शुद्ध मधु लेकर कूटी हुई औषधियो को शहद मे मिला कर अतरीफल तैयार करे और पूरे ३ मास के पश्चात् रोगी को सेवन कराये। मात्रा—४ या ६ माशा रोज खिलाये।

मरहम बवासीर—

सुहागाफूल, माजूफल, गेरु सुर्ख इन तीनो को पीस कर रखे। मक्खन लेकर उसको १०० बार पानी मे धोवें। यह चीजे मक्खन मे मिला कर मरहम तैयार करे और मस्सो पर लगाया करे।

(१५) धूनी बवासीर—

बायविडङ्ग १० तोला, कचूर १० तोला, भाग

विडङ्ग

५ तोला यह चीजें कूट कर बारीक करे। अब यह धूनी मस्सो पर देने से मस्से नर्म हो जाते हैं।

धूनी देने की रीति.—

रोगी को खड़ा करे। टागे जरा चौड़ी रखे। किसी लोहे के बरतन मे कोयले डाल दे और ऊपर धूनी वाली दवाइयां डाल दे। उसके ऊपर सूराख वाली हुक्के की चिलम रख दे ताकि थोडा थोडा धुंआं ही निकले और सीधा मस्सो पर ही जावे। इसी प्रकार धूनो देने से मस्से नर्म होकर अन्दर चले जाते है। यदि बाहर के हो तो गिर जाते है। अनुभूत है।

द्वितीय अर्शकुठार रस—

पारा शुद्ध एक भाग, शुद्ध आमलासार गन्धक

दो भाग, फौलाद भस्म ६ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, बेलगिरी १ भाग, चित्रक १ भाग, त्रिकुटा १ भाग, हरड १ भाग, जमालगोटा १ भाग, सुहागा ५ भाग, जवाखार ५ भाग, सेधानमक ५ भाग लेवे। पारा और गन्धक को खरल करके कज्जली कर लेवे और उसमे बाकी चीजों को खरल करके मिला लेवे और फिर सबको ३२ गुना गौमूत्र मे पकावे और ३२ गुना सेहुड (थोहर) का दूध डालकर फिर पकावे। जब तैयार हो जाये तो २-२ माशे की गोलियां बनाले। मात्रा १ गोली दे। यह रस गुदा के मस्सो को जड से उखाड़ डालता है।

नित्योदित्त रस—

ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, फौलाद भस्म, पारा शुद्ध, गन्धक आमलासार शुद्ध बराबर वजन मे लेवे। पहले पारा गन्धक को खरल करके कजली कर लेवे। फिर बाकी चीजो को मिला देवे और चित्रक के रस की सात बार भावना दे। जब तैयार हो जावे तो व्यवहार मे लावे। मात्रा १ माशा घी के साथ देवे। मलव्याधी और मलबन्ध के लिए अति लाभदायक है।

—श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य।

:: वमन या छर्दि ::

यह कफज छर्दि मे लाभप्रद है।

(८) चन्द्रोदयसिंदूर (वसवराजीयम्)—पारद-गन्धक की कज्जली कैथ की जड़ की छाल के रस में ३ दिन मर्दन कर गोली बना सुखा कांच-कूपी में रख वालुकायन्त्र मे १२ प्रहर की अग्नि दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कैथमूल तथा वेलमूल स्वरसो मे ३-३ दिन मर्दन कर दालचीनी, तेजपत्र, इलाइची छोटी, नागकेसर, कपूर, लौंग सब पारद की बराबर मिला कर रखे। लाजा, मिश्री, मधु के साथ दे।

यह पाचो छर्दियों तथा स्वरभंग, हृद्रोग, मंदाग्नि अरुचि, कासनाशक है।

वमनामृत योग (रसराज सुन्दर)—

गन्धक कमलाक्षरच[1] यष्टीमधु शिलाजतु।
द्राक्षो टङ्कणश्चैव सारङ्गस्य[2] च शृंगकम्॥
चन्दनञ्च तवक्षीरी[3] गोरोचनमिद समम्।

[1]कमलगट्टा [2]सारग हिरण का सींग (मृगशृग) [3] वशलोचन।

:: पृष्ठ २७७ का शेषांश ::

विल्वमूलकषायेण मर्दयेद्यामसात्रकद॥
मात्राञ्चैव प्रकुर्वीत वल्लस्यैव प्रमाणत।
नानाविधानुपानेन छर्दि हन्ति त्रिदोषजाम्॥

५१४ उपसंहार—

आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा पद्धतियो के उपचार विधान को देखने से ज्ञात होता है कि कुछ कृत्रिम औषधियो को छोड़ कर शेष औषधि-प्रयोग और चिकित्सा के सिद्धान्त मे विशेष कर वमनोपचार में कोई विशेष फर्क नहीं दिखाई देता। आयुर्वेदज्ञो ने द्राक्षा, शर्करा, मधु, सेन्धव, पेय, प्रवाल, वंशलोचन, आमलक आदि का खुल कर प्रयोग किया है। आधुनिकों ने ग्लूकोज, सैलाइन, कैल्शियम, केओलीन, विटामीन सी का खूब उपयोग बतलाया है। दोनों इस रोग मे वमन कर्म या आमाशय प्रक्षालन, विरेचन कर्म अथवा लघन को महत्त्व देते हैं दोनों रोगी को विश्राम की मन्त्रणा देते है और बहुत बुद्धिमानी से वमन के होने वाले कारणो उपद्रवों और चिकित्सा कर्म का विधान बतलाते है। -श्री वैद्य युगलकिशोरलाल।

वृक्क प्रदाह

(रुग्णाद्वय वृत्तान्त)

लेखक—आयुर्वेद वृहस्पति, सन्तशिरोमणि साहित्याचार्य श्री पं. घनानन्दपन्त विद्यार्णव,
वाजार सीताराम, देहली।

परम आदरणीय पन्त जी बीते युग की एक सुमधुर स्मृति रूप अवशिष्ट है। वह स्मृति कितनी अनमोल और कितनी मनोहारिणी है इसे वही समझ सकता है जो इस विद्या के मीठे अर्णव से छककर सुधा पान करता है। आप उस युग के है जब जनता केवल आयुवद मे ही विश्वास करती थी माडर्न के भवजाल से दूर थी। पर अब उन्हे इस नये युग के अनुरूप कार्य करना पडा है। राजनगरी दिल्ली मे असख्य आंग्ल ज्ञान विज्ञान वादी वाबू लोगो के माडर्न रोगो को कितनी सफलता और सिद्रता के साथ केवल आयुर्वेदीय योगो से, आयुर्वेद पद्धति से दूर करते है इसी का एक उदाहरण प्रस्तुत लेख मे निहित है। काश! इनके ज्ञान के इस अमित भण्डार का संरक्षण भविष्य के लिये किया जा सकता!!
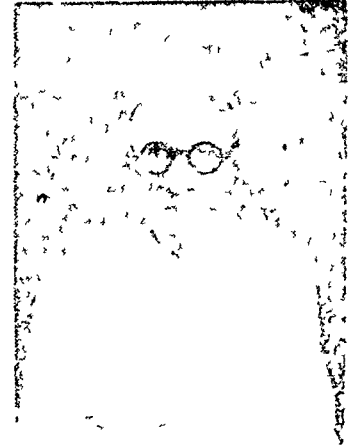
र प्र त्रि

९३० इतिवृत्त—

नाम–साधुचरण पांडे, आयु ६० वर्ष, सिन्धिया हाउस, नई दिल्ली। ता. २२-३-५८ को मेरे एक मित्र जिनके लडके के उदर के जल की मैं चिकित्सा कर चुका था रोगी के यहां लेगये-देखा-मुख मे शोथ, पैरों में शोथ, अण्डकोष व इन्द्रिय में शोथ, रक्ताल्पता, वलहीन। कहा-गत दुर्गापूजा (सन् ५७) से बीमार पड़ा हूँ। इस बीच कम्पनी के डाक्टर का २-२ माह इलाज हो चुका था, अश्मरी या पूय का सन्देह कर अनेक इन्जैक्शन दिये। रोग मे बारह आना भर कमी हुई। रोगी के अनेक एक्सरे किये गये। रोगी का कहना है कि एक्सरे के लेने के दिन मे ही उसको हरनिया जाहिर हुआ। इसके बाद योरोप रिटर्न एक फेमस डाक्टर के यहा गया १५-२० दिन चिकित्सा की, रोग बढ़ गया। इसके पश्चात् एक बंगाली वृद्ध कविराज की एक मास तक चिकित्सा हुई तब मुझे दिखाया गया।

Urine report—Major S. K. Lal—
Specific gravity *1020*,
Albumin Present (+ + +)
Erythorocytes *60-80* per *14* fld.
Leucocytes & Pus Corpuscles—
10–15/14 fld
Clumps of *6–8* pus cells.
Hyalin–Granular casts–scanty

९३१ चिकित्सा—

प्रथम केवल दूध पथ्य देना चाहा पर रोगी नहीं माना मीठे से रोटी भी कुछ खाता रहा, कुछ दिन बाद दही की लस्सी भी इसके साथ दी। सामयिक फल रस, पपीता, खीरे का रस आदि।

औषधि—लघु हरीतकी चूर्ण १ माशा, त्र्यूषणादिलोह २ रत्ती, ऐसी तीन मात्रा निम्न क्वाथ से दीं—त्रिफला १½ तोला, गोखरू छोटा ६ माशा

पाषाणभेद ६ माषा, पुनर्नवा ६ माषा पानी एक सेर मे उबाल कर तीन छटाक बाकी रहे। दिन मे तीन बार सुबह, दोपहर, शाम दिया। रोगी को दस्त होने लगा, मूत्र खुल कर आने लगा, नींद भी लगी सभी उपद्रव धीरे धीरे कम होते गये। दस दिन बाद शोथ के दूर हो जाने पर नौकरी मे जाने को कहने लगा पर पन्द्रह दिन तक आराम ही करवाया। एक माह तक दवा भी चलती रही। ठीक होगया। अब रोगी यहा से अपने घर उड़ीसा चला गया है, सुना है बिल्कुल ठीक है पर उसने आजन्म नमक न खाने की प्रतिज्ञा करली है।

त्र्यूपणादि लौह का योग—

अयोरजस्त्र्यूपण यावशूकं चूर्णं निपीतं त्रिफला-रसेन। चरकचिकित्सा स्थान अध्याय १७ श्लोक ४०।

वारितर लोहभस्म ४ भाग, सोंठ १ भाग काली मिर्च शुद्ध १ भाग (जवाखार ४ भाग डाले तो गुण शीघ्र होता है मूत्रकर होने से) सबको खरल मे डाल महीन पीस रख ले।

मात्रा—२-४ रत्ती। इसकी १-१ मात्रा में २-४ रत्ती कोलपाषाण पिष्टी (पत्थरबेर) मिलाते हैं।

जीर्ण-वृक्कप्रदाह—(हमारे पास जीर्ण अवस्था मे आया) नाम रोगी-बीबो आयु ७ वर्ष ता० २६-२-५७ को इर्विन अस्पताल देहली मे भर्ती हुई। निदान Sub Acute Nephritis. ता० २१-३-५७ को रोगी का भार ४२ पौंड ६ औंस निम्न परीक्षण हुआ Urine-pale, Rection-natural sp gr-*1006* Albumin +++Suger-nil, M. E. *-2-4* Pus cells/H P, No R B C. No Cast B. P *110/60* m. m। बीमार एक मास अस्पाल मे रहा, रोगी को कै होती थी, आंखों के पलक सूजे हुए थे, सर्वाङ्ग शोथ यह संक्षिप्त लक्षण है। बीमार के पिता का कहना है एक मास बाद रोगी को यह कह कर कि अब ठीक हो गई प्रतिदिन दवा ले जाओ-छुट्टी दे दी। घर आने पर कुछ दिन बाद रोगी अपनी पूर्व अवस्था मे पहुच गया। मूत्र का कम आना सूजन आदि पूर्वोक्त लक्षण फिर हो गये। इसके बाद विलायत से लौटे हुए पुराने प्रसिद्ध डाक्टर L. M S. A. (Lon.) का इलाज प्रारम्भ हुआ। डाक्टर साहब के यहां के मूत्र परीक्षण की रिपोर्ट—मूत्र परिमाण २½ तोला, sp. gr. *1006* ता २३-३-५७ Granular casts-Present (a few) Fatty casts-present (a few), Albumin+++ पुनः ता० १२-४-५७ Albumin++पुनः ता० २६-४-५७ Albumin+++ पुन ता० १७-५-५७ Albumin+ पुन. ता० ५-७-५७ Albumin+ पुनः ता० १४-८-५७ Albumin+ बाकी मूत्र-स्थित लक्षण कुछ अल्पाधिक रहे। इस चिकित्सा में सिवाय लवण के रोगी को पथ्य में कोई रोक न थी।

इसके पश्चात् रोगी को स्थानीय धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय की चिकित्सा की गई पञ्चतृणादि प्रयोग कर वैद्य जी ने पेट का भारीपन सर्वाङ्ग शोथ में कमी कर दी पर इस बीच उक्त वैद्य जी बाहर चले गये, रोगी कै और दस्तों से पीडित सुस्त, सर्वाङ्ग शोथ, दीन हालत में हमारे पास आया मूत्र एक बार मे २½ तोला के लगभग, पेट भारी होने से पेट मे पानी का सन्देह हुआ परीक्षा करने पर जल नहीं था। इस अवस्था मे बरफ का टुकड़ा बराबर चूसने को दिया गया कोलपाषाण चूर्ण २ रत्ती मात्रा से ३-३ घण्टे बाद दिया गया। (कोल पाषाण (पत्थर बेर) उत्तम वमन निरोधक है मूत्रकर भी है) पथ्य—दूध दिया। वमन दस्त बन्द होने के बाद निम्न प्रयोग प्रारम्भ किया त्र्यूपणादि लौह २ रत्ती मात्रा से इसमे कोलपाषाण चूर्ण २ रत्ती मिलाकर प्रतिदिन ३ मात्रा निम्न क्वाथ त्रिफला, गोखरू, पाखानभेद, श्वेतपुनर्नवा-सब मिलाकर १ तोला पानी पावभर मे छटाक भर। एक छटाक शेष की ३ मात्रा। पथ्य केवल दुग्ध थोड़ा-थोड़ा करके, फलरस मौसम्बी, खीरे का रस

—शेषांश पृष्ठ ५०० पर।

मूत्रसंस्थानगत विकार और उनकी चिकित्सा

लेखक—आयुर्वेद सुधाकर, विद्यातीर्थ श्री पी० वी० ऐस० शर्मा गारू B P. E, D Hd, L. A. M. आन्ध्र सरकार की आयुर्वेद निमित्त आर्थिक परामर्शदात्री समिति के सदस्य, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्य—कुर्नूल।

"धन्वन्तरि के इस विशेषाक मे जो कई विशेषताए देखने मे आती हे उनमे एक यह भी है कि कई अहिन्दी भाषा भाषी वैद्यो ने हिन्दी मे अपने लेख भेजे हे। श्री शर्मा उनमे से एक हैं। उनकी हिन्दी की शैली अत्यन्त सरल और भावाभिव्यक्ति मे पूर्ण सफल सिद्ध हुई है। आसेतु हिमाचल इस भारत वसुन्धरा मे पग पग पर आयुर्वेद प्रेमी और आयुर्वेद के निष्णात मिलते है। आन्ध्र मे अनेक उच्चकोटि के आयुर्वेदज्ञ है। श्री शर्मा उनमे से एक हैं। हमे विश्वास है आगे अधिकाधिक उनका सम्पर्क धन्वन्तरि को प्राप्त होता रहेगा।"

र० प्र० त्रि०

६३२ अथवातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—

वायु से मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो-वैद्य रोगी के अभ्यंग स्नेह निरूह बस्ति तथा उत्तरवस्ति देवे, घी आदि से सेके तथा वातनाशक बलादि पदार्थो से पकाये हुए रस पिलावे अथवा गिलोय, शुण्ठी, आमला, अश्वगन्धा, गोखरू इनसे बना हुआ कषाय पिलावे तो वातजमूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है—

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्ति सेकान्।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसाश्चानिल मूत्रकृच्छ्रे॥
—इति चक्रदत्ते।

इससे मूत्रकृच्छ्र के साथ का शूल नष्ट होजाता है।

६३३ पित्तज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र मे शीतल परिषेक, स्नान तथा प्रलेप, ग्रीष्मोचित ऋतुचर्या, बस्तिकर्म, दुग्ध विकार (दूध से बने पदार्थ), मुनक्का, विदारीकन्द, ईख के रस और घृत आदि की व्यवस्था करे। मुख्य करके—

एर्वारु बीज मधुकञ्च दार्वी पैत्ते पिबेत् तण्डुलधावनेन।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रे॥

६३४ कफज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—

श्लेष्मिक मूत्रकृच्छ्र मे क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण औषधि, अन्नपान, स्वेद, जौ का भोजन, वमन, निरुहबस्ति, छाछ तथा तिक्तरसयुक्त औषधियो से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग एवं कफनाशक द्रव्यो का पान करना चाहिए। यथा—

मूत्रेण सुरया वापि कदली स्वरसेन वा।
कफकृच्छ्र विनाशाय श्लक्ष्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत्॥

६३५ सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा—

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र मे दोषों की अशांश कल्पना करके प्रथम वमन, फिर विरेचन और तत्पश्चात् बस्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। यथा—

बृहती धावनी पाठा ,पिष्टीमधुकलिङ्गका।
पाचनीयो बृहत्यादि कृच्छ्रदोषत्रयापह॥

६३६ अभिघातज मूत्रकृच्छ्र—

इसमे सद्योव्रण अधिकार मे वर्णित चिकित्सा करनी होगी।

मूत्रकृच्छ्रेभिघातोत्थे वातकृच्छ्र क्रिया हिता।
पञ्जवल्कमृल्लेप कवोष्णोऽत्र प्रशस्यते॥

मन्थ पिबेद्वा ससित ससर्पि श्रृत पयोवाऽर्धसिता प्रयुक्तम् ।
धात्रीरस चेक्षुरस पिबेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥
यो र.

६३७ पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा—

पुरीषजन्य मूत्रकृच्छ्र मे स्वेद, चूर्ण क्रिया, अभ्यंग और बस्ति क्रिया करनी चाहिये ।

काथो गोक्षुरबीजाना यवक्षारयुत सदा ।
मूत्रकृच्छ्र शकृज्जात पीत शीघ्र निवारयेत् ॥

६३८ अश्मरीजातः मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा—

अश्मरी तथा शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र मे कफवात-नाशक मूत्रकृच्छ्रोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ।

पाषाणभेदकाथस्तु कृच्छ्रमश्मरिज जयेत् ।

६३९ शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा—

शुक्रविबन्धजन्य मूत्रकृच्छ्र मे मधु के साथ शिलाजीत का सेवन कराना चाहिये । वृष्य प्रयोगो द्वारा प्रवृद्ध धातु से उत्पन्न शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र मे उत्तमाङ्गना लाभदायक होती है—

शुक्रदोष विशुध्यर्थ समदा प्रमदा श्रयेत् ।

६४० रक्तज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—

रक्तज मूत्रकृच्छ्र मे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र के समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

६४१ मूत्रकृच्छ्रहर योगाः—

(१) गुड के साथ आवले का चूर्ण सेवन करने से थकावट को दूर करता है, तर्पण तथा पित्तरक्त, दाह और शूल सहित मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है ।

(२) अथ तक्रादियोगो वृन्दात्—

तक्रेण युक्तं सितवारुकस्य बीजं पिबेत्कृच्छ्र विघातहेतो । पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्ण कफमूत्रकृच्छ्रे ॥

(३) लोहयोग —

लोहभस्म शहद के साथ चाटने से तीन खुराक में मूत्रकृच्छ्र मे बहुत लाभ होता है ।

(४) यवक्षार योग—

मिश्री के बराबर जवाखार अथवा शहद के साथ छोटी कटेरी का रस समस्त मूत्रकृच्छ्रो को शान्त करता है ।

(५) रीठे का छिलका २ सेर, चांदी भस्म ५ तोला, वङ्गभस्म २० तोला, गेरू १० तोला, सकमूनिया ७५ तोला इकट्ठा खरल करके २ रत्ती की गोली बनावे । गुण—यह दूषित विष को निकालने के साथ कई रोगों को आराम करती है। वैद्य उचित अनुपान से निम्नलिखित रोगों पर बरत कर यश के भागी बने —

मूत्रकृच्छ्र, वृक्कशूल, आमवात, अर्धाङ्गवात, पार्श्वशूल, प्रमेह, भगन्दर आदि व्याधिया ।

:: पृष्ठ ४९८ का शेषांश ::

आदि लवण बिल्कुल वर्जित । पूर्व चिकित्सको ने भी लवण की रोक कर रखी थी—एक मास मूत्र की जांच करने पर Trace of Albumin लेश-मात्र एलब्युमेन निकला । कुछ दिन बाद तोल करने पर १७ सेर से २४ सेर तोल होगया, रोगी बिल्कुल स्वस्थ हो गया खेलता कूदता खूब नींद आने लगी भूख भी बढ़ गई हां बीच-बीच से १-२ दिन के बाद रोगी को पेट साफ करने के लिए काष्ठौषधि जिससे एक ही टट्टी साफ हो दी जाती रही । एक मास बाद भूख लगने तथा बलवर्धन के लिए निम्न प्रयोग भी दिया जाने लगा । त्रिकटु, त्रिफला, कुचिला समभाग गोली काली मिर्च बराबर दो प्रतिदिन, इससे भूख अच्छी बढ़ गई ।

रोगी को खूब नींद आने लगी । इस बीच दूध मे भी लवण कुछ अंश मे होता है अत क्रमशः दूध कम कर दही की मीठी लस्सी दी गई । अलाबू (घीया) का मीठा लच्छा भी विनोदार्थ देते थे ।

—श्री वैद्य घनानन्द पन्त ।

यवक्षार, शीतलचीनी, रेवतचीनी, एला (इलायची बडी), जीरा—ये सब १-१ भाग, कलमीशोरा २ भाग, मिश्री ४ भाग। सबको कूट कर कपडछन चूर्ण बनाले और ३ माशे की मात्रा में दूध की पतली लस्सी से दिन मे तीन बार दे। मूत्र का विरेचन प्रथम मात्रा मे ही होने लगेगा। लस्सी का प्रयोग न कराया जासके तो साधारण जल से भी लिया जा सकता है।

(६) मूत्रकृच्छ्रहर वस्ति—

शहद और घी समान परिमाण मे ले इन दोनो के बराबर दूध को डाल कर तदनंतर इसमें सोंफ का कल्क एक तोला तथा पिसा हुआ सैन्धव नमक ½ तोला डाल दे। फिर यथा विधि बस्ति करावे। इसको सर्वसाधक बस्ति कहते है। ये बस्ति रसायन वृष्य, मूत्रकृच्छ्रनाशक पित्तरोगहर तथा निरूपद्रव है।

(८) अपामार्ग क्षार को जवाखार में मिलाकर शीतल जल के साथ सेवन किया जाय तो मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग नष्ट होते है।

(६) क्षाराष्टक युतं त्वभ्र मूत्राघात विनाशयेत्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च विशेपादग्निदीपनम्।।

(१०) भयङ्कर मूत्रकृच्छ्र रोग में अभ्रकभस्म को भुई-आंवला, गोखरू, बड़ी इलायची के बीज और खांड के साथ घृत में मिलाकर चटाना चाहिए।

(११) कटेरी का १६ तोले स्वरस शहद डाल कर पिये तो मूत्र दोष दूर होकर मनुष्य को सुख होता है।

(१२) श्वेतपपटी, चन्द्रप्रभावटी, चन्द्रकला रस ये तीन क्रमश: काशी हिंदू यूनिवर्सिटी के आयुर्वेदिक कालेज (राजकीयऔषधियोगसंग्रह पृष्ठ २६७), शारङ्गधर संहिता, भैषज्यरत्नावली के अत्यन्त मुख्य योग है। ये मूत्रकृच्छ्र को दूर करने के लिये अतीव समर्थ है। उनमे से पहला श्वेत पर्पटी योग ऐसा है—

सोरक दो भाग जल एक भाग स्फटिक एक भाग सर्व प्रथम शोरा और जल चीनी मिट्टी के पात्र मे डाल गर्म करे जब शोरा जल मे पूर्णत: घुल जावे तो उसमे फिटकरी का चूर्ण डाल कर लकडी की कछूल से चलाता रहे। जब वहा गाढ़ा हो जावे तो उसे गोबर पर बिछे कदली पत्रो पर ढाल कर ऊपर से दूसरे पत्र ढंक लकड़ी के पट्टे से दवा दे। पर्पटी तैयार हो जावेगी।

(१३) लघुलोकेश्वरोरस—

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला दोनो को खरल करके महीन पीस कर शुद्ध की हुई कौडियो के भोतर उन दोनो की कज्जली को भरकर शुद्ध सुहागा की बकरी के दुग्ध मे घोटकर बनी हुई पिष्टी से उन कौडियो के मुख को बन्द करके धूप में सुखा दे। फिर उन्हे एक छोटी हण्डिया के भीतर बन्द करके उस पर कपडमिट्टी करके सुखा कर लघुपुट मे पाक करना चाहिये। स्वांग शीतल होने से कोडियो को निकाल कर महीन पीसकर रख देवे। इस रस को ४ रत्ती भर लेकन १६ मिरचो के साथ मिलाकर शहद के साथ सेवन करना चाहिये। फिर ऊपर से ४ तोले जातिमूल चमेली की जड का चूर्ण लेकर बकरी दुग्ध मे घोटकर छानकर चीनी मिलाकर पान करना चाहिए। इससे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

(१४) शुक्लपिण्याकादियोग—

सफेद तिलो के कल्क और पिच्छिली (अतसी अथवा लिसोड़े के फल के गिरी) ये दोनों समभाग लेकर चूर्ण करके प्रतिदिन गरम जल के साथ सेवन करने से कुछ दिनो के भीतर ही मनुष्य भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग से निर्मुक्त हो जाता है।

६४२ मूत्रघाताधिकार—

मूत्रघातान्यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्।
वस्तिमुत्तरवस्तिं च दद्यात्स्निग्ध विरेचनम्।।

दोषानुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक प्रयोगों से मूत्राघात की चिकित्सा करनी चाहिए और वस्ति उत्तरवस्ति तथा स्नेहयुक्त विरेचन देना चाहिए।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम्।
दद्यादुत्तरवस्ति च मूत्राघाते सवेदने॥

पीडयुक्त मूत्राघात हो तो स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थों से विरेचन देवे तथा उत्तरवस्ति भी देवे, यह हितकारी है।

६४३ विविध योग—

(१) अथवा शराब से पाढल, जव, नीम या तिलका क्षार जल तथा दालचीनी, इलायची व कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए अथवा उपरोक्त क्षार गुड के साथ चाटना चाहिये।

(२) अथवा त्रिफला के कल्क मे नमक मिलाकर पिलाना चाहिए अथवा छोटी कटेरी का स्वरस कपड़े से छानकर पीना चाहिए।

(३) अथवा जल मे केशर का कल्क व शहद मिला रातभर रखकर सवेरे पीना चाहिये। अथवा पाटला की भस्म या क्षार जल तैल के साथ पीना चाहिये अथवा कालानमक मिलाकर शराब पीना चाहिये, अथवा अनार का रस, इलायची का चूर्ण, सोठ का चूर्ण, शराब व नमक मिलाकर पीना चाहिए, अथवा वीरतर्वादि गण के क्वाथ मे शिलाजतु मिलाकर, अथवा जवासा का रस अथवा अडूसे का क्वाथ पीना चाहिए।

(४) दशमूल क्वाथ—

दशमूल के क्वाथ मे शिलाजीत ४ रत्ती तथा खांड डालकर पीने से वातकुण्डलिका, अष्ठीला तथा वातबस्ति नामक रोग नष्ट होते है।

(५) पाषाणभेद क्वाथ—

पाषाणभेद की जड़ के क्वाथ मे घी, तैल व गोरस मिलाकर पीने से शीघ्र ही मूत्राघात नष्ट होता है।

(६) शिलाजतु प्रयोग—

शिलाजीत में खांड तथा शहद को मिलाकर चाटने से मूत्र जठर तथा मूत्रातीत रोग नष्ट होता है। शिलाजीत की मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती तक।

(७) अथ स्वगुप्ताद्यं चूर्णम्—

स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारज। समानमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च॥ सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमान लीढ्वा पयः पिवेत्। हन्तिशुक्राशयोत्थाश्च दोषान् वन्ध्यासुतप्रदम्॥

यह अति व्यवायज मूत्राघात मे उपादेय है।

(८) चन्दनादि चूर्ण—

घटक—श्वेत चन्दन, नेत्रबाला, अगर, तगर, वंशलोचन—सब बराबर, मिश्री सबके बराबर।

निर्माण—सब द्रव्यो को कूट कपडछान करके एकत्र मिश्रण कर रखले। परीक्षा—यह चूर्ण सुगन्धित श्वेत और मीठा होता है। गुण—रस और विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, मूत्रल, बल्य, तृषाघ्न और संशामक होता है। यह अनुभूत है।

(९) गोक्षुरादि गुग्गुलु—

घटक—गोक्षुरू २८ पल, जल २८×६ पल, शेष क्वाथ ८४ पल, गुग्गुलु ५६ तोला, शुण्ठी १ पल, मरिच १ पल, विभीतिक १ पल, पिप्पली १ पल, आमलकी १ पल, मोथा १ पल इन द्रव्यो से चार-चार रत्ती की गोली बनाये। यह रस में कटु, तिक्त, अम्ल; विपाक मे कटु तथा मधुर और वीर्य मे ईषदुष्ण होता है। यह दीपन, बल्य, हृद्य, रसायन, त्रिदोषनाशक, मूत्रवर्द्धक, मूत्रप्रजनन संस्थान-बलवर्द्धक, रक्तप्रसादक, स्रंसन, मेध्य, अनुलोमन, चक्षुष्य, केश्य और सन्तापहर होता है।

(१०) त्रिकण्टकादि क्षीरम्—

गोखरू, एरण्ड की छाल तथा शतावरी से सिद्ध दूध अथवा तृणपञ्चमूल से सिद्ध दूध में गुड़ मिला कर अथवा दूध घी डालकर पीने से मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात आदि विकार दूर हो जाते है।

(११) लेपः—

कपूर का चूर्ण कर बकरी और भेड के मूत्र में पीस बस्ति यंत्र पर चुपड लिंग में डाले तो इससे मूत्र का रोग नष्ट होता है।

६४४ पथ्यं--

छाछ, दूध, दही उडद का यूष, पुराना पेठा, परवल तिन्तिडीक. तालफल की गुठली की गिरी, सुपारी, खजूर. नारियल तथा ताड के वृक्षों के मस्तक इन्हें रोग दोष के बलानुसार मूत्राघात में हितकारक समझना चाहिए।

६४५ अपथ्य---

विरुद्ध भोजन, व्यायाम, अत्यन्त चलना,.शीतल द्रव्य, रूक्ष, विदाही एवं विष्टम्भी द्रव्य, मैथुन वेगो का रोकना, करीर और वमन ये मूत्राघात रोगी के लिए अपथ्य है।

६४६ अथ अश्मर्यधिकारः —

अश्मेरी दारूणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मत ।
औषधैस्तरुण साध्य. प्रवृद्धश्छेदमर्हति ।।

(१) वरुणादि क्वाथ—

बरना की छाल, सोठ और गोखरू का काढ़ा बना कर उसमे जवाखार और गुड़ मिलाकर पान करे। यह काढ़ा चिरकालोत्पन्न वातज अश्मरी को नष्ट करता है।

(२) शुण्ठ्यादि क्वाथ—

सोठ, अरणि, पाषाणभेद, सहजने की जड़ की छाल, वरना की छाल,गोखरू, कम्भारी, अमलताश फल सब मिलाकर २-२ तोले। क्वाथ के लिये ३२ तोले जल, शेष ८ तोले। इस क्वाथ में हींग तथा जवाखार, सेधानमक डालकर पीने से अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ रोग नष्ट होता है। यह क्वाथ अग्नि को तीव्र करने वाला तथा पाचन है।यह कोष्ठ कटि, जाघ, शिश्न तथा गुदगत वात को भी नष्ट करता है।

(३) ऐलादि क्वाथ—

छोटी इलायची, पीपल, मुलहठी, पाषाणभेद, सभालू के बीज, गोखरू, अड़ूसा, अंडी की जड़, सब मिलाकर २ तोले। इस क्वाथ में शिलाजीत डालकर शर्करा, अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र में पीना चाहिये।

(४) श्वदंष्ट्रादि क्वाथ—

गोखरू, अरण्डी के पत्ते, सोठ और वरना की छाल, इनका क्वाथ प्रातःकाल पीने से अश्मरी नष्ट होती है।

(५) यवक्षार प्रयोग (र स)—

माशे भर यवक्षार लेकर उसे मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन (जब तक रोग ठीक न हो तब तक) सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है।

(६) हरिद्रा प्रयोगः (र स.)—

हरिद्रा का चूर्ण आधा कर्ष, पुराना गुड आधा कर्ष, लेकर प्रतिदिन कांजी के साथ सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है।

(७) शिवोक्तयोगः (र स)—

वन्ध्याकर्कोटकी (बांझ ककाडा, तिक्त कर्कोटकी वा) के कन्द का चूर्ण १ कर्ष भर लेकर आधा तोला चीनी और दो तोले शहद के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से निश्चय ही अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है। यह योग शिवजी के द्वारा बताया हुआ है इससे अश्मरी मे बहुत लाभ होता है।

(८) गोक्षुरादि चूर्णम् (र र)—

गोखरू का चूर्ण एक तोला तथा रसवर (पारद की भस्म अथवा रससिंदूर) २ रत्ती लेकर दोनो को भेड के दूध के साथ मिलाकर प्रतिदिन पान करने से अश्मरी चूर्णित होकर (शर्करा के रूप मे होकर) मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है।

(९) त्रिकण्टकादि चूर्णम् (यो र)—

त्रिकण्टकस्य वीजाणां चूर्णं माक्षिकसयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताह पिबेदश्मरि भेदनम् ॥

(१०) तिलदिक्षारयोग (यो र.)—

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसभव ।
क्षार. पेयो विमूत्रेणशर्कराश्वश्मरीपु च ॥

(११) कुटजकल्क (यो र)—

अपि च कुटजमूल घेनदध्यम्बुपिष्ट पिचुमितमवलीढं पातयत्यश्मरीकाम् ॥

(१२) ऐरण्डादिकल्क (यो र)—

गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् ।
मूलकल्क पिबेद्दघ्ना मधुरेणाश्म भेदन ॥

(१३) शिग्रुमूलादि (यो. र.)—

क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थ कदुष्णोग्मरिपातन ।
क्षीरान्नभुग्वर्हिशिखामूल वा तण्डुलाम्बुना ॥

(१४) वृन्दात् शृगवेरादियोग (यो र)—

शृंगवेर यवक्षारपथ्याकालीयकान्वितम् ।
आज दधि भिनत्युग्रामश्मरीमासु पातयेत् ॥

(१५) पाषाणभेदीरस (र. स)—

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर पत्थर की खरल मे कज्जली बनाकर फिर उसे वसु (वसुहट्ट 'वकफुल' इति ख्यात:), पुनर्नवा, अडूसा, कण्टकारी, इनमे से प्रत्येक के स्वरस अथवा काथ के साथ क्रम से तीन दिन तक खरल करके गोला बनाकर मूषा यन्त्र मे बन्द करके गजपुट मे फूंक देवे फिर स्वाङ्ग शीतल औषध को निकाल कर खरल मे पीस कर जलयन्त्र (अर्थात् दोलायन्त्र या स्वेदनी-यन्त्र) के द्वारा स्वेदन करके सुखाकर शीशी मे भर देवे । इसको पाषाणभेदी रस कहते है। इस पाषाणभेदी नामक रस की १ वल्ल भर (३ रत्ती) की मात्रा को सेवन करके ऊपर से गोपाल कर्कट (आरण्य कर्कटी विशेष अथवा कन्दुरुकी दुग्ध अथवा ककड़ी के बीज का चूर्ण) के बीज तथा भूमी आवले की जड़ का चूर्ण इन दोनों का एक २ तोले भर लेकर १ पल भर कुलत्थ के क्वाथ के साथ घोटकर अनुपान करना चाहिए । इस विधि से प्रतिदिन इसको सेवन करने से अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र आदि वस्ति के रोग नष्ट होजाते है ।

९४७ वृक्काश्मरी (अनुभूत)—

मीठा सोडा, हजरल यहूद, नवमादर, यवक्षार, गोखरू, कुलथी—इन सबको बारीक पीसकर चूर्ण बनाकर रखले । ३ माशे की मात्रा से दोनों समय भोजन से पहिले सेवन करके ऊपर से मक्की के बाल का काढ़ा बनाकर २ छटाक पिलादें तो हर प्रकार की अश्मरी तथा वृक्कशूल शमन होकर पथरी कट-कर निकल जाती है । यह मैंने स्वयं अनुभव किया है । क्योकि वृक्काश्मरी का रोगी मैं स्वयं रह चुका हू । वृक्कश्मरी कटकर मूत्र के साथ निकलती है ।

९४८ एक अनुभूत योग—

(वृक्काश्मरीजन्य शूल पर)

रीठा का छिलका २ तोला, रीठा की गुठली की मींग १ तोला, स्वर्णवङ्ग बनाने मे शेष क्षार ३ माशे । इनको पुनर्नवा अथवा गोखरू छोटा के पंचाङ्ग के स्वरस या क्वाथ की ३ भावना देकर चना प्रमाण गोली बना लेवे ।

मात्रा—१ गोली जल से निगले, चबाये नहीं फिर आधा अथवा १ घण्टा पश्चात् दूसरी गोली जल से देवे । शूल अवश्य शान्त होगा ।

९४९ पथ्य (भै० र०)—

कुलथी, मूँग, गेहूँ, पुराने शाली चावल तथा जौ, जांगलमास, चौलाई, पुराना पेठा, अदरक और जवाखार, ये अश्मरी के रोगियो के लिए पथ्य हैं ।

९५० अपथ्य (भै० र०)—

मूत्र के वेग अथवा शुक्र के वेग को रोकना, खटाई, विष्टम्भी, द्रव्य, रूक्ष एवं गुरु भोजन इनका अश्मरी रोगी को त्याग करना चाहिए ।

६५१ प्रमेह चिकित्सा—

कोई प्रमेह रोगी स्थूल और बलवान् तथा कोई कृश और दुर्बल होते हैं। उनमें कृश व्यक्ति के लिए बृंहण (बलमांसवर्धन) तथा अधिक दोष और बलसम्पन्न व्यक्ति के लिये संशोधन (विरेचनादि) की व्यवस्था करनी चाहिए।

वमन और विरेचन के द्वारा मलों के निकल जाने पर सन्तर्पण क्रिया ही करनी चाहिये। जिस प्रमेह रोगी के लिये संशोधन क्रिया उचित नहीं, उसके लिये संशमन क्रिया करनी चाहिए। मधु और हल्दी के चूर्ण को मिलाकर आंवले के स्वरस का सेवन करने से सब प्रकार का प्रमेह रोग नष्ट होता है।

गुर्च का सत्त मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है।

शतावरि के रस को निकाल कर दूध के साथ जो पीता है उसके बीसों प्रकार के प्रमेह निःसन्देह नष्ट होजाते हैं।

प्रात काल उठते ही कच्चे दूध में सम भाग जल मिलाकर जो पीता है उसका पुराना शुक्रमेह अवश्य नष्ट होजाता है।

एक तोले पलाश के पुष्प में ६ माशे शक्कर मिलाकर शीतल जल के साथ पीसकर पीने से प्रमेह रोग निःसन्देह नष्ट होजाता है। फिटकिरी के चूर्ण को नारियल के भीतर भरकर उसको रात भर पङ्क में गाड रक्खे और प्रात.काल निकालकर उसके सजल चूर्ण का पान करे। इससे पुराना प्रमेह रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

हरड, बहेडा आंवला, दारूहल्दी, इन्द्रायन की जड़, मोथा मिलाकर २ तोले, पाक के लिये जल ३२ तोले, बाकी क्वाथ ८ तोले, इस क्वाथ में हल्दी का चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

एलादि चूर्ण—

छोटी इलायची, शिलाजीत, पीपल और पाषानभेद के चूर्ण को तण्डुलोदक के साथ पीने से प्रमेह रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

मेहान्तक रस—

पारा, गन्धक, लोहभस्म. वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म. प्रत्येक तीन तीन भाग सुवर्ण भस्म आधा भाग। मूसली का चूर्ण ७५३ भाग। इन्हे इकट्ठा मिलाकर रोगी को सेवन करावे। इसके सेवन से वातज. पित्तज नाना रोग नष्ट होते हैं। यह कान्ति तथा पुष्टि करता है और गतिशक्ति वर्द्धक है।

मेहकेशरी—

वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, लोहभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर, इन्हे बराबर मात्रा में मिलाकर ग्वारपाठा के रस की भावना देकर दो दो रत्ती की गोलियां बनावे। पथ्य—दूध चावल यह प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा शुक्रमेह को ३ दिन में ही शान्त करता है।

प्रमेहे चन्द्रकला गुटिका (रससङ्केत कलिका)—

एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफल शाल्मलिगोक्षुरी च।
सूतेन्द्र वङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समान परिभावयेच्च॥
गुडूचिकाशाल्मलीकाकषायैर्निष्कार्धमाना मधुना ततश्च।
वद्धा गुटी चन्द्रकलेति संज्ञा मेहेषु सर्वेषु नियोजनीया॥

अथ शाल्मली प्रयोगः (रसरत्नसमुच्चये)—

शाल्मली (शेमल) की जड का स्वरस अथवा क्वाथ लेकर उसको किसी रस के अनुपान के रूप में, या वङ्गभस्म के साथ अथवा स्वतन्त्र ही प्रतिदिन पान करने से मनुष्य प्रमेह रोग से मुक्त हो जाता है।

अथ कूष्माण्ड स्वरस प्रयोग (र स)—

सफेद कोहड़े (कूष्माण्ड-काशीफल) या पेठे के स्वरस को १ पलभर लेकर उसमें ६ माशे भर विडङ्ग (वेल्ल) का चूर्ण तथा २ तोला शर्करा मिलाकर प्रतिदिन पान करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है।

विडगादिलौहम् (चक्रदत्त)—

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी पीपल, सोंठ, सफेद जीरा और स्याह जीरा से युक्त लौह-

भस्म कठिन प्रमेह तथा मूत्रदोषों को नष्ट करता है इसमें संशय नहीं।

माक्षिकादियोग (चक्रदत्त)—

स्वर्णमाक्षिक धातु का भी इसी प्रकार प्रयोग करना चाहिए उसका भी यही गुण है। तथा शाल-सादि वर्ग के क्वाथ को पुन पका गाढ़ा हो जाने पर दन्ती, लोध, छोटी हरड, कान्तलोहभस्म तथा ताम्रभस्म को छोडकर पकाना चाहिये। कडा हो जाये, पर जलने न पाये उसी दशा मे उतारना चाहिए। इसको चाटने से प्रमेह नष्ट होते है।

६५२ मेहनाशक विहाराः (चक्र.)—

अनेक प्रकार के व्यायाम से प्रमेह नष्ट होते हैं। तथा जूता और छाता बिना अर्थात् नंगे पैर और नगे शिर मुनियों के समान जितेन्द्रिय ही भिक्षा मांगकर भोजन करते हुए ४०० कोश या और अधिक निरन्तर पैदल चलना चाहिए और पसई के चावल व आंवले को खाना चाहिए।

६५३ अनुभूत प्रयोग—

प्रमेह की सुलभ दवा

नीम की गुर्च १ तोला, सेहसर (शाल्मली) की भीतरी छाल ६ माशा लसोडा (श्लेष्मांतक) की छाल ६ माशा कूटकर १ पाव पानी मे मिट्टी के बर्तन मे भिगोदे। सुबह मल छान कर मधु ६ माशा मिलाले। पहले ३ माशा आंवला का चूर्ण ३ माशा हल्दी का चूर्ण फांक कर ऊपर से उपयुक्त द्रव पी जाय। दही, खटाई, तेल मिर्च, गुड से परहेज करे। दिन मे न सोये। दवा सेवन काल मे ब्रह्मचर्य का पालन करे। जब तक प्रमेह अच्छा न हो जाय तब तक दवा सेवन करता रहे। यह औषधि सभी प्रकार के प्रमेह की नाशक है। अनुभूत है।

तालकेश्वररस, रससिंदूर, वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मधु से मर्दन करके एक माषा प्रमाण मधु (शहद) से सेवन करने से शुक्रजमेह बहुमूत्र नष्ट होता है।

स्वर्णवङ्गपञ्चकरसायन (र० म०)

उत्तम स्वर्णवङ्ग दो तोला, अच्छी तरह शुद्ध किया हुआ शिलाजीत दो तोला, तीक्ष्णलोह (फौलाद) भस्म एक तोला, उत्तम वज्राभ्रक भस्म आधा तोला, और उत्तम षड्गुण बलिजारित मकरध्वज रस आधा तोला लेकर सबको खरल मे एकत्र जल के साथ मर्दन करके तीन-तीन रत्ती की गोली बना ले। इनको सुखाकर काच की शीशी मे रखले। अब इन मे से एक गोली सुबह और एक गोली शाम को बलकाल आदि का पूर्ण विचार कर दिन मे दो बार योग्य अनुपान से सेवन करना चाहिए। इस योग को स्वर्णवङ्गपञ्चक रसायन कहते है। शुक्रमेह रोग को नष्ट करने मे यह एक अचूक दवा है। इसके सेवन से शरीर मे बल और वर्ण की वृद्धि होती है, उत्पादक अङ्ग सबल होते हैं, बुद्धि-शक्ति बढ़ने लगती है। शुक्र की तरलता को दूर करने मे यह विशेष रूप से लाभदायक है। यदि स्वर्णवङ्ग को दो मास तक घी और मिश्री मिश्रित मलाई वाले गरम दूध के साथ सेवन किया जाय तो भयङ्कर शुक्रमेह दूर हो जाता है।

तुवरक चूर्ण (अनुभूत योग)—

पहाडी पपीता (चावलमुंगरा) के फल को लेकर छिलका तोडकर मज्जा को वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर रख छोडे। मधुमेह के रोगियों को दो आना भर की मात्रा मे सायं प्रात. दोपहर रात २-३ घूंट पानी मे पिलावे। सुगर निल होजाता है। पथ्य-मधुमेह का होना चाहिए।

मधुमेह रोग पर मैं बसन्तकुसमाकर भी देता हूँ पर शास्त्र मे जो भावनाये वर्णित है उनसे भावना नहीं देता हूँ। दुग्ध, इक्षुरस आदि मधुमेह के लिये हानिप्रद है। मैं बसन्तकुसुमाकर मे गुडूचि (गिलोय) रस को, त्रिकोल (बिम्बाफल) के रस, कारवेल्ल के रस, चढैल के रस, दारुहरिद्रा के क्वाथ, जामुन के छाल के रस, बेल के छाल के रस की ७-७ भावनाये देता हू। बडा लाभ करता है।

—शेषांश पृष्ठ ५१८ पर।

आमवात

लेखक—श्री. एम० महादेव शास्त्री, पोष्टग्रेजुएट इन आयुर्वेद
लैक्चरर गवर्नमेण्ट आयुर्वेद एण्ड यूनानी कालेज, मायसोर।
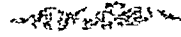
"प्रस्तुत लेख के लेखक जामनगरीय प्रशिक्षण केन्द्र से निकले हुए विद्वान् है। आपका यह लेख आमवात पर है। पर जिस शैली का अनुसरण किया गया है वह खोजपूर्ण है तथा जामनगरीय परम्परा की उसमे स्पष्ट एव सुललित छाप दिखाई देती है। आप कन्नडक्षेत्रीय एव मैसूर निवासी होने पर भी कितनी सुन्दर हिन्दी लिख लेते है यह भी गौरव की बात है। आपका यह लेख पठनीय, मननीय एव विचारणीय है। आगे भी विश्वास है श्री शास्त्री जी धन्वन्तरि को अपनी उत्तम कृतियो से लाभान्वित करते रहेगे।"

—र. प्र त्रि

६३८ ऐतिहासिक—

आयुर्वेदीय आर्ष ग्रन्थो मे आमवात का वर्णन सूक्ष्म रीति से किया गया है। आगे माधव निदानादि ग्रन्थो मे इसको एक प्रत्येक या स्वतन्त्र रोग माना गया है। इससे मालूम होता है कि संहिता काल मे यह रोग शायद नहीं था। पर कुछ आमान्वित व्याधियो मे कहीं कहीं अवस्था भेद से था। ऊरुस्तम्भादि कई रोगो मे आम संचय विचार है किन्तु आम और प्रकुपित वायु विशिष्ट रूप में सम्मिलित होने का सुस्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है। जहां प्रत्येक रोग ऐसा इसको माना गया है वहां रोग का पूर्व इतिहास नहीं है। इससे यह रोग हमारे देश मे कितने काल से प्रचलित है यह कहना कठिन है।

६३९ साहित्यिक—

आम का वर्णन चरक संहिता मे प्रत्येक नहीं रहे तो भी कुछ रोगो की आमावस्था या आम सम्बन्ध वर्णित है। ऐसा सुश्रुत संहिता मे भी है। विशेषत: व्रणशोथ विज्ञान मे आम का महत्त्व ज्यादा से ज्यादा दिया गया है। व्रणशोथ मे आमावस्था पच्यमानावस्था और पक्वावस्था वर्णन करके हरेक अवस्था मे चिकित्सक का ध्यान, शस्त्रकर्म इत्यादि विषयो का वर्णन है। वाग्भट ने अपने अष्टाङ्गहृदय मे वातव्याधि चिकित्सा प्रकरण मे आम संसृष्ट वातव्याधि प्रतीकार दिया है। प्रकुपित वात के विविध विकार, उसका साध्यासाध्य और प्रतीकार प्राय सब ग्रन्था मे काफी मात्रा मे देखते है। माधव-निदानादि ग्रन्थो मे जो आमवात का वर्णन है इसका कुछ विचार करके आजकल हमारे देश मे रहे हुये इस व्याधि की चिकित्सा आदि अनुभवपूर्वक कहना इस लेखन का उद्देश्य है।

६४० आम क्या है?

आम क्या चीज है और यह कैसे बनता है इन विषयो को वाग्भट ने स्पष्ट किया है। आम दुर्बल कोष्ठाग्नि से या दुष्ट दोषो की अन्योन्य सम्मूर्च्छना से बनता है। आमवात निदान मे गुरु स्निग्धादि भोजन और इसके बाद जब इसका पाचन नहीं हो तब तुरन्त व्यायाम या अन्य आयासकर काम करना इत्यादि उत्पादक हेतु बताये है।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।

स्निग्ध भुक्तवतो ह्यन्न व्यायामं कुर्वतस्तथा ।।
मा० नि०

आमवात की सम्प्राप्ति भी ऐसी दी है कि—

वायुना प्रेरितो ह्याम श्लेष्मस्थान प्रधावति ।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनी: प्रतिपद्यते ।।
वातपित्तकफैर्भूयो दूपित सोऽन्नजो रस ।
स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिल: ।।
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरव हृदस्य च ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येप आमसञ्ज्ञोऽतिदारुण ।।
युगपत्कुपितावन्त त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।।
स्तब्ध च कुरुतोगात्र आमवात स उच्यते ।।
मा० नि०

विरुद्धाहार स्निग्ध गुर्वादि भोजन द्रव्यो को दुर्बलाग्नि ठीक नहीं पचन करती है। इससे जो अपक्व सार भाग उत्पन्न होता है वह शरीर के रस धातु से भिन्न रहता है। यही आम है। प्रत्येक कारण से प्रकुपित वायु इस आम से मिल कर रसवाहि स्रोतो मे फैलते फैलते श्लेष्म स्थान तक पहुँचता और वहीं स्थानिक श्लेष्मा को बिगाडता है। आमयुक्त प्रकुपित वात और स्थानिक श्लेष्म एकत्र सम्मूर्छित होकर एक विकार परंपरा को पैदा करते है। यह विकार परपरा आमवात कहलाती है।

६४१ आमवात ही क्यों ?

हरेक शारीरिक व्याधि आम से ही उत्पन्न होती है। ऐसी हालत मे आम से ज्वर, अतिसार या अन्य रोग भी होसकता है। आमवात ही कैसे बनेगा. इस विपय को थोडा ध्यान देना चाहिए। प्राय कोष्ठाग्नि दुष्टि से आम बन कर यह धात्वग्नि को बिगाडता है जिससे उस धातु मे स्थान विशेप से प्रत्येक रोग होता है। ऐसे भी सम्भव है कि स्रोतोदुष्टि से प्रकुपित दोषो की दुष्ट स्थान अन्योन्य समूर्छित होकर धातुओ के अन्दर जाने का रस और धातुओ से निकलने का मल के मार्ग बन्द करते है। यही स्रोतोरोध है। इस दशा मे दुष्ट दोपों और रस मिलकर एक विशिष्ट प्रकार की चीज़ बनते है। यह चीज़ भी आम रा[illegible]क है। यह भी वायु से स्थान स्थान पर बहलता है। जब यह आम क्लेदक कफ से मिलने का अवसर पाता है तब कोष्ठ मे पहुचकर अग्नि को दूपित करता है। पुन: पूर्वोक्त विधि से आमोत्पत्ति और रोग का प्रादुर्भाव आदि होते है। अत: हम ऐसा मान सकते हैं कि कोष्ठाग्नि से भी और धात्वग्नि से भी आमोत्पत्ति होती है। हरेक आम चीज़ विभिन्न प्रकार की होती है। इसलिए आम के अनुसार अलग अलग व्याधि होती है।

४४२ आमवात और दोपदूष्याधार—

उपरोक्त नियम माने तो प्राय. सब शारीरिक रोगो की संप्राप्ति को स्पष्टीकरण कर सकते हैं। आम की उत्पत्ति का कारण विरुद्धाहार, मन्दाग्नि इत्यादि। वात प्रकोप का कारण वातलाहार तथा स्निग्धादि भोजन के पश्चात् व्यायाम। इससे आरम्भक दोप वायु होता है। आमयुक्त वायु श्लेष्म स्थान मे पहुचने से स्थानिक दोप श्लेष्म होता है। वहा संचित वायु पुन रसवाहिनियो मे प्रसरण करता है। इससे सब दोषो के कार्य दुष्ट होते है। अतएव आमवात मे तीन दोषो का प्रकोप देख सकते है। रोग आमवात रहे तो भी इसके साथ साथ पित्त और कफ न्यूनाधिक प्रमाण मे सम्मलित रहते है। शरीर के सूक्ष्म स्रोतो मे आमरस नहीं जा सकता है जिससे उन स्रोतोमुखो मे रस संचय या अभिष्यन्द होता है। क्योंकि आहार का सार भाग कुपचन परिणाम से पिच्छिल या गुरुतर रहता है और सूक्ष्मतम स्रोतोमुखो के अन्दर नहीं प्रवेश कर सकता है। श्लेष्म स्थान का मतलब यह है कि श्लेष्म का विशेप स्थान क्योंकि शरीर के सब स्रोतो मे वात पित्त और कफ व्यापक है।

वातपित्त श्लेष्मणा पुन: सर्वशरीरचराणा
सर्वाणि स्रोतास्ययन भूतानि,··· ।।
च वि ५-७

श्लेष्म स्थान तो उरः, कण्ठ, शिरः, क्लोम, पर्व या सन्धियां, आमाशय, रस मेद, घ्राण और जिह्वा है। उरः कफ का विशेष स्थान है। इन किसी स्थानो मे दोष दूष्य संमूर्च्छना होती है। कई रोगियो मे पहले उक्त प्रकार के कारण नहीं देख सकते है पर किसी एक प्रकोपण हेतु से एकाएक आमवात लक्षण मिलेगे। यहां आम धात्वग्निमान्द्य से उत्पत्ति होकर रोग को स्पष्ट किया। श्लेष्म स्थानो मे जहां ठीक आम और वात व्यवस्थित हो वहां ठीक लक्षण व्यक्त होते है। यथा—

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णाह्यालस्यं गौरवं ज्वर ।
अपाक' शूनताङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥
मा नि

रस का स्थान हृदय होने से उस पर कुछ न कुछ आमवात का प्रभाव रहता ही है। इस लिये हृदयगौरव, वेदना आदि हार्दिक लक्षण दिखाई पड़ते है। जब आमदोष सन्धियों मे ठहरता है तब सन्धिबन्ध, शोथ, ताप आदि और रस धातु मे मिले रहने से अङ्गमर्द, ज्वर, शोथ आदि एवं जिह्वा में तो अरुचि इत्यादि लक्षण होते है। सब दोष प्रकोप होने से विविध उपद्रव होते है। रोगी को इनको सहन करना बहुत मुश्किल होता है। इस प्रकार नाना लक्षणों के हम कारण देख सकते हैं। रोग कुछ पुराना होने के बाद आम कुछ स्थानो में लीन होने से अङ्गमर्दादि लक्षण गायब होते है। इसके बाद स्वास्थ्य लक्षण जैसे देखते है। दोष प्रकोपण के लिए अनुकूल परिस्थिति मिलने से अर्थात् कालादि बल से लीन दोष का प्रकोप होता है और पीछे उक्त प्रकार की तीव्रता होती है। जब तक बिलीन दोष शरीर से बाहर संपूर्णतया नहीं निकलता है तब तक इसी प्रकार कुछ दिन तीव्रता और कुछ दिन मन्दता की अवस्थाएे होती रहती है।

६४३ साध्यासाध्यता—

साध्यासाध्यता दोषाश्रय पर निर्भर है। हृदय और सन्धियां रोग मार्गो मे मध्यम मार्ग है। हृदय सद्यः प्राणहर मर्म भी है। इसलिये विलीन दोष को कोष्ठमार्ग मे लाना कष्टकर है। यदि रोग को संचयादि पूर्वरूपावस्था मे ही पहचान कर सकते है तब लंघन, पाचन, स्वेदन, विरेचनादि से आम को दूर करेगे। व्यक्ति या भेद अवस्था मे दोष प्रत्यनीक और व्याधि प्रत्यनीक दोनो को करना पडता है। हृद्गत आम निकालने के लिए केवल पाचन साधन है। स्वेदन कर्म निषिद्ध है। आम की चिकित्सा लघन पाचनादि है पर वायु को शोधन बृंहणादि है। इस प्रकार आम और वायुओ को विरुद्धोपक्रम होने से कष्टसाध्य या याप्य है। व्याधि प्रत्यनीक तो प्रभावित द्रव्यो से ही होना चाहिए।

६४४ कुछ अनुभविक द्रव्य—

चन्द्रप्रभावटी, महायोगराज गुग्गुलु, महा रास्नादि क्वाथ, रास्नासप्तक क्वाथ, सोमनाथी-ताम्रभस्म, शार्ङ्गधरोक्त अजमोदादि चूर्ण। वैद्य योगरत्नावली में उक्त चिंचा तैल की मालिस और स्वेद आदि।

शोधन के लिये एरण्ड तैल अच्छा है। इसको आम पाचन के बाद देना चाहिए। गुडूची स्वरस और अद्रक का रस सवेरे सवेरे पिलाने से कुछ रोगियो को लाभ पहुचा है। हृदय रक्षण के लिये हेमगर्भ पोटली शहद के साथ लाभदायक है। सन्धियो पर उपनाह के लिये निर्गुण्डी पत्र बहुत हितकर है। आवस्थकी चिकित्सा करनी पडती है इस लिए दोष और दूष्य, अधिष्ठान, काल आदि पर लक्ष्य रखकर उचित प्रकार चालू करनी है। सर्व प्रथम निदान परिवर्जन की आवश्यकता है। अतः रोगी को प्रकोपण आहार, चेष्टाओ को त्याग करना चाहिए और निवास प्रदेश यदि शीतल या वातल हो उससे भिन्न उष्ण प्रदेश को बदल करना चाहिए। सापेक्षक निदान सन्धिगतवात, वातरक्त आवरण वात और अन्य वातज व्याधिओ से आमवात का निश्चय करना चाहिये।

—श्री एम महादेव शास्त्री।

जीर्णज्वर चिकित्सा

लेखक—साहित्यायुर्वेदाचार्य श्री पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत बी० ए, ए एम. एस
रीडर—गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज, रायपुर (मध्यप्रदेश)

आयुर्वेद वाङ्मय पर नई पीढी के प्रौढ पण्डितो मे जितना अधिकार आचार्य सोमदेव शर्मा का है वह किसी से छिपा नही है। पीलीभीत के आयुर्वेद कालेज के विकास मे उनका भी वर्षों हाथ रहा है। फिर लखनऊ मे भी पर्याप्त काल तक आयुर्वेद सेवा करने के उपरात वे आजकल दक्षिण कोसल मे आयुर्वेद प्रशिक्षण कार्य मे सलग्न है। धन्वन्तरि के साथ भी उनके सम्वन्ध वहुत पुराने हैं। प्रस्तुत लेख मे हमे उनकी सामग्री सग्रह के प्रति जागरूकता के साथ पाडित्य की प्रगाढ़ता का अनायास ही ज्ञान मिल जाता है। जीर्णज्वर के सम्वन्ध मे स्थान स्थान से मकरन्द एकत्र कर उन्होने जिस मधुगृह का निर्माण किया है उसकी माधुरी सहज ही भुलाई नही जा सकती। जिस जामनगरीय साहित्यिक परम्परा का विकास आज देखा जा रहा है उसका प्रयोग वे गत दशक से वरावर करते रहे है। हमे विश्वास है उनकी लेखनी अविश्रान्त गति से चलकर अभी अनेको दशको तक आयुर्वेद रहस्योद्घाटन की दिशा का ठीक ठीक निरूपण करती रहेगी। —र० प्र० त्रि०
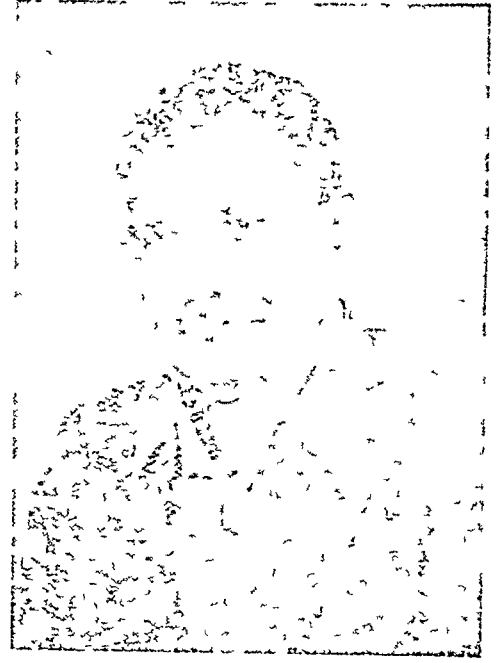
६४५ जीर्णज्वर की परिभाषा —

आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र के सर्मज्ञ चिकित्सको[*] ने ज्वर की तरुणावस्था, मध्यावस्था और जीर्ण (पुराण) अवस्था के नाम से तीन अवस्थाये मानी है और इन अवस्थाओ मे रहने वाले ज्वर को तरुण ज्वर, मध्यज्वर और जीर्णज्वर नाम से निर्देश किया है।

१—तरुण ज्वर—सात दिन तक के ज्वर को 'तरुणज्वर' कहा जाता है।

[*] (अ) आसप्तरात्र तरुणज्वरमाहुर्मनीषिण।
मध्य द्वादशरात्र तु पुराणमत उत्तरम्॥
अत्र रात्रिशव्दो दिवसस्योपलक्षकः।
(पुष्कलावत तन्त्र)

२—मध्यज्वर—बारह दिन तक के ज्वर को 'मध्य ज्वर' कहा जाता है।

३—(अ) जीर्णज्वर—बारहवें दिन से शरीर मे मन्द-मन्द रहने वाले ज्वर को 'जीर्ण ज्वर' कहा जाता है।

(आ) द्वादशाहात्पर जीर्णमाहुरन्ये मनीषिण।
(इ) यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्द्ध्व
दोषत्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्द्ध्वम्।
नृणां तनौ तिष्ठति सन्दवेगो
भिपग्भिरुक्तो ज्वर जीर्ण एष॥
(भावप्रकाश मध्यमखण्ड, ज्वरचिकित्सा)
(ई) जीर्णस्त्रयो दशेदिने। (जतूकर्णतन्त्र)
(उ) नशाम्यति ज्वरो यस्तु
पक्षादूर्ध्व शरीरिणाम्।

(आ) अतिजीर्ण ज्वर[1]—तीन सप्ताह (२१ दिन) के पश्चात् भी शरीर में सूक्ष्म रूप से रहे आने वाला ज्वर 'अतिजीर्णज्वर' कहलाता है इसमें रोगी की जठराग्नि मन्द हो जाती है और प्लीहा (तिल्ली) बढ़ जाती है।

६४६ जीर्णज्वर अधिक दिन रहने का कारण[1]

ज्वर के द्वारा शरीर की धातुओं के दुर्बल (क्षीण) होजाने के कारण जीर्णज्वर रोगी के शरीर में अधिक दिन तक रहा आता है।

जीर्णज्वर के पर्याय[2]—पक्वज्वर, पुरानाज्वर, निराम-ज्वर, चिरोत्थ ज्वर, चिरोत्थितज्वर एवं चिरंतन-ज्वर यह जीर्णज्वर के पर्याय है।

जीर्णज्वर के प्रारम्भ का निश्चय—

जीर्णज्वर के प्रारम्भ का निर्णय ज्वर की जीर्णता[3] (जीर्ण-अवस्था) के प्रारम्भ होने के काल के ऊपर आश्रित होता है, और यह जीर्णता, ज्वर की आमावस्था (सामज्वर एवं पच्यमानज्वर के लक्षणों से युक्त अवस्था) से विपरीत लक्षण (निराम ज्वर के लक्षण) उपस्थित होने पर सात दिन से बारह दिन तक की अवधि समाप्त होने पर हुआ करती है। यद्यपि साधारणतया रस रक्त आदि सात धातुओं में पहुंचे हुए दोष सात धात्वग्नियों के द्वारा सात दिन में पच जाने से आमावस्था बीत जाने पर आठवे दिन निरामावस्था (जीर्णता, जीर्णावस्था) प्रारम्भ होजाती है, परन्तु त्रिदोषज सन्निपात ज्वर में बारह दिन तक आमावस्था बनी रहती है इसलिये बारह दिन की आमावस्था का समय बीत जाने पर तेरहवे दिन से जीर्ण अवस्था प्रारम्भ होने के कारण जीर्णज्वर के प्रारम्भ की अवधि भी तेरहवे दिन से मानी जाती है। इसका समर्थन जतूकर्ण तन्त्र नाम के प्राचीन आर्षतन्त्र के 'जीर्णस्त्रयोदशे दिने' इस पद्यांश से भी होता है।

६४७ जीर्णज्वर में दोषों का सम्बन्ध—

जिस प्रकार सब ज्वर त्रिदोषज[4] होते हुए भी उनमे

मन्दवेगानुबन्धश्च स ज्ञेयो जीर्णतां गतः ॥
(योगतरंगिणी, तरंग २० । ११६)

(ऊ) मन्दवेगानुबन्धश्चेदतीव तनुतां गत ।
देहधात्वबलत्वेन स जीर्णज्वर उच्यते ॥
(रसकामधेनु चिकित्सापाद, अधिकार १ । ६६२)

*त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गत ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥
इति तु तन्त्रान्तरमतिपुराणाभिप्रायेण द्रष्टव्यम् ।
(माधवनिदान ज्वर निदान मधुकोश व्याख्या)

१—(अ) दौर्बल्याद्देहधातूना ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ।
(चरक चि० अ० ३।२६१)

(आ)—देहधात्वबलत्वेन ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ।
(अष्टांगहृदय चि० अ० १।८४)

(इ) उपक्रमैः परिक्लिष्ट क्षीणधातु बलौजसम् ।
ज्वर पुराणो रूक्षत्वादनुबध्नाति देहिनम् ॥
(काश्यप संहिता)

२ (अ)—जीर्ण पक्व पुराण इति पर्याय ।
(अष्टांगहृदय नि० १।५६ अरुणदत्त)

(आ) पक्व (निराम) ज्वरलक्षणेन जीर्णज्वरलक्षण-मपि चिकित्सोचित बोद्धव्यम् । (माधव निदान ज्वर, नि० श्लोक ६५ की मधुकोशव्याख्या)

३ (अ) जीर्णता आमविपर्यासात्सप्तरात्र च लघनात् ।
(अष्टांगहृदय निदान अ० २।५६)

(आ) न च नि सप्ततैवेह निरामज्वरलक्षणम् ।
चिरादपि हि पच्यन्ते सन्निपातज्वरे मला ॥
(खरनाद संहिता)

४—सर्वो ज्वर स्त्रिदोपजोभूयसा तुण्यपदेश
(अष्टांग हृ० नि० अरुणदत्तकृत व्याख्या)

जिस कुपित वात आदि एक या दो दोषों की अधिकता होती है उसी के अनुसार एक दोषज या द्विदोषज (द्वन्द्वज) के नाम से उन ज्वरों की प्रसिद्धि होती है। उसी प्रकार जीर्णज्वर भी त्रिदोषज होता हुआ दो दो दोषों की अधिकता रहने के कारण 'द्वन्द्वज'[1] ज्वर कहलाता है और इसी कारण वह कृच्छ्रसाध्य[2] (कष्टसाध्य) होता है।

६४८ जीर्णज्वर के भेद—

दोषानुसार भेद – दो-दो दोषो की अधिकता के अनुसार जीर्णज्वर तीन[3] प्रकार का होता है—

(१) वातपित्तात्मक (उष्णसमुत्थ, उष्णोत्थ, तीक्ष्ण, शीताभिप्राय) जीर्णज्वर।

(२) वातकफात्मक (शीतसमुत्थ, शीतोत्थ, सौम्य, उष्णाभिप्राय) जीर्णज्वर।

(३) कफपित्तात्मक (उष्णशीताभिप्राय) जीर्णज्वर।

रोगानुसार भेद – आचार्य भावमिश्र ने 'वातवलासक ज्वर' को जीर्णज्वर का विशेष[4] प्रकार लिखा है।

६४९ जीर्णज्वर का आश्रय—

जीर्णज्वर का आश्रय त्वचा[1] है इस लिये त्वचा स्वरूप शाखा मार्ग का रोग होने के कारण इसको बहिर्मार्गगत[2] (बाह्यरोग मार्ग का) रोग कहा गया है। इसी कारण घृत तैल के अभ्यंग तथा लेप सेक आदि से इसमें लाभ होता है।

६५० रसकामधेनुकार वैद्य श्री चूड़ामणि का मत

रसकामधेनुकार वैद्य श्री चूडामणि ने जीर्णज्वर को विषमज्वर का भेद बतलाया है तथा विषमज्वर के पेंतीस[3] भेदो मे जीर्णज्वर का स्पष्ट उल्लेख किया है।

६५१ जीर्णज्वर की चिकित्सा—

लंघन का निषेध[4]

जीर्णज्वर के रोगी को लंघन (उपवास) नहीं

१–इदानी जीर्णज्वराणा द्वन्द्वजाना वहि परिमार्जनं प्रलेप आह—(सुश्रुत उत्तर डल्हण व्याख्या)

२–कृच्छ्रसाध्य द्विदोपजम्। (चरक सूत्र अ १०।१५)

३–(अ) वातपित्तात्मक शीतमुष्ण वातकफात्मकः।
इच्छत्युभयमेतत्तु ज्वरो व्यामिश्रलक्षणः॥
(चरक चिकि० अ० ३।३६)

(आ) विभज्यशीतोष्णतया कुर्याज्जीर्णज्वरे भिषक्।
शीतोष्ण समुत्थज्वरविभागेनेत्यर्थ तेन उष्णोत्थे जीर्णज्वरे शीतद्रव्यकृता प्रदेहादय शीतोत्थे तु उष्ण द्रव्य कृता देया इत्यर्थ। (चक्रदत्त. शिवराम टीका)

४–इदानीं जीर्णज्वर विशेषस्य वातवलासकस्य ललण माह-
नित्य मन्दज्वरो रुक्ष शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धांग श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातवलासकी॥
(भावप्रकाश मध्यमखड)

१–(अ) अभ्यगलेपसेकादीन् ज्वरे जीर्ण त्वगाश्रिते।
(अष्टाग हृ० चि० अ १।१५६)

(आ)–तत्र जीर्णज्वरे त्वग्गते घृताभ्यग शीतोद्गमे स्वेदलेपौ। (सुश्रुत उत्तर अ ३९ डल्हण टीका)

२–तैराशुहि शम याति वहिर्मार्गगतो ज्वरः।
(चरक चिकि अ. ३।१७८)

३–अहितात्सर्व एवैते धान्वन्तरमुपाश्रिताः।
विषमा स्युः कालवेगशैत्योष्णानियता स्मृता॥
एकद्वित्रिचतुःपचषट्दिन्नैर्वेगवत्तराः।
विपर्ययः सन्ततश्च सततान्येद्युराख्यको॥
दश वातवलसाख्य प्रलेपित्रणपुष्पका।
ओजोनिरोधो रात्र्युत्थज्वर शीतभिद पुरा।
(रसकामधेनु चिकित्सापाद श्लोक ६११-६१३)

४(अ) जीर्णज्वरी नरः कुर्यान्नोपवास कदाचन।
लङ्घनात्स भवेद् क्षीणो ज्वरस्तु स्याद्वली यत॥

कराना चाहिए। क्योंकि जीर्णज्वर का क्षीणरोगी लंघन करने से और भी अधिक क्षीण होजाता है तथा ज्वर बढ जाता है। यदि अपथ्य आहार विहार सेवन करने से दोष फिर पहिली भांति कुपित होगये हो तो लंघन कराना उचित है।

वातकफात्मक जीर्णज्वर शामक
(अन्त. परिमार्जन) चिकित्सा—

(१) निदिग्धिकादि क्वाथ—(सिद्धयोग ज्वर चिकित्सा श्लोक २०५) छोटी कंटकारी (कटेहली) की जड़ ८ माषा, सोंठ ८ माषा, गिलोय ८ माषा लेकर ३२ तोला जल मे पका कर क्वाथ बनावे और ८ तोला शेष रहने पर उसमे छोटी पीपल का चूर्ण ४ रत्ती डालकर प्रात. सायं पिलाने से जीर्णज्वर, अरुचि, कास, श्वास, शूल, अग्निमान्द्य तथा पीनस (जीर्ण प्रतिश्याय) रोग नष्ट होजाता है।

(२) गुडूची क्वाथ—(सिद्धयोग, ज्वर चिकि० श्लो० २०७) गिलोय (गुडूची) के क्वाथ मे छोटी पीपल का चूर्ण ४ रत्ती और शहद मिलाकर सायकाल पिलाने से जीर्णज्वर और बढ़ा हुआ कफ नष्ट होजाता है।

३—बृहत्पञ्चमूलीक्वाथ (सिद्धयोग, ज्वर चिकि०)— वेल, खंभारी, अरणी, सोनपाठा और पाढल का क्वाथ बना कर तथा उसमे छोटी पीपल का चूर्ण ३ रत्ती डालकर सायंकाल पीने से जीर्णज्वर और कफ दूर होजाता है।

४ द्राक्षाद्यष्टादशाङ्ग क्वाथ - (भावप्रकाश)
१ मुनक्का २ गिलोय ३ कचूर ४ काकड़ासिंगी ५ नागरमोथा ६ लालचंदन ७ सोंठ ८ कुटकी ९ पाठा १० चिरायता ११ धमासा १ खस १३ पद्माख १४ धनियां १५ नेत्रवाला १६ कटेहली १७ पुष्करमूल १८ नीम। इन औषधियों को समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। प्रात.सायं पीने से जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास कास और शोष नष्ट होजाते हैं।

५. स्वल्प भार्ग्यादिक्वाथ—(भैषज्य रत्नावली)

६ मध्य भार्ग्यादि क्वाथ—(भैषज्यरत्नावली ज्वर चि०)

७. दास्यादिक्वाथ—(भै० रत्ना० ज्वर चि०)

शिरोविरेचन[1] (रेचन नस्य)—

८. (अ)—अपामार्ग के बीज, सिरस के बीज, आदि के चूर्ण का नस्य ले। (चरक सूत्र अ० २)।

९. (आ)—अणु तैल का नस्य ले। (चरक.सूत्र)

१० (इ)—वैरेचनिक धूम्रपान वर्ति का उपयोग करे। (चरक. सूत्र. अ ३-२६)।

शिरोविरेचन करने वाले इन तीनो प्रयोगो का उपयोग जीर्णज्वर मे होने वाले शिर शूल, शिर के भारीपन को दूर करने, चक्षु आदि इन्द्रियो को अपने अपने कार्य मे समर्थ बनाने और अरुचि को दूर करने के लिये करना चाहिये।

वमन और विरेचन[1]—

यदि दोष अधिक बढ़े हुए हो तो उस जीर्णज्वर के रोगी को स्नेहन और स्वेदन कराके वमन तथा विरेचन कराना चाहिये।

पुराणेऽपि ज्वरे दोषा यद्यपथ्यै पुनस्तथा।
लङ्घयेत्तत्र तत्पश्चात्पूर्व मेवाचरेत्क्रियाम्॥
(भावप्रकाश मध्यमखण्ड)

(आ) वातजे श्रमजे चैव पुराणे क्षतजे ज्वरे।
लङ्घनं न हितं विद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत्॥
(चरक चि० अ० ३।२७२)

[1]—शिरोविरेचनं कुर्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम्।
यच्च नावनिकं तैलं याश्च प्राग्धूमवर्त्तयः॥
(चरक चि० ३-२५४-२५५)

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वं चाधश्च बुद्धिमान्।
दद्यात् संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते॥
मदनं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा।
युक्तमुष्णाम्बुना पेयं वमनं ज्वरशान्तये॥
(चरक० चि० अ० ३-२२७-२२८)

वामक प्रयोग--

११ मैनफल के बीजो को समान भाग छोटी पीपल के बीजों के साथ या इन्द्रजौ अथवा मुलहठी के साथ पीसकर शहद और गर्म पानी के साथ पीने से वमन हो जाने पर कफ बाहर निकल जाता है।

१२-विरेचन प्रयोग—त्रिफला, दोनो निशोथ छोटी पीपल, नागकेशर सबको समान भाग ले चूर्ण बनाकर मिश्री तथा शहद मिलाकर चाटने से विरेचन हो जाता है।

वमन विरेचन का निषेध—

किन्तु जीर्णज्वर से क्षीण हुये पुरुष को वमन और विरेचन नहीं कराना चाहिये।

निरुहण वस्ति का उपयोग—

जीर्णज्वर से क्षीण हुए पुरुष को ज्वरनाशक औषधियो के क्वाथ से निरूहण वस्ति देकर मल (पुरीष टट्टी) बाहर निकालना चाहिये अथवा दुग्धपान कराके मल बाहर निकालना चाहिये।

१३-पटोलादि निरूहण वस्ति –(चरक चिकि० अ० ३। २४१-२४३)

धूपन और अंजन का उपयोग[1] —

जीर्णज्वर मे त्वचा मे दोष (वात आदि) स्थित होने पर धूपन और अंजन का उपयोग करने से जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है।

१४-अष्टाग धूप[2] –१ हरड़, २ वच, ३ कूठ ४ नीम के पत्ते, ५ गुग्गुलु, ६ सरसों, ७ जौ, ८ घृत।

---

[1]धूपनांजनयोगैश्च यान्ति जीर्णज्वरा: शमम्।
त्वङ्मात्र शेषा ॥
(च० चि० अ० ३। १७६)

[2]हरीतकी वचा कुष्ठ निम्बपत्र पलकषा।
सिद्धार्थका यवा सर्पिर्धूपो जीर्णज्वरापह ॥
(काश्यपसंहिता खिल स्थान, चरक चि० ३। ३०७)

१५-विबन्धनाशक आमलक्यादि चूर्ण—(योगरत्नाकर)

जीर्णज्वर मे विबन्ध (कब्जी), अरुचि अग्निमान्द्य होने पर इस चूर्ण को गर्म जल मे देना चाहिए।

अन्य प्रसिद्ध शास्त्रीय प्रयोग—

१६-कुरण्टकादिनामा तैल--(योगरत्नाकर)

इसको प्रात: सायं गर्म जल से २१ दिन तक प्रयोग करने से जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है।

१७-पिप्पली पाक (योगरत्नाकर)
१८-जीर्णज्वरांकुश रस (योगरत्नाकर)
१९-महाजीर्णज्वरांकुश रस (रसकामधेनु)
२०-ज्वरभैरव रस (रसकामधेनु)
२१-विकरालवक्त्रभैरव रस ,,
२२-जीर्णज्वरारि रस ,,
२३-जयमङ्गल रस ,,
२४-चिन्तामणि वटिका ,,

वहि परिमार्जन चिकित्सा —

अभ्यंग[1]—२५-अगुर्वादि तैल (चरक चि ३।२६७)

२६-नारायण तैल (सिद्धयोग, वातव्याधि)

२७-शुक्त (सिरका) सहित क्षार मे सिद्ध तैल (सुश्रुत, उत्तर अ० ३९)

स्वेद[2]-कुटी स्वेद—(चरक सूत्र अ० १३)

---

[1] (अ) अभ्यगांश्च प्रदेहांश्च सस्नेहान् सानुवासनान्।
विभज्य शीतोष्णतया दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥
(चरक चि० ३। १७५)

(आ) ' अगुर्वाद्य तैल चरक कीर्तितम्।
तथा नारायण तैल जीर्णज्वरहर परम् ॥
(सिद्धयोग ज्वर श्लो० २८४)

(इ) क्षारतैलेन चाभ्यग सयुक्तेन विधीयते।
(सुश्रुत उत्तर. अ. ३९)

[2] (अ) त्रयोदशविध. स्वेद: स्वेदाध्याये निदर्शित ।
मात्राकालविदा युक्त स च शीतज्वरापह ॥

आच्छादन–कम्बल, रजाई आदि गर्म वस्त्रों एवं रेशमीवस्त्रों से शरीर को ढंक कर सोना।

शयन–गर्म शय्या (बिस्तर) पर सोना।

लेप—२८–अगुर्वादि लेप　　२९–भद्रदार्वादि लेप
३०–सुरसादि लेप　　३१–एलादि लेप

परिषेक—३२–अगुर्वादि परिषेक

अवगाहन—३३–अगुर्वादि अवगाहन

भोजन　वातश्लेष्महर स्वेदल गर्म भोजन तथा पेय।

६५२ वातपित्तात्मक जीर्णज्वर चिकित्सा–

ज्वर में १२ दिन तक लङ्घन, वमन, लघु भोजन और ज्वर नाशक कषायों के प्रयोग करने से रोगी के कफ का अंश क्षीण हो जाने पर तथा पित्त के निराम हो जाने से स्नेह रहित हो जाने पर रूक्ष पाचक पित्त की रूक्ष ऊष्मा (शारीरिक ताप) से शरीर की धातुओं के रूक्ष हो जाने पर रूक्ष शरीर में बलवान वायु ज्वर का मन्द मन्द वेग बनाये रहता है। जीर्णज्वर की इस अवस्था में वातपित्त-ज्वर नाशक ओषधियों के क्वाथ से सिद्ध हुये जीर्ण-ज्वर नाशक घृत रूप ओषधियों का प्रयोग करना लाभदायक होता है। यह घृत अपनी शीतलता से रूक्ष पित्त की ऊष्मा की शान्ति और अपनी स्निग्धता से बलवान वायु की शान्ति कर देते हैं। इसलिये जीर्णज्वर में निम्नलिखित घृतों का उप-योग किया जाता है—

सा कुटी,　　　।
तच्च शयन　　।।
तच्चावच्छादन ज्वरम्।
शीत प्रशमयन्त्याशु धूपाश्चागुरुजा घना ।।
(चरक चि० अ० ३। २६८-२६९)

(आ) तत्र जीर्णज्वरे शीतोद्गमे स्वेदलेपाविति।
(सुश्रुत उत्तर अ ३९–डल्हण व्याख्या)

जीर्णज्वरनाशक घृत—

३४—पिप्पल्यादि घृत (चरक चि. अ ३।२२०-२२१)

कल्क द्रव्य—१–छोटी पीपल, २ श्वेतचन्दन, ३–नागरमोथा, ४–खस, ५–कुटकी, ६ इन्द्रजौ, ७–भूम्यामलकी, ८–अनन्तमूल, ९–अतीस १०–मुनक्का, ११–शालिपर्णी, १२–आमला, १३–बेल-गिरी, १४–त्रायमाण, १५–बडी कंटकारी।

प्रत्येक औषधि एक-एक तोला लेकर जल से पत्थर की शिला पर पीस कर कल्क बना ले।

मूर्छित घृत १२ छटांक, जल ३ सेर।

निर्माण विधि—

एक कलईदार लोहे की कढ़ाई में उपर्युक्त औषधियों का कल्क, घृत और जल डाल कर कढ़ाई

---

१ (अ) जीर्णज्वरेषु तु सर्वेष्वेव सर्पिष पान प्रशस्यते यथास्वौषधिसिद्धस्य, सर्पिर्हि स्नेहाद्वात शमयति, संस्कारात् कफ, शैत्यात्पित्तमूष्माण च, तस्माज्जीर्णज्व-रेषु तु सर्वेष्वेव सर्पिर्हितमुदकमिवाग्निप्लुष्टेषु द्रव्येष्विति।
(चरक निदान अ १।३७)

(आ) यथा प्रज्वलित वेश्म परिषिञ्चन्ति वारिणा।
नरा शान्तिमभिप्रेत्य तथा जीर्णज्वरे घृतम् ।।
(चरक निदान अ- १।३८)

(इ) ज्वरा कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनै　।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषा भिषग्जितम् ।।
रूक्ष तेजो ज्वरकर तेजसा रूक्षितस्य च।
य स्यादनुबलो धातु स्नेहसाध्यः स चानिल ।।
(चरक चि. अ २१६-२१७)

(ई) अत ऊर्ध्व कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे।
परिपक्वेषु दोषेषु सर्पिष्पानं यथाऽमृतम् ।।
(चरक चिकि अ ३।१६४)

(उ) तस्मात्घृत जीर्णे वातपित्तोत्तरे (ज्वरे) निर्वि-कल्प दद्यात्। (अष्टाङ्गहृदय चिकि. अ १।८६ की अरुणदत्तकृत व्याख्या)

को चूल्हे पर रखकर मन्द अग्नि से पकालें और जल का अंश जलने पर घृत शेष रह जाने पर उतार कर कपड़े से छान लें।

मात्रा और अनुपान—

इस घृत को ६ माशा से १ तोला तक की मात्रा से गर्म दूध मे मिलाकर प्रातः सायं जीर्ण ज्वर के रोगी को पिलाना चाहिये।

गुण—

यह पिप्पल्यादि घृत, जीर्णज्वर, क्षय, कास (खांसी), हलीमक, शिर शूल, पार्श्वशूल, हथेली और पैर के तलुओ की जलन तथा विषमाग्नि को नष्ट करता है।

ज्ञातव्य—जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था मे यह पिप्पल्यादि घृत अत्यन्त लाभदायक है। वैद्य समाज हजारों वर्षों से इसका उपयोग करता आ रहा है। काश्यपसंहिता, चरक संहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदय, बंगसेन, सिद्धयोग, चक्रदत्त तथा भावप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थो मे इसका उल्लेख मिलता है। सुश्रुतसंहिता मे उल्लिखित इस घृत में चित्रक और सोंठ यह दो औषधियां अधिक डाली गई है।

३५–गुडूचीघृत, ३६–त्रिफलाघृत, ३७–वृषघृत, ३८–मृद्वीका घृत, ३९–बलाघृत।

(सम्पूर्ण अष्टांगहृदय[1] चिकि. अ. १।६४)

४०–वासाद्यघृत (चरक चिकि अ ३।२२२-२२३)

४१–कल्याणघृत[2] (चरक चिकि. अ. ६।३३-४१)

४२–षट्फलघृत (चरक चिकि. अ. १३।७८)

४३–कौक्कुटघृत (बंगसेन, ज्वराधिकार श्लो.७३१)

[1]गुडूच्याः क्वाथ कल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च।
मृद्वीका या बलायाश्च सिद्धा स्नेहा ज्वरच्छिद।
(अ १।६४)

[2]कल्याणक षट्पल वा घृत जीर्णज्वरे पिबेत्।
(वगसेन ज्वर श्लो ७३१)

४४. अकल्क पंचगव्य घृत (सुश्रुत उतर. अ ३९)

प्रसिद्ध रस—

४५. षडानन रस (भैष० रत्नावली)

४६. त्रैलोक्यचिन्तामणि रस (भैष० रत्ना)

४७ मुक्तापंचामृत रस (योगरत्नाकर)

४८. स्वर्णमालती वसन्त (योगरत्नाकर) पिप्पली चूर्ण और शहद से दे।

४९. अपूर्व मालिनी बसन्त (योगरत्नाकर) पिप्पलीचूर्ण और शहद से दे।

५०. लघुमालती गसन्त (योगरत्नाकर) पिप्पली चूर्ण और शहद से दे।

६५३ जीर्णज्वर में दुग्ध[1] का प्रयोग—

जिस जीर्णज्वर के रोगी का कफ क्षीण हो गया है तथा दाह और तृष्णा से पीडित है अथवा थोड़ा थोडा मल (टट्टी) आता है उस वातपित्त प्रधान निराम जीर्णज्वर के क्षीण रोगी को ज्वर नाशक औषधियो से पकाया हुआ दूध, वात प्रधान जीर्णज्वर मे गर्म दुग्ध, पित्त प्रधान जीर्णज्वर में शीतल किया हुआ दुग्ध अथवा धारोष्ण दुग्ध पिलाना चाहिये।

५१ स्वल्प पचमूली क्षीर—(चरक चिकि०)

यह दुग्ध पीने से जीर्णज्वर, कास, श्वास, शिर.शूल और पार्श्वशूल को नष्ट करता है।

[1] (अ) जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरस्यादमृतोपमम्।
(सिद्धयोग ज्वर चि० श्लो० २१४)

(आ) जीर्णज्वराणा सर्वेषा पयः प्रशमन परम्
(चरक चि० अ० ३-२३९)

(इ) दाहतृष्णापरीतस्य वातपित्तोत्तर ज्वरम्।
बद्धप्रच्युतदोष वा निराम पयसा जयेत्॥
(चरक चिकि० अ० ३-१६७)

(उ) सस्कृत शीतमुष्ण वा तस्माद्धारोष्णमेव वा।
विभज्य काले यु जीत ज्वरिण हन्त्यतोऽन्यथा॥
(अष्टागहृदय चिकि० अ० १-१०८)

५२. एरण्डमूलक्षीर (चरक० चि० अ० ३।२३५)

५३. बाल बिल्वक्षीर (चरक.चि अ. ३।२३५)

इन दोनो प्रयोगो से सिद्ध दुग्ध के पीने से जीर्ण-ज्वर मे उत्पन्न विबन्ध (कब्जी), रक्तातिसार, पिपासा, शूल और गूदा मे कतरने की भांति पीड़ा दूर हो जाती है।

५४. त्रिकण्टकादिक्षीर (चरक चिकि०)

गुड डालकर इस दुग्ध को पीने से जीर्णज्वर मे उत्पन्न मूत्र और मल का विबन्ध तथा शोथ नष्ट होजाता है।

५५. वृश्चीरादि क्षीर (सुश्रुत. उतर. अ. ३९)

यह दुग्ध जीर्णज्वर और शोथनाशक है।

पाक—

५६ सेवन्ती पाक—(योगरत्नाकर)।

अभ्यंग—५७—चन्दनादि तैल (चरक. चिकि)

५८—चन्दनबलालाक्षादि तैल (योगरत्नाकर)

५९—बृहत्पिप्पल्यादि तैल (भैषज्यरत्नावली)

कफ-पित्तज जीर्णज्वर चिकित्सा

६०—पटोलादि क्वाथ (भैषज्यरत्नावली)

६१—अमृताष्टक क्वाथ (भावप्रकाश, ज्वर चिकि)

६२—विरेचन योग[1]

मिश्री, कुटकी चूर्ण दोनो ६-६ माषा

विधि—उपरोक्त दोनों औषधियो को पीस कर प्रातः सायं गर्म जल के साथ सेवन करे। इससे विरेचन होजाने पर कफ पित्तज जीर्णज्वर नष्ट होजाता है।

अभ्यग—चन्दनादि तैल (चरक चिकि. अ. ३)

अगुर्वाद्य तैल (चरक चिकि. अ. ३।२६७)

नारायण तैल (सिद्धयोग)

मध्यमलाक्षादि तैल (वृहद्योगतरंगिणी)

स्त्रियो के जीर्णज्वर की चिकित्सा[2]

जीर्णज्वर से पीडित स्त्री को सदैव वातनाशक औषधियो से सिद्ध किया हुआ दूध, यवागू एवं जंगली जन्तुओं का मांस रस देना हितकर होता है और शरीर पर मध्यम लाक्षादि तैल की मालिश करनी चाहिए।

६५४ पथ्यापथ्य[3]—

पथ्य भोजन की उपयोगिता

यदि जीर्णज्वर के रोगी को हितकारक भोजन

---

[1] सितां कटुकया युक्ता पीत्वा चोष्णेन वारिणा।
जीर्णज्वर जयेच्छीघ्र कफपित्तकृत ज्वरम्॥
(आयुर्वेदसार)

[2] क्षीर क्षीरयवागूर्वा रसो वा जागलो रसः।
जीर्णज्वरे सदा नार्या वातघ्नैरौषधै श्रृतम्॥
(काश्यप सहिता)

[3] (अ) ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत्।
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा॥
क्षीणस्य सुचिरोत्थितम्।
ज्वर सभोजनं पथ्यैर्लघुभि. समुपाचरेत्।
(सुश्रुत,. उत्तर अ ३९)

से किसी कारण से अरुचि हो तो उस अरुचि को दूर करने के लिए उसे हितकारक भोजन अन्य प्रकार की कल्पना से स्वादिष्ट बना कर अवश्य ही खिलाना चाहिए। क्योंकि जीर्ण-ज्वर से दुर्बल हुआ रोगी यदि भोजन नहीं करता है तो वह दुर्बल रोगी और भी अधिक क्षीण होजाता है अथवा मर जाता है तथा उसका जीर्ण-ज्वर भी कृच्छ्रसाध्य (कष्टसाध्य) या असाध्य होजाता है। इसलिये जीर्णज्वर के रोगी के बल की रक्षा (भोजन द्वारा) करनी चाहिए क्योंकि बल रहने पर ही उस रोगी का जीवन रहता है। तथापि जीर्णज्वर के क्षीण रोगी को गुरु और अभिष्यन्दी भोजन असमय में न करना चाहिए किन्तु बलवर्धक पुष्टिकारक, लघु पथ्य भोजन कराना चाहिए।

पथ्य—

गोदुग्ध, बकरी का दुग्ध, गोघृत, गेहूँ, पुराने चावल, चौलाई, बथुआ, छोटी मूली, पित्तपापड़ा, परवल के फल और पत्ते तथा गिलोय के पत्तो का शाक एवं मासाहारी पुरुषो के लिये काले हरिण और और लवा का मांसरस दे।

अपथ्य—

वातप्रधान जीर्णज्वर मे मूँग आदि का यूष तथा करेला आदि का सेवन न करे क्योंकि यह उदरशूल, उदावर्त और विबन्ध (कब्जी) करने वाले और ज्वर बढाने वाले हैं।

अतिजीर्णज्वर चिकित्सा—

२१ दिन व्यतीत होजाने पर अति जीर्णज्वर मे प्लीहावृद्धि और अग्निमान्द्य होजाती है एवं कभी कभी यकृद्वृद्धि भी होजाती है। ऐसी अवस्था में निम्नलिखित प्रयोगो के सेवन से बहुत लाभ होता है—

(आ) दौर्बल्याद्देहधातूना ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते।
बल्यै सवृं हणैस्तस्मादाहारैः समुपाचरेत्॥
(चरक चि० अ० ३।२९१)

६३ गुडपिप्पली—इसके तीन प्रयोग मिलते है।

[1]छोटो पीपल का चूर्ण	१ भाग
गुड़	२ भाग

इस प्रयोग के प्रात सायं गर्म पानी से खाने से जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, कास (खासी) अजीर्ण अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पाण्डु और कृमि रोग नष्ट होजाते हैं।

२ गुणपिप्पली (भैपज्यरत्नावली)—

पुराना गुड ४ तोला, छोटीपीपल ४ तोला, भुनी हींग २ माशा, सोठ २ माशा, काली मिर्च २ माशा, सैन्धा नमक २ माशा, चित्रक (चीता) की जड २ माशा, वायविडंग २ माशा, यवक्षार २ मा. सज्जीक्षार २ माशा, अपामार्गक्षार २ माशा, तालपुष्प २ माशा, तालमखाना २ माशा, इमलीक्षार २ माशाशुद्ध समुद्रफेन २ माशा, थूहर का दूध २ मा,

इन सब वस्तुओं को घोट कर एक-एक तोला के मोदक बना ले।

मात्रा और अनुपान—एक-एक मोदक प्रात सायं गर्म जल से खावे।

गुण—इसके सेवन करने से प्लीहा की वृद्धि और जीर्ण ज्वर नष्ट होजाता है।

३ गुडपिप्पली[2]—

वायविडंग, सौठ, कालीमिरच, छोटी पीपल, कूठ, शुद्ध हींग, सैन्धव नमक, साभर नमक, सौव-

[1]जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली।
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत्॥
द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिपजा मत.॥
(चक्रदत्त ज्वर चिकि० श्लोक २०४)

[2]—भक्षयेदुष्णतोयेन, प्लीहान हन्ति दुस्तरम्।
यकृत पचगुल्म च, ह्युदर सर्वरूपकम्॥
जीर्णज्वरं तथा शोथ कास पचविध तथा।
अश्विभ्या निर्मिता श्रेष्ठा वालाना गुडपिप्पली॥
(भैष० रत्ना०)

चल लवण, विडनमक, सामुद्रिक नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागा, समुद्रफेन, चित्रक की जड की छाल, गजपीपल, कालाजीरा, ताल के फूल का क्षार, कोहडा की लता का क्षार, अपामार्ग क्षार, इमली का क्षार, प्रत्येक १-१ तोला ले चूर्ण कर लें और सबको बराबर (२२ तोला) छोटी पीपल का चूर्ण तथा सबका दूना पुराना गुड मिला घोट कर आधा-आधा तोला के मोदक बना ले।

मात्रा और अनुपान—एक-एक मोदक गर्म जल से प्रातः सायं खावे।

गुण-इसके सेवन से, प्लीहावृद्धि यकृद्वृद्धि, पांचों प्रकार के गुल्म, सब प्रकार के उदर रोग, 'जीर्ण ज्वर' शोथ और पांच प्रकार की खासी नष्ट हो जाती है। अश्विनीकुमारों ने बालकों के लिए इस 'गुड पिप्पली' को बनाया था।

६४—वर्धमान (पिप्पली वर्द्धमान) (सुश्रुत. उत्तर, अ. ३६)

६५—महाषट्पलघृत (भैष० रत्नावली)

गुडूची

६६—दशमूलषट्पलक घृत (भैष० रत्नावली

६७—गुडूचीस्वरस[1]—

गुडूची (गिलोय) के स्वरस में छोटी पीपल का चूर्ण ४ रत्ती और शहद ६ माशा मिलाकर पिलाने से जीर्ण ज्वर कफ, खांसी, प्लीहावृद्धि और अरुचि नष्ट होजाती है।

६८—गुडूचीहिम[2]—

गिलोय के हिम शीतकषाय) में ¼ भाग शहद मिला कर पीने से जीर्णज्वर नष्ट होजाता है।

६९—ज्वरनागमयूर चूर्ण (भैषज्यरत्नावली ज्वर)
७०—चिन्तामणि रस(द्वितीय) (भैषज्यरत्नावली)
७१—सर्वज्वरहर लौह (भै० रत्ना०)
७२—सर्वज्वरारि रस (योगतरंगिणी)
७३—लोहासव (भै० रत्नावली)
स्वर्णमालनी वसन्त (योगरत्नाकर)
लघुमालनी वसन्त (,,)
अपूर्वमालनीवसन्त (,,)
अभ्यंग—७४—ज्वरभैरव तैल (भैष०रत्ना०)
७५—षट्कट्वर तैल (सिद्धयोग)
७६—अंगारक तैल (सिद्धयोग)

६५५ वातवलासक ज्वर की चिकित्सा—

वातबलासक ज्वर में वातकफात्मक जीर्णज्वर में बतलाई हुई चिकित्सा करनी चाहिये।

उपर्युक्त प्रकार से वर्णित जीर्णज्वर की चिकित्सा करने से जीर्णज्वर एवं उसके उपद्रव नष्ट हो जाने पर रोगी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है।

—श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत।

१—पिप्पलीमधुसम्मिश्र गुडूचीस्वरस पिबेत्।
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम्॥
(भैष० रत्ना०)

२—अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहर स्मृत॥
(शार्ङ्गधरसहिता मध्यम खड अ० ४।६)

सन्ततज्वर समीक्षा

लेखक--वैद्यराज श्री पं० विद्याभूषण वैद्य, एटा ।

उत्तरप्रदेश का एक मात्र मैदानी जिला एटा रेलपथ से पर्याप्त दूर रहते हुए भी विविध शारीरिक एवं बौद्धिक द्रुतगामियो मे अन्य जनपदो की अपेक्षा सदैव आगे रहा है। वहां के वैद्यो की ख्याति भी सुदूरगामिनी रही है। आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता आदरणीय श्री विद्याभूषण जी विद्या एव विनय दोनो के ही प्रभापूर्ण भूषण है। आपकी दिग्दिगन्त व्यापिनी कीर्ति इसकी साक्षिणी है। आपके लेखो मे अनुभव और पाण्डित्य, सत्यानुसन्धान और मौलिकता, सूक्ष्म और वृहद् वाक्य वाक्य पर झांकी जा सकती है। आपका लेख सन्तत की समस्या के सुलझाने मे ठोस कदम का काम करेगा और वैद्यो को इस व्याधि की चिकित्सा का अच्छा पथप्रदर्शन करेगा। र० प्र० त्रि०

६५६ क्षेत्र —

प्रचलित भापा मे जिसे मियादी बुखार कहते है उस ही को शास्त्र मे संतत ज्वर के नाम से वर्णन किया गया है। मन्थर ज्वर जिसको मोतीझला भी कहते है वह भी इसी के अन्तर्गत आता है ऐसा मै अपने अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर मानता हू। ज्वर का वर्णन अथर्ववेद मे तक्मा नाम से किया गया है और संतत ज्वर को सदन्द्रि नाम दिया गया है। इसकी गणना शास्त्रकारो ने विषम ज्वर मे की है। विषम ज्वर की सामान्य परिभापा करते हुए वह लिखते है "मुक्तानुबन्धित्वम् विषमत्वम्" अर्थात् छोड़कर आने वाले ज्वर को विषम ज्वर कहते है—एक अन्य स्थान पर थोडा अन्तर से कहते है "य स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च। वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः" अर्थात् जिसका समय और वेग दोनो अनिश्चित हों उसे विषम कहते है। संतत ज्वर का लक्षण करते हुये लिखा है—

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाह मथापि वा।
सतत्यायोऽविसर्गी स्यात्सतत स निगद्यते॥

अर्थात् सात दिन, दश दिन अथवा १२ दिन निरन्तर रहने वाले ज्वर को संतत कहते है। यहां पर शंका होती है कि इस प्रकार निरन्तर रहने वाला ज्वर विषम ज्वर की परिभापा मे नहीं आना चाहिये तो शास्त्रकार यह युक्ति देते है कि—

विसर्गं द्वादशो कृत्वा दिवसेऽव्यक्तलक्षण ।
दुर्लभोऽपशम काल दीर्घमप्यनुवर्तते॥

अर्थात् बारह दिन के बाद छोडकर फिर थोडा थोड़ा बहुत काल तक अप्रकट रूप से बना रहता है और बडी मुश्किल से ठीक होता है। बात इतनी ही नहीं है कि यह बारह दिन के पश्चात् मुश्किल से ठीक होता है वास्तव में कभी कभी यह प्रारम्भ से ही बडा भयंकर होजाता है। सन्निपात ज्वर तो भयंकर है ही यह भी सन्निपात से कम भयंकर नहीं, कारण कि सन्निपात मे चिकित्सक और उपचारक प्रारम्भ से ही सतर्क रहते है किन्तु इसके प्रति लोग बडी उपेक्षा वृत्ति रखते हैं, कोई कोई रोगी तो चलते फिरते खाते पीते रहते है किन्तु जब यह अपने उग्र रूप को प्रकट करता है तो भले भलो के होश उड़ जाते हैं। इसमे वह सारे लक्षण होजाते है तो सन्निपात और मोतीझला की भयंकर अवस्था मे पाये जाते है इसी लिये चरककार ने स्पष्ट शब्दो मे सचेत किया है कि—

द्वादशाह दशाह वा सप्ताह वा सुदु सह.।

स शीघ्रं शीघ्रंकारित्वात्प्रशम याति हन्तिवा ।।

अर्थात् यह सन्तत ज्वर बारह दिन, दश दिन अथवा सात दिन चढ़ा रह कर या तो शान्त हो जाता है अथवा मार डालता है। इसकी तीन अवस्थाये होती है—सामान्य, मध्यम और उग्र। उग्र अवस्था मे बड़े भयंकर रूप मे सन्निपात के सारे लक्षण होते है। मुझे तीनो अवस्थाओ के रोगियो की चिकित्सा करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

६५७ सन्तत ज्वर की अवधि--

सन्तत ज्वर प्रायः बारह दिन ही क्यो रहता है कम या अधिक क्यो नहीं ? इस प्रश्न को मेरे मन ने उठाया और उसका समाधान मैंने चरक की इस उक्ति से कर लिया है कि इस रोग मे रसादि सातधातुये वातादि तीन दोष तथा मल मूत्र यह बारह द्रव्य आंशिक रूप से अथवा सम्पूर्ण रूप से विकृत होते है अत इसकी अवधि बारह दिन होती है। महर्षि हारीत ने अपनी संहिता मे २२ दिन तक मानी है यथा-

द्विगुणा सप्तमी यावन्नवम्येकादशी तथा,
एषा त्रिदोष मर्यादा मोक्षाय च वधाय च ।।

अर्थात् वायु की प्रबलता मे १४ दिन, पित्त की प्रबलता मे १८ दिन तथा कफ की प्रबलता मे २२ दिन तक संतत ज्वर की मर्यादा है।

६५८ दोष विवेचन---

संतत ज्वर के विषय मे भिन्न भिन्न मत है-कोई आचार्य इसे वातज, कतिपय पित्तज, अनेक कफज तथा कुछेक सन्निपातज मानते है वास्तव मे इस ज्वर में तीनो ही दोषों के लक्षण मिलते पाये गये है अतः यही मत समीचीन भी है कि यह ज्वर त्रिदोषज है। चरककार ने समन्वय करते हुए लिखा है—

प्रायश सन्निपातेन दृष्ट पचविधो ज्वरः।
सन्निपाते तु यो भूयान् सदोष परिकीर्तित ।।

अर्थात् प्रायः यह पांचों प्रकार के ही विषम-ज्वर वात, पित्त, कफ इन तीनो दोषो के सन्निपात से ही होते है-इन तीनो मे जो दोष प्रधान होता है उसे ही कहा जाता है।

६५६ मन्थर ज्वर बनाम सन्ततज्वर—

जहां तक दानों का सम्बन्ध है वह प्रायः कुछ अधिक दिनो तक रहने पर सभी ज्वरो में निकलते देखे गये है-कुछेक तो ऐसे रोगी पाये गये है जिनके शरीर पर दाने देखे गये है किन्तु कोई भी मन्थर ज्वर वर्णित लक्षण नहीं थे-ऐसा अनेकों बार देखा गया है। यह दाने श्वेतवर्ण (गौर) शरीर पर लाल तथा कृष्णवर्ण शरीर पर श्वेत होते है। दूसरी बात यह है कि सन्तत ज्वर को 'सन्ततं रसरक्तस्य' कहा गया है अर्थात् सन्तत ज्वर रस तथा रक्तगत होता है और रक्तगत ज्वर के लक्षण शास्त्र मे इस प्रकार है—

"रक्तनिष्ठीवन दाहो मोहश्छर्दन विभ्रमौ,
प्रलापः पिडिका तृष्णा रक्तप्रादोज्वरे नृणाम् ।।"

अर्थात् मनुष्य को रक्तगत ज्वर होने पर मुख से रक्त आना, दाह, चक्कर आना, वमन होना, प्रलाप, शरीर पर पिडिका (दाने) निकलना तथा तृष्णा अधिक होती है।

दूसरा मन्थर ज्वर का उत्कट लक्षण अतीसार कहा गया है यह वास्तव मे मन्थर ज्वर की मध्यम अथवा उग्र अवस्था मे ही देखा गया है साधारण अवस्था मे प्रायः विबन्ध ही रहता है यह लक्षण भी ज्वरो-पद्रव है यथा--

"कासो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिस्तृष्णाऽतीसार विड्ग्रहा
हिक्काश्वासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ।।"

अर्थात् खांसी, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, प्यास, अतीसार, विबन्ध, हिचकी, श्वास तथा अङ्गो का टूटना यह ज्वर के दश उपद्रव है। कहने का तात्पर्य यह है कि सन्तत ज्वर की तीन अवस्थाये ही मन्थर ज्वर की भी क्रमशः सामान्य, मध्यम और उग्र

अवस्थायें हैं। मुझे अनेकशः विचार करने पर भी इसमें कोई अन्तर नहीं मिला फिर भी मैं दुराग्रह नहीं करता विद्वान वैद्यों के विचारार्थ लिखा है आशा है विद्यावृद्ध वैद्य इस पर अधिक प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे।

६६० सन्तत और सन्निपात ज्वर —

आहार अच्छी प्रकार से पचकर असार भाग का तरल अंश मूत्र रूप में और असार भाग का कठोर अंश मल रूप में परिणित होकर शरीर के बाहर निकल जाता है। सार भाग श्वेत, स्वच्छ और द्रव रूप में परिणित हो जाता है। इसी तरल भाग का नाम रसधातु है। रसधातु रक्त रूप में परिणित होकर शरीर का पोषण करती है।

जिस शारीरिक नियम के अनुसार रसधातु रक्त में परिणित होती है उस नियम में कोई गडबड होने पर सम्पूर्ण रस रक्त में परिणित नहीं होता कुछ रस अवशेष रह जाता है। इसी बचे हुए रस को आम कहते हैं।

यदि वात, पित्त, कफ एक साथ प्रकुपित होकर शरीर में संचित आम रस में मिलकर आमाशय (नाभिरतनान्तरं अन्तोरामाशय इति स्मृत' अर्थात् नाभि और स्तनों के मध्य में प्राणियों का आमाशय होता है यहां आमाशय से अभिप्राय, वृक्क यकृत् प्लीहा को छोडकर शेष सारे उदर से है) में प्राप्त होकर ज्वर उत्पन्न करे तो वह सन्निपात ज्वर होगा।

एक साथ प्रकुपित हुये वातादि दोषधातु भूत रस को दूपित करके फिर उसी दूपित रस के साथ मिलकर आमाशय में प्राप्त होते हैं तब जो ज्वर उत्पन्न होता है उसे सन्तत ज्वर कहते हैं।

ज्वर को आरम्भ करने वाले दोष ठीक प्रकार से शान्त न हो और किसी तीव्रौषधि के कारण ज्वर हट जावे तो पश्चात् रोगी के थोडा भी अहित आहार विहार करने पर उसके वही दोष पुन प्रकुपित होकर रसधातु को दूपित करके सन्तत ज्वर को उत्पन्न करते हैं यथा'—

"दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः
धातुमन्यतम प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥"

६६१ भेद—

सन्ततज्वर प्रकार भेद से भी दो प्रकार का होता है -

(१) स्वतन्त्र (२) पुनरावर्तक

प्रथम ही जो सन्ततज्वर उत्पन्न होता है उसे स्वतन्त्र सन्तत और अन्य ज्वर के परिणाम स्वरूप होता है उसे पुनरावर्तक सन्तत कहते हैं।

६६२ लक्षण—

शरीर का सन्ताप ज्वरो का एक सामान्यतया अवश्यम्भावी चिह्न है। सन्ततज्वर में कभी मृदु, कभी मध्यम तथा कभी तीव्र सन्तत होता है। ज्वरारम्भक तीनो दोषों में यदि कफ प्रबल होगा तो ताप अधिक नहीं होगा और वायु और श्लेष्म का प्रकोप होने पर मध्यम श्रेणी का सन्ताप होगा किन्तु पित्त अथवा वातपित्त का प्रबल प्रकोप होने पर ताप उच्च होता है। तीनो दोषो की अधिकता होने पर अन्तर्वेगी ज्वर होता है जिसमें बाहरी ताप कम होता है किन्तु तापमापक से ज्वर काफी ऊंचा १०४° या १०५° होता है। इसमें तीव्र प्रलाप तथा प्यास की अधिकता होती है।

दोषों के प्रकोप भेद से मृदु, मध्यम और तीव्र सन्ताप, पेट भारी, भूख न लगना, भोजन की अनिच्छा अथवा अरुचि, अफरा, कोष्ठबद्धता, अतीसार, जिह्वा के ऊपर श्वेत मल इकट्ठा होना, अस्थिरता, यकृत तथा प्लीहा का बढ़ जाना, कभी कभी प्लीहा अथवा यकृत्प्रदेश में पीड़ा होना, छाती अथवा पसलियों में पीडा होना, खांसी, श्वास, तन्द्रा, नेत्रों में अत्यन्त आलस्य और प्रलाप यह सन्तत ज्वर के लक्षण है। उपरोक्त सब लक्षण एक साथ

उपस्थित हों तो पीडा अत्यन्त असह्य होती है किन्तु प्राय ऐसा होता नहीं है। बहुधा सामान्य और मध्यम सन्ततज्वर होता है।

सन्ततज्वर शरीर मे अनेक दिन एक ही अवस्था में रहता है। कभी कभी सात, दश या बारह दिन पश्चात् ज्वर छोड कर फिर आक्रमण करता है इस प्रकार दीर्घकाल तक रहता है इसी लिये इसे दीर्घानुबन्धी ज्वर कहते है। सिद्धहस्त चिकित्सक के चिकित्सा करने पर सन्तत ज्वर आराम हो जाता है। मेरा अपना नियम है कि यदि मेरे पास ज्वर का रोगी आवे और वह यह कहे कि मेरा ज्वर आज चार दिन से नहीं उतरा. घट बढ जाता है तो मैं उसे सन्तत ज्वर (मियादी बुखार) कह देता हूं इसमें मुझे अब तक धोखा नहीं हुआ।

६६३ चिकित्सा—

इसकी चिकित्सा मे बहुत बडी सावधानी की आवश्यकता है। प्रारम्भ से ही सतर्क रहने से विशेष आपद् की आशङ्का नहीं रहती। इस विषय मे चरककार लिखते —

"क्रिया क्रम विधौयुक्त. प्राय प्रागपतर्पणं।"

अर्थात् इसकी चिकित्सा प्रायः करके अपतर्पण (लङ्घनादि) द्वारा ही करनी चाहिये। प्राय शब्द से ऐसा आभास होता है कि छोटे छोटे बच्चे अथवा गर्भिणी जिनको बारह दिन तक भूखा रखना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है उनको लघु भोजन की व्यवस्था की जा सकती है तथापि गौदुग्ध क्षीरपाक विधान से देना ही अधिक ठीक रहेगा (वर्तमान परिस्थितियों मे मै तो ऐसा करता हू कि एक छटांक गौदुग्ध मे, २ छटांक पानी २ छोटी पीपल तथा दो तुलसी पत्र डालकर औटवाता हूँ २ छटांक रहने पर उसमे से एक छटांक एक बार मे पिला देता हू) युवक अथवा लंघन-सह रोगी होने पर लंघन ही श्रेयस्कर है।

सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था मे जिस प्रकार का चिकित्सा विधान शास्त्र मे किया गया है सन्तन-ज्वर की प्रथमावस्था मे भी उसी प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये।

यकृत् अथवा प्लीहा प्रदेश मे पीड़ा होने पर अलसी का लेप बना कर उस स्थान पर लेप करने से पीडा शान्त होती है और ज्वर भी कम हो जाता है। लेप प्रस्तुत करने की विधि आवश्यक परिमाण मे अलसी लेकर उसको कढाई में बालू डालकर किंचित् भून लेना चाहिये, उस भुनी हुई अलसी को थोड़ा जल देकर सिल पर पीस लेना चाहिये। उत्तम रूप से पिस जाने पर थोडा और पानी डालकर अग्नि पर रख देना चाहिये। लेप योग्य होने पर थोडा गरम गरम लेप कर देना चाहिये। एक लेप २ घण्टे से अधिक नहीं रखना चाहिये। फिर नवीन लेप करना चाहिये। एक दिन मे ५-६ लेप करने से ही प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

इसके साथ ही पंचकोल कषाय अर्थात् पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीते की छाल तथा सोठ प्रत्येक ४-४ माशा लेकर ½ सेर जल मे औटा ले ½ पाव रहने पर पिलावे। इससे पीडा तुरन्त शान्त हो जाती है और ज्वर भी कम हो जाता है।

सामान्य रूप से इस रोग मे वायुनाशक तथा हृदय को सबल रखने का प्रयत्न सदा करना चाहिये क्योंकि—

"शाखागता कोष्ठगताश्च रोगा
मर्मोर्द्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च।
ये सन्ति तेषा नहि कश्चिदन्यो।
वायो पर जन्मनि हेतुरस्ति॥

अर्थात् जो रोग शाखागत, कोष्ठगत, मर्मस्थान-गत, ऊर्ध्वजत्रुगत, सर्वांगगत अथवा शरीर के

किसी एक अवयव में होते हैं इन सब की उत्पत्ति का कारण वायु ही होता है।

वृ० वात चिन्तामणि (भैष.) अथवा चिन्तामणिरस (र० सा. सं०) १-१ रत्ती प्रातः सायं देना चाहिये-नितान्त सामान्य अवस्था मे हिंगुलेश्वर रस ½-½ रत्ती भी लाभकारी है। अनुपान मधु देना चाहिये। यदि खांसी अधिक हो तो अदरख स्वरस भी मधु के साथ मिलाया जासकता है।

६६४ विविध उपद्रव और उनकी व्यवस्था-

विबन्ध—होने पर विरेचन कदापि नहीं देना चाहिए क्योकि शास्त्र की स्पष्ट घोषणा है 'ज्वरादौ न विरेचयेत्" अर्थात ज्वर के प्रारम्भ मे विरेचन कदापि न करावे। इसके लिये हिंग्वादि वर्ती का प्रयोग करना चाहिए इससे निरापद शौच होजाता है अन्यथा कम से कम वातानुलोमन तो हो ही जाता है। प्रस्तुत विधि-हींग तथा सेधानमक दोनो को समान भाग लेकर बारीक पीस ले फिर किसी बर्तन को आग पर रख कर उसमे यह चूर्ण डाल दे। थोड़ा थोडा शहद डालते रहे। जब औषधि वत्ती बनाने योग्य होजावे (किन्तु रहे कुछ कडी ही अधिक मुलायम होने पर वत्ती बनना संभव नहीं होगा) तो उतार कर कनिष्ठांगुलि जितनी मोटी बत्तियां बनाले। यही हिंग्वादि वर्ति है। ध्यान रहे थोडा कम मधु रहने पर बत्ती नहीं बनेगी और थोडा सा भी अधिक पड जाने पर भी नहीं बनेगी।

आध्मान—होने पर एक पतीली मे लगभग २ सेर जल लेकर अंगीठी पर चढ़ा देना चाहिए उसमे २॥ तोला अफीम के बोड या छिलके जिन्हे पोस्त के छिलके भी कहते है डाल देना चाहिए। जब पानी खूब खौलने लगे तो उसमे दो कम्बल के टुकड़े चौपर्त करके डाल दे जब खूब गरम होजावे तो उनमे से एक टुकडा निकाल कर कपड़े के टुकड़े या रुमाल मे रख कर निचोड ले और उस पर १० बूंद या १५ बूंद तारपीन तैल छिडक ले फिर उससे पेट का सेक करें। प्रति बार तैल तारपीन डालना चाहिए। यह सेक एक बार मे कम से कम १५ मिनट करना चाहिए। इस प्रकार दिन मे २-३ बार करने से प्रयोजन सिद्ध होजाता है।

अतीसार—यदि रोगी को दस्त होने लगे तो स्वर्णपर्पटी १ रत्ती की मात्रा मे लघु गंगाधर चूर्ण क्वाथ के साथ देनी चाहिए। आवश्यकतानुसार ३-३ घण्टे पश्चात् कई मात्रायें दी जासकती है। क्वाथ निर्माण विधि—६ माशा लघु गंगाधर चूर्ण को दो छटाक पानी मे औटाना चाहिये। २॥ तोला रहने पर छान कर प्रयोग करना चाहिए। स्वर्णपर्पटी की भांति पचामृत पर्पटी भी दी जा सकती है।

प्रलाप—इस उपद्रव मे तालु पर बादाम का तैल मलना चाहिए अर्थात् तालु हर समय बादाम तैल से तर रखना चाहिए और सर पर बकरी अथवा भेड का खोआ (भेड या बकरी का न मिलने पर भैंस या गौ किसी का भी लिया जा सकता है) गरम करके कम से कम ऽ= एक बार मे बांधना चाहिए। इस खोआ को प्रति चार घंटे पश्चात् बदलना चाहिए। इसके बॉधने से प्रलाप कम होता होता है तथा ताप भी गिर जाता है। यह बात डाक्टर बन्धु भी स्वीकार करते है ऊष्मा का नियामक केन्द्र मस्तिष्क मे होता है। हम कहते है कि मस्तिष्क मे वायु बढ जाने से यह सब होता है जो भी हो यह अनुभव प्रसूत बात है कि इस क्रिया से यह दोनो कार्य सिद्ध होते है।

तन्द्रा—यह उपद्रव भयङ्कर होता है जब यह विद्यमान हो तो अदरख के रस की पट्टी तालु पर रखनी चाहिए। इससे तन्द्रा भी दूर होती है तथा नेत्रो की अस्वाभाविकता भी नष्ट होती है।

६६५ मुक्ति—

चरक मे दो प्रकारकी मुक्ति मिलती है एक दारुण मोक्ष (fall by crisis) दूसरा अदारुण मोक्ष

(fall by lysis)।

इनके लक्षण इस प्रकार है.—

दारुण मोक्ष—

दाहः स्वेदोभ्रमस्तृष्णा कम्पोविड्भिद संज्ञिता।
कूजनं चास्य वैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वर मोक्षणे॥

अर्थात् शरीर मे दाह, पसीना आना, सिर मे चक्कर (भ्रम), पिपासा अधिक, कम्पन, दस्त होजाना, वेहोशी होना, आंतो का फूलना और मुंह से दुर्गन्ध आना किन्तु ज्वर न होना।

वास्तव में जब तीव्रौषधि के प्रभाव से दोषों के पूर्ण रूप से शान्त हुए बिना ज्वर मुक्ति होती है तब यही लक्षण होते है। एक बार रोगी ६ वर्ष का एक बालक था उसको भयङ्कर संततज्वर हुआ। विधिवत् चिकित्सा की गई, ११ दिन लगातार तापमान १०३° अंश रहा, १२ वे दिन प्रातः आकस्मिक रूप से ६६½° अंश रह गया, शरीर बिलकुल शीतल। घर वाले सब रोने लगे कि अब इसका जीवन नहीं। असमंजस मे मैं भी पड़ गया क्योंकि इस प्रकार का यह प्रथम प्रसङ्ग था अन्य सब बातें ठीक थीं, ६ घण्टे बाद तापक्रम ६७° होगया और ६७° को ४८ घण्टे बीत गये तब मुझे निश्चय होगया और घर वालों को भी आश्वस्त कर दिया—वह लोग भी मान गये। उस १२ वे दिन उसको सारे दिन और रात भर प्रलाप रहा १३ वे दिन और भी उग्र होगया किन्तु १४ वें दिन बिल्कुल शान्त और लेटे लेटे वह बालक अपने पैसे गिनने लगा। इस बीच मे ज्वर उसे कभी नहीं चढ़ा।

मैंने उससे पूछा कि तुमने यह-यह काण्ड ज्वर मे किया था किसी को मारा था, किसी को नोचा खसोटा था और मेरी उंगली तोड़नी चाही थी तो उसने कहा जी, ठीक है मुझे भी कुछ कुछ याद है आप सब लोग मेरी इच्छा के विरुद्ध कार्य करते थे अतः मैंने ऐसा किया।

अदारुण मोक्ष में—

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूपाकोमुखस्य च।
क्षवथुश्चान्नाकांक्षा ज्वरेमुक्तस्य लक्षणम्॥

अर्थात् पसीना आना, शरीर हलका होना, सर में खुजली उठना, मुख का पक जाना, छींक आना, भूख की इच्छा होना, यह स्वाभाविक मुक्ति के लक्षण है। इस मोक्ष के रोगियो मे एक विचित्र बात पाई गई जो इस रोग की अपनी विशेषता है—११ दिन तक ज्वर १०२° या १०३° रहा और १२ वे दिन प्रातः काल ६८° तापमान। इसमे अन्य कोई अस्वाभाविक लक्षण नहीं देखा गया।

६६६ पथ्य—

ज्वर की स्वाभाविक मुक्ति होने पर पथ्य मे गौदुग्ध जिसका विधान प्रारम्भ मे किया जा चुका है उचित पथ्य है। परवल का शाक भी दिया जा सकता है।

दारुण मोक्ष मे तब तक कोई वस्तु नहीं देनी चाहिए जब तक एक भी अस्वाभाविक लक्षण रहे। बहुधा १५ वे दिन पथ्य दिया जाता है और गौदुग्ध ही इसमे भी हितकारी है।
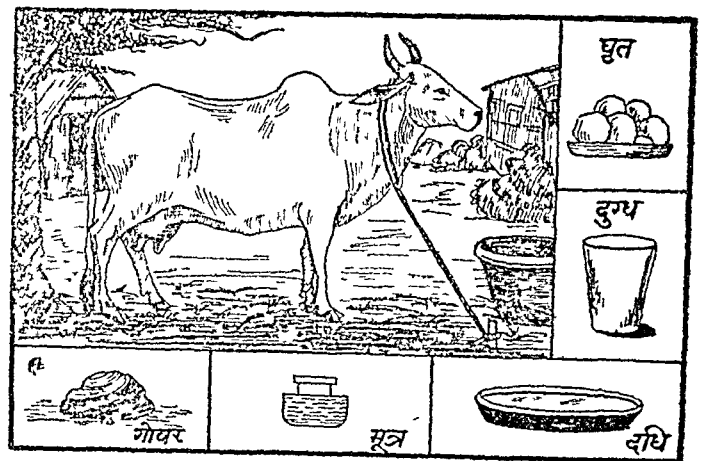
६६७ अपथ्य—

ज्वर के प्रारम्भ से ही सतर्कतापूर्वक निम्न बातों से बचना चाहिए।

"स्नानं विरेक मुरत कषाय व्यायाममभ्यञ्जनमह्निनिद्रा,
दुग्ध घृत वैदलमामिषञ्च, तक्र सुरा स्वादु गुरु द्रवञ्च।
अन्न प्रवात भ्रमणञ्च क्रोध त्यजेत्प्रयत्नात्तरुणज्वरार्त:,
आमप्त रात्रं तरुण ज्वर तत्मूर्याह मध्य परत पुराणम्॥"

अर्थात् स्नान करना, दस्त लेना, स्त्री प्रसंग, काढा पीना व्यायाम करना शरीर मे तैल मालिश, दिन मे सोना दूध, घी, कोई भी दाल मांस, मट्ठा (छाछ), शराब, अधिक मीठा (लड्डू, पेड़े) गुरु भारी पदार्थ (खीर, दही, कढ़ी इत्यादि), द्रव (शर्वत, लस्सी) अन्न (रोटी, खिचडी) खुली हवा मे निकलना, टहलना, क्रोध करना इन सब बातों को नवीनज्वर वाला प्रयत्नपूर्वक छोड दे। प्रथम सात रात्रि तक ज्वर नवीन, बारह तक मध्यम और बाद मे पुरातन कहा जाता है।

६६८ पुनरावर्तक-चिकित्सा—

इस मुक्ति के पश्चात् यदि—

'विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसेऽव्यक्तलक्षण., दुर्लभोपशम कालम् दीर्घमप्यनुवर्तते'—के अनुसार फिर ज्वर आने लगे और बना भी रहे तो पुटपक्व विषमज्वरान्तकलोह (र० सा० सं०) १ से २ रत्ती की मात्रा तक अवस्था तथा समयानुसार दिन मे ३ बार तक पीपल चूर्ण ४ रत्ती, लाहौरी नमक पिसा हुआ २ रत्ती, भुनी हींग १ रत्ती के साथ देना चाहिए। अथवा—

फलत्रिकादि क्वाथ—

फलत्रिकाऽमृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बज:।
क्वाथ क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोग सकामलम्॥

अर्थात् हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता, नीम की छाल प्रत्येक २० रत्ती लेकर इन सबको ४० तोला पानी मे औटा कर १० तोला रहने पर छान ले पश्चात् ६ माशा मधु डालकर पिलावे। शास्त्रकार ने इसका प्रयोग केवल कामला तथा पाण्डु रोग पर लिखा है किन्तु मैंने इसका प्रयोग इस प्रकार के ज्वर पर सफलतापूर्वक अनेकश. किया है।

इस प्रकार के पुनरावर्तक ज्वर मे गौदुग्ध बडा सुन्दर आहार रहता है—

"जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीर स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीत विषवत् हन्ति मानवम्।

अर्थात् १२ दिन के बाद ज्वर मे कफ न होने पर गौ-दूध अमृत के समान लाभ करता है किन्तु वही दूध ज्वर के प्रारम्भ मे देने से विष के समान हानि करता है।

इस लेख मे एक एक शब्द अनुभव-जन्य है फिर भी कोई बात शास्त्र विरुद्ध होने पर मै अपने को ही भ्रान्त मानूंगा।

—श्री पं० विद्याभूषण वैद्य।
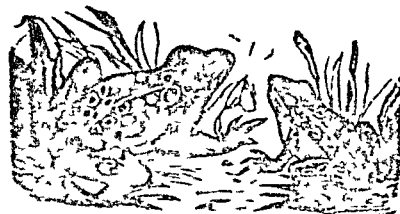
वातश्लैष्मिकज्वर

लेखक—वैद्यराज डा० श्री युगलकिशोरलाल ए बी एस. एस. (का वि. वि.)
अध्यक्ष राजकीय आयुर्वेद औषधालय, चन्देरा (मध्य प्रदेश)

श्रीयुत् लाल का यह द्वितीय लेख है जो इस समय कायचिकित्साक मे प्रकाशित किया जा रहा है। पहले लेख मे जहां लेखक के पाण्डित्य का प्रकटीकरण हुआ है तो इसमे उनके अनुभव सामने आये है। हमे विश्वास है विद्वान् लेखक आयुर्वेद वाड्मय की उन्नति के लिये योग्य वातावरण मे अच्छा योगदान करेगे। र० प्र० त्रि०

६६९ परिचय—

यह जनपदोध्वंसी रोगों में से एक है। महर्षि आत्रेय भगवान ने इन (जनपदोध्वंसी) रोगो का कारण अधर्म बताया है। अधर्म से वायु, जल, देश एवं काल दूषित होकर पूरे जनपद मे रोग उत्पन्न होता है।

यह द्वन्द्वज ज्वर है। इसमे वात और कफ जन्य लक्षण होते हैं। इसे श्लैष्मिक ज्वर और वात कफोल्बण सन्निपात ज्वर भी कहते हैं। एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र में इसे इन्फ्लूएंजा कहते है। यह एक विषाणुजन्य रोग है। इस विषाणु का मानव शरीर मे प्रवेश होने के पश्चात् प्राणी रोगग्रस्त हो जाता है। यह अत्यन्त औपसर्गिक रोग है। इसमें श्वसन संस्थान प्राय आक्रान्त होता है। शीघ्र रोग ग्रस्त होना, तीव्र ज्वर, शिर:शूल, सम्पूर्ण शरीर में वेदना इसके सामान्य लक्षण है। इसमें शक्ति का अत्यन्त ह्रास होता है। मधुकोषकार ने इसे विकृतिविषमसमवायारब्ध कहा है।

६७० कारण—

इसमें कफजन्य लक्षण विशेष होने के कारण ही आचार्य गणनाथसेन ने इसे श्लेष्मल व्याधि कहा है किन्तु यह वातानुबन्ध श्लेष्मल है। अत वायु एवं कफ को दूषित करने वाले आहार-विहार आदि कारणो से यह रोग उत्पन्न होता है। विषाणु के बारे मे अभी तक कोई सर्व-सम्मत निर्णय नहीं है। पहले हेइमोफिलस इन्फ्लूएंजा को रोग का कारण मानते थे परन्तु यह रोग का कारण नहीं है बल्कि उपद्रव का कारण है विशेषकर वातश्लैष्मिक शुपुम्ना ज्वर, अन्तर्हृच्छोथ आदि का कुछ वैज्ञानिको ने ए और बी करके दो प्रकार के विषाणु इन्फ्लूएंजा के रोगियो मे दिखाये है जिसमे 'ए' उग्र प्रकार का होता है। परन्तु मरक काल मे विषाणु का प्रत्येक रोगी मे पाया जाना आवश्यक नहीं है कभी-कभी ७०-८०% रोगियो तक मे यह नहीं पाये जाते है जो स्पष्ट रूप से इन्फ्लूएंजा के रोगी होते है स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टेफिलोकोकाई आदि भी उपद्रव उत्पन्न करने वाले कारणो के रूप मे पाये जाते है।

६७१ रोग संक्रमण—

रोगी के सम्पर्क आने पर वायु के माध्यम से खांसने, छींकने और बोलने से एवं रोगी के उच्छिष्ट अन्न-पान, वर्तन एवं वस्त्र आदि को प्रयोग में लाने से तथा रोगी के साथ रहने से यह रोग फैलता है।

६७२ सम्प्राप्ति—

रक्तस्रावी विषमयता के समान ही इसमे विकृ[illegible]

ई जाती है। शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में रक्त-
व के लक्षण दीख पड़ते है।

७३ संचयकाल—
२४ से ४८ घण्टे का होता है।

८४ रोगावधि—
रोग से मुक्त होने के पश्चात् एक सप्ताह तक
गी के द्वारा रोग का प्रसार हो सकता है।

७५ पूर्वरूप—
रोग के लक्षणों के व्यक्त होने के पूर्व रोगी को
धिक जंभाई आने लगती है एवं भोजन मे अरुचि
जाती है।

७६ रूप—
रोगी सहसा रोग से आक्रान्त हो जाता है।
ड़ी ही देर मे तीव्र ज्वर हो जाता है जो प्राय.
३°-१०४° तक होता है। सम्पूर्ण शरीर मे भय-
वेदना होती है विशेषकर संधियो, शाखाओं
र कटि प्रदेश मे होती है। तीव्र शिरःशूल होता
कभी-कभी कपकपी एवं जाड़ा भी लगता है।
ेर मे भारीपन लगता है। अत्यन्त थकावट मालूम
ी है। अल्पकाल मे ही बहुत ही कमजोरी
जाती है प्रतिश्याय के लक्षण उग्र रूप मे होते है।
मे घुर-घुराहट होती है। सूखी एवं वेदनायुक्त
सी आती है। ष्ठीवन भिन्न-भिन्न प्रकार का हो
ता है जैसे सफेद और झागदार हरिताभ और
युक्त या चिपचिपा और रक्त कण युक्त आदि।
ी को भूख नहीं लगती एवं पेट मे दर्द होता
पसीना बहुत आता है। श्वास की गति तीव्र
ी है। नाड़ी की गति हंस की तरह होती है।
मण्डल तमतमाया होता है। मुख का स्वाद
ना होता है। जीभ मलावृत और आर्द्र होती
नेत्र धूसर वर्ण के होते है। मूत्र धूसर, श्वेत
ना होता है। मूत्र मे रक्त कण एवं श्वेतकण भी
है। मल काला या चिकना होता है।

चरक मत—

> शीतको गौरव तन्द्रा स्तैमित्य पर्वणा च रुक्।
> शिरोग्रह प्रतिश्याय कास स्वेदाप्रवर्तनम्।
> सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृति ॥
> (च० चि० अ० ३)

सुश्रुत मत—

> स्तैमित्य पर्वणा भेदो निद्रा गौरमेव च।
> शिरोग्रह प्रतिश्याय कास स्वेदाप्रवर्तनम्॥
> सतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृति ॥
> (सु० उ० त० अ० ३६)

आचार्य गणनाथसेन मत—

> प्रतिश्याय शिरःशूल शीतकम्पौ च कुमचित्।
> अङ्गमर्द कटीपृष्ठोरसा तीव्राश्च वेदना ॥
> कासोज्वरोऽवसादश्च कार्श्यंचाल्पैर्दिनैर्भृशम्।
> अर्त्यर्थ वलहानिश्चलिङ्गानि श्लेष्मकेज्वरे ॥
> सामान्यतो, विशेषात्तु फुफ्फुसाक्रमणे सति।
> सरक्तष्ठीवन प्राय प्रलाप श्वसन तथा ॥

आगामी पृष्ठ के चित्र मे रोग के लक्षणो को शरीराङ्गो मे अंकित किया जारहा है।

पाश्चात्य वैज्ञानिको ने लक्षणो के आधार पर भिन्न भिन्न प्रकार वर्णन किए है। यहा जो जो संस्थान विशेष रूप से विकृत होते है उन्हीं के नाम से उसकी संज्ञा दी जाती है। जैसे सर एच एल. टाइडी ने इस रोग के पांच प्रकार बताये है:—

(१) सामान्योत्तापावस्था (General Febrile) (२) मारात्मक अवस्था (Malignant) (३) श्वसनिकावस्था (Respiratory) (४) औदरिकावस्था (Gastrointestinal) (५) वातिकावस्था (Nervous)

डा० जी० इ० बीमाउण्ट ने इस रोग के तीन प्रकार बताये है—(१) सौम्यरूप (The Mild) (२) श्वसनकीय- रूप (The Broncho pneumonic Type)

प्राइसेटेकर बुक मे इस रो के तीन प्रका बताये है—

(१) उत्ताप रू (The Febril Type) (२) श्वस नक रूप (The Respiratory Type) (३) मार रूप (The Mal gnant Type)

भेद —

लक्षणो आधार पर इ प्रतिश्याय, विषम ज्वर आदि से भि निदान करते है

६७७ उपद्रव

इसमे श्वसनि शोथ, फुफ्फुसपा फुफ्फुसावरण शो पूयोरस, फुफ्फु शोफ, मस्तिष्क वरण शोथ, श्वा कृच्छ आदि उ द्रवो की सम्भाव रहती है।

परिणाम—

उपद्रवो का रह प्रतिकूल होता है सौम्य प्रकारके रोग स्वस्थ हो जाते है
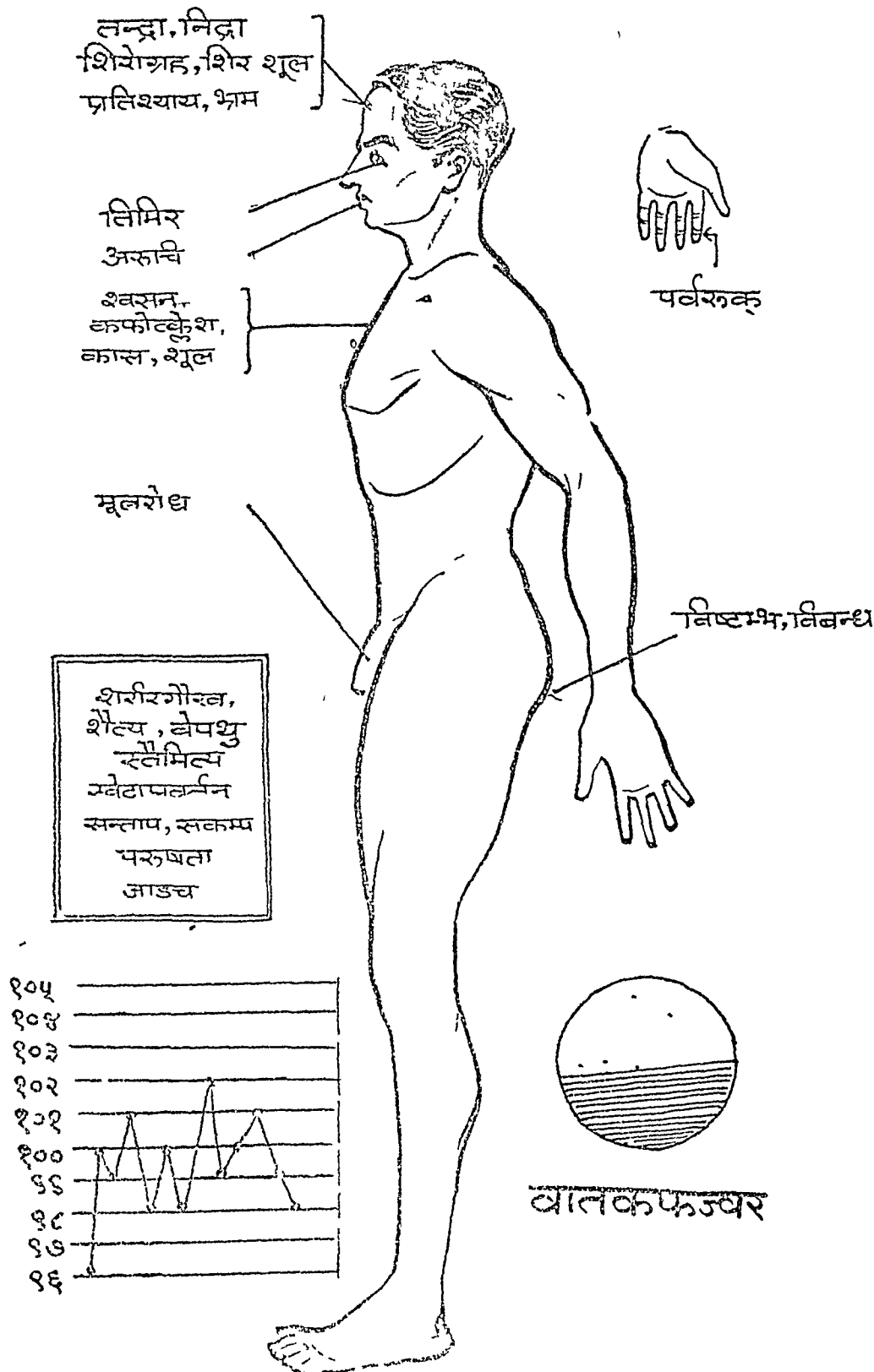
६७८ चिकित्सा—

प्रतिषेध—चिकित्सा क्षेत्र में प्रतिषेध के महत्त्व को प्रत्येक पद्धतियों ने समान रूप से स्थान दिया है। इसमें केवल सामान्य दिनचर्या में थोडा परिवर्तन मात्र ही करना पडता है। जिससे एक झंझट से बच जाना सुगम होता है। अत' किसी रोग की आशङ्का होने पर सदैव इसका ध्यान देना चाहिये। वातश्लैष्मिक ज्वर में निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिये।

१–मेला, सिनेमा, स्कूल आदि स्थान जहां भीड लगती है उसे वन्द कर देना चाहिये एवं जनसमूह वाले स्थानों मे नहीं जाना चाहिये।

२–प्रतिदिन प्रात सायं सुखोष्ण लवणोदक या पोटाश परमैंगनेट आदि जीवाणु नाशक औषधियो से कुल्ली करनी चाहिये।

३–शुद्ध वायु मे रहना चाहिए। स्वच्छ एवं सुपाच्य भोजन करना चाहिए।

४–धूप एवं शीत से बचना चाहिए तथा वर्फ आदि शीतल द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

५–वात एवं कफ को दूषित करने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

६–मद्य तथा अन्य मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए।

७–रात्रि जागरण एवं दिवास्वप्न नहीं करना चाहिए।

८–घर में सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए एवं जीवाणु नाशक औषधियों से प्रात सायं धूपन करना चाहिए। धूपन करने के लिये गुग्गुल, लोबान निम्वपत्र, गंधक, कपूर, माहेश्वरधूप, अपराजितधूप आदि का प्रयोग कर सकते है।

९–प्रतिदिन प्रात. साय दालचीनी, तुलसीपत्र आद्रक, कालीमिर्च की चाय का सेवन करना चाहिए।

१०–नीलगिरीतैल, या अजवायन को तवे पर भून कर पोटली बनाकर नस्य लेना चाहिए।

११–विबन्ध रहने पर पट्षकार चूर्ण को रात को सोते समय गर्म जल से लेना चाहिए।

१२–रोगी को घर मे परिवार से अलग एकान्त स्थान मे रखना चाहिए।

१३–परिचारक तथा रोगी से मिलने वाले अन्य लोगो को नाक मुंह पतले कपड़े की ४-५ तह से ढके रहना चाहिए।

१४–रोगी के उपयोग की वस्तुओं को अन्य लोगो को नहीं उपयोग मे लाना चाहिए।

१५–रोगी को यत्र-तत्र न थूक कर एक पात्र में थूकना चाहिए और उसे जीवाणुनाशक औषधियो के घोल से भरा होना चाहिए।

१६–रोगी को जन समूह मे नहीं जाने देना चाहिए। उसे ज्वर समाप्त होने के पश्चात् एक सप्ताह तक एकान्त स्थान मे रखना चहिए।

६७९ सामान्य चिकित्सा—

रोगी को परिवार से पृथक् शान्त, स्वच्छ स्थान मे रखकर शैय्या पर पूर्ण विश्राम देना चाहिए। ज्वर प्राकृत होने के पश्चात् ४-५ दिन तक इसी प्रकार विश्राम देना चाहिए। रोगी का कमरा हवादार होना चाहिए एवं प्रकाश साधारण रहना चाहिए। ऋतु के अनुकूल रोगी का वस्त्र एव विस्तर होना चाहिए। रोगी के उपयोग की वस्तुओ को परिवार के अन्य लोगो को नहीं देना चाहिए एवं उसे सदैव जीवाणुनाशक औषधियो से स्वच्छ रखना चाहिए। प्रारम्भ मे लंघन कराना चाहिए फिर उबाला हुआ जल एवं दुग्ध देना चाहिए। मुखशोधन की दृष्टि से सुखोष्ण लवणोदक या पोटाश परमेंगनेट घोल से रोगी को प्रात सायं कुल्ली कराना चाहिये।

'ग' औषधि चिकित्सा—

१. इस रोग का निदान होजाने पर निम्नलिखित योग का उपयोग करना चाहिये। मैंने गत वर्ष इस योग के प्रयोग से आशातीत सफलता प्राप्त की। एक दिन औषधि सेवन करने के बाद दूसरे ही दिन रोगी प्रसन्नतापूर्वक शुभ संदेश देते थे। वह इस प्रकार है—

त्रिभुवनकीर्ति रस २ गोली नारदीय लक्ष्मी विलास रस १ गोली मृत्युंजय वटी १ गोली गोदन्ती भस्म २ रत्ती, शृंगभस्म २ रत्ती, चंद्रामृतरस १ गोली श्वासकुठार रस १ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा। ऐसी एक-एक मात्रा दिन मे ३-३ घण्टे पर देवे। अनुपान में मधु एवं तुलसीपत्र स्वरस देवे।

२ कोष्ठबद्धता रहने पर अश्वकंचुकी २ गोली जल के साथ, पटपकार चूर्ण ६ माशा सुखोष्ण जल से अथवा मधुयष्ट्यादि चूर्ण ६ माशा गर्म दूध से देवे।

३ शिर शूल में गोदन्तीभस्म ३ रत्ती ३-४ बार मधु से देवे।

४. शरीर मे तीव्र वेदना होने पर पचगुणातैल का मर्दन करावे।

५. अतिसार रहने पर सिद्ध प्राणेश्वर, आनन्द-भैरव या कनकसुन्दररस की १-१ गोली दिन मे तीन बार मधु से देवे।

६ हृद्दौर्बल्य या नाडी की क्षीणता पर मकर-ध्वज १-१ रत्ती दिन मे ३-४ बार तुलसीपत्र स्वरस व मधु से देवे।

७ श्वसन संस्थान जन्य उपद्रव मे पञ्चगुण-तैल का वक्ष प्रदेश पर मर्दन करावे एवं स्वेदन करावे तथा रससिन्दूर १ रत्ती श्रंगाराभ्र १ गोली सौभाग्यवटी १ गोली श्रंगभस्म २ रत्ती वासाक्षार १ रत्ती मकरध्वज ½ रत्ती। ऐसी एक-एक मात्रा दिन में तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर देवे। अनुपान मे मधु एवं अद्रक स्वरस देवे।

८. प्रति दिन प्रातः सायं दालचीनी, तुलसीपत्र, कालीमिर्च की चाय देवे।

९. नीलगिरी तेल या अजवायन को तवे पर भून कर पोटली बनाकर नस्य रूप मे देवे।

६८० रोग मुक्तिकाल—

ज्वर शान्त होजाने के पश्चात् रोगी को एक सप्ताह तक संयम से भोजन आदि करना चाहिये। हलका एवं स्वच्छ भोजन नियम से लेना चाहिये। प्रारम्भ मे मूंग की दाल, परवल का यूष तथा गेहूँ की पतली रोटी लेवे फिर धीरे धीरे करके प्राकृत भोजन देवे। धूप एवं शीत से बचना चाहिये। रात्रि जागरण एवं दिवास्वप्न नहीं करना चाहिये। ज्वर मुक्ति के पश्चात् लगभग ४-५ दिनों तक पूर्व-वत् ही विश्राम करना चाहिये। फिर धीरे धीरे करके अपने व्यावसायिक कार्य मे लगना चाहिये। इस समय आहार-विहार आदि मे संयम की उपेक्षा होने पर पुनरावर्तन की सम्भावना रहती है। अत रोगी के बारे में प्रतिदिन का समाचार चिकित्सक उसी ध्यान मे रखते है जैसी पूर्व रुग्णा-वस्था मे देख रेख रखनी पड़ती है।

श्री युगलकिशोरलाल।

ज्वर उसके उपद्रव तथा उनकी चिकित्सा

लेखक—आचार्य पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी विशेषाङ्क सम्पादक

प्रस्तुत लेख मे ज्वर के साथ होने वाले उपद्रवो की चिकित्सा का विशेष विचार किया गया है। इस लेख के निर्माण मे विगत एक दशक का अनुभव समाविष्ट किया गया है। प्रत्येक उपद्रव मे किस क्वाथ या रस का प्रयोग करना चाहिये इसे विस्तार के साथ समझाया गया है। आशा है यह लेख आयुर्वेद की चिकित्सा करने वालों के समक्ष एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करेगा और उनकी सिद्धि मे सहायक होगा। इस लेख के सारे योग भैषज्यरत्नावली मे मिल सकते हैं।

—र० प्र० त्रि०।

ज्वर के साथ कदाचित ही कोई ऐसा रोग या रोग लक्षण बचता हो जिसका सम्बन्ध न आता हो पर स्वतन्त्र व्याधि के रूप मे उसकी जो चिकित्सा है वही लक्षण या उपद्रव रूप में उसके उपलब्ध होने पर होगी इसमे सन्देह है। अत हमें ज्वर के साथ कौन उपद्रव विशेष सन्निविष्ट है उसका ध्यान करते हुये चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिये। उदाहरण के लिए पाण्डुरोग की चिकित्सा पृथक् है वहां इसके अलग-अलग भेद भी दिये गये हैं पर ज्वर मे पाण्डुरोग के प्रत्यात्म लिङ्ग देखने को मिलते है तब उसकी चिकित्सा बिल्कुल दूसरे आधार पर होती है।

व्यवहार मे यह देखने में आता है कि वैद्यों को हर रोग पर कुछ नुस्खे तैयार रहते हैं। वे उन नुस्खों को लक्षण रूप या उपद्रव रूप रोग में भी उसी प्रकार देते है जैसे स्वतन्त्र रोग में प्रयोग करते हैं। इसे हम अन्धाधुन्ध प्रयोग कह सकते है इसका परिणाम कभी अधिक लाभप्रद नहीं देखा जाता। अत. वैद्य को आंख खोलकर पहले यह समझ लेना होगा कि रोगी को मुख्य व्याधि क्या है? इस व्याधि के स्वतन्त्र लक्षण क्या है? फिर यह देखना होगा कि इस व्याधि के साथ अन्य कौन-कौन रोग लक्षण या उपद्रव रूपमे विद्यमान है इस प्रकार स्पष्ट कल्पना कर लेने के बाद यदि चिकित्सा चालू की गई तो रोगी को अच्छा और जल्दी लाभ होता है।

६८१ अक्षिविकार-

सन्निपात ज्वरों मे कभी-कभी 'निमुग्ने चापि लोचने' या चित्तभ्रम सन्निपात मे 'विकृतं निरीक्षते' 'विकटाक्षो विचक्षणः' आदि लक्षण मिलते हैं। किसी-किसी को अक्षि गौरव की शिकायत भी रहती है। ऐसी अवस्था मे प्रचेतना वटी का अंजन कराने से, अथवा आर्द्रकादि निष्ठीवन देने से उपद्रव शान्त हो जाते हैं। रस योगो में लक्ष्मी विलास नारदीय अच्छा काम करता है।

६८२ अङ्गाभिताप-

कभी-कभी ज्वरो मे सारे शरीर मे विशेष ताप प्रगट होता है। शरीर का टैम्परेचर अत्यधिक बढ़ जाता है साथ ही कभी-कभी अकेले भी सारे शरीर मे दाहारम्भ हो जाता है। इस अवस्था मे दोषों का विचार करके चन्दनबलालाक्षादि तैल अथवा पिप्पल्यादि घृत का सारे शरीर पर मर्दन बिना किसी शङ्का के कराना चाहिये। यह बहुत सफल प्रयोग है।

६८३ अग्निमान्द्य या अग्निसाद

(क्षुधानाश भी देखें)

ज्वरो में आमतौर पर यह उपद्रव देखने मे

लघु मसूरिका

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

छोटी माता, वसन्त—चिकिन फक्स—

यह रोग अधिकतर छोटे २–१० वर्ष के बच्चो को होता है। इसका प्रकोप प्रसार मसूरिका की तरह ही तेजी से होता है, किन्तु इसके फूल–फुन्सिया दूर दूर होती हैं। बडी मसूरिका घनी और पास पास होती है। इसमे ज्वर भी स्वल्प होता है। इसकी पिडिकाये वडी, माता की तरह गंभीर, धातुओ तक गहरी नही होती, केवल त्वचा तक ही सीमित रहती है। इसलिये इसमे रोगी को कष्ट भी कम रहता है। रोगी बच्चे छोटी माता निकलने पर मजे से खेलते कूदते रहते है और उनके माता निकली रहती है और थोडे दिन मे बच्चा अपने आप बिना दवा भी ठीक हो जाता है। इसमे पिडिकायें पहिले विना ज्वर आये ही दर्श जाती है, पिडिका दर्श आने के बाद ज्वर हो जाता है पर उतना तेज नही होता जितना कि मसूरिका मे होता है। इसमे ज्वर ९९° से १००° और अधिक होता है तो १०१ से १०२ डिग्री हो जाता है। पिडिका निकलने से पहिले अङ्ग का ऐठना, शिर धडकना आदि साधारण लक्षण होते हैं। पिडिकायें पहिले प्राय छाती, पेट, मुख और पीठ पर निकलती है। जहा निकलती है वहा एक साथ निकलती है। प्राय ऐसा देखा गया है कि ४–५ दिन तक ऐसा होता है कि हर रोज कुछ पिडिकायें निकलती हैं, वे कुछ ही घन्टो वाद तरल पूरित हो जाती है और उसके कुछ घन्टो वाद वे पक जाती है और तीन चार दिन वाद उनका पीव सूखकर खुरट बन जाता है। इम प्रकार नई नई पिडिकाये रोज रोज निकलती है कुछ पकती और कुछ सूखती रहती है। इसकी पिडिकाये छोटे मोती के समान सफेद होती है बीच मे बैठी नही बल्कि उठी होती है, फूटने पर उसमे से पानी सा तरल मात्रा मे निकलता है। प्राय ५-६ दिन मे सूख जाती है ८ दिन मे रोगी अच्छा हो जाता है। इसके दाग भी जल्द मिट जाते है। यदि रोगी दुर्वल हो साथ ही दोप-विष प्रबल हो तो पिडिकाओ मे कोथ (सडन) प्रारम्भ हो जाती है अनेक प्रकार के स्राव होते है पिडिकाये रक्त पूरित हो जाती हैं। ज्वर तीव्र हो जाता है और वृहन्मसूरिका के से लक्षण हो जाते हैं।
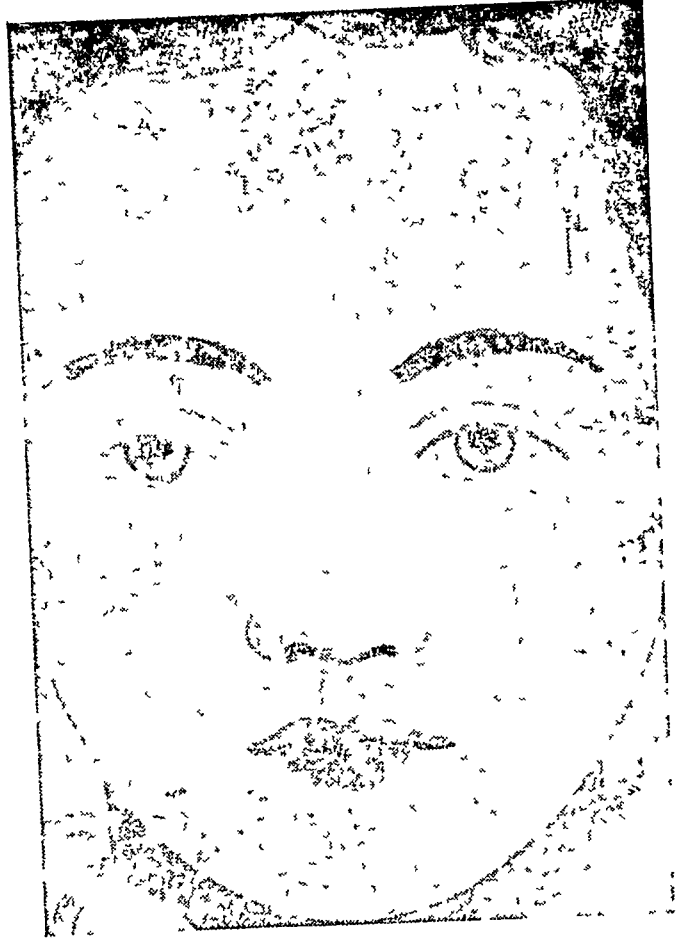
पिडिकाए निकलने के १८ घन्टे पश्चात् का चित्र

चिकित्सा—

छोटी माता की चिकित्सा की विशेष आवश्यकता नही पडती, यह स्वय ही शान्त हो जाती है। यदि उपद्रव हो रोग वढे तो वडी माता के प्रकरण मे वताई विधियो को वर्तनी चाहिये। भोजन कोमल और शीघ्र-पाचक देना चाहिये।

रोमान्तिका-खसरा-मीजल्स

यह ज्वर तीव्र साघातिक है। श्री चरकाचार्य ने इसका वर्णन मसूरिका से पृथक किया है। यद्यपि इसका विप भी मसूरिका की तरह कफ-पित्त प्रधान होता है किन्तु उत्पादक कारण मे अन्तर है। श्री माधवाचार्य आदि परिवर्ती आचार्यो ने पिडिकायुक्त ज्वर होने के कारण इसका भी वर्णन मसूरिका के साथ ही किया है। इसकी फुन्सिया छोटी, उठे हुए रोम कूपो के समान रोगटो की जड मे होती है इसलिये इसे रोमान्तिका कहते है। इसका वर्ण तावे की तरह लाल होता है। इसमे खासी अधिक होती है। इसके निकलने से पहिले प्राय ज्वर होता है। यह अधिकतर बच्चो मे होती है। बहुत बच्चो की इसमे मृत्यु हो जाती है। यह रोग हेमन्त शिशिर और वसत ऋतु मे अधिकतर फैलता है।

इसके उत्पन्न करने वाले विषाक्त जीवाणु रोगी के खखार, नाक, धूल आदि मे मिल जाते है, इसके चमडे के उतरे हुए पर्तो मे भी वे विद्यमान रहते हैं जोकि धूल मे मिल जाते है। जब ये धूल धक्कड मे मिले हुए श्वास के साथ शरीर मे नाक, कठरोग उत्पन्न करते है। ये स्पर्श और परिचायको द्वारा भी एक से दूसरे मनुष्य तक पहुँच जाते है। ये कीटाणु श्वासादि के द्वारा नाक, कठ, गला, फेफडो की नली तक पहुँच वहा व्रणशोथ के से विकार उत्पन्न करते है और क्रमश नेत्रो तक पहुँचते हैं। इसमे प्राय पहिले ज्वर होता है जोकि लगभग १०१ डिग्री तक पहुँच जाता है। उसमे प्रतिश्याय (जुकाम) खांसी का ठसका, अङ्गो का टूटना आदि लक्षण होते है। जुकाम पतला होकर वहने लगता है, वार बार छीकें आती रहती हे, आखे सुर्ख हो जाती है और इनमे पानी भर भर आता है, प्रकाश सहन नही होता। खासी आरम्भ होती है। तन्द्रा मे रोगी पडा रहता है, किसी किसी की वडी आतो की श्लेष्मधारा कला तक विप से पीडित हो जाती है और उसके पैत्तिक प्रभाव के कारण मलधरा कला मे भी सूक्ष्म पिडिकाएे उत्पन्न हो जाती हैं जिससे अरुचि और अतिसार (दस्त) हो जाते है।

ज्वर दूसरे तीसरे दिन घट जाता है। तीसरे-चौथे दिन पिडिकाएे निकल आती हे और ज्वर फिर तीव हो जाता है। इन पिडिकाओ के निकलने के पहिले मुह के भीतर श्लेष्मिक कला पर मसूडो पर लाल लाल निशान से दिखाई है। ये विपम गोल आकारो की बहुत सूक्ष्म कम उठी हुई पिडिकाओ के समूह मात्र है, इसमे कुछ नीलाभ प्रतीत होते हे, ये चिन्ह रोग निर्णय मे सहायक होते हे। ये चिन्ह ३-४ दिन रहकर मिट जाते हे।
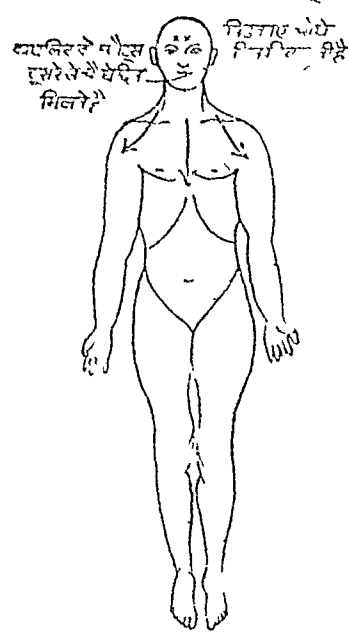
लघु मसूरिका मे पिडिकाओ की स्थिति

इसकी पिडिकाये पहिले शिर मे बालो की जड मे, कानो के पीछे नीचे बालो के आसपास मुह पर निकलती है जहा पिडिकाएे निकलनी होती है वहा पहिले वह स्थान कुछ लाल सा होता है, फिर पिडिकाएे उभर आती है। एक- दो दिन मे पिडिकाएे सारे शरार मे निकल आती है। इन पिडिकाओ के समूह सारे शरीर मे फैले होने से रोगी का सारा शरीर सूजा सा हो जाता है।

इन पिडिकाओ मे से कभी कभी रक्तस्राव भी होता हे। किन्तु बहुत कम केसो मे ऐसा होता है। पिडिकाओ मे कभी कभी खुजली चलती है, बच्चा इससे बडा बेचैन होता है, शरीर को खुजा खुजा कर घाव कर देता है ऐसी दशा मे अ गुलियो पर कपडा लपेट देना अच्छा है। ये खुजली हवा, पानी का स्पर्श होने से और भी बढ जाती है। इसलिये रोगी को हवा से बचाकर रखने और पानी के स्पर्श से बचाने के लिये रोगी- तो क्या किसी दूसरे को गीले शिर वस्त्र पहिने भी रोगी के पास नही आने देते जोकि ठीक है।

ये पिडिकाएे दो चार दिन मे मुरझा जाती है ज्वर

भी कम हो जाता है पिडिकाओ के स्थान पर धूसर रग के धब्बे से दिखाई देने लगते है। यह देखकर लोग कहने लगते है कि अब माता बाग ले रही है अब रोगी शीघ्र अच्छा हो जायगा। धब्बे के स्थान का चमडा धीरे धीरे पपडी की तरह पृथक होता जाता है, १०-१५ दिन मे चमडा साफ हो जाता है।

कभी-कभी शीत वायु के लगने आदि कारणो से पिडिकाऐं निकलते-निकलते रुक जाती है या पूरी नही निकल पाती या काली पड जाती है, जिसे परछावा पडना कहते हैं। यह दशा कष्टसाध्य होती है, रोगी तन्द्रा मे या मोह मे पडा रहता है या प्रलाप श्वासादि मे दु ख पाता है।

यह रोग प्राय. ३ सप्ताह मे रोगी को छोड देता है और एक एक बार जिसके होजाता है फिर उसे ५-७ वर्ष तक होने की सम्भावना कम रहती है।

कभी कभी रोमान्तिका का तीव्र विष रोग के मध्य मे या रोग के अन्त मे फेफडो की ओर फैलता है और उससे वहा व्रण उत्पन्न होता है खासी, श्वास, ज्वर वेग बढ जाता है। तन्द्रा-बेहोशी आदि उपद्रव उत्पन्न होकर रोगी के प्राण सकट मे पड जाते हैं, ऐसी दशा मे हजारो बालक मर जाते है।

जब मसूरिका त्वचा से नीचे गम्भीर धातुओ तक पहु च जाती है और उसमे रक्तपित्त जैसे मुख, नाक, गुदा, मूत्र से रक्त जाना, रक्तातिसार आदि होते है तो रोगी का बचना कठिन होता है।

चिकित्सा—

मसूरिका के रोगी को कसी हुई खाट पर साफ-सुथरा बिस्तर बिछाकर भारी गर्म वस्त्रो से ढक कर रखना चाहिये। जहा रोगी रक्खा जाय वहा शीलन भी कतई नही होनी चाहिये। साथ ही रोगी को ठडी हवा, ठडा पानी, अग्नि या धूप के तेज सताप से भी बचाना आवश्यक है। दिन का सोना, रात का जागना, खुली हवा में घूमना इनका त्याग कर देना चाहिये। इसमे सुखोष्ण (कुछ गरम) जल देना चाहिये। खाने के लिये फलो का रस, लाजपेया, मुनक्का देना चाहिये। इसमे केशर मिलाकर पिलाना अच्छा है। जिन उपचारो का बृहन्मसूरिका में वर्णन किया है वे इसमे भी लाभदायी है। इसमे इन्दुकला वटी और सर्वतोभद्ररस विशेष लाभकारी है।

इन्दुकला वटिका—

शिलाजीत, लोहभस्म, स्वर्ण भस्म (अथवा वर्क) इन्हे वन तुलसी या तुलसी के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना छाया मे सुखा रखले। मात्रा—१-२ रत्ती।

गुण—इन गोलियो से मसूरिका, फोडे, रक्तस्राव, ज्वर और सब प्रकार के व्रणो मे लाभ होता है।

सर्वतोभद्र रस—

रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, रौप्य (चादी) भस्म, स्वर्ण भस्म, शु मैनसिल ये वस्तुये एक-एक तोला बसलोचन २ तोले, इन वस्तुओ को खूब खरल करे। फिर इसमे सब वस्तुओ के बराबर यानी ७ तोले शु० गूगल मिलाकर उर्द के बराबर गोली बनालें।

मात्रा—१-२ वटी। ये सर्वतोभद्ररस सर्व रोग नाशक है।

उष्णादि चूर्ण मधु मे चटाना रोमान्तिका और मसूरिका मे लाभ करता है।

उष्णादि चूर्ण—

काली मिर्च, पीपरामूल कडवा, उसीर, छोटी पीपल, नागरमोथा, मुलेठी, मूर्वा, भारगी, मोचरस, वशलोचन, जवाखार, अतीस, अडूसा, गोखरू, छोटी- बडी कटेरी, ये सब वस्तुये समान भाग ले सूक्ष्मकर कपडछन कर चूर्ण बनालें।

गुण—यह चूर्ण मसूरिका, रोमान्तिका, रक्त ज्वर, स्फोटक, जीर्णज्वर आदि को दूर करता है।

मात्रा—बच्चो को २ रत्ती से ४ रत्ती तक पानी से, बडो को ३ माशे से ६ माशे तक पानी के साथ दे।

—श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य,
प्र चि—जैन धर्मार्थ चिकित्सालय,
कीठम पो. रैपुराजाट (मथुरा)

अप्रैल मास की पहेलियों

के उत्तर

(१) रसोन (२) बिन्दाल (३) सेदा (४) चना (५) ऊट।

—श्री वेदमित्र आर्य A,M B S आयुर्वेदालकार
पो० सरायतरीन जि० मुरादाबाद

विषूचिका (हैजा)

कविराज श्री कमलेश्वर वशिष्ठ आयुर्वेदाचार्य

विषूचिका एक सक्रामक एव मारक रोग है। यद्यपि यह नाम से जितना आसान है उतना यह खतरनाक है। लाखो मनुष्य इस रोग के द्वारा काल ग्रसित होते है। यह रोग जिसका स्थान मुख्यतया भारत ही है और यह रोग प्रधानतया मेले आदि जहा बडी हो भीड रहती हो और गन्दगी रहती हो, खानपान का ठीक न होना जहा पर हो वहा पर यह रोग बडी ही सरलता से फैलता है। यह प्राय कुम्भ आदि जो बडे बडे मेले होते है उनमे ही पैदा होता देखा गया है। अत इस रोग के लक्षण सम्प्राप्ति चिकित्सा आदि का यहा पर आधुनिक मत से और आयुर्वेद मत से मुख्य मुख्य बातो का वर्णन किया जायगा।

सर्व प्रथम हम यहा पर आयुर्वेद मत का इस विषय मे वर्णन करते हे। आयुर्वेद मे इसकी उत्पत्ति अजीर्ण से मानी गई है और निम्न वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थो मे मिलता है। यथा—

> आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदीरितम्।
> विषूच्यलसको तस्माद्भवेश्चापि विलम्बिका॥

अर्थात् आयुर्वेद मे जो तीन अजीर्ण बताये है। (१) आमाजीर्ण, (२) विदग्धाजीर्ण, (३) विष्टब्धाजीर्ण। इन तीनो ही अजीर्णो से क्रमश विषूचिका, अलसक, विलम्बिका आदि रोग हो जाते हैं। जो विषूचिका की ही एक भयावह अवस्था है। इस अवस्था को गुमहैजा, शुष्कविषूचिका आदि नाम से भी पुकारते हैं।

आयुर्वेद की भेल सहिता मे भी निम्न वर्णन मिलेगा—

> विरुद्धा ही रसा भुक्ता दूषितः पवनादिभिः।
> विषी भवन्ती देहेषु पूर्ववृद्धे मलाशयै.॥

अथर्ववेद मे भी विषूचिका का विशद वर्णन देखने को मिलता है। अन्य ऋषिलिखित ग्रन्थो मे भी इसका वर्णन मिलता है।

प्राय ऐसा देखा गया हे कि यह गगा नदी के आस-पास के इलाके मे अधिक पाया जाता है और महामारी रूप मे फैलता देखा गया है।

विषूचिका शब्द की निरुक्ति—

> सूचिभिरव गात्राणि तुदन्सन्तिस्तृते अनिल·।
> यत्राजीर्णेन् सा वैद्यैविषूचिति निगद्यते॥

अर्थात् जिस रोग मे अजीर्ण से वायु कुपित होकर सूई द्वारा अङ्गो मे चुभने की सी पीडा दें उसे विषूचिका कहते है।

विषूचिका निदान—

> न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागणाः।
> मूढास्ताभ जितात्मानो लभन्ते अशनलोलुपा॥

अर्थात् आयुर्वेद के जानने वाले होकर जो परिमित आहार (थोडी मात्रा मे) करने वाले होते है उन्हे यह रोग कदापि नही होता। यह रोग मिथ्याहार, विहार करने वालो मे अधिक पाया जाताहै। जो भोजन के लोभी हो और निरन्तर कुछ न कुछ खाते ही रहते है उनको यह रोग अधिक पाया जाता हे।

विषूचिका लक्षण—

> मूर्च्छातिसारौवमथु· पिपासा
> शूलं भ्रमोद्वेष्टजृम्भदाहा।
> वैवर्ण्य कम्पौ हृदये रुजश्च
> भवन्ति तस्य। शिरसश्च भेद॥

विषूचिका रोग मे मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास अधिक लगना शूलयुक्त भ्रम हाथ पैरो मे ऐठन, जम्भाई, शरीर मे दाह, शरीर के वर्ण का बदल जाना, कपकपी, हृदय मे पीडा तथा शिर शूल आदि लक्षण होते हैं।

विषूचिका उपद्रव—

> निद्रानाशोऽरति· कम्पो मूत्राघातो विसज्ञता।
> अमि ह्युपद्रवा घोरा विषूच्या. पच दारुण.॥

अर्थात् नीद का न आना, बेचैनी, कपकपी, मूत्राघात, होश न आना आदि पाचो उपद्रव भयकर होते है और प्राण का नाश कर देते है।

पाश्चात्य विद्वान इस रोग का कारण एक जीवाणु को मानते है। जिसका आविष्कार जर्मन के प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर कोक महोदय के द्वारा हुआ। यह जीवाणु आकार मे अल्पविराम (Comma) के समान

होता है। इसलिये इसे Comma Bacillus कहते हैं। यह जीवाणु अत्यन्त चचल है। इसको कुछ डाक्टर लोग विब्रिओ कालरा (Bibrio Cholera) भी कहते है।

रोगी के मल, वमन, दूपित दुग्ध और अन्य खाद्य पेय पदार्थों से ये स्वस्थ मनुष्यो पर सक्रान्त होते हैं। खाद्य पेय पदार्थों की दुष्टि मलदूपित वस्त्र पात्रादि के ससर्ग से परिचारक या वाहक हाथो से और मक्खियो द्वारा होती हैं।

कालरा के (हैजे) कई भेद आजकल देखे जाते है।

(१) कालरा सवर्म (सामान्य विपूचिका), (२) देश व्यापी विपूचिका अर्थात् (महामारी रूपक विपूचिका)

आजकल आधुनिक चिकित्सक हैजे के तीन भेद मानते है–१ विलियस (पैत्तिक), २ प्लाटुलेन्ट (वातिक), ३ स्पेजमोडक (कफज)।

कुछ लोग कालेरा के दो भेद मानते है।

(१) एशियाटिक, (२) ब्रिटिश कालरा।

इन सबका वर्णन यहा असम्भव है क्योकि विस्तार होने का भय है। इसके लक्षण भी विपूचिका के लक्षणो से ही समन्वय करते हैं अत इनका वर्णन यहा नही किया जायगा।

विपूचिका को पाश्चात्य विद्वान् कालरा (Cholera) कहते है। कालरा का अर्थ टोटी या नलिका (Sput) है अत इस रोग का न म कालरा रखा गया है कि इसमे नल की टोटी से जल बहता है उसी प्रकार रोगी की गुदनलिका से पानी के समान पतले दस्तो की धारा बहती रहती है। इसलिये इस रोग का नाम कालरा रखा गया है।

विपूचिका कारण पाश्चात्य मन से—

विपूचिका की उत्पत्ति का कारण कोमा वेसिलस (Comma bacillus) नामक जीवाणु माना जाता है। इसकी उत्पत्ति गन्दी और गलीसडी वस्तुओ पर होती है। जब इस प्रकार के दूपित आहार को खाया जाता है तो यह जीवाणु भी भोजन के साथ उदर मे प्रवेश करते है और धीरे धीरे रक्तकणो मे प्रवेश करना प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भ मे एक जीवाणु रक्त कण मे प्रवेश करता है। वह धीरे धीरे रक्त कण को खाकर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। और फिर कण को फोड़ कर बाहर आ जाता है। इसकी वृद्धि अमीबा की तरह होती है। धीरे धीरे रक्त कणो का ह्रास होता जाता है और श्वेताणु बढ जाते है।

रोग का प्रसार—

इस रोग का प्रसार निम्न कुछ प्रकारो से माना जाता है—

(१) मक्खियो द्वारा—मक्खिया अनावृत (बिना ढके) पदार्थो पर बैठती हैं। गन्दी वस्तुओ, गले-सडे फल, विपूचिका रोगी की वमन-विरेचन पर बैठते हे। उनके परो एव पैरो मे इस रोग के कीटाणु लग जाते है। फिर वही मक्खी उस स्थान से शुद्ध वस्तु जो अनावृत है उस पर पहुँच जाती है और वह जीवाणु उस वस्तु पर पहुँच जाते है। यदि मनुष्य उस आहार को खा लेता है तो वह भी विपूचिका से पीडित हो जाता है।

(२) विपूचिका वाहको द्वारा—विपूचिका रोगी जो रोग मुक्त हो गया है। उसके मल मे, वमन मे जीवाणु बाहर निकल गए हो तो वह जीवाणु कुछ दिनो तक बाहर निकलते रहते है। इस प्रकार रोग का प्रसार होता रहता है। ऐसे व्यक्तियो को वाहक कहते है और अवस्था को वाहकावस्था कहते हे। ये वाहक स्वस्थ, व्याधित दो प्रकार के होते है।

विपूचिका मे एक तीसरी प्रकार का वाहक होता है। भावी पूर्ववाहक (Incubatory carrier) कहते हे। इसका मतलब यह है कि रोग के सचय काल मे भी जीवाणु उपक्रुष्ट मनुष्य के मल के साथ निकलते है और वह मनुष्य रोग से पीडित होने के पूर्व रोग का प्रसार करता है। यह रोग प्रसार की दृष्टि से बड़ा ही भयानक है। विपूचिका दूपित खाद्य पदार्थो द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर इसका प्रसार होता है और स्थानान्तर इन वाहको द्वारा होता है।

यह रोग अधिकतर तीर्थ स्थानो मे जहा लाखो मनुष्य एकत्र होते है वहा प्राय विपूचिका उत्पन्न होती है। जब यह लोग वापिस लौटते हे तो यह वाहको द्वारा अन्य स्थान पर पहुँच जाता है। कुछ विद्वान उपर्युक्त अजीर्ण तथा अन्य दूसरे कारणो को भी सहायक मानते है। प्रधानतया केवल 'कोमा बैसीलस' (Comma bacillus) जीवाणु को ही मानते हैं।

रोग का पूर्वरूप—

इस रोग मे सर्दी लगना, पाचन सस्थान की खराबी, आन्त्र शोथ, आमाशयिक अम्ल की कमी, अशन या अध्यशन, मद्याति सेवन, भय तथा आर्द्रता, मानसिक विकार, थकावट तथा तीव्र विरेचन आदि। वायु मण्डल की उष्णता तथा आर्द्रता अधिक होने के समय गर्मी के मौसम के अन्त मे और वर्षा के आरम्भ मे जब पिछले साल की वर्षा कम होती है तब यह रोग अधिक हुआ करता है।

बगाल विहार तथा जो स्थान नीची सतह पर हैं उनमे यह रोग अधिक हुआ करता है।

पाश्चात्य मतानुसार इस विपूचिका के लक्षण ४ भागो मे बाटे गये है—

(१) पूर्वरूप (Premonitory Diarrhoea),
(२) विरेचन की अवस्था (Stage of Evacuation),
(३) अवसाद की अवस्था (Stage of Collapse),
(४) प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of Reaction)

(१) पूर्वरूप (Premonitory Diarrhoea)—यह अवस्था सौम्य प्रकार मे कभी कभी दिखाई देती है। इसमे पित्तयुक्त हरे रग के पीडारहित अनेक दस्त, वमन, हृल्लास, कमजोरी, भूख की कमी तथा त्वचा मे आर्द्रता आदि- लक्षण पाये जाते है।

(२) विरेचन की अवस्था (Stage of evacuation)—इसी अवस्था से प्राय रोग का प्रसार आरम्भ होता है। रोग के आक्रमण के साथ विरेचन शुरू होते हैं। दस्त के समय पेट मे गुड गुड शब्द होता है। किन्तु मरोड नही होता थोडे ही समय के बाद वमन भी शुरू हो जाता है। प्रथम वमन मे अन्न का कुछ अश होता है।

इसके पश्चात् केवल पानी के समान पतला और श्वेत वर्ण का वमन होता है। वमन के समय रोगी को किसी प्रकार की तकलीफ नही होती किन्तु थोडे समय बाद रोगी वमन और विरेचन के कारण थोडे ही समय मे क्षीण हो जाता है।

वमन और दस्त के अतिरिक्त क्षुधानाश, प्यास की अधिकता तथा जिह्वा की शुष्कता ये लक्षण भी होते हैं। हाथ पैरो की अ गुलियो मे एेंठन (Cramps) प्रारम्भ होकर ऊपर की पिडलियों मे फैलते हैं। और उदर की दिवाल तक पहुचते है। एेंठन के समय तीव्र पीडा होती है। शरीर पर पसीना आता है। पसीने के कारण शरीर की बाह्य त्वग का ताप क्रम स्वभाविक अ श से भी कम हो जाता है। किन्तु गुदा मे १०३ से १०४° तक तापक्रम रहता है। रक्तभार तथा मूत्र की राशि कम हो जाती है। इसमे सर्व प्रथम दस्त मल और पित्त मिश्रित पीले वर्ण के होते हैं। फिर कुछ समय पश्चात् यह दस्त तदुल जल के समान श्वेत वर्ण के भी हो सकते है। थोडे से ही समय मे कई गैलन पानी शरीर से निकल जाता हे, दस्त मे बदबू कम होती है, ठोस पदार्थ भी अल्पमात्रा मे होते हैं।

दस्तो को एक पात्र मे रखने से ऊपर स्वच्छ जल और नीचे तलछट होता है। ऊपर पानी मे नमक, एलब्युमिन (Albumin) तथा म्युसिन (Mucin) होता है। उसकी प्रतिक्रिया क्षारीय तथा गुरुत्व १००६ से १०१३ तक होता है। तलछट मे म्युकस (Mucous), ऐपीथीलियल सेल (Epithelial Cell) श्लेष्मकला (Mucous membrane) के छोटे छोटे टुकडे विपूचिका के जीवाणु-लाल कण श्वेतकण तथा अमोनियम (Amonium) और मैगनिशियम (Magnesium) के फास्फेट कण होते हैं।

(३) अवसाद की अवस्था (Stage of Collapse)—यह अवस्था विरेचन होने के ४-४ घन्टे बाद आरम्भ होती है और कभी कभी २४ घन्टे बाद भी होती है। प्राय ४-५ दस्त के कारण जो शरीर का जलास नष्ट होता हे उसके कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। त्वचा ठडी और सिलवटदार होती है। उस पर ठडा पसीना आता है। बगल मे ताप ९५ फा. तक कम मिलता हे। आखे भीतर धसी हुई होती हैं गालो पर गड्डे पड जाते है। आवाज अस्पष्ट हो जाती है। चेहरे पर झुर्रिया पड जाती हे। हाथ पैर ठडे पड जाते है। उच्छवास ठडा होता है। श्वसन (Respirations) उथला होता है। श्वास वेग प्रति मिनट ३०-४० तक तेज हो जाता हे। रक्त भार ७० मि मी से भी कम होता है। नाडी क्षीण और अस्पष्ट हो जाती हे। इसका पता करना असम्भव होता है। रक्त न होने

के कारण शाखागत शिराओ का पतन हो जाता है। कभी कभी रोगी ऐंठन के मारे चिल्लाता है । प्राय: अंत तक रोगी होश मे रहता है । रोगी कभी उदासीन और कभी अधिक चिन्तातुर रहता है। इस अवस्था के अन्त मे वमन तथा दाह कुछ कम होजाती है। मूत्राघात होता है। परन्तु इससे रोगी की स्थिति का कभी वास्तविक अनुमान नही मिलता। इसकी अवधि १२-३६ घन्टे तक होती है। यदि रोग तीव्र हो तो हृदय क्षीण और अनियमित होजाता है। रक्त गाढा होने के कारण इसका सचार ठीक नही होता। मूत्राघात से मूत्रविषमयता (Ureamia) होती है। तथा शरीर मे रोग की विषमयता होती है। इन सब कारणो से रोगी की मृत्यु हो जाती है। कभी कभी यह अवस्था अकस्मात होती है। आयुर्वेद मे इस अवस्था को असाध्य अवस्था कहा गया है।

(४) प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of reaction)—यदि यह रोग बहुत ही तीव्र हो और उसकी चिकित्सा न की जावे तो यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसमे शरीर मे प्रतिक्रिया आरम्भ होती है। बाह्य त्वचा की उष्णता शनैः शनैः स्वाभाविक अंश या उससे अधिक होजाती है। हृदय अधिक बलवान होकर रक्तभार अधिक बढने लगता है जिससे कि नाडी स्पष्ट प्रतीत होने लगती है। आमाशय और आंत्र मे कुछ शान्ति उत्पन्न होकर वमन तथा दस्त कम हो जाते है। दस्त कुछ गाढा और पित्त की अधिकता से पीले रग का होता है। यदि अवसाद की अवस्था अधिक काल तक न हुई हो तो मूत्र की उत्पत्ति भी शुरू हो जाती है और रोगी धीरे धीरे स्वास्थ्य लाभ करने लगता है। यदि अवसाद की अवस्था (Stage of callapse) अधिक काल तक हुई हो तो प्रतिक्रिया तीव्र स्वरूप की होती है। कारण यह होता है कि रक्त सचार शुरू होने पर आन्त्रगत विष रक्त में प्रविष्ट होकर तीव्र विषमयता (Toxaemia) उत्पन्न होती है जिसको रोगी सहन नही कर सकता और जिसके कारण मूत्र की उत्पत्ति न होकर मूत्रविषमयता, तीव्र सन्ताप, प्रलाप तन्द्रा (Cholera Typhoid) बेहोशी इत्यादि गम्भीर लक्षण उत्पन्न होकर इस अवस्था मे ही रोगी की मृत्यु होती है।

(१) मल परीक्षा—दस्त मे जो कला के टुकड़े होते है उनमे से एक कांच की पट्टी पर रजित करके सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (Microscope) से देखने पर अल्प विरामकारी छोटे छोटे जीवाणु दिखाई पडते है। अथवा उचित वर्धन मे उनकी वृद्धि करके पुंजीकरण प्रतिक्रिया के द्वारा पहचान की जाती है।

(२) रक्त परीक्षा—श्वेत कणो की अधिकता, गुरुता की अधिकता तथा नमक की कमी ये उपर्युक्त लक्षण विशूचिका निदर्शक होते हैं।

यह विषूचिका निम्न रोगो से मिलता जुलता है अत चिकित्सा करते समय इसका ध्यान रखना चाहिये। यथा—

(१) सखिया विष (Arsenical poisining)—इससे गले और आमाशय मे जलन व पीडा उत्पन्न होती है। वमन काला और रक्तयुक्त होता है। श्वेतकणो मे कोई अन्तर नही होता है। किंचित् बहुकेन्द्रिय कणो की कुछ अधिकता होती है। उदर मे तीव्र पीडा तथा कुन्थन (मरोड) के साथ खून मिले दस्त होते है।

(२) तीव्र अतिसार—इसमे कुन्थन (मरोड) अधिक होती है और खून अधिक आता है।

(३) पूतीविष या दुष्टान्न विष (Ptomain or food poisoning)—खराब अन्न सेवन करने का इतिहास, सेवन करने के पश्चात् कुछ घण्टो मे सभी सेवन करने वालो का एक साथ पीडित होना, उदर मे पीडा, विरेचन से पूर्व तीव्र कष्टकारक वमन का प्रारम्भ होना, हल्लास (विषूचिका मे नही होता), कुन्थन (विषूचिका मे नही होता), अल्प मात्रा मे मलयुक्त विरेचन, मूत्राघात का अभाव, ऐठन का अभाव, उसके बदले हाथ पैरो मे सरसराहट, सर्दी मालूम होना, बगल का तापक्रम ९९ से १०२ डिग्री फा०, शिर दर्द, नाडी की स्थिति अच्छी होना तथा मल मे जीवाणु की अनुपस्थिति।

विषम ज्वरजन्य अतिसार मे रक्त परीक्षा करने पर—उसमे विषम ज्वर के जीवाणु मिलते हैं।

(२) अलसक (Cholera Sicca)—

अलसक जिसको आयुर्वेद मे गुम हैजा और शुष्क विषूचिका आदि नामो से पुकारा जाता है। पाश्चात्य विद्वान कालरा सीका (Chalera Sicca) नाम से पुका-

रते हैं। यूनानी तथा आंग्ल भाषा मे इसे गुम हैजे के नाम से कहते है। यह विपूचिका का एक तीव्र प्रकार होता है। इसमे वमन और विरेचन का अभाव होता है और आक्रमण के कुछ समय उपरान्त ही रोगी की मृत्यु हो जाती है। मरणोत्तर परीक्षा करने पर रोगी के आन्त्र मे दस्त की भाति श्वेत द्रव अधिक राशि मे मिलता है।

रोग का कारण—

इस रोग का मुख्य कारण मक्खी माना जाता है। इसकी उत्पत्ति गन्दी वस्तुओ पर होती है और यह मक्खी अडे देती हैं। अडे कुछ ही घण्टो मे फूट जाते हैं और १-२ दिन मे पूरी मक्खी बन जाती है। यह मक्खिया गन्दगी से उड कर खुली वस्तुओ पर बैठती है और उस पर अपने पैरो मे चिपके जीवाणुओ को छोड देती है। और यह रोग उक्त वस्तु के खाने पर प्रारम्भ हो जाता है।

चिकित्सा—

आयुर्वेद मे विपूचिका की चिकित्सा दो प्रकार से की जाती है।

(१) निवारक चिकित्सा अर्थात् अवरोधक चिकित्सा, (२) रोग नाशक चिकित्सा।

१ अवरोधक चिकित्सा—इसमे मक्खियो आदि का विनाश एव उनकी उत्पत्ति को रोकना तथा एक रोगी से दूसरे रोगी को यह तथा रोगी से स्वस्थ मनुष्य को यह रोग न हो ऐसा उपाय करना अवरोधक चिकित्सा कहलाती है।

२ रोगनाशक चिकित्सा—इसमे जिन लोगो को विपूचिका रोग हो गया हो उनकी चिकित्सा करके रोगी को स्वस्थ बना देना रोगनाशक चिकित्सा कहलाती है।

आयुर्वेद मे निम्न रस वटी आदि विपचिका को दूर करती है। यथा—शख वटी, महाशख वटी, अजीर्ण कटक रस, रामबाण रस, ज्वालानल रस, अग्निकुमार रस, कर्पूरादि रस, गन्धक वटी, चित्रक वटी तथा जो अन्य रस अजीर्ण को दूर करने तथा अग्नि को प्रदीप्त करने वाले हैं वह भी विपूचिका मे लाभकारी देखे गये हैं।

विपूचिका के अत्यन्त बढ़ने पर और अधिक प्यास लगने पर अधिक दुखी हुये रोगी को प्राण रक्षा के लिए तक्र या दही समान जल मिलाकर अथवा नारियल का पानी, लवग का उबाला पानी पिलाना चाहिए।

निम्न प्रयोग विपूचिका पर अनुभूत है—

कर्पूर, सत्व पोदीना, सत्व अजवायन, सत्व लोबान आदि को समान भाग मिश्रण करके १०-१५ बूद बताशे मे रखकर खिलावे।

कर्पूरासव, कर्पूर वटी, अहिफेनासव आदि का प्रयोग भी लाभप्रद है। कर्पूर २ रत्ती, पिपरमेंट ½ रत्ती, अजमोद ६ माशा, मिश्री १ छटाक, खाने का सोडा १ तोला बारीक पीसकर २-२ तोले की मात्रा हर २ घण्टे बाद देने से विपूचिका नाशक है।

निम्न लेप विपूचिका के उदरशूल पर लाभ करते हैं।

(१) दारुषटक—देवदारु, सफेद बच, कूठ, सोया, हीग तथा सैंधव काजी मे पीस लेवें। शूल पर तथा उदर के फूलने पर लेप करने से लाभ होता है।

(२) जवाखार, जौ का आटा को तक्र मे फैंटकर उदर पर लेप करने पर शूल, उदर का फूलना नष्ट होता है।

विपूचिका मे उबटन तैल प्रयोग—दालचीनी, तेजपात, एरड की जड की छाल, सहिजने की छाल, कूठ, बच तथा सोये की पत्ती का उबटन लगाने से अथवा तैल सिद्ध करके लगावे, विपूचिका दूर होती है। निम्न चूर्ण को सेवन करने पर विपूचिका नष्ट होती है। यथा—

सोठ, पीपल, तेजपात, इलायची, नागरमोथा, हीग इनको प्याज के रस में ७ दिन तक घोटें, फिर पोदीने के साथ ७ बार घोटे, इसके बाद इसमे ६ माशे कर्पूर मिला कर गोलिया बना लेवे। इसको प्याज के रस या पोदीने के अर्क से साथ सेवन करने पर विसूचिका नष्ट होती है। विपूचिका रोग मे प्यास लगने पर अर्क पोदीना, अर्क सौंफ या षडग जल वा लवग इलायची नागरमोथा से सिद्ध जल का प्रयोग करें।

हिग्वादि वटी, जातीफलादि वटी का प्रयोग भी बहुत लाभकारी है। विसूचिका हरण रस भी इसमे पर्याप्त लाभ करता है। इन सब उपरोक्त औषधियो का अनुपान

प्याज का रस या अर्क पोदीना रखें ।

स्व. पडित ठाकुरदत्त शर्मा देहरादून द्वारा निर्मित अमृतधारा भी हैजे की एक प्रसिद्ध दवा है ।

निम्न पीयूष विन्दू भी विपूचिका मे परम हितकारा देखा गया है। सत्व पोदीना-सत्व-अजवायन-सत्व लोवान कर्पूर समान लेकर मिला लेवे, फिर इसमे इलायची छोटी और लौग १,१ माशे लेकर कूटकर पाव भर जल मे पकावे। १-१½ छटांक शेष रहने पर छान लेवे । इसमे उपरोक्त सत्व जो जल सम हो जाता है मिला देवें। इसमे १-१ मात्रा १०-१५ बूंद आध-आध घन्टे के उपरान्त देवे । पूर्ण परीक्षित है ।

पाश्चात्य विद्वान एक अद्भुत प्रयोग करते है उसका लाभ भी वहुत देखा गया है । वह प्रयोग लवण जल प्रक्षेपण है जिसको निम्न तरह से करते है–

यह विधि उस असाध्य अवस्था मे भी की जाती है जिसे आयुर्वेद मे असाध्य कहा गया है। पाश्चात्य मत से इसे अवसाद की अवस्था (Stage of Collapse) कहते है। इस अवस्था मे मुख द्वारा औषधि सेवन व्यर्थ होता है क्योकि औषधि का शोषण इसमे नही होता और वह आत मे इकट्ठी होती रहती है । ऐसी अवस्था मे इस प्रकार की चिकित्सा लाभप्रद होती है । जिससे शरीर के जलास-क्षार-तथा लवण इनकी पूर्ति होकर रक्त सचार मे सहायता मिलती है। वह अतिवल (Hyper--tonic) तथा क्षारीय लवण जल का शरीर मे प्रवेश करने से होती है ।

अतिवल लवण जल निर्माण विधि–सोडियम क्लोराइड १२० ग्रेन, कैलशियम क्लोराइड ४ ग्रेन, डिस्टल्ड वाटर (Distilled Water) १ पाइंट ।

क्षारीय अतिबल जल निर्माण विधि—सोडियम क्लोराइड १० ग्रेन, सोडा वाई कार्ब १६० ग्रेन, परिश्रुत जल (Distilled water) एक पाइन्ट

इन घोलो के बनाने के लिये हमेशा ताजा विशोधित जल ही लेना उत्तम है। किन्तु वह न मिले तब साफ उवाला जल ही प्रयुक्त करना चाहिए । क्षारीय लवण जल को वनाने के लिए सोडावाईकार्व को कागज में रख कर कन्दुकयन्त्र (Autoclave) मे शोधित करे फिर नमक को पानी मे उवाल लेवे । शीतल हो जाने पर उसमे विशोधित सोडा मिलावे । पानी मे सोडा डाल कर उसे उवालना नही चाहिए। यह नमक का घोल बनाने से पहले रोगी के रक्त की गुरुता तथा गुदा के भीतर का तापमान देख लेना चाहिए। गुरुता से नमक के घोल की राशि तथा गुदा की उष्णता से घोल की उष्णता निश्चित की जाती है ।

रक्त की गुरुता नापने की पद्धति–

गिलसरीन और पानी के मिश्रण से दोनो के प्रमाण मे अन्तर करके रखा जाता है जो १०५४ से १०६४ तक दो-दो अंश के फर्क की गुरुता के ६ घोल बनाकर ६ छोटी छोटी शीशियो मे रखे । फिर रोगी की अगुली मे सूई के द्वारा छिद्र करे। फिर जो रक्त आप से आप निकले उसे केशनलिका (Capillary Tube) मे लेकर प्रत्येक शीशी मे क्रमश एक एक बूद रक्त डालना चाहिए। जिस घोल मे रक्तविन्दु एक दो सैकेंड के लिए पृष्ठ भाग मे रह कर पश्चात् डूब जाता है उस घोल की जो गुरुता रहती है वही रक्त की भी पायी जाती है ।

लवण जल की राशि—

साधारणतया रक्त की गुरुता के अनुसार लवण जल की राशि निश्चित की जाती है । गुरुता १०५८ होने पर लवण जल १½ पाइट, १०६० होने पर २ पाइन्ट, १०६२ पर २½ पाइन्ट, १०६३ पर ३ और १०६४ पर ४ पाइट, १०६५ पर ५ पाइन्ट के लगभग जल प्रविष्ट किया जाता है। यदि रोगी की स्थिति अधिक खराब हो तो प्रमाण से भी अधिक जल प्रविष्ट कर सकते है। बालको मे, स्त्रियो मे तथा दुर्बल रोगियो मे प्रमाण से कुछ कम पानी प्रविष्ट करना चाहिए । पानी तब तक प्रविष्ट किया जाता है जब तक कि रक्तभार ११० मि मि (शाखाओ की नाडियो की पूर्ण स्पष्टता) तथा गुरुता १०५० न हो जावे । जल प्रविष्ट करते समय रोगी के ऊपर ध्यान देना चाहिये । यदि रोगी तीव्र सिर दर्द, सर्दी, श्वासकृच्छता, हृदय के पूर्व प्रदेश मे पीडा-बेचैनी इत्यादि शिकायत करे तो जल प्रवेश बन्द करना चाहिये या उसका प्रवाह मन्द कर देना चाहिए। इन लक्षणो से शरीर मे जल की अधिकता तथा उसके सचारण मे हृदय की व्याकुलता प्रदर्शित होती है । प्रत्येक समय प्रथम पाइन्ट क्षारीय लवण जल और

शेष राशि अतिबल लवण जल प्रविष्ट करना चाहिए।

जल की उष्णता—यह उष्णता रोगी की गुदा के तापक्रम पर निर्भर होती है यदि तापक्रम ९७° F से कम हो तो पानी की उष्णता १०२° से १०४° फै तक, तापक्रम १००° हो तो पानी की उष्णता ९८° F फै तक और यदि उष्णता १०२° फै से अधिक हो तो पानी की उष्णता ८० फै से ९० फै तक होनी चाहिये।

जल प्रवेश के निर्देश—जब आखें भीतर धसी हुई हो, त्वचा ठडी हो, आवाज खोखली, हाथ पैरो मे ऐंठन, नाडी गति अल्प या बिलकुल नही, रक्त का गाढापन तथा भारन्यूनता, नीलिमा, अत्यन्त बेचैनी तथा मूत्र का बन्द होना इत्यादि लक्षण होते है तब लवण जल का प्रयोग करना चाहिए। लवण जल के प्रयोग के लिये केवल एक लक्षण प्रयुक्त होता है। जब इनसे भी अधिक लक्षण उपस्थित होते है तब लवण जल प्रयुक्त नही होता है। चाहे वह लक्षण विशूचिका जन्य हो या अन्य रोग जन्य यथा रक्तस्रावादि द्रवनाश जन्य हो।

जल प्रवेश मार्ग—

शरीर मे यह लवण जल निम्न मार्गो द्वारा प्रविष्ट किया जाता है—

(१) शिरा द्वारा—यह मार्ग जल प्रवेश के लिए सर्वोत्तम माना जाता है। इससे शरीर मे नष्ट हुये जल क्षारादि की शीघ्रातिशीघ्र पूर्ति होकर रक्त सचार मे सुधार होता है। इसके लिये प्राय कूर्परसन्धि के सामने बाहुसकोचनी शिरा (Median Besalic) या क्वचित अन्तर्गुल्फ के समीपवर्ती दीर्घोताना (Long Sephanous) शिरा पसन्द की जाती है। तदन्तर शिरा के ऊपर की त्वचा टिंचर आयोडीन या एक्रीफिलेविन के फाये से शुद्ध करके शिरा की दिशा मे त्वचा मे ½ से १ इंच का चीरा लगाया जाता है। फिर त्वचा को काटकर शिरा से प्रथक किया जाता है। यदि सिरा साफ और स्पष्ट न हो जैसा कि प्राय अवसाद की अवस्था मे हुआ करता है तो कर्पूर के ऊपर बन्ध कसना चाहिये जो शिरा के रक्त प्रवाह को बन्द कर देवें किन्तु धमनी चलती रहे। इससे शिरा स्पष्ट हो जाती है। उपर्युक्त कार्य कर चुकने पर शिरा को दो स्थानो पर बन्ध लगाकर नीचे का बंध कसना चाहिये और ऊपर का बंध कुछ ढीला रखना चाहिये। फिर शिरा प्रस्फुट करने के लिये नीचे लगाये हुये बन्ध को छोड़कर ऊपर वाले बंध के कुछ नीचे कैंची और चिमटी के द्वारा तिरछा (वी के आकार का) छेद किया जाता है और उसमें नलिका (Canula) प्रविष्ट करके उसको ऊपर बन्ध से कस दिया जाता है। इस पद्धति को खुली पद्धति (Open method) कहते है। और इसी का प्राय प्रयोग करते हैं। दूसरी बन्द पद्धति (Closed method) होती है जिसमें त्वचा को विशुद्ध करने पर मोटी सुई शिरा मे प्रविष्ट की जाती है। इसके लिए कुछ अभ्यास और कुशलता की आवश्यकता होती है।

(२) त्वचा द्वारा—इस मार्ग का उपयोग रोग के प्रारम्भ मे जब रक्त की गुरुता स्वाभाविक से कुछ अधिक नही होती तथा शिरा द्वारा पानी देने से भी उसमे सहयोग होता है। प्राय. शिरा द्वारा पानी देने से भी त्वचा द्वारा १ पाइन्ट दिया जाता है। इसके देने के लिये उदर प्रदेश, बगल, कटिविभाग उरू प्रदेश तथा स्त्रियों मे स्तन्याय प्रदेश प्रयुक्त होता है। इस मार्ग के निम्न दोष हैं—

मन्दगति से पानी का प्रवेश, प्रवेश स्थान पर पीडा तथा विद्रधि और शोथ उत्पन्न होने का डर रहता है। इसलिये कुछ लोग इस मार्ग का उपयोग नही करते।

(३) उदरकला द्वारा (Intraperitoneal)—यह मार्ग सरल सुलभ कम पीडादायक तथा शीघ्र कार्यकर है। अतएव त्वचा की अपेक्षा उत्तम है। स्थूल मनुष्यो में या बच्चो मे जब शिरा का निकलना कठिन होता है तब शिरा द्वारा लवण जल देने के लिये जो अनुभव तथा शिक्षण होना चाहिये नही होता तब इस मार्ग का अवलम्बन करना श्रेयस्कर होता है। उदर कला मे जल प्रविष्ट करने के लिये नाभि के नीचे त्वचा को विशोधित करने पर नस्तर से एक चीरा लगाकर उसमे व्रीहीमुख यत्र तथा द्विद्वारा नलिका (Trocar and Canula) उदर गुहा मे प्रविष्ट की जाती है और इस नलिका के द्वारा न्यूनबल लवण जल भीतर प्रविष्ट किया जाता है।

(४) गुदा द्वारा जल प्रवेश—इसका उपयोग बहुत कम होता है। क्योंकि इस मार्ग से जल का शोषण बहुत मन्दगति से होता है। परन्तु कभी कभी प्रारम्भिक

तथा प्रतिक्रिया की अवस्था मे जब विरेचन बहुत नही होता तथा जब बालको मे शिरा का निकलना कठिन रहता है तब इस मार्ग का अवलम्बन किया जाता है। गुदा मे जल बिन्दुश (Drop method) प्रविष्ट करना चाहिये।

प्रवाह की गति—शिरा मे लवण जल प्रतिमिनट २-४ औस के हिसाब से बहना चाहिये। अर्थात् १ पाइट जल ५-१० मिनट मे प्रविष्ट करना चाहिये। शिरा मे नलिका प्रवेश के पूर्व उसका पेच खोलकर थोडा सा जल बाहर निकाल देना चाहिये। इससे नलिकान्तगर्त वायु बाहर चली जाती है तथा यत्र ठीक कार्य कर रहा है या नही इसका ज्ञान भी हो जाता है। एक बार लवण जल प्रविष्ट करने पर यदि फिर से रक्त की गुरुता वृद्धि, नाड़ी की क्षीणता, रक्तभार न्यूनता इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते है तो पुन लवण जल का प्रयोग करना चाहिये। इस तरह कई बार जल प्रविष्ट किया जाता है।

लवण जल प्रकार—लवण अतिबल (Hypertonic), समबल (Isotonic) तथा न्यूनबल (Hypotonic) इस तरह तीन प्रकार का होता है। इस रोग में सम तथा न्यूनबल लवणजल मे सोडाबाईकार्ब भी मिलाया जाता है।

(१)समबल क्षारीय लवण जल--सोडियम क्लोराइड १० ग्रेन सोडा बाई कार्ब ६० ग्रेन तथा जल १ पाइन्ट

(२) न्यूनबल लवण जल—सोडियम क्लोराइड ६० ग्रेन, सोडा बाईकार्ब १६० ग्रेन और जल १पाइन्ट। यदि रोग की अवधि २४ घन्टे के भीतर होने पर भी लवण जल देने की आवश्यकता हो तो अतिबल लवण जल दिया जाता है। यदि २४-४० घन्टे के अन्दर फिर लवण जल देना आवश्यक हो तो समबल क्षारीय लवण जल दिया जाता है। और यदि ४८ घन्टे के बाद भी नमक का पानी देना हो तो न्यूनबल क्षारीय जल दिया जाता है। सक्षेप से प्रारम्भिक लवण जल अतिबल, अन्तरोत्तर क्षारीय समबल और न्यून बल देना चाहिये।

विपूचिका की आधुनिक औषध चिकित्सा एवं रोग प्रसार रोकने के उपाय—

विषूचिका रोग का प्रसार प्राय ग्रीष्म ऋतु के अन्त से और वर्षा के तीनो कालो मे हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य ऋतुओ मे भी इसका प्रसार हो सकता है किन्तु यह मुख्यतया इन्ही ऋतुओ मे महामारी रूप मे फैलता है। इसका प्रसार रोकने के लिये निम्न उपाय करने चाहिये—

(१) रोग प्रसार के दिनो मे अमृतधारा का प्रयोग नित्य करना चाहिये तथा सब मनुष्यो को Cholera Vaccine का टीका लगा देना चाहिए।

(२) पानी, दूध आदि उबाल कर पीना चाहिए। खाने की वस्तुओ को ढक कर रखना चाहिये। फल सब्जी आदि को लाल दवा (Potassium permagnate) के घोल से धोकर फिर उबाले पानी से धोकर खाये।

(३) कुओ तालाबो के जल मे जो पीने के लिये प्रयुक्त होता हो उसमे भी लाल दवा (Potassium permagnate) डालनी चाहिये।

(४) मक्खियो के नाश के लिये Flit नामक जीवाणु-नाशक औषधि तथा डी डी टी पाउडर का प्रयोग करे।

(५) रोगी के वस्त्रो, कमरे आदि को साफ रखना चाहिये। रोगी की परिचर्या के लिये दो ही व्यक्ति रहने चाहिये। एक रात्रि मे रहे तथा एक दिन मे रहे। दोनो को प्रतिरोधक टीके लगा देने चाहिये।

(६) अपने पाचन को ठीक रखना चाहिये तथा खीरे, खरबूजे, अमरूद आदि भारी सब्जियो का प्रयोग करना चाहिये तथा गले सडे फल को नही खाने चाहिये।

(७) रोगी के कै दस्त को जला देना चाहिए या डी डी टी पाउडर डालकर दवा देना चाहिए।

(८) इन दिनो प्याज, सिर्का, दही, हीग, पोदीना, लहसन, निम्बु आदि का प्रयोग करना चाहिये। यदि प्याज से परहेज हो तो नीबू का प्रयोग करना चाहिये।

प्यास लगने पर बर्फ का पानी, अर्क सौफ, सोडा बाई कार्ब तथा निम्बु का रस मिला कर देवे।

क्रमिकुठार रस, अजीर्ण कटक रस, लक्ष्मीनारायण रस, लहशुनादि वटी, अर्क पोदीना, सजीवनी वटी का प्रयोग अर्क पोदीने के साथ प्याज के रस के साथ प्रयोग करना चाहिये।

आधुनिक चिकित्सा—

सिवाजौल २-२ गोली ४-४ घण्टे बाद प्यास आदि

उपद्रव पर ग्लुकोज देव। सल्फाग्वानाडीन १-२ गोली अथवा चौथाई चौथाई गोली आध आध घन्टे बाद देवें। राल्फाडायजीन भी लाभप्रद है। कातरा टेबलेट का प्रयोग भी हितकर है। मूर्च्छा नाश के लिए ½ रत्ती मकरध्वज, कर्पूर और शहद के साथ चटावें।

प्रवाल भस्म, प्रवाल पिष्टी ४ रत्ती मधु मिलाकर प्रयोग करें। खमीरा, गाजवा, अम्बरी व दवाउलमिस्क अथवा दवउतमिस्क सादा चटाना मूर्च्छा मे लाभ करता है। मकरध्वज वटी, वृहत करतूरी भैरव, कर्पूर १ १ रत्ती मिला मधु एव दूध की मलाई के साथ चटावें।

कुछ निम्न आधुनिक प्रयोग भी विषूचिका मे लाभकारी है—

(१) आयल मेन्थि पिप, आयल सिनेमोमाई, आयल केजुपुट, आयल अजवायन प्रत्येक १-१ ड्राम। इनको ५-५ बूद पानी मे मिलाकर १-१ घण्टे बाद देवें।

(२) एसिड सल्फ एरोमेटिक १५ मि०, क्लोरोडीन १० मि०, टिंचर कैप्सीसी ५ मि०, एक्वा मैंथ १ औंस। ऐसी एक मात्रा ३-३ घण्टे बाद देवें।

(३) विषूचिका की शीतावस्था मे—स्प्रिट एमोनियम ऐरोमेटिकस ३० मि०, स्प्रिट कैम्फर को १० मि०, ब्राण्डी १ ड्राम, ऐक्वा मैथा पिपरेटा १ औंस, ऐसी ६ मात्रा ६-६ घण्टे बाद।

(४) मूत्राभाव के लिए पोटास नाइट्रास २० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी २० मि०, लाइकर अमोनियम २ ड्राम, स्प्रिट जूनिपेराई १० मि०, इन्फूच्चय बकु १ औंस-ऐसी १ मात्रा ४-४ घन्टे बाद देवें।

(५) यवक्षार ४ रत्ती, सगे यहूद पिष्टी ४ रत्ती बराबर की मिश्री मिलाकर गर्म जल से देवें। मूत्रावरोध ठीक होता है।

(६) थाईमोल (सत अजवायन ८० ग्रेन), मैंथोल (सत पोदीना) ६० ग्रेन, कैम्फर (कर्पूर) ६० ग्रेन एकत्र मिला लेवें। फिर ५-७ बूद डाल जल मिला आध आध घन्टे बाद देवें।

चेतावनी—

हैजे के रोगी की वमन व दस्त को तुरन्त बन्द करने के लिए कोई अवरोधक औषधि देना चिकित्सक की भयङ्कर भूल है। क्योंकि इससे विषैला पदार्थ (Toxin) अन्दर ही रुक जाता है और अफारा, बेचैनी, मूर्छा, गुल्मी आदि उपद्रव होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

—कविराज श्री [illegible] आयुर्वेदाचार्य
[illegible]नगर, [illegible]।

पृष्ठ २६ का शेषांश

चिकित्सा—

(१) कच्ची लाख को मधु के साथ मिलाकर दूध के साथ पीने को देना चाहिये।

(२) औषध देने के कुछ देर बाद शर्करायुक्त अन्न का दूध के साथ सेवन कराना चाहिए।

(३) उरःक्षत के साथ यदि अतिसार भी हो तो लाक्षा, मोचा, अतीस, पाठा एव इन्द्र जौ—इनका चूर्ण देना चाहिये।

(४) यदि रोगी की अग्निदीप्त हो तो कच्ची लाख, मधुमक्खियो के छत्ते की मोम, जीवनीय गण की १० औषधिया, खाट, वंशलोचन, गेहूँ का आटा—इनको दूध मे पकाकर रोगी को पिलाना चाहिये।

(५) एलादि गुटिका, यष्ट्याव्हादि घृत, कोलादि घृत, अमृतप्राश घृत, श्वदंष्ट्रादि घृत, सर्पिगुंड, सर्पिर्मोदक, सैंधवादि चूर्ण—इन चरकोक्त योगो का प्रयोग करें।

(६) अति व्यवाय से उत्पन्न उरःक्षत मे वृंहण अन्नपान का प्रयोग करना चाहिए।

(७) चन्द्रकला रस, शृग, मधुयष्टि, लाक्षा सितोपलादि चूर्ण—इनका यथावश्यक उपयोग करना चाहिए।

(८) लाक्षा चूर्ण १ माशा, चन्द्रकला रस ४ रत्ती, शृग ४ रत्ती, मधुयष्टी १ माशा। एक मात्रा। ऐसी तीन मात्रा मे दिन मे तीन बार वासावलेह ½ तोला के साथ रक्तष्ठीवन तथा पार्श्वशूल मे देने मे बहुत लाभ देखा गया है।

पथ्य—शालि, गोधूम, यवान्न, मुद्गयूष, दाडिम, आमलकी, आम, द्राक्षा, अजाक्षीर, बलासिद्ध क्षीर, मद्य, जागल मास।

अपथ्य—वृन्ताक, कारवेल्लक, विल्व, राजिका, तैलसिद्ध अन्न, मैथुन, दिवास्वप्न, क्रोध।

—वैद्य शिवचरनलाल ध्यानी बी आई एम एस.
आयुर्वदाचार्य, एच पी ए, जामनगर।

जलोदर

श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री ।

महा रोगो के गणना प्रसग मे आयुर्वेदविदो ने जिन रोगो का उल्लेख किया है उनमे उदर रोग का भी एक मौलिक स्थान है ।

आठ महा रोग—१ वातव्याधि, २ अश्मरी (पथरी) ३. कुष्ठ, ४ प्रमेह, ५ उदर, ६ भगन्दर, ७ ववासीर, ८ सग्रहणी ।

निदान—

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मल सचयात् ॥

—योगरत्नाकर

समस्त शारीरिक रोग पाचकाग्नि के मन्द पड जाने से ही होते है । अन्य रोगो मे और भी कारण हो सकते हैं किन्तु उदर रोगो मे पाचकाग्नि का मन्द पड जाना ही मूल कारण माना गया है तथा मलिन अन्नो के द्वारा उत्पन्न अजीर्ण से एव तन्मूलक मल सचय से भी यह रोग हो जाता है । कुछ अन्य तन्त्रकारो ने इसकी उत्पत्ति मे पाप कर्मों को भी कारण माना है, उचित भी है चरक के शब्दो मे—'न तदस्ति महत्कर्म फल यस्य न भुज्यते', ऐसा कोई महान् कार्य नही, जिसका फल कर्ता को भोगना न पडे । धार्मिक दृष्टि से भी इस तथ्य को स्वीकार करना ही पडेगा, क्योकि—'स्वय कर्म करोत्यात्मा स्वय तत्फलमश्नुते', मानव स्वय कार्य को करता है और स्वय उनके फल का उपभोग करता है । अस्तु ।

पूर्वरूप—

तत्पूर्वरूप वलवर्णकांक्षा
वलीविनाशो जठरेऽपि राज्यः ।
जीर्णापरिज्ञान विदाहवत्यो
वस्तौरुज पाद गतश्चशोफ ॥

—सु०

जिस रोगी को निकट भविष्य मे उदर रोग होने वाला होता है उसमे निम्नलिखित मानसिक एव शारीरिक विकृतिया कुछ समय पूर्व दिखाई देती है, यथा—अस्वाभाविक वल एव सुरूप की प्राप्ति की इच्छा, पेट मे
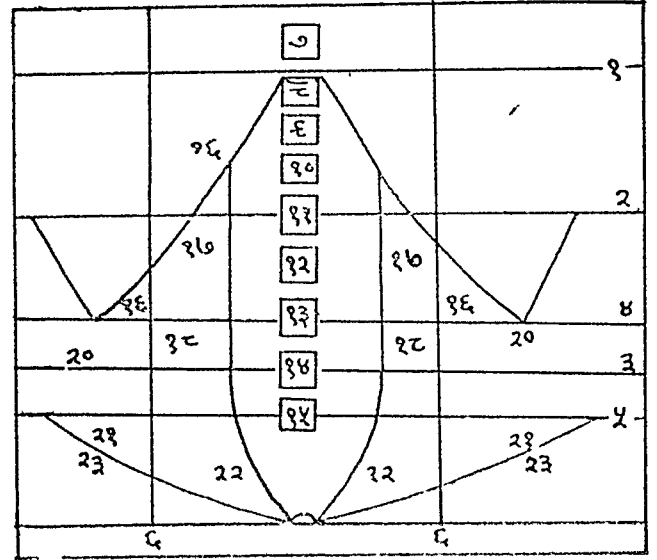
सावयव उदर विभाग

अनुप्रस्थ रेखायें १, २, ३, जठर मध्यीय स्तर २, अध.पर्शुक तोरणिका ४. अन्तरार्बुदीय रेखा ५, उदग्ररेखा ६ और कशेरुक ७, १०, अग्रपत्र ८, कटि प्रादेशिक कशेरुक ११, १५, नाभि १४, पित्ताशय १६, अधि जठर प्रदेश १७, नाभीय प्रदेश १८, अनुपार्श्विक प्रदेश १९, कटि प्रदेश २०, जघन कपालीय प्रदेश २१, उप जठर प्रदेश २२, वक्षणीय बन्धन २३।

होने वाली त्रिवलियो का न दिखाई देना, उदर भाग मे भी रोमराजि (रोआ) की उत्पत्ति, भोजन के ठीक पाचन न होने के कारण वस्ति प्रदेश मे जलन के समान होने वाली विविध प्रकार की पीड़ाये और पाव मे शोथ भी हो जाता है ।

सम्प्राप्ति—

रुद्ध्वास्वेदाम्बुवाहीनि, दोषा' स्रोतांसि सचिता ।
प्राणाग्न्यपानान्सन्दूष्य, जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥

—योगरत्नाकर

कारण विशेष से सचित वातादि दोष स्वेदवाहिनी एव रसवाहिनी शिराओ को रोककर अर्थात् शिराओ की गति को शिथिल करके प्राणवायु, अपानवायु एवं

पाचकाग्नि को दूषित करके उदर रोग की नीव डाल देते है। इस रोग मे उदर के सभी कल पुर्जे बिगड जाते है, अग्निमद हो जाती है, हृदय ठीक प्रकार से रक्त का परिचालन नही कर पाता, फुफ्फुस रक्तशोधन तथा श्वासोच्छवास क्रिया मे असमर्थ हो जाता है। यकृत् और प्लीहा कभी असमर्थ हो जाते तथा कभी बढ जाते हैं। क्लोम की स्थिति भी विकृत हो जाती है। वृक्क मूत्र को छानने मे असमर्थता व्यक्त करने लगते है। इन सब कारणो से उदर रोग का जन्म हो जाता है।

उदर रोगो के भेद—

पृथग्दोषै: समस्तैश्च प्लीहबद्ध क्षतोदकै:।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषा लिंगं पृथक्शृणु॥

तत्र पृथग्दोषै वातपित्त कफै सन्निपातेनैकेकम्, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर जलोदरमितिसज्ञाभवन्ति। तेष्वसाध्य बद्ध गुद परिस्राविच। षडवशिष्टानि कृच्छ्र-साध्यानि सर्वाण्येव प्रत्याख्यायोपक्रमेत्। तेष्वाद्यश्चतुर्वर्गो भेषजसाध्य, उत्तर शस्त्रसाध्य। कालप्रकर्षात् सर्वाण्येव शस्त्रसाध्यानि भवन्ति, वर्जयितव्यानि वा।

वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर, जलोदर–ये आठ उदर रोग उत्तरोत्तर कष्टसाध्य होते हे। इनमे उस उदर रोगी को एकदम असाध्य समझना चाहिये जिसका अनेक उपाय करने पर भी मल न निकलता हो अथवा जिसका मल बिना किसी प्रयत्न के भी अधिक मात्रा मे निकल रहा हो किन्तु बार बार रोकने का प्रयत्न करने पर भी न रुकता हो। शेष छ कष्ट साध्य होते हे, अत इस प्रकार के रोगियो के अभिभावको को पहिले ही इस विषम स्थिति को समझा-कर तब चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिए। पहिले चार उदर रोग औषधियो से अच्छे किये जा सकते है। शेष चारो की चिकित्सा के लिये सुश्रुत की आज्ञा है कि शस्त्र चिकित्सा (आप्रेशन) से इनमे शीघ्र लाभ होता है। यदि चिकित्सा मे किसी प्रकार की भी असावधानी हुई तो सभी की शस्त्र चिकित्सा करनी पडती है। अथवा हताश होकर छोड देना पडता है। इस प्रकरण मे उदर शब्द उदर रोगो का सूचक माना गया है।

उदरों के सामान्य लक्षण—

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्य दुर्बलाग्निता।
शोफ: सदनमङ्गानां सङ्गो वात पुरीषयो:॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्तिहि॥

पेट मे अफरा, चलने मे कमजोरी का अनुभव, दुर्बलता, अग्नि का मन्द पड़जाना, सूजन, शरीर के अवयवों का ढीला पड़जाना, टट्टी, पेशाब तथा अपान वायु का रुक जाना या कम आना, जलन, उबाई का बना रहना-ये लक्षण सभी उदर रोगो मे प्राय दिखाई देते हैं। सभी उदर रोग जब असाध्यावस्था मे पहुच जाते है तब वे जलोदर का रूप धारण कर लेते है अत तत्सम्बन्धित होने के कारण यहा पर सक्षेप मे सभी उदर रोगो का सक्षेप मे परिचय एव चिकित्सा दी जा रही है।

वातज उदर के लक्षण—इसमे पेट का भाग कड़ा, पसलियो मे शोथ, पसली, पेट, कमर, पीठ एव सन्धियों मे शूल, सूखी खासी, अ गड़ाई तथा मुखाकृति कुछ मलिन सी हो जाती है। झुरिया पड जाना, पेट मे गुड गुड शब्द का होना प्रतीत होता है।

निर्जलोदर लक्षण—सर्व त्वतोयमरुण शोफनैवाति भारिकम्। गवाक्षितशिरा जालै सदा गुडगुडायते॥

यद्यपि हमारे मूलभूत आचार्यो ने उदर रोग को आठ भागो मे विभक्त किया है तथापि कुछ तद्विदो के अनुभव बतलाते है कि उक्त आठ भेदो के बाद भी एक "निर्जलोदर" नामक भेद देखा गया है, किन्तु हमारे विचार से उक्त नवम भेद वात प्रधान पित्त जलोदर के लक्षणो मे ही अन्तर्भूत हो जाता है। क्योंकि शोथ मे भार का कम होना, शरीर पर शिराजालो का उभड आना और गुड-गुड शब्द का सुनाई देना ये सब लक्षण वायु के हे। शोथ मे गहरी लालिमा का होना जिसमे कुछ कालापन झलकता हो, और पानी का न रहना ये लक्षण पित्त के हैं।

पित्तज उदर के लक्षण—इसमे ज्वर, मूर्च्छा, प्यास, दाह, भ्रम, अतिसार और स्वेद की अधिकता तथा मुख का स्वाद कड़वा हो जाता है। पेट की शिराये हरी, पीली, काली पडकर उभर आती हे तथा पेट का रग भी कुछ अस्वाभाविक हो जाता है। मल, मूत्र, त्वचा का रग भी हरा पीला सा दीखने लगता है। मुख से धुआ सा निकलता है।

कफज उदर के लक्षण—इसमे शारीरिक अवसाद,

पेट पर पर्याप्त शोथ, निद्रा की अधिकता, भोजन मे अरुचि का बना रहना, श्वास की गति मे अधिकता, सम्पूर्ण देह मे वेदना, पेट के ऊपर सफेद धारिया सी पड़ जाना, मल मे सफेदी तथा चिकनापन, कास, शरीर का ठडापन, पेट मे अधिक कडापन आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

दूष्योदर अथवा सन्निपातोदर का निदान और लक्षण—स्त्रियां पुरुषो को अपने वश मे करने के लिये अथवा स्त्रियां स्त्रियो को वश मे करने के लिए कभी कभी भोज्य पदार्थो मे नख, केश, रज, मल, मूत्र या विष मिला कर दे देती है। इनके खालेने से तथा जादू टोना आदि के प्रभाव से, गन्दा जल पी लेने से, दूषी विषो को खालेने से अथवा तीनो दोषो के सहसा प्रकुपित हो जाने से दूष्योदर या सन्निपातोदर हो जाता है। इसमे रोगी का रंग धुंधला पड जाता है। रोगी प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, प्यास, मूर्च्छा तथा पाडु रोग के लक्षण भी दिखाई पडते है।

प्लीहोदर के लक्षण—दाहकारक एव विरोधी पदार्थो का आहार करने से, दही, मलाई आदि अधिक मात्रा मे खाने से, दूषित जलो के पीने से आनूप देशो (तराई वाले स्थानो) मे रहने से, विष्टम्भी पदार्थों के खाने से तथा विषम ज्वर से प्लीहा बढ जाता है, इसीको प्लीहोदर कहते हैं। यही तिल्ली भी है। यह पेट के बाई ओर स्पर्श करने पर प्रतीत होता है, इसके कारण पेट का फूलना, मन्दाग्नि, तृष्णा, दाह, ज्वर और उदावर्त हो जाता है। इस रोग मे प्लीहा अथवा यकृत इतने सूज जाते है कि रोगी स्वय पसलियो के नीचे हाथ लगाकर देख सकता है तथा दबाने से वेदना का अनुभव करता है। ये दोनो कभी कभी जीर्ण ज्वर और पाण्डु रोग मे भी बढ जाते हैं।

बद्धगुदोदर के लक्षण—इसमे अन्न का मल सूखकर आतो मे अड जाता है। जिस प्रकार क्रमश इकठ्ठा हुआ कूडा करकट नाली को बन्द कर देता है उसी प्रकार आतो मे मल इकठ्ठा होकर मल प्रवाहिणी नली के मुख भाग को बन्द कर देता है। फलत बडा परिश्रम करने पर भी थोडा सा मल कभी कभी निकलता है, रोगी काखते काखते परेशान हो जाता है, इस स्थिति मे पेट नाभि की ओर बढता जाता है।

क्षतोदर के लक्षण—यदि कोई मनुष्य भूल या धोखे से भोजन के साथ काच, पिन, सुई अथवा कोई तेज चुभने वाली वस्तु को खा लेता है तो उसकी पेट की आते भीतर से कट जाती है और उस कटे भाग से मल चूने लगता हे, यदि पेट का चमड़ा भी कट जाता है तो मल उसी स्थान से बाहर भी आने लगता है, इसमे नाभि का नीचे का भाग बडा होजाता है, रोगी पीड़ा से बेचैन हो जाता है, इस क्षतोदर को "परिस्रावी उदर रोग" भी कहते है।

जलोदर का लक्षण—

जो मनुष्य पञ्चकर्म (स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन निरूहण अथवा अनुवासन) करने के बाद अथवा स्नेहपान के बाद तत्काल शीतल जल पी लेता है उसके रसवाही स्रोत रुक जाते है और पेट धीरे धीरे बढने लगता है। जैसे भरी हुई मशक हिलाने से गल गल शब्द करती है, पेट को हिलाने से भी ठीक वैसा ही शब्द सुनाई देता है। धीरे धीरे सम्पूर्ण शरीर का रस भी पेट मे सञ्चित होने लगता है, रक्त नही बन पाता, पाडु रोग के लक्षण दिखाई देने लगते है, हृदय दुर्बल हो जाता है, हाथ, पाव, मुह, पेट मे सूजन हो जाती है, इस रोग को जलोदर कहते है, वैसे तो जितने भी उदर रोग है समय पर उचित चिकित्सा न करने से जलोदर का रूप धारण कर लेते है, उस समय चिकित्सा करना कठिन हो जाता है।

वातज जलोदर—इसमे उदावर्त, अफरा और शूल होता है।

पित्तज जलोदर—इसमे दाह, ज्वर, तृषा और बेहोशी होती है।

कफज जलोदर—इसमे शरीर भारी, अरुचि, कठोरता आदि लक्षण होते हैं।

असाध्य लक्षण—आंखो पर सूजन, लिग टेढा हो गया हो अथवा योनि पर सूजन आगई हो, त्वचा पतली एव चिकनी हो गई हो, बल, रक्त, मास, अग्नि क्षीण हो गये हो, पसलियो मे पीडा, अपच, सर्वांगशोथ, अतिसार, शस्त्रक्रिया द्वारा पानी निकालने पर भी पुन पुन पानी भर जाता हो इस स्थिति मे रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

जलोदर के आयुर्वेदोक्त निदान एव लक्षणो से आप अवगत होगये होगे, अब यहा पर ऐलोपैथिक सिद्धातानुसार उक्त रोगो के सम्बन्ध मे कुछ विवेचन आयुर्वेदीय सिद्धात की मान्यता "दर्शनस्पर्शन प्रश्नै परीक्षेतार्थ रोगिणाम् ।" को दृष्टि मे रखते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है ।

रोगी की उदर परीक्षा—

जलोदर रोगी की उदर परीक्षा के पहिले उसका मूत्राशय खाली होना चाहिये ।

दर्शन (Inspection) मे ध्यान देने योग्य स्थान—

१—त्वचा के ऊपर द्वितीयक ग्रन्थिया (Secondary Nodules) दिखाई पडती है ।

२—सर्वाङ्गशोथ (Oedema) मे उदर की त्वचा पर भी सूजन हो जाती है।

उदर वृद्धि के मूलत छ कारण होते है—१ वसा, २ द्रव, ३ वायु, ४ अर्बुद ५ मल, ६ गर्भ ।

अत निदान के पूर्व इन कारणो पर चिकित्सक को भली भाति विचार कर लेना चाहिये ।

उदर में होने वाले विविध प्रकार के शोथो मे उदरावरण शोथ (Peritonitis) नामक एक शोथ होता है। इसमे उदर नाव जैसा दिखाई देता है, शोथ (Swelling) मे देखना चाहिये कि यह उदर के दोनो भागो मे है अथवा एक ओर ।

श्वास प्रश्वास की क्रिया से सूजन मे कुछ गति होती है या निश्चल रहता हे । यदि यह शोथ महाप्राचीरापेशी (Diaphragm) के निचले भाग मे होगा तो अवश्य उसमे गति होगी अन्यथा नही ।

उदरावरणशोथ (Peritonitis) मे उदर प्राचीर (Abdominal wall) स्थिर रहता है और श्वास के साथ उसकी गति नही होती । यह भी ध्यान देना चाहिये कि अधिजठर प्रदेश मे फडकन (Pulsation) दिखाई देती है या नही ।

परिसरण लहरें (Peristaltic waves) आमाशय मे बाई ओर से दाहिनी ओर जाती हैं और वृहदन्त्र मे दाहिनी ओर से बाई ओर जाती हैं ।

क्षुद्रान्त्र मे उक्त लहरें उदर के बीच मे ऊपर से नीचे को ओर जाती है । पुराने अन्त्रावरोध और अभिस्तीर्ण आमाशय (Dilated Stomach) मे परिसरण क्रिया अधिक स्पष्ट होती है । पेट मे हाथ फेरने से भी परिसरण लहरो का पता लगता है । शोथ के कारण जब उदर मे अत्यधिक तनाव हो जाता है तब उदरप्राचीर चिकना और चमकदार हो जाता है । इसकी तुलना कफज उदर रोग के साथ करें । जब एक बार इस प्रकार फूलकर किसी चिकित्सा विशेष के कारण पिचक जाता है तब उदर प्राचीर पर झुरिया (सलवटें) पड जाती है ।

प्रतिहारी मार्गावरोध (Portal obstruction) मे नाभि के आस पास की शिरायें शोथ के कारण टेढी-मेढी हो जाती है । इस अवस्था को परिनाभि शिरा निवृत्ति (Caput medusae) कहते हैं । गर्भिणी स्त्रियो की उदरस्थ श्वेत रेखाओ (Linea alba) का रग काला पड जाता है तब उनको कृष्णराजी (Linea Nigra) कहते हैं ।

जलोदर और आन्त्रवृद्धि (Hernia) मे नाभि बाहर की ओर निकल आती है। उदर सम्बन्धी घातक रोगो मे यह नाभि अपने स्वाभाविक रूप को छोडकर भीतर की ओर चली जाती है ।

स्पर्शन (Palpation)—

स्पर्शन क्रिया द्वारा निदान करते समय रोगी को चित्त लिटाकर दोनो घुटने मोड लेने चाहिये, ऐसा करने से औदरिक पेशिया (Abdominal muscles) ढीली पड जाती हैं । इसके बाद रोगी से कहना चाहिये कि वह मु ह खोलकर श्वास प्रश्वास लेवे। इस क्रिया से शोथ को पहिचानने मे सहायता मिलती है। इस स्थिति मे उदर के प्रत्येक भाग का स्पर्श करना चाहिये । स्पर्श करते समय निम्नलिखित लक्षणो पर खूब ध्यान देना चाहिये—

१—उदर प्राचीर किस स्थिति मे हे ।

२—अनाम्यता (Rigidity)

३—कठोरता—उदर के जिस भाग पर उदरावरण शोथ होगा उस भाग मे अवश्य कठोरता आजायगी ।

४—स्पर्शासह्यता (स्पर्श करने की शक्ति का न रहना अथवा स्पर्श करने मे अत्यधिक कष्ट की अनुभूति करना) स्पर्शासह्य स्थान कहां से कहा तक है और जिस स्थान पर

रोगी सबसे अधिक बतलाता हो उस स्थान पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

अर्बुद—यदि उदर के किसी भी भाग मे अर्बुद की आशका हो तो निम्नलिखित लक्षणो पर ध्यान देना चाहिये—

१ स्थान। २ परिणाम। ३ आकार। ४ सघठन (Consistence)। ५. पृष्ठनलिका (Surface)। ६ उच्चावच (Fluctuation)। ७ स्पन्दन (Pulsation) ८ श्वसनचलिष्णुता (Movements with respiration) ९ प्राणहर अर्बुद कठोर एवं अनियमित आकार के होते है। १०. श्वसन क्रिया के साथ अर्बुद की गति ऊपर, नीचे या पार्श्वगत है अथवा और कोई विशेष लक्षण दिखाई दे रहा है।

निम्नलिखित अवयवो अथवा उनसे सम्बन्ध रखने वाले अर्बुदो मे श्वास प्रश्वास के समय एक विशेष गति होती है उस पर ध्यान देना चाहिये।

पेट के भीतर अत्यधिक हिलने वाले अङ्ग—

१ यकृत्, २ आमाशय, ३. अनुप्रस्थ मलाशय (Transeverse colon), ४ प्लीहा, ५ पित्ताशय।

कम हिलने वाले अङ्ग—वृक्क।

स्थिर अङ्ग—

१ अग्न्याशय, २. वस्ति, ३ गर्भाशय, ४ उदर का माप, ५. आस्फालन (Splashing), ६ परिवर्धित आमाशय।

परिवर्धित आमाशय को हिलाने से भीतर का तरल पदार्थ हिलता है और उसमे से एक विशेष प्रकार की गल गल ध्वनि सुनाई देती है उसको आस्फालन कहते है।

परमस्पर्शज्ञता (Hyperaesthesia) जिस अङ्ग मे शोथ होता है वहा की त्वचा अधिक सवेदनशील हो जाती है। इसी स्थिति को परमस्पर्शज्ञता कहते हैं। वात प्रकृति वाला (Neurotic) व्यक्ति किसी अवयव गत रोग के बिना ही अधिक स्पर्श का ज्ञान रखता है।

अंगुलिमज्जन (Dipping)—इसका जलोदर आदि रोगो मे यकृत वृद्धि को जानने के लिये प्रयोग किया जाता है। इस क्रिया से यकृत मे कितनी वृद्धि हुई है उसके ओर छोर का पता चलता है।

तरलप्रकम्प (Fluid thrill)—जलोदर मे तरल प्रकम्प की परीक्षा करते समय परिचारक को चाहिये कि वह रोगी के पेट पर अपना हाथ उदग्रस्थिति (Vertical) मे रखे, इसके बाद चिकित्सक अपना बाया हाथ रोगी के उदर के दाहिनी ओर रखे और दूसरे हाथ से बांई ओर धीरे से मारे ऐसा करने से बाये हाथ को ऐसा प्रतीत होगा कि दूसरी ओर से पानी की लहर ने आकर टक्कर मारा हो, इसीको तरल प्रकम्प कहते है। निम्न चित्र पर ध्यान दे।
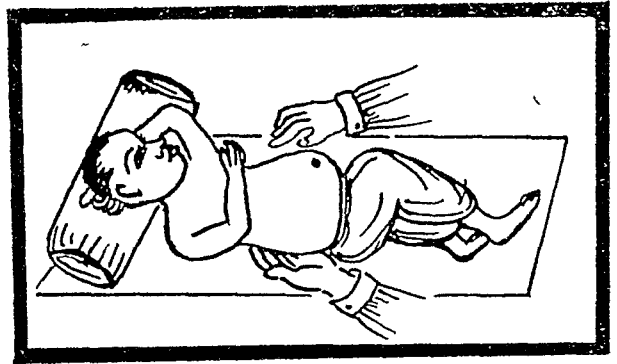
तरल प्रकम्प-परीक्षा

ब्रध्नद्वार (Henial rings)—उदर के जिन भागों से उदर के भीतर रहने वाले अवयव बाहर निकल आते है, जलोदर मे उन अवयवो की भी परीक्षा करनी चाहिये। वे अवयव नीचे दिये जा रहे है—

१. उप आमाशयिक (Epigastric)

२. नाभिगत (Umblical)

३ बाह्यद्वार (External abdominal Ring)

उदर मे प्राय रुग्णावस्था मे तीन अङ्गो की वृद्धि हो जाया करती है—

१ यकृत, २ प्लीहा, ३. पित्ताशय।

उपर्युक्त अङ्गो की परीक्षा उचित प्रकार से कर लेनी चाहिए।

अंगुलि प्रताडन (Percussion)—इसमे बाये हाथ की अंगुली को परीक्षा स्थान (उदर के किसी निश्चित स्थान) पर रखकर उस अंगुली के ऊपर अंगुष्ठ और मध्यमा अंगुली के द्वारा प्रताडित करने को अंगुलि प्रताडन कहते है। निम्न चित्र पर ध्यान दे।

अंगुलिप्रताडन-परीक्षा

रोगी का उदर निम्नलिखित तीन स्थानों को छोड़ कर और सभी जगह प्रतिस्वनित (Resonant) होता है। १ यकृत, २. प्लीहा, ३ मूत्रपूर्णवस्ति।

चचल मदध्वनि (Shifting dullness)—जलोदर के रोगी को चित लिटाकर नाभि से लेकर दोनो पसलियो तक हाथ से ठोककर देखा जाता है। जिस ओर धीमी आवाज सुनाई देती है उससे दूसरे करवट रोगी को लिटा दिया जाता है। ऐसा करने से मदध्वनि वाला भाग ऊपर की ओर आ जाता है क्योकि पेट मे जितना भी जल सचित होता है वह एक स्थान मे आकर इकट्ठा हो जाता है, इसके दूसरे भाग मे हवा भर जाती है तब इस स्थान को ठोकने से वह प्रतिस्वनित होने लगता है, इसीको अस्थिर अथवा चचल मदध्वनि कहते हैं।

श्रवण परीक्षा—उदर रोगी को जल पीने को कहे और श्रवण यन्त्र (स्टेथिस्कोप) को उप आमाशय पर रख कर चिकित्सक स्वय शब्द को सुने, सुनने से दो

श्रवण यन्त्र-परीक्षा

प्रकार [illegible] ग्रसनी (Pharynx) से [illegible] (Oesophagus) में जाता है [illegible] और इसकी ध्वनि [illegible] (Cardiac sphincter) [illegible] सुनाई देती है। [illegible] सुनाई देती है। [illegible] (Oesophagus) में किसी प्रकार की [illegible] है। [illegible]

निःस्वनोदर (Silent abdomen)—इसमें निम्नलिखित स्थितियों के उत्पन्न होने पर उदर विभाग में श्रवण यन्त्र (स्टेथिस्कोप) लगाकर सुनने से किसी प्रकार की ध्वनि सुनाई नहीं देती। यथा—

१—अन्नावरोध रोग, २—[illegible] (Paralytic ileus), ३—[illegible] (Acute abdomen)।

अन्त्रावरोध मे अवरोध को हटाने के लिए तथा आन्त्रगत वस्तु को आगे ढकेलने [illegible] मे जोर से परिसरण होना आरम्भ होता है और इसी परिसरण लहरो की ध्वनि श्रवण यन्त्र से स्पष्ट सुनाई देती है परन्तु कुछ समय के बाद आन्त्र अपनी इस क्रिया मे असमर्थ हो जाता है जिसको Paralysis कहते हैं। परन्तु इस अवस्था मे किसी प्रकार की ध्वनि नही सुनाई पड़ती। इसी अवस्था को निःस्वनोदर कहते हैं। इस स्थिति मे आ जाने पर रोगी का जीवन रामभरोसे बनता है।

चिकित्सा—

सर्वोदरेषु सामान्य विधि—

> उदराणां मलाढ्यत्वाद् बहुशः शोधनं हितम्।
> क्षीरेणैरण्डतैलेन पिबेन्मूत्रेण वा शकृत्॥
> ज्योतिष्मत्या पिबेत्तैलं पयसा वा दिनेदिने।

उदर रोगो की चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें—

सभी उदर रोगो मे विरेचनकारक दूध के साथ रेंडी का तैल अथवा ज्योतिष्मती का तैल तथा अन्य प्रयोगो का सेवन कराना चाहिये। प्राय उदर रोगो की चिकित्सा मे जितने योग मिलते हैं उन सबमे कोई न विरेचक औषधि अवश्य रहती है। यदि किसी योग मे नही रहती तो चतुर चिकित्सक अपनी समझदारी से विरेचन

की व्यवस्था कराते हैं। यह ध्यान रहे कि उदर रोगो मे मृदु कोष्ठ वाले रोगियो के भी कोष्ठ बद्धकोष्ठ हो जाते हैं अत. तीक्ष्ण विरेचनो का ही प्रयोग लाभदायक होता है।

इस रोग मे रोगी को नमक और जल बिल्कुल छुडा देना चाहिये, जैसा कि जल को जीवन कहा गया है तदनुसार जल की पिपासा पूर्ति के लिये दूध, मठा अथवा गोमूत्र आदि आठो मूत्रो मे से किसी एक का पान करना चाहिये। उपर्युक्त द्रव रोगी को यथेच्छ दिये जा सकते हैं। नमक के बदले मे कोई दूसरी चीज देने की आवश्यकता नही पडती बल्कि यहा तक देखा गया है कि जिन रोगियो को नमक छुडा दिया जाता है उनको एकाध सप्ताह तो अवश्य कष्ट होता है फिर इसके बाद उनको आदत पडजाने के कारण शुरू करना कठिन हो जाता है। यहा उदर रोगो पर कुछ स्वानुभूत योग दिये जारहे है।

वातोदर चिकित्सा—१ दशमूल का क्वाथ बनाकर उसमे दो तोला रेडी का तेल मिलाकर पिलाये।

२ आठ तोले गोमूत्र के साथ प्रतिदिन प्रात साय एक तोला त्रिफला चूर्ण फांकने से उक्त रोग शात होता है।

पित्तोदर चिकित्सा—१ पृश्निपर्णी, कण्टकारी, खरेटी, सोठ, पीपल की लाख, इनका क्वाथ दे।

२ कालीमिरच सात दाने, मिश्री एक तोला दोनो को मिलाकर प्रतिदिन प्रात काल जल के साथ पीने से लाभ होता है।

कफोदर चिकित्सा—१ हरड, बहेडा दोनो को समभाग पीसकर गोमूत्र के साथ सप्ताह तक पीने से शीघ्र लाभ होता है।

२ सोठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, जीरा इनका चूर्ण गरम जल के साथ सेवन करने से अवश्य लाभ होता है।

दूष्योदर (सन्निपात) १ गरम पानी के साथ दो माशा कूठ का चूर्ण सेवन करने से त्रिदोपज उदर रोग शात होता है। दन्ती अथवा द्रवन्ती के फलो मे से तेल निकालकर दो तोले की मात्रा मे दूध के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

बद्धोदर चिकित्सा—

स्विन्ने बद्धोदरे योज्यो बस्तिस्तीक्ष्णैस्तु भेषजैः।
सतैल लवणैश्चापि निरूहश्चानुवासनम् ॥
उदावर्तहरं सर्वं प्रकर्तव्यं चिकित्सितम्।
वर्त्योविविधाश्चात्र पायौशस्ता प्रकीर्तिता ॥
तीक्ष्णैर्विरेचनं चात्र शस्यतेतु विशेषतः।
वातहन्ता विधिः सर्वो विधातव्योविजानता।

बद्धोदर रोगी को स्वेदन कराकर तीक्ष्ण विरेचन कराने वाली औषधियो की वस्ति देनी चाहिये, नमक और तेल को मिलाकर निरुहण अथवा अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। उदावर्त को नाश करने वाली चिकित्सा का भी प्रयोग करना चाहिये। और भी विरेचनकारी वर्तियो का प्रयोग गुदा मे करे। तीक्ष्ण विरेचनकारी औषधियो का एव वातनाशक चिकित्सा क्रम का उपयोग करना अथवा कराना चाहिये। एक और योग—हाऊबेर, अजवायन, सेधा नमक इन सबको कूट पीसकर चूर्ण बनालें, दो माशा प्रतिदिन काजी के साथ मिलाकर पीना चाहिये, इससे शीघ्र लाभ होता है।

छिद्रोदर चिकित्सा—वास्तव मे यह रोग शस्त्र चिकित्सा साध्य है। एकाध बार निम्नलिखित योग से भी आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। मुलेठी चूर्ण दो माशे, परवल की पत्ती का रस एक माशा, मधु मे मिलाकर चाटे। बाद मे रोगी को मठा पिलावे। इस प्रकार कुछ दिन मे रोगी स्वास्थ्यलाभ करता है।

शोफोदर चिकित्सा—१ इसमे एक सप्ताह तक निरन्तर भैंस या बकरी का मूत्र पिलावे। इससे शोथ शांत हो जाता है। २ पुनर्नवा, नीम की छाल, सोठ, परवल के पत्ते, कुटज, गिलोय, हरड, दारु हल्दी इनको समान भाग लेकर क्वाथ करे, इसके तीन दिन सेवन करने से शोथ का शमन हो जाता है।

प्लीहोदर चिकित्सा—

स्नेह स्वेद प्रकारादि विधेय प्लीहरोगिणाम्।
वाम बाहौच मोक्तव्या कूर्पराऽभ्यन्तरेशिरा ॥
विध्येत् प्लीहविनाशाय यकृन्नाशायदक्षिणे।
मणिबन्धे समुत्पन्न वामागुष्ठ समीरिताम् ॥
दहेच्छिरां शरेणाशु वैद्य प्लीहप्रशान्तये।

प्लीहा रोगियो को स्नेहन स्वेदन करावे। बाई भुजा की कोहनी के अन्दर की शिरा का वेध करके रक्त को निकलवा देना चाहिये। यकृत बढ गया हो तो दाहिनी भुजा की कोहनी के बी

की शिरा को वेध कर रक्तमोक्षण करना चाहिए। मणिबन्ध पर बांये अंगूठे से आई हुई शिरा को शर नामक लौह यन्त्र से जला देवे। इस प्रकार बढा हुआ प्लीहा अपनी स्वाभाविक स्थिति पर आ जाता है।

एक शास्त्रीय योग—रस सिन्दूर ४ तोला, वगभस्म ४ तो, निश्चन्द्रताम्र १६ तोले, शुद्धगन्धक १६ तोला सबको मदार के दूध मे घोटकर टिकिया बना, छाया मे सुखा, सम्पुट मे भर, कपड़मिट्टी कर गजपुट मे उपलो की आंच से भस्म करे। इस भस्म को दो रत्ती की मात्रा में गौघृत के साथ खावें, इससे वायुगोला, प्लीहा, क्षतोदर रोग मे शीघ्र लाभ होता है। शिरावेध करने के बाद भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

जलोदर चिकित्सा—जलोदर के रोगियो मे कभी-कभी देखा गया है कि जब उसके पेट मे से एकत्रित जल विरेचन द्वारा नही निकलता अथवा अन्य जल शोषक औषधियो के सविधि सेवन करने पर भी सुखाया नही जा सकता ऐसी स्थिति मे आत्मवान् रोगियो को शल्यचिकित्सा का आश्रय लेना चाहिए। इस रोग मे यदि आरम्भ मे सतर्कता से उपचार नही हो पाता तभी यह स्थिति उत्पन्न होती है। इसमे आसव अरिष्टो का प्रयोग चिकित्सा काल मे अवश्य करना चाहिए। १—शख को काजी मे घिसकर मधु मे मिलाकर तीन सप्ताह तक चाटने से लाभ होता है। २—इन्द्र जौ, भुनी हुई हीग, शख भस्म, मद्य इन सबका समभाग चूर्ण करले। छ माशा की मात्रा मे प्रतिदिन प्रात काल मधु मे मिलाकर चाटें, इसके बाद गोमूत्र पीने से शीघ्र लाभ होता है। ३—शुद्ध जमालघोटा, ताम्रभस्म, मद्य, चोक (सत्यानाशी) सबको समभाग लेकर सेहुण्ड के दूध मे तीन दिन तक पीसकर दो रत्ती की गोली बनालें, इसको गोमूत्र के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। ४—रससिन्दूर, शुद्धनीलाथोथा, मद्य, शुद्ध जमालगोटा, अमलतास का गूदा सबको समभाग लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण को गोदुग्ध मे पीस कर १-१ रत्ती की गोली बनालें। इसको नीबू के रस के साथ खावें। पीने को मूत्र दें। अवश्य लाभ होगा।

जलोदरारि रस—छोटी पीपल, मिरच, ताम्र भस्म, स्वर्णभस्म, सबके समान शुद्ध जमालगोटा के बीज सेहुण्ड के दूध मे एक दिन तक पीसकर चार-चार माशे की गोली बना छाया मे सुखाकर रखदें। इसका सेवन ठण्डे जल के साथ करने से अवश्य लाभ होता है।

दो अनुभूत योग—१—मकोय का पञ्चाङ्ग, देवदारु, गोखरु, रेडी की जड़, नागरमोथा, सहजन की पत्ती, सिरस की छाल, इन सबको समभाग लेकर क्वाथ बनावें। अष्टमाश शेष रहने पर रोगी को पिलावें। इससे तीन दिन मे शोथ शात हो जायगा।

२—परवल के पत्ते, गोखरु, धनिया, कालीमिर्च, सेंधानमक, सबको समभाग लेकर १० माशे औषधि को एक सेर पानी मे पकावें। जब एक छटाक रहजाय तब उसको छानकर पिलावें। इसी प्रकार प्रात सायं एक सप्ताह तक इस क्वाथ को पिलाने से उदरस्थ जल मूत्र-मार्ग से मूत्र के रूप मे निकल कर शोथ दूर होकर रोगी क्रमश स्वस्थ हो जाता है।

एकौषधि विज्ञान से—सकमूनियां की राल से तैयार किया हुआ द्रव्य सीरिया और एसिया माइनर से भारत मे आकर बम्बई के औषधि विक्रेताओ के पास मिलता है। यह उदरस्थ जल निकालने, विरेचन कराने, और सर्वाङ्गीण शोथ समाप्त करने की उत्तम औषधि है। यह शंखाहुली वर्ग की एक वनस्पति है। इसकी वेलें गुजरात के खेडे परगने मे होती हैं।

भेरी—इसके अन्दर का गूदा खिलाने तथा शोथ वाले भाग मे लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। यह मूत्रल औषधि है।

पथ्यम्—

दोषैः कुक्षौहि सम्पूर्णे वन्हिर्मन्दत्वमृच्छति।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च॥
शालिषष्टिक गोधूम यवनीवार भोजनम्।
विरेकास्थापनं श्रेष्ठं सर्वेषुजठरेषु च॥

आमाशय मे दोषो के कुपित होने के कारण पाचकाग्नि मन्द पड़ जाती है। ऐसी स्थिति मे अग्निवर्धक एव सुपाच्य भोज्य पदार्थो का प्रयोग करना चाहिए। शालि, साठी के चावल, पुराने गेहूँ, जौ, सावा, कोदो के द्वारा बने पदार्थ रोगी को दें तथा विरेचन और आस्थापन वस्ति का भी सभी उदर रोगो मे उपयोग करें। सामान्यत उदर रोगो मे विरेचन, लघन, पुराने कुलथी, मूंग, लाल-

चावल, जौ, जगली पशु एव पक्षियों के मांस, सुरा, मधु, सीधु, महुवा की शराब, मठा, लशुन, एरण्ड तैल, अद-रक, शालिञ्चकाशाक, परवल, करेला, पुनर्नवा, सहजना की फली, हरड़, पान, इलायची, जौखार, लोह भस्म। बकरी, गाय, भैंस, उटनी का दूध और मूत्र, लघु, तिक्त रस वाले तथा दीपन सभी पदार्थ। उदर को कस कर बाधना, अग्निकर्म, शोधित विप का प्रयोग, प्लीहोदर मे शिरावेध, बद्धगुदोदर, जलोदर, क्षतोदर मे शस्त्र कर्म, वातोदर मे घृतपान, अनुवासन तथा अभ्यञ्जन करना चाहिए।

अपथ्यम्—

अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्वभिष्यन्दि भोजनम्।
व्यायामं मार्गगमनं जठरी परिवर्जयेत्॥

पानी पीना, दिन मे सोना, गुरु तथा पिच्छिल पदार्थों का खाना, व्यायाम, रास्ता चलना आदि अहित-कर कार्यों को उदर रोगी न करे। अधिक स्नेहन, धूम-पान, प्लीहोदर के अतिरिक्त शिराबेध, वमन, सवारी, पीठी के पदार्थ, आनूपदेश के प्राणियो का मास, पत्रशाक, तिल तथा उष्ण, विदाही लवण युक्त भोजन, शिम्बीधान्य, विरुद्ध आहार एव विष्टम्भी पदार्थ सभी उदर रोगियो के लिये अपथ्य हैं।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेद साहित्याचार्य
सी के ७-९९ सिद्धेश्वरी, वाराणसी।

प्राकृतिक चिकित्सा माला—

रक्त-स्राव

श्री लक्ष्मीनारायण "अलौकिक"

नाडी मण्डल का कोई सा भी हिस्सा किसी भी रूप मे कही से जब क्षत विक्षत हो जाता है तभी रक्त स्राव की व्याधि होती है। यह व्याधि जब शरीर के अन्दर होती है तो रक्त उलटी, खासी, मूत्र और टट्टी के साथ बाहर आता रहता है। स्त्रियो के शरीर मे गर्भाशय मे रक्तनलिका फट जाने से योनि से रक्त बहता रहता है।

रक्तस्राव की व्याधि प्रकृति की मदद से स्वय ठीक हो जाती है। किन्तु उत्तेजक आहार लेने से तथा व्याधि स्थान को पर्याप्त विश्राम न मिलने से बीमारी ज्यो की त्यो बनी रहती है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि बीमारी लगभग ठीक होने को आती है और उस स्थान पर चोट पहुँच जाने से बीमारी फिर हरी हो जाती है।

अस्तु। रक्तस्राव की शोचनीय अवस्था मे सामयिक उपचार सिर्फ इतना ही काफी है कि रोगी को पूरी तरह बिछावन पर डाल दिया जाय और उसे बर्फ का पानी पिलाया जाए। बर्फ न मिले तो मिट्टी के घडे का। रक्त-स्राव शरीर के अन्दर से हो रहा है तो उस जगह का अनुमान करके ऊपर ठंडी मिट्टी की पुल्टिस १०-१० मिनिट के अन्तर से बदल कर रखी जाए। रक्तस्राव प्रत्यक्ष हो उस स्थान पर मिट्टी की पुल्टिस का व्यवहार करना चाहिये।

डाक्टरो के मत से विटामिन के की कमी से शरीर से रक्त बहता है अन्यथा नाडी मण्डल के क्षत स्थान पर उसे जम जाना चाहिये। यह जीवनीय हरे उद्भिदो मे होता है। अभी अभी यूरोप मे हुई खोज के अनुसार रक्तस्राव की व्याधि मे मूगफली को सर्वश्रेष्ठ औषध घोषित किया गया है। डाक्टर जिस बीमारी को महीनो मे ठीक नही कर पाये वह मूगफली से कुछ दिनो में ठीक हो गयी। यह सत्य भी हो सकता है चूकि मूगफली (कच्ची पानी मे भिगोई हुई) शरीर मे बेहद श्लेष्मा पैदा करती है जो रक्तस्राव को शर्तिया रोक सकती है।

प्राकृतिक चिकित्सा मे रक्त और नाडा मडल की स्वास्थ्य नीति को दोपमुक्त करने के लिए उत्तेजक द्रव्य एव उत्तेजक स्थिति का परित्याग अनिवार्य है। ऐसे रोगी को मिट्टी के नये घडे का पानी पीना चाहिए तथा पर्याप्त निद्रा और विश्राम ग्रहण करना चाहिए। पुल्टिस का व्यवहार जारी रहे।

—श्री लक्ष्मीनारायण 'अलौकिक
शामगढ (म० प्र०)

रसानुसन्धान रहस्य-३

आचार्य श्री दौलतराम रसशास्त्री 'अभिनव नागार्जुन'

[सितम्बर १९६२ के अङ्क से आगे]

स्वास्थ्य मासिक के रसक्रिया विशेषाक मे से कालेडा के रसानुसन्धान कर्त्ता के शास्त्रीय ज्ञान का दूसरा नमूना पेश करता हूँ। चारणा की विधि बतलाते हुए पृष्ठ ४९१ पर उन्होने लिखा हैं—

"रसरत्नाकर की परम्परा मे भी तप्त खरल का उपयोग दूसरो की अपेक्षा कुछ भेद वाला है। ऋद्धि वादिखण्ड चतुर्दशोपदेश मे दर्शाया है कि—

सिद्धमूलीद्रव दत्वा मर्दयेत् कांजिकेर्दिनम्।
घर्मे वा तप्तखल्वे वा ततो ग्रासं तु दापयेत्॥
चतुपष्ट्यं शकं पूर्वं द्वंद्वं सत्वं विभावितम्।
दत्वा मर्द्य दिनैकं तु चारणा यत्रके क्षिपेत्॥
सजम्बीरैर्दिनं घर्मे धारितं चरित ध्रुवम्॥

बीज के चारणार्थ सिद्ध मूलीद्रव (चुक्रिका या अम्लपत्री अभाव मे कच्ची इमली या इमली के पत्तो का रस) कांजी के साथ मिला १ दिन सूर्य के ताप मे या तप्तखरल मे ग्रास देकर मर्दन करे फिर चारण यन्त्र (दौलायन्त्र) मे रख नीबू के अम्ल रस मे १ दिन पाचन करावे। फिर १ दिन सूर्य के प्रखर ताप मे रख देने पर ग्रास ग्रहण हो जाता है।

इसमे निम्नलिखित गलतिया है—

१—प्रारम्भ का एक श्लोक प्रमादवश छोड़ दिया गया है जिससे अर्थ करना कठिन हो गया है। पूरा वर्णन (सशोधित) इस प्रकार है—

स्वर्ण[1] नाग समावर्त्य मापमात्र तु घर्षयेत्।
तप्तखल्वे ततस्तस्मिन्पलमेकं रस क्षिपेत्॥२॥
सिद्धमूलीद्रव दत्वा मर्दयेत्कांजिकैर्दिनम्।
घर्मे वा तप्तखल्वे वा ततो ग्रासं तु दापयेत्॥३॥
चतु षष्ट्यंशक पूर्वं द्वन्द्वसत्व[2] विभावितम्।
दत्वामर्द्य दिनैक तु चारणा यन्त्रके क्षिपेत्॥४॥
सजम्बीरे[3] दिन घर्मे धारितं चरति ध्रुवम्॥५॥
—रसरत्नाकर वादिखण्ड चतुर्दशोपदेश

प्रथम श्लोक को छोड देने से कुछ भी पता नही चलता कि सिद्ध मूली द्रव और काजी के साथ मिलाकर किस वस्तु का मर्दन करना है। फिर भी 'ततो ग्रास तु दापयेत्' के साथ जोड कर अर्थ दिया गया है कि 'ग्रास देकर मर्दन करे'। सही अर्थ यह है कि सिद्धमूली द्रव और काजी के साथ मर्दन करें, फिर ग्रास देवे। 'ततो (तत)' शब्द से 'फिर' या 'पश्चात्' का अर्थ निकलता है। इस शब्द को लेखक महोदय भूल ही गये हैं।

प्रथम श्लोक कैसे छूट गया इसका रहस्य भी बड़ा मजेदार है। गोंडल से प्रकाशित पुस्तक मे यह क्रिया पृष्ठ ११२ के अन्तिम भाग से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ११३ के ऊपरी भाग मे समाप्त हुई है। प्रथम श्लोक जो छूट गया है वह पृष्ठ ११२ पर है और शेष जितना भाग कालेडा वालो ने उद्धृत किया है वह पृष्ठ ११३ पर है। तो हुआ यह है कि रसानुसन्धानकर्त्ता महोदय ने केवल पृष्ठ ११३ पढा है, पृष्ठ ११२ को पढने की उन्होने कोई आवश्यकता नही समझी।

२—उन्होने 'सिद्ध मूली द्रव' का अर्थ 'चुक्रिका या अम्लपत्री अभाव मे कच्ची इमली या इमली के पत्तो का रस' दिया है। यह अर्थ वे कहा से लाये हैं यह मत पूछिये। यह उनका खुद का आविष्कार होगा अथवा किसी रससिद्ध गुरु ने उनके कान मे बतलाया होगा।

'सिद्धमूली' चुक्रिका या इमली को नही कहते, यह औषधियो के एक वर्ग का नाम है। उसी रसरत्नाकर के वादिखण्ड मे द्वादशोपदेश मे इसका वर्णन है, देखिये—

व्याघ्रपादी हसपादी कदल्यग्निकुमारिका।
बृहती लागली वज्री खण्डजारीन्द्रवारुणी॥२३॥
वन्ध्याकर्कोटकी मूषा सर्पाक्षी शंखपुष्पिका।
मण्डूकी अग्निमथनी विख्याता सिद्धमूलिका॥२४॥
एता. समस्ता व्यस्ता वा चोक्तस्थाने नियोजयेत्॥२५॥
—रसरत्नाकर वादिखण्ड द्वादशोपदेश

अर्थ—व्याघ्रपादी, हसपादी (हजराज), कदली (केला), अग्नि (चित्रक), कुमारी (ग्वारपाठा), बृहती

---

[1]—स्वर्णे। [2]—द्वन्द्वं सत्व। [3]—सजम्बीरैर्दिन।

प्लेग-ग्रन्थिक सान्निपात-ताऊन

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

प्लेग या ताऊन एक प्रसिद्ध रोग है। इसे जन-साधारण सभी जानते हैं। यह इतना भयंकर है कि जिस नगर या गांव मे यह रोग फैल रहा हो तो वहां जाने से सब लोग डरते है। वहां के लोगों को अपने यहां आने भी नहीं देना चाहते क्योंकि यह रोग छूत का है।

इसके कीटाणु चूहों के पिस्सुओं के शरीर मे पलते हैं। यह चूहे की जूं या पिस्सू—चूहे के मर जाने के बाद उसे छोड़ कर इधर उधर उचक जाते हैं। यह कीड़े दो फीट से ऊंचे नहीं उडते। प्राय: आस पास की भूमि दीवारों पर आश्रय कर लेते है। यह अंधेरे स्थानों मे जहां सूर्य की किरणे नहीं पहुचतीं पैदा होते और बढ़ते हैं। इन पिस्सुओं के मनुष्य को काटते समय उनकी सूंड़-सुई के साथ ही ये मनुष्य के शरीर मे प्रविष्ट हो जाते है। मनुष्य के शरीर मे पहुंच कर ये कीटाणु अपनी संख्या बढ़ाते हैं, ये कीटाणु त्रिदोषबर्द्धक होते हैं। इस-लिये इनके शरीर मे पहुचने से त्रिदोष कोप होता है। शरीर मे इनके प्रविष्ट होने के दो से सात दिन के भीतर इनकी संख्या इतनी हो जाती है कि रोग का असर मालूम होने लगता है। यदि कीटाणु बलवान प्रविष्ट हुए हों और जिस शरीर मे प्रविष्ट हुए है वह निर्बल तथा उनकी प्रकृति के अनुकूल भी है तो चार-छ: घंटे पीछे ही रोगोत्पादन मे समर्थ हो जाते हैं।

हमारे शरीर में स्थान स्थान पर लसीका सन्धियों (जोड़ों) मे ग्रन्थियां (लिम्फेटिक ग्लेन्ड्स) है। कक्षा (बगल) वंक्षण (राग-पेट जाघ के मिलने के स्थान) कंठ आदि स्थानों मे निबौली जैसी होती है और कफोणि (कोहनी, जानु संधि, घुटनों के मोड़) मे होती है। यह शरीर मे पहुंचे विकृत पदार्थों को अपने भीतर रोक लेती है और विनष्ट कर देती है यदि इन्हें विनष्ट नहीं कर पाती तो उन्हे दूसरे प्रकार से शरीर से बाहर करने का प्रयत्न करती है। ये उस दोष (मादे) को लेकर बढ़ जाती हैं, सूज जाती है और पक कर फूटकर उसे शरीर से प्रथक् कर देती है। इस प्रकार ये ग्रन्थियां शरीर को स्वस्थ करती रहती है। जब पिस्सू पैर मे काटते है तब बगल, कान के नीचे की लसीका ग्रन्थियां सूजती है। इस ज्वर का ग्रन्थिक ज्वर (प्लेग *Plague*) नाम पड़ने का कारण इसमे ग्रन्थियों का सूजना ही माना जाता है। गांठे अधिकतर रोगियों की काख (बगल), राग, कंठ मे सूजती है, किसी किसी रोगी के कोहनी और घुटनो के जोड़ के पास की ग्रन्थियां सूज जाती है। कुछ रोगी ऐसे भी देखे जाते है जिनमे बाहर से कोई गांठ सूजी हुई नहीं दिखाई पड़ती थी किन्तु उनके मरने के बाद जब उनका शव (लाश) चीर कर देखा गया तो भीतर की लसीका ग्रन्थियां शोथ युक्त थीं इसलिये इसका नाम ग्रन्थिक रखना सार्थक ही है। प्राचीन ग्रन्थों मे इस रोग का नाम 'अग्निरोहिणी' है और उनमे इसको भयंकर मारक होते हुए भी क्षुद्र (छोटे) रोगों में गिना है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि अन्य रोगों की तरह यह सदा नही होता, वर्षों मे कहीं होता था। किन्तु अब यह अधिक होता है, देश के किसी न किसी प्रदेश मे बना ही रहता है यद्यपि सरकार इसके बिल्कुल विनष्ट करने का प्रयत्न करती रहती है। यह विनष्ट होजाने पर विदेशो से छूत लेकर आये हुए लोगों के द्वारा फिर फैल जाता है। अस्तु, प्लेग के कीटाणु चूहों के पिस्सुओं के द्वारा ही नहीं रोगी के निकलते हुये श्वांस, स्पर्श किये पदार्थ और खाने से बचे हुये आहार के खाने से भी स्वस्थ शरीर मे पहुंच जाते है। जब इस रोग के कीटाणु शरीर मे प्रविष्ट हो

जाते है तो ये अपनी सन्तान बराबर बढ़ाते रहते हैं। वे शरीर के जिस जिस स्थान मे अपना विशेष निवास बनाते है वहीं-वहीं रोग का प्रादुर्भाव होता है। उसी उसी स्थान से उत्पन्न होने वाले लक्षण प्रकट होते है। इस स्थान संश्रय के अनुसार ही विद्वानो ने प्लेग के भेद किये है। उनमे प्रधान ये है-

प्लेग के भेद-

१-ग्रन्थिक या न्यूबोनिक प्लेग-यह *Pneumonic Plague* विष के लसीका ग्रन्थियो मे संचय होने से होती है। इसमे से बगल, कंठ, राग आदि स्थानो मे गिल्टियां निकलती है। गिल्टियां जितनी बड़ी और संख्या मे अधिक निकलती-उभरती है, रोगी के उतने ही अधिक बचने की आशा रहती है और ग्रन्थिक प्लेग मे सौ मे ३०-३५ रोगी तो बच ही जाते हैं।

२—आन्त्रिक प्लेग-इस्टेस्टाइन प्लेग—इसमें विशेषतया आंतो मे विकार होता है। इसमे दस्त और कै आदि आंत्र स्थानीय लक्षण विशेष होते है। इसका प्रभाव २४ से ३० घण्टे मे हो जाता है। इससे रोगी १०० मे से २०-२५ प्रतिशत ही बच पाते है।

३—फुफ्फुसी ग्रंथक सन्निपात—रोगी के नाक मुंह से निकली वायु से जब कोई स्वस्थ पुरुष श्वास लेता है तो रोगाणु श्वास के साथ फेफड़े मे पहुच जाते है और वहां जाकर फेफडो को दूषित कर देते है फलतः तीव्र खांसी, श्वांस, पार्श्वशूल (पसवाडो मे दर्द) होता है, रोगी कफ के साथ खून थूकता है, न्यूमोनियां के रक्त की तरह लाख के रस के समान कुछ कालिमा लिये नहीं होता, न्यूमोनिक प्लेग में प्रायः गाठे नहीं निकलती देखी गई। देखा गया है कि न्यूमोनिक प्लेग से रोगी आज ही रोगाक्रांत हुआ और आज ही चल बसा। इसमे रोगी बहुत ही कम कोई १०० मे १० या १५ बच पाते है।

४—सर्व देह व्यापक ग्रंथक ज्वर—जब रोग कीटाणु सर्व देह व्यापी हो जाते है तो शरीर की सारी धातुओ को दूषित कर देते है। इसमे इन्द्रियो की ज्ञान चेतना घट जाती है, रोगी पागल की तरह इधर उधर आंखे फाड कर देखता, स्वर बिगड़ जाता है, जीभ खुरदरी, कण्ठ सूखता, पेशाब पाखाना और पसीना आता है। प्रबल वेग से दस्त नहीं होते, नेत्रो मे पानी भरा रहता है, चहरे की रौनक बिगड़ जाती है आदि लक्षण होते है। इस दशा मे १०० मे से ४-५ रोगी बच पाते है।

बचने के उपाय—

प्लेग को उत्पन्न करने वाले कीटाणु चूहे, गिलहरी, नौले आदि ऐसे ही जानवरों के पेट में पलते है, जो बिलो मे अंधेरे, गन्दे, शीलदार स्थानो मे रहते है। इन पिस्सुओ और कीटाणुओ के उत्पन्न होने और बढ़ने के लिये ऐसा समय ठीक होता है जब न बहुत सर्दी पड़ती है और न बहुत गर्मी। इसलिये प्रायः जनवरी-मार्च में प्लेग अधिक फैलती है।

यह कीटाणु प्राय. पिस्सू के काटने पर चूहे के शरीर मे प्रविष्ट हो चूहे मे प्लेग उत्पन्न करते है। चूहे के प्लेग से मरने पर उस पर पलने वाले पिस्सू मरे चूहे को छोड कर गर्म रक्त की तलाश मे दूसरे चूहे पर पहुचने का प्रयत्न करते है। चूहों को बीमार होते, मरते देख कर चूहे उस घर को छोड जाते है। भूखे पिस्सू चूहे न मिलने से जो भी उनके सामने आता है उसे ही काटते और प्लेग के कीटाणु उसके शरीर मे पहुचाते है। इसलिये—

१. घर के सब स्थानो की सफाई रखिये, कहीं भी घर मे कूड़ा करकट न रहने दीजिये जहां शील शोथ हो वहां सूखा कलई चूना छिडक दिजिये।

२. खाने पीने का सामान सदा बन्द रखिये।

३. चूहो को पकड कर बाहर जंगल मे छुड़वा दीजिये, बिलो को बन्द कर दे।

४. जब चूहे मरने लगे तो उस घर मुहल्ले अथवा गांव छोड़ कर खुले स्थान मे रहे।

५. जो चूहा मर जाय उसे लम्बे चीमटे से पकड़ कर उस पर मिट्टी का तेल छिड़क उपले रख आग लगा दे।

६. घर के फर्स और दीवालो पर ४-५ फुट ऊंचा मिट्टी का तेल छिड़क दे।

७. अपने कपडे प्रतिदिन धूप में सुखाइये।

८. जहां प्लेग हो वहां न जाइये। यदि जाना ही पड़े तो मोजे और जूते पहिन कर जाइये इसके पिस्सू दो फुट से ऊंचे नहीं उड़ते।

९. प्लेग का टीका अवश्य लगवा लीजिये।

१०. कारबोलिक एसिड ८० गुने जल में घोल कर छिड़कने से सब कीटाणु मर जाते है।

११. प्लेग नाशक जैन धूनी-गंधक ४ छटांक, नीम के सूखे पते १ सेर, आमाहल्दी, कौड़िया-लोवान, बायविडङ्ग, गूगल प्रत्येक वस्तु एक एक छटांक कूटकर मिलाले इससे से थोडी आग पर डाले। जिस मकान मे प्लेग का रोगी हो या जहा प्लेग फैलने का डर हो धूनी देने से वायु शुद्ध होती है।

नोट-धूनी देते समय रोगी को कमरे से बाहर कर दे।

१२. अजितागद-तीन तीन माशे प्लेग के दिनो खाने से नहीं होता और हो जाने पर शमन हो जाना है। योग यह है—

वायविडङ्ग, पाढ़ल, त्रिफला, त्रिकुटा, अजमोद, हींग, अगर तथा पांचो नमक यह सब समभाग लेकर पीस ले, तीन गुने शहद और घी से सानकर गाय के सींग मे भर दे। और उसी के सींग की डाट लगा कर १५ दिन रखकर ३-३ माशे दिन मे ३-४ बार ले।

इसके सेवन से स्थावर और जंगम दोनो प्रकार के बिष दूर होते हैं। कोई संक्रामक रोग नहीं हो पाता। यह मूर्च्छा, बेहोशी और संज्ञानाश मे भी लाभ करता है।

चिकित्सा —

रोगी को प्रारम्भ से ही लंघन करावे, औटाके ठंडा किया हुआ पानी दे। यदि भोजन आवश्यक हो तो दूध को फाड़ कर छान कर वह पीवे और उसमें थोड़ी सी शक्कर या ग्लूकोज मिला दे। यदि दस्त हो रहे हो तो ग्लूकोज के बजाय मिल्क शुगर दे। फलो मे सन्तरा-नारंगी अच्छी रहती है, नारंगी के छिलके चबावे। यदि खाये जाय तो बड़ा लाभ करते है।

गिल्टियों की चिकित्सा—

१. भैंसा गूगल और रूमी मस्तंगी दोनो को बराबर लेकर खूब कूटे और एक कपड़े के फाये पर चिपका कर गर्म कर गिल्टी पर चिपकादे ऊपर से कन्डे की आंच से खूब सेके इससे गिल्टी जल्द पककर फूट जाती है।

(२) कड़वी पाढ़ और चित्रक दोनो चीजे पानी में पीस खदकाकर गिल्टी पर लेप कर सेकने से गिल्टी जल्द पकती है और फूटती है, लेप तीन चार बार करे।

(३) निर्विसी, कुचला, संखिया और मैनफल चारों चीजे समान लेकर पीस खदकाकर लेप करने से गिल्टी जल्द पक जाती है और फूट जाती है।

यदि गांठ पक गई हो तो उसे फौरन चीरकर उसका मवाद निकाल दे और फिर व्रणवत् चिकित्सा करे।

प्लेग ग्रन्थिनाशक मलहम —

गन्धा बिरोजा आध सेर, राल आध सेर, गन्धक पावभर, चूना कलई पाव भर, एलुवा आध पाव, गूलर पाव भर, मीठा तेलिया १ छटाक, बायबिडङ्ग, हाऊबेर, कुचला १-१ छटांक, आमा हल्दी १ पाव, सुहागा आधा पाव, पारा १ छटांक, अजवायन पाव भर, चित्रक आध पाव, रेवंद चीनी १ छटांक, गुड पाव भर, संखिया १ छटाक, तिल तैल आध सेर, आक का दूध या आक के पत्तो का रस १ सेर, लहसन का रस १ छटाक, अरण्डी के पत्तो का रस, थूहर के पत्तो का रस, नीम के पत्तो का रस, मिट्टी का तेल १-१ सेर।

विधि—पारे और गंधक को खरल मे डालकर खूब घोटे। जब कज्जली हो जाय तब उसमे संखिया मिलाकर खूब खरल करे। संखिया मिल जाने के बाद बहरोजा, गूगल और जितने रस और तैल लिखे है उनको छोड़कर शेष सब वस्तुओं का कपड़छन चूर्ण उसमे मिलाकर खूब खरल करे।

एक कढाई मे गुड़ छोड़कर उसमे सब रस डाल दे साथ ही तिल तैल भी मिला दे और इसे अग्नि

पर चढावे और कलछे से चलाते रहें, जब सब जल जाय तब नीचे उतार ले और इसमे बहरोजा पिसा हुआ, गूगल डालकर चलाते जावें। जब सब चीजे घुल मिल जांय तब उसमें मिट्टी का तैल डाल दे और साथ ही पारा, गन्धक आदि का मिश्रण मिलाकर अच्छी तरह घोटकर एक जिगर करदे। इसका मरहम काला होता है इसलिए इसे 'काला मरहम' भी कहते हैं।

गुण—शोथ शामक, ग्रन्थि फोड़ने वाला, तथा व्रण रोपण है।

उपयोग—प्लेग ग्रन्थि, कखराई, कर्ण शूल, शोथ, बद (आतशक, सुजाक के कारण राग मे हुई गांठ), अंगुली का बिसारा तथा अनेक प्रकार की ग्रन्थियो (गांठो) व्रणो मे फायदा करता है।

प्लेग की गांठ पर इसे कपड़े पर लगा गर्मकर चिपका दे ऊपर से सेक करे। इससे या तो गांठ बैठ जायगी या पककर फूट जायगी। फाये को मिट्टी के तैल मे तर करके छुडावे। यदि घाव बढ़ जाय तो घी का फाया या लाल मरहम लगाने से ठीक होगा।

लाल मरहम

सिन्दूर २ छटांक, कत्था, शीतल चीनी, छोटी इलायची, देशी मोम १-१ छटाक, गाय का घी १ सेर।

विधि—सिन्दूर, मोम और घी को छोडकर शेप सब वस्तुओ को कूट पीस कपड़े से छानकर सिन्दूर मिला दे। जब सब वस्तुये खूब मिल जांय तब एक कढ़ाई मे घी डालकर गरम करे उस समय मोम पिघला ले, मोम के गल जाने पर शेष सब औषधियां मिलाकर रखले।

गुण—यह सब प्रकार के घावो को शीघ्र भरती है।

प्लेग ध्वंसक वटी

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, गोदन्ती भस्म, फिटकरी फुलाई हुई, बायविडङ्ग, चिरायता, कुटकी, शुद्ध गन्धक प्रत्येक २।-२। तोले, लौंग, बच, शुद्ध वत्सनाभ, काकडासिंगी, सुहागा फूला, शुद्ध पारा प्रत्येक १।-१। तोले। नीम के पत्तो का रस यथावश्यक।

विधि—पहिले पारा, गन्धक की कजली कर ले फिर शेष वस्तुओ के कपड़छन किये चूर्ण को मिला खूब घोटिये। जब सब दवाये मिल जांय तब उसमें नीम के पत्तो का रस इतना डाले जिसमे सब दवायें घुल जांय और डेढ़ अंगुल रस ऊपर रहे इसे खूब घोटिये। जब गोली बनने लायक हो जाय मटर बराबर गोलियां बना लीजिये और छाया मे सुखा ले।

मात्रा—२ वटी।

उपयोग—प्लेग और सब ज्वरो विशेषतया विषैले ज्वरो को दूर करती है। विषनाशक और रक्तशोधक है।

प्लेग में—बुखार का आवेश होते ही दो-दो गोली सौंठ के काढ़े के साथ २-२ घण्टे के अन्तर से दीजिये। बायबिडङ्ग डालकर उबाला पानी पीने के लिये दीजिए। उस दिन खाने को कुछ न दे। दूसरे दिन जोर की भूख लगे तो अरहर की दाल और गेहूँ की सूखी रोटी दे। सन्निपात हो जावे तो खाना कतई बन्द कर दे। सिर्फ पंचरत्न क्वाथ देते रहे।

पंचरत्न क्वाथ

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल छोटी, पीपला मूल और ब्राह्मी इन पांचो को ६-६ माशे जौ कुट कर एक बहुत साफ कपड़े की पोटली बना ले। इस पोटली को एक हांडी मे पानी भर कर लटका दे, चौथाई जल शेप रहने पर यही जल पिलाते रहे, जब तक सन्निपात न जाता रहे।

नोट—प्लेग विध्वंस वटी, पचरत्न क्वाथ, प्लेग ग्रन्थनाशक मरहम, लाल मरहम, प्लेगनाशक जैन धूप सारे भारतवर्ष मे मुफ्त भेजकर लाखो रोगियो पर व्यवहार की जा चुकी है।

भांग का चूर्ण २ रत्ती, एसप्रीन १ रत्ती, तुलसी के पत्र गीले २ रत्ती सबको मिला गोली बना बिना पानी निगल जावें। २ घंटे पानी न दे। यदि प्यास अधिक हो तो थोडा जल दे। साथ ही नं० १ का लेप करे। इसके प्रयोग से ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है। घबड़ाहट, बेचैनी कम होती है। दिन मे ३-४ मात्रा से अधिक न दे।

संजीवनी वटी ४-४ लेकर ४-४ घंटे बाद नीम के पत्तों के क्वाथ के साथ दें। यह रोग की उस दशा में अच्छा कार्य करता है जबकि रोग का अधिष्ठान उदर हो।

कवर्ग चूर्ण २ रत्ती संजीवनी सुरा के साथ देने से हृदय की दुर्बलता, प्रलाप मे लाभ करता है।

—रसवैद्य श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
जैन धर्मार्थ चिकित्सालय
कीठम, पो० रैपुरा जाट (मथुरा)

:: अर्श रोग की सफल चिकित्सा :: पृष्ठ २० का शेपांश

चावल का सेवन (इससे बहता हुआ रक्त भी रुक जाता है), गेहूँ, जौ, मूंग, परवल, पपीता, कच्चा केला, गूलर, नीबू, त्रिफला, करेला, सहजना की फली, बथुआ, चौलाई (इनके रस के सेवन से भी रक्तपित्त शमन होता है), पालक, छोटी मूली (इससे रक्तस्रावरोध और पाण्डु दूर होता है), कोमल बैंगन, एरण्ड तैल, तक्र (सोंठ, जीरा, चित्रक के चूर्णयुक्त) सभी अर्शों को दूर करता है), घी, बकरी या गाय का दूध-घी, गौमूत्र, सेंधानमक, काला नमक, इलायची, पुदीना, शुद्ध भल्लातक (उष्ण ऋतु मे सेवन न करे), मुनक्का, अंगूर, किशमिश, अनार, मिश्री, त्रिकटु, जीरा, धनियां, दीपन पाचन द्रव्य, काले तिल, प्याज, सूरणकन्द, अधोवायुसरण करने वाले पदार्थ एवं आहार विहार पथ्य है।

अपथ्य—भैंस का गरिष्ट दूध (किन्तु थोड़ी मात्रा में हानि नहीं करता), खटाई, लालगुड, लाल मिर्च, सरसों का तैल, दही (थोड़ी मात्रा में हानि नहीं करता), मैदा के पदार्थ, तामस भोजन, बासे तले हुए पदार्थ, उड़द, मलावरोध करने वाले सभी पदार्थ, अधिक ताप में फिरना, अग्नि-सेवन करना, मल मूत्र आदि का वेग धारण करना, पैर गाड़ी पर चलना, घोड़े पर ज्यादा बैठना, ज्यादा यो ही बैठे रहना, पैरो के बल ज्यादा बैठना, अधिक स्त्री संग करना, वायु को कुपित करने वाले सभी आहार-विहार अपथ्य है। मलावरोध कभी न होने दें यह ध्यान रहे। यदि टट्टी साफ न हो तो १-२ हर्र का छिलका चूर्ण कर २-३ रत्ती सैधानमक चार घूंट पानी से पी जांय। यदि टट्टी न हो तो १-२-३ बार प्रयोग करे। हानिकारक नही है।

—श्री जगदम्बाप्रसाद
महदेवा, अरौल (कानपुर)

कुष्ठ
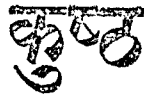
श्री जयदेव मिश्र आयुर्वेदाचार्य बी० ए०
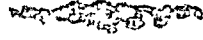
महर्षि चरक ने समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल हेतु "प्रज्ञापराध" ही माना है, और वस्तुतः ऐसे शास्वत् एवं चिरन्तन सत्य का उद्घाटन चरक जैसे महा मुनि के द्वारा ही संभव था। आयुर्वेद ही नहीं अपितु भारत के सभी छार्य एवं वैदिक ग्रन्थों मे महर्षियो ने ऐसे ही परम सत्यों की उद्घोषणा की है। क्योकि वे महामुनि त्रिकालदर्शी थे। फलत. उन्होने ऐसे शास्वत सत्यो को जन्म दिया जो प्रलय पर्यन्त चिरन्तन एवं आदर्श बनकर मानव मात्र के अज्ञान के अन्धकार को विनष्ट कर दिव्य दृष्टि प्रदान करता रहे। प्रज्ञापराध की परिभापा चरक मे इस प्रकार है–

धीः धृति-स्मृति विभ्रष्टः कम यत् कुरुते अशुभं।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्व दोप प्रकोपणम्॥

अर्थात् धी, धृति, स्मृति दोप के कारण पुरुप जो अशुभ कर्म करता है, उसे प्रज्ञापराध कहते है। सरल शब्दों में इसे हम अविवेकजन्य अपराध की संज्ञा दे सकते है। भर्तृहरि ने भी लिखा है—

"विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुख."

सद् विवेक के अभाव मे मनुष्य ऐसे गर्हित एवं जघन्य कर्मों को कर बैठता है जिसके परिणाम-स्वरूप वह आजीवन नाना विध दुःखो एवं रोगो का शिकार वन अपने कुकृत्यो पर आँसू बहाता रहता है। प्रज्ञापराध के फलस्वरूप शारीरिक एवं मानसिक दोप प्रवृद्ध हो प्रकुपित हो जाते है। शारीरिक दोप बात, पित्त, कफ तथा मानसिक दोप रज एवं तम है। शारीरिक दोपों के कारण ज्वर, अतिसार, कास- श्वास, वात व्याधि, प्रमेह, कुष्ठ आदि रोगों का आविर्भाव होता है। मानस दोप रज एवं तमोगुण की बाहुल्यता के फलस्वरूप काम, क्रोध, मोह, लोभ, इर्ष्या, शोक आदि उत्पन्न होते है और परिणामतः उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, मनो विभ्रम गदोद्वेग आदि मानस रोग उद्भूत होते हैं। यद्यपि चरक के कथनानुसार "प्रज्ञापराव" ही सभी क्षुद्र एवं महा व्याधियों का मूल हेतु है, फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह कुष्ट, उन्माद, राजयक्ष्मा, बात व्याधि जैसी महा व्याधियो के लिए अधिकाधिक सत्य एवं प्रमाणिक प्रतीत होता है, क्योकि आयुर्वेद के मतानुसार इन महा व्याधियो का कारण केवल वर्तमान जीवन के मिथ्याहार विहारादि ही नहीं अपितु पूर्वकृत अधर्म भी हैं। और इसीलिए आयुर्वेद ने दोपज व्याधियों के साथ-साथ कर्मज व्याधि की भी चर्चा की है। कर्मज व्याधियो का लक्षण आयुर्वेद में इस प्रकार उल्लिखित है–

यथा शास्त्रं विनिर्णीतो यथा व्याधि चिकित्सित।
न समं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः॥
स्वल्प दोपे गरीयान् यः स ज्ञेयः कर्म दोपज.॥

प्रस्तुत श्लोक की तुला पर यदि हम कुष्ट, उन्माद, अपस्मार आदि व्यधियो को तोले तो ये दोपज की अपेक्षा कर्मज ही जान पड़ती है क्योंकि हम देखते है कि इस वैज्ञानिक युग मे भी जबकि व्याधियो की नित्य नयी-नयी औषधियां आविष्कृत हो रही है, फिर भी कुष्ठ, उन्माद, कैन्सर जैसी व्याधियां सुखसाध्य तो नहीं ही है, उन्माद के अनेक रोगी सैनिटोरियम् में ही अपना आयुष्क्रमण करते है, फिर भी पूर्णरूपेण उन्हे रोगोन्मुक्ति नहीं मिलती। उसी प्रकार कुष्ठ, कैन्सर, बात व्याधि जैसी महाव्याधियां चिकित्सको के लिए चुनौती सिद्ध हुई है, और उनकी परिसमाप्ति उनके जीवन के साथ ही होते देखी गई है। क्योकि इन महाव्याधियो का मूल स्रोत अधर्म ही कहा जा सकता है, जिस पर औषधियो के शत् शत् वज्र प्रहार भी असफल सिद्ध होते हैं, उन्माद- प्रभृति रोगो से ग्रस्त अनेक रोगियों को व्रत, देव पूजन एवं अनुष्ठानो द्वारा ही इन रोगो से मुक्ति प्रदान कर सकी है। क्योकि अधर्म एवं पापो का क्षय अध्य

त्मिक उपचारों से ही संभव है। कुष्ठ की सम्प्राप्ति मे वाग्भट्ट ने "मिथ्याहार विहारेण विशेषेण विरोधिना" का उल्लेख किया है वहीं "साधु निन्दा वधान्य स्वहरणाद्यैश्च सेवितै. ।। पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक् तनैः प्रेरिताः मलाः।। को भी विस्मृत नहीं किया है। उसी प्रकार उन्माद की सम्प्राप्ति में जहां "विरुद्ध दुष्टा अशुचि भोजनानि" का उल्लेख किया है, वहीं "प्रवर्षणं, देव, गुरु, द्विजानाम्" को भी नहीं भूला है। वृद्ध वाग्भटाचार्य ने भी कुष्ठ का निदान लिखा है। उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि मिथ्याहार एवं पूर्व कृत कुकर्म के फल से प्रेरित हुए वातादि तीनो दोष शिराओं से प्रवेश कर तथा विपरीतगामी बन त्वचा, लसिका और मांस को दूषित कर देते है। फिर ये विपरीतगामी दोष शरीर मे विचरण करते हुये त्वचादि को विकृत करके विवर्णता उत्पन्न कर देते है। और तब उसे हम कुष्ठ की संज्ञा देते है। वातादि दोषो मे सर्व प्रथम वात की ही विकृति होती है, फिर अन्य दोष प्रकुपित हो कर रक्त मांस मज्जा एवं लसिका को विकृत कर कुष्ठ उत्पन्न करते है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो वृहदन्त्र की विकृति ही इनका मूल कारण प्रतीत होती है। वृहदन्त्र का कार्य सम्यक् रीति से न होने पर उसमें मलावरोध होता है फिर वृहदन्त्र और लघु अन्त्र मे वायु दुष्ट होता है। इस तरह पचनार्थ आवश्यक पित्त की विकृति होती है। वृहदन्त्र मे पुर.सरण व्यवस्थित होने से सहायक कफ द्रव्य दूपित हो जाता है। फिर मल के आगे सरकने मे देरी होती है फलतः सेन्द्रिय विष (*Intoxumia*) की उत्पत्ति होकर वह अन्तः त्वचा और रक्त मास आदि धातुओ मे शोपित हो जाता है। या सूक्ष्म परमाणुओं मे शोषित होकर धातुओ को दुष्ट बनाता है फिर उस स्थान मे बात की विकृति होती हैं और इस प्रकार कुष्ठ का प्रादुर्भाव हो जाता है।

यह रोग सम्पूर्ण धातुओ के अन्दर पहुचकर तथा सभी धातुओ को क्लेदित करके स्वेद, क्लेद और कोथ उत्पन्न कर देता है। तथा शरीर में सूक्ष्म और दारुण कृमियो को उत्पन्न कर देता है। ये कृमि क्रम से रोम, त्वचा, स्नायु, धमनी और तरुणास्थियों को खाने लगते है। जहां तक श्वेत कुष्ठ (*Leucoderma*) की उत्पत्ति का प्रश्न उठता है वहां केवल बाह्य त्वचादि ही दूषित होते है और श्वित्र कुष्ठ को उत्पन्न कर देते हैं। पाश्चात्य चिकित्सको के मतानुसार श्वेत कुष्ठ की उत्पत्ति रक्त के भीतर रक्त वर्ण (*Haemoglobin*) की न्यूनता होने पर होती है।

कुष्ठ के प्रकार—

दोषो के भेद से सात महाकुष्ठ तथा ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ माने गये है। यथा—वातज, पित्तज, कफज, वात पित्तज, वात कफज, पित्त कफज तथा सान्निपातिक। यद्यपि सम्पूर्ण कुष्ठ दोषज होते हैं फिर भी जिस दोप की जिस कुष्ठ मे बाहुल्यता होती है उसी दोष के नाम से वह कुष्ठ पुकारा जाता है। सात महा कुष्ठो में कपाल, औदुम्बर, मण्डल, काकण, दद्रु, पुण्डरीक और ऋक्ष जिह्व ये सात कुष्ठ महाकुष्ठ कहे जाते है।

कुष्ठ के पूर्वरूप—

कुष्ठोत्पत्ति के पूर्व शरीर भी त्वचा अत्यन्त चमकीली, खर, विवर्ण, स्वेद, और दाह युक्त होती है, तथा त्वचा मे खुजली, शून्यता तथा तोद प्रतीत होता है। इन उपद्रवो मे बात विगुणता के कारण रूक्षता एवं परुषता, पित्त की विकृति के परिणामस्वरूप दाह तथा कफ विकृति के परिणामस्वरूप स्वेद, तथा कण्डू का आविर्भाव होता है। सन्निपातिक कुष्ठ मे प्राय. तीनों की दोषो की दुष्टि के फलस्वरूप मिश्रित लक्षण परिलक्षित होते है। उपर्युक्त कुष्ठों के अन्तर्गत वाताधिक्य से कपाण कुष्ठ, पित्त से औदुम्बर कुष्ठ, कफ मे मण्डल कुष्ठ तथा विचर्चिका कुष्ठ होता है। वातपित्तसे ऋच्छ जिह्व, वातकफाधिक्य से चर्म कुष्ठ, अणस, सिद्धम तथा विपादिका नाम के कुष्ट होते है। त्रिदोषाधिक्य के कारण काकण कुष्ठ उत्पन्न होता है।

चिकित्सा —

जैसा कि निबन्ध के प्रारम्भ में ही इंगित किया गया है कि कुष्ठ न केवल मिथ्याहार विहार एवं शरीरजन्य दोषों की विकृतिस्वरूप उत्पन्न होता है, अपितु अधर्म के परिणामस्वरूप भी यथा गो, ब्राह्मण, साधु एवं जीवहत्या के फलस्वरूप।

अतः इसकी सर्वाङ्गीण चिकित्सा भौतिक एवं आध्यात्मिक उपकरणों द्वारा ही संभव है। भौतिक चिकित्सा के अन्तर्गत वमन, बिरेचन, स्वेदन, प्रलेपन, रक्त मोक्षण, शिरो बिरेचन तथा शास्त्रोक्त औषधियों का सम्यक् प्रयोग तथा आध्यात्मिक, चिकित्सा के अन्तर्गत जप, तप, होम, व्रत, देवार्चन, सदाचार एवं अनुष्ठानादि करे।

भौतिक उपचार—

सब प्रकार के कुष्ठों में सर्व प्रथम स्नेहपान कराना अत्यावश्यक है। उक्तं च 'कुष्ठिनं स्नेह पानेन पूर्व सर्वमुपाचरेत्।" यदि बाह्य उपचारो एवं दवा के सेवन से लाभ प्रतीत न हो तो कुष्ठ रोगियों का रक्तमोक्षण कराना लाभप्रद होता है। कुष्ठ रोग वालो का मस्तक हाथ पांव और शिरावेधन कर रक्त निकाल देना चाहिये। रक्त निकालने के पश्चात् रोगी को कुष्ठनाशक घृतादि स्नेहपान कराकर शरीर का पोषण करता रहे अन्यथा अधिक रक्त निकलने के फलस्वरूप रिक्त कोष्ठ होने पर वायु प्रबल बन शरीर का बिनाश करता है।

सब प्रकार के कुष्ठो में स्नेहाभ्यङ्ग हितकर देखा गया है। वायविडङ्ग, हरीतकी और भिलावे से सिद्ध हुआ भिलावे का तैल या तुबरक तैल अथवा सरसों का तैल पिलाना कल्याणकारक होता है। कुष्ठ रोगियों को १५ दिनों के बाद वमन तथा एक मास के बाद विरेचन कराना चाहिए। छठे महीने में रक्त निकालना चाहिए। यदि कुष्ठ रोगी को यथार्थ रूप से वमन या विरेचन न कराया जाय तो उसके प्रकुपित दोष शरीर में व्यापक होकर कुष्ठ को निःसन्देह असाध्य बना देते हैं। अतः सम्पूर्ण शरीर के दोषों को सम्यकरूपेण निर्हरण कर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—

कुष्ठ रोगी के दोषों के निर्हरण के पश्चात् ठीक समय पर महातिक्त घृत, महावज्रक घृत का सेवन कराने से कुष्ठ रोग असाध्य न होकर शमन हो जाता है। तैलों के अन्तर्गत महाबज्र तैल, मरिच्यादि तैल लाभप्रद होते हैं। प्रलेप के अन्तर्गत कनेर की जड़, नीम की जड़, कुटज की जड़, अमलतास की जड, और चित्रक की जड़ बारीक पीसकर गौमूत्र मे पका कुष्ठ पर प्रलेप करने से कुष्ठ का नाश हो जाता है। बटिकाओं में मंजिष्ठादि वटी, आरोग्यवर्धिनी वटी, ताल सिंदूर, कुष्ठ कुठार रस, मल्ल पुष्प आदि लाभप्रद हैं।

आध्यात्मिक उपचार—

कुष्ठ पीड़ितों के लिये नमक का सर्वथा परित्याग कर प्रत्येक रविवार को १०५ लाल कनेर के पुष्पों से सूर्यार्ध्य देना अत्यन्त लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त शिवार्चन तथा गणेश पूजन अत्यन्त कल्याणकारक होता है। विप्र और साधुओं को भोजन कराना, यथायोग्य दान देना कल्याणकारक होता है।

पथ्यापथ्य—

कुष्ठ रोगियो के लिये शास्त्रीयाचरण, यव, गेहूँ, कोदो, मूंग, मसूर, चना, अरहर तथा तिक्त शाको का सेवन हितकर है। चने का सत्तू, चने की दाल भी लाभप्रद है।

अपथ्य—खटाई, लवण, उष्ण पदार्थ, दही, दूध, गुड़, तिल, उड़द, बैंगन कोहरा, मत्स्य, मदिरा, मैथुन, परित्याज्य है।

—श्री जयदेव मिश्र आयुर्वेदाचार्य बी० ए०,
इञ्चार्ज-राजकीय रसायनशाला
धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सद्यः प्रसव करौषधानि

साहित्याचार्य श्री घनानन्द पंत विद्यार्णव

तस्याश्चेत्प्रजाताया अपरा न प्रपद्यते। अथैनां रक्तशालीनामक्षमात्रं कल्कमम्लेन मूत्रेण पाययेत्। एतेनैव कल्पेन दन्ती द्रवन्ती वृश्चिकाली पुनर्नवा वनशीर्षाकं कारयेत् तदिसां काले सर्वपुराण शालीनामन्यतमेन पाययेत्।

सा चेदनेन विधिना न प्रवतते।
अथैनां तीक्ष्ण तैलेनानुवासयेत्॥

बच्चा पैदा होने के बाद जब अपरा बाहर नहीं निकली हो तब इसको लाल धान (जमाल) का चूर्ण १ तोला अम्ल कांजी से गौमूत्र से पिलावे। अम्ल कांजी या गौमूत्र की मात्रा एक छटांक से अधिक है। इसी प्रकार दन्ती द्रवन्ती वृश्चिकाली पुनर्नवा वनशीर्षाक इनमें से किसी एक का २ तोला चूर्ण अम्लकाजिक या गौमूत्र से पिलावे।

अथवा ठीक समय पर सब ही प्रकार के पुराने धानों में से एक का चूर्ण १ तोला पिलावें। यदि इस प्रकार भी अपरा बाहर न निकले तो तीक्ष्ण तैल से अनुवासन करे। यह भेल का मत है।

पीतं तु काजिकं रुद्र क्वथितं शरपुंखया।
हिंगु सैन्धव संयुक्तं शीघ्र स्त्रीणां प्रसूतिकृत्॥
मातुलुंगस्य वैमूल कटिवद्धं प्रसूति कृत्।
अपामार्गस्य वैमूले गर्भवत्यास्तु नासतः॥
उत्पाट्यमाने सकले पुत्रः स्यादन्यथा सुता।
अपामार्गस्य वैमूले नारीणां शिरसि स्थिते॥
गर्भशूलम् विनश्येत् नात्र कार्याविचारणा॥
(गरुड़े १६-६)

हमको भेल संहिता की टीका बनाने में कार्यवश कोष टटोलने में गरुण पुराण का यह वाक्य मिला कि शरपुङ्खा १ तोला को कांजी में क्षीर पाक विधि से पकाले और १ माशा सैंधव, १ माशा हींग डालकर पिलाने से अपरा बाहर निकलती है। बिजौरे नींबू की जड़ को कमर में बांधने से भी प्रसव शीघ्र होता है। गर्भिणी का नाम लेकर अपामार्ग की (चिरचिटे) जड़ को उखाड़ने से जड़ सारी निकल आवे तो पुत्र होता है और जड़ टूटकर निकले तो कन्या। अपामार्ग की जड़ को गर्भवती के सिर में रखने से गर्भशूल नष्ट होता है इसमें सन्देह नहीं है।

पुरुषक शिफालेपः स्थिरामूल कृतोऽथवा।
नाभि वस्ति भगाद्येषु मूढ गर्भापकर्षणः॥

फालसे की जड़ या शालपर्णी की जड़ को पानी में घिसकर नाभि वस्ति भग आदि में लेप करने से मूढ़ गर्भ को बाहर खींचता है।

(१) बिजौरे नीबू की जड, मुलहठी, शहद और घी मिलाकर पिलाने से सुख से प्रसव होता है।

(२) जौ की शराब में कलिहारी की जड़ को पीस पैरों के तलुबों पर लेप करने से शीघ्र प्रसव होता है।

(३) प्रत्यक पुष्पा (अपामार्ग), पाठा इनकी जड़ को योनि में देने से जिनको बड़ी कठिनाई से प्रसव होता हो उसका प्रसव सुख से होता है।

(४) सांप की कैंचुली को हांडी में बन्दकर जला पीस शहद मिला दोनो आंखों मे अंजन कर ले तो सुख से प्रसव होता है।

(५) बांसा, कलिहारी व सौटा, चिरचिटे की जड़ इनमें से एक का नाभि वस्ति भाग में लेप करने से सुख से प्रसव होता है।

(६) रसोई घर के धुंवे को साफ जल से पियें तो सुखपूर्वक प्रसव होता है।

(७) श्यामलता और सुदर्शन की माला शिर से पैर तक लम्बी बना पहने तो इससे भी सुख से प्रसव होता है।

अपामार्गस्य मूलं तु या नारी दुष्प्रसूयनी।
धारयेद्योनिमध्येतु सा सुखेन प्रसूयते॥

जिन स्त्रियों को प्रसव में कष्ट होता है वे अपामार्ग की जड़ को प्रसव के समय योनि में रखे तो सुख से प्रसव होता है।

—शेषांश पृष्ठ ३७ पर।

कौर्टिसन-हाइड्रोकौर्टिसन-प्रेड्निसोन चिकित्सा[1]

[Cortisone-Hydrocortisone-Prednisone therapy]

श्री डा० पद्मदेवनारायण सिंह एम० बी०, बी० एस०

रोगशमन और पीडित मानव जाति के कल्याणार्थ आधुनिक चिकित्सा क्षेत्र मे होने वाले चमत्कारी नवीनतम अनुसंधानो के अन्तर्गत कौर्टिसन चिकित्सा का आविर्भाव भी एक ऐसा ही अनुसंधान है, जिससे आमवातज सन्धिशोथ और ज्वर के लाखों रोगियो को असह्यनीय कष्टो से राहत मिली है, अन्य लाखो लोगो को आंखो के तरह तरह से अन्धा होने से बचाया जा चुका है। कुछ अन्य लाखो व्यक्तियो को दुष्ट कष्टदायक चर्म रोगो और श्वास कास के मरीजो को इनसे छुटकारा मिला है जो अब निःरोग जीवन व्यतीत कर रहे है, और लाखो लोगो के प्राण अत्यन्त संकटावस्थाओ मे भी बचाये जा चुके है जो इसके पहले सम्भव नहीं था।

कौर्टिसन अधिवृक्क (suprarenal glands) ग्रन्थियो से उत्सर्जित होने वाला एक अत्यन्त विरल स्टिरायड (Steroid) है, जो अत्यल्प मात्रा से क्षरित या उत्सर्जित होता है। यदि ससार भर के सभी जीवजन्तुओ और जानवरा क सुप्रारीनल या अधिवृक्कस्थ स्राव और उससे कौटिसन निकाल लिया जाय तब भी वह केवल आमवातज सन्धिशोथ के रोगियों के लिये ही पूरा नहीं पड़ेगा। इसलिए आजकल इसका कृत्रिम सं[illegible] किया जाता है। चिकित्साकार्य के लिये [illegible] हाइड्रोकौर्टिसन, प्रेड्निसोन या प्रेड्निसोलन आदि जो कौर्टिसन की अपेक्षा ४-५ गुणा [illegible] सक्रिय और कार्यक्षम होते है अधिक [illegible] होते है। पीयुषग्रन्थि या पीट्युटरी ग्लेंड के अग्रिम खंड से क्षरित होने वाला ए. सी. टी. एच. (or Adrinotropic hormone) नामक एक हार्मोन या न्यासर्ग अधिवृक्कग्रन्थि से कौर्टिसन उत्सर्जन क्रिया को प्रभावित और नियन्त्रित करता है।

मानव शरीर पर कौर्टिसन का निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है—

१. भूख बढ़ने और शारीरिक सुखानुभूति के के कारण शरीर भार बढ़ता है।

२. विद्युदंशिक और चयापचयिक सन्तुलन विशेषत: सोडियम पोटैशियम (सोडियम की मात्रा मे वृद्धि और पोटैशियम का ह्रास) सन्तुलन और नाइट्रोजन का मात्रा मे असन्तुलन या असमता उत्पन्न होती है। बहुत अधिक समय या महीनो तक प्रयोग करने पर किसी किसी मे रक्तचापाधिक्य या हाइ ब्लड प्रेसर भी पाया जाता है।

३. अवांछनीय प्रभाव—सोडियम अयन (Sodium ions) का अवधारण या संचय; सर्वाङ्गीय या स्थानिक शोथ, रक्तचापाधिक्य या हाइ ब्लड प्रेसर, शरीर भार मे वृद्धि, शक्ति तथा स्फूर्ति का ह्रास, पेशीक्षीणता, कमजोरी, सिरदर्द, सिर घूमना, अस्थिसौषिर्य (Osteoporosis), आमाशयव्रण, खून मे रक्तशर्करा की मात्रा मे वृद्धि आदि।

विशेष सावधानी—

कौर्टिसन चिकित्सा (मुख मार्ग और इन्जेक्शन द्वारा सर्वाङ्गीय चिकित्सा) आरम्भ करने के पूर्व [illegible] का रक्त परीक्षा करा लेनी चाहिये (सभी रोगियों मे यह आवश्यक नहीं)। और (सक्रिय) यक्ष्मा संक्रमण नहीं होने का निश्चय कर लेना चाहिये। रक्त मे सोडियम और पोटैशियम की मात्रा, रक्ताणु, अवक्षेपण, अवसादन दर (E. S. R.), ब्लड प्रेशर या रक्तचाप, मूत्र परीक्षा,

[1] यह लेख लेखक की पुस्तक "सल्फा, एन्टिबायोटिक्स, विटामिन्स, कौर्टिसन और एन्टीहिस्टामिनिक चिकित्सा" पर आधारित है।

और पेशियो की शक्ति आदि की परीक्षा कर लेनी चाहिये। उग्र रोगो या संक्रमणो मे अपने प्रदाह शामक या उपशामक गुणो के कारण यह मूल रोगो के लक्षणो जैसे ज्वर आदि को छिपा देता है :जिससे निदान और रोग की प्रचंडता और अवस्था पहिचानने मे भ्रम हो सकता है जिस सम्बन्ध मे चिकित्सक को सतर्क रहना चाहिये। सक्रिय यक्ष्मा, वाइरस संक्रमण (Virus infection संरम्भीय हार्दिक क्रिया लोप हाइब्लड प्रेशर या रक्तचापाधिक्य, मधुमेह, आमाशयिक व्रण और जीर्ण वृक्कीय अक्षमता आदि अवस्थाओं की विद्यमानता मे साधारणतः इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

चिकित्सकीय संकेत–

शोथहर उपशामक गुणो, न्यासर्गिक तथा चयापचय उत्तेजक तथा अन्य हितकारी गुणो के कारण इसका प्रयोग निम्नलिखित अवस्थाओ में होता है। विशेष विवरण व्यापारिक योगो के प्रसंग मे दिया गया है आमवातज लक्षणो ज्वर या सन्धिशोथ आदि श्लैष्मिक कलापुटीयशोथ (*Bursitis*), श्वासकास या दमा (*Asthma*) स्नायुवाहिनी चालक या वासोमोटर प्रकार का नासा प्रदाह, तृष्णा ज्वर, सीरम उत्क्लेश, औषधज प्रतिक्रिआये (अनिष्टकारी), व्युत्साहिक या एलर्जीक प्रतिक्रियाये, एञ्जियोन्यूरोटिक शोथ, तरह तरह के चमड़ी के रोग, सोरीएसिस (*Psoriasis*), ल्युकीमिया, लीम्फोसार्कोमा हाच्किन्स रोग, बहुव्यापक लुपस एरीथिमेटस, वृक्कीयलक्षणपुञ्ज और नेफ्रोसिस, फौफ्फुसिक वायुविस्फार, प्लुरिसी, फौफ्फुसिक फाइब्रोसिस या तन्तुकीभवन, रक्त के अनेक रोग, परिहृदयावरण प्रदाह, रुधिर तथा अन्य तरलो के रोगी के नस में प्रतिक्षेपणके समय उत्पन्न होने वाले अवांछनीय प्रतिक्रियाओ के शमनार्थ, कर्णिकोशाल्यल्पता, आघातज या शल्यकर्मकालीन या शल्यकर्मोत्तर आपात या संकटावस्था अग्निदाह और अन्य अनेक तरह के रोगो या अवस्थाओ मे इसका प्रयोग होता है।

व्यापारिक योग–

अब हम कुछ व्यापारिक योगो के विषय में विचार करेगे—

(१) ई० मर्क एन्ड कम्पनी (E. Merk)—

(१) सोलु-डकौर्टिन (Sola-dacortin) इञ्जेक्शन (प्रेडनिसोलोन सोडियम एक्सिनेट)—

सूखा पाउडर का २५ मिलीग्राम का एम्पूल और साथ मे घोलने के लिये परिश्रुत जल के एम्पुल के साथ मिलता है। इन्ट्राथिकल (Intrathecal), इन्ट्रामस्कुलर, इन्ट्राविनस और इन्ट्राआर्टिकूलर (जोड़ या सन्धि के अन्दर) इञ्जेक्शनो द्वारा इसका प्रयोग होता है।

चिकित्सकीय संकेत—आपात (Shock), कठिन श्वास कास या दमा, रूमट्वायड सन्धिशोथ (आमवातज सन्धिशोथ), नेफ्रोसिस आदि।

प्रयोग विधि—१ c. c. (२५ मिलिग्राम) ५ प्रतिशत ग्लूकोज सोल्यूशन में मिलाकर एक बार प्रतिदिन धीरे धीरे नस मे इञ्जेक्शन (इन्ट्राविनिस) लगाना चाहिए। जोड़ो या संधियों मे २५ मिलीग्राम (१ एम्पुल) या कम परिश्रुत जल मे घोलकर इञ्जेक्शन किया जाता है।

(२) सैलिकोर्टिन कम्पाउण्ड टेब्लेट (Salicortin compound tablet)—

प्रत्येक गोली मे डकौर्टिन (प्रेड्निसोलोन) ०.७५ एम० जी०+विटामिन सी ५० एम० जी०+एस्पीरिन ०.३ ग्राम+एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड जेल ५० एम० जी० रहता है। यह २० टेब्लेटो के बोतलो मे मिलता है।

मात्रा—शुरू मे २-३ टेब्लेट ४ बार प्रतिदिन, बाद मे १-२ टेब्लेट रोज। अनुतीव्र और पुराने रोगो मे १ टेब्लेट ४ बार रोज और बाद मे १-२ टेब्लेट प्रतिदिन।

(३) डकौर्टिन (प्रेड्निसोलोन) टेब्लेट—

५ मिलीग्राम के प्रत्येक टेब्लेट १० और ३० टेब्लेटों के बोतलो मे मिलता है।

मात्रा—गम्भीराजीर्ण आमवातज सन्धिशोथ (Rheumatoid arthritis) में प्रारम्भिक मात्रा ४-६ टेब्लेट भोजन के बाद मुख से थोड़ा पानी के साथ निगल जाना चाहिए। बाद में १-५ टेब्लेट प्रतिदिन। ब्रांकियल आज्मा या दमा (श्वासरोग) में शुरू मे ८-१२ टेब्लेट रोज। बाद में अनुपालक मात्रा १-५ टेब्लेट रोज।

(२) अपजोन (Upjohn) कम्पनी—

(१) कौर्टेफ एसिटेट (Cortef Acetate oint.)-

चमड़ी पर लगाने का मलहम। प्रतिग्राम मलहम मे २५ एम० जी० हाइड्रोकोर्टिसन एसिटेट रहता है। २॥ प्रतिशत शक्ति का मलहम ५ ग्राम के ट्यूब मे मिलता है और २-३ बार रोज लगाया जाता है।

(२) कौर्टेफ टेब्लेट—

१० एम० जी० के टेब्लेट २५ टिकियो के पैकेट में मुखमार्ग से व्यवहार के लिये मिलता है।

मात्रा—शुरू मे २०-७० मिलीग्राम प्रतिदिन। बाद मे अनुपालक मात्रा १०-३० मिलीग्राम प्रतिदिन।

(३) बूट्स (Boots) कम्पनी—

(१) हाइड्रोकौर्टिस्टेटब मार्का १ प्रतिशत शक्ति का हाइड्रोकौर्टिसन आई ड्राप्स (१ प्रतिशत Hydrocortisone eye drops)—

३ सी. सी. के वायल मे।

(२) कौर्टिस्टेब मार्का ०.५ प्रतिशत कौर्टिसन आई ड्राप्स—

५ c. c. के वायल में आंखो मे १-२ बूंद २-४ बार रोज डाला जाता है।

(३) डेल्टास्टैब नेजल स्प्रे (Deltastab nasal spray)—

१५ c. c. के वायल मे। नासिका में डालने के लिये व्युत्साहनाशक (Antiallergic and vasoconstrictor) योग।

(४) डेल्टास्टैब मार्का—

५ मिलीग्राम प्रेड्निसोलोन की टिकिया १० और ३० टिकियो के पैकेट में।

(४) इण्डियन शेरिङ्ग (Indian Schering)—

(१) कौर्टि कौर्टुसिड आइ ड्राप क्रीम—

०.५ प्रतिशत हाइड्रोकोर्टिसन एसिटेट+१० प्रतिशत एल्युमीनेड एक जलीय आधार में आंखों में डालने के लिए।

(५) ब्रिटिश ड्रग हाउस (British Drug House)—

(१) कोबाडेक्स (Cobadex) मार्का-१ प्रतिशत हाइड्रोकोर्टिसन का क्रीम—

१० ग्राम के ट्यूब मे चमड़ी के रोग के लिये २-३ बार प्रतिदिन लगाया जाता है।

(६) क्रुक्स (Crookes) कम्पनी—

(१) कौर्टोडर्मा (Cortoderma)—

०.५ और १.० प्रतिशत हाइड्रोकोर्टिसन एसिटेट लैक्टोकालामीना के आधार में बना होता और १० ग्राम मलहम के ट्यब में मिलता है। फोड़ा-फुंसी और चमड़ी के तरह तरह के रोगों (विशेषकर प्रदाहयुक्त) में त्वचा पर लगाने के लिये ३-४ बार रोज लगाया जाता है।

(२) कौर्टोडर्मा-एन (Cortoderma N)—

०.५ और १.० प्रतिशत हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट+०.५ प्रतिशत नियोमाइसीन क्रीम, लैक्टोकालामिना आधार मे बना होता और १० ग्राम के ट्यूब में मिलता है। ३-४ बार रोज लगाया जाता है। चमड़ी के अनेक प्रकार के रोगो मे यह बहुत फायदेमन्द होता है।

(७) स्क्वीब्ब (Squibb) कम्पनी—

(१) फ्लोरिनेफ विथ स्पेक्ट्रोसीन (Florinef with spectrocin) वायन्टमेंट (मलहम)—

चमडी पर लगाने के लिये प्रतिग्राम मलहम में फ्लुरोहाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट १ एम. जी.+नियोमाइसीन २.५ एम. जी.+ग्रामीसिडीन ०.२५ एम. जी. रहता है। चमड़ी साफ करके दिन मे २-४ बार लगाया जाता है।

(८) ग्लैक्सो (Glaxo) कम्पनी—

(१) कौर्लिन (Corlin) मार्का कौर्टिसन एसिटेट (बी० पी०)—

५ और २५ मिलीग्राम की टिकिया २० टेब्लेटो के बोतलो मे मिलता है। इन्जेक्शन के लिए १०

c. c. का वायल मिलता है जिसके प्रति c. c. में २५ मिलीग्राम औषध रहती है।

मात्रा और प्रयोग—रोग और रोगी की आवश्यकतानुसार मुख से और इञ्जेक्शन द्वारा व्यवहार किया जाता है। प्रारम्भिक मात्रा १००-३०० मिलीग्राम प्रतिदिन यानी २०-५० एम. जी. प्रति ६ घण्टे पर। रोग की प्रचण्डता कम हो जाने पर धीरे-धीरे ५-१० मिलीग्राम मात्रा मे कमी करते हुए एक ऐसी अल्पतम मात्रा पर पहुंच जाते है जिससे रोगी लक्षणों से मुक्त रहता है। इसके बाद २५-७५ मिलीग्राम की अनुपालक या स्थैर्य मात्रा दी जाती है। आखो मे इञ्जेक्ट करने के लिये ०.२५ c. c. इञ्जेक्शन वाले घोल का प्रयोग होता है।

(२) कौर्लीन आई वायन्टमेंट या आंखो का मलहम—

लगाने के लिये एक बिशेष तरह के नाजल युक्त (Nozzle) ३ ग्राम के ट्यूब में १ प्रतिशत कौर्टिसन एसिटेट युक्त यह आंखो का मलहम मिलता है जो आंखो के रोगो या बिकारो की चिकित्सा के लिए प्रति ३-४ घण्टे पर लगाया जाता है। अधिकतर रोगो मे इसके प्रयोग का सुन्दर फल तुरन्त मिलता है और पीड़ा तथा आंखो की लाली और जलन शीघ्र दूर होजाती है। अधिक गम्भीर अवस्थाओ मे मौखिक मार्ग से और सब-कंजंक्टाइवल इञ्जेक्शन द्वारा भी कौर्लिन दिया जाता है।

(३) डेल्टाकौर्लिन मार्का ५ मिलीग्राम शक्ति का प्रेड्निसोन एसिटेट—

की टिकियां जो १० और ३० टिकियों के पैकेटो मे मिलता है। (स्मरणीय है कि प्रेड्निसोन कौर्टिसन की अपेक्षा प्रायः ४ गुना अधिक सक्रिय और प्रभावकारी होता है)

मात्रा—उग्र रोगो और अत्यावश्यक अवस्थाओ मे ३०-६० मिलीग्राम प्रतिदिन ४ छोटी छोटी मात्राओ में बांटकर हर ६ घण्टे पर दिया जाता है।

(४) डेल्टा-एफकौर्लिन (Delta-efcorlin) मार्का ५ मिलीग्राम शक्ति का प्रेडनिसोलोन एसिटेट की टिकिया—

प्रेड्निसोन की तरह प्रेड्निसोलोन भी कौर्टिसन की अपेक्षा प्रायः ४ गुना अधिक सक्रिय और प्रभावकारी होता है, और इसके प्रयोग द्वारा शरीर में सोडियम का अवधारण संचय भी नहीं होता।

यह ५ मिलीग्राम की टिकिया और १० तथा १०० टिकियों के पैकेटो में मिलता है।

मात्रा और चिकित्साक्रम—डेल्टा-कौर्लिन के समान ही यानी साधारण अवस्थाओ मे ५-२० एम. जी. प्रतिदिन।

(५) एफकौर्लिन इञ्जेक्शन—

हाइड्रोकौर्टिसन का इञ्जेक्शन। इञ्जेक्शन के लिये ५ c. c. का वायल मिलता है जिसके प्रति सी. सी. जलीय सस्पेन्शन(अबलम्बन)में २५ मिलीग्राम हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट रहता है। इसकी क्रिया का असर तत्काल होता है और जोड़ो की सूजन तथा पीडा इञ्जेक्शन देने के चन्द घण्टो बाद ही कम होने लगती है।

मात्रा क्रम—सन्धियो या जोडो के अन्दर देने के लिये (इन्ट्राआर्टिकुलर इञ्जेक्शन,—बड़े जोड़ो से जैसे जानुसन्धि (Knee joint) मे २५-५० मिलीग्राम और छोटे जोड़ो मे १०-१५ मिलीग्राम का इञ्जेक्शन दिया जाता है। साधारणतः २-३ इञ्जेक्शन ही काफी होते है। इन्ट्राप्लुरल इञ्जेक्शन (फुफ्फुसावरक गुहा मे) प्रचूषण क्रिया (Aspiration) द्वारा प्रदाहज रस संचित जल निकालने के बाद ५०-१०० मिलीग्राम उसी इञ्जेक्शन सुई द्वारा अन्दर डाल दिया जाता है। सप्ताह मे १ या २ इञ्जेक्शन दिये जाते है और सम्पूर्ण चिकित्साक्रम के लिये २-३ बार ही इञ्जेक्शन देने की आवश्यकता होती है।

(६) एफकौर्लिन-सोल्यूबिल(Efcorline soluble) का इञ्जेक्शन—

यह १०० मिलीग्राम हाइड्रोकौर्टिसन हेमीसक्सिनेट सोडियम वाले वायल और साथ से २ c c. परिश्रुत जल का एम्पुल घोलने और इञ्जेक्शन तैयार करने के लिये मिलता है। परिश्रुत जल को वायल मे इञ्जेक्ट करके इञ्जेक्शन तैयार

किया जाता है और इन्ट्राविनस (१-२ मिनट में या और धीरे धीरे देना चाहिए) या इन्ट्रामस्कूलर इञ्जेक्शन द्वारा दिया जाता है। इञ्जेक्शन का प्रभाव तुरन्त उत्पन्न होकर ४-८ घण्टों तक स्थिर बना रहता है। प्रतिदिन प्रायः ३०० मिलीग्राम (१०० मिलीग्राम प्रति ८ घंटा पर) के इञ्जेक्शन की आवश्यकता होती है।

स्थानिक प्रयोग—

[१] इन्ट्राथिकल (Intrathecal) मार्ग से १०–२५ मिलीग्राम दिया जाता है।

[२] प्लुरल कैविटी (फुफ्फुसावरक गुहा) में १०० मिलीग्राम तक सप्ताह मे १ या २ बार इञ्जेक्शन दिया जाता है।

[३] अलसरेटिव कोलाइटिस या सव्रणी बृहदान्त्र प्रदाह से १००-१२० c. c. का प्रकृत लवण जल में १०० मिलीग्राम या एक वायल की दवा मिलाकर अवधारण वस्ति (Retention enema) दिया जाता है।

नोट—दवा को प्रकाश या धूप से बचाकर ठण्डी जगह मे रखना चाहिये। वायल पर लिखे हुए मियाद खतम होने के पहले ही दवा प्रयोग कर लेना चाहिए। घोल बना लेने पर औषधि तुरन्त प्रयोग कर लेनी चाहिए।

(७) प्रेड्सोलन सोल्यूबिल [Predsolan soluble]—

इञ्जेक्शन के लिये २५ मिलीग्राम प्रेडूनिसोलोन हेमिसक्सिनेट सोडियम [Prednisolone Hemisuccinate sodium] के वायल मे और साथ मे घोलने के लिए तथा इञ्जेक्शन तैयार करने के लिए २ c. c. परिश्रुत जल के एम्पुल के साथ मिलता है। यह सवाहिनी क्रियालोप [Circulatory collapse], स्तब्धता या अवसाद [Shock], व्युत्साहिक संकटावस्था, संधिशोथ, मेनिनजाइटिस और उरस्तोय [Pleurisy with effusion] आदि अवस्थाओ मे विशेष उपयोगी होता है।

मात्रा और प्रयोग विधि—वायल में परिश्रुत जल [१ c. c.] इञ्जेक्ट कर इञ्जेक्शन तैयार किया जाता और शीघ्र ही व्यवहार कर लिया जाता है। ८ प्रक्षेपण तरलो [Transfussion fluids] जैसे ग्लूकोज सेलाइन का घोल आदि के साथ मिला कर व्यवहार किया जा सकता है। २५-७५ मिलीग्राम [१-३ वायल] प्रतिदिन तक नस मे या मांस मे इञ्जेक्शन [इन्ट्राविनस या इन्ट्रामस्कूलर इञ्जेक्शन] द्वारा दिया जाता है।

स्थानिक प्रयोग—

१. इन्ट्राथिकल इञ्जेक्शन १०–२५ मिलीग्राम, २. इन्ट्राप्लुरल इञ्जेक्शन [फुफ्फुसावरक गुहा में] ५०–७० मिलीग्राम सप्ताह में १-२ बार, ३. इन्ट्राआर्टिकुलर—[१] बड़े जोड़ों में १ वायल [२५ एम. जी.], [२] छोटे जोड़ों में ½ वायल।

(८) एफ्कौर्लिन आई ड्राप्स [तरल] और आई वायन्टमेंट या आंखो का मलहम—

आंखों के लिए १ प्रतिशत हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट का जलीय अवलम्बन या सस्पेन्शन ३ c.c. के वायलों मे १ प्रतिशत तथा २.५ प्रतिशत हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट का उपयुक्त आधार मे बना हुआ मलहम ३ ग्राम के ट्यूब मे मिलता है। आंखो के सभी तरह के प्रदाहजन्य, आघातज और व्युत्साहिक अवस्थाओं में इनका प्रयोग होता है। अत्यधिक गम्भीर अवस्थाओं मे मौखिक मार्ग तथा सबकंजंकटाइवल इञ्जेक्शन द्वारा भी कौर्टिसन चिकित्सा करनी चाहिये।

मात्रा और चिकित्सा क्रम—

[१] आई ड्राप्स—१-२ बूंद हरेक १-२ घंटे पर आखो मे डाला जाता है और रात को सोते समय मलहम लगा दिया जाता है।

[२] आंखो का मलहम—प्रति ३-४ घण्टे पर लगाया जाता है। कानो और आंखो के लिये उपरोक्त योगो से उत्तम और एन्टिबायोटिक युक्त है।

(९) एफ्कौर्लिन विथ नियोमाइसीन आई, इयर ड्राप्स और वायन्टमेट या मलहम [Efcorlin with Neomycin eye, ear drops & ointments]—

३ ग्राम के वायल मे तरल और ३ ग्राम ट्यूब मे मलहम मिलता है। मलहम और तरल या घोल मे १ प्रतिशत हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट + ०.५ प्रति-

शत नियोमाइसीन सल्फेट रहता है। नियोमाइसीन रोगाणुओं का नाश करता है और हाइड्रोकौर्टिसन संक्रमण द्वारा उत्पन्न प्रदाहज और व्युत्साहिक प्रतिक्रियाओं का।

मात्रा और चिकित्सा क्रम—आंखों और कानों में तरल औषध या ड्राप्स १-२ बूंद प्रति १-२ घंटे पर डाला जाता है और आंखो का मलहम प्रति ३-४ घंटो पर। मलहम बाह्यकर्ण के रोगो में भी व्यवहार किया जाता है।

(१०) नाक में डालने के लिए एफ्कौर्लिन नेजल ड्राप्स [Efcorlin nasal drops]—

१५ C. C. के वायल मे मिलता है जिसके हरेक C. C. समबल्य तरल में हाइड्रोकोर्टिसन ०.२ मिलीग्राम+नेजोलीन नाइट्रेट ०.२५ एम. जी.+एक वाहिनी संकोचक तत्व [Vasoconstrictor] रहता है।

मात्रा और प्रयोग विधि—नाक साफ करके वायल या शीशी का नौजल [छूच्छी] नासिका मे डालकर सिर टेढ़ा कर केशिशी को धीरे से अंगुलियो द्वारा दबाते है जिससे २-३ बूंद दवा नासिका में टपक जाती है। बालको के लिये १-२ बूंद दवा डालना काफी होता है। प्रति ३-४ घंटे पर नाक में दवा डाली जाती है। नेजल स्प्रे या फुहारा [Nasal spray] के रूप में भी इसका व्यवहार होता है।

मुख के रोगो की चिकित्सा के लिये स्थानिक प्रयोग—

(११) एफ्कौर्लिन पैलेट्स [Efcorlin Pallets]—

२.५ मिलीग्राम हाइड्रोकोर्टिसन हेमिसक्सिनेट सोडियम केपैलेट्स १० पैलेटों के ट्यूब में मिलते है। एक पैलेट मुख मे घाव के पास रखकर धीरे धीरे गलते हुए कार्य करने देना चाहिये। उसे चूसना या निगलना नहीं चाहिए। प्रतिदिन ४ पैलेट्स तक व्यवहार किये जा सकते है। चमडी के रोगो के लिये—

(१२) एफ्कौर्लिन स्किन लोशन और वायन्टमेंट [Efcorlin skin lotion & ointment]—

लोशन—०.५ और १.० प्रतिशत हाइड्रोकोर्टिसन के जलीय अवलम्बन और २० C. C. के प्लास्टिक की बोतलो में मिलता है।

मलहम—एक उपयुक्त आधार में बना ०.५ और २.५ प्रतिशत हाइड्रोकौटिसन एसिटेट का बाहरी या ऊपरी प्रयोग और चमड़ी के रोगों में लगाने के लिये होता है। चिकित्सा क्रम उच्च शक्ति वाले मलहम या लोशन से आरम्भ किया जाता है और उस स्थान पर प्रतिदिन २-३ बार धीरे धीरे लगाया जाता है। लोशन मे गौज भिगोकर घावों का ड्रेसिङ्ग भी किया जा सकता है। बाद मे कम शक्ति वाले लोशन या मलहम का व्यवहार किया जाता है।

संक्रमणजनित और प्रदाहज अवस्थाओं में प्रयोग के लिये—

(१३) एफ्कौर्लिन विथ नियोमाइसीन स्किन लोशन और वायन्टमेंट (Efcorlin with Neomycin skin lotion and ointment) या मलहम मिलता है—

लोशन—१० सी. सी. के प्लास्टिक बोतलो में ०.५ प्रतिशत हाइड्रोकौर्टिसन+३.५ प्रतिशत नियोमाइसीन सल्फेट युक्त उपयुक्त जलीय आधार में बना होता है। मलहम इसी शक्ति मे ५ ग्राम के ट्यूब मे मिलता है। २-३ बार रोज लगाया जाता है। आग से जले हुये स्थान पर नाना प्रकार के चमड़ी के रोगो, एक्जिमा, सपूयिक चर्म प्रदाह, योनिद्वार और गुदद्वार के कण्डुयन आदि अवस्थाओ मे यह विशेष रूप से उपयोगी होता है।

बाहरी प्रयोग विशेषत: आंखों के लिये हाइड्रोकौर्टिसन और एन्टिबायोटिक औषधियो का योग।

(१४) माइस्ट्रेप्टौन विथ हाइड्रोकौर्टिसन वायन्टमेंट या मलहम (Myostrepton with hodrocortison ointment) नाम से मिलत है जिसके हरेक ग्राम मे २००० यूनिट क्रिस्टलाइज सोडियम पेनसिलीन जी.+१०००० यनिट या १ मिलीग्राम डाइहाइड्रोस्ट्रेप्टोमाइसीन+५ मिलीग्रा हाइड्रोकौर्टिसन एसिटेट (०.५ प्रतिशत) एक विशे

उपर्युक्त मलहम के आधार में बना रहता है। इसका विशेष गुण यह होता है कि एन्टिबायोटिक औषध रोगाणुसंक्रमण को रोकते और रोगाणुओं का नाश करते और हाइड्रोकौर्टिसन प्रदाहज प्रतिक्रियाओं का शमन करता और शोथ का नाश करता है। आंखों के सभी तरह के रोगो के लिये इसका व्यवहार होता है। उग्र अवस्थाओं मे प्रति २-३ घण्टे पर लगाया जाता है और मौखिक मार्ग से भी हाइड्रोकोर्टिसन तथा रोगाणुनाशक औषधियां और आवश्यकतानुसार पेनसिलीन या अन्य एन्टिबायोटिकों का इन्जेक्शन लगाया जाता है। यह ३.५ ग्राम के ट्यूब में मिलता है।

(६) यूनीकेम लैबोरेटरीज (Unichem laboratories)-

यूनल्जेन—एच सी. टेब्लेट्स (Unalgen H. C. tablets): (हाइड्रोकोर्टिसन + प्रेड्निसोन डाइपाइरोन)।

संधिवात के लिये १-२ टेब्लेट ३ वार रोजाना।

(१०) इन्डन (Indon) कम्पनी—

श्वास कास या दमा के लिए—

(१) आस्माकोर्ट (Asmarcort)—

प्रति टेब्लेट मे एमाइनो फाइलीन ६०० एम. जी. + एफेड्रीन हाइड्रोक्लोर २५ एम. जी. + फेनोबार्बिटोन १५ एम. जी. + प्रेड्निसोन १.५ एम. जी. रहता है। २५, १००, २५०, ५०० और १००० टेबलेटों के बोतलों मे मिलता है।

मात्रा—१-२ टेब्लेट ३ वार प्रतिदिन।

(२) प्रेड्निसोलोन 'इन्डन' ५ एम. जी. शक्ति की टिकिया, १५ टिकियों की बोतलो मे।

(३) डेक्सामेथाजोन 'इंडन' (बहुत प्रभावशाली कोर्टिकोस्टेरायड) ०.५ मिलीग्राम की टिकिया १०, २५० और १०० टिकियों की बोतलों में।

(११) सिबा (Ciba) कम्पनी—

(१) कौर्टिसन 'सिबा'—आई वायन्टमेंट और ड्राप्स (Cortisone Ciba, eye ointment & drops)

आई वायन्टमेंट या आंखों का मलहम १ प्रतिशत शक्ति का २.५ ग्राम के ट्यूब में।

आई ड्राप्स या आंखों के लिये घोल—१ प्रतिशत शक्ति २.५ सी. सी. के वायल मे।

आंखों का मलहम या ड्राप्स (१-२ बूंद) प्रति २-३ या ४ घंटे पर आंखों मे डाला जाता है। उग्र या भयंकर अवस्थाओं में इसके साथ इंजेक्शन की आवश्यकता होती है। जिसके लिये—

(२) हाइड्रोकौर्टिसन सिबा का १ सी. सी. का इंजेक्शन मिलता है जिसमे २५ मिलीग्राम हाइड्रोकौर्टिसन रहता है। एक बक्स मे ३ एम्पुल रहते हैं, मात्रा और प्रयोग विधि पूर्ववत्।

(१२) लेडरले लैबोरेटरीज (Lederle laboratories)—

(१) लेडरकौर्ट (Lederkort) मार्का अल्फा-हाइड्रोक्सी प्रेड्निसोलोन ४ मिलीग्राम शक्ति के टेब्लेट १० टिकियों की शीशियों में मिलता है।

मात्राक्रम और औषध प्रयोग—वयस्कों के लिए साधारण रोगों मे मौखिक मार्ग द्वारा आरम्भिक मात्रा ८-२० मिलीग्राम रोजाना ३-४ छोटी मात्राओं मे बांटकर दिया जाता है। संतोषजनक लाक्षाणिक सुधार हो जाने के बाद २-३ दिनो पर २ मिलीग्राम की दर से मात्रा मे धीरे धीरे कमी करनी चाहिए।

(१३) गाइगी कम्पनी (Geigy)—

डेल्टा ब्युटाजोलिडीन [Delta Butazolidin] जिसके हरेक टेब्लेट मे ब्युटाजोलिडीन ५० मिलीग्राम + प्रेड्निसोन १.२५ एम. जी. रहता है। ३०, १५० और ५०० टेब्लेटो की बोतलो मे मिलता है। गठियावात, आमवात, पेशीवात, कण्डराप्रदाह, अस्थि संधिशोथ, स्नेहपुटकशोथ (*Gout, Rheumatism, Myalgia, Tenosynovitis and tendinitis, myagia, arthritis, bursitis etc.*) आदि अवस्थाओं में विशेष लाभदायी होता है।

मात्राक्रम—प्रारम्भिक मात्रा—२ टेब्लेट ३-४ वार प्रतिदिन। बाद में अनुपालक मात्रा—२ टिकिया २ वार प्रतिदिन, या १ टिकिया ३ बार प्रतिदिन। गोलियां भोजन के साथ या बाद मे थोड़ा

पानी के साथ सम्पूर्ण रूप में ही (बिना चबाये हुये) निगल जाना चाहिये।

(१४) ड्यूमेक्स-फाइजर कम्पनी—

डेल्टाकौर्टिल (*Delta cortiil*)—

५ मिलिग्राम की प्रत्येक टिकिया, १० और १०० टिकियों के बोतलो मे मिलता है। इन्ट्राम-स्कूलर तथा इन्ट्राआर्टिकुलर (*Intramuscular and Intra-articuler*) या जोड़ों के अन्दर इन्जेक्शन देने के लिये २० मिलिग्राम प्रति सी. सी. शक्ति वाले १ सी. सी. के एम्पुलो में उपलब्ध।

मात्राक्रम और व्यवहार विधि—

साधारण वयस्कों मे आरम्भिक मात्रा २०-३० मिलिग्राम मौखिक मार्ग से या १-१.५ सी. सी. का इन्ट्रामस्कुलर इन्जेक्शन प्रतिदिन। रोग पर काबू पा लेने और प्रचंडता कम हो जाने पर प्रत्येक २-३ दिनो के अन्तर पर मात्रा मे ५ मिलिग्राम क्रमशः कमी करनी चाहिये। अनुपालक मात्रा के लिए प्रायः ५-२० मिलिग्राम प्रतिदिन की आवश्यकता होती है।

रोगचिकित्सा के लिये प्रयोग—

(१) अस्थि-सन्धिशोथ (*Osteo-arthritis*) (२) आमवातज सन्धिशोथ (३) गठियावात (४) श्वासकास या दमा (५) अनेक प्रकार के प्रदाहज और व्युत्साहिक चर्म प्रदाह (६) जुड़पित्ति, शीत-पित्त आदि।

कुछ गम्भीर संक्रामक और प्रदाहजनक अवस्थाओ मे अन्य औषधियो के संयोग मे यह प्राणरक्षक औषधि साबित होती है।

प्रतिषेध—आमाशयव्रण, मस्तिष्क विकार, यक्ष्मा संक्रमण आदि।

—श्री डा० पद्मदेव नारायण सिंह
बङ्गला नम्बर-एफ ४० पोस्ट-सिन्दरी
जिला-धनबाद (बिहार)

॥ पृष्ठ २६ का शेषांश ॥

भैंस के घी मे मुलैठी, सफेद चन्दन घिसकर पीने से शीघ्र प्रसव होता है। अडूसा की जड़ को पानी में घिस योनि और नाभि में लेप करें। शीघ्र प्रसव के लिये यह लेप प्रसिद्ध है।

कड़ुवी तुम्बी, सांप की केंचुली, अमलतास का गूदा, सरसों इनको सरसों के तेल में मिला योनि को धूप देने से अपरापातन शीघ्र होता है।

सेंहुड़ के दूध को थोड़ा सा शिर मे डालने से शीघ्र प्रसव होता है।

सरफोके की जड़ को शिर के बालो मे रखने से सुख से प्रसव होता है।

विस्तार भय से मूल श्लोकों की भाषा मात्र लिख दी है। अधिक देखना चाहे तो गद निग्रह मे देखे तथा चरक शारीर स्थान अ० ८ श्लोक ४१ सुश्रुत शारीर अ० १०-११ देखें

कुछ माह पूर्व धन्वन्तरि मासिक पत्र में अपामार्ग के सद्यः प्रसवकर गुणो का अनेक उदाहरण देकर समर्थन किया गया था। आज हमको भेल की टीका के बनाने मे गरुण पुराण देखने पर अपामार्ग का सद्यः प्रसवकर गुण मिला है। आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका का एक कटिंग अपामार्ग के विषय मे हमारे पास रखा है। उसमे लिखा है कि प्रसव वेदना से जब स्त्री पीड़ित हो रही हो उस समय सर्व प्रथम अपामार्ग मूल लेकर कच्चे धागे से कमर मे इस प्रकार बांधना चाहिये कि जड़ जंघा के सामने लटकती रहे। १५ मिनटों के भीतर ही प्रसव हो जायगा। ६० प्रतिशत प्रयोगों में लाभ होता है। प्रसव होते ही कमर का धागा तोड़ शीघ्र ही अलग कर देना चाहिए। नहीं तो कभी कभी गर्भाशय भी बाहर आने की संभावना होती है। उस कटिंग के लेखक श्री बालकृष्ण शल्यज वैद्यभूषण सुखरुपुर (पटना) है।

—श्री वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव
साहित्याचार्य, आयुर्वेद बृहस्पति
२६, बाजार लेन, नई दिल्ली—१

स्वास्थ्य रक्षा के कुछ सरल उपाय

श्रीमती सुमित्रादेवी अग्रवाल विशारद

१—भोजन सदैव नियत समय पर, ताजा और स्वच्छ स्थान में स्वच्छ पात्र में स्वच्छता के साथ तैयार करके खाना चाहिए। गरम, ताजा आहार शीघ्र ही हजम होजाता है। भोजन ऋतु, प्रकृति तथा समय के अनुकूल होना चाहिये।

२—भोजन अच्छी तरह भूख लगने पर ही करना चाहिये। जब भूख नहीं लगे तो उस समय भोजन को टाल दे। सप्ताह से एक समय का उपवास या एक दिन का उपवास आंत्र के खराब होने वाले हाजमे को ठीक कर देगा। भोजन के बाद धीरे धीरे भ्रमण करना चाहिये और बाये करवट लेटना चाहिये। इससे मंदाग्नि, अतिसार, कब्ज आदि रोग नहीं होते।

३—मल के देर तक आंतों में रहने से आंते जरूरत से अधिक रस चूस लेती है, जिससे मल कड़ा होकर कम मात्रा में निकलता है और कब्ज हो जाता है। इसलिए हाजत होने पर शौच जाने मे कभी भी देरी नहीं करनी चाहिये, कब्ज का मूल कारण हाजत को रोकना ही है।

४—कब्ज दूर करने के लिए रात को सोते समय ईसबगोल की भुसी ६ माशे की मात्रा मे रात को सोते समय गरम दूध से ले। कभी पेट अधिक खराब हो तो आधी छटांक कैस्टर आयल प्रातः काल आधा पाव गरम दूध मे मिलाकर पी ले, फिर जब तक पाखाना आता रहे, तब तक सोवे नहीं और उस दिन केवल खिचड़ी का ही सेवन करे।

५—प्रातः काल ओस की बूदों से भीगी हरी घास पर नंगे पांव टहलना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। इससे सिर दर्द, गले का दर्द, पुरानी सर्दी, पावो की ठण्डक, नेत्र रोग आदि बीमारियो में लाभ पहुचता है।

६—सूर्य की किरणे अपूर्व बलकारक तथा आरोग्यकारक हैं। इनका प्रभाव केवल शरीर की त्वचा पर ही नहीं होता वरन् त्वचा के भीतर प्रवेश कर रोग का नाश करती है। इनके प्रभाव से रक्त के लाल कण तथा श्वेत कण अधिक कार्य करने की क्षमता प्राप्त करते है। सूर्य की किरणो द्वारा रोग के कीटाणुओं का नाश होता है।

७—भोजन करने के बाद धूप स्नान नहीं करना चाहिये। छोटे बच्चों को प्रतिदन कुछ देर तक धूप मे लिटाने से उनको हड्डी की बीमारी एवं सूखा रोग नहीं होता। धूप स्नान में पसीना आना आवश्यक नहीं है। जब तक धूप अच्छी लगे तभी तक लाभदायक है।

८—प्रतिदिन नियमित रूप से स्नान करने से शरीर स्वच्छ रहता, तथा पाकस्थली मजबूत होती है। भूख तथा हाजमे की ताकत बढ़ती है। एवं हृदय मजबूत होकर शरीर नीरोग रहता है। भोजन के बाद दो घण्टे तक स्नान नहीं करना चाहिये स्नान के बाद शरीर को तौलिया से बिलकुल सुखाकर खूब रगड़ना चाहिये। शीतल जल में स्नान तथा टबबाथ स्वप्नदोष तथा वीर्य रोगो मे लाभदायक है।

९—हमारे शरीर में सत्तर प्रतिशत पानी है। शरीर का यह जलीय भाग मलमूत्र तथा पसीने के साथ बाहर निकलता रहता है, इसका संतुलन बनाये रखने के लिये पानी पीना नितान्त आवश्यक है। पानी में पेट साफ करने की असाधारण शक्ति है। बरसात मे जहां तक हो सके कम जल पीवे। सर्दी मे जरूरत के अनुसार और गर्मी में खूब जल पीवे। दिन में कम से कम ४-५ गिलास पानी जरूर पीना चाहिए।

१०—शरीर की भांति पेट भी आराम चाहता है। अच्छी नींद के बाद मनुष्य बलबान और स्वस्थ होता है। इसी प्रकार परिमित उपवास के बाद आतो की ताकत तथा कार्य करने की शक्ति बढ़ती

—शेषांश पृष्ठ ४० पर।

एन्टि-हिस्टामिनिक औषधियां

श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह एम. बी., बी. एस

एन्टिहिस्टामिनिक औषधियां वे औषधियां हैं जो शरीर के अन्दर हिस्टामिन की क्रियायों और कुप्रभावों को अवरुद्ध करके अनेक व्युत्साहिक लक्षणों और कुप्रभावो से रक्षा करती है। इनकी क्रिया हिस्टामीन के प्रतिकूल हुआ करती है। ये हिस्टामीन का उत्पादन तो नहीं रोक सकते किन्तु पर्याप्त सान्द्रण से उत्तकों या धातुओं मे विद्यमान रहने पर उन पर हिस्टामिन का प्रभाव या असर नहीं होने देते, अर्थात् इनकी क्रिया केवल लाक्षणिक या निवारक होती है रोग उन्मूलक नहीं। इस लिए एन्टिहिस्टामिनिक चिकित्सा के साथ साथ व्युत्साहिक प्रवृत्ति और हिस्टामिन उत्पत्ति अर्थात् उस रोग के मूल कारण की चिकित्सा भी अवश्य करनी चाहिए।

चिकित्सा कार्य के लिए एन्टिहिस्टामिनिक औषधियों को उनकी क्रिया एवं स्थिति काल के अनुसार ३ वर्गों मे बांटा जा सकता है—

(१) कम सक्रिय और कम उपशामक या निद्रालु, जैसे एन्टिस्टीन (यह प्रशामक की अपेक्षा कुछ उत्तेजक ही होता है।)

(२) अधिक सक्रिय और साधारणरूप में उपशामक—जैसे एन्थिसन, पाइरिबेन्जमीन (Pyribenzamine)।

(३) अति सक्रिय और अत्यधिक प्रशामक या अवसादक, जैसे बेनाड्रिल, फेनर्गन आदि।

एन्टिहिस्टामिनिक औषधियां साधारणत: मौखिकमार्ग से कैप्स्युल्स, गोलिओ या टिकियो के रूप में व्यवहार की जाती है जिन्हे उसी रूप में बिना चबाए पानी के साथ निगल जाना चाहिए। इन्जैक्शन की आवश्यकता बहुत कम होती है वह भी केवल आत्ययिक अवस्थाओं में। दवा प्रयोग करने के तुरन्त बाद, एक दो या अधिक से अधिक तीन दिनो के अन्दर ही पूरा लाभ दिखाई देना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर औषध बन्द कर देनी चाहिए। उपरोक्त पहले और दूसरे वर्ग की औषधियों की एक खुराक या मात्रा प्राय: १००-२०० मिलिग्राम (एन्टिस्टीन ५० एम. जी. प्रतिदिन) और तीसरे वर्ग के योगो का १०-५० एम. जी. (मिलिग्राम) होता है। औषधियां भोजन या नाश्ता के बाद जल के साथ लेनी चाहिए। व्यवहार करने के पहले औषध के साथ बक्स में रखे हुये पुर्जे को ध्यान से पढ़ लेना चाहिए। औषधि विशेष का चुनाव रोग और रोगी की अवस्था और चिकित्सक के निजी अनुभव (पसन्द) पर निर्भर करता है। चिकित्सकों को चाहिए कि उपरोक्त तीनो वर्ग की एक दो औषधियो के गुणावगुण से भली भांति परिचित हो जाय और अपने चिकित्सावृत्ति मे अधिकतर उन्हीं का व्यवहार किया करे।

ये औषधियां रोगी के शरीर से रोगरोधक या प्रतिरक्षा शक्ति उत्पन्न नहीं करती और इनकी क्रिया अस्थायी और अल्पकालीन होती है। मात्राक्रम और उसका प्रायिकता रोग, रोगी और औषधि विशेष के गुणकार्य विशेषत: उनके खंडन और उत्सर्जन दर पर निर्भर करता है। शिशुओं और बालकों के लिए निम्नलिखित आधार पर मात्राक्रम निर्धारित करना चाहिए—

शिशुओं के लिए वयस्कमात्रा का $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{4}$ भाग शरीर भार के अनुसार। २-५ वर्ष उमर वालों के लिए वयस्क मात्रा का $\frac{1}{3}$ भाग शरीर भार के अनुसार। ५ से १२ वर्ष उमर वालो के लिए वयस्क मात्रा का $\frac{1}{2}$ भाग शरीर के अनुसार।

एन्टिहिस्टामिनिक औषधियों का कुप्रभाव—

किसी किसी रोगी मे निम्नलिखित व्यतिकार

१ (१) लेखक की पुस्तक "सल्फा, एन्टि-बायोटिक्स, विटामिन्स कौर्टिसन और एन्टिहिस्टामिनिक चिकित्सा" पर आधारित।

या कुप्रभाव पाये जा सकते है। अवाञ्छनीय उपशमन और निद्रालुता, सतर्कता और सावधानी में कमी (इनसे निवारण के लिए इनके साथ ५ मिलिग्राम एम्फेटामीन एफेड्रीन, कैफीन आदि दिये जा सकते हैं) आदि। इनके प्रतिकूल मानसिक उत्तेजना, प्रलाप, आक्षेप आदि लक्षण देखे जा सकते है। किन्तु चिकित्स्य मात्रा में औषध लेने पर ये लक्षण साघातिक नहीं होते। छाती और पेट में दर्द, कै या कै करने की इच्छा (मतली) मुँह सुखना, तेज नाडी, हृदय धड़कना, त्वगीय उद्भेद, अकर्णी कोशाल्पता, और बहुत विरले अत्यधिक मात्रा में लेने पर मृत्यु तक की सम्भावना रहती है। असावधानी से अत्यधिक और विषाक्त, अनिष्टकारी मात्रा में दवा खा लेने पर आक्षेप तथा अन्य कुलक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में रोगी को तुरन्त वमन करा कर और आमाशय प्रक्षालन (gastric leavage) द्वारा अनवशोषित या बचा हुआ औषध पेट से निकाल देना चाहिए और उसी आमाशय नली द्वारा सोडाबाई कार्ब (Soda bi carb) का घोल पेट में डालकर छोड़ देना चाहिए। रोगी को प्रकाश रहित कमरे में पूर्ण शय्या विश्राम कराना चाहिए। आक्षेप उत्पन्न होने पर उपशामक औषधियो के प्रयोग में पूरी सावधानी रखनी चाहिए नहीं तो अत्यधिक उपशमन या बेहोशी हो जा सकती है। आवश्यकतानुसार कोरामिन का इन्जेकशन और ओक्सीजन के अन्तर्श्वसन की जरूरत पड़ सकती है।

चिकित्सकीय संकेत तथा रुग्णोपचारीय प्रयोग —

आनुसंगिक संक्रमण और रचना विकृति रहित व्युत्साहिक रोगो में इन औषधियो से अधिकतम लाभ होता है। वाहिनी चालक नासा स्राव (Vasomotor rhinorrhoea) तृणज्वर, क्षीरमउत्क्लेश, त्वगीय व्युत्साहिक प्रतिक्रियाये और उद्भेद, कंडुयन या खारिश, श्वसन संस्थान के व्युत्साहिक रोग और श्वास कास (दमा) एन्जियोन्यूरोटिक शोथ (Angioneurotic oedema) अग्निदाह शीतपित्त, गर्भकालीन वमन और यात्रा में उत्पन्न होने वाले विशेषतः सामुद्रिक यात्राकालीन उत्क्लेश, पार्किन्सन्स रोग आदि की चिकित्सा के लिए और एक्जिमा में प्रदाह, शोथ और कण्डु कम करने के लिए। फेनर्गान जैसी औषधियों का व्यवहार संज्ञाहारी औषधियों के प्रभाव बढ़ाने और उनके कुप्रभावों से रक्षा के लिए भी होता है। इनका अथवा अधिक व्यवहार पेनीसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन, सल्फा औषधियाँ, लिवरएक्सट्रैक्ट, इन्सुलीन तथा अन्य औषधियो तथा रक्त या प्लाज्मा आदान (Blood of plasma transfusion) आदि द्वारा उत्पन्न साधारण तथा भयावह और व्युत्साहिक कुप्रभावों, कुलक्षणो आदि की चिकित्सा के लिए होता है।

विशेष सावधानी—निद्रालु और उपशामक गुणों के कारण इनका प्रयोग करते समय रोगी को कल-पुर्जा, और स्वचालित वाहन जैसे रेल, बस, हवाई जहाज मोटर आदि नहीं चलाना चाहिए नहीं तो दुर्घटना की आशंका रहती है।

अब हम विभिन्न कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत कुछ उपयोगी व्यापारिक योगो, कल्पो के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

(१) बरो वेल्कम —
(Burrough wellcome & Co)

(१) एक्टिडिल' मार्का ट्राइप्रोलिडिन हाइड्रोक्लोराइड २.५ मिलिग्राम की टिकिया, २५ टिकियाओं के बोतलों में और बच्चो के लिए एलिक्जीर या शर्बत ३ औंस के शीशिओं मे उपलब्ध। मात्रा वयस्क–१ टिकिया दिन मे २-३ बार मौखिक मार्ग द्वारा भोजन के बाद। बच्चो के लिए ०–२ वर्ष आयु वालों के लिए ½ चाय चम्मच दिन भर मे दो बार २–८ वर्ष आयु वालो के लिये १ चाय चम्मच दिन भर मे दो बार ८–१२ वर्ष और वयस्क के लिये २ चाय चम्मच दिन भर २-३ बार।

(२) 'हिस्टैन्टिन' मार्का Chlorcyclizine hydrochloride

१ टेब्लेट—५० मिलिग्राम का, २५ और १०० टिकियाओ के पैकेटो में।

मात्रा—१ टिकिया दिन भर में २-३ बार।

(२) हिस्टैन्टिन क्रीम—$\frac{1}{3}$ औंस के ट्यूब में।

(३) हिस्टैन्टिन क्रीम विथ कालामिना—२० ग्राम के ट्यूब में।

नं०२-३ चमडी के व्युत्साहिक रोगों में दिन में २-३ बार लगाया जाता है। या एक बार गौज (Gauge) में भिगो कर पट्टी किया जाता है।

(२) होश्ट् कम्पनी (Hoecht)

१—आस्पासन (Aspasan)—१० और २५० टिकिओं के बोतलों में मिलता है। श्वासकास के निरोध और चिकित्सा के लिए प्रयुक्त होता है। टेब्लेट दो तरह का होता है—

अ—'टी' (Tablet) टेब्लेट—श्वास कास या दमा का पहला लक्षण प्रगट होते ही व्यवहार करना चाहिए।

ब—'एन' [N tabet] टेब्लेट—रात को सोते समय (नींद के लिए) व्यवहार करना चाहिए।

स—सूंघने की दवा—श्वास कास के लक्षण प्रगट होते ही एक बार में रूमाल में रख कर १०—१५ अन्तर्श्वास लेने चाहिए।

२—एविल Avil—५० मिलिग्राम की टिकिया १०, २०, १००, २५०, और १००० टिकियों के बोतलों में मिलता है। इन्जैक्शन के लिए २ सी. सी. के एम्प्युल्स ५ और २५ एम्प्युलों के बक्सों में मिलता है। २ ग्राम के डिब्बों में शुद्ध चूर्ण के रूप में स्थानिक प्रयोग के लिए भी मिलता है। जुडपित्ति, एक्जिमा, खारिस, सीरम उत्क्लेरा, आहारज व्युत्साह, औषधज-प्रतिक्रिया (व्युत्साहिक), कृमि-दंश और एन्जियोन्यरोटिक शोथ आदि में व्यवहृत होता है। रक्तादान क्रिया में आघात (Shock) से रक्षा के लिए भी व्यवहार किया जाता है।

मात्रा वयस्क—$\frac{1}{2}$ टिकिया दिनमें २-३ बार भोजन के बाद $\frac{1}{2}$-१ एम्प्युल का दिन भर में १-२ बार इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन। अत्यावश्यकताओं में $\frac{1}{2}$ एम्प्युल का इन्ट्राविनस इन्जैक्शन।

३—एविलेटिस [Avilettes]—१० मिलीग्राम की टिकिया ६० और २५० टिकियों के बोतलों में मिलता है। इसका संघठन और रुग्णोपचारीय प्रयोग "एविल" के समान ही है।

मात्रा वयस्क—२-३ टिकिया दिन भर में २-३ बार। १० वर्ष से अधिक उमर वाले बच्चों के लिए १-२ टिकिया २-३ बार प्रतिदिन, और इससे कम उमर के बच्चों के लिए १ टिकिया २-३ बार प्रति-दिन भोजन के बाद।

४—एविल वायन्टमेन्ट या मलहम—१५% शक्ति का मलहम १० ग्राम के ट्यूब में चमडी पर लगाने के लिए मिलता है। रस युक्त या सूखा एक्जिमा (पामा), कडुयन या खारिश, कीट दंश, अग्निदाह (साधारण), जुडपित्ति, चमडी का प्रदाह, लीचेन सीम्प्लेक्स आदि रोगों में व्यवहार किया जाता है।

(३) रोश (Roche) कम्पनी—

"थियोफोरिन (Theophorin)" मार्का—एन्टि हि-स्टामिनिक जिसमें अपसादक होने का दुर्गुण नहीं होता है।

"थियोफोरिनेट्स (Theophorinets) मार्का १० मिलिग्राम का टेब्लेट, ३० टिकिओं वाले ट्यूब, और 'थियोफोरीन' मार्का २५ मिलिग्राम का सुगरकोटेड (Sugar coated) ड्रेजिज् (Dragees) या टेब्लेट ५० और १०० ड्रेजिज् के बोतलों में मिलता है।

चमडी पर लगाने के लिए ५% शक्ति का ३० ग्राम के ट्यूब में "थियोफोरिन आयन्टमेन्ट" के नाम से मलहम भी मिलता है, जो १—२ बार प्रति दिन लगाया जाता है।

मात्रा वयस्कों के लिए—१० मिलीग्राम की टिकिया, १ से ३ टिकिया प्रतिदिन। अधिक तीव्र अवस्थाओं में आवश्यकतानुसार २५ मिलिग्राम की टिकिया-१ टिकिया ३ बार प्रतिदिन मौखिक मार्ग द्वारा भोजन के बाद।

बालकों के लिए—१० मिलिग्राम की टिकिया १ से ३ बार प्रति दिन।

(४) सैन्डोज़ (Sandoz) कम्पनी—

सैन्डोस्टिन और सैन्डोस्टिन कैल्शियम—

सैन्डोस्टिन का शुगरकोटेड टिकिया—प्रत्येक गोली में ०.०२५ ग्राम थेनाडिलिन-टार्ट्रेट रहता है, जो २०, १०० और ५०० टिकियों वाले बोतलों में मिलता है।

मात्रा—१ टिकिआ ३ बार प्रतिदिन भोजन के बाद दें।

सैन्डोस्टिन कैल्शियम का—

१–इफरवेसेन्ट (Effervescent) टेब्लेट--१२ टिकिया और (२) सीरप (शर्बत) ८५ और २०० सी. सी. के बोतलों में उपलब्ध।

मात्रा—१ टिकिया या १ चम्मच भर शर्बत ३ बार प्रतिदिन। अधिकतम मात्रा ६ टिकिया या ६ चम्मच भर प्रतिदिन। बच्चों के लिए ½–२ चम्मच उमर के मुताबिक १-३ बार प्रतिदिन।

३–इन्जैक्शन ५ और १० सी. सी. के एम्प्युलों में, ५, ५० और १०० एम्प्यूलों वाले बक्सों में उपलब्ध। अति तीव्र और संकटावस्थाओं में इसका प्रयोग होता है। १० सी. सी. का सिराभ्यन्तर इन्जैक्शन १–३ बार प्रतिदिन ३–५ दिनों तक। बच्चों में ५ सी. सी. का इन्जैक्शन।

४–मलहम या आयन्टमेन्ट—१० और २५ ग्राम के ट्यूबों में ३-४ बार प्रतिदिन लगाया जाता है।

५–नेजल-स्प्रे (Nasal spray) या नासिक-फुहारा—१० सी. सी. के फायल में मिलता है, और नेबुलाइजर (Nebuliser) या फुहारक द्वारा दिन भर में कई बार प्रयोग किया जाता है।

(५) सीबा (Ciba) कम्पनी —

१–एन्टिस्टीन (Antistin)–(क) १०० मिलिग्राम की टिकिया–२०, १०० और ५०० टिकिओं के बोतलों में।

(ख) १०० मिलिग्राम प्रति एम्प्यूल का इंजेक्शन, ५ और ५० एम्प्युलों के बक्सों में।

(ग) २ प्रतिशत शक्ति का क्रीम २० ग्राम के ट्यूब में चमड़ी पर लगाने के लिए।

स्थानीय क्रिया के अतिरिक्त इसकी केन्द्रीय उपशामक क्रिया भी होती है। रोगी इसे अच्छी तरह सहन करते हैं। विभिन्न व्युत्साहिक अवस्थाओं में जैसे व्युत्साहिक नासा प्रदाह, जुड़पित्ति, कीड़ों का काटना या डसना, औषधज या आहारज व्युत्साह (Allergy), रक्तादान के समय उत्पन्न होने वाले व्युत्साहिक लक्षण, एन्टिबायोटिक द्वारा उत्पन्न व्युत्साह चमड़ी के विविध विकार या शोथ, एक्जिमा, गर्भकालीन रक्तविषाक्तता हिस्टामिन के कारण उत्पन्न सिर दर्द-आदि में यह विशेष लाभदायक होता है।

मात्रा और चिकित्साक्रम—

[१] टिकिया—½-२ टिकिया ३-४ बार प्रतिदिन जल के साथ भोजन के बाद।

[२] क्रीम—चमड़ी को साफ कर ३-४ बार रोज लगाना चाहिए।

[३] इन्जेक्शन–२ सी. सी. का इन्ट्रामस्कुलर और आत्ययिक अवस्थाओं में इन्ट्राविनस मार्ग से ३ बार प्रतिदिन। आँखों और नाक में डालने के लिये एक विशेष योग "एन्टिस्टीन-प्राइविन (Antistin Privin) नाम से १२.५ सी. सी के बोतलों में मिलता है। नाक में नेबुलाइजर द्वारा स्प्रे ऐसे भी २-३ बूंद घोल दिन में ३-५ बार डाला जाता है। आंखों में १ बूंद ३-४ बार प्रतिदिन डाला जाता है।

(२) डाइबिस्टीन (Dibistin)—इसमें दो सक्रिय एन्टिहिस्टामिनिक मिले होते हैं। यह ५० मिलिग्राम प्रति टेब्लेट, और २० तथा १०० टेब्लेटों के बोतलों में मिलता है।

मात्रा—१-२ टेब्लेट प्रतिदिन भोजन के बाद पानी के साथ। १२ वर्ष से कम उमर वाले बच्चों को ½–१ और इससे अधिक उमर वालों को पूरा वयस्क मात्रा दिया जा सकता है।

(६) पार्क डेविस कम्पनी—

(१) एम्ब्रोडिल कैप्सील्स (Ambrodyl capceals) २५ मिलिग्राम के कैप्सील्स, २५ कैप्सीलसों की शीशियों में मिलता है।

मात्रा—१ कैप्सूल ३-४ बार प्रतिदिन।

(२) एम्ब्रोडिल सीरप—४ औंस की शीशियों में मिलता है। प्रत्येक चाय चम्मच भर या ४ सी. सी. में १० मिलिग्राम एम्ब्रोडिल रहता है। शिशुओं और बच्चों के लिए यह विशेष उपयोगी होता है।

मात्रा—बच्चों के लिए १-२ चाय चम्मच भर ३-४ बार प्रतिदिन, वयस्कों के लिए २-३ चाय चम्मच ३-४ बार प्रति दिन।

(३) बेनाड्रिल कैप्सूल (Benadryl capsuals)—इसमें व्युत्साह और आक्षेपनाशक (antiallergic and antispasmodic) दोनों ही गुण हैं। प्रत्येक कैप्सुल में २५ या ५० मिलिग्राम बेनाड्रिल रहता है। २५ मिलीग्राम वाले २५ और १०० कैप्सुलों के और ५० मिलिग्राम वाले कैप्सुल ५० कैप्सुलों की शीशियों में मिलते हैं।

मात्रा—१ कैप्सुल ३-४ बार प्रतिदिन और बाद में २ बार प्रतिदिन (सुबह शाम) दिया जाता है।

(४) बेनाड्रिल क्रीम २%—यह चमड़ी पर लगाने के लिए १ औंस के ट्यूब में मिलता है और २-३ बार प्रतिदिन लगाया जाता है।

(५) बेनाड्रिलसीरप-यह बच्चों के लिए विशेष उपयुक्त होता है और ४ तथा १६ औंस की शीशियों में मिलता है। मात्रा (बच्चों के लिए) १-२ चाय चम्मच भर दिन भर में ३-४ बार।

(६) बिनासीन कैप्स्युल्स (Benacine capsules) प्रत्येक कैप्सुल में बेनाड्रिल २५ मिलिग्राम, हायोसीन हाईड्रोब्रोमाइड $\frac{1}{300}$ ग्रेन रहता है, और १० कैप्सुलों की शीशियों में मिलता है। यात्रा में सामुद्रिक उत्क्लेश या सुबह में होने वाली गर्भकालीन मतली आदि अवस्थाओं में यह विशेष उपयोगी होता है। मात्रा—यात्रा करने के $\frac{1}{2}$ से १ घंटा पहले १-१ कैप्स्युल खा लेनी चाहिए। ४ घंटा बाद मात्रा दुहरायी जा सकती है।

(७) बेनाड्रिल एम्प्लेट्स (Bonadryl emplates) प्रत्येक २५ मिलिग्राम का होता है और ५० एम्प्लेट्स के बोतलों में मिलता है। यह ऐसा बना होता है कि आमाशय रसों की क्रिया से बच कर आंतों में पहुंचने के बाद विघटित हो कार्य करता है।

मात्रा—२ एम्प्लेट्स आवश्यकतानुसार एक, दो या तीन बार प्रतिदिन।

(८) बेनाड्रिल एक्सपेक्टोरैन्ट (Benadryl expectorent)—यह कफ निस्सारी और प्रशामक दवा है। ४ और १६ औंस की शीशियों में मिलता है। प्रति औंस में ८० मिलिग्राम बेनाड्रिल रहता है।

मात्रा वयस्कों के लिए—१-२ चाय चम्मच भर प्रति ३-४ घंटे पर, और बच्चों के लिए—१ चाय चम्मच भर प्रति ३-४ घंटे पर।

(९) बेनाड्रिल लोशन या कलाड्रिल Benadryl lotion or coladiyl)—चमड़ी की प्रदाहज अवस्थाओं में लगाने के लिए यह एक उत्तम दवा है। प्रत्येक औंस में ३५ ग्रेन कालामिना तथा ४ $\frac{1}{2}$ ग्रेन बेनाड्रिल (Calamine benadryl) रहता है। ६ औंस के बोतलों में मिलता है और रोज ३-४ बार लगाया जाता है। चेहरे पर भी लगाया जा सकता है।

(१०) नाक में डालने के लिए बेना फेड्रिन (Benafedrin) १० सी. सी. के ड्रापरयुक्त वायल में मिलता है। समवलय ग्लुकोज तरल माध्यम में ०.१% बेनाड्रिल और १% एफेड्रिन हाइड्रोक्लोर रहता है। २-४ बूंद नाक में ३-४ बार प्रतिदिन डाला जाता है।

(६) मे एंड बेकर (M &B.) कम्पनी

[१] एन्थिसन (Anthisan)—

(१) ५० और १०० मिलिग्राम की शुगर कोटेड गोलियां।

(२) प्रति तरल ड्राम या ३.६ सी. सी. (१ चाय चम्मच भर) में २५ मिलिग्राम मेपाइरामीन मैलियेट (Mepyramine maleate) युक्त एलिक्जीर (elixir) या शर्बत।

(३) इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन के लिए २ सी. सी. के एम्प्युलों में ७.५% जलीय घोल।

(४) चमड़ी पर लगाने के लिए २ प्रतिशत शक्ति का क्रीम—सीधे चमड़ी पर दिन भर में २-३ बार लगाया जाता है।

[२] फेनर्गन [Phenergen]—

(१) १० और २५ मिलिग्राम की शुगरकोटेड नीले रंग की गोलियां।

(२) प्रति तरल ड्राम या ३.६ सी. सी. में ५ मिलिग्राम प्रोमेथाजीन हाइड्रोक्लोराइड युक्त शर्बत या एलिक्जीर।

(३) इन्जेक्शन के लिए २ सी. सी. के एम्पुलों में २.५ प्रतिशत शक्ति का जलीय घोल।

(४) चमड़ी पर लगाने का २ प्रतिशत क्रीम।

[३] एन्थिसन लोशन—चमड़ी पर लगाने के लिए। यह हिस्टामिननाशक उपशामक और खारिश या खुजलाहट को दूर करता है। ३-४ बार प्रतिदिन लगाया जाता है।

[४] फेन्सिडिल कफ लीङ्कटस (Phensidyl cough linctus)—इसके प्रति तरल ड्राम या ३-६ सी. सी. में प्रोमेथाजीन हाइड्रोक्लोराइड ३-६ मिलिग्राम, कोडान फोस्फेट ८ मिलिग्राम, और एफेड्रिन हाइड्रोक्लोराइड ७. २ मिलिग्राम रहता है। यह सूखी खांसी के लिए व्यवहार किया जाता है।

मात्राक्रम और औषधि व्यवहारण मार्ग [१] एन्थिसन-मौखिक मार्ग से वयस्कों में पहले दिन अधिकतम मात्रा ३०० मिलिग्राम छोटी-छोटी मात्राओं में बांट करके। बाद में धीरे धीरे मात्रा बढ़ा कर आवश्यकतानुसार १ ग्राम प्रतिदिन तक, और फिर बाद में कम कर देना चाहिए।

साधारण मात्रा—१ टिकिया २ बार रोज भोजन के बाद। शिशुओं और बच्चों के लिए दैनिक मात्रा निम्नलिखित है, जिसे ३-६ छोटी छोटी मात्राओं में बांट कर देना चाहिए—

०-१ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए २५-७५ मिलिग्राम टिकिया या १-३ तरल ड्राम एलिक्जीर दें। १-२ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए ३६.५ से १०० मिलिग्राम टिकिया या १३-४ तरल ड्राम एलिक्जीर दें। २-३ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए ५० से १२५ मिलिग्राम टिकिया या २-५ तरल ड्राम एलिक्जीर दें। ३-५ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए ६५ से २०० मिलिग्राम टिकिया या ३-८ तरल ड्राम एलिक्जीर दें। ४-७ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए १०० से २५० मिलिग्राम टिकिया या ४-१० तरल ड्राम एलिक्जीर दें। ७-१४ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए १५० से ४०० मिलिग्राम टिकिया या तरल ड्राम एलिक्जीर दें।

एन्थिसन इन्जैक्शन की आवश्यकता आत्ययिक अवस्थाओं में और मुख से दवा नहीं खा सकने पर पड़ती है। १ एम्प्युल का गहरा या गम्भीर इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन लगाया जाता है।

फेनर्गन—मौखिक मार्ग से गोली या एलिक्जीर जो बच्चों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है दिया जाता है। साधारणतः २५ मिलिग्राम की एक टिकिया प्रतिदिन ही काफी होती है। किन्तु आवश्यकतानुसार १ गोली २-३ बार रोज, या १० मिलिग्राम की गोली हरेक ६ घंटे बाद दी जा सकती है। शिशुओं और बच्चों के लिए १० मिलिग्राम की १, २ या ३ टिकिया प्रतिदिन दें। एलिक्जीर या शर्बत (प्रति चाय चम्मच भर शर्बत में ५ मिलिग्राम औषध) निम्न प्रकार से दें—

०-२ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए ५-१५ मिलिग्राम रोज, छोटी छोटी मात्राओं में बांट कर दें। २-५ वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए १०-२० मिलिग्राम रोज, छोटी छोटी मात्राओं में बांट कर दें। ५-१० वर्ष उमर वाले बच्चों के लिए १५-२५ मिलिग्राम रोज, छोटी छोटी मात्राओं में बांट कर दें।

इन्जैक्शन केवल आत्ययिक अवस्थाओं में विशेषतः एड्रीनलीन इन्जैक्शन द्वारा कार्य नहीं होने पर इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन द्वारा दिया जाता है।

फेन्सीडिल लीङ्कटस—मात्रा वयस्क—१-२ चाय चम्मच भर २-३ बार प्रतिदिन दें।

बच्चों के लिए निम्न मात्रा है—

२-५ वर्ष उमर वालों के लिए ½-½ चाय चम्मच भर २-३ बार प्रति दिन दें। ५-१० वर्ष उमर वालों के लिए ½-१ चाय चम्मच भर २-३ बार प्रति दिन दें। १० वर्ष उमर के बाद १-२ चाय चम्मच भर २-३ बार प्रति दिन दें।

(८) गाइगी (Geigy) कम्पनी—

सिनोपेन (Synopen)—

(१) सिनोपेन टेब्लेट—२५ मिलिग्राम का शुगरकोटेड टिकिया २०, २०० और १००० टेब्लेटों के बोतलों में। मात्रा—१ टिकिया रोज २-३ बार। वयस्कों के लिए ३-६ गोलियां प्रतिदिन। बच्चों के लिए ५-१० वर्ष आयु तक १-२ टेब्लेट; १० वर्ष से अधिक आयु वालों के लिए १-३ टेब्लेट प्रतिदिन।

सावधानी—५ वर्ष से कम आयु के बच्चों लिए यह दवा प्रयोग नहीं करनी चाहिए।

(२) १ प्रतिशत शक्ति का क्रीम २० ग्राम के ट्यूब में चमड़ी पर लगाने के लिए २-३ बार प्रति दिन या आवश्यकतानुसार व्यवहार करना चाहिए।

(३) १ प्रतिशत शक्ति का घोल २ सी सी. के एम्प्युलों में इन्ट्राविनस या इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन के लिए ५ और ५० एम्प्युलों के बक्सों में आता है।

(९) अस्टा-वर्के-ए-जी (Asta Werke, A.G.) क०

सिस्ट्रल और सिस्ट्रल सी (Systral and systral c)—यह हिस्टामिन तथा कोलिनर्जिक प्रभावनाशक (Antihistaminic and anticholinergic) होता है। इसका असर ६-८ घंटा तक रहता है। सर्वाङ्गीय उष्णशामक के अतिरिक्त प्रभावकारी रूप में स्थानीय संज्ञाहारी भी होता है।

मात्रा और व्यवहार विधि—

(१) टिकिया--शुगर कोटेड टिकिया, १-२ टिकिया २-३ बार रोज मौखिक मार्ग द्वारा;

(२) शर्बत (बच्चों के लिए) २ वर्ष तक उमर वाले बच्चों के लिए १ चाय चम्मच, २-५ वर्ष २ चाय चम्मच ५-१० वर्ष के बच्चों को २-३ चाय चम्मच और १० वर्ष के बाद ३-४ चाय चम्मच भर मौखिक मार्ग द्वारा २-३ बार रोज।

(३) इन्जैक्शन-एक एम्प्युल इन्ट्रामस्कुलर इन्जैक्शन द्वारा दिन भर में २-३ बार।

व्यापारिक योग—

[१] सिस्ट्रल टेब्लेट—२० मिलिग्राम सिस्ट्रल का शुगर कोटेड टिकिया १२, ५० और २५० टिकियों के पैकेटों में।

[२] इन्जैक्शन-१ सी. सी. में १० मिलिग्राम औषधयुक्त एम्प्युलों में ५, २० और ५० एम्प्युलों के बक्सों में।

[३] शर्बत—१०० सी. सी के बोतलों में जिसके प्रत्येक सी. सी. में ०.५ मिलिग्राम औषधि रहती है।

[४] सिस्ट्रल सी—(यानि कैफिन-युक्त) की शर्करा प्रलेपित (Sugar coated) २० मिलिग्राम सिस्ट्रल तथा ५० मिलिग्राम कैफिन (caffeine) युक्त टिकिया १२, ५० और २५० टिकियों के पैकेटों में उपलब्ध।

—श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह एम. बी. बी. एस
बङ्गला नम्बर एफ ४०
पो० -सिन्दरी (धनबाद) बिहार

अङ्क ११ में प्रकाशित पहेलियों के उत्तर

१. लंघन, २. नागरस्य क्वाथ, ३. विभीतक,
४. वृषस्यकषाय, ५. सिंहानन, ६. लेखनी।

—श्री नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री
६/१८ राणाप्रताप बाग, देहली।

अनन्तवात

श्री वैद्य रतनलाल मिश्र व्याकरणशास्त्री आयुर्वेदाचार्य

अनन्तवात एक अतीव कष्टसाध्य शिरोरोग है। इसकी अविराम वेदना व्यक्ति के जीवन सुख को हठात् नष्ट कर देती है। यह रोग राजस्थान में बहुधा पाया जाता है। राजस्थानी भाषा में इसे धोबे के रोग से पुकारते हैं। यथासमय यथोचित चिकित्सा के अभाव में रोगी के नेत्र सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर भी इस रोग से मुक्त होना दुस्सम्भव सा होता है। इस रोग के परिचयार्थ निम्नाङ्कित सुश्रुत के पद्यों का उल्लेख भी अप्रासंगिक न होगा—

> दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां
> संपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम्।
> कुर्वन्ति सोऽक्षिभ्रुवि शंखदेशे
> स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥१॥
> गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं
> हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्।
> अनन्तवातं तमुदाहरन्ति
> दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥२॥
>
> —सु. अ. २५

मुझे एक अत्यन्त ही जीर्ण एवं उग्र रोगिणी की चिकित्सा का अवसर मिला है, जिसकी चिकित्सा का वृत्त निम्नवत् है—

रोगिणी का नाम 'खेरी' आयु २५ वर्ष है। उसके परिवार वालों ने भूत-प्रेत के तावीज भी करवाये, किन्तु लाभ की अपेक्षा कष्ट बढ़ता ही गया। ६ माह पूर्व मेरे पास वह चिकित्सार्थ राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय जोध्यासी लाई गई। उस समय वह शिरोवेदना से अत्यन्त छटपटा रही थी। अनवरत वेदना के कारण उसका शिरोभाग इतना व्यथित हो चुका था कि रुई के अत्यन्त मुलायम गद्दे पर भी सिर रखने से उसे महान कष्ट अनुभव होता था। भोजन एक माह से प्राय नहीं के बराबर था। भयङ्कर वेदना के कारण उसका वाम नेत्र विकृत हो चुका था। नेत्र खुलने भी दुस्सम्भव हो गये थे। ऐसी अवस्था में उसके लिए निम्न चिकित्सा व्यवस्था की गई—

योगराज गुग्गुलु १ वटी, संजीवनी वटी १ वटी, विषाण भस्म ३ रत्ती इन तीनों को पीसकर एक मात्रा बनाई गई। इस प्रकार दिन में तीन बार कदोष्ण जल से औषधि प्रयुक्त की गई। यह प्रयोग १५ दिन तक चलता रहा। इसके साथ ही नस्यार्थ षड्बिन्दु तैल का प्रयोग चालू रक्खा गया।

नेत्ररोग-निवृत्त्यर्थ ग्लेसरीन २ तोले, बोरिक एसिड ½ तोले, काच की स्वच्छ शीशी में मिलाकर रक्खा गया। यह नेत्र की वेदना व लालिमा दूर करने के लिए दिन रात में ७-८ बार प्रयुक्त किया गया।

उक्त प्रयोग से रोगिणी की स्थिति शनैः शनैः सुधरती गई। रात्रि में दूसरे दिन से ही नींद आने लग गई। भूख को भी इच्छा होने लगी व नेत्रों से दीखना भी शुरू हो गया। शिरःशूल निवृत्यर्थ मार्तण्ड के आशु गुणकारी 'शूलान्तक' इञ्जेक्शनों का प्रयोग भी किया गया। १५ दिन में रोगिणी पूर्ण स्वस्थ हो गई। तदनन्तर उसे आज तक भी किञ्चित शिरोवेदना व नेत्र व्यथा नहीं हुई। अनेकश धन्यवाद देती हुई अपने घर चली गई। जब कभी वह या उसके परिवार के मनुष्य मिलते हैं तो कृतज्ञता से नत हो जाते हैं।

—वैद्य श्री रतनलाल मिश्र व्याकरण शास्त्री, आयु.
राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय
जोध्यासी (नागौर) राजस्थान

ऐलर्जी (Allergy)

श्री. कविराज लाला बद्रीनारायण सैन

[गताक से आगे]

एलियोपैथिक विज्ञान ने ऐलर्जी किसी विकार विशेष या रोग विशेष को नहीं कहते है बल्कि एक अवस्था विशेष को कहते है जबकि शरीर के तन्तु प्रयुक्त द्रव्यों (आहार, विहार, औषधि) से निश्चित गुणानुसार प्रतिक्रिया प्रदर्शित नहीं कर ऐसी ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करें जिनका प्रयुक्त द्रव्य से कोई लगाव न हो या यह देखा ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करें जिनका सम्बन्ध किसी एक प्रकार की विकृति से नहीं हो। जिसमें एक साथ ऐसे कई विकारों के लक्षण जिनका न तो कोई परस्पर सम्बन्ध हो और न उनकी वास्तविक विकृति ही उपस्थित हो यानी आवयविक विकृतिविहीन कई ऐसे स्वतंत्र रोगों के लक्षण हों जिनका परस्पर कोई लगाव न हो-अर्थात् रोगों के लक्षण तो हों मगर उसकी आवयविक विकृति (pathological abnormalities) नहीं हो। इसमें प्रायः हृदय रोगों के, नाड़ी तन्तु रोगों के, रक्तसंवहन विकृति के रोगों के, अन्न पाचन विकृति के रोगों के लक्षण हुआ करते है। मगर न तो इसमें हृदय में न नाडी तन्तुओं में न रक्त संवहन संस्थान में, न पाचन संस्थान में ऐसी कोई विशेष विकृति ही होती है जैसेकि भयानक लक्षण बाहर प्रकट होते रहते है। इसी अवस्था का नाम ऐलर्जी दिया गया है।

जैसे न्युमोनिया के तीव्र से तीव्र सभी लक्षण किसी में हों मगर न तो उसमें न्युमोनिया की आवयविक विकृति हो और न वह न्युमोनियानाशक निश्चित द्रव्य के उपयोग से दबे। किसी किसी में यह पाया जाता है कि एक स्थान विशेष पर जाने मात्र से ही श्वास रोग के तीव्र से तीव्र लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं यद्यपि कि उसमें श्वास रोग वाली विकृति नहीं रहती है। ऐसे न्युमोनिया को या श्वास को ऐलर्जिक न्युमोनिया या श्वास कहते है। यानि बिना किसी निश्चित कारण एवं विकृति के (किसी भी रोग के) उसके तीव्र से तीव्र लक्षण हो जायें।

साधारणतया तीव्रानुभूति (Hypersensitiveness) की अवस्था को भी ऐलर्जी कहा जा सकता है। जैसे किसी को घृत खिला देने से सांघातिक रूप से वमन होने लगता है। बिना इसके ज्ञान के यदि घी उसे खिला दिया जाये तो भी वह वमन पर वमन करने लगता है। किसी में तो यह होता है कि बिना उसके ज्ञान के उसे घी खिला दिया गया तो उसे कुछ नहीं हुआ मगर उसे इस प्रकार घी खिला देने के बाद यदि उसे विश्वसनीय तरीके से यह कह दिया गया कि उसने घी खा लिया है तो सुनते ही उसे वमन पर वमन होने लगता है। एक तो घी वमनकारक नहीं इसके विपरीत लक्षण का प्रगट होना, दूसरे यदि अज्ञान अवस्था में भी एक बूंद भी घी के पेट में जाने मात्र से ही वमन पर वमन का होना, तीसरे सुनने मात्र से वमन का होना ये सभी ऐसे लक्षण हैं जिनका कोई आधार नहीं। न द्रव्य गुणानुरूप, प्रकृति क्रियानुरूप, विकृति क्रियानुरूप। ऐसी अवस्था का नाम ऐलर्जिक वमन है।

आयुर्वेदोक्त गदोद्वेग नामक रोग से इसका कुछ सामञ्जस्य है भी मगर गदोद्वेग में मानस लक्षण अधिक होते है जबकि इसमें भौतिक लक्षण भी काफी होते हैं।

इन दिनों बहुधा यह देखने में आता है जिस किसी रोग में कई प्रकार के स्वतन्त्र रोगों के लक्षण मिश्रित रहते है और चिकित्सा से जो जल्दी से नियन्त्रण में नहीं आते यद्यपि कि उसमें आवयविक विकृति है मगर चिकित्सक उसे पता लगा पाने में असमर्थ है उसमें अपनी असमर्थता छिपाने के लिये ऐलर्जी नाम धड़ल्ले से प्रयुक्त होता

जैसे किसी को कुछ दिनो का अन्तर दे दे कर बार बार रक्त वमन हो जाता है। मगर न तो उसे कोई आमाशयिक विकार है न हृदय का न फुफ्फुस का सभी सम्भव पैथोलोजिकल परीक्षा के बाद भी कुछ निश्चित आधार नहीं मिलता है ऐसी दशा मे उसे ऐलर्जिक हीमोप्टोटिस कह दिया जा सकता है मगर रक्तपित्त नामक रोग का जानकर ऐसा नहीं कह सकता।

आयुर्वेद ने ऐलर्जी जैसी किसी भी अवस्था को मान्यता नहीं दी है। इसके विकृति विज्ञान एवं द्रव्यगुण विज्ञान ऐसे ठोस त्रिदोष सिद्धान्त पर आधारित हैं कि शरीर में उत्पन्न होने वाले कोई भी अस्वभाविक लक्षण इससे निकल भाग नहीं सकते और तदनुकूल इसकी चिकित्सा से हीन नहीं रह सकते। इन दिनो चिकित्सा से दूर नहीं होने वाला कोई कोई श्वास रोग, आमवात, वातव्याधि, नाड़ी-वेदना (न्यूरैलजिया) आदि को तथा अकारण ही आने वाले ज्वर को भी लोग ऐलर्जिक कह देते है जो उचित नहीं।

इसमें संदेह कि कोई कोई रोगी ऐसा अवश्य है जिसमे वास्तविक रोग की अपेक्षा लक्षणो की तीव्रता अधिक होती है और उससे भी कहीं अधिक भयङ्कर तीव्रता उसकी अनुभूति में रहती है। साधारण लक्षणों को भी वह इतना तीव्र रूप से अनुभव करता है कि ऐसा मालूम पड़ता है कि रोगी अब मरा तब मरा। यह भी ऐलर्जिक अवस्था ही कही जाती है।

साधारणतया हीन सत्व एव हीन मनोबल वाले व्यक्ति ही इस रोग के शिकार होते है। और यह पुरुषों के बजाय स्त्रियों मे अधिक होता है। उन पुरुषों से जो सुख से ललित पलित हुये है और पचन संस्थान के रोगी हर चुके है विशेष कर प्रवाहिका (डिसेन्ट्री) या अम्लपित्त के और जिनमें इसके कारण नाडी वेदना (न्युरैलजिया) हो चुका है उन्हे अपने जीवन मे यदि पर्याप्त असफलतायें एवं निरोत्साहित होना पड़ा है तो उनमें ऐसे लक्षण अधिक उत्पन्न होते है।

इसमें अधिकतर हृदरोग, नाडी रोग एवं अन्न पाचन संस्थान के रोग-तथा रक्त संवहन संस्थान के रोगो के लक्षण होते है। किसी-किसी में शीतपित्त-वत् चकते उठते है या नीले या लाल दाग कोमल चर्म्म स्थानों पर पड़ते है। इसके रोगी बहुत शकी एवं जल्दी विश्वास करने वाला होता है।

लेखक को इस रोग का एक ऐसा रोगी भी मिला है जिसमे साधारण प्रवाहिका के लक्षणों के साथ साथ हृदयावरोध के सम्पूर्ण बाह्य लक्षण थे। यद्यपि कि परीक्षा से हृदय विकारविहीन था। हृदयावरोध जैसे रह रह कर उसे दौड़े पड़ते थे। ओष्ठ नख- आदि एकदम नीले पड़ गये थे। रोगी रोग मुक्त हुआ मगर उसके हाथ दोनो स्थायी रूप मे गहरे नीले हो गये हैं जो आज तक ज्यो का त्यो वर्तमान है। यद्यपि कि उसे रोगमुक्त हुए ६ मास हो गये है।

चिकित्सा—

इसमें उपस्थित लक्षणानुसार दोष के अनुरूप चिकित्सा करने से सफलता अधिक मिलती है। इसकी चिकित्सा न रोगानुसार न कारणानुसार होनी चाहिए बल्कि केवल लक्षणानुसार करनी चाहिए। लक्षणानुसार केवल दोषों (वात-पित्त कफ) के आधार पर चिकित्सा करनी चाहिए।

साधारणतया इसके मनोबल एव सत्व को दृढ़ करना चाहिए। ओजोवर्द्धक एवं वीर्यवर्द्धक आहार विहार एवं औषध का प्रयोग करना चाहिए।

—कविराज श्री लाला बदरीनारायण सेन
जी. ए. एम. एस.
मोतीझील (मुजफ्फरपुर)

नासा रक्तस्राव (Epistaxis)

आयुर्वेदाचार्य श्री के० के० शुक्ला ए० बी० एम० एस०

नासा-रक्तस्राव के रोगी बहुधा ही मिला करते निदान सही ही हो, इसके लिये दोनो ही नासा- की जांच करना अत्यन्त आवश्यक कार्य है। को उत्तान लिटाकर 'नेजल स्पेकुलम' लगाकर करनी चाहिये।

रक्त-स्राव के निम्नलिखित करण होते हैं—

१—स्थानिक कारण (*Local*)

२—सार्वदैहिक कारण (*General*)

स्थानिक कारण (Local causes)—

(१) आघातजन्य (*Traumatic*)—कपालास्थि लस्थ भाग का भग्न(*Fracture of the base the skull*) नासा-शल्य (*Foreign body in nose*), जोर की खांसी, छींक इत्यादि

(२) व्रण-जन्य—आघातज, फिरङ्ग-जन्य, द, यक्ष्मा जन्य, कुष्ठ-जन्य व्रणों का होना।

(३) अर्बुद—नासा-ग्रन्थियो का शोथ, नासार्श, त्रैकार्बुद (वातार्बुद भेद), सिरार्बुद या धमन्य- (पित्तार्बुद भेद), घातक-अर्बुद।

(४) नासा शिराओं की विकृति (*Varicose ns*), पैतृक विकृतियां (*Telangiactasis*)

(५) तीव्र औसर्गिक शोथ—नासा परिश्राव, णी (*Diphtheria*), वातश्लेष्मिक ज्वर (*Influenza*)

सार्वदैहिक कारण (General causes)—

(१) धमनीगत रक्तचापाधिक्य (*High arteal Blood Pressure-Essential Hypension*) रक्त वात, *granular kidney, Chnic Renal diseases, Arteriosclerosis*, रक्त।

(२) शिरागत रक्त-चापाधिक्य—कास (*Brohitis*), *Emphysema, Influenza*, दक्षिण ग हृदय का विस्फारित होना, बृहत् मस्तिष्कगत चापाधिक्य।

(३) रक्त-गत कारण—हीमोफीलिया, पाण्डु, परप्यूरा, स्कर्वी, ल्यूकीमिया, क्लोरोसिस, कामला, औपसर्गिक ज्वर, आंत्रिक ज्वर, वातश्लेष्मक ज्वर (*Inluenza*), मसूरिका।

(४) वायु मंडल के दबाव मे परिवर्तन—

३. अन्य कारण—

रक्ताधिक्य सम्बन्धी कारण बहुधा बचपन मे हुआ करते है। इसी प्रकार लड़कियो की रजस्वला की अवस्था में तथा स्त्रियो की रजः निवृत्ति की अवस्था मे नासा-रक्त-स्राव देखने मे आता है, यौन सम्बन्धी मानसिक विकृतियां।

सामान्यतः नासा रक्तस्राव के कारण ऊपर लिखे गये है। रोग के कारण का मिश्रित निदान के लिये यह आवश्यक है कि नासारन्ध्रो की परीक्षा कुशलतापूर्वक की जावे। रोगी का इतिहास ठीक तरह से लेना चाहिये। रोगी की अवस्था (वय) का ध्यान आवश्यक है। रोगी के बय के अनुसार निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

शिशु अवस्था—(*Age of Infancy*) स्थानिक चोट जैसे गिर जाने से, नासा-शल्य-चने या लाख आदि के दाने। नाक मे अंगुली डालकर रंध्रनौचने की प्रवृत्ति। नासा ग्रन्थियो का शोथ, हृद्रोग, रक्त-गत रोग, सन्दिग्ध कारण-स्थानिक रक्ताधिक्यता।

तरुणावस्था (*Age of Puberty*)—विशेषतः बालिकाओं के रजःस्वला होने के समय, अन्य सामान्य तथा सार्वदैहिक कारणो से।

युवावस्था (*Adult Age*) किसी भी स्थानिक या सार्वदैहिक कारणो से हो सकती है।

वृद्धावस्था (*Old Age*) मोटे-ताजे व्यक्तियो में रक्तचापाधिक्यता (*High Blood Pressure*) के साथ धमनीगत व्याधिया प्रमुख कारण है। नासा रक्तस्राव हो जाने पर व्यक्ति को निम्न लक्षणों से निवृत्ति मिल जाती है—

(क) मस्तिष्क का भारीपन, (ख) कर्ण-नाद,

(ग) नेत्रो के सामने तारे से उडना।

कुछ एक रोगियों मे यह लक्षण इस बात के द्योतक है कि रोगी का रक्तचाप बहुत मात्रा में बढ़ा हुआ है या उसको वृक्क सम्बन्धी व्याधियां या धमनी गत-कठोरता का रोग हो गया है।

निदान के निश्चित करने के पहिले ही रोगी का रक्तचाप नाप लेना चाहिये तथा मूत्र परीक्षा मे शुक्लि (*Albumin*) की जांच कर लेना चाहिये।

रोगी विवरण—

मेरे चिकित्सा काल में नासा रक्तस्राव से पीडित एक स्त्री आई। उम्र लगभग ४० वर्ष। नासा रक्त-स्राव एक हफ्ते से हो रहा था।

पूर्व का इतिहास—गर्भपात दो हुए थे।

नासा-रक्तस्राव के साथ साथ तीव्र शिरः शूल था। नाक से उत्कट बू आ रही थी। नासा रन्ध्रों की परीक्षा करने पर नासा कृमि पाये गये। नेजल सेप्टम तथा नेजलफ्लोर कीड़े पूर्ण रूप से खा गये थे। अश्रु स्राव तथा छींके आरही थी।

चिकित्सा क्रम—

(१) जात्यादि तैल ३० बूंद
(२) मरिच्यादि तैल ३० बूंद
(३) व्याघ्री तैल ३० बूंद
(४) षड् बिन्दु तैल ३० बूंद।

इनको एक मे मिला लिया गया। अब आध इञ्च चौडी गाज की पट्टी लेकर ढीला ढीला मोड लिया तथा तेल से भिगो लिया। अब एक शलाका द्वारा नासारन्ध्र छत मे सब से पीछे पैकिङ्ग करना आरम्भ किया तथा इसी प्रकार ऊपर से नीचे (*Floor*) तक पैक दिया गया। इस प्रकार गाज को रन्ध्र के बाह्य छिद्र तक भर दिया। यह कार्य ८ दिन तक लगातार किया गया। कृमि बाहर निकलते रहे। इस रोगी के कर्ण तथा मुख से भी कृमि निकलने लगे। कर्ण के छिद्र में हिंग्वादि तैल गरम करके गुनगुना गुनगुना डाला जाता रहा।

प्रातः काल नाशा प्रक्षालन पटोलादि क्वाथ बना कर डूश-कैन के द्वारा किया जाता था। नासा प्रक्षालन करते समय रोगी का नीचे मुख झुका तथा खुला रहना चाहिए तथा एक बर्तन प्रक्षालन के जल को एकत्रित करने के लिये लगा देना चाहिये। प्रक्षालन के बाद योगराज गुग्गुल तथा मोम की धूनी दी गई। एक सकोरे में गुग्गुल मोम जलाकर पत्तों की चोंगी ढांक दी गई तथा इस चोंगी के ऊपर वाले सिरे के छिद्र से रोगी नाक द्वारा धुंआ खींचता रहा और मुंह द्वारा निकालता रहा। केवल एक ही नासिका रन्ध्र खुला रहना चाहिये, जिससे धूम्र न निकल जावे। जो कृमि बाहर निकले उन्हें चिमटी से पकड़ कर बाहर कर देना चाहिये। वैसे नासा रन्ध्र के अन्दर भी चिमटी डालकर पकड़े जा सकते हैं। परन्तु इसके लिए विशेष सुविधाओं की जरूरत है। "गाउलैन्डस डायग्नोस्टिक सैट" की टार्च नासा रन्ध्र में प्रविष्ट हो सकती है तथा रन्ध्र के अन्दर थोडी ही दूर प्रविष्ट करने से कृमि रेंगते हुये दिखाई देते है अतः उनको चिमटी से पकड़ पकड़ कर निकाल लेना चाहिये। नासा रन्ध्र को विस्फा-रित करने के लिए नासा की नोक को अपने अंगूठे से पकड़ कर तथा अपनी ऊंगलियां रोगी के मस्तक पर रख कर मुलायमत से ऊपर खींचे। अपने सहा-यक द्वारा एक हुक की मदद से Alae nasi को अन्दर की ओर फंसा कर अपनी ओर खींचे रहे।

अन्य प्रकार के रक्तस्रावों मे भी नासा रन्ध्रों की पैकिंग कर देनी चाहिये। यदि नासा के पीछे के आगे को स्राव होता हो तो Post. nasal packing कर देना चाहिए। नेजल पैक २४ घंटे से अधिक समय तक अन्दर नहीं पड़ा रहना चाहिये अन्यथा मांस के सडन, साइन्यूसाइटिस, मध्य कर्ण शोथ उत्पन्न हो सकता है।

इसके अतिरिक्त विटामिन के तथा कैल्शियम के योग के इन्जेक्शन दिये जा सकते है।

गम्भीर स्वरूप के रक्तस्राव मे एडीनोइडेक्टोमी (Adenoidectomy) करके दोनों रन्ध्रों की पश्चाद् पेकिंग करनी चाहिये। यदि नासागत अर्बुद होवे तो शल्य कर्म करके Extrenal carotid artery को बांध देना होता है।

यदि किसी औपसर्गिक ज्वर के कारण रक्तस्राव हुआ हो तो उस रोग की यथावत् चिकित्सा करे।

नासा कृमि अधिकतर बच्चों में तथा उपदंश से व्यथित व्यक्तियों में हुआ करता है। अतः रोगी की सामान्य चिकित्सा भी करनी चाहिये।

कृमि रोगी जिसमें व्याघ्री, जात्यादि, षड बिन्दु तथा मरिच्यादि तैल इस्तेमाल किया गया वह १० रोज में कृमिरहित हो गया। नस्य द्वारा औषधियों का प्रयोग व्यर्थ साबित हुआ। नेजल पैक कृमि रोगियों में या रक्तस्राव में करना श्रेयकर है।

व्याघ्री तैल यो० र० में दुष्ट प्रतिश्याय अधिकार का है। इसमें प्रमुख सहिजन की छाल तथा अन्य निम्नलिखित द्रव्य हैं—

शिग्रू—चक्षुष्य. कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुक्रमीन।
मेदोऽपची विषप्लीह गुल्म गंड व्रणान्हरेत॥

इसकी छाल तथा पत्तों का स्वरस अत्यन्त पीड़ा को दूर करता है। यथा—

शिग्रवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्तिहृत्।

तुलसी—दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित्।

कंटकारी—निहन्ति पीनसं पार्श्वपीडा कृमिहृद्दामयान्॥

दन्ती—गुदांकुराश्मशूलार्शः कंडू कुष्ठ विदाहनुत्।
तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तस्रावकफशोथोदरक्रमीन्॥

बच—अपस्मार कफोन्माद भूत जन्त्वनिलान्हरेत्॥

षडबिन्दु तैल (नासा रोगाधिकार)—

वायबिडंग—पुंसि क्लीवे विडङ्ग. स्यात्कृमिघ्नो जन्तुनाशनः।

मधुयष्टी—व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णा ग्लानि क्षयापहा।

तगर—विषापस्मारशूलादिरोग दोषत्रयापहम्।

जीवन्ती—जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोष त्रयापहा।
रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघु॥

रास्ना—रास्नाऽऽमपाचिनीतिक्ता गुरूष्णा कफवातजित्।

भृंगराज—केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वास कास शोथाम पांडुनुत्।
दन्त्यो रसायनो बल्य कुष्ठनेत्रशिरोऽर्त्तिनुत्॥

मरिच्यादि तैल—

जटामासी—स्वादी हिमा त्रिदोषास्रदाह विसर्पकुष्ठनुत्॥

कनेर—स्याल्लाघवकृन्नेत्र कोप कुष्ठव्रणापहम्॥

वीर्योष्णं कृमि कण्डूघ्नं भक्षित विषवन्मतम्॥

इन्द्रायण—श्वास कासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थि व्रणप्रणुत्।
प्रमेह मूढगर्भाम गण्डामय विषापहम्॥

अर्क—अर्क द्वय सरं वात कुष्ठकण्डू विषव्रणान्।
निहन्ति प्लीह गुल्मार्शः श्लेष्मोदर शकृत्क्रमीन्।

कूठ—हन्ति वातास्र वीसर्प कास कुष्ठमरुत्कफान्।

हल्दी—वर्ण्या त्वग् दोष मेहास्र शोथ पाण्डु व्रणापहा।
कृमिघ्नी हल्दी योषित्प्रिया हृद्विलासिनी।

दार्वी—दार्वी निशागुणा किन्तु नेत्रकर्णास्यरोगनुत्॥

देवदार—प्रमेह पीनस श्लेष्म कासकण्डू समीरनुत्।

रक्तचन्दन—रक्त शीतंगुरु स्वादुश्छर्दितृष्णाऽस्रपित्तहृत्।
तिक्तं नेत्रहितं वृष्य ज्वर व्रण विषापहम्॥

हड़ताल—स्त्रीपुष्पहारक स्वल्प गुण तत्पिण्डतालकम्।
हरिताल कटु स्निग्ध कषायोष्णं हरेद्विषम्।

मनःशिला—मनः शिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटु.।
तिक्ता स्निग्धा विषश्वास कास भूतकफास्रनुत॥

वत्सनाभ—तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदादि रसायनम्।
योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहण वीर्यवर्द्धनम्॥

जात्यादितैल—(यो० र०)

व्रणशोधन एवं रोपण हेतु

तैलों के विभिन्न औषधि योगों को देखने से ज्ञात होगा कि मूलतः औषधियां कृमिघ्न हैं। तैलों के साथ मरिचादि तैल का प्रयोग किया गया। इसकी जगह पर मरिच्यादि तैल बृहत् का प्रयोग श्रेष्ठ है। रन्ध्रों के अन्दर के व्रणों के शोधन तथा रोपण हेतु जात्यादि तैल तथा पटोलादि प्रक्षालन कार्य में लाए गये।

सामान्यत. साधारण नासा रक्तस्राव के रोकने के लिए—

१. दूर्वा स्वरस में रुई भिगोकर नाक में रखना चाहिये। तथा मिश्री डालकर १-१ तोला प्रत्येक ४ घण्टे पर पिलाना।

२. कोकेन १०%तथा एड्रेनलीन १-१००० बराबर अनुपात में रुई भिगोकर नासा रंध्र में रखे।

३. रक्तस्राव की जगह को अग्निदग्ध करना—एक लोहे की सलाई गरम करके सिलवर नाइट्रेट में डुबा लेवें। तदुपरान्त नासारंध्र में स्राव की जगह पर रख देवें।

पोस्टीरियर नेजल पैकिङ्ग–१ इंच चौड़ी गाज पट्टी काटकर उसे तहकर लेवे, ढीला ढीला इस प्रकार से की १" व्यास की गोलाई का गोला सा बन जावे। अब मजबूत बटे हुए धागे से या नं. २ बटा सिल्क के धागे से उक्त १" के व्यास वाली पट्टी के बीचो बीच बांध देवें, इस प्रकार से कि धागे के दोनों सिरे १ फुट की लम्बाई में रहे। पुनः इतना ही लम्बा एक धागा और बांध दे। अब एक रबर कैथेटर जिस रन्ध्र से स्राव हो रहा है डालें। गले में जब कैथेटर पहुच जावे तो उसे मुख द्वार से खींच लेवे। अब पहले वाले धागे को इस कैथेटर से बाध देवे तथा कैथेटर को पुन. नासारन्ध्र से वापिस खींच लेवें। इस प्रकार से गाज का पैड नासा रंध्र में पहुच जायेगा दूसरा धागा जो बाद में बांधा था वह मुंह मे ही रह जायेगा क्योंकि उसे कैथेटर मे नहीं बांधा गया था। अब नासा द्वारा आये हुये धागे के दोनों छोर तथा मुंह के अन्दर वाले धागे के छोर को चिपकने वाले प्लास्टर के द्वारा रोगी के गालो पर चिपका देवे। इस गाज को षड-बिन्दु तेल में गीलाकर लेना चाहिए। पैक निकालने के लिये मुंह के अन्दर वाले छोरे को खींच लेवें।

—आयुर्वेदाचार्य श्री के. के. शुक्ला ए. बी. एम. एस., घनवाली (सतना)

तोला लेकर अदरख के रस में घोटकर उर्द जैसी वटी बनालें।

मात्रा—१-२ वटी।

गुण—यह अनिद्रा, प्रलाप, सर्वाङ्ग पीडा, हृदय की धड़कन बढ़ जाने को लाभ करती है।

(५) इस रोग में अंग्रेजी औषधि सोडा सेलीसिलास बड़ा ही अच्छा कार्य करती है किन्तु यदि सोडासेलीसिलास अधिक देने से चक्कर आने लगे, कानों में घुरघुर चक्की की सी आवाज आने लगे, प्रलाप बढ़ जाय तो सेलीसिलास देना बन्द कर देना चाहिये, ऐसी दशा में ए. पी. सी. दे सकते हैं, साथ ही ऐसी दशा में हिंगुलेश्वर रस पान के रस के साथ देना अति उत्तम है।

याद रखिये—

इसमें दोष सम होते हैं इसलिये लंघन, पाचन, बालुकास्वेद, ष्ठीवन जो क्रियायें सन्निपात के प्रकरण में बता आए है, अवश्य करानी चाहिये। ष्ठीवन से गले और वहां की गिल्टियो में संचित दूषित रस दोष बाहर निकलता और उनकी सूजन कम होती है। संधियो पर सेक करते रहें और उन्हें हमेशा गरम रखने के लिये फलालैन आदि किसी ऊनी सूती मोटे कपड़े की पट्टी लपेट दें। संधियो पर सरल तैलादि वातनाशक तेल भी लगाना ठीक है।

रोगी को जहां तक हो सके लिटाये ही रक्खें, अधिक उठावे बैठावे नहीं। अच्छा हो जाने पर भी रोगी को परिश्रम से बचाना चाहिए।

—ब्रह्मर्षि श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य
जैन धर्मार्थ चिकित्सालय,
कीठम, पो. रैपुराजाट (मथुरा)

प्राकृतिक चिकित्सा माला—२

लू से बचाव

श्री लक्ष्मीनारायण अलौकिक

गरम हवा को लू कहते हैं। जेठ-आषाढ़ में तीक्ष्ण घाम से हवा अत्यधिक गर्म हो उठती है। गरम हवा शरीर में छूकर रक्त के जलीय अंश को शोषित करती है। दूसरी तरफ स्नायु मण्डल उस गर्मी से सहसा आक्रांत हो जाता है। इस तरह बेचैनी, शूल, ज्वर, भ्रम इत्यादि उपाधियां हो जाती हैं।

लू से बचे रहने का सर्वोत्तम उपाय है पानी खूब पीना। दुपहरी के समय खुले स्थान में जाने का काम पड़े, भोजन कम खाकर तथा पानी अधिक पीकर जाना चाहिये। प्याज खाने वालों को लू नहीं लगती। प्याज में ऐसे रासायनिक तत्व होते हैं जो जलीय अंश को हर यत्न से सहेज कर रखते हैं। दही, छाछ, इमली, नीबू, संतरा, धनियां इत्यादि चीजें भी लू के आक्रमण का विरोध करती हैं।

लू लग जाने पर रोगी को यथेष्ठ विश्राम देना चाहिये। हो सके तो निर्वात स्थान में उसे स्नान करा दिया जाए अथवा गीले गमछे से शरीर को पोंछ दिया जाए। प्रचुर पानी व प्याज धनियां का रस देने से लू का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

—श्री लक्ष्मीनारायण अलौकिक
शामगढ़ (म० प्र०)

(भरी हुई) और कोमल, चलना आदि सन्निपात ज्वर के लक्षण होते है।

प्रायः यह देखा गया है कि बच्चो में हृदय विकार और युवाओ में संधियों मे विकार अधिकतर होते है। हृदय में जब भरभर शब्द या विस्तृति के लक्षण प्रतीत हो तो चिकित्सा मे हृदय की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

इस रोग की अवधि प्रायः ६ सप्ताह है जब रोग घटता है तब धीरे धीरे सूजन घटती जाती है उसकी पीडाये भी एक एक कर विदा हो जाती है और सब लक्षण हटते जाते हैं। स्वस्थ हो जाने पर भी रोगी कमजोर रहता है।

यदि रोग प्रबल होता है लक्षण अधिक और जोरदार होते हैं तो रोगी दो-तीन ही सप्ताह मे चल बसता है। यह रोग स्वयं तो मारक नहीं है किन्तु जब ज्वरादि उपद्रव बलवान होते है तो निश्चय ही मृत्यु हो जाती है।

विशेष उपद्रव—

हृदयावरण शोथ, फुफ्फुसावरण शोथ, कंठ शोथ और तीव्र ज्वर होते हैं।

यह रोग बिना विशेष कारण के भी, बार बार लौटता रहता है कभी अच्छे होने के दो चार मास बाद ही और कभी साल दो साल बाद। यदि हृदय विकार नहीं हुआ हो तो हो ही जाता है और रोगी जीवन भर हृदय रोग से पीडित बना रहता है, वह कमजोर हो जाता है और जरा भी परिश्रम करने पर श्वास, हृदय की धड़कन बढ़ जाती हैं, शोथ भी होता रहता है। इससे पीड़ित हुए रोगी की मृत्यु प्राय. हृदयावसाद से होती है।

चिकित्सा—

इस रोग में रक्तदुग्धाम्ल (लैक्टिकएसिड) और थाईविनइ बढ़ जाती है इसके प्रभाव से रक्त के रक्ताणु अधिक संख्या में नष्ट होते और श्वेताणु बढ़ जाने से शरीर में रक्तल्पता हो जाती है। इस लिये चिकित्सक को रक्त में अम्ल दूर करने के लिए उसके विपरीत क्षारीय वस्तुयें देनी चाहिये और अम्ल पदार्थ देना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये, साथ मे रक्ताङ्ग वर्द्धक और शोथ निवारण का प्रयत्न करना चाहिये।

(१) आक की जड़ की छाल का चूर्ण १॥ रत्ती, जवाखार ४ रत्ती अपामार्ग के पत्तों के रस मे मिलाकर ३-३ घण्टे बाद दें। यदि अपामार्ग (औंगा) नहीं मिले तो गर्म पानी से ही दें। इससे रक्त की अम्लता कम होगी, खून की शुद्धि होगी, संधियो में संचित लसीका छटाव होगा, पूय खुलकर आवेगा, सूजन और पीड़ा में कमी आवेगी, ज्वर की तीव्रता कम होगी।

(२) जब संधियों में पीड़ा, गर्दन का जकड़ना, खांसी, श्वास बढ़ा हुआ हो तो रोगी को मुस्तादि क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।

नागर मोथा, अन्डी की जड़, गिलोय, रास्ना, कचूर, अडूसा, सोंठ, दशमूल, सरफेद की जड़, जल पीपल ये सब वस्तुयें बराबर बराबर ले, जौ कुटकर २॥ तोले लेकर २० तोले पानी मे औटावें। जब ५ तोले पानी शेष रह जाय तो उतार छानकर रोगी को गुनगुना पिलादे।

(३) सन्धिक ज्वर मे दुरालभादि वटी २-२, अर्जुनादि क्वाथ के साथ देने से हृदय कपाट शोथ, संधिकपीड़ा आदि उपद्रव शीघ्र शान्त होते है।

अर्जुनादि क्वाथ—

अर्जुन की छाल, बरने की छाल, गोखरू, वायबिडङ्ग, कूठ, सब वस्तुये २-२ आने भर ले। आठगुने पानी मे इसके चूर्ण को औटावें, चौथाई शेष रहने पर छानकर पिलावे।

(४) यदि अधिक पीडा, अनिद्रा हो तो विश्वविमोहन रस की २-२ वटी देने से पीड़ा कम हो जाती है, नींद आ जाती है।

विश्वविमोहन रस—

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध आंवलासार गन्धक १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध अफीम १-१

संधिक ज्वर–आमवातिक ज्वर

श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

इस ज्वर में संधियों में व्रण शोथ सा (सूजन, सुर्खी, दर्द) हो जाता है। यद्यपि पाक नहीं होता संधियों में जोर की पीड़ा होती है। हृद् रोग हो जाता है और ज्वर तीव्र हो जाता है। आरम्भ से ही १०२, १०३ डिग्री होता है, कभी कभी तो १०६, १०७ डिग्री पर पहुंच जाता है। इसमें संधियों में विशेष पीड़ा होने से इसे सन्धिक सन्निपात कहते हैं।

कारण—

यह किन कीटाणुओं से होता है। इस सम्बन्ध में डाक्टरों की भिन्न भिन्न राय है। कोई इसे 'माईक्रो-कोकस' कीटाणुओं से उत्पन्न बताते हैं कोई "स्ट्रेप्टोकोकस" कीटाणुओं को इसका कारण मानते हैं। खैर, वे कोई से भी हो, पर वे हैं वात पित्तोल्वण स्वभाव के क्योंकि इसमें इन्हीं दोषों के लक्षण विशेष पाये जाते हैं। इसमें आम दोष की विशेष विकृति होती है और संधियों में अधिष्ठान होने से वहां शोथ, पीड़ा होती है इसलिए विद्वानों ने इसे आमवातिक ज्वर या संधिक ज्वर नाम दिया है। यह रोग हेमन्त, शिशिर, वसंत, वर्षा ऋतु में आर्द्र (नमी वाले) उष्ण प्रदेशों में अधिक होता है। यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में कम होता है। वृद्धों के बजाय बालकों विशेष कर विशेष होता है, युवाओं में होता है। ३० वर्ष से अधिक उम्र के लोगों में कम पाया जाता है। जिनको एक बार हो जाता है उसे फिर भी होता रहता है।

इस रोग का विष गले की गांठों, विशेषकर कंठशालूक के द्वारा रक्त में मिलकर सारे शरीर में फैल जाता है। इससे संधियों में की श्लैष्मिक कला में तरल कफ भर जाता है, हड्डियों के सिरों में बंधे हुये बंधन और तरुण अस्थियों (कारटिलेज) में सूजन हो जाती है इसलिए संधियों को दबाने, टटोलने से रोगी के हिलने डुलने से जोड़ों में दर्द होता है। जहां जमाव अधिक होता है वहां अधिक पीड़ा होती है। इस विष के प्रभाव से हृदय की कला के बीच में व्रण शोथ से उत्पन्न लसीका (तरल कफ) इकट्ठा हो जाता है। यह व्रण शोथ हृदन्तरावरणी कला (हृदय के भीतरी भाग में उसकी दीवारों पर चारों ओर चढ़ी झिल्ली) हृदप्रकोष्ठ (हृदय के कोठे ये चार होते हैं) हृत्कपाटों (हृदय के कोठों के किवाड़ पर्दे) में भी हो जाता है। जिससे उनमें संकोच, संहनन और अंकुर (सौत्रिक तन्तु) उत्पन्न होना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अधिकतर शोथ कपाटों में ही पाया जाता है। हृदय में पीड़ा और हृदय अपने स्थान से च्युत होना, बढ़ना इसमें साधारण बात है। कभी कभी विष फुफ्फुसच्छद कला (फेफड़े पर लिपटी झिल्ली) तक पहुंच वहां व्रण शोथ उत्पन्न करता है। फेफड़े में यह शोथ प्रायः बाईं ओर हृदय के पास होता है तब श्वास-कासादि लक्षण प्रकट होते हैं। यदि रक्तस्राव होता है तो रक्त जल्दी नहीं जमता क्योंकि रक्त में दुग्धाम्ल और फाईब्रिन बढ़ जाती है।

लक्षण—

पहिले साधारण ज्वर होता है, कभी कभी अकस्मात् जाड़ा लगकर ज्वर आता है, और साथ ही गले में जलन, अंगों का ऐंठना, गर्दन का जकड़ना, गल ग्रन्थियों में शोथ, जोड़ों में दर्द आदि लक्षण होते हैं। इसके बाद ज्वर दो तीन चार दिन में ही जोड़ जोड़ में दर्द, पसीना का अधिक आना, तीव्र पीड़ा, हृदय में व्यथा, मूत्र का कम होना, ज्वर का १०६, १०७ तक पहुंच जाना, नाड़ी तीव्र, पूर्ण

क्रिया अल्पकालीन है क्योंकि इस प्रयोग के २-३ घंटे बाद ही त्वचा संक्रमण के प्रति अनुपचारित त्वचा की भांति सहनशील (Resistant) हो गई। लिक्वायड के अधिक मात्रा मे प्रयोग से सभी सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाये रोक दी गईं। बाह्य-प्रयोगो द्वारा (In vitro) यह देखा गया कि प्रयुक्त-मात्रा में धातुओं पर इसका प्रभाव ६ घंटे तक रहता है। और इससे रक्तस्थित जीवाणुनाशक शक्ति के विनाश के साथ ही श्वेतकण विरोधी एवं जीवाणु-नाश सम्बन्धी रासायनिक प्रक्रिया का विरोधी कार्य भी होता है।

२ यूजी एड्रिनेलीन से दो घंटे के लिए वाहिनियो के कार्य को रोक दिया गया था जिसका अनुमान अनेक गिनीपिगों के ऊपर औषधि-युक्त एवं औषधिरहित जीवाणु को दस गुने विलयन मे मिलाकर घन अनुपात निकालने की क्रिया से किया। धातुओ के आक्रान्त एवं विनष्ट होने का जो क्षेत्र था वह एड्रिनेलीन की मात्रावृद्धि के अनुपात से बढ़ता गया। उपर्युक्त प्रयोग मात्रा से कोई सामान्य सम्बन्ध नहीं रखता अपितु एक स्थूल नियंत्रणात्मक तुलना है। एड्रिनेलीन का घन अनुपात अन्य तरह से भी निकाला जा सकता है। एतदर्थ स्वेच्छा से किसी विशेष आघात का व्यास चुनकर प्रयोग किया जाय कि कितनी मात्रा मे जीवाणु चाहिये जो एड्रिनेलीन के बिना या एड्रिनेलीन के साथ उक्त आघात का व्यास उत्पन्न कर सके। इस प्रयोग से यह देखा गया कि १० हजार ps. ($१०^४$ ps.) पूयोत्पादक जीवाणु एड्रिनेलीन के साथ होने पर १० लाख ps. ($१०^६$ ps.) जीवाणु अनुपचारित त्वचा पर जितना आघात उत्पन्न कर सकते थे उतना आघात उत्पन्न किया। स्टेफिलो ऑरेन्स ग्रुप सी के द्वारा भी प्रायः समान ही १०० से लेकर १००० गुना तक वृद्धि देखी गई। स्ट्रेप्टोकोकाइ टॉक्सिजेनिक जी डिफ्थेरिक,ई कोली प्रोटेस वल्गारिस और विवृत्युपादक सी-एल वेलची और सी-एल सेप्टिकम के द्वारा आघात की वृद्धि १० लाख गुना और उससे भी अधिक देखी गई। आघात का व्यास तब नापा गया जबकि स्थानिक आघात अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच चुका था। अतः इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि १०० गुना वृद्धि मे सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया जो एड्रिनेलीन के द्वारा रोक दी गई, ९९ प्रतिशत जीवाणु को विनष्ट करने में समर्थ थी। मूल सूचीवेध के बाद जो १० लाख गुना वृद्धि हुई उसमें सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया द्वारा ९९.९९९९ प्रतिशत जीवाणु नष्ट किया जा सकता था।

डा० माइल्स ने अपने टेक्नीक को बदलते हुये यह भी दिखाया कि संक्रमण के प्राथमिक कुछ घंटों मे ये उक्त-जीवाणुविरोधीतत्व बहुत क्रियाशील होते है। जहां जीवाणु का सूचीवेध लगाया गया था वहां एड्रिनेलीन का सूचीवेध भिन्न भिन्न समय पर लगाया गया। यथा—तत्काल १ घण्टे बाद, २ घण्टे बाद, ३ घण्टे बाद, ४ घण्टे बाद इत्यादि। तत्काल लगाये गये एड्रिनेलीन के द्वारा पर्याप्त मात्रा मे वृद्धि हुई परन्तु जैसे जैसे समय अधिक होता गया इसका प्रभाव अल्प होता गया और ४ घण्टे पुराने आघात पर तो नियंत्रण मात्र हो सका। इस तरह प्रथम ४ घण्टों में जो स्थानीय आघात की वृद्धि हुई है वह आगे २४ घण्टो मे चलकर भी उतनी ही रहेगी, ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। एड्रिनेलीन की जगह यदि लिकाइड का प्रयोग किया जाय तो उसके लिये भी यही बात लागू[1] होगी।

इन प्रयोगो से यह पता चलता है कि राजयक्ष्मा की सम्प्राप्ति के आयुर्वेदीय दृष्टिकोण—

(१) स्रोतोरोध अथवा धातुओ तक पोषक तत्वो को ले जाने वाली प्रणालियो का अवरोध और (२) व्याधियों के लिये प्रतिबन्धक पदार्थों का अभाव अल्पता अर्थात् व्याधि क्षमत्व पूर्णरूप से वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। —क्रमशः

श्री सी० द्वारकानाथ परामर्शदाता,
देशीय चिकित्सा-पद्धति, भारत सरकार, नई दिल्ली

[1] डा० ए० ए० माइल्स, अर्लीटिसू रिएक्शन बैसिलाइ, सीबा फाउण्डेशन सिम्पोजियम, लिट्टिल, ब्राउन एण्ड कम्पनी प्रकाशन, १९५५ संस्करण, पृष्ठ ७८८

परीक्षित प्रयोग

विजय प्रयोगावली—

कास रोगाधिकार—

(१) १ तोले अदरख का रस गरम कर उसमे मिश्री या मधु मिलाकर दीजिए।

(२) तुलसी के पत्तो का रस मधु के साथ पिलाये।

(३) बासक के पचाग का स्वरस या केवल बासक के पत्तो का स्वरस मिश्री या मधु के साथ सेवन कराइए।

(४) गोलमिर्च और तुलसी की पत्तियो की चाय बनाकर दीजिए।

(५) गोघृत या सरसौ के तैल में थोडा सा सैंधव लवण का बारीक चूर्ण अच्छी तरह से मिलाकर छाती पर मालिश कराइए। इससे कफ निकलता है।

(६) फिटकरी को भूनकर चूर्ण बनाकर रख लीजिए। इस चूर्ण को शहद के साथ चटाइये या इस चूर्ण को गरम पानी मे घोलकर उस पानी को १-१ चम्मच करके पिलाइये। इससे कुकुरखासी और तज्जनित वमन मे पूरा लाभ मिलता है।

(७) बासक का रस, कण्टकारी का रस, और अदरख का रस—इन तीनो का मिश्रित रस एक तोले ले गरम कर उसमे मिश्री या शहद डाल पिलाइए।

(८) वच के टुकडे को मुह मे रखकर चूसे।

(९) हथेलियो, पैरो के तलवो और कण्ठ-देश मे शुद्ध सरसौं का तैल गरम करके मालिश करायें।

(१०) गोलमिर्च, मुलहठी और मिश्री की चाय बनाकर पिलाइए।

(११) बबूल का गोद और मिश्री—दोनो को मिलाकर चटाइए।

(१२) पुरानी खासी मे शलजम का स्वरस मधु या मिश्री के साथ पिलाइए। —श्री विजयकुमार राय

रोहिणी (सथाल परगना)

सिद्ध प्रयोग—

१. दद्रु पर—(अ) डडा गन्धक २ छटाक, बावची बीज २ छटाक, सुहागा डेली का ३ छटाक सबको पानी मे पीस कर गोली बनाकर छायाशुष्क करलें। पानी मे पीसकर दाद पर लगावे। दाद, खाज तथा कुष्ठ तक नष्ट हो जाता है।

(ब) राल, गधक, फिटकरी, तूतिया समभाग लेकर पीसकर गोली बनावे। घिस कर पानी मे आक्रान्त स्थान पर लगावे।

२ कण्डू पर शुद्ध गधक आमलासार १ तोला, काली जीरी १ तोला, गेरू १ तोला कपड़छन कर रख ले। ३ माशा चूर्ण जल से प्रात, दोपहर तथा शाम को जल से सेवन करे। शरीर पर दही मे पीस कर राई की मालिश किया करें। इस प्रकार दोनो प्रकार की खाज नष्ट होती है।

३. व्रणप्रहार मलहम—गेरू, शुद्ध टकण, शुद्ध फिटकरी, सगजराहत १-१ तोला लेकर पीस लें। आयडोफार्म ½ तोला, सिवाजोल पाउडर १ तोला मिलाकर चौगुने शतधौत घृत वा वैसलिन मे मिला प्रयोग करें।

४ मुखपाक पर—श्वेत कत्था १ छटाक, शुद्ध सेलखडी २ छटाक, शीतलचीनी ३ तो० सफेद। एला ३ तो०, बोरिक एसिड ३ तो० खरल कर रखलें। चुटकी से मुखपाक मे डालते रहे तथा लार टपकादें।

५ जुकाम बुखार पर—गुल बनप्सा, गाजवा, मुलहठी, गुर्च, खूबकला कूट कर रख ले। २ तोला चूर्ण आधा सेर पानी मे औटाकर २ छटाक शेष रहने पर मिश्री या मधु मिला कर पियें।

—श्री वैद्य रामसनेही अवस्थी,

दलेलगज (शाहजहापुर)

खाज नाशक—

बावची २ तो०, तु० पमाड १ तो०, गधक आमलासार १ तो० चारो औषधियो को कपडछन करके रख ले। ६ माशा चूर्ण ३ तोला सरसो के तेल में मिलाकर मालिश करें। तीन दिन मे खुश्क खाज को प्राय नष्ट होते देखा है। अगर जख्म हो गये हैं तब ६ माशा चूर्ण को ३ तोला नैनी घी मे मिलाकर मरहम तैयार करें। दिन मे दो बार मरहम लगावे। तीन दिन में ही आशातीत

लाभ होगा। परीक्षित है।

—वैद्य सत्यप्रकाश रस्तोगी
प्रकाश आयुर्वेदिक औषधालय,
सरायतरीन (मुरादाबाद)

कतिपय अनुभूत यूनानी योग–

जोशांदा कब्ज कुशा—

गुलबनफशा ५ माशे, उन्नाव ६ दाना, मुलैठी ५ माशा, जूफा ३ माशा, अजीर २ अदद, तुरजवीन दो तोला। क्वाथ के ढग से उबालकर आवश्यकतानुसार ३ या ४ तोला गूदा अमलतास बीच मे मसलकर रोगन बादाम ६ माशा मिलाकर पिलादें। नवीन प्रतिश्याय मे शतशोनुभूत है।

हुब्वे बवासीर—

मगज निमोली नीम १ तोला, मगज निमोली वकायन १ तोला, रसौत १ तोला, चाकशू ६ माशा, कत्था सफेद ६ माशा, पोस्त रीठा (तवे पर जलाया हुआ) ६ माशा। मूली के पानी मे (बीजो का क्वाथ भी लिया जा सकता है) खरल कर रत्ती-रत्ती को गोलिया करलें। दो गोली सुबह दो शाम जल से–दूध, मलाई, घी का सेवन करे। मिर्च मसाला वन्द।

विशेष–हम इसमे फुलाद भस्म भी मिलाते है।

जन्म घुट्टी यूनानी—

सौफ, शाहतरा, उन्नाव, बायबिडग, चाकशू, नरकचूर, हर्ड कला, गुलसुर्ख, सनाय के पत्ते १-१ माशा सभी थोडा जल डालकर गर्म करें। फिर उतार ले। मगज अमलतास ७ माशा, गुलकद तीन माशा अलग से गुनगुने पानी मे भिगोदें। दोनो मे सो रुई का फाहा तर करके कुछ बू दे बच्चे को दें या बच्चे को बत्ती हरा चूसा दें।

बिशेष–यह घुटी बहुत छोटे बालको के लिये है।

कुक्कुर कास पर–

अफयून ६ माशा, जाफरान ६ माशा, तुख्म काह १ तोला, व्हीदाना १ तोला, खशखश १ तोला। पानी से चने बराबर गोली करें। मात्रा–रोगी की आयु अनुसार। अच्छा योग है।

स्त्री अमृत–

लोध पठानी, सतावर, गुल अनार, माई, रूमी मस्तङ्गी, गुल छावा, कत्था, माजू, नासपाल, कहरवा, तवासीर, राल सफेद, मोचरस, सगजराहत, मोना गेरू, सभी ढाई तोला, मिश्री तीन तोला पीसकर बराबर की मिश्री मिला दें। खुराक एक से दो माशा दूध से दें। श्वेत प्रदर पर सर्वोत्तम औषधि है।

जोशादा अक्सीर–

वनफशा, गाजवान, जूफा, मुलैठी, खतमी, खुब्बाजी १-१ तोला, उन्नाव, लसूढियां २-२ तोला, मुनक्का ४ तोला सभी मिलाकर आठ भाग करें। प्रतिश्याय, कास पर दें। क्वाथ के ढग से देना है। खूबकला एक तोला भी डाल दे तो मोतीझरा मे भी उत्तम रहता है।

गर्म वमन–

अनारदाना, सीमाक दाना, छोटी इलायची, जरिश्क साव १-१ तोला मिलाकर ४ भाग करलें। ठडाई की भाति रगड़े बीच मे खाड मिलादें। वर्फ मिले तो वह भी डाल दे। सुबह, शाम इस ठडाई को एक माशा दे। अत्युत्तम रहता है।

हुब्वे नायाब—

काला दाना, सकमूनिया, जुलाफा, रेवन्द चीनी समभाग—अर्क सौफ से चने बराबर गोली करें। रात को सोते समय दूध से तीन गोली दें। कब्ज को दूर करती और सुद्दे को तोडती है।

करामाती पुड़िया—

गधक आमलासार, काली जीरी, गेरू छ-छ माशा तीन पुडिया करलें। एक पुडिया सुबह एक शाम दही से खिलादें। एक पुडिया पाच तोला तेल सरसो मे मिलाकर अभ्यग करादे। सभी अन्नपान छुडाकर दही का ही सेवन करें। रात को फीके चावल खिलादे। एक ही दिन मे खारिश को लाभ होगा।

विशेष—तीन दिन ऐसा करे।

—श्री प्रीतम सिंह राही बी० ए०
वैद्याचार्य, वैद्यभूषण, साहित्यरत्न
सिनेमा रोड, वरनाला (सगरूर)

ऐसे इलाज से शिर की रूसी और केश की अकाल-पक्वता भी दूर होती है। शिर मे जो रूसी होती है वह एक साधारण व्याधि है। वह हमेशा पेट और लिवर की खराब अवस्था से होती है। साधारणतया यह देखा जाता है कि थोड़ी दवाई देने से रूसी चली जाती है। किन्तु शरीर की जिस हालत से रूसी पैदा होती है वह नही जाती और रूसी चल जाने के साथ-साथ केश का पतन शुरू हो जाता है। इसलिये रूसी होने से दवाई के ऊपर भरोसा नही रखकर शरीर की सफाई करने की, खासकर पेट और लिवर अच्छा करने के लिये कोशिश करनी चाहिये।

बहुत अवस्था मे अल्प आयु मे ही केश की पक्वता शुरू होती है। बहुत आदमी सफेद केश छिपाने के लिये केश मे रग लगाते हैं। लेकिन उस रग के भीतर हरेक विषाक्त चीज रहती है। उससे मस्तिष्क की चर्म को बहुत नुकसान होता है। वह व्यवहार नही करके जिन सब खाद्यो मे पैंटिथिनिक एसिड हैं उसे यथेष्ट रूप मे व्यवहार करना चाहिये। वह विशेष रूप से केश की अकालपक्वता रोकता है। इसका प्रधान उत्स ही है तरल गुड, मूगफली, ईस्ट, दुग्ध, चूर्ण, गेहूँ का अंकुर और चोकर समेत रोटी।

जैसे शरीर के कोषो की वृद्धि के लिये उपयुक्त खाना चाहिये, केश की वृद्धि भी हरेक खाद्य पर निर्भर-शील है। केश का प्रधान खाद्य ही है सालफर। वह विशेष रूप से मूली, प्याज और बीन आदि में पाया जाता है और जिन सब खाद्यो में ज्यादा प्रोटीन रहता है उनमें सलफर भी ज्यादा मिलता है।

—श्री डा० कुलरजन मुखर्जी
प्राकृतिक चिकित्सालय,
११४/२ बी, हाजरा रोड, कलकत्ता—२६।

अम्लपित्त एक साध्य रोग

श्री दारोगाप्रसाद मिश्र आयुर्वेदाचार्य

वहुतायत से अम्लपित्त के रोगी याप्य हैं ऐसा वैद्य समाज मे प्रचार है। वावू रामस्वरूप सिंह जी जमीदार केशरिया चम्पारण की चिकित्सा मैने की है। आप चम्पारन जिला परिषद् के भूतपूर्व मान्य सदस्य है एव आयुर्वेद के प्रबल समर्थक हैं। वावू रामस्वरूप सिंह जी ने वडे-वडे डाक्टरो, होमियोपैथो, वैद्यो से चिकित्सा कराई, पर थोडा भी लाभ नही हुआ। आप को हाथ, पैर, ललाट, आख और मादी मे लपर थी। पेट मे आव, वायु और भोजन के वाद कै हो जाती थी। भोजन के वाद आपको पखाना भी गरम-गरम होता था। पेशाव भी पीतवर्ण का और कडक के साथ एव लहर के साथ होता था। आप अति कृशकाय और क्रोधी हो गये थे। प्रात काल एक वार पाखाना जाने पर सन्तोष नही होता था जब तक कि दूसरी वार न जाय। शिर मे चक्कर एव रात्रि मे निद्रा का अभाव था। गर्मी मे आप अत्यन्त ही वेचैन रहते थे। हृदय मे कम्पन्न और कान मे कर्णनाद, भ्रम आपको अधिक सता रहे थे। वरावर उदास रहना और पडे-पडे सोचते रहना आपका काम था। कै वरावर होते रहने से आप अति क्षीण एव वसारहित, रक्तहीन तेजोहीन हो गए थे। गत मई मास मे वे मेरे पास आये और मेरी चिकित्सा से रोगमुक्त हो गए।

१९५९ मे मोतीहारी के मान्य एडवोकेट और चम्पारन जिला राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के सघचालक माननीय श्री भूपेन्द्रनाथ मिश्र जी ने मुझे मोतीहारी सदर हौस्पीटल मे एक रोगी को दिखाने के लिए ले गए। उस रोगी को भी यकृत् में शोथ, अत्यधिक सपित्त-वमन और तृष्णा एव दाह थे। वह रोगी भी हौस्पीटल की दवा से ऊब गया था। प्रतिदिन स्टोमक पम्प के द्वारा उसका आमाशय धोया जाता था एव डाक्टरी दवाइया चलायी जा रही थी। महीनो पूर्व से वह रोगी भर्ती था। वह रोगी मोतीहारी वलुआ चौक के रहने वाले एक प्लीडर क्लर्क के ज्येष्ठ भ्राता थे। मैंने हौस्पीटल मे अनादृत रूप से जाकर रोगी की रोग-परीक्षा करना अवैधानिक समझा। पर मित्र श्री भूपेन्द्रनाथ मिश्र जी के प्रेमवश यो ही जाकर उस रोगी का पूर्ण बाह्य निरीक्षण करके साहस के साथ हौस्पीटल से डेरा पर ले चलने का परामर्श दिया। मुझे कहने की देर थी वे लोग तो पटना की तैयारी किए थे। तत्काल हौस्पीटल से मुक्त कराकर के डेरा पर ले गए। आश्विन कार्तिक का मास था। इन मासो मे पित्त का प्रकोप स्वभावत हो जाता है। यही कारण है कि इन मासो मे आमलकी महोत्सव प्राचीन वैद्यराज मनाते थे एवं कार्तिक शुक्ल अक्षय नौमी को आवला के पेड तर खाने-पीने को प्रथा, पित्त शामक आवला की चटनी-मुरब्बा एव पित्तशामक भतुआ का दान और नारियल का दान अक्षय नौमी का प्रधान कार्य बताये गये है। उस रोगी को भी मैंने दवा–पथ्य वताया और वह भी रोगमुक्त हो गया।

१९६२ मे भूकम्प का भय छाया हुआ था। कालेज मे अध्यापक गण पढा रहे थे। मै जडी-वूटी के उद्यानो में थर्डइयर के छात्रो के साथ घूम रहा था। वरखर साह माली जडी-वूटी मे सिंचाई और सफाई कर रहा था। उसी समय बरखर साह से वसवरिया गाव का एक मल्लाह कोदई सोहनी कह रहा था कि "वरखर साह जरी हमरा के वडका साहेव से न दिखादेव हो? अरे मर्दे! हम तो कै के मारे मरईत जा रहली है। डाक्टरन के मच्छली खिलावईत–एव रोहू पहुँचावईत हमरा वर्षो भे गेल, पर अब तक हमर पेट के दर्द और कै के बिमारी नईखे गेल" इस तरह कोदई सोहनी वाते कर ही रहा था कि वरखर साह ने मेरे सामने आकर उसे देखने को कहा। मैने कालेज भवन के अध्या-

पन कक्ष में आकर रोगी को वेञ्च पर लिटाकर देखा। उसे चार इञ्च लीवर बढा था। पेट मे ग्रहणी के समीप मे कड़ा था और दवाने पर दर्द होता था। हाथ-पैर मे शोथ हो गया था। पेट मे लहर, जलन, छाती में लहर पिपासाधिक्य और शिर मे भ्रम, पखाना मे विष्टम्भ और भूख रहने पर भी भय के मारे भोजनत्रास हो गया था। भोजन को देखते ही सोहनी को भय लगता था। इस तरह कतिपय रोगियो का इतिवृत्त मेरे मस्तिष्क मे भरे पड़े हैं। इनकी चिकित्सा सुनिये।

बाबू रामस्वरूप सिंह की व्यवस्था सूची में भेज रहा हूं। इन तीनो रोगियो को मैंने सुबह मे और शाम को तथा दोपहर मे अम्लपित्तान्तक लोह २ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण चार आना भर मे मिलाकर मधु से चाट कर बाद ऊपर से हरा नारियल का पानी ५ भर पीने को दिया था या चन्दनोदक ५ भर पीने को दिया था या ३-४ घोट पानी पीने को वताया था। निशोत की जगह में व्यापारी वर्ग विधारा की जड़ ही को चला रहे है। विधारा की जड़ पुष्टिकारक है; पर निशोत की तरह रेचक नही है। मैंने निशोत की जगह मे कुटकी का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है और अब मैं अविपत्तिकर चूर्ण मे कुटकी ही दे रहा हूँ जो वड़ी लाभकर रही है। निशोत प्रदत्त अविपत्तिकर चूर्ण से कुटकी मिश्रित अविपत्तिकर चूर्ण अम्लपित्त एव पित्ताशयिक पित्ताश्मरीशूलजन्य अम्लपित्त मे, तथा अन्त्रशूलज अम्लपित्त मे बडा लाभ कर रहा है। निशोत के योग से भी अम्लपित्त रोगाधिकार भैषज्य रत्नावली की दवा अविपत्तिकर चूर्ण को मैंने निर्माण करके प्रयोग मे लाया है, पर कुटकी के योग से यह कम लाभ की है। रोगियो को रात मे कोष्ठशान्तिकर चूर्ण चार आने भर एव पथ्यादि वटी १ गोली और शंख भस्म ४ रत्ती मिलाकर दिया करता हू। इन योगो से पेट से आव एव गरम पित्त पाखाने के राह से निकलता है। और पित्ताशय, ग्रहणी, अग्न्याशय के पित्तो की सशुद्धि होकर अम्लपित्त का वमगोपसर्ग शीघ्र ही शान्त हो जाता है। पेट, छाती, आत की लहर, दर्द-जलन तुरन्त शान्त हो जाती है। पेट के दर्द मे भी इससे अपार और दो दिनो मे लाभ होता है। पेट का दर्द यदि आमज हे तो भी यह तत्क्षण लाभ पहुँचाता है। पाखाना ४ बार पीला-पीला होता है। प्यास कम हो जाती है। पेशाब से भी पीलापन लिए हुए पित्त निकलता है। हौस्पीटल वाले रोगी को कामला (जौण्डिस) भी हो गया था। देह मे नोचनी भयकर थी। इन्ही दवाओ से कामला भी ठीक हो गयी थी।

श्री वावू रामस्वरूपसिंह जी की दवा—सुबह, शाम मोतीपिष्टी १ रत्ती, अविपत्तिकर दो आने भर, शशि प्रभा १ गोली, नागदमन चूर्ण ५ रत्ती मधुमिश्रित करके लें। वाद शतावर का रस २ भर पियें। शतावर मेरे कालेज से हरा-हरा इन्हे प्राप्त हुआ था। भोजन के वाद दिन मे और रात मे—वज्रशेखर चूर्ण दो आने भर मिलाकर ३-४ घूट सुषुम जल से ले वाद दन्त्यरिष्ट २॥ भर (१ औंस) पिये। दन्तयरिष्ट मे मधु बारह आना भर और सममात्रा जल मिलाकर पिया करें। शिर मे एव कान मे तिल का तेल लगावे। देह मे तिल का तेल लगावे।

पथ्य सवेरे जलपान मे—मूंग ५ भर, मुनक्का १ भर, सेन्धा नोन, धनिया, लौग, हरदी, तेजपत्ता बिना पीसे हुये देकर १ सेर पानी देकर सीझाकर १ पाव बचने पर उतार कर मसल कर छानकर सुषुम-सुषुम पिये। दो रामदाना की लाई भी ले सकते हैं। यदि इन्हे आप न ले सके तो धान भून कर उसकी लाई यवार्हन सेन्धानमक से फाके। धानकी लाई ५ भर फाक सकते हैं। तार की मिसरी से भी धान की लाई ले सकते हैं। भोजन मे भात-रोटी साथ-साथ ले। मूग का काढा ऊपर की तरह वनाकर भात-रोटी मे ले सकते हैं। तरकारी मे परबल या पपीता छीलकर बीजरहित कर के विना घी-तेल के भूनकर उसमे लौग, हरदी, तेजपत्ता, धनिया मशाला मे देकर बनाकर ले। गेन्धरी शाक के पत्ते ५, कागजी बादाम ५, नमक और ऊपर के मशाले देकर सीझाकर मसल कर छानकर सुषुम-सुषुम ३ बजे लें। कभी कभी मन बदलने के लिए चने का सत्त

- ़र को पानी और तार की मिसरी या सेंधानोन देकर ' ़कर पिये। आवला का मुरब्बा, हर्रे का मुरब्बा, ़ ा का मुरब्बा मे से जो प्राप्त हो १-१ ठो जलपान मे सकते हैं। गुरमी की भुर्ग लाभ करेगी। पानी औ , कर ठण्डा करके एक सप्ताह तक लें। पुदीना की पत्त। ५, अमलवेत १ को निम्बु का रस सेन्धानोन देकर चटनी बनाकर ले। गाय का मट्ठा, सेन्धानोन, अजवाईन भूनकर सफूफ करके मिलाकर पिय। दही न खाये।

पुन १६-५-६३ को देखा। देखने से मालूम हुआ कि कै बन्द है। पेट से आव गिर रहा है। भूख कम है। और लहर-जलन अभी यथावत् है। पेशाव से पीतवर्ण का पित्त निकल रहा है। इसके वाद सुबह-शाम अम्लपित्तान्तक १ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण दो आने भर एव राशि प्रभा १ गोली, नागदमन चूर्ण २ रत्ती मिलाकर मधु से खाकर तुरन्त शतावर का रस २ भर पीने को लिखा। भोजन के बाद दिन मे एव रात मे अग्निमुख चूर्ण १ तोला, पथ्यादिवटी १ तोला, पित्तान्तक चूर्ण दो आने भर, अम्लपित्तान्तक १ रत्ती ५ भर पानी मे १ भर गुलाब जल देकर ले। बाद दन्ती रसायन २॥ भर पियें। पथ्य पूर्ववत रखे।

उपयुक्त दवा १५ दिनो के लिए देकर मैं मध्यप्रदेश मे प्रैक्टिकल का परीक्षक होकर चला गया। वाद घर मे पुत्र का विवाह था। बीच मे इनकी दवा बन्द हो गयी। पुन ११-७ ६३ को आने पर मैंने इनका परीक्षण किया आप अच्छे पाये गये। पेट मे वायु अधिक थी। बल का अभाव था लहर जलन, श्रम, विष्टम्भ समाप्त हो गये थे। खासी कुछ थी एव आव भी कुछ थी। इसके वाद मैंने सुबह शाम मे मुक्तापञ्चामृत १ रत्ती, तालमूल्यादि चूर्ण १० भर, राशि प्रभा रसायन १ भाग मिलाकर मधु से खाने वास्ते दिया। भोजन के वाद दिन रात मे स्वर्णभस्म ½ रत्ती, मोती पिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ भर मिश्रित कर मधु से चाटें। वाद बब्बुलाद्यरिष्ट २॥ भर पिये। शनिश्चर ़ा मगल की रात मे सोनेवक्त मात्रा १ खुराक अविप। ़कर २ आना भर, पथ्यादि वटो २ गोली, कोष्ठशान्तिकर १० भर मिलाकर सुपुम जल से लें। दही, घी, कलमी आम, लालमिर्च, मशाला, पागानोन, लशुन, अरहर, वकला मसूर, चना, मटर, खेसारी की दाल न ले। डाल्डा की चीजें, कडु तैल मत ले। दिन मे न सोवें। मूग की दाल छिलका सहित बनाकर खायें। भात-रोटी तरकारी ले। भात कम ले। तरकारी खूब ले। गोघृत का सेवन घर का यदि हो तो दाल-तरकारी के बघारने मे प्रयोग कर सकते है। जमीन के भीतर की सब्जी (कन्द शाक) न ले। ओस मे न सोवें, वरसात से बचे पानी औटाकर ठण्डा करके पियें। क्षमता शक्ति की पूर्ति के वाद ठण्डा पानी पियें। स्नान जैसे एक वार तिल तेल मालिश करके करते है वैसे करते रहे। उशना (भुञ्जया) चावल न ले। विहार मे उसना चावल ही अधिक व्यवहृत होता है। महीन अरवा चावल ले। भोर मे उठकर कान बन्द कर पखाना जाय। पेट मे वायु वाले रोगी को अक्सर पखाना जाने के समय मे ही अर्दितवात, एकाङ्गवात का रोग आक्रमण करते है। शेप पथ्य-परहेज पूर्ववत् रक्खें। २३-७-६३ को उनका कहना हुआ कि शनिश्चर-मगल वाली दवा को सेवन करने से उस दिन बडा आनन्द लगता है। मैंने उसके वाद प्रतिदिन रात मे सोने के समय उस दवा को खाने के लिये दिया है अब अच्छे हैं। और अब उनके भतीजे की दवा शुरु हुई है। शरीर मे चर्बी भर गई है। देह मोटी हो गयी है। खेत पर भी जाते हैं मुकदमा मे पैरवी भी कर रहे है और खूब खाते है पर पथ्य से ही। औटा हुआ ठण्ठा जल अभी चल रहा है। इस तरह से उन्हे आरोग्य है।

श्री रामलगन प्रसाद जी दीवानी वकील 'वेलपनवा' मोतीहारी को भी अम्लपित्त था। वे श्रद्धेय आयुर्वेद वृहस्पति प० सत्यनारायण शास्त्री से भी काशी जाकर निदान कराये थे। श्री शास्त्री जी ने भी मेरी दवा का अनुमोदन किया था।

—श्री दारोगाप्रसाद मिश्र आयुर्वेदाचार्य
प्रिंसीपल—आयुर्वेद-कालेज, मोतीहारी (चम्पारन)

उच्चिटिंग

श्री श्रीमोहनशरण मिश्र, श्री चन्द्रकान्त मिश्र

उच्चिटिङ्ग एक सविप कीट है। इसी शब्द से मगही, भोजपुरी, और मैथिली बोलियो (भापाओ) मे 'उचुरुम' और 'उचुरुग' शब्द निकले हैं। ये दोनो शब्द तद्भव होने के साथ ही देशी हैं। उपर्युक्त वोलिया या भापाये भी हिन्दी के ही अङ्ग हैं। अत तत्सम 'उच्चिटिङ्ग' का अर्थ तो ज्यो-का-त्यो रह गया है किन्तु तद्भव 'उचुरुम' या 'उचुरुङ्ग' शब्द अन्य प्रकार के कीटो के पर्यायवाचक बन गये हैं। ग्रीष्म ऋतु के अन्त मे वरसात आने के पहले खेतो में मटमैले, कालिमा लिए या हरे, उजले और श्वेत-रक्ताभ असख्य पखयुक्त एक से ढाई इ च तक के निर्विप कीड़े खेतो मे उत्पन्न होते हैं। ये उचुरुम या उचुरुङ्ग कहे जाते हैं। वृहत् हिन्दी-शब्दसागर प्रथमखण्ड सख्या (१-६) पृष्ठ ३०६ मे उचरङ्ग शब्द का अर्थ उडने वाला कीडा, पतग, फतिगा लिखा है। उत्तर प्रदेश मे 'उारङ्ग' शब्द ही व्यवहृत होता है। मटमैले कीडे तो वरसात के आरम्भ में समाप्त हो जाते है। सम्भवत इन्द्रगोप (बीर वहूटी) के समान ये भी २८-३० दिनो तक जिन्दा रहते है। किन्तु कृष्णाभ, हरे और उजले पखदार कीडे (जो शलभ या तितली से भिन्न होते हुए भी तितली कुल के ही है) धीरे-धीरे वरसात भर उपजते और मरते रहते है। ये खेतो, वागों और गावो मे समानरूप से फैले रहते हे।

उच्चिटिङ्ग को षड्विंदु, छड्बिधा या छरविधा भी कहते है। यह काले रङ्ग का होता है। इसकी पीठ पर पीले रग के गोल-गोल छ बिन्दु होते है। ये विन्दु मसूर या चने के वरावर होते हैं। इसीलिए इसे 'षड्विन्दु' शब्द से ही छडविघा या छरविधा शब्द निकला है। वृहत् हिन्दी शब्दकोष (ज्ञान मण्डल-यन्त्रालय, बनारस) द्वितीय सस्करण, पृष्ठ १७३ में 'उच्चिटिङ्ग' का अर्थ 'केंकड़ा, (सस्कृत कुलीर कर्क या कर्कट) किया गया है। वहा भावाविष्ट, कुद्ध व्यक्ति और भींगुर अर्थ भी लिखा है। इनमे कर्क और भींगुर ये दोनो अर्थ आयुर्वेद के प्रतिकूल है।

केकड़ा भी काटता है, किन्तु सविप नही होता। यह वादामी रङ्ग का या श्वेताभ जलजन्तु है, उसके मुख के दोनो ओर अर्धचन्द्राकार वृश्चिक-पुच्छवत् शृङ्ग या शुण्ड होते है। जिसे तुण्ड या "तूडा, तुडा" (मगही, भोजपुरी और मैथिली मे) कहते है। उसके आठ पैर होते हैं। बीच का भाग डिबिया या गोलाई लिए चौकोर होता है। उसका मुख बहुत छोटा होता है। वह मुह से नही काटता किन्तु तथाकथित शुण्डो से दबाता है।

मासाहारी लोग केकडा खाते हैं। वे इसे आग मे पका डालते या राधते भी है। यह शीतवीर्य है। हृदय मस्तिष्क, फुफ्फुस, स्वरयन्त्र, आमाशय और वृक्क के लिए हितकारी है। अत हृद्य, बल्य, रक्तवर्णक और अस्थि पोषक तथा पुस्त्ववर्धक है। क्षय रोग के रोगी इसे विशेषत खाते हैं। चिकित्सक इसकी अस्थि भस्म बाल शोष और क्षयरोग के रोगी को खिलाते है।

उच्चिटिङ्ग लगभग दो इच लम्बा और डेढ इंच ऊचा काला कीट है। यह बहुत तेज भागता है। इसके चार पैर होते है। यह मुह से काटता है। इसका विष वात-प्रधान होता है। वृश्चिक का विष भी वात प्रधान होता है। यह वृश्चिक कुल का नही है। झींगुर और तिलचट्टे के कुल का भी नही है। झींगुर और तिलचट्टे भी वीधते हैं किन्तु उनसे मामूली ददोरे होते है और थोडी चुनचुनाहट होती हे। झींगुर और तिलचट्टे दोनो ही पखदार कीट हैं। उच्चिटिङ्ग के पख नही होते। महर्षि आत्रेय कहते हैं—

"वातोल्वण-विषा' प्राय उच्चिटिङ्गा सवृश्चिका'।"
[चरक चिकि० अध्याय २३ श्लो० १६४]

यद्यपि दोनो के विप मे वायु की प्रधानता है, किन्तु वृश्चिक विष से तीव्र दाह, ऊपर की ओर वेदना का चढाव अगो मे फटने की सी पीडा होती है। धीरे-धीरे अन्य स्थानो की पीड़ानिवृत्ति होने पर भी १२-१४ घटे तक दश स्थान मे पीड़ा और दाह की स्थिति रहती है।

कभी-कभी काटे हुए स्थान पर छोटी चवन्नी के बराबर काला दाग सा हो जाता है। वृश्चिक के पिछले भाग में लगभग दो से तीन इंच लम्बा नुकीला पुच्छ या तुंड होता है। जिसका अग्रभाग कठोर लाल (मधु के रंग का) या काला होता है। वह पोला (खोखला) होता है। यह छोटी-छोटी रुचकास्थियो से बना रहता हैं। लम्बे लम्बे मोतियो के दानो के समान उसके अलग-अलग पर्व गिने जा सकते है। पर्वो के सन्धि-भाग कुछ-कुछ दबे रहते हैं। वृश्चिक का ऊपरी भाग बादामी, शर्बती, पीताभ, कृष्ण या कत्थई तथा नीचे का कोमल धूसर, पांडुर या श्वेत-पीताभ होता है। नीचे के भाग मे ही छाती के पास दोनो ओर किंचिद् रूक्ष दूर्वादलाकार रोमश शृंग या चालक रहते हैं। उन्ही के सचालन से तुंड सचालित होता है। बिच्छू को चित्त उलटकर (उत्तान कर) किसी चीज से दबाकर यदि उसके दोवो चालक तोड दिये जाते है तो वह सविष रहने पर भी तुंड से काटने, डसने या या डंक मारने मे असमर्थ हो जाता है। कोई-कोई बिच्छू रोमयुक्त (रोमश) होता हैं। उसे आप जीवित रहते हुए स्वेच्छा से अपने अंगो पर घुमा-चला सकते है। शहरो मे बिच्छू की दवा बेचने वाले बडे-बडे पहाडी बिच्छुओ को इसी प्रकार चालक तोडकर रखते है। लोगो को ठगने के लिए किसी जडी का टुकडा उसके तुंड से सटाकर के दिखलाते हैं कि इस औषधि के प्रभाव से इसमे काटने की शक्ति का स्तम्भन हो गया है। अत धडाधड लोग उक्त जडी के टुकडे खरीदने लगते है। हम नही कहते कि वैसी कोई जडी है ही नही या हो ही नही सकती। वृश्चिक विष के वेग से चढने की क्रिया और उपद्रव के सम्बन्ध मे वाग्भट कहते हैं—

> "वृश्चिकस्य विषं तीक्ष्णमादौ दहति वह्निवत्।
> ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति॥
> दंशः सद्योतिरुक् श्यावस्तुद्यते स्फुटतीव च।"
> [अष्टांग हृदय उत्तर० अ० ३७ श्लो० ६-७]

बिच्छू के तुण्ड काटकर कटुतैल मे पकाकर लगाने से उसका विष उतर जाता है। अनुभूत हैं। हम प्रति वर्ष मृगशीर्ष या आर्द्रानक्षत्र मे खलिहान से नेवारी की गाज हटते समय निकलने वाले सैकड़ो बिच्छुओ के डंक कटवाकर मंगवाते हैं। तैल पकाकर सधिवात, गठिया और गृध्रसी के रोगियो पर लगाने में प्रयुक्त करते हैं। इसी तरह अप्रेल मे हाथियो के पैर मे छोप पड़ने पर जो जहरीला तैल बनता है, उसे अगल-बगल के हाथी पालने वाले लोगो के यहा से मगवाते हैं। उसके प्रयोग से भी उक्तरोगों मे शत-प्रतिशत लाभ होता है। हाथी के तलवो मे बडे-बड़े आलू के अधकटे भाग के बराबर-बराबर रुखानी या बटाली से दस-दस, पन्दरह-पन्दरह गहरे क्षत किये जाते है। पुन उन पर जहरीले गर्म तैल के सेचन से उक्त खुरदरे कटे भागो को मुर्दार किण (घट्ठे) के रूप मे परिणत किया जाता है। इसी को 'छोप पडना' कहते है। १ मास तक हाथी छोप पर पड़ा रहता हैं। उस पर सवारी नही की जाती। केवल उसे धोने के लिए ही थोडी दूर के जलाशय तक ले जाते हैं।

बिच्छू केवल तुण्ड से ही डसता है, डंक मारता है। वह मुंह से नही काटता है। केंकडा और बिच्छू दोनो के एक एक आंख होती है। उच्चिटिंग के दो आंखे होती हैं। उच्चिटिंग (छरबिधा) मुंह से काटता है। मरे हुये बिच्छू का तुण्ड भी यदि गड़ जाय तो भी अधिक विष चढता है। उच्चिटिंग के दशन से भी अधिक पीड़ा होती है। विशेषता यह है कि सर्वाङ्ग के रोम खडे हो जाते है। शिखा खड़ी हो जाती है। शिश्न स्तब्ध हो जाता है। सपूर्ण अंगो मे अतिशय पसीना छूटने लगता है। शरीर शीतल हो जाता है। समूची देह मे ऐंठन (पिंडुरी) होने लगती है। वाग्भट कहते हैं—

> "उच्चिटिङ्गस्तुवक्त्रेण दशत्यभ्यधिक व्यथः।
> साध्यतो वृश्चिकात् स्तम्भ शेफसो हृष्ट-रोमताम्॥
> करोति सेकमङ्गाना दंशः शीताम्बुनेव च।
> उष्ट्रधूम' स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः॥
> [अष्टाङ्ग हृदय उत्तर० अध्याय ३७ श्लोक १२-१४]

उक्त श्लोक मे उच्चिटिंग के उष्ट्रधूम और रात्रिक ये दो पर्याय बताये गये है।

हमारे गांव बासाटाड (पुराना नाम वात्स्यस्थान) के पूर्व, उत्तर पूर्व और दक्षिण मे लगभग १४ कोस लंबा और चौडा च्यवनाश्रम का जगल फैला हुआ है जो प्राय अब कट चुका है। उसमें उच्चिटिङ्ग (छरबिधे) बहुत होते हैं। कई बार इनके काटे रोगियो को देखा है। यहा के लोग रोगी को कबल ओढाकर एक गहरे (जमीन मे खुदे हुए) गढे मे बैठाते है और धान या रब्बी (चना वगैरह) के भूसे का धुआं

उसके सर्वांग में लगाते हैं। नाकुलीकन्द (जिसे यहा नेडलकन्द कहा जाता है) का रस घी मे मिलाकर पिलाते हैं। बन्ध्याकर्कोटक (फुलखेखसा) का रस, काली मिरच और गोघृत भी पिलाते है। उर्द (माष) का कपडे मे छना वेसन और हिंगुल का चूर्ण (शृंगरिफ का खरलपिष्ट) सर्वांग मे मलते हैं। अथवा कटु तैल मे हिंगुल खरलकर लगते है। कोइन (महुए) का तैल या एरड तैल या गोघृत और सेधा नमक सम्पूर्ण शरीर मे लगाते हैं। जवायन, महुआ, चोकर और प्याज की पोटली से सेकते है। कटुतैल मे लशुन पकाकर भी लगाते है। जहां वैद्यो से नारायण तैल या महामाष तैल आदि कोई वातघ्न तैल मिलता है, वहा उससे अभ्यग करते हैं।

उच्चिटिंग के काटने पर हृदय मे पीडा (और जकडन) होती है, डकार नही आता। नसें टेढी या तनी हुई सी (सरायाम) होने लगती हैं। हड्डियो मे पोर पोर मे दर्द होने लगता है। घुमरी चढ जाती है। एंठन या पिडुरी होने लगती है। शरीर काला सा हो जाता है। वाग्भट कहते हैं—

"हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः सिरायामोऽस्थिपर्वरुक्।
घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता वातिके विषे॥"
(अष्टांग हृदय उत्तर० अ० ३७ श्लोक १७)

देहात मे की जाने वाली उपरिवर्णित चिकित्सा भी लगभग चरक सहिता और अष्टाग-हृदय मे वतलाये क्रम के अनुसार ही है—

पिण्याकेन व्रणलेपस् तैलाभ्यंगश्चवातिके।
नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्बृंहणश्च विधिर्हित॥
(अष्टांग हृदय उत्तर० अ० ३७ श्लोक २०)

वृश्चिक और उच्चिटिंग के अतिरिक्त अन्य सभी विषों के प्रतिकारार्थ शीतल क्रिया की जानी चाहिए।

"विषेष्वपि च सर्वेषु सर्वस्थान गतेषु च।
अवृश्चिकोच्चिटिंगेषु प्राय' शीतोविधिर्हितः॥
पिण्याकेन व्रणालेपस्तैलाभ्यगश्च वातिके।
स्वेदो नाडीपुलाकाद्यै बृंहणाय विधिर्हित.॥
वृश्चिके स्वेदमभ्यंगं घृतेन लवणेन च।
सेकाँश्चोष्णान् प्रयुञ्जीत भोज्यं पानंच सर्पिष॥
एतदेवोच्चिटिंगेपि प्रतिलोमच पांसुभि.।
उद्वर्तन सुखाम्लोष्णैस्तथावच्छादनं घनैः॥"
(चरक चिकित्सा अ. २३ श्लोक १७१-१७३)

वाग्भट ने नीचे लिखे योग वृश्चिक और उच्चिटिंग विष पर लिखे हैं—

१ कवूतर की बिष्ठा. हर्रे, तगर, और सोठ बिजौरे के रस मे घोटकर लगाना चाहिये।

२ शैवाल और ऊंट के दात पीसकर दंश स्थान पर लेपना चाहिये।

३ हीग और हरताल बिजौरे के रस में घोटकर वर्तिका वनाकर रखें। आख मे इसे आंजें और दशस्थान पर लगावें।

४ करञ्ज, कहुआ (अर्जुनवृक्ष), कटभी (Careys tree), कुटज (इन्द्रयव) और शिरीष के फूल मठे में पीसकर लगावें।

५ सोठ, कवूतर की विष्ठा, बिजौरे का रस, हरताल और सेधानमक लगावे।

६ खूब विष चढ जाने पर विष (वत्सनाभ आदि) का लेप करें।

७ प्रलाप, उग्रवेदना, उच्छ्वास और वेहोशी होने पर हर्रे, हल्दी, पीपल, मजीठ, सोठ, लौके के फल की वृत्त (डठल) वैगन के रस मे पीसकर लगावें।

८. दही और घी पिलावें। सिरावेध करावें। वमन करावे। होश मे लाने के लिए अजन लगावें। नाक में नस्य दें। होश मे लाने के लिए "लखुलखा" सज्ञावर्धक द्रव्य सुघावें। गर्म, स्निग्ध, खट्टे और मधुर वातनाशक पदार्थ खिलावें।

९. हाथी की लीद पर जमा हुआ गोवर छत्ता और रोहिषतृण (अगिया खर) लसोडे के रस मे पीस लगावें।

१० शिरीष का वीज आक के दूध मे तीन बार भावित कर सुखाकर दें और उसमे समभाग पिप्पली चूर्ण मिलाकर लगावें।

११ शिरीष का फूल, करंज का बीज(गिरी), केशर, कुष्ठ (कूठ) और मैनसिल जल मे पीसकर चढ़ावें। यह योग तीर्थंकर 'जिन' द्वारा प्रवर्तित है।

(अष्टागहृदय उत्तर० अध्याय ३७ श्लोक ३४-४४)

गत वर्ष इस लेख के अन्यतर लेखक चन्द्रकान्त मिश्र से रात मे (वरसात मे) छरविन्दे का एक बच्चा कुचल गया। तलवे मे एडी के पास लगभग अठन्नी भर

—शेषांश पृष्ठ ३७ पर

श्लीपद ज्वर

(काला-आजार, लाहौर सोर, दहली सोर, ओडियन्टल सोर)

स्वर्गीय श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य

यह ज्वर सतत (दो वक्त चढने वाले) ज्वर का ही भेद है। यह भी विषम ज्वर (मलेरिया) को उत्पन्न करने वाले जीवाणुओ से ही होता है। जोकि पीठ, अस्थि, सन्धियो आदि में अपना आशय बना लेता है। यह रस, रक्त को दूषित कर ज्वर उत्पन्न करते हैं। इसको उत्पन्न करने वाले दोष सब धातुओ मे लीन हो जाते है। यह कफ, पित्त प्रधान होते है इसलिये इसमे कफ पित्त के लक्षण विशेषता से होते है। यह धातुओ मे लीन होने से समय–समय पर बार–बार कमजोर और मदाग्नि वाले पुरुषो को होता रहता है। इसमे रक्त की शोणित कणिकाओ (लाल कणो) का नाश हो जाने से शरीर मे रक्त की कमी होकर पाण्डुता, हाथ, पैर व मुह पर शोथ (सूजन) आ जाती है शरीर का वर्ण श्याम (काला सा) पड जाता है। इसलिये इसे काला आजार या कालज्वर भी कहते हैं।

इसका विष अधिकतर प्लीहा, यकृत मे अथवा दोनो मे पहुचकर उन्हे क्षुब्ध कर बढाता और उनमे सौत्रिक तन्तुओ की वृद्धि भी कर देता है। जब विष पाचक सस्थान के आमाशय, छोटी बडी आतो आदि पर होता है तो वमन या अतिसार आदि लक्षण होते हैं। श्वास सस्थान-फेफडे, श्वासनलिकादि पर होने से फुफ्फुस प्रदाह, कास आदि लक्षण होते है। कभी-कभी इससे प्रबल रक्तपित्त का प्रकोप हो जाता है। नाक, मसूढे आदि से रक्त जाना आदि रक्त पित्त के लक्षण होते है। अनेक रोगियो के रोम-रोम से रक्त चूने लगता है। रक्तपित्त और अतिसार यह दो इसके भयकर उपद्रव हैं। यह कही एक, कही दोनो एक साथ भी हो जाते है। ऐसी दशा मे रोगी के जीवन की कोई आशा नही रहती है। मुह के भीतर गालो मे शोथ होने लगता है, रोगी खाने–पीने मे मजबूर हो जाता है।

इस ज्वर मे पहिले जाडा देकर या वैसे ही चढ आता है ज्वर तीन-चार सप्ताह तक चढ़ा रहता है इस समय मे प्लीहा और यकृत भी बढ जाते है। ज्वर उतर जाता है और कुछ दिन तक ज्वर नही आता और फिर ज्वर आने लगता है, ज्वर दो–एक बार चढ उतर कर मन्द पड जाता है, और चिरस्थायी हो जाता है। ज्वर की घटा-बढी होती रहती है। इसमे पसीने खूब आते हैं। यक्ष्मा (तपेदिक) जैसे लक्षण हो जाते हैं, रोगी चल बसता है।

चिकित्सा—

यह ज्वर बगाल, असम, पजाब, देहली आदि की ओर अधिक होता है। इसके कीटाणु खटमलो द्वारा एक से दूसरे मे फैलते हैं। कुत्तो की मक्खियो (नगो) द्वारा भी मनुष्यो मे फैलते है, इसलिये इनसे बचने के लिये खटमलो, मक्खियों को विनष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये।

यह ज्वर कफपित्त प्रधान होता है, साथ ही विषाक्त भी है। विष की विष ही औषधि है, इसलिये ज्वर मे प्राय दुरालभा वटी निर्भय होकर दीजिये। २-२ वटी चार बार शीतल जल से दे। साथ ही प्रात साय पचतिक्त कषाय पिलाइये। साथ ही उपद्रवो का ध्यान रखिये। जो उपद्रव बढा हुआ है उसको शमन करने के लिए उपद्रवो की चिकित्सा मे बताये उपायो का अवलम्बन कीजिये।

इसके अतिरिक्त इस रोग मे ज्वरारि अभ्रक, कनकसुन्दर रस, तिक्त वटी, चन्द्रामृत, सप्तपर्ण वटी, सुदर्शन चन्द्रिका उपयुक्त औषधि हैं।

ज्वरारि अभ्रक—

अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, त्रिकुटा, त्रिफला, शुद्ध वत्स,

नाभ, धतूरे के बीज सब वस्तुयें समान भाग लेकर जल मे घोट चने बराबर गोली बनावे । मात्रा–२-४ वटी।

गुण—यह सब प्रकार के विष ज्वरो को दूर करता है। धातुओ मे लीन दोषो को बाहर निकालता है, श्वास, कास, पाण्डु, यकृत, प्लीहा के विकारो को दूर करता है। यह उष्ण होते हुये भी अपने कषाय रस के कारण लाभ करता है।

तिक्तवटी—

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, पीपल छोटी, सोठ,यवक्षार, कुटकी घनसत्व सब वस्तुये समान भाग ले।

विधि–पारद, शुद्ध गन्धक की कज्जली बनावें । फिर शेष वस्तुओ का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर करज के रस मे घोटकर गोली चना बराबर बनाले । मात्रा—३-४ वटी।

गुण—हर प्रकार के विषम ज्वर, यकृत-प्लीहा विकार मे हितकर है।

महाचिन्तामणि रस—

कज्जली २ तोला, त्रिकुटा ३ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, सोनामक्खी भस्म १ तोला सबको पानी मे खरल कर रखले। मात्रा—१-२ रत्ती।

गुण—यह विपम ज्वर, समज्वर, और यकृत-प्लीहा विकार, रक्तपित्त, किसी भी मार्ग से रक्तस्राव होने मे लाभदायी है। रक्तस्राव की दशा मे महाचिन्तामणि रस १ रत्ती, वेरी की लाख का चूर्ण २ रत्ती, नागरमोथा, १ रत्ती शहद मे मिलाकर चटावे। ऊपर से शर्वत अंजवार पिलावें। वडा लाभकारी है।

शर्वत अंजवार—

अंजवार १ छटाक को कूटकर आधा सेर पानी में औटावें। जब आधपाव शेष रहे उतार छान लें। इस क्वाथ मे आधा सेर मिश्री या चीनी डालकर शर्वत बनावें। मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

—स्व०श्री सत्यदेव शर्मा चिकित्साचार्य,
प्र० चि० जैन धर्मार्थ चिकित्सालय
कीठम पो० रैपुराजाट (मथुरा)

पृष्ठ ३५ का शेषांश

स्थान मे उसका रस (सभवत लालरस) लग गया। अत कई घंटे तक खूब जलन हुई और बैगनी रंग का उक्त स्थान मे दाग कई दिनो तक रहा। उसने काटा नही था अत और कोई उपद्रव नही हुआ। एक बैल को कई वर्ष पहले उच्चिटिङ्ग ने काटा था तो उसकी पूंछ भी खड़ी हो गई थी। मनुष्य के साथ जो उपाय यहा किये जाते हैं वे ही उपाय उसके लिये भी किये। वह वच गया।

—श्री श्रीमोहन शरण मिश्र
साहित्य व्याकरणायुर्वेदाचार्य, पालितीर्थ, वी ए.
श्रीकमलेश औषधालय, सकरीखुर्द
पो० सकरी, गया (विहार)

—श्री चन्द्रकात मिश्र जी ए एम एस
नागार्जुन-औषधालय, बासाटाड,
डा० केयाल (गया)

सल्फा एवं एन्टीबायटिक्स योग

श्री डा० पद्मदेव नारायण सिंह M B B.S.

सल्फा औषधियों के योग—

इन औषधियो को साधारणत कुछ खा लेने के बाद देना चाहिए और इन्हे व्यवहार करते समय मुख से पानी खूब पिलाना चाहिए। (३–५ पाइन्ट रोज)

(१) पार्क डेविस कम्पनी—

मीडिकेल टेब्लेट्स (० ५ ग्राम की टिकिया)—मात्रा १ टिकिया मुख से एक बार रोज।

(२) लेडरले लैबोरेटरी—

१. लेडरकीन—पहली मात्रा २ टिकिया और उसके बाद प्रति २४ घटे पर १ टिकिया मुख से एक बार रोज पानी के साथ।

२ सल्फाडायजीन—पहली खुराक ४ टिकिया और उसके बाद २ टिकिया मुख से प्रति ४ घटे पर जल के साथ। सभी तरह के रोगाणु सक्रमणो और प्लेग के लिये विशेष उपयोगी योग है।

(३) सीबा कम्पनी—

१. ओरीसूल टेब्लेट्स—१ टिकिया मुख से २ बार रोज भोजन के बाद।

२ एल्कोसीन टेब्लेट्स—२ टिकिया मुख से भोजन के बाद ३-४ बार रोज पानी के साथ।

३. सिबाजोल टेब्लेट्स—२ टिकिया मुख से प्रति ४-६ घंटे पर।

४ फौर्मोसिबाजोल—२-४ टिकिया मुख से प्रति ४ घटे पर। यह हैजा, अतिसार, बैसीलेरी प्रवाहिका और आन्त्र आमाशय पथीय रोगाणु सक्रमणो के लिये उपयोगी है।

(४) मे एण्ड बेकर कम्पनी—

१. सल्फाट्रियाड टेब्लेट्स।

२ सल्फाडायजीन टेब्लेट और इन्जेक्शन (सिरा-मार्ग से एक एम्पुल का इन्जेक्शन १-२ बार रोज दिया जाता है)।

३. थियाजेमाइड मार्का सल्फाथियाजोल टेब्लेट्स।

४. सल्फानिलामाइड टेबलेट्स—इन तीनो योगों की १-२ टिकिया मुख से पानी के साथ प्रति ४-६ घटे पर दी जाती है। सभी तरह के रोगाणु सक्रमणो, न्यूमोनिया, मेनीनजाइटिस, घाव, फोडे-फुन्सियो, मूत्र-पथ के बीकोलाई तथा दूसरे रोगाणु सक्रमणो, हैजा, प्लेग, आख, कान, नाक और गले के रोग, गोनोरिया और दूसरी बहुत सी बीमारियो मे इनका प्रयोग किया जाता है। अतिसारो, बैसीलेरी प्रवाहिका और आन्त्र-आमाशय पथीय रोगाणु संक्रमणों के लिये विशेष उपयोगी योग—१. स्ट्रेप्टोट्रियाड २. सक्सीनील सल्फाथिया-जोल ३ थैलील सल्फाग्वानिडीन टेब्लेट्स। पहले तीनो योगो का २-३ (थालाजोल) टिकिया और चौथा योग का ४-६ टिकिया मुख मार्ग से प्रति ३-४ घटे पर दिया जाता है।

(५) बूट्स कम्पनी—

१. सल्फा निलामाइड २ सल्फाथियाजोल ३ सल्फा डाइजीन ४. सल्फा डाइमिडीन और ५ सल्फाग्वानी-डिन। मात्रा और प्रयोग—ऊपर लिखित योगो के समान ही। ६ आखो के रोगो के लिये—सल्फा सेटामाइड आई वायन्टमेन्ट और ७ त्वचा या चर्मरोगो के लिये—सल्फानिलामाइड वायन्टमेन्ट।

ऐन्टी बायोटिको के योग—

(६) जौनवाइथ कम्पनी—

१ पेनीड्योर-ए० पी० इन्जेक्शन—यह पेन्सिलीन का बड़ा ही प्रभावकारी और उत्तम योग है। मासपेशी मे (६ या १२ लाख वाला) एक फायल का एक बार का दिया गया इन्जेक्शन ४-८ दिनो तक कारगर रहता है, इसलिये सप्ताह भर मे इसका केवल एक या दो इन्जेक्शन ही दिया जाता है। मुख मार्ग से व्यवहार करने के लिये (बच्चो के लिये विशेष उपयोगी जो इन्जेक्शन के कष्ट से बच जाते हैं) २ लाख शक्ति का टिकिया भी मिलता है। मात्रा १ टिकिया मुख से प्रति

४-६ या ७ घंटे के अन्तर पर।

२. वायोपेन वी टेब्लेट्स या इससे भी उत्तम तथा अधिक प्रभावकारी योग।

३. वायोपेन-वी-सल्फाज यानि पेन्सिलीन + सल्फा औषध युक्त टेब्लेट्स। मात्रा—बच्चो को एक और बडो को २ टिकिया मुख से प्रति ६-८ घटे पर पानी के साथ।

(७) हिन्दुस्तान ऐन्टीबायोटिक्स—

१. पेन्सिलीन-जी-सोडियम—२ लाख, ५ लाख और १० लाख यूनिटो के फायल्स। इनमे आवश्यकतानुसार २-१० सी० सी० तक परिश्रुत जल इन्जेक्ट कर के घोल तैयार किया जाता है, और १-२ लाख यूनिटो का इन्जेक्शन आवश्यकतानुसार प्रति ४-६ या ८ घटे के अन्तर पर मांसपेशी मे लगाया जाता है।

२. प्रोकेन पेन्सिलीन फोर्टिफाइड—४ लाख यूनिट का। इसमें १-२ सी० सी० परिश्रुत जल इन्जेक्ट करके घोल तैयार किया जाता है, और ४ लाख यूनिट का मासपेशी मे इन्जेक्शन साधारणत एक वार किन्तु गम्भीर अवस्थाओ मे दो वार रोज लगाया जाता है।

३. पेन्सिलीन जी प्रोकेन इन वायल—३ लाख यूनिट प्रति सी० सी० शक्ति मे १० सी० सी० के फायल मे तैयार तैलीय इन्जेक्शन। १-२ सी० सी० का नितम्ब पर मांसपेशी मे इन्जेक्शन १ बार रोज लगाया जाता है।

४. बैनीसिलनी आल परपस (Benıcıllın All Purpose)—१२ लाख यूनिट के एक मात्रा वाला फायल। यह बहुत ही प्रभावकारी तथा जैसाकि नाम से ही पता चलता है सर्वोपयोगी योग है। एक फायल मे २ सी० सी० परिश्रुत जल इन्जेक्ट करके इन्जेक्शन तैयार किया जाता है और एक ही मात्रा मे इन्ट्रामस्कुलर इन्जेक्शन द्वारा लगा दिया जाता है। इसके बाद ४-५ दिनों तक दूसरा इन्जेक्शन देने की आवश्यकता नही होती।

५ पेन्सिलीन जी प्रोकेन जलीय या एकुअस् इन्जेक्शन १५ लाख यूनिट के फायल मे—इसमे से ३-४ लाख यूनिट का मासपेशी मे इन्जेक्शन एक या दो बार रोज लगाया जा सकता है।

६. स्ट्रेप्टो पेन्सिलीन—इसमे पेन्सिलीन और स्ट्रेप्टो माइसीन एक साथ मिले रहते हैं इसलिये यह सबसे अधिक प्रभावकारी योग होता है। १ फायल का मासपेशी मे इन्जेक्शन एक बार रोज लगाया जाता है।

७ स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट।

८. डाइहाइड्रो स्ट्रेप्टो माइसीन सल्फेट। ये दोनो योग यक्ष्मा, प्लेग और मूत्रपथीय सक्रमणो की चिकित्सा के लिये बहुत ही कारगर योग हैं। ½ या १ ग्राम का मासपेशी मे इन्जेक्शन एक या दो बार रोज या १-२ दिनो के अन्तर पर दिया जाता है। आन्त्र आमाशय पथीय सक्रमणो, अतिसारो तथा बैसिलेरी प्रवाहिका की चिकित्सा के लिये मुख मार्ग से दिया जाता है।

९ मुख मार्ग से व्यवहार करने के लिये २ लाख यूनिट के पेन्सिलीन टेबलेट्स। मात्रा—१ टिकिया मुख से प्रति ६-८ घटे पर।

(८) एलेम्बिक कम्पनी—

१. एल्प्रोमीन मार्का ४ लाख यूनिट शक्ति का प्रोकेन पेन्सिलीन का सयुक्त योग। एक फायल का मासपेशी मे इन्जेक्शन एक या दो वार रोज। यह एक मात्रा (४ लाख) और ५ मात्राओ (२० लाख) के फायलो मे मिलता है। १ मात्रा वाले फायल मे प्रोकेन पेन्सिलीन ३ लाख + क्रिस्टलाइन सोडियम जी पेन्सिलीन एक लाख रहता है।

२. पेनीसिलीन जी सोडियम—२ लाख, ५ लाख और १० लाख यूनिटों के फायलो मे। मात्रा और प्रयोग–पूर्वलिखित योगो के समान ही हैं।

३. डाइहाइड्रो स्ट्रेप्टोमाइसीन–१ ग्राम और ५ ग्राम के फायलो मे। मात्रा और प्रयोग पूर्वलिखित योगो के समान ही हैं।

४ स्ट्रेप्टोमाइसीन—१ ग्राम और ५ ग्राम के फायलो मे। मात्रा और प्रयोग पूर्वलिखित योगों के समान ही।

५. कौस्ट्रेसीन(स्ट्रेप्टोमाइसीन + डाइहाइड्रो स्ट्रेप्टोमाइसीन बराबर भाग मे (१ ग्राम और ५ ग्राम के फायलो मे।

६. डाइप्रोसीन (डाइहाइड्रो स्ट्रेप्टोमाइसीन १/२ ग्राम + एलप्रोसीन ४ लाख युनिट युक्त स्ट्रेप्टो पेनीसिलीन

का योग) मात्रा—१ फायल का मासपेशी मे इंजेक्शन एक बार रोज।

७ बिस्ट्रेपेन (एलप्रोसीन ४ लाख+कोरट्रेसीन १/२ ग्राम)—१ मात्रा।

८. बिस्ट्रेपेन फोर्ट (एलप्रोसीन ४ लाख+कौस्ट्रे-सीन १ ग्राम)—१ मात्रा।

९ पेनक्रीमाइसीन (पेनीसिलीन जी सोडियम ५ लाख यूनिट+कौस्ट्रेसीन १/२ ग्राम)—१ मात्रा।

उपरोक्त सभी योगो के फायलो मे २-३ सी सी परिश्रुत जल इन्जेक्ट करके इंजेक्शन तैयार किया जाता है और सम्पूर्ण घोल एक मात्रा मे मांसपेशी मे इन्जेक्ट कर दिया जाता है।

डुमेक्स फाइजर कम्पनी—

(१) पेनिसिलीन-वी—१ लाख यूनिट शक्ति के टेबलेट्स और (२) फेनोसीन मार्का २ लाख यूनिट शक्ति के टेब-लेटस मुखमार्ग से व्यवहार करने के लिए। मात्रा—१-२ टिकिया मुख से भोजन के २-३ घंटे बाद प्रति ४-६ या ८ घटे पर। (३) पेनिसिलीन-जी सोडियम क्रिस्टलाइन—२ लाख, ५ लाख और १० लाख यूनिटो के फायलो मे। परिश्रुत जल मे घोलकर १-२ लाख यूनिट का मासपेशी मे इंजेक्शन प्रति ४-६ या ८ घण्टे पर। (४) पी पी एफ या प्रोकेनपेनिसिलीन फोर्टिफाइड—४ लाख और २० लाख यूनिटो (५ मात्राओ) के फायलो मे। ४ लाख का मास-पेशी मे इंजेक्शन एक या दो बार रोज लगाया जाता है। यह सबसे अधिक उपयोगी और सुविधाजनक तथा प्रचलित योग है। (५) डाइएमाइन पेनिसिलीन (६ लाख यूनिट) और (६) डाइएमाइन पेनिसिलीन फोर्टिफाइड (१२ लाख यूनिट)—ये योग अत्यन्त प्रभावकारी, कार्यक्षम और सुविधाजनक है, क्योकि डाइएमाइन पेनिसिलीन का केवल एक इंजेक्शन ३-४ दिनो तक और डाइएमाइन पेनिसिलीन फोर्टिफाइड का इन्जेक्शन ७-८ दिनो तक प्रभावकारी बना रहता है। यानि सप्ताह भर मे इनका केवल एक या दो इन्जेक्शन ही लगाना पड़ता है इसलिये चिकित्सक के पास बहुत दूर से आये हुए रोगियो के लिये विशेष उपयोगी हैं। (७) पाम या प्रोकेन पेनि-सिलीन जी इन वायल ३ लाख यूनिट प्रति सी सी के शक्ति मे १० सी सी के फायल मे। १ सी सी. का मास पेशी मे इंजेक्शन रोज दिया जाता है। (८) स्ट्रेप्टोपेनि-सिलीन एस १/२ ग्राम फार्मूला और (९) स्ट्रेप्टोपेनिसि-लीन—½ ग्राम और १ ग्राम फार्मूला इनका एक फायल का मासपेशी मे इंजेक्शन एक बार रोज दिया जाता है। उप-रोक्त सभी योग न्यूमोनिया, ब्राङ्काइटिस, ब्राकयेक्टेसिस, मेनीन्जाइटिस, साइनुसाइटिस, गोनोरिया, सिफलीस, घाव-फुंसियो, आदि तथा अन्य सभी तरह के रोगाणु सक्रमणो की चिकित्सा के लिए विशेष उपयोगी, कार्यक्षम और सस्ता योग है। (१०) स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट (११) डाइहाइड्रो स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट और (१२) टुल्लो-माइसीन। ये तीनो योग १ ग्राम के फायलो में मिलते है और यक्ष्मा, प्लेग, मूत्र पथीय रोगाणु सक्रमणो (जैसे बीकोलाई इन्फेक्शन) टुबरकुलर मेनिन्जाइटिस आदि बहुत तरह के रोगो की चिकित्सा के लिए बहुत ही कार-गर योग है। इन अवस्थाओ मे १ ग्राम का मांसपेशी मे इन्जेक्शन प्लेग और मूत्रपथीय सक्रमणो मे एक दो बार रोज और टी. बी के चिकित्सा के लिये १/२ ग्राम दो बार रोज या एक ग्राम एक बार रोज या १-२ दिनो के अन्तर पर दिया जाता है। अतिसारो और बैसीलेरी प्रवा-हिका की चिकित्सा के लिये ये योग मुखमार्ग से दिए जाते है। घाव, फोडे फुंसियो और जले हुए के चिकित्सा के लिए निम्नलिखित योग बहुत गुणकारी और उपयोगी हैं—(१३) नी-वा-सल्फ—वायन्टमेन्ट, पाउडर, और इन्सटीलेशन। मलहम गलाकर या पाउडर छिड़क कर, या पाउडर छिडकर, या इन्सतीलेशन वा घोल मे गौज भिगोकर एक या दो बार रोज मलहम पट्टी कर दिया जाता है।

विस्तृत प्रभावक्षेत्रीय ऐन्टीबायोटिक्स—

(१) क्लोरामेशक्स कैप्स्युल्स—आन्त्रिक ज्वर या टायफायड और पैराटायफायड की चिकित्सा के लिये यह अनुभूत औषधि है जिसके प्रयोग से रोगी चन्द दिनो मे मे बिल्कुल चगे हो जाते है। न्यूमोनियाँ, डीसेन्ट्री या प्रवा-हिका और अतिसार और हूपिङ्ग कफ या काली खासी आदि अवस्थाओ मे भी यह उतना ही कारगर होता है। मात्रा १-२ कैप्सुल मुख से प्रति ४-६ या ८ घटे पर पानी या फल के रस, या दूध के साथ साबूत या सम्पूर्ण ही निगल जाना चाहिये।

(२) टेरामाइसीन—(१) टेरामाइसीन कैप्स्युल्स (२) टेरामाइसीन-एस. एफ कैप्स्युल्स (३) टेरामाइसीन सीरप, (४) टेरामाइसीन प्रीमिक्स्ड पीडियेट्रिक ड्राप्स (५) टेरामाइसीन सोल्युब्ल टेबलेट्स (५० एम. जी. के) ये सभी योग मुख मार्ग से व्यवहार किये जाते है। मात्रा—१-२ कैप्स्युल या ५ टिकिया या २-४ चम्मच भर सीरप मुख मार्ग से प्रति ६-८ घटे पर। बच्चो को टेरामाइसीन पीडियेट्रिक ड्राप्स का १-२ चम्मच भर दवा मुख से प्रति ४-६ घटे पर देना चाहिए। मीठा और स्वादिष्ट होने के कारण बच्चे इसे चाव से पीते हैं। गम्भीर अवस्थाओ मे या ऐसे हालत मे जब किसी कारण-वश रोगी मुख से दवा नही खा सकता हो तो उस समय इन्जेक्शन द्वारा दवा देने के लिये—(६) टेरामाइसीन इन्ट्रामस्कुलर शोल्युशन (१०० मिलिग्राम का) या पाउडर (परिश्रुत जल मे घोलकर प्रयोग के समय ही इन्जे-तैयार करने के लिए। मात्रा—१०० एम. जी का मास-पेशी मे इन्जेक्शन प्रति ८ या १२ घंटे पर दिया जाता है। (७) टेरामाइसीन इन्ट्राविनस (२५० एम जी) इसका इन्जेक्शन सिरामार्ग से १२ घण्टे के अन्तर पर दिया जाता है। (८) आखो के रोगो के लिये टेरामाइसीन ऑपथैलमीक वायन्टमेन्ट—२-३ बार रोज लगाया जाता है। (९) गले के रोगो के लिये टेरामाइसीन ट्रोश (१०) नाक के रोगो के लिये टेरामाइसीन नेजल सोल्यूशन (११) कान के रोगो के लिये टेरामाइसीन ओटिक सोल्यूशन। इन दवाओ का २-४ बूद ४ बार कान या नाक मे डाला जाता है।

रोगाणुनाशक और ऐन्टीबायोटिक औषधियां—

डुमेक्सफाइजर कम्पनी—

१. टेट्रासीन (टेट्रासाइक्लीन का योग) कैप्सुल्स और एस० एफ० कैप्स्युल्स (यानि विटामिनो युक्त)। मात्रा—१-२ कैप्सुल्स मुख से प्रति ४-६ घन्टे पर। जो रोगी मुख से दवा नही खा सकते हों उनके लिये।

२ टेट्रासीन इन्ट्रामस्कुलर १०० एम० जी०—१ एम्पुल का मासपेशी मे इन्जेक्शन २-३ बार रोज। अत्यन्त गम्भीर अवस्थाओ मे सिरामार्ग से इन्जेक्शन देने के लिये।

३ टेट्रासीन इन्ट्राविनस २५० एम० जी०—इसका एक वायल का इन्जेक्शन सिरा मे बहुत धीरे-धीरे १-२ बार रोज लगाया जाता है।

४ टेट्रासीन ऑपथैलिमक वायन्टमेन्ट—आखो के सभी तरह के रोगो की चिकित्सा के लिये ३-४ बार रोज लगाया जाता है।

२ सीनरमाइसीन—(क) कैप्सुल्स (२५० एम० जी० का) और (ख) सीरप। मात्रा—१-२ कैप्सुल्स या २-४ चाय चम्मच भर सीरप मुख से प्रति ६-८ घटे पर। (ग) मासपेशी मे इन्जेक्शन के लिये १०० एम० जी० का सीनरमाइसीन इन्ट्रामस्कुलर (इन्जेक्शन) और सिरामार्ग से देने के लिये (घ) २५० एम० जी० का सीनरमाइसीन इन्ट्राविनस। मात्रा और प्रयोग—उपरोक्त योगो के समान ही है। (ङ) बच्चो के लिये विशेष उपयोगी योग—सीनरमाइसीन पीडियेट्रिक ड्राप्स। मात्रा—१-२ चाय चम्मच भर सीरप मुख से प्रति ६ घंटे पर।

डे मेडिकल स्टोर—

(१) डाइहाइड्रोस्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट—१ ग्राम के फायल।

(२) एन्टेरोमाइसेटीन मार्का क्लोरम फेनीकोल के योग।

(क) एन्टेरोमाइसेटीन कैप्सुल ३५० एम० जी० के। मात्रा और प्रयोग पूर्ववत्।

(ख) एन्टेरोसाइक्लीन (क्लोरम फेनीकोल+टेट्रा-साइक्लीन का योग) कैप्सुल्स २५० एम० जी० के प्रत्येक। यह अत्यन्त प्रभावकारी योग है और टायफायड, हूपिङ्ग कफ, न्यूमोनिया, मेनीनजाइट्स और इस तरह के दूसरे गम्भीर रोगो के लिये बहुत ही कारगर योग है। मात्रा—१ कैप्सुल मुख से प्रति ६ घटे पर।

(ग) एन्टेरोमाइसेटीन सीरप, और (घ) एन्टेरो-माइसेटीन सीरप विथ विटामिन बी कम्प्लेक्स। मात्रा—२-४ चाय चम्मच भर सीरप मुख से प्रति ६ घन्टे पर।

(ङ) मासपेशी मे इन्जेक्शन के लिये १२५ एम०जी० शक्ति के एक सी० सी० और २५० एम० जी० के २

सी० सी० के एम्पुल्स । प्रत्येक ८ या १२ घन्टे पर एक एम्पुल का मासपेशी मे इन्जेक्शन। (च) आखो के लिये-एन्टेरोमाइसेटीन ओफ्थैल्मिक वायन्टमेन्ट (छ) कानो के लिये-ओटिक सोल्यूशन ।

अतिसारो, प्रवाहिका और आन्त्र आमाशय पथीय रोगाणु सक्रमणो जैसे कोलाइट्स आदि की चिकित्सा के लिये--

(ज) एन्टेरोमाइसेटीन-सल्फा-टेब्लेट और सीरप ।

(झ) एन्टेरोस्ट्रेप कैप्सुल और सस्पेन्शन--मात्रा-१ कैप्सुल या १-२ चाय चम्मच भर शर्बत मुख से प्रति ४-६ घन्टे पर ।

३. सुबामाइसीन (टेट्रासाइक्लीन)—(क) कैप्सुल (ख) ५० एम० जी० के टेब्लेट (ग) पीडियेट्रिक ड्राप्स (घ) सुबामाइसीन ओफ्थैल्मिक वायन्टमेन्ट या आखो के लिये मलहम (ङ) सुबाफोर्ट (हाइड्रोकोर्टिसन युक्त) ओफ्थैल्मिक वायन्मेन्ट या आंखो का मलहम । मात्रा और प्रयोग उपरोक्त योगो के समान ही हैं।

४. पेनाकेन मार्का प्रोकेन पेन्सिलीन--जी फोर्टिफाइड ४ लाख यूनिट का फायल ।

५ प्रो-के-माइसीन मार्का स्ट्रेप्टोपेन्सिलीन ½ ग्राम का फायल । मात्रा और प्रयोग पूर्ववत् ।

सल्फा औषधिया--(१) सल्फानिलामाइड (२) सल्फाडाइजीन (३) सल्फाडाइमीडिन (४) सल्फाथियाजोल और (५) ट्रिप्लसल्फा के ०.५ ग्राम के टेब्लेट्स । मात्रा--२ टिकिया मुख से प्रति ४-६ घन्टे पर एक ग्लास जल के साथ । अतिसारो, प्रवाहिकाओ और आन्त्र आमाशय पथीय सक्रमणो, हैजा आदि की चिकित्सा के लिये--(६) सल्फा ग्वानिडीन (७) सक्सीनिल सल्फाथियाजोल और (८) थैलील सल्फाथियाजोल टेब्लेट्स । मात्रा और प्रयोग--सल्फाग्वानिडीन ४-६ टिकिया, सक्सीनिल सल्फा थियाजोल ३-४ टिकिया और थैलील सल्फाथियाजोल १-२ टिकिया मुख से पानी के साथ प्रति ४ घन्टे पर ।

लेडरले कम्पनी—

(१) एक्रोमाइसीन--मुखमार्ग से व्यवहार करने के लिये-(क) एक्रोमाइसीन कैप्सुल्स (२५० एम०जी०के) (२) एक्रोमाइसीन-वी कैप्सुल्स (२५० एम० जी० के) (३) विटामिनो युक्त एक्रोमाइसीन एस० बी० कैप्सुल्स (२५० एम०जी०) (४) एक्रोमाइसीन टेब्लेट्स (५० एम०जी० के प्रत्येक) और बच्चो के लिये विशेष उपयोगी योग (५)एक्रोमाइसीन लीक्वीड पीडियेट्रिक ड्राप्स,जिसके प्रत्येक सी०सी० या २० बूद मे १०० मिलिग्राम औषधि रहती है। मात्रा-वयस्को को एक या दो कैप्सुल मुखमार्ग से थोडा जल, दूध या फलो के रस के साथ निगल जाना चाहिए । दूध के साथ देने से वमनेच्छा नही होती। बच्चो को एक चाय चम्मच भर या २० बूंद पीडियेट्रिक ड्राप्स मुख से प्रति ४-६ घन्टे पर । यह अत्यन्त प्रभावकारी उपयोगी ऐन्टीबायोटिक योग है जो निमोनिया, मेनीनजाइट्स, मस्तिष्क, फेफडों, गुर्दो और अन्य मूत्रपथीय रोगाणु सक्रमणो, आन्त्र आमाशय पथीय रोगाणु सक्रमणो, आख, नाक, कान, गला और चमडी के रोगो, काली खासी, टोंसिलाइट्स, फेरीन्जाइट्स, हड्डियो के आस्टीयोमाइलाइटिस, साइनुसाइट्स, बैसीलेरी प्रवाहिका, गोनोरिया,पाइलोनेफ्राइट्स और सैकड़ो दूसरी बीमारियो मे बहुत लाभदायक और कारगर योग हैं । इन अवस्थाओं मे साधारणत जादू के समान फायदा होता है ।

एक्रोमाइसीन—कान बहना और कान की दूसरी बीमारियो के लिए ।

एक्रोमाइसीन इयर सोल्यूशन—पाउडर रूप मे और साथ मे उसे घोलकर सोल्यूशन तैयार करने के लिये विलेयक और कानो मे डालने के लिये ड्रापर । कानो को साफ की हुई रुई के फाहो से साफ करके ३-४ बून्द दवा कानो मे ३-४ बार रोज डाली जाती है ।

७ एक्रोमाइसीन ओफ्थैल्मिक वायन्टमेन्ट—रोहा, पोथकी या ट्रोकोमा और आखो की दूसरा बिमारियो के चिकित्सा के लिए अत्युत्तम और प्रभावकारी योग । थोड़ा सा मलहम आखो मे ३-४ बार रोज लगाया जाता है ।

८ एक्रोमाइसीन ओफ्थैल्मिक आयल सस्पेन्सन—१-२ बूंद दवा ३-४ बार रोज आखो मे डाली जाती है ।

९ गला और मुख के रोगो की चिकित्सा के लिए चूसने के लिए एक्रोमाइसीन ट्रोश-१५ एम. जी शक्ति

के-१ ट्रोश मुख मे रखकर धीरे धीरे गलने दिया जाता है। ४ ट्रोश तक रोज व्यवहार किया जाता है।

१०. चमडी के रोगो की चिकित्सा के लिये और आग पानी आदि से जले हुए स्थान की मलहम पट्टी करने के लिये एक्रोमाइसीन वायन्टमेन्ट– पीड़ित भागो पर २-३ बार रोज लगाया जाता है।

११ दूध, पानी या फल के रस मे घोलकर मुख मार्ग से व्यवहार करने के लिए एक्रोमाइसीन स्पर्स्वायिड्स एक दो चायचम्मच भर पाउडर दूध, पानी, या फल के रस मे घोलकर मुख मार्ग से प्रति ६ घण्टे पर व्यवहार किया जाता है। जो रोगी मुख से दवा नही खा सकते हो या रोगाक्रमण बहुत प्रचड रहने पर व्यवहार करने के लिये।

१२. एक्रोमाइसीन इन्ट्रामस्कुलर यानि मासपेशी मे इन्जेक्शन देने के लिये १०० एम. जी का फायल विलेयक तरल के साथ। १ एम्पुल का नितम्ब के मासपेशी मे गहरा इन्जेक्शन प्रति ८ या १२ घटे पर।

१३. सिरा मार्ग से इन्जेक्शन देने के लिए–एक्रोमाइसीन इन्ट्राविनस १०० एम. जी और २५० एम जी. का फायल। ५ या १० सी. सी. परिश्रुत जल या विलेयक मे घोलकर इन्जेक्शन तैयार किया जाता है और १२ घण्टो के अन्तर पर सिरा मार्ग से लगाया जाता है। जैसे ही रोगाक्रमण कम हो जाय या रोगी मुख से दवा खाने लगे इन्जेक्शन बन्द करके मुखमार्ग से दवा शुरू कर देनी चाहिये।

औरियोमाइसीन—यह भी एक विस्तृत प्रभावक्षेत्रीय और बहुत ही कारगर योग है जो तरह-तरह के रोगाणु-सक्रमणो और रोगो की चिकित्सा के लिए व्यवहार किया जाता है। निम्नलिखित रोगो के लिये तो यह बडा ही उपयोगी योग है–यकृत, पित्त और पित्ताशय के रोग, कोलीसिस्टाइटिस, पेरिटोनाइटिस, सभी तरह के एमीबा संक्रमणो जिनमे आंतो, यकृत और फेफड़ो का संक्रमण भी सम्मिलित है, मूत्रपथीय रोगाणु सक्रमण, टाइफस ज्वर, मैनिन्जाइटिस, कोलाइटिस, ब्राङ्कोन्यूमोनिया, न्यूमोनिया क्रूप, गोनोरिया, घाव फोडे फुसी और दूसरे चर्म रोग, गला, कान, नाक, रोहा और आखो के रोगो, और इस तरह के सैकड़ो दूसरी बिमारियो मे। साधारण मात्रा १ ग्राम रोज है जिसे ४-६ छोटे मात्राओ मे बाट कर एक ग्लास दूध, फल का रस या पानी के साथ मुखमार्ग से लेना चाहिये। ऐसे रोगी जो मुखमार्ग से दवा नही खा सकते हो उन्हे मासपेशी मे या सिरामार्ग से देने के लिये इन्जेक्शन भी मिलता है कान, आख, और गला के रोगो के लिये विशेष योग मिलते है। इसके सभी योग और उनका मात्रा तथा प्रयोग एक्रोमाइसीन के बिलकुल समान ही है। (१) औरियोमाइसीन कैप्सुल (२५० एम जी. के) (२) औरियोमाइसीन एस वी. कैप्सुल (विटामिनो युक्त २५० एम. जी. के [illegible]सुल) (३) औरियोमाइसीन टेब्लेट्स ५० मिलिग्राम (४) औरियोमाइसीन स्पर्स्वायिड या पाउडर (मुखमार्ग से व्यवहार के लिए) (५) औरियोमाइसीन ट्रोश मुख और गले के रोगो के लिए (६) औरियोमाइसीन औफ्थैलमिक वायन्टमेन्ट और आईड्राप्स आखो के रोगो के लिये (७) औरियोमाइसीन वायन्टमेन्ट ३ प्रतिशत चर्मरोगो के लिए।

(३) लेडरमाइसीन—यह भी एक विस्तृत प्रभावक्षेत्रीय ऐन्टीबायोटिक है। मात्रा और प्रयोग एक्रोमाइसीन के समान ही है।

(४) सल्फाडाइजीन टेब्लेट्स (एक सल्फा योग)-मात्रा—२ टिकिया मुख से एक ग्लास जल के साथ प्रति ४ घटे पर ४-६ दिन तक।

लीली कम्पनी—

इलीयोटाइसीन मार्का १०० एम जी. शक्ति के एरीथ्रोमाइसीन के टेबलेट और बच्चो के लिए तरल रूप मे ड्राप्स। मात्रा—१ टिकिया मुख से प्रति ६ घटे पर।

स्क्वीब्ब कम्पनी—

(१) माइस्टेक्लीन कैप्सुल्स (२) माइस्टेक्लीन-वी कैप्सुल्स (३) स्टेक्लीन कैप्सुल्स। ये तीनो कैप्सुल २५० मिलिग्राम के होते हैं और १-२ कैप्सुल्स मुख मार्ग से प्रति ६ घण्टे पर व्यवहार किये जाते है। (४) मासपेशी मे इन्जेक्शन के लिये १०० एम जी शक्ति का स्टेक्लीन इन्ट्रामस्कुलर (इन्जेक्शन)। (५) सिरामार्ग से इन्जेक्शन के लिए १०० एम जी शक्ति का स्टेक्लीन इन्ट्राविनस।

—शेषाश पृष्ठ ४७ पर।

तान्तविक रोग

श्री वैद्य ताराचन्द शर्मा भिषग्वरायुर्वेदाचार्य

इस तान्तविक रोग को नहारूवा, नहारूआ, स्नायुक, नारू, बाला आदि नाम से पुकारते हैं। तान्तविक रोग प्राय उष्ण प्रदेशो मे ही होता है जैसे अफ्रीका, ईरान, तुर्किस्तान, अरब, दक्षिणी अमेरिका एव भारत के दक्षिण प्रान्त जैसे काठियावाड, गुजरात, मध्यप्रदेश एव राजस्थान। यह राजस्थान मे विशेषतया होता है।

स्नायुक कृमि के उपसर्ग से होने वाला एक रोग है। जिसमे प्रथम एक स्फोट उत्पन्न होता है। साथ ही साथ शीतपित्त, वमन, स्थानिक विकार, सन्धि पीडा आदि लक्षण होते है। ऐसा योगरत्नाकर का उल्लेख है।

इस रोग का मुख्य कारण स्नायुक या Guinea worm नामक कृमि होता है। यह कृमि ३० से १२० सैन्टीमीटर लम्बा होता है। नर कृमि कुछ कम लम्बे होते हैं और पानी मे रह-रह कर तैरते रहते है।

जल के साथ सम्बन्ध होने पर अण्डे उसमे चले जाते हैं जो जल पिस्सू Water flea से ग्रहण किये जाते हैं। एक Water flea के शरीर में १५-२० अण्डे मिलते हैं। जिस जल मे यह पिस्सू होगे उसके सेवन से यह अण्डे आमाशय मे पहुँच कर उदावरण कला के पीछे वर्द्धित होते हैं। वहा पुरुष कृमि मादा के साथ ससर्ग करके गर्भ धारण होने पर स्वयं नष्ट हो जाते है और मादा कृमि का शरीर बढता है। यह कृमि उस दिशा मे लगातार एक साल तक बढता जाता है। जिधर पानी का अधिक ससर्ग होता है उधर ही यह फलीभूत होता रहता है।

इस कृमि से शरीर मे जो विविध लक्षण उत्पन्न होते हैं उनके निम्न मुख्य ४ कारण है—

१. कृमि का विष,
२ अण्डो का उत्सर्ग,
३. पूयजनक जीवाणुओ का उत्सर्ग,
४ कृमि की उपस्थिति।

जब कृमि त्वचा के पास न आकर मध्य मे ही मर जाता है तब उसके चारो ओर तान्तव धातु और खटिकाभरण हो जाता है। स्थान विशेष से अलग अलग लक्षण उत्पन्न होते हैं जैसे कृमि को निकालते समय मध्य मे ही टूट जावे तब उसके व्रण मे स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलो कोकस इत्यादि पूयोत्पादक जीवाणुओ का उपसर्ग हो जाता है और विविध प्रकार की विद्रधि उत्पन्न कर देता है। यह ध्यान मे रखना चाहिए कि तन्तु के मध्य मे रहने वाला विष अधिक प्रसरणशील होता है। माधव निदान मे इसकी सम्प्राप्ति, निदानादि निम्न लिखित हैं—

> अतिवर्षादिभिः प्रायो दुष्टं हि वारि सेवनात्।
> शाखासु कुपितो दोषः शोफं कृत्वा विसर्पवत्॥
> भिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्मस्नायुं विशोष्य च।
> श्वेतं तन्तुनिभं कुर्याज्जीवं हि वर्तुलं बहिः॥
> स्वैरं स्वैरं निस्सरति क्षतात्, छेदाच्च कुप्यति।
> तस्मिन्निस्सरिते शान्तिर्भवेत् स्थानान्तरे पुन.॥
> भवेच्च स्नायुके रोगे, त्रुटिते चाथ कथ्यते।
> बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जङ्घयोरपि॥
> सङ्कोचं खञ्जताञ्चैव छिन्नश्चाथ करोत्यसौ।

इसी प्रकार का वर्णन भावप्रकाश एव योगरत्नाकर मे भी मिलता है।

भेद—

स्नायुक रोग आठ प्रकार का होता है। जैसा कि—

> श्यावो रूक्षो रुजायुक्तो भवति वायुना स वै।
> सदाहो नीलिमायुक्तः पीतश्च वायुना भवेत्॥
> पृथुः श्वेतो गरीयांश्च श्लेष्मणा स्नायुको मत.।
> रक्तकान्तिश्च रक्तेन बहुदाहयुतश्च सः॥
> द्वन्द्वेन द्वन्द्वलिंगः स्यान्निचयेन त्रिलिंगकः।
> रोगोऽयमष्टधा प्रोक्तो मुनिभिस्नायुसंज्ञक.॥
> बहूपद्रवसंयुक्तः प्राणहा हि भवेदयम्॥

रोग का सचय काल करीब एक वर्ष तक होता है। जब इस रोग का प्रकोप होता है तब जी मिचलाना, शीतपित्त, वमन, प्रवाहिका, चक्कर आना, ज्वर आदि लक्षण होते है। जहा कृमि निकलेगा उस स्थान पर एक जले

हुये के समान स्फोटक उत्पन्न हो जाता है। इस स्फोटक मे द्रव रूप मे कृमि के कीटाणु भरे रहते है। यह तान्तविक रोग ९० प्रतिशत व्यक्तियो के टकने के पास निकलता है और १० प्रतिशत व्यक्तियो के अन्य स्थानो मे निकलता है।

साध्यासाध्यता--

रोग स्वयं साध्य है परन्तु रोगी इसे जल्दी निकालने के लिये खीचे या दवावे तो यह रोग विशेष कष्टदायक होकर प्राण हरण कर लेता है। जव इसका कृमि अन्दर मरकर व्यवस्थित रहता है तो उस रोगी का वह अ ग शून्य हो जाता है अर्थात् अ ग विहीन हो जाता है।

चिकित्सा

भावमिश्र ने इसकी निम्नलिखित चिकित्सा बताई है।

(१) स्नेह स्वेद प्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम्।
रामठं शीततोयेन पीतं स्नायुक रोगनुत॥

(२) स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः काञ्जिक साधितः।
तद्वद् वव्वूलजं वीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात्॥

(३) मूलं सुषव्या हिम वारिपिष्ट,
पानादिदं तन्तु करोमुग्रम्।
शांतिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां,
गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीत्वा॥

(४) अतिविषमुस्तकभारंगी
विश्वौषध पिप्पली विभीतक्य'।
चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम्॥

इसकी साधारण चिकित्सा जल को छान कर पीना ही है। इस प्रकार के जल को पीने मे रोग न होने की सभावना रहती है। कारण कि जल को छानने से वह कीटाणुओ रहित हो जाता है। जल को छान कर पीने का आदेश हमारे धर्म ग्रन्थो में मिलता है।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत्।
सत्य पूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥
—मनुस्मृति

कुछ अन्य-प्रयोग कार्य मे लिये जाते हैं वे निम्न है तथा उनसे स्नायुक रोग मे विशेष लाभ होता है—

१. तीन दिन तक गोघृत को पिलाकर इतने ही दिन तक निर्गुण्डी का स्व रस पिलाने से तान्तविक रोग नष्ट होता है।

२ सहजने की जड और पत्तो को काजी के साथ पीसकर सैंधा नमक मिलाकर प्रलेप करने से तान्तविक रोग मिटता है।

३ कई सिद्ध हस्त चिकित्सक Antimani tarter या Niosalverson का सूचीवेध देकर इस रोग को नष्ट करते है।

४. एक माशा सीप भस्म, चार रत्ती शंख भस्म दही के साथ सुबह साय खाने से नारू रोग मिटता है।-

५ वे बुझा चूना १ छटाक, तैल १ छटाक, हरिद्रा २॥ तोला मिला गर्म करके नारू पर बाधने से स्नायुक रोग मिटता है।

६ साबुन १ छटाक, वे बुझा चूना आधा पाव, अलसी १॥ सेर, सिन्दूर २॥ तोला, तैल सरसो का १ पाव, नीलाथोथा १॥ तोला, गधक २॥ तोला मिला गर्म करके मलहम तैयार कर नहारू पर बाधने से १० रोज में अवश्य ही नहारू रोग मिटता है। आयुर्वेद पद्धति के अनुसार इसका उपचार सम्यक प्रकार से होता है। अन्य पद्धति मे शस्त्र क्रिया द्वारा इसको साध्य माना है।

श्री वैद्य ताराचन्द शर्मा भिषग्वरायुर्वेदाचार्य आई एस सी
सजीवन फार्मेसी, सीकर (राज०)

इन्द्रलुप्त अथवा गंज [Boldness]

श्री वैद्य गुरुचरणदास वैष्णव आयुर्वेद साहित्य विशारद

रोगवर्णन तथा निदान—

यह एक चर्म रोग है और विशेषकर खोपडी के मध्य भाग के आसपास मे होता है। इसमे सिर के बाल झरने लगते है। अगर किसी गजे रोगी की टोपी पहन ली जावे या उसे स्वच्छ न करो तो यह रोग लग जाने का भय रहता है। जिसके सिर पर बाल नही होते वे भाग्यशाली होते हैं किन्तु वास्तव मे यह एक चर्मरोग है। अधिकाश तीस वर्ष की आयु के पश्चात् खोपडी के बाल गिरने लगते हैं।

मेदवृद्धि अथवा विटामिन (खाद्याशो) की कमी के कारण रोग होता है आज के युग मे भारतीय जनता को विशुद्ध खाद्य सामग्री प्राप्त नही होती। देश गरीब होने के कारण आवश्यकतानुसार उन्हे समय पर भोज्य पदार्थ प्राप्त नही होते। अगर किसी को प्राप्त होते हैं तो वे आवश्यकता के विरुद्ध आहार विहार तथा चिकने पदार्थों का अधिक रसास्वादन करते है।

शरीर के रोमो की जड मे रहने वाला खून पित्त के साथ कुपित होकर रोमो को गिरा देता है, इसके बाद खून के साथ कफ रोम-कूपो को रोक देता है इससे फिर बाल पैदा नही होते। इसे 'इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या' कहते हैं। बोल चाल की भाषा मे "गज या टाक" कहते हैं। यह रोग पुरुष जाति के होता है।

स्त्रियों को गंज रोग क्यो नहीं होता ?

यह रोग स्त्री जाति को नही होता, क्योकि उनका रक्त रजोधर्म होने से प्रति मास विशुद्ध होता रहता है। इसीसे उनके रोम कूपो या बालो के छेद नही रुकते।

"तिब्बे अकबरी" मे बालो के उडने के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है जिसका मूल भावार्थ इस प्रकार है—

गज मे सिर के बाल उड़ जाते हैं और कनपटियो के रह जाते हे। अगर यह स्थिति ४० वर्ष के बाद वृद्धावस्था तक हो तो इसकी चिकित्सा ही नही है। अगर युवावस्था मे हो तो औषधि करने पर इस रोग से छुटकारा मिल सकता है। अगर सिर पर अधिक बोझा उठाने से बाल उडते हो तो बोझा उठाना बन्द करना जरूरी है। अगर वाचाल अधिक हो तो मितभाषी होना आवश्यक है।

"शेख बूअली सेना" ने अपनी पुस्तक "शिफा" मे लिखा है कि स्त्रियो के सिर के बाल नही उडते क्योकि उनमे तरी अधिक होती है और नपुसको के नही उडते क्योकि उनकी प्रकृति मे कुछ नपुंसकता होती है।

चिकित्सा—

हस्तिदन्तमसीतार्यासिन्द्रलुप्ते प्रलेपनम् ।
प्राज्येन पयसा कुर्यात्सर्वथा तद्विनश्यति ॥

(१) हाथी दात की भस्म और रसौत दोनों को बराबर लेकर घी दूध मे मिलाओ। जिसके सिर के बाल गिर जाते हो, उसके सिर मे इसका लेप करो। इस उपाय के करने से गञ्ज रोग का नाश हो जायगा और सिर के बाल फिर कभी न गिरेंगे।

(२) चमेली के पत्ते, कनेर, चीता और करज-इनको समान लेकर पानी के साथ पीस लो, फिर लुगदी के वजन से चौगुना मीठा तैल लो। और तैल का चौगुना जल या बकरी का दूध लो। सबका मिश्रण करके पकाओ तैल मात्र रहने पर उतार लो। इस तैल को सिर पर मलने से गज रोग का नाश होकर बालो का गिरना निश्चय ही बन्द हो जाता है।

(३) गोखरू और तिल के फूलो मे उनके बराबर घी और शहद मिलाकर सिर पर लगाने से सिर बालो से भर उठता है।

(४) भागरा पीसकर मलने से गज तथा बाल खोरा रोग नष्ट हो जाता है।

(५) कुन्दश और हाथी दांत का बुरादा, मुर्गा की चरबी मे मिश्रण कर लगाने से निश्चय ही वाल उग आते हैं ।

(६) अंग्रेजी मैडिशन—कारवोलाइज आइल लगाकर छिलके पृथक करदे या निशास्ता की पुल्टिस बाध कर छिलको को नर्म करके हटा दे । बालो को साफ करके नीचे लिखा मलहम लगावे ।

आयोडीन,	पोटासआयोडाइड	१५-१५ ग्रेन
क्रियोजोट १ ड्राम	लार्ड	८ औंस
सल्फा प्रीसीपिटेड		२ औंस

इसके अतिरिक्त फार्मलीन आईन्टमेट भी इसके लिए लाभदायक है।

(७) हेपाफोलिन, लीवर विद विटामिन बी कम्पलैक्स, मेक्राबीन वेनापेन, वीकाडेक्स के इन्जेक्शन आवश्यकतानुसार इन्ट्रामस्कूलर लगाने से यह रोग चला जाता है और नये बाल उगने लगते है।

(८) देशी इजेक्शन—लहसुन सत्व का इजेक्शन मासान्तर्गत लगाना चाहिये ।

(९) आयुर्वेदिक चमत्कारी तैल—श्याम केश तैल, ब्राह्मी तैल, भृङ्गराज तैल, तथा चन्दनादि तेल का सिर मे प्रयोग करने से गजापन नष्ट होकर नये बाल आकर श्याम हो जाते हैं।

--वैद्य श्री गुरुचरण दास वैष्णव
आयुर्वेद, साहित्य विशारद L M. S
पीसागन (राजस्थान)

[पृष्ठ ४३ का शेषाश]

इनका इन्जेक्शन ८-१२ घटे के अन्तर पर लगाया जाता जाता है। (६) बच्चो को मुखमार्ग मे देने के लिये स्टेक्लीन पीडियेट्रिक ड्राप्स, और बडो के लिए (८) स्टेक्लीन ओरल सस्पेन्सन (तरल रूप मे) (९) आखो के लिए स्टेक्लीन वायन्टमेन्ट ओपथेलिमक । इन सभी योगो का स्वरूप, मात्रा, प्रयोग आदि एक्रोमाइसीन के समान ही है।

कार्लोएवा कम्पनी—

टायफायड ज्वर और दूसरी बहुत सी बिमारियो की चिकित्सा के लिए केमाइसेटीन मार्का क्लोरमफेनीकोल के योग—(१) २५० एम जी. शक्ति के टेव्लेट्स मुख मार्ग से व्यवहार करने के लिये । १ टिकिया मुख से प्रति ६ घटे पर। (२) केमासेटीन सीरप मुखमार्ग से प्रयोग के लिए। (३) चर्मरोग के लिए केमाइसेटीन स्किन वायन्टमेन्ट २ प्रतिशत (४) कान के रोगों के लिए १ प्रतिशत ओटोलोजिकल सोल्युशन—कान को साफ करके ३-४ बू द दवा २-३ बार रोज डाला जाता है (५) नाक के रोगो के लिए-केमाइसेटीन नेजल कम्पाउन्ड वायन्टमेन्ट या मलहम। (६) आखो के रोगो के लिये केमाइसेटिन १ प्रतिशत ओपथैल्मिक वायन्टमेन्ट (७) ल्यूकोरिया, प्रदर और योनिपथ के दूसरे रोगो के लिए केमाइसेटीन वेजाइनल सपोजिटरी। एक सपोजीटरी या वर्त्ती रात को सोते समय योनिपथ मे डाल दिया जाता है। और दूसरे रोज सुवह मे डूश देकर योनिपथ की सफाई कर दी जाती है । (८) ट्राइसलफान मार्का तीन सल्फा औषधियो युक्त टेव्लेट्स और सीरपमात्रा २ टिकिया मुख से प्रति ४-६ घण्टे पर ।

—श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह M B B S
वगला न० एक्स ४०, पो० सिन्दरी (धनवाद)

राजयक्ष्मा पर वैदिक दृष्टिकोण

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

आज के वैज्ञानिक युग मे मनुष्य वर्तमान ज्ञान-विज्ञान का आश्रय लेकर आगे बढता ही जारहा है, किंतु उसको इस बात की कभी कभी कटु अन्त अनुभूति होती है जब वह किसी कारणवश आशातीत असफलता पाता है, उस समय वह असफलता के कारणो का अन्वेषण करने लगता है। अन्वेषण का अर्थ होता है पीछे को देखना। आगे बढना न तो अपराध है न निन्दनीय कृत्य ही कहा जा सकता है। आगे बढने के पूर्व हम इस बात की ओर अवश्य ध्यान दे कि कही बीच मे ही हमारी अभीष्ट प्रगति रुक न जाय अथवा उसका उपहास न होने लगे या हमको ही उसका प्रतिवाद न करना पडे। यह स्थिति तभी आ सकती है जब हम अपने प्राचीन साहित्य तथा तत्सम्बन्धित सभ्यता का अन्वेषण करते हुए आगे बढे।

आज हमे चिकित्सा जगत् के लिए भी यही रोना है। आज के विज्ञान ने रोग प्रतिरोधिनी शक्ति से ओत-प्रोत अनेक औषधियो का सफल एव आश्चर्यजनक उत्पादन हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है इसके लिये हम उन मनीषियो के आभारी है किन्तु चिकित्सा का जो मूल सिद्धात था—

"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं आतुरस्य व्याधेः परिमोक्षणम्"

अर्थात् स्वस्थ के स्वास्थ्य की सुरक्षा तथा रोगी को रोग से सम्यक्तया छुटकारा दिलाना। तथा दूसरा सिद्धात-वही चिकित्सा सफल कही जाती हैं जो तत्काल रोग को दूर करने के बाद दूसरे रोग को उत्पन्न न करदे।

आज की वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति मे उक्त सिद्धात के ठीक विपरीत लक्षण दृष्टिगोचर होरहे हे जिनसे रोगी एव चिकित्सक भली भाति परिचित है। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही तब तो हमारे सामने एक दिन वह आयेगा कि जितने प्राणी रहेगे उतने डाक्टरो की आवश्यकता हो जायगी और सभी प्राणी अपने को रोगी की स्थिति मे देखेंगे। जहा तक शल्य चिकित्सा का प्रश्न है वह उपादेय एव स्तुत्य है किन्तु शल्य चिकित्सा की आड मे काय चिकित्सा के द्वारा जो शिकार मारा जारहा साथ ही उसके द्वारा इस स्वतन्त्र देश की विचारधाराओं को वैदेशिक वेश भूषा और रग रूप मे परिवर्तित कर जो बहकाया जा रहा है यह देश के लिये नितान्त घातक है। हमारे राष्ट्र उन्नायको को चाहिये कि वे सहानुभूति-पूर्वक इस पर ध्यान देकर देश की कल्याणकारिणी अभिनव चिकित्सा पद्धति को अविलम्ब प्रश्रय प्रदान करें।

हमारे प्राच्य चिकित्सा ग्रन्थों के रचयिता महर्षियो ने सर्व प्रथम रोग को पहचानने का आदेश दिया है साथ ही पहचानने के प्रकार भी बतलाये है। वे भी यह लिख सकते थे कि—खासी हो तो लवंगादि वटी, ज्वर हो तो मृत्युञ्जयरस, वमन हो रहे हो तो प्याज पोदीना का रस और दस्त आरहे हो तो रामबाण रस देना चाहिए रोगी ठीक हो जायगा, किन्तु उन्होने यह नही लिखा। इसके दो प्रधान कारण थे। प्रथम तो यह कि वे विश्व-जनीन हित के इच्छुक थे। उनका उद्देश्य 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' था। दूसरा कारण यह कि उनके पास आजके नित नूतन एव क्षणभगुर चिकित्सा सिद्धान्तो को स्थापित करने वाले मनीषियो के समान केवल ज्ञानबल ही न था अपितु वे तपोबल सम्पन्न भी थे जिसकी सहायता से उन्होने औषधियो के विभिन्न गुण धर्मो से होने वाले हानि लाभ का भलीभाति अपने मस्तिष्क रूपी प्रयोगशाला मे परीक्षण किया था। इस प्रकार के तपोबल एव ज्ञानबल से सम्पादित चिकित्सा-ग्रन्थो मे परम्परागत (सहज) रोगो के अतिरिक्त किसी रोग को असाध्य नही कहा है। यदि कोई रोग असाध्य हो जाता है तो उसमे असावधानी ही एकमात्र कारण होती है।

चिकित्सा गन्थो में साधारणतया निदान पञ्चक के पश्चात् उपचार का निर्देश मिलता है किन्तु कभी-कभी विशेष परिस्थिति मे व्रत, उपवास, जप, दान, यज्ञादि का भी उक्त ग्रन्थो मे आचार्यों ने आदेश दिया है। चरक-संहिता मे महर्षि आत्रेय ने राजयक्ष्मा के निदान एव चिकित्सा के सम्बन्ध मे कम नही लिखा है फिर भी जब

उनको सन्तोष नही हुआ। अथवा यो कहिये वैदिक यज्ञादि विधान की स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रधानता प्रकट करते हुए अन्त मे लिखते हैं—

प्रयुक्तया यथा चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुराजित ।
तां वेद विहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥

—च० चि० अ० ८

जिस यज्ञ के द्वारा प्राचीन काल मे राजयक्ष्मा नष्ट किया जाता था आरोग्य को चाहने वाला मनुष्य उसी वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करे। अब यहा पर राजयक्ष्मानाशक वैदिक मन्त्रो को उद्धृत किया जा रहा है—

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुग्गुलो: सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥

—अथर्व वेद

जिस मनुष्य को गुग्गुलु औषधि की सुगन्धित धूमगन्ध मिलती रहती है वह राजयक्ष्मा रोग तथा अभिशाप आदि से सर्वदा मुक्त रहता है। दूसरा उदाहरण पढिये—

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय—
कमज्ञात यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ॥ —अथर्व वेद

ऐ रोगी ! तुमको सुख के साथ दीर्घ जीवन की प्राप्ति हो। अत तुम्हे गुप्त तथा प्रकट राजयक्ष्मा रोग से छुड़ाता हूं। इसको भी पढ़िये—

वचाभि पयसिक्ताभिः क्षय हुत्वा विनाशयेत् ।
मधुत्रितय होमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥

बालवच को दूध मे भिगोकर हवन करने से क्षय रोग दूर हो जाता है। दूध, दही, घी इन तीनो का होम करने से भी राजयक्ष्मा का विनाश हो जाता है। उक्त सम्बन्ध में कुछ विद्वानो का मत—जलती हुई खाड के धुए मे वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति है। इससे हैजा, तपेदिक, चेचक इत्यादि रोगो का विष शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।" —प्रो० टिलवर्ट

"मैं प्रथम २५ वर्ष तक खोज और परीक्षण के पश्चात् २६ वर्ष से क्षयरोग की यज्ञ द्वारा चिकित्सा कर चुका हू। उनमे ऐसे भी रोगी थे जिनके क्षत कई-कई इन्च लम्बे थे और वर्षो से सेनिटोरियम मे और पहाड पर रहने पर भी अन्त को जिन्हे डाक्टरो ने असाध्य बता दिया, पर वे यज्ञ-चिकित्सा से पूर्ण आरोग्य लाभ कर अपने कारबार मे लगे है।"

—प्रो० कुन्दनलाल अग्निहोत्री

इस प्रकार वैदिक मन्त्रो के द्वारा किये गये यज्ञो के माध्यम से विविध प्रकार के रोग निवारण का वर्णन हमारे शास्त्र रचयिताओ का आत्म प्रशसन मात्र ही नही था अपितु उन वर्णनो के पीछे अनेक वैदिक सूक्ष्म तत्व छिपे हुए है। वैदिक काल मे रोग फैलने के समय मे अनेक यज्ञानुष्ठानो का आयोजन जनता अथवा पुरोहित वर्गो के द्वारा किया गया एव कराया जाता था जिससे चराचर का लाभ होता था। ऐसे यज्ञो को वेद मे भैषज्य यज्ञ कहा है। इनके लिये मुख्य काल निर्धारित थे। ये यज्ञ ऋतुसन्धियो में किये जाते थे क्योकि ऋतुसन्धियो मे ही रोग फैला करते हैं।

अथर्व वेद मे आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनो दृष्टिकोणो से. प्राय सभी रोगो की चिकित्सा लिखी गयी है। यहा पर हमने अन्य साधारण रोगो का वर्णन प्रसङ्ग विरुद्ध समझकर नही किया। केवल इस महान् आतककारी राजयक्ष्मा रोग पर ही कुछ वैदिक ऋचाओ के विलक्षण प्रभाव का वर्णन किया है। वास्तव मे गुग्गुल का धूम्र यक्ष्मा रोगियो को अत्यधिक लाभप्रद है जिसका मैंने भी अनेक बार रोगियो पर अनुभव करके देखा है।

अन्त मे क्षय चिकित्सा मे सफलता पाने वाले अनुसधानकर्ताओ से मेरा निवेदन है कि वे इस पुण्य कार्य के लिये अपने पुण्यात्मा पूर्वजो के विचारो का भी अन्वेषण करें।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
सी० के ७/६६ सिद्धेश्वरी, वाराणसी

मेरे चिकित्साऽनुभव

१ एक रोगिणी के गले मे पानी नही आता था। मुख से लार टपक रही थी श्वास-निश्वास रोध हो रहा था। उपजिह्वा मे कोई विकार था या उपजिह्वा के आस-पास के दोनो छिद्र बन्द हो रहे थे सम्भवत कण्ठ शोथ था। धतूरे के बीज ६ माशे, हल्दी ६ माशे, नमक १ माशे तीनो को पीस पानी मे गर्म कर कण्ठ पर प्रलेप किया गया। २-३ बार लेप से रोगिणी मृत्यु के मुख से बच गई।

२ दो रोगियो के उपजिह्वा के आस-पास मुख के भीतर लाली और सूजन थी न० १ की सी दशा थी बहुत घबराहट थी। भीतर मुख मे और कण्ठ पर कस्तूरी युक्त दशमूलारिष्ट का प्रलेप किया गया। खूब सेक कराने का आदेश दिया गया। रोगी ठीक हो गया यद्यपि दवा पर विश्वास नही होता था।

३ केवल अग्नितुण्डी वटी और कनकासव, सहयोग के रूप मे अर्जुनारिष्ट और द्राक्षासव से अनेक श्वास रोगी ठीक हो गए। सोमा हिरण्य (मार्तण्ड) और दमोना (भासी) सूची का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया।

४ अनेक सर्वदन्तशूल रोगियो को अग्नितुण्डी वटी का क्वाथ या दशमूलारिष्ट या वटी+अरिष्ट का मुखभरण या कवल धारण कराया गया। २ मिनट मे रोगी स्वस्थ हो गए।

५ एक ही ओर की हाथ और पैर की पीडा मे गृध्रसी मे वातीन या वातारि का सूचीभेद दिया गया। दशमूलारिष्ट कस्तूरीयुक्त और अग्नितुण्डी खाने को दी गई। लाभ हुआ। अग्नितुण्डी वातपित्त या पित्त विकृति, मौक्तिक ज्वर, रक्तपित्त मे न दें और सभी जगह लाभ दिखाती है। शूल में भी, स्वप्नदोष मे भी।

६ मौक्तिक ज्वर के अनेक रोगियो को मौसम्मी, सन्तरा, अनार का रस दिया जाता था। प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, संजीवनी वटी १ रत्ती, २ तुलसी के दल ३ माशे मधु मे ३-४ बार दिए जाते थे। यदि अतिसार हुआ तो आनन्द भैरव या आनन्द भैरवी वटी दी गई ज्वर १०१°–१०४°, १०१°–१०३° रहता था २२ वें–२८ वें दिन पथ्य दिया।

७ ५ वर्ष के शिशु के कण्ठ में कफ भरा था ज्वर था पसलियो के नीचे श्वास लेने पर गढे पड़ते थे [डब्बा रोग] संजीवनी वटी ½ रत्ती, जवाखार १ रत्ती, मधु २ माशे। ऐसी ४-५ मात्राएं दी गईं, रोगी ठीक हो गए। ६६३ और जवाखार भी दिया गया।

८. एक शिशु के ज्वर था उदर मे मल संचय भी। अतिसार होते थे। लक्ष्मीनारायण रस दिया गया। शिशु का ज्वर दूर हो गया। किन्तु शिशु प्रसन्न नहीं दिखाई पडा। चिकित्सा शीघ्र बन्दकर दी गई थी। ज्वर फिर आने लगा। अन्यत्र चिकित्सा मे अधिक व्यय हुआ लाभ नही हुआ। फिर कुमारी आसव न० ३ और अग्नितुण्डीवटी १ चावल दिया गया। ३ दिनो मे सर्व उदर विकार एव ज्वर का शमन हो गया। ऐसे ही रोगियो को ज्वर केशरी वटी (र त सा) या अश्वकचुकी का प्रयोग भी ठीक बैठता है। उदर विकार के साथ ज्वर दूर होता है।

९. १०-१२ वर्ष से आधाशीशी, अर्द्धविभेदक या अधिमंथ था। अफीम १ रत्ती, पठानीलोध्र २ माशे, फिटकरी का फूला १ माशे पानी मे पीस कर गर्म लेप आख के पलक और भौ पर किया गया। प्रथम लेप मे लाभ हो गया। आख में फूला आ गया था नयन चन्द्रलोह और महात्रिफलादि घृत दिलाया गया। समद्रफेन और लवग पत्थर पर गोमूत्र मे पीस कर लगाया गया। इन्ही रोगियो को सहजना स्वरस मधु मे मिलाया गया जो रोगी ६० वर्ष के थे उनको भी आशातीत लाभ हुआ।

१० अनेक शिशुओ को और वडो को अजीर्ण, अतिसार, वदहजमी, शूल मे एरण्ड तैल मे जायफल या घी मे मे जायफल घिस कर उष्णकर नाभि के आस-पास

लगाया गया। कभी कभी टट्टी और वमन भी हो गया, रोगा ठीक हुए।

११. शिशु का मूत्ररोध—१ चावल सिद्ध मकरध्वज १ माशे मधु से चटाने से खुल गया। एक बकरे ने २४ घण्टो से मूत्र त्याग नही किया था बीमार था इन्द्रिय मे कपूर रखने से ठीक होगया। कपूरादि का प्रयोग बडो मे भी किया गया तथा सफलता मिली।

१२ मूत्ररोध होने से (शायद सुजाक से) दक्षतर ने शलाका प्रयोग किया, बहुत सा खून गिरा। मूत्रमार्ग मे सूजन होगई, पीव जाने लगा। रोगी आतुरालय से चला आया। घर पर पलाश (ढाक) के छोटे पेड की मूल की छाल ६ माशे पीस रस निकाल मिश्री मिलाकर दिया गया। सब ठीक होगया।

१३ गोघृत चोटी के पास और पैरो के तलबो पर मलने से महात्रिफलादिघृत खाने से बहुतो के चश्मे उतर गये। अष्टामृतलोह और आरोग्यवर्द्धिनी भी खिलाई गई। भोजन उत्तम दिया गया। ब्रह्मचर्य से रहना आवश्यक था।

१५. प्रतिश्याय ज्वर—एनासिन की १-१ टिकिया उष्ण जल से रोग के दिन मे ३-४ टिकिया। ज्यादा टिकिया सेवन से शिरोशूल हो जाता है। पीपल चूर्ण उष्ण जल से दिया गया, चाय मे निम्बू का रस पिलाया।

१६ अम्लपित्त— १ पीली हरड, वच चूर्ण, २ मुनक्के पानी से दिये गये। नासाकृमि मे १ तोला तारपीन के तैल मे २ रत्ती कपूर डाल रखा गया। ४-४ बूद नासा छिद्रो दिया गया। कृमि गिर गये। वन-तुलसी की पत्तो के साथ कपूर पीस नासा छिद्रो मे टिकिया अडादी गई। कपडे से बाधा गया। दुर्गन्धि से मूर्छित मृत हो कृमि टिकिया पर आने लगे। उन्हे निकाला गया। रोगी ठीक हो गया।

१७. उकौत—कडैल के लाल फूल सरसौ के तैल मे जला लगाया गया। रोगी ठीक हो गया। कभी कभी सिवाजोल भी मिलाया गया।

१८. कई नारियो के बाह मे दर्द था। जूरे नही बाध सकती थी। प्याज, लहसुन, सेंधानमक, सोठ, पत्रछाल चूर्ण सरसो के तैल मे डाल एक छोडी हाडी मे ७-८ दिनो तक घाम मे रखा गया। बाद मे ६-६ माशे खाने के साथ दिया गया। सब ठीक हो गया। कुछ के महानारायण तैल की मालिश भी करायी।

—श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
ग्राम—तेजापुरवा पो० मियागज (फर्रुखाबाद)

क्रिया कालं न हापयेत

एक रुग्ण जिसकी चिकित्सा करते समय पूर्ण सफलता बडे ही अजीब ढग मे सुलभ हुई है, कहना न होगा कि एक चिकित्सक की युक्ति के सामने बीमारी की भयकर से भयकर अवस्था बडे ही आसान ढग से सुलझकर चली जाती हे। इसका प्रत्यक्ष व ताजा उदाहरण आप लोगो की सेवा मे प्रस्तुत कर रहा हू।

एक पडित जी जिनका नाम "इनकी इच्छा न होने के कारण" नही दे रहा हू। इतना जरूर लिखना है कि आप एक ज्योतिप विज्ञ तथा वगैर डिप्लोमाधारी चिकित्सक भी हैं। अभी हाल मे धनोपार्जन के लिये बाहर गाव गये व करीब हैदराबार तक आपकी यात्रा हुई, एकाएक आप मिथ्याहार विहार के सेवन से भयकर आमाजीर्ण से ग्रसित हो गये व जोरो से आमातिसार हो गया, एलोपैथिक इन्जेक्शनो व टेबलेट्सो की कमी नही रखी गयी। हताश होकर आयुर्वेदीय शमन चिकित्सा (चूर्णादि से लघनादि से भी) करवायी पर विशेष सफलता सुलभ नही हुयी। बाद में आप घर पर वापस आये, व करीब पाच दिन तक और उपर्युक्त क्रम से चिकित्सा करते व कराते रहे। आपने दि० १०-८-६३ को मुझे बुलवाया। उस समय आपकी निम्न अवस्था थी—

खटिया पर बेशुध पडे थे, मस्तक मे भयकर दर्द, टेम्परेचर १०२ फानिहाईट था, घबराहट, नाभि के नीचे रुजा, बार बार प्रवाहण करने पर दस्त उतरना, भूख-प्याश व नीद का नामोनिशान नही, पेट भारी मालूम पडना, अरुचि, मुख मे मधुरता-इत्यादि। पडित जी एक तरुण व स्वादुप्रिय व्यक्ति हैं इनकी सब उपर्युक्त बातो को प्रत्यक्ष-अनुमान व आप्तोपदेश से जानकर मैंने अजीर्णाशन व विषमाशन से उत्पन्न आमातिसार की खासकर उत्पत्ति समझकर केवल प्यास लगने पर अर्धावशेष उष्णोदक पानी की आज्ञा दी। बढे हुये टेम्परेचर, भयकर शिर व उदर-

शूलादि का भी ध्यान न देते हुये दूसरे दिन प्रात काल चार बजे निम्न औषधि गरम पानी से लेने को दी—

वरा चूर्ण ६ माशा।

सामुद्र लवण ६ गुज ऐसी कुल एक मात्रा दी। करीब ४ घटे के बाद २ दस्त हुए, पहिले दस्त मे पतला सफेद आमयुक्त दोष अल्प मात्रा मे निकला। दूसरी वार मे वडी भारी मात्रा मे काला-सडा-घट्ट-आममिश्रित व भारी दुर्गन्धियुक्त मल निकला और इस दस्त से आपको कोष्ठ मे व शिर में थोडी लघुता मिली, कहने लगे वैद्य जी मुझे रुपये मे १० आना भर फायदा है, वुखार गायब हो गया है, मरोड भी पेट मे नही आ रही है। मुझे एक ऐसी ही पुडिया और दे दें पेट कुछ अभी भारी मालूम पड रहा हे। मैंने भी सोचा कि चलो विरेचन इनके लिये सात्म्य हो गया है अब वाग्भट्टोक्त सूत्र स्थान के द्विविधोपक्रमणीय अध्याय में वर्णित सह्य लघन मे से कुछ लघन कराके बाद मे एक विरुहण "आस्थापन वस्ति" दे देवेगे। अथवा कोई मृदुविरेचन इस प्रकार मैं अपने मन मे विचार ही कर रहा था कि एकाएक कुछ अजीव ही अवस्था देखने को मिलने लगी जिसे देखकर मैं भी चिन्ता मे पड गया। वह अवस्था निम्न थी—

एका-एक जी घवडाने लगा, टेम्परेचर बढने लगा. अङ्गो मे कपन, शीतपना, शिर मे चक्कर व दर्द, नाभि के ऊपर दर्द जो क्रमश बढनशील था, सूखी उबकाईया, मुख मे थोडा पानी आना, इत्यादि। पडित जी और घवडाकर कहने लगे कि मै अब बचूगा नही आप यही बैठें, व मुझे एक बार सिद्धिलसर्जन को दिखला दें, इत्यादि। मैंने पहिले अपने आप पर नियन्त्रण कर उनको व पूरी फैमली को धैर्यधारण करवाया व विचार किया कि आमदोष आमाशय मे आ गये हैं व ऊर्ध्व मार्ग से निकलना चाहते है आर्ष के वचनो का ख्याल भी आया

१ शूलानाह प्रसेकार्त वामयेत् अतिसारिणम्।
वाग्भट्ट चि० अतीसार प्रकरण

२ क्रियाकालं न हापयेत्।

एक ग्लास मे निम्न औषधियो को मिश्रण किया—

वचाचूर्ण १ माशा, लवणसादा ४ माशा, मक्षिक २ माशा गरम पानी १ पाव।

पहिले २ ग्लास गरम पानी आमाशयस्थ दोषो को और ज्यादा उत्क्लेशित करने को दिया। जिसमे जो सूखी उबकाईया आ रही थी साथ मे थोडा थोडा मुह मे पानी भी आने लगा। तत्पश्चात् उपर्युक्त औषधि मिश्रित जल भी दिया और फिर से २ ग्लास उष्णोदक पान कराया। ये दो ग्लास गरम पानी पिलाने के पहिले ही २ वमन के वेग आये जिसमे कफ व औषधि थी। बाद मे फिर और जोर से वमन के वेग आये जिसमे कटवे-नीले-पीले व सफेद चिकर दोष निकले। पडितजी घवडा गये थे उन्हे धैर्य धारण करवाया फिर १ ग्लास और गरम पानी केवल पिलाकर एक हाथ की तर्जनी व मध्यमा दोनो ऊगलीयो से उपजिह्वा के अन्दर तक स्पर्श करने को कहा जिससे दो वेग और आये और आखिरी मे शुद्ध डकार भी आयी। तत्पश्चात २ घन्टे आराम करने को दिया। घर वालो को ये आदेश देकर कि यदि शाम तक भूख लगे तो रोजाना की अपेक्षा तृतीयाश भोजन देना, मै चला आया। वमनोपरान्त ही निम्न लक्षण हो गये थे—

पेट का दर्द बन्द, अत्यन्त लघुता, शिर हलका मालूम पडना, नर्म पना आदि, तथा उत्क्लेश शिर शूल, ज्वर, उदरशूलादि सब लक्षण समाप्त हो चुके थे।

प्रात काल दूसरे दिन दि० १२-८-६३ को वगैर तकलीफ व आवरहित १ साफ दस्त हुआ और—

उद्गार शुद्धरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचित।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥

(अर्थस्पष्ट है) आदि लक्षण उत्पन्न हुये। कहने लगे कि 'जिन्दगी मे इतनी लघुता शरीर मे इतनी प्रशन्नत कभी मुझे नही मिली वास्तव मे मुझे ऐसा मालूम पडता है कि मानो मेरे शरीर की नयी काया हो गयी है।

आप लोग अब स्वत यह प्रतीत करने लग गये होगे कि लोग वमन विरेचनादि शोधन क्रियाओ को जितना भयकर समझते हैं उतनी भयकर नही है। हा दक्षता, अटलविश्वास व प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की खास जरूरत है।

—श्री वैद्य मदनमोहन मिश्रा आयुर्वेद विशारद,
भालाजी बिल्डिङ्ग, नागपुरी गेट के पास,
अमरावती (महाराष्ट्र)

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सूत्र १-४०

दिसम्बर १९६३ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा मात्र चिकित्सकों के लिए प्रकाशित | भाग ३७ अङ्क १२

धन्वन्तरि भगवान रे

जन-जन का दुख-दारिद हरने, देने जीवन दान रे।
आये दयानिधान रे।
धन्वन्तरि भगवान रे॥
जगत ग्रस्त था रोग-शोक मे, आह मची जब लोक लोक मे।
स्वस्थ, निरोग, सुखी-जीवन का, लेकर तब वरदान रे॥
आये दयानिधान रे।
धन्वन्तरि भगवान रे॥
सुर दे सुधा मिटाया सब भय, करके अमर पूर्णत' निर्भय।
जगतीतल पर हुये अवतरित करने को कल्याण रे॥
आये दयानिधान रे।
धन्वन्तरि भगवान रे॥
आयुर्वेद की अक्षय-निधि ले, जग के जीवो की सुख-विधि ले।
दुख-सताप हरे सवकरके नित नव अनुसन्धान रे॥
आये दयानिधान रे।
धन्वन्तरि भगवान रे॥

—श्री जगदीश मिश्र, झासी।

प्रथम पुरस्कार प्राप्त—

जल और मिट्टी से विभिन्न रोगों का उपचार

श्री लक्ष्मीनारायण "अलौकिक"

मानव शरीर के लिए सर्वाधिक अपेक्षित एव सृष्टि के प्रधान तत्वो का विश्लेषण करें तो पचतत्वो मे जल और पृथ्वी इन दो तत्वो की गणना सर्व प्रथम होगी। आकाश के अतिरिक्त जो दो तत्व शेष रहते है उनकी उत्पत्ति जल और पृथ्वी से ही मानी गयी है। आकाश को कोई प्रत्यक्षत अनुभूतिजन्य तत्व स्वीकार नही करता चू कि वह शून्य का पर्याय है। इस तरह स्वास्थ्य और जीवन की आवश्यकताओ मे जल और मिट्टी का महत्व बहुत कुछ बढ जाता है।

जल जीवन की मूल वस्तु है इसे तो सभी जानते है पर वह स्वास्थ्य आरोग्य एव रोग प्रतिरोध क्षमता का अन्यतम कारण भी है इस ओर जन साधारण का ध्यान नही गया है। यह बात प्राचीन काल पर रूढ नही होती चू कि उस समय मानव के सामने जीवन और स्वास्थ्य यह दो चीजे ही मुख्य थी। आज उसका स्थान जीवन और विलासिता ने ले लिया है। हालाकि प्राचीन काल मे भी मानव कुपथ्य एव विलासिता का शिकार था पर इतना नही। बीमार होने पर मनुष्य को जल का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। ऐसा ऋग्वेद मे उल्लेख हुआ है—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा
(१।२३।२०)

अर्थात् हे मनुष्यो! जल का विधिवत् उपयोग करो, इसमे समस्त औषधिया है ऐसा मगलमय परमात्मा ने कहा है।

आगे फिर ऋग्वेद का मानव एव सभी प्राणियो के प्रति सौहार्द्र से सना आशीर्वचन आया है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमी वचा तनी.।
आप सर्वस्य भेषजीरतास्ते कृण्वन्तु भेषजम॥
(१०।१३७।६)

अर्थात् निश्चय ही जल औषधि है। यह सर्वथा सत्य है कि जल रोग निवारक पदार्थ है। जल सभी रोगो की एक ही औषध है। वह जल सभी प्राणियो के लिए औषध स्वरूप हो, आरोग्य का दाता हो।

जल को हम औषध रुग्णावस्था मे स्वीकार करें या न करें किन्तु प्रत्यक्ष मे जल प्राणियो का जीवन है। आहार के बिना मनुष्य कई सप्ताह जीवित रह सकता है लेकिन जल के बिना एक सप्ताह भी शरीर मे प्राण धारण किये रहना सर्वथा कठिन एव असम्भव है। काफी जाच पडताल के बाद शरीर शास्त्रियो ने पर्याप्त जलपान को स्वास्थ्य रक्षा का एक अनिवार्य नियम घोषित किया है जिसमे कभी भी दो मत नही किये जा सकते। जल के सहकार से ही आहार का पाचन एवं धातुओ का यथावत् रूपान्तरकरण होता है। यथेष्ट जलपान से शरीर के मलद्वार ठीक कार्य करते है। जो इस बात का सबूत पेश करते हैं कि शरीर की मास-पेशियो एव स्नायुमण्डल की जागरूकता बराबर बनी हुई है। इसके विपरीत यथेष्ठ जलपान नही करने से आहार पाचन एव धातु विनिमय से बचे मल द्रव्यो की बडी मात्रा शरीर मे स्थान पाती रहती है जो किसी भी रोग का कारण हो सकती है।

आयुर्वेद मे जल को जीवन की सज्ञा शायद इसलिए भी दी हो कि मानव शरीर तैजस गुणो का अधिष्ठान् केन्द्र है। जलपान करने मे जहा वह जीवन की सम्पूर्णता का स्पर्श कर लेता है वहा जल दर्शन की उसे जो सुखानुभूति है वह सर्वथा वाणीविहीन है। संसार के समस्त ऐश्वर्य जलदर्शन आनन्द की तुलना मे निर्दोष, हितकर एव तुष्टिजन्य नही उतरते। वास्तव मे जल जीवन् की एक अनमोल वस्तु है। जगत्प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सको मे फादरनिप और लुईकूने ने जल के, हा सिर्फ जल के विभिन्न उपचारो से असख्य रोगियो को आराग्य दान किया। आज भी पश्चिम मे तथा भारत मे कई प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्र है जहा जलोपचार से हजारा-लाखो रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहे है।

वास्तव मे जल सर्वोत्तम आशु गुणकारी औषध है। औषध से हमारा अभिप्राय उसी वस्तु से रहना चाहिए जो अस्वस्थ दशा को आरोग्य की ओर ले जाए। जल उपचार की विभिन्न पद्धतिया कठिन से कठिन एव असाध्य रोगो तक को ठीक करने का दावा रखती है। ऐसी हालत मे जल को औषध मानना नई और आश्चर्य की बात नही होगी। वल्कि सचाई इस बात में है कि जल ही औषधि है चू कि शरीर के विजातीय द्रव्य को विभिन्न मार्गो से वाहर करके आरोग्य की परम्परा यथावत् कायम करने मे तुलनात्मक दृष्टि से जल चिकित्सा को सवसे अधिक श्रेय मिला है। जल चिकित्सा अपने रोगी को यह आश्वासन कभी नही देती कि तू कुपथ्य एव असयम के दायरे मे ही रह और मेरे आश्रित होकर तन्दुरुस्त हो जायगा।

अस्तु। जल समस्त चैतन्यो का प्राण है और पृथ्वी है चैतन्यो मे प्राण फूकने और सचारित करने का माध्यम। वस्तुत पृथ्वी का सवसे वडा गुण यह है कि वह अपने अणु अणु मे सभी तत्वो को ग्रहण किये हुए है। मिट्टी चिकित्सा की महत्ता इसीसे केवल इसी से है। आर्द्र मिट्टी से जैसे वनस्पति वृक्षादि के वीज अपनी आवश्यकता के तत्व ग्रहण कर परम्परा को प्राप्त होते हैं, अपने मूल रूप को विस्तार दे लेते है ऐसे ही आर्द्र मिट्टी की पुल्टिश का व्यवहार जब शरीर के किसी हिस्से पर होता है तव हमारा चैतन्य स्नायु मण्डल उससे उन तत्वो को ग्रहण कर लेता है जो आरोग्य की दृष्टि से शरीर मे कम पड गए होते है। आर्द्र मिट्टी शरीर के अनावश्यक एव विपाक्त तत्वो को खीचने मे अपनी सानी किसी से नही रखती। किसी जहरीले घाव या फोडे पर ५-६ वार पुल्टिश वाधकर देखिये कि मिट्टी मे विषो की शोषण करने की कितनी अद्भुत क्षमता है।

मिट्टी चिकित्सा के दो लाभ तो अभी तक पाठको के सामने आगये कि एक तो इस उपचार से शरीर मे आवश्यक तत्वो की पूर्ति होती है। दूसरे अनावश्यक तत्वो का वहिष्कार हो जाता है। मिट्टी की पुल्टिश का तीसरा लाभ यह होता है कि वह उस अङ्ग विशेष मे शीतलता का संचार करके नाडी मण्डल एव मासपेशियो की जागरूकता वढा देती हैं। ढकी हुई पुल्टिश का व्यवहार करने से उस स्थान के विजातीय द्रव्यों को तरल रूप मिल जाता है फलत वह किसी भी रास्ते से किसी भी तरह शरीर से बाहर होने की पूरी तैयारी कर लेता है। यही वजह है कि शरीर मे किसी भी स्थान पर कैसा भी दर्द क्यो न हो मिट्टी की पुल्टिश से उसे जल्द से जल्द ठीक किया जा सकता है। महान साधक एडोलफजुस्ट ने मिट्टी की चिकित्सा से अनगिनत ऐसे रोगियों को ठीक किया जिन्हे डाक्टर जवाब दे चुके थे। उन्होने अपनी पुस्तक मे कई रोगियो का वर्णन किया है जिसमे से हम एक को प्रस्तुत करते हैं—

'एक ४२ वर्ष के सज्जन उदरविकार और सुषुम्ना के क्षय से वर्षो से पीडित थे। औषधोपचारको के कथनानुसार उनके उदर मे घातक अर्बुद था। सुषुम्ना का क्षय उनके चलते समय पैरो के झटके से स्पष्ट हो जाता था। मेरे यहा आने के समय वे कोई चीज खाने मे असमर्थ थे। और रात मे उन्हे लगभग चालीस बार कै हुआ करती थी।

'वे झझरीदार झोपडी मे रखे गये और पेड़ पर गीली मिट्टी की पट्टी लगाई गयी। पट्टी रहते समय तो कै बन्द रहती, पर हटा लेने से फिर शुरू हो जाती। इससे रोग मे मिट्टी की प्रभावकारिता स्पष्ट हो गई। कभी कभी साधारण स्नान कर लेते थे, कुछ समर्थ हो जाने पर वायु प्रकाश स्नान भी चलाने लगे।'

'दस दिनो के वाद मिट्टी की पट्टी वदकर देने पर भी उन्हे कै नही आई। उस समय से उनकी हालत मे सुधार होने लगा। भूख भी अच्छी मालूम होने लगी और विना किसी हिचक के भर पेट फल खाने लगे। उदर विकार दूर होने पर सुषुम्ना का क्षय भी अच्छा होने लगा।'

प्रसग वश मुझे शामगढ के एक स्थानीय चिकित्सक का स्मरण हो आ रहा है जो मेरे घनिष्ठ मित्र है। नाम लिखने की आवश्यकता मैं अनुभव नही करता। हा तो उनकी छोटी आत के प्रारंभिक सिरे मे अल्सर था।

एक्सरा करवा के देखा जा चुका था। वैसे दर्द गुजरने के भी वह स्पष्ट था चूंकि भोजन पचने समय अर्थात् आमाशय से छोटी आंत मे भोजन उतरते समय उन्हे महान वेदना होती थी। इस वेदना से छुटकारा पाने के लिए कई बार वह मुंह मे ऊंगलियां डालकर कै कर लेते। अल्सर को ठीक करने के लिए उन्होने प्रसिद्ध डाक्टरो की पेटेंट दवाइयां ली। जिनसे उन्हे कुछ समय तक लाभ रहता और फिर वही हालत। सन् ६३ के किसी सप्ताह मे वह इस व्याधि से अत्यधिक पीड़ित हुए, ज्वर भी हो आया मै उनसे मिलने गया पश्चात्‌ ये। मैने उन्हे कहा आज तक कितनी ही दवाइयां ले चुके हो जरा एक बार प्राकृतिक चिकित्सा भी तो अजमालो। वह राजी हो गये। मैने उन्हे दिन मे तीन बार पेट पर गीली मिट्टी की पुल्टिश, तीन बार घर्षण स्नान की राय दी सभव हो वहा तक उपवास रखा जाय पश्चात किशमिश का रस सतरा मौसम्बो का रस लिया जाये। विश्राम पूरा लिया जाए। उस दिन के १५ दिनबाद वह मुझे अपनी दूकान पर प्रसन्न मुद्रा मे मिले। उन्होने बताया कि मिट्टी की पुल्टिश मे पेट का दर्द बिलकुल ठीक हो गया है। वह भी सिर्फ चार दिन मे ही। दर्द ठीक होने के बाद वह इन्दौर गये थे और एक्सरा लिवाया था। जिसमे डाक्टर ने बताया कि आंत मे अल्सर का चिन्ह तक नही है। अभी तक वह उस व्याधि से मुक्त हैं और अब अपने रोगियो को भी प्राकृतिक चिकित्सा की पद्धतिया बताने लगे हैं।

अब हम और मिट्टी की चिकित्सा की प्रचलित पद्धतियो पर प्रकाश डालना चाहेगे। क्योकि जहा तक कोई पद्धति का तौर तरीका नही जानता वहां तक वह उसका उपयोग नही कर पाता। पिछले एक लम्बे अर्से से धन्वन्तरि मे मेरे द्वारा लिखी प्राकृतिक चिकित्सा माला चल रही थी, जिसे पाठको ने पसद किया है। उसे पढ कर ही कई पाठको ने मुझे पत्र भेजे है जिनमे प्राकृतिक चिकित्सा की उपचार पद्धतियो को लेने के निरापद तरीके पूछे गये हैं। और प्राप्त होने वाले सभी पत्रो का व्यक्तिगत उत्तर देना मेरे लिए सभव नही है इससे तथा सभी पाठको की जानकारी के लिए इस लेख मे हम मुख्य-मुख्य उपचार पद्धतियों पर प्रकाश [illegible] है। [illegible] जाता है इस तरह जल-मिट्टी चिकित्सा [illegible] [illegible] और पूरी [illegible] हो जायगा।

डूश—

आधुनिक चिकित्सा मे [illegible] और [illegible] कोई पद्धति है जो सिर्फ [illegible]। [illegible] आम [illegible] है। [illegible] गुदा के रास्ते बड़ी आंत मे पानी पहुंचाया जाता है। इस से पेट साफ करने का [illegible] है। बडी आंत [illegible] मल को बाहर [illegible] या डाक्टर रेचक औषधि देते है। [illegible] स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाली होती है। जुल्लाब रेचक औषधियो का प्रयोग करने से आंत [illegible] हो जाती है, आमाशय [illegible] जाता है तब रेचक औषधियो के जहर नाडी मंडल को सुस्त कर देते है। इस से किसी तरह की हानि नही पहुंचती। यह इसकी सबसे बड़ी

डूश
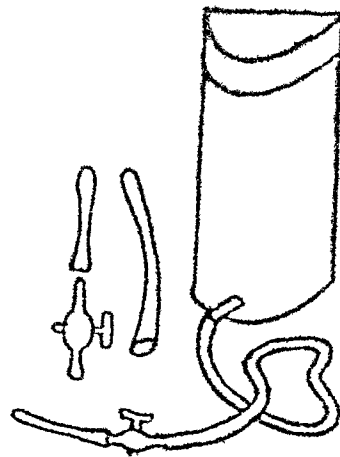
विशेषता है। जुल्लाब की दवा आमाशय और छोटी आंत को पार करती हुई बडी आंत को प्रभावित करती है। जुल्लाबी दवाओ के जहर आंतो द्वारा शोषित होकर रक्त मे पहुंच जाते हैं। डूश मे लिया गया पानी सिर्फ बडी आत मे ही पहुंचता है एव मल को गला कर तथा आत की आकुंचन शक्ति बढ़ाकर फौरन पेट साफ कर देता है। पेट मे मल जमा होने से जितनी भी बीमारिया हो सकती है उन सबमे डूश का व्यवहार तत्काल राहत पहुचाने वाला होता है। सिर दर्द, अनिद्रा और ज्वर के कई रोगी सिर्फ एक डूश से भले चगे हो जाते हैं। होता यह है कि आंत मे जब काफी तादाद मे मल जमा हो जाता है और भीतर पडा-पडा सडता रहता है तब पूरे

शरीर की आरोग्य व्यवस्था बिगड जाती है। ऐसा होने पर डूस से आंत साफ कर लेने पर सब व्याधिया शात हो जाती है।

डूश हमेशा दाए लेटकर या चित्त सोकर लेना चाहिए। डूश से लिया गया पानी ५-१० मिनिट रोकने की चेष्टा करनी चाहिए ताकि वह आत में जमे मल को गला सके। डूश ऐसे ही स्थान पर लिया जाए जहा शौच की व्यवस्था निकट ही हो। चू कि डूश लेने के बाद भारी वेग से शौच की प्रतीति होती है। वयस्क व्यक्ति एक लिटर से दो लिटर पानी तक का डूश ले सकता है। बच्चो को उनकी आयु और स्वास्थ्य को देखकर पानी की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। वैसे मेरी समझ मे जो जितना पानी पी सकता हो उसे उतने पानी का डूश देना सर्वोत्तम है।

एनिमा हमेशा भोजन के दो घटे पहले और भोजन के तीन घटे बाद लेना चाहिए। एनिमा लेने के बाद कभी भी दुष्पाच्य आहार नही लेना चाहिए। यदि इन बातो का ध्यान नही रखा गया तो महास्रोत की कार्य प्रणाली मे कुछ शिथिलता आजाने की सभावना रहती है। पुराने और कठिन रोगो को दूर करने के लिए डूश एव क्षारधर्मी खाद्यो का प्रयोग अतीव प्रशस्त व हितकर है।

कटि स्नान—

यह रोग निवारण का एक श्रेष्ठ साधन है। प्राकृतिक चिकित्सा मे इस स्नान का महत्व बहुत अधिक है। वह इसलिए कि स्वास्थ्य उन्नति की पूरी जिम्मेदारी इसी के ऊपर रहती है और यह स्नान पेट को दुरुस्त करने का दावा रखता है। आतो और आमाशय की कार्यक्षमता बढाने मे इसका मुकाबला कोई नही कर सकता।

देखा जाये तो प्राकृतिक चिकित्सा को सफल रूप देने मे कटि स्नान का बडा हाथ है। दीवार मे ठुकी हुई कील या धरती मे गढे हुए खूटे को जैसे इधर उधर हिला-हिला कर उखाडने की चेष्टा की जाती है ऐसे ही शरीर मे रोगो की जडें उखाड़ने की चेष्टाये कटि स्नान के जरिये होती हैं। कटिस्नान से सम्पूर्ण स्नायु मण्डल नवजीवन प्राप्त करता है।
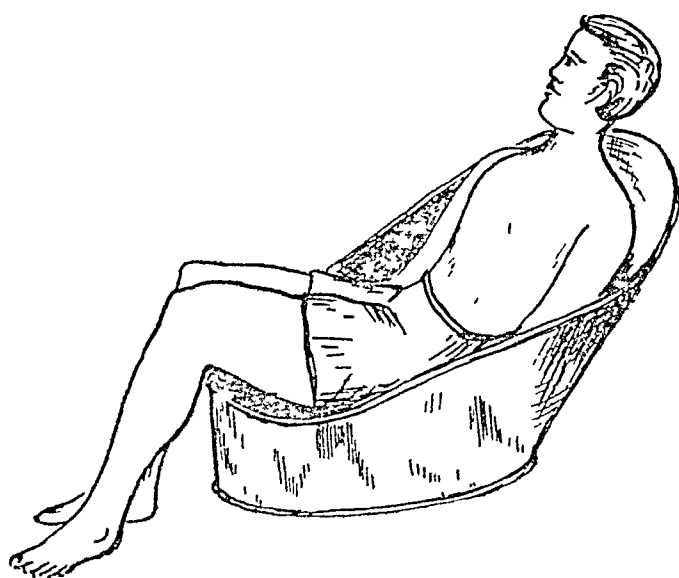
कटि स्नान लेने की विधि

कटि स्नान सम्पन्न करने के लिये एक ऐसे टब अथवा बर्तन की आवश्यकता पड़ती है जिसमे पानी भर कर बैठने पर पानी नाभि से आधी जाघो तक के प्रदेश को छूता रहे। यदि हम कटि स्नान को पेड़ का स्नान कहें तो दूसरी बात नही होगी। कटि-स्नान चलाते समय पेड़ू घर्षण का कार्य लगातार करना पडता है अन्यथा लाभ की सभावना छोड देनी पडेगी। ठण्डे जल मे कटि स्नान लेते समय पेडू (नाभि से जनेन्द्रिय तक का प्रदेश) को हथेली से रगड़ रगड कर गर्माने का यत्न करना चाहिए जिससे दो लाभ होगे। एक तो पेडू का सुव्यवस्थित व्यायाम हो जाएगा दूसरे पेडू की अनावश्यक गर्मी व दूषित पदार्थ पानी मे उतरते रहेगे।

कटि स्नान लेने के वही नियम हैं जो डूश लेने के है। कटि स्नान लेने मे इतनी सावधानी और रखनी चाहिए कि लेते समय शरीर मे गर्मी अवश्य हो। स्पर्श मे शरीर ठडा जान पडे तो सूखी मालिश से या कुछ धूप लेकर अथवा आधा लिटर गर्म पानी पीकर शरीर को गर्माया जा सकता है। शरीर की गर्म हालत मे ही कटि स्नान का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। आरम्भ मे यह स्नान २-३ मिनिट का लेना चाहिए, क्रमश अवधि बढाकर २० मिनिट तक का लिया जा सकताहै। जो व्यक्ति टब प्राप्त करने या बनाने मे असमर्थ हो वह इस

स्नान को एकांत मे निर्वस्त्र बैठ कर पेडू प्रदेश को पानी से सींचते हुए तथा रगडते हुये सम्पन्न कर सकते है।

भीगी चादर की लपेट—

शरीर की गन्दगी (विजातीय द्रव्य) को रोम रोम से बाहर निकाल फेंकने मे प्राकृतिक चिकित्सा के अन्दर दो विधिया हे (१) वाष्प-स्नान एव (२) भीगी चादर की पैक। वाष्प स्नान मे पर्याप्त सावधानी बरतनी पडती है अन्यथा लाभ की जगह हानि की सभावना अधिक रहती हैं। वाष्प स्नान सुयोग्य चिकित्सक की देखरेख मे ही लिया जाना जरूरी है। किंतु भीगी चादर की पैक के बारे मे ऐसी बात नही है। यह वाष्प स्नान से भी अधिक लाभदायक, सुविधाजनक और मजेदार है। लेने की विधि है—

खाट पर या जमीन पर दो कम्बल बिछा दीजिये। कबल यदि एक ही उपलब्ध हो तो कम्बल के ऊपर एक दो मोटे सूत के वस्त्र बिछा रखे। पश्चात् अपनी लम्बाई के बराबर चादर को ठडे पानी मे भिगो निचोडकर कम्बल या लिहाफ पर फैला दीजिये। गले से छाती तक
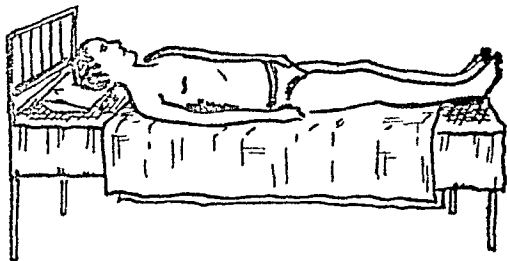
चादर का पैक लेने से पहले

के हिस्से के लिए इस गीली चादर पर एक और निचोडा हुआ वस्त्र फैला दीजिये। यह पैक गले से पैरो तक ली जाती है। पैक लेने के पहले शिर धो लेना आवश्यक है। नीबू मिला गर्म पानी भी पी लेना जरूरी है। नीबू उपलब्ध न हो केवल गर्म पानी ही ठीक है। मूत्र शौच से निवृत्त होने के बाद ही इस पैक को लेना हितकर होगा। इतनी तैयारी कर चुकने के बाद ऊपर लिखी चादर पर सो जाइये। पहले छाती के लिये पृथक से वस्त्र को छाती से लिपटवा लें। इसमे हाथ बाहर रहेगे। बाद गले से पैरो तक चादर को इधर से उधर पैक करवाइये। इसमे हाथ भीतर रहेंगे। गीली चादर की पैक हो जाने के बाद सूखे वस्त्र व कम्बलो की पैक मे अपने को कसवा लीजिये। जहा तक हो पैक के भीतर रहे शिर पर गीला गमछा रखवाये रहे इससे मस्तिष्क रक्ताधिक्य से पीडित न होगा।
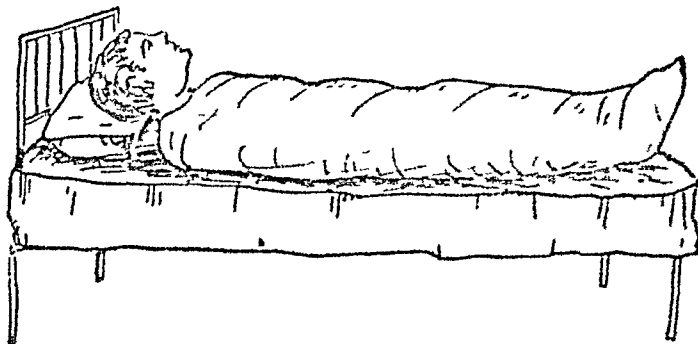
चादर की पैक लेने के बाद

यह पैक एक वयस्क व्यक्ति आधा घटे से एक सवा घण्टे तक की ले सकता है। छोटे बच्चों की उम्र के अनुसार २० से ४५ मिनट तक की देनी चाहिए। इतना होने के बाद भी समय की पाबन्दी आवश्यक है। यदि शीघ्र ही पैक में शरीर गर्म हो उठे और बेचैनी बढ जाये तो पैक खोलते समय थोड़ी सी सावधानी बरतनी जरूरी है। वह यह है कि खुले शरीर पर एकाएक हवा न लग जाये। अच्छा हो शुद्ध खुरदरे वस्त्र को पानी भिगोकर खूब निचोड़ लिया जाये और उसे आहिस्ते से पैक के भीतर लेजाकर शरीर को पोंछवा लिया जाये।

यह पैक शरीरस्थ विजातीय को फौरन तरल रूप दे देती है, अत पैक लेने के बाद क्षारधर्मी खाद्यो का पुष्कल प्रयोग करना चाहिये जिससे शरीर का विजातीय भिन्न मार्गो से बाहर जाने मे मदद पा सके। यह पैक सप्ताह मे एक से तीन बार तक ली जा सकती है।

छाती की पैक—

छाती के समस्त रोगो मे इसका व्यवहार रामबाण चिकित्सा की तरह होता है। इसे लेने की विधि ऊपर बतायी चादर की पैक की तरह ही है। अन्तर है भी तो सिर्फ इतना कि वह पूरे धड़ मे ली जाती है और यह केवल छाती के पूरे हिस्से पर यानी कि गले से पसलियो के अन्तिम छोर तक। छाती के पैक हमेशा पतले वस्त्र

की लेनी चाहिये । वस्त्र पुराना ही होना चाहिये । धोती या साडी इसके लिये सर्वोत्तम है । जो भी हो छाती की पैक का वस्त्र चौड़ाई मे इतना जरूर हो कि २-३ पर्त करने के बाद पैक की साइज का हो जाए तथा लम्बाई मे इतना कि ३-४ घुमाव पूरे हो सके । छाती की पैक
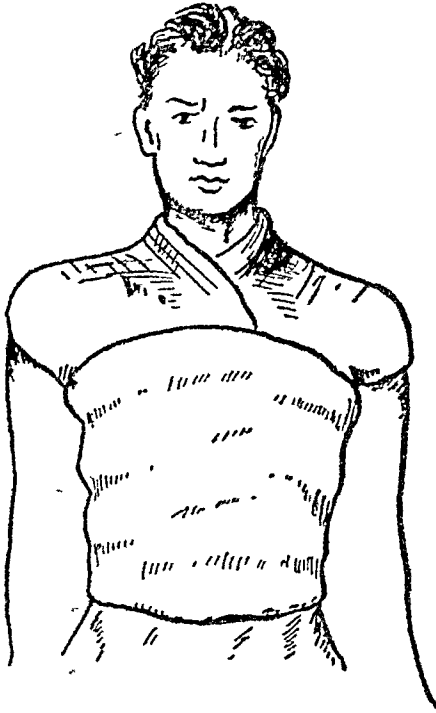
छाती का पैक

मे इस्तेमाल किये जाने वाले वस्त्र को पानी मे भिगोकर खूब निचोड लेना आवश्यक है । यह आर्द्र वस्त्र लपेटने के बाद सूखे वस्त्र या कम्बल अथवा फलालेन की १५ इञ्च चौडी ६ फुट लम्बी पट्टी का पैक लेकर ठडे वस्त्र को भलीभाति ढाप लेना चाहिये । इसी तरह कमर की पैक पैरो की लपेट आदि ली जाती है । ढकी हुई यह ठडी पैकें लेते समय ठडी चाहे जान पडे पर थोडी देर मे यह गर्म हो उठती है । ढकी हुई पेकें रोम छिद्रो को खोलकर अन्दरूनी गन्दगी को पसीने की राह बाहर निकालती हैं साथ ही अन्दरूनी यन्त्रो की कार्यक्षमता बढाती हैं । जुकाम है और आपने एक-दो छाती की पैक ली नही कि वह चलता बनेगा । बुखार मे तो यह पैक अन्यर्थ औषध का कार्य करती है । किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह पैक शरीर की गर्म हालत मे ही ली जा सकती है । बुखार मे उस समय पैक कभी भी नही लेना चाहिये जब जाडा और कपकपी हो ।

घर्षण-स्नान—

प्राकृतिक चिकित्सा की यह सर्वथा नई और अछूती खोज है । घर्षण स्नान कसौटी पर चमत्कृत एव वैज्ञानिक उतरा है । यह अधिकाशत ऐसे बीमारो पर चलाया जाता है जो स्वय स्नान करने मे असमर्थ हो अथवा काफी कमजोर हो । स्वस्थ व्यक्ति भी इसे ले सकते है । छोटे बच्चो को यह स्नान बहुत अनुकूल पडता है और इससे वह लगभग सभी बीमारियो से बचे रहते है । घर्षण स्नान से त्वचा पर जमी हुई गन्दगी दूर हो जाती है, रोमछिद्र खुल जाते हैं तथा स्नायुमण्डल आरोग्यप्रद उत्तेजना प्राप्त करता है । यह अत्यन्त हितकर एव सुखप्रद ठडी मालिश है । इसे शरीर की गर्म अवस्था मे ही लेना चाहिये ।

एक फुट चौकोर खादी के कपडे को पानी मे भिगोकर हथेली पर तान लीजिये और फैले हुए पजे मे रोगी के किसी अ ग पर मालिश चला दीजिये । घर्षण स्नान इसी का नाम है । रोगी का शरीर जितना गर्म हो कपडे को पानी से उतना ही तर रखें एवं शरीर का बलाबल देखकर उतने ही जोर का घर्षण करें । घर्षण स्नान हमेशा सिर धोकर पीठ से शुरू करना चाहिये । पीठ पर घर्षण स्नान हो जाए तो स्वच्छ सूखे वस्त्र से उस स्थान को पोछ लें एव त्वचा पर मिनिट दो मिनिट सूखी मालिश कर दे । इससे ठडे स्पर्श से भीतर लौटा हुआ रक्त त्वचा की सतह पर आजाएगा । एक अ ग पर मालिश चला लेने के बाद दूसरे अ ग पर मालिश चलानी चाहिए । इस बीच घर्षण के वस्त्र को पानी मे झकोरते रहना चाहिये ताकि वस्त्र से लिपटा हुआ विजातीय पानी मे घुलता रहे । एक-एक अ ग करके इस तरह यह स्नान पूरे शरीर पर लिया जाता है । साधारणत बडे व्यक्ति को घर्षण स्नान लेने मे २० मिनिट लग जाते हैं । इतना समय लगना भी चाहिये । शिशुओं को उनकी अवस्था के अनुसार देना चाहिये । ज्वरग्रस्त रोगियों को बिछावन मे ही एक-एक अ ग उघाड कर यह स्नान देना चाहिये । ज्वर मे जब शरीर की गर्मी १०४° तक पहुच जाए फौरन यह स्नान दे देना चाहिये । इससे

ज्वर तत्काल १००° के भीतर आजाएगा। जनसाधारण का विश्वास है कि ज्वर में जल का स्पर्श हानिकारक हो सकता है पर ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। हां, ज्वर में ठंड और कंपकपी हो उस समय कदापि न दें।

उष्णपाद स्नान—

बहुत बार शरीर में ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि बिना गर्मी पहुचाये शरीर की उदासीनता, अकर्मण्यता दूर नहीं होती। ऐसे समय में तथा शरीर के विजातीय को तोड़-फोड़ करके पसीने के मार्ग से निकालने के लिये उष्णपाद स्नान का महत्व सदैव सुरक्षित है। एक तरह से यह अच्छे किस्म का वाष्प स्नान है। इसे गरम पैर नहान भी कहा जाता है।

किसी ऐसे बर्तन में, जिसकी ऊंचाई डेढ़ फुट हो, गर्म पानी भरकर दोनों पैर रख देने का नाम ही उष्णपाद स्नान है। पानी घुटनों तक अवश्य रहना चाहिये। पानी इतना ही गर्म होना चाहिये जितना सहा जा सके। यह स्नान दस से बीस मिनिट तक लिया जाता है। यदि इस बीच पानी ठंडा हो चले तो बर्तन का पानी किसी से निकलवाकर उतना ही गर्म पानी डलवा दें।

उष्णपाद स्नान लेते समय पूरे धड़ को कम्बल आदि से ढंक रखना जरूरी है। ऐसा करने पर ही अच्छी तरह पसीना आ सकेगा। इस स्नान के लेने के पूर्व सिर धोकर एक गिलास गर्म पानी अवश्य ही लिया जाए। स्नान लेते समय सिर के ऊपर गीला गमछा पड़ा रहे, तो सर्वोत्तम है।

मिट्टी की पुल्टिश—

गीली मिट्टी को आवश्यकतानुसार कपड़े पर फैला देना ही मिट्टी की पुल्टिश के नाम से जानी जाती है। इस पुल्टिश का व्यवहार तीन प्रकार का होता है, ठंडी, ढकी हुई और गरम। ठंडी पुल्टिश उसे कहते हैं जो शरीर के किसी अंग पर खुली रख दी जाती है। खुली रखने से हमारा आशय उस कपड़े को पृथक कर देने से नहीं है जिस पर पुल्टिश तैयार हुई है। बल्कि पुल्टिश को किसी कपड़े लत्ते से नहीं ढकने से है। ढकी हुई पुल्टिश उसे कहते हैं जिसे कम्बल के टुकड़े या फलालेन से छाती को पीठ की तरह बांध दी जाती है। प्रायः पुल्टिश लेते समय सभी कार्यों से छुट्टी लेकर विश्राम किया जाता है अतः पुल्टिश को कसकर बांधने की अपेक्षा अच्छी तरह ढाप देने पर उसके ऊपर वातावरण का प्रभाव नहीं रहता और शरीर की गर्मी से शीघ्र ही गर्म होकर वह उस स्थान पर ताप संचार के साथ अपना कार्य शुरू कर देती है। गर्म पुल्टिश उसे कहते हैं जो मिट्टी पकाकर तैयार की जाती है और गर्म-गर्म ही इस्तेमाल की जाती है। उतनी ही गर्म पुल्टिश का व्यवहार लाभदायक हो सकता है कि त्वचा उसे आसानी

मिट्टी की पुल्टिस
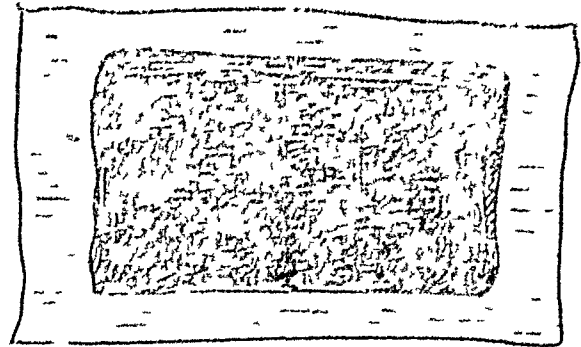
और सुख से बर्दाश्त कर सके। गर्म पुल्टिश को भी ढापा जाता है पर उसी हालत में जब पुल्टिश की गर्मी थोड़ी सी कम हो जाए। ठंडी पुल्टिस का सेवन काल अधिक से अधिक ३० मिनिट है। ढकी हुई पुल्टिश एक घंटे तक सेवन की जाती है। पर इस बीच पुल्टिश यदि काफी गर्म हो जाए तो उसी समय पृथक कर देनी चाहिये। गर्म पुल्टिश तो प्रत्यक्षतः गर्मी लाने के लिए ही ली जाती है अतः इस पुल्टिश की सेवन अवधि रोग और स्वास्थ्य के अनुसार निश्चित करनी चाहिए।

ठंडी पुल्टिश स्थान विशेष को ठंडा करने के लिए ही प्रयुक्त होती है। ढकी हुई पुल्टिश ताप संचार करने के साथ विजातीय द्रव्य को तरल रूप देकर किसी रास्ते से निकालने के लिये इस्तेमाल की जाती है। गर्म पुल्टिश तीव्र पीड़ा, सूजन, सन्धिवात, गांठ सूखड़े आदि में ली जाती है।

मिट्टी से लाभ उठाने वाले भाई बहनों को यह

स्मरण रखना चाहिए कि पुल्टिश मे हमेशा शुद्ध और चिकनी मिट्टी ही रहे। मिट्टी का रग चाहे जो हो सब समान लाभ करती है। काली मिट्टी मिल सके तो सर्व प्रथम उसे हीं सग्रह करने का यत्न रखा जाए। काली मिट्टीमे धारण क्षमता अधिक होती है। मिट्टी हमेशा शुद्ध स्थान से लानी चाहिये। जहा लोगो का आवागमन हो उस स्थान की मिट्टी दोपयुक्त समझनी चाहिए। खेतो की मिट्टी भी खादो के क्षारो से सदोप हीं रहती है। खेतो की मिट्टी हीं लेने का विचार हो एक फुट भीतर की लेनी चाहिये। ढेलो के रूप मे इकट्ठी की गयी मिट्टी को घर लाकर लकडी आदि से कूटकर चलनी मे छान लेनी चाहिये ताकि ककड पत्थर प्रथक हो जाय। मिट्टी का प्रयोग करने के पूर्व उसे यदि एक दिन की धूप और एक रात की चादनी (अथवा तारो का प्रकाश) दे दिया जाये तो सर्वोत्तम होगा। सूर्य चन्द्र और तारो के सूक्ष्म तत्व मिट्टी अपने मे जज्ब कर लेती है। और वह पुल्टिश सेवन के समय शरीर में पहुचा लिये जाते हैं। हालाकि मिट्टी मे वैसे ही सभी तत्व मौजूद रहते है। पर ऐसा करने से उसमे और अधिक सजीवता आ जाती है चू कि जैसा कि हम पिछले पृष्ठो मे बता चुके हे कि मिट्टी मे पचतत्वो को धारण करने की अद्भुत क्षमता है।

मिट्टी की पुल्टिश ताजे पानी से तैयार की जावे। मिट्टी को पानी से भिगोकर इतनी ही गीली की जावे कि वह कपडे पर फैलाने पर अपनी इच्छा से न बहे। इतनी गाढी भी न रखी जावे कि ऊगली डालने पर भीतर न जा सके। पुल्टिश की तह एक अगुल काफी है। पुल्टिश प्रयोग करते समय मिट्टी त्वचा से छूती रहे और कपडा ऊपर रहे स्मरणीय है। पुल्टिश खोलने के बाद वह स्थान निर्जीव सा होजाए तो नारियल का तैल हाथो पर चुपड कर उस स्थान की हलकी सी मालिश कर देनी चाहिए। मिट्टी की पुल्टिश भोजन के १॥ घटे पूर्व और ३॥ घटे पश्चात ही ली जावे। किन्तु आकस्मिक व्याधा मे नियमो की पावन्दी का महत्व नही गिनना चाहिये।

चिकित्सा कैसे शुरू करें ?

नये चिकित्सक के लिए आरम्भ मे यह कठिन हो सकता है कि किस बीमारी मे कौन से उपचार को मुख्य रूप मे और किसको गौण रूप मे चलाये तथा किसे सर्वथा छोड दिया जाये। लेकिन रोग और रोगी की हालत देख कर उपचार का निर्णय करना उतना कठिन नही है जितना सोचा जा सकता है। परीक्षा भवन मे विद्यार्थी का विवेक जैसे जाग पडता है ऐसे ही उपचार पद्धतियो से होने वाले वैज्ञानिक लाभो से भिज्ञ साधारण ज्ञान वाला चिकित्सक भी रोग और रोगी की अवस्था देखकर तत्काल निर्णय कर सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा मे व्यवहृत सभी उपचार विजातीय द्रव्य के निर्हरण एव शरीर की आरोग्य क्षमता को बढाने वाले होने से यह सभावना शेप नही रहती कि उपचार कम किया तो लाभ नही होगा अथवा अधिक किया तो नुकसान हो जाएगा। प्राकृतिक उपचार न तो पेचीदा विज्ञान है न खतरनाक ही। कहना पडेगा कि यह एक ऐसी सरल जानकारी है जो जनसाधारण की बपौती है।

प्राकृतिक चिकित्सा मे यह कोई जरूरी नही कि हर रोगी और हर रोग पर सभी उपचार चलाये ही जाय। रोग की किस्म से उपचार की किस्म का तालमेल बिठाना भी जरूरी है। मान लीजिये किसी व्यक्ति को खून की कै हो रही है, पेट और छाती मे दर्द हो रहा है। इसे उष्ण पादस्नान देना कोई आवश्यक समझेगा ? कदापि नहीं। इस रोगी को जलपान विश्राम, घर्पण स्नान एव पेट पर ठडी पुल्टिश देनी होगी। सोचिये किसी महिला को मासिक धर्म बड़ी वेदना और कठिनाई से होता है। इसका उपचार कैसे करना होगा। क्या इसे चादर की पैक, छाती पट्टी या कोई ठण्डी पट्टी या ठण्डा एनिमा देना लाभदायक होगा ? कदापि नही। इसे गर्म पानी का डूश, पेड़ू पर गर्म पुल्टिश अथवा उष्ण पाद स्नान देना होगा। पथ्य मे सरल और सामान्य विरेचक खाद्य लेने होगे। आशय यह कि रोग और उपचार का तालमेल ठीक ठीक बिठाना होगा। बहुत से रोग तो एक या दो उपचार से ही ठीक होजाते है। रोगी को आरोग्य करने में सिर्फ दो ही बाते देखनी होती हैं कि रोग के पीछे शरीर मे कितना विजातीय है तथा उसे किस तरह बाहर निकाला जाये या उसकी वेदनाजन्य प्रतिक्रिया को रोका जाये। मेरे एक रिस्तेदार को जोरो का जुकाम हुआ था। आठ दिन से पीडित थे, नाक से अविरल पानी बह रहा

था। कई तरह के काढे और दवाइया ले चुके थे। मैंने उन्हे एक गिलास गर्म पानी मे दो नींबू निचोड कर पीने को तथा छाती की सेंक लेने की सलाह दी। दो माह मे भेंट हुई थी तो उन्होंने बताया कि ऐसा एक बार करने से ही जुकाम ठीक हो गया। दिसम्बर ६२ मे मेरी पीठ मे भयङ्कर वेदना जाग्रत हुई थी। हिलने-डुलने से भी दर्द मे वृद्धि होती थी। मैंने एक दिन का उपवास किया सुबह शाम नीबू मिले उष्ण पानी का डूश लिया। दिन भर नारगी का रस लेता रहा। तथा दर्द के स्थान पर तीन बार टकी पुल्टिश रखी। दूसरे दिन फल का नाश्ता किया, शाम को खिचडी ली और पुल्टिश चलाता रहा। उस दिन दर्द लगभग आधा रह गया था। अगले दिन शेष दर्द भी चला गया। मेरा विश्वास है कि प्राकृतिक चिकित्सा से रोग मिनटो मे कब्जे मे आ जाता है। यह विश्वास सिर्फ मेरा ही नही प्रस्तुत एक विश्वसनीय सत्य है। अनुज वधू के पाव मे एक साधारण फुसी ने विजातीय द्रव्य के सहयोग से एक कठिन विद्रधि का रूप धारण कर लिया। फल सेवन और पुल्टिश के व्यवहार से तीन दिन के अनन्तर उसने ठीक होने का रास्ता अख्त्यार कर लिया। बवासीर के रोगी की ताजी ही बात है जो मुझे अपने मित्र डा मोहनलाल चौहान ने बतायी थी कि रेलवे का एक कर्मचारी बवासीर से बुरी तरह परेशान था। पिछले वर्ष वह दिल्ली के एक डाक्टर से मस्सो मे इन्जेक्शन लगवाकर ठीक होकर आया था। इस वर्ष उसे मस्सो ने इतना तग किया कि शौच किसी भी तरह न उतरा तो वह फिर दिल्ली जाने को तैयार होने लगा। चौहान साहब ने उन्हे गीली मिट्टी लगोट मे बाधने की तथा फल खाने की सलाह दी और कहा कि एक दिन यह उपचार करके देखिये पश्चात दिल्ली जाने का पक्का विचार कर लीजिये। उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। पुल्टिस की ठडक से मस्से सिकुड गये और उसे शौच हो आया। दो तीन दिन मे वह ठीक हो गया।

चिकित्सा और पथ्य—

यह मानी हुई बात है कि सभी रोग और बीमारिया मानव लोक मे ही होती हैं। प्रश्न उठ सकता है कि पशुगण भी बीमार पड़ते हैं ऐसा क्यो ? बात यह है कि पशुओ के शरीर मे भी विजातीय द्रव्य होता है। पशुओ को यथेष्ठ जल और स्वच्छ वायु नही मिलती तो वह भी मानव की तरह बीमार हो सकते है। विजातीय द्रव्य का लदाव वृक्षो तक मे होता है। अत हमे दूर नही जाना चाहिए। इसमे दो मत कदापि नही हो सकेगे कि रोग का सम्बन्ध विजातीय द्रव्य से है। विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर करना ही चिकित्सा का मूल सूत्र है। अतएव स्मरणीय है कि चिकित्सा मे उन खाद्यो को वर्ज्य रखना चाहिये जो उपचार के कार्य मे असहयोग पैदा करे। मान लीजिये एक खासी का रोगी है, काफी कफ गिरता है। इसकी चिकित्सा हम कर रहे है और वह दूध, घी, मुंगफली और मेदे की चीजे खाता है। क्या आप ऐसी हालत मे अपनी चिकित्सा मे कामयाब हो सकेगे ? नामुमकिन! असभव!! तो कहने का अभिप्राय यह कि चिकित्सा के साथ अनुकूल पथ्य भी चलना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा मे फल सब्जी को ही मुख्य रूप मे पथ्य माना है। क्योकि फलो और सब्जी मे प्राकृतिक क्षारो की भरमार रहती है जो विजातीय द्रव्य को गलाने और शरीर से बाहर करने का काम बखूबी करते है। गाय का कच्चा दूध, किशमिश, शहद, आर्द्र नारियल, पके केले, गाजर इत्यादि पदार्थ जहा बलदायक है वहा रोग निवारक भी है। नमक, मिर्च मसाले, तैल, डालडा, मैदा, शक्कर, चाय, काफी तम्बाखू, शराब, भाग, गाजा इत्यादि वस्तुये या इनसे बनी चीजे चिकित्सा काल मे नही लेनी चाहिये। नीद कम लेना, अधिक मैथुन करना, अधिक कार्यव्यस्त रहना, समय पर शौचादि से निवृत न होना इत्यादि आदते आरोग्य परम्परा को आहत करती हैं, इनसे बचना चाहिये। गलत खान-पान और गलत रहन से हमेशा बचे रहना बुद्धिमानी की बात है किन्तु इतना न हो सके तो कम से कम उपचार के समय तो कुछ सयम रखना चाहिये। पथ्य और सयम की उपेक्षा करने पर भी किसी चिकित्सा से लाभ हो सकता है ऐसा दावा किसी भी चिकित्सक ने आज तक नही किया है।

श्री लक्ष्मीनारायण अलौकिक,
शामगढ (म० प्र०)

द्वितीय पुरस्कार प्राप्त—

मिट्टी-पानी द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा

श्री गङ्गाप्रसाद जी गौड़ 'नाहर' एन० डी० प्राकृतिक-चिकित्सा आचार्य

[१]

मिट्टी और उसकी अद्भुत रोगनाशक शक्ति

मिट्टी पञ्च तत्वो मे पाचवा अथवा अन्तिम तत्व है। यह अन्य चार तत्वो—आकाश, वायु, अग्नि तथा जल का रस है, निचोड है। यथा —

"एषां भूतानां पृथ्वी रसः।"
—छान्दोग्य उपनिषद्

हमारे शास्त्र मिट्टी को केवल एक-दो शक्ति समन्वित नही, अपितु सर्व शक्ति समन्वित मानते है। यथा —

"सर्वाधारे सर्व वीजे सर्व शक्ति समन्विते।
सर्व काम प्रदे देवि सर्वेष्ट देहिमे धरे॥"

यह है मिट्टी की शक्ति! मिट्टी जितनी सर्व सुलभ, सर्वत्र सुलभ तथा तुच्छातितुच्छ समझी जाने वाली है, इसकी गुणगरिमा उतनी ही महान् है।

मिट्टी शुद्धता का सबसे बडा साधन है। यह हर प्रकार की गदगी को साफ करने मे अद्वितीय है। हर प्रकार की गदगी, यानी रोगजनित गदगी अथवा स्वय रोग को भी दूर करने मे अद्वितीय है। शौच के बाद तथा स्नान करते वक्त मिट्टी का प्रयोग करने से शरीर की बडी अच्छी सफाई होती है। कृष्ण भगवान् मिट्टी से बडा प्रेम करते थे। आज भी जो बच्चे धूल-माटी मे खेलने के अभ्यासी हे वे उन बच्चो से, जो धूल-माटी से परहेज करते है, बलिष्ट और मजबूत होते हैं।

मिट्टी से सब प्रकार की दुर्गन्ध आसानी से दूर हो जाती है। इसलिये इससे अच्छे-से-अच्छा साबुन का काम लिया जा सकता है।

बालू मिली मिट्टी से दात खूब साफ होते है। इसलिये मिट्टी सबसे बढिया दन्त मञ्जन है।

मिट्टी के घर बनिस्वत पक्के घरो के अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होते है और सस्ते एव आरामदेह भी, क्योकि वे गर्मियो मे ठडे और सर्दियो मे गर्म रहते है। परन्तु इसके विपरीत पक्के मकान गर्मियो मे तपते है और सर्दियो मे बिना अगीठी जलाये पक्के मकानो मे रहना मुश्किल होता है।

यह मानी हुई बात है कि मिट्टी के बर्तनो मे किसी प्रकार का भी भोजन रखने से वह जल्दी खराब नही होता, जबकि धातु के बने बर्तनो मे देर तक कोई भी भोजन रखना या पकाना खतरे से खाली नही। मिट्टी की हाडियो मे पकाया हुआ भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि उत्तम है और वह अधिक स्वादिष्ट एव मीठा होता है।

मिट्टी मे सर्दी और गर्मी रोकने की शक्ति होती है। यही कारण है कि योगी लोग अपने नगे शरीर पर मिट्टी लगाये रहते हैं जिससे कडी से कडी धूप और कडाके के जाडे—दोनो मे शरीर की स्वत रक्षा होती है।

जल को निर्मल करने की अद्भुत् शक्ति मिट्टी मे होती है। कूपो, सरिताओ और सोतो का जल इसी कारण सदैव निर्मल रहता है। वैसे भी गदे पानी को साफ करने के लिये बालू या मिट्टी मे से उसे छानते है।

मिट्टी मे विलक्षण विद्रावक (Dissolving) शक्ति होती है। बडे से बडे फोडे पर गीली मिट्टी की पट्टी चढाने से, अपनी इसी विद्रावक-शक्ति से वह उसे पका देती है, बहा देती है और घाव को भर भी देती है।

मिट्टी मे विषादि को शोषण करने की विचित्र शक्ति होती है। साप, बिच्छू आदि के काटे पर मिट्टी का युक्तिपूर्वक लेप आश्चर्यजनक रूप से काम करता है। कारबकल जैसे फोडे का विष चूसकर मिट्टी की पट्टी उसे कुछ ही दिनो मे बैठा देती है जो उसकी शोषक शक्ति का ही प्रभाव होता है।

मिट्टी मे जगत् की सभी वस्तुओ का एक साथ रासायनिक सम्मिश्रण (Chemical Combination) सबसे अधिक विद्यमान होता है, जबकि किसी एक दवा या कई दवाओ के मिक्चर मे उतना रासायनिक सम्मिश्रण कभी सम्भव हो ही नही सकता। इसीलिये मिट्टी से बने मानव-शरीर के रोगाक्रान्त होने पर मिट्टी रूपी रसायन द्वारा उसे फिर स्वस्थ किया जाना सम्भव होता है।

मिट्टी यानी पृथ्वी मे एक विलक्षण विद्युत्-शक्ति होती है जो नगे पैर चलने वालो के शरीर मे ताजगी एव जीवन-शक्ति का सञ्चार करती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक वृक्षो मे वह शक्ति और जीवन भरती है जो उस स्थाई रूप से स्थिर होते हैं। इस मानी मे मानव को एक प्रकार का चलता हुआ सजीव वृक्ष ही मानना चाहिये, और यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार एक वृक्ष, पृथ्वी से अलग होकर जी पनप नही सकता, उसी प्रकार मानव भी पृथ्वी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके सुख-शान्ति का अधिकारी नही हो सकता। जिस प्रकार वृक्ष और पौधो को पृथ्वी से पोषण मिलता है उसी प्रकार मनुष्य भी नगे पाव पृथ्वी पर चलकर, पृथ्वी पर सोकर, अथवा उससे हर प्रकार का सीधा सम्पर्क बनाये रखकर पृथ्वी से बल, आरोग्य एव दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। केवल नगे पांव चलने वाले को किसी प्रकार का नेत्र-रोग नही सताता। आज जो छोटे-छोटे बच्चो तक की आखो पर चश्मा देखा जाता है उसकी एक खास वजह यह भी है कि हमारी आजकल की सभ्यता ने हमे नगे पैरो चलना तथा अन्य तरहो से पृथ्वी से सीधा सम्पर्क बनाये रखना मना कर रखा है जिससे हम अर्ध अन्धे आदि बने फिरने को मजबूर हो रहे है। प्रात -साय नगे पैरो मील-आध मील नित्य टहलने से शरीर के बहुत से रोग आश्चर्यजनक रूप से दूर हो जाते है।

योग-साधन के लिये नगी भूमि पर सोना एक आवश्यक नियम है, जिसका पालन प्राचीन भारत के योगी लोग करते थे और आश्चर्यजनक शारीरिक व आध्यात्मिक शक्तिया प्राप्त करके ससार को चकित कर देते थे। प्रसिद्ध योगी भर्तृहरि व गोपीचन्द भूमि पर ही सोकर बड़ी-बड़ी सिद्धियों के मालिक हुये थे। भगवान् राम १४ वर्षो तक पृथ्वी पर नगे पैरो चले और उसी पर बैठे-सोये जिससे उन्हे वह अपार शक्ति प्राप्त हुई जिससे वह रावण जैसे शक्तिशाली राक्षसराज पर काबू पा सके। मेघनाद न मरता यदि लक्ष्मण १४ वर्षो तक खुली धरती पर शयन करके योग-साधन न किये होते।

प्राचीन भारत के गुरुकुलो मे विद्यार्थीगण भूमि पर ही सोकर ज्ञान प्राप्त करते थे। वानप्रस्थियो एव सन्यासियो को भी पृथ्वी पर ही सोने की व्यवस्था थी।

जिन लोगो की रात्रि कष्ट से बीतती है—चिन्ता, बेचैनी तथा घबराहट घेरे रहती है, और जो आत्महत्या करना चाहते हैं, ऐसे लोगो को खुली पृथ्वी पर सोने से बडी शान्ति मिलती है। पेट के रोगो को दूर करने मे पृथ्वी पर सोना रामबाण औषधि का काम करता है। पृथ्वी पर सोने से उदर, आतें, हृदय आदि सभी अङ्गोपाङ्ग अपना-अपना काम जोरो के साथ करने लगते हैं। शरीर का विजातीय द्रव्य पसीना, मूत्र एव मल के रूप मे बडी आसानी से बाहर निकल जाता है जिससे शरीर निर्मल, नीरोग और नवीन हो जाता है और उसमे एक नयी सजीवनी-शक्ति भर उठती है।

पृथ्वी पर सोना, अनिद्रा रोग की एक ही दवा है।

बिजली के मारे हुये, जहर खाये हुये तथा साप के काटे हुये व्यक्ति को यदि जमीन मे लगभग दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमे तुरन्त बैठा दिया जावे और गर्दन व शिर को खुलाकर उसमे गीली मिट्टी भर दी जावे तो १ से २४ घटो तक मे रोगी के शरीर से जहर बिल्कुल निकल जायगा और वह मरने से बच जायगा।

शरीर मे रोग जनित बढी हुई गर्मी और विष को खीचकर अपने मे जज्ब कर लेने की असाधारण शक्ति और अद्भुत् क्षमता मिट्टी मे सर्वाधिक होती है, यही वजह है जो मिट्टी के विभिन्न प्रकार के प्रयोगो द्वारा शरीर के लगभग सभी रोगो को अच्छा करना सम्भव ही नही, अति सरल भी है।

मिट्टी एक ऐसी घरेलू दवाई है जो सर्वत्र सुलभ है, या सुरक्षित रखकर सुलभ की जा सकती है, और

जिसके सड़ने, बिगडने या खराब होने का सवाल ही नही उठ सकता। रोग निवारणार्थ इसके प्रयोग में कोई खटराग भी नही होता। मिट्टी को पानी में साना और रोग की जगह या पेडू पर ढग से रखकर ऊपर सूखा कपडा लपेट दिया, बस। सिर्फ इतना ही करने से सदा ही और हर हालत मे वह अच्छा कर देगी। मिट्टी के प्रयोग से हानि तो कभी होती ही नही और लाभ सोलहो आने होता है, जबकि अन्य दवाओ से हानि और लाभ—दोनो की संभावनाएं बराबर बनी रहती हैं।

शरीर की बहुत सी पीडायें तो मिट्टी के प्रयोग से कुछ ही क्षणो बाद 'छूमन्तर' हो जाती है जिसे देख कर ताज्जुब होता है। कठिन रोग भी धैर्य्यपूर्वक मिट्टी के प्रयोग करने से निश्चय ही दूर हो जाते है। रोगोपचार में ससार की कीमती से दवाइया बेपैसे की मिट्टी की बराबरी हरगिज नही कर सकती।

चाहे रोग शरीर के भीतर हो या बाहर या कही भी मिट्टी उसके विष और उष्णता को धीरे धीरे चूसकर उसे जड मूल से नष्ट करके ही दम लेती है। यह मिट्टी की खासियत है।

रोगो मे मिट्टी का सफल प्रयोग आज का आविष्कार नही है, अपितु भारत मे यह प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। कितने ही वैद्य और जर्राह आज भी बडे से बडे घाव को जिसे आधुनिक डाक्टर असाध्य बता कर छोड देते है गीली मिट्टी के प्रयोग से ही अच्छा कर देते है।

गाधी जी मिट्टी के बडे भक्त थे। वह मिट्टी को सभी रोगो की रामबाण औषधि तथा एक ईश्वरीय चमत्कार मानते थे। जब युरोप के लोग उनको सिर या पेट पर मिट्टी की पट्टी रखे हुये देख कर बहुत आश्चर्य करने लगते थे तो वह हसते हुये कहते—'मुझे डाक्टरी इलाज मे उतना विश्वास नही है जितना इस मिट्टी मे है। मिट्टी के बहुत से प्रयोग करते हुये मुझे मालूम हुआ कि मिट्टी एक अमूल्य वस्तु है।' शरीर मे जब कोई गडबडी होती बापू हर हालत मे मिट्टी का ही प्रयोग करते। पेट मे कुछ खराबी है तो मिट्टी का प्रयोग, चेचक है तो मिट्टी का प्रयोग, ज्वर है तो मिट्टी का प्रयोग, और यदि खून का दबाव बढ़ा है तो भी मिट्टी का ही प्रयोग चलता। अधिक गर्मी पडती थी तो बापू गीली मिट्टी की पट्टी सिर और पेट पर रखकर गर्मी से बचने के लिए उससे खस की टट्टी काम लेते तथा बरसाती रोगो से बचने के लिये बापू की कुनैन मिट्टी की पट्टी ही होती। इतनी आस्था थी बापू को नाचीज मिट्टी पर महज उसके अद्भुत रोगनाशक गुणो के कारण।

लदन से प्रतिवर्ष 'The Health and Cure hand-Book' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित होती है। उसके एक अक मे वहा के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक ए० पिट कैरन नोल्स एफ० एन० सी० ए० मिट्टी चिकित्सा की उपयोगिता के सम्बन्ध मे लिखते है—

रासायनिक प्रभाव के अतिरिक्त गीली मिट्टी की पट्टी लगाने पर जो आर्द्र उष्णता की उत्पत्ति होती है तथा जो मिट्टी के शरीर से चिपकने की क्रिया होती है, इन क्रियाओ के प्रभाव रोगो को उखाडने मे बड़े काम के सिद्ध होते हैं।

मिट्टी मिले हुये गाढे जल मे मेहन-स्नान करने से 'साइटिका' रोग अच्छा हो जाता है और पैर का कीचड स्नान करने से पैर के सारे रोग दूर हो जाते हैं। हाथ के जलने पर तथा उगली के कुचल जाने पर फौरन तमाम बाह पर कीचड का लेप बारम्बार करना जादू का काम करता है।

रोगो में मिट्टी का प्रयोग—

मिट्टी की उष्णकर पट्टी—

शुद्ध, साफ और ककड-पत्थर रहित बलुही मिट्टी इस काम के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है, और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी। इस प्रयोग के लिए आधी चिकनी मिट्टी का सफूफ और आधा समुद्रीबालू का मिश्रण सर्वोत्तम समझा जाता है। खेत की मिट्टी लेनी हो तो एक फुट नीचे की मिट्टी लें। मिट्टी को कूट पीस कर कपडे या चलनी से छान लें, फिर किसी लकडी के टुकडे या चम्मच से चलाते हुये उसे ठडा पानी डाल डाल कर गीला करें। गीली मिट्टी न बहुत कडी हो और न बहुत पतली हो, बल्कि रोटी के लिये गुधे आटे से थोडी ढीली हो। अब गीली मिट्टी को चम्मच से ही एक मोटे कपडे (मिट्टी की लगाने की जगह से थोड़ा बडा) पर दो अगुल या आध इच की

मोटाई मे फैलावे । तत्पश्चात उसको मिट्टी की ओर से मय कपडे के जिस पर मिट्टी फैलायी गयी है पेड़ू पर (नाभि के चार अगुल ऊपर के स्थान को ढकते हुये सारे पेड़ू पर) या तकलीफ के अन्य स्थान पर धीरे से रखदे और ऊपर से पूरी पट्टी पर फलालैन या कोई ऊनी कपडा रखकर किसी अन्य बडे कपडे से सबको बाधकर सेपटी-पिन आदि से सुरक्षित कर देना चाहिये । २० से ३० मिनट या इससे भी अधिक देर तक और कभी जैसी आवश्यकता हो, यह पट्टी लगाई जा सकती है ।

यह पट्टी खतरनाक से खतरनाक और सभी पुराने एव नये रोगो मे उपयोगी सिद्ध होती है । विशेषकर पुराने कोष्ठबद्धता, अपच, दस्त, ज्वर, पेट का दर्द, मल-मूत्रावरोध, पेट का फोडा, जलोदर, हैजा, पेचिश, अग्नि-मान्द्य, सग्रहणी, कैसर, अन्त्रपुच्छ शोथ, बवासीर, जिगर के रोग, जीभ के छाले, टासिल बढना, सभी प्रकार के फोडे, सभी प्रकार के चर्म रोग, विषैले जन्तुओ के डक तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगो आदि मे यह पट्टी जादू का असर दिखाती है ।

रोगावस्था मे इस पट्टी को लगाने से होता यह है कि शरीर का दबा रोग उखड जाता है । अर्थात् मिट्टी की यह पट्टी सर्व प्रथम उस रोग के कारणस्वरूप शरीर स्थित सञ्चित मल को उखाडती है, फिर उसे घुलाती है, तत्पचात् बाहर की तरफ खीचकर उसे मल-मार्गो द्वारा निकाल फेकती है, साथ ही उस आक्रान्त स्थान की सूजन, जलन और दर्द को भी मिटाती है और सबके अंत मे शरीर के भीतर आवश्यक ठडक और शान्ति पहु चाकर रोग का नामोनिशान तक मिटा देती है ।

गले की खराबी मे गले पर, छाती के रोगो मे छाती पर, स्नायुविक रोगो मे रीढ की हड्डी पर, जोड़ो के दर्द मे जोडो पर, आख के रोगो मे आख के चारो किनारो पर, जननेन्द्रिय-रोगो मे जननेन्द्रिय पर, पेट के रोगो मे पेडू पर, फोडो और घावो मे फोडो और घावो के स्थान पर तथा सारे शरीर मे विष व्याप्त हो जाने पर शरीर पर मिट्टी का लेप चढाया जाना चाहिये ।

किन्ही-किन्ही रोगो मे जल्दी लाभ के लिये रोग के स्थान तथा पेडू—दोनो जगहो पर इस पट्टी का प्रयोग किया जाता है, तथा प्राकृतिक चिकित्सा के अन्य उपचारो का भी सहारा लिया जाता है ।

मिट्टी की ठंडी पट्टी—

जब गीली मिट्टी की पट्टी को रोगाक्रान्त स्थान पर रखने के बाद उसको गर्म करने के हेतु ऊपर फलालैन या ऊनी कपडा फैलाकर नही बाधते बल्कि उसे खुला ही रखते है तो उसे मिट्टी की ठण्डी पट्टी कहते हैं । क्योकि तब वह ठण्डी पट्टी का काम करती है । आग से जल जाने पर, बिच्छू भिड तथा साप आदि जहरीले जानवरो के काटने पर, लू लगने पर, तेजाब से जलने पर, बिजली गिरने पर, बच्चा शीघ्र न पैदा होने की दशा मे, पेट मे बच्चा के मर जाने पर, आखो के रोगो मे शिर पीडा मे तथा पागलपन आदि रोगो मे इस पट्टी से बडा उपकार होता है ।

गरम मिट्टी की पट्टी—

जब मिट्टी को गीली करने के बाद उसे आग पर गरम-गरम प्रयोग मे लाते हैं तो वह गरम मिट्टी की पट्टी कहलाती है । बेंत जैसी वस्तुओ के घावो तथा मोचादि मे इसी पट्टी का व्यवहार होता है । स्त्रियो के गर्भाशय सम्बन्धी अनेक रोगो मे पेडू पर गरम मिट्टी की पट्टी से बडा लाभ होता हैं । परन्तु गर्भ गिरने की आशका के समय गरम पट्टी का प्रयोग कभी नही करना चाहिए ।

मिट्टी की उष्णकर पट्टी की ही भाति इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के बाद ऊपर से फलालैन या ऊनी कपडा बाधना जरूरी है ।

रज स्नान—

बदन की सफाई, शरीर की त्वचा की सफाई, तथा बालो की सफाई जितनी अच्छी मिट्टी से होती है उतनी साबुन के व्यवहार से कदापि नही हो सकती । इसके लिए शुद्ध साफ मिट्टी को कपडछन कर लेना चाहिये, विशेषकर कोठली की मिट्टी को जो देहातो मे बहुतायत से पायी जाती है । इसे समूचे शरीर को रगडना चाहिये । जब शरीर के अङ्ग-अङ्ग की त्वचा उस सूखी मिट्टी से रगडी जा चुके तो १०-१५ मिनट धूप मे बैठ जाना चाहिये । तत्पश्चात ठण्डे पानी से खूब मल-मल कर स्नान कर डालना चाहिए । इसको सूखी मिट्टी का स्नान या रज-स्नान कहते है । इस स्नान से त्वचा नरम,

लचीली एव कोमल तो हो ही जाती है, साथ त्वचा के छिद्रो के पू ी तौर से खुल जाने से शरीर का मल पसीने के रूप मे भरपूर वहिर्गत होने लगता है और त्वचा के छिद्र भलीभांति सास लेने के काविल भी हो जाते है जिससे अनगिनित चर्म रोग दूर हो जाते हैं। वरसाती फोडे-फु सिया तो इस स्नान से मन्त्रवत दूर हो जाते है।

आयुर्विज्ञान मे इस स्नान को गौओ की खुरो से उडती हुई मिट्टी से करने की व्यवस्था है। अखाडे की मिट्टी मे बार-वार गिरकर शरीर को मिट्टी से घिसना तथा व्यायाम द्वारा पसीना निकालकर रोमकूपो को खोलकर, मिट्टी से निकली हुई एक प्रकार की गैस को रोमकूपो द्वारा शरीर के भीतर खीचकर मास, अस्थि, तथा त्वचा को सुगठित करना भी इसी रज-स्नान की की श्रेणी मे आता है।

घना और पक्का रग, पुष्टता, सुगठित शरीर, एव नैसर्गिक सौन्दर्य रज-स्नान से ही प्राप्त होने सम्भव हैं। इस रज-स्नान से सन्तान न होने वालो को सन्तानोत्पत्ति तक मुमकिन है। श्रीमद् भागवत पुराण मे एक कथा है कि श्री कश्यप जी को जव सन्तान की कामना हुई थी तो उन्होने बारह दिन तक केवल दूध पीकर और मिट्टी से अपना समस्त शरीर मलकर नदी मे स्नान किया था। शरीर मे मिट्टी मलते समय उन्होने धरती माता की निम्नलिखित वन्दना भी नियमित रूप से की थी जिसके फलस्वरूप उन्हे सन्तान हुई—

त्वं देव्यादि वराहेण रसाया' स्थानमिच्छता।
उद्धृतामि नमस्तुभ्य पाप्मानं मे प्रणाशय॥

अर्थात्, हे देवि मृत्तिके! प्राणियो को स्थान देने की इच्छा से वराह भगवान ने रसातल से तुम्हारा उद्धार किया था। तुम्हे मेरा नमस्कार है। तुम मेरे पापो को नष्ट कर दो।

पङ्क स्नान—

महीन और कपडछन की हुई मिट्टी को जव पानी के साथ घोलकर उसे लेई या कीचड सदृश वना लेते हे और उससे आवश्यकतानुसार जव शरीर या उसके किसी भाग विशेष पर लेप या मालिश करते हैं तो वह पङ्क-स्नान करना कहलाता है। इसे ही अ ग्रेजी मे प्रसिद्ध Mud-Bath कहा जाता है जिसकी भूरि-भूरि प्र शसा डाक्टर ए० जुस्ट तथा डाक्टर फेल्क ने की है। किसी दरिया या अन्य जलाशय के किनारे का साफ कीचड जो पानी के घट जाने पर दृष्टिगोचर होता है पङ्क स्नान के लिये अधिक उपयोगी होता है। ऐसे कीचड मे यदि बालू भी मिली हो तो और अच्छा रहता है। वालूदार चिकनी मिट्टी या दो फसली मिट्टी का पङ्क भी इस स्नान के लिये बडा कारगर सिद्ध होता है। पक मे रोग की गर्मी को शान्त करके उसे मिटाने की शक्ति वहुत बढ जाती है।

इस स्नान के लिये पङ्क का सारे शरीर पर लेप करके धूप मे वैठ जाना चाहिए। जब एक लेप सूख जावे तो दूसरा लेप चढा लेना चाहिए। ऐसा १५ से ६० मिनट तक करते रहना चाहिए। तत्पश्चात्, मिट्टी के शरीर पर सूख जाने पर ठ डे पानी से मलमल कर स्नान कर लेना चाहिये। इस स्नान मे वालो को मलने के लिए एक खास किस्म की काली मिट्टी काम मे लायी जाती है जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते है।

इस स्नान से बहने वाले फोडे-फुन्सी, गदी त्वचा और उसकी सफेदी, खाज-खुजली, दाग, कोढ आदि सभी चर्म-रोग तथा रक्त-दोष दूर हो जाते है।

पङ्क-स्नान लेने का एक दूसरा तरीका और है। कद आदम वरावर या केवल छाती तक गहरा एक गड्ढा खोदा जाता है और उसको कीचड से भर दिया जाता है। तत्पश्चात् रोगी को नगा करके उसमे धसा कर खडा कर दिया जाता है। मजवूत रोगियो को आधा से एक घटा तक कमजोर रोगियो को ५ से १५ मिनट तक रोज उस गड्ढे मे रखा जाता है। एक मास तक ऐसा स्नान कर लेने से गठिया, चर्मरोग, कमर-दर्द, सिर दर्द, पेट दर्द, सूजन, कब्ज, तथा नस-नाडियो के दर्द निश्चय ही दूर हो जाते हैं। विषैले सर्प का विष इसी प्रकार के पङ्क-स्नान द्वारा दूर किया जाता है।

यह स्नान नया नही है। अमेरिका के आदि निवासियो मे यह वहुत पहले प्रचलित है। वहा पर प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भी महिने मे एक वार पङ्क-स्नान जरूर करता है। फ्रास और अमेरिका की शौकीन महिलायें भी एक प्रकार का कीचड, सादा जल-स्नान के पहले अपने वदन पर नित्य मलती हैं जिससे उनकी चमडी मुलायम

और चमकीली हो जाती है। हमारे देश मे पंजाब की स्त्रिया मुलतानी मिट्टी के उबटन का प्रयोग करती हैं जो पङ्क-स्नान का ही एक रूप है।

बालू भक्षण—

बालू मिट्टी ही है जिसका स्वास्थ्य के लिये कम महत्व नही है। हिन्दू-ग्रन्थो मे बालुका या रेणु फाकना एक धार्मिक कृत्य माना जाता है जिसका महत्व यही है कि बालू हमारे शरीर के लिये एक उपयोगी पदार्थ है। प्राकृतिक दशा मे खाई जाने वाली खाद्य वस्तुओ जैसे साग-भाजी, खीरा, ककडा आदि के साथ बालू का अश कुछ न कुछ सदैव विद्यमान रहता है, पर हम अज्ञानता के कारण उसे धोकर बहा देते है। भोजन के साथ खाये गये बालू के कण हमारी पाचन-शक्ति को ठीक रखने मे बडा काम करते है। पहाडी चश्मो का पानी क्यो स्वास्थ्यवर्द्धक होता है? इस प्रकार का पानी पीने से भूख क्यो अधिक लगती है? पाचन क्यो ठीक रहता है? इसलिये कि सोतो के पानी मे बालू की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य मिली होती है जिसे हम पानी के साथ पी जाते हैं। लोग कहते हैं, अमुक कूयें का पानी पीने से अन्न पचता है। इसका अर्थ यही है कि उस कुयें के पानी मे बालू मिला हुआ है, अथवा उसका पानी बालू के ढेर से गुजरता है और थोडा बहुत बालू अपने साथ लाता है जिसे पीकर हम लाभ उठाते हैं। यही कारण है कि उन नदियो, जो पहाडो से बह कर आती हैं और अपने साथ बालू का ढेर लाती है, का जल असाधारण रूप से पाचक सिद्ध होता है।

बालू मे छूतैले जहर को मारने की बडी विलक्षण शक्ति होती है। बालू प्रकृति की ओर से मानो छूत और जहर मारने वाली दवा का काम करती है। प्रयोगो से सिद्ध हो चुका है कि बालू मानव-स्वास्थ्य के लिये एक बडी ही लाभकारी वस्तु है।

जिसको कोष्ठबद्धता हो, पाखाना खुलासा न हो वह यदि खाना खाने के बाद एक चुटकी समुद्री बालू दिन मे दो तीन बार निगल ले तो दूसरे दिन पेट की आतें ढीली पड जायगी और मल आसानी से निकलने लगेगा। फलत कब्ज दूर हो जायगा।

(२)
जल और उसकी विचित्र रोगनाशक शक्ति

जल प्राण-रक्षा के लिए प्रसिद्ध पञ्चतत्वो में चौथा तत्व है। यह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना श्वास लेने के लिए वायु।

तृप्त करना, प्राणियो को जीवित रखना, ताप की निवृत्ति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना, श्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबंध और निन्द्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के रोगो को दूर करना, छ प्रकार के रसो का कारण बनना, तथा प्राणियो के लिये सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के साधारण गुण एव कार्य हैं।

जल के अनेक नाम हैं। उनमे से 'जीवन' और 'अमृत' नाम जल ही हैं। जल प्राणियो का प्राण है। यथा—

'जीविना जीवनम् जीवोजगत् सर्वन्तु तन्मयम्।'

अर्थात्—जल प्राणियो का प्राण है। सम्पूर्ण संसार जलमय है। मतलब यह कि जल वर्षण से हमे खाद्य-पदार्थ मिलते हैं, जल मे सम्पूर्ण रोग नाश करने की शक्ति विद्यमान है, तथा आश्रय और ससर्ग भेद से जल मे जीवन दान के कितने ही अन्य गुण पाये जाते हैं जिनसे उत्तम स्वास्थ्य एव दीर्घायु की उपलब्धि होती है।

वेदो मे जल का एक नाम सोम भी है और वहा इस सोम को ही बलवर्द्धन, द्युम्नवर्द्धन, शौर्यवर्द्धन, आप्यायन करने वाला, तथा मधुमत्तम आदि कहा है। वेदो मे स्थान स्थान पर आया है कि शरीर के सवर्द्धन और रक्षण आदि सोम अर्थात् जल के स्वाभाविक सौम्य कार्य हैं। वेदो मे जल द्वारा रोग निवृत्ति के वर्णन स्वरूप कितनी ही ऋचायें हैं। जिनमे से कुछ नीचे दी जाती हैं—

'म्योभुवस्तान ऊर्जेद धातान महेरणाय चक्षसे।'

—ऋ० मड० ७ अ० ६ म० ५

अर्थात्, जल अत्यन्त आरोग्यप्रद एव बलदायक है।

'जलाषणाभिषिचत जलाषेणोपसिचत।
जलाषमुग्रं भेषजं तेननोमृड जीवसे॥'
—ऋ० मं० ६ अ० ४७ मं० २

अर्थात्, भगवान् आदेश करते हैं कि जल अभिसिचन करो, जल से उपसिचन करो। जलसर्वप्रधान औषधि है। इसके सेवन से जीवन सुखमय बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्द्धक होती है।

'अप्स्वन्तर मृतमप्सु भेषजम्।'

अर्थात्, जल मे अमृत है, जल मे औषधि है अथवा आरोग्यदायक गुण है।

'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तविश्वानि भेषजा सोमने।'

अर्थात्, सृष्टि रचियता परमात्मा ने हमसे कहा है कि जल मे सब औषधियां हैं।

'आप. पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।'

अर्थात्, जल से हमारी चिकित्सा हो और रोगो से शरीर का बचाव होकर हम दीर्घायु बनें।

'आप इद्वा भेषजीरापो अमीवचातनी.
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वामु ञ्चन्तु क्षेत्रियात्।'

अर्थात्, जल निस्सन्देह औषधि है, जल रोगनाशक है, जल सब रोगो की दवा है। वह जल मुझे क्षेत्रीय रोगों से मुक्त करे।

बहुतों का ख्याल है कि 'जल-चिकित्सा' नयी चीज है और जर्मनी के आधुनिक जल चिकित्सा के आचार्य लूई कूने इसके आविष्कारक है, पर यह धारणा गलत है। क्योकि भारत मे बहुत प्राचीन समय से चिकित्सा के रूप में जल का व्यवहार होता था। इसके प्रमाण मे आयुर्वेद के कुछ अवतरण नीचे दिये जाते हैं—

उत्तान सुप्तस्य गंभीरताम्र
कांस्यादि-पात्रे निहिते च नाभौ।
शीताम्बु-धारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाह त्वरितं ज्वरञ्च॥'

अर्थात्, पित्त-ज्वर के रोगी को चित लिटाकर उसके पेड़ू पर तावे या कासे का एक गहरा बर्तन रखे और ऊपर से ठडे पानी की मोटी धार गिरावें। यह क्रिया पित्त-ज्वर को तुरन्त शान्त करती है।

पित्त के निवारण मे 'यन्त्रवारि' या फुहारे के स्नान का जिक्र है।

इसी प्रकार आयुर्वेद मे जलद (वर्षा का पानी), रविकर (सूर्य-किरण), बस्ति (एनिमा), स्वेद (भाव-नहान), समर्दन (मालिश) तथा 'आर्द्र वस्त्रावगुन्ठन (वेट शीट पैक) आदि प्राकृतिक उपचारो की चर्चा है।

जल के प्रयोग से रोग क्यो दूर होते हैं, इसके प्रबल वैज्ञानिक कारण तथा जल मे आरोग्यकारक गुणों (Remedial Powers) की विद्यमानता है। जल किसी वस्तु के सम्पर्क मे आने पर अपनी गर्मी या ठडक उसे बडी शीघ्रता से दे सकता है और उसकी गर्मी या ठडक ले सकता है। जल किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा अधिक गर्मी या ठडक रोके रह सकता है। जल होने के कारण चिकित्सा-विधियो मे आसानी से काम आ सकता है। जल अन्य चीजो को घुलाकर बहा सकता है जिसकी वजह से ही वह स्नान, एनिमा, डूश आदि के लिये उपयुक्त होता है। शरीर मे ताप-सम्बन्धी तीन यन्त्र है। पहले को उष्ण-उत्पादक, दूसरे को उष्ण प्रसारक और तीसरे को उष्णवाहक कहते हैं। इन्ही के द्वारा शरीर मे गर्मी का उत्पादन, प्रसारण और बहिष्करण होता है। जल इन तीनो को प्रभावित करता है, विशेषकर पिछले दो यन्त्रो को।

ठडा जल जब शरीर के सम्पर्क मे आता है तो उस का महत्वपूर्ण प्रभाव शरीर की सूक्ष्म शक्तियो पर पडता है जिससे शरीर मे विद्युत्-शक्ति की वृद्धि हो जाती है, जिससे शारीरिक जीवनी-शक्ति को स्फूर्ति और बल मिलता है जो रोगो को दूर करने मे काम आता है। मतलब यह कि जीवनी-शक्ति, जो रोगो को दूर करती है, केवल गर्मी या सर्दी के निरन्तर ससर्ग से प्रभावित नही होती। वह तो उत्तेजित होती है गर्मी और सर्दी के निरन्तर संसर्ग से प्रभावित नही होती। शरीर स्वभावत गरम होता है, अत जब उस पर ठडे जल का प्रयोग किया जाता है तो विद्युत्-शक्ति का प्रवाह होने लगता है जिससे जीवनी-शक्ति बलवती हो जाती है और तब वह कठिन से कठिन रोग को भी जड-मूल से उखाड फेंकती है। ठडे जल के प्रयोग के फलस्वरूप शरीर मे जो विद्युत्-शक्ति का प्रवाह होने लगता है, उससे शरीर मे कई अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते

हैं जो रोगो को दूर करने में सहायक सिद्ध होते है। जैसे, उस विद्युत्-शक्ति द्वारा जल के परमाणु अपने मूल तत्वों में विभक्त हो जाते हैं जिससे शरीर मे आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा ओजोन गैस की वृद्धि हो जाती है। आक्सीजन और ओजोन से शरीर के विजातीय द्रव्य (दोष या विष) जल जाते है और शरीर निर्दोष और निर्मल हो जाता है।

रोगों में जल के प्रयोग

बाह्य प्रयोग

कटि-स्नान—

तकियादार टब या छिछली बडी नाद मे ठडा पानी इतना भरना चाहिये कि उसमे बैठने पर पानी नाभि तक आ जाय। पैर टब के बाहर व किसी छोटी चौकी या ईंट पर रखे जा सकते है। रोगी की पीठ टब के पिछले भाग से लगी रहती है। टब मे बैठने के बाद किसी खुरदरे कपडे या तौलिया से पेडू को दाहिनी ओर से बाई ओर और बाई ओर से दाहिनी ओर हल्के-हल्के पर जल्दी-जल्दी मलते हैं। सर्दियो मे टब मे बैठते वक्त घुटनो के नीचे टागो और नाभि के ऊपर के भाग को कपडे से ढके रखना लाभदायक है।

यह स्नान ५ से २० मिनट तक लिया जा सकता है या आवश्यकतानुसार इससे भी अधिक समय तक लिया जा सकता है। स्नान थोडे समय से आरम्भ करना चाहिये और रोज एक-एक मिनट बढाकर निर्दिष्ट समय तक पहुँचना चाहिये।

स्नान के बाद भीगे हुये स्थान को सूखे कपडे से पोछकर तथा तुरन्त कपडे पहनकर किसी विधि से शरीर मे गर्माहट लानी चाहिये। इसके लिये टहलने निकल जाना या कोई हल्की कसरत करना ठीक रहता है। इस स्नान के एक घटे बाद तथा तीन-चार घटे पहले कुछ नही खाना चाहिये।

कटि-स्नान पेट को साफ करने के साथ-साथ जिगर, तिल्ली एव अन्तडियो के रस-स्राव को भी बढाता है जिससे रोगी की पाचन-शक्ति मे असाधारण वृद्धि हो जाती है। शारीरिक स्नायु मण्डल द्वारा इस स्नान का प्रभाव समस्त शरीर पर पडता है जिससे प्राय सभी रोगो मे इससे लाभ होता है। सक्षेप मे हम डाक्टर लूई कूने के शब्दो मे बडे जोरदार शब्दो मे कह सकते है कि कोई भी ऐसा रोग नही है जिसमे कटि-स्नान लाभ नही पहुँचाता।

मेहन-स्नान—

कटि-स्नान के टब मे ही मेहन-स्नान लिया जा सकता है। टब मे एक छोटी चौकी रखनी चाहिये। टब मे इतना ठंडा पानी भरना चाहिये कि वह चौकी के बराबर आ जावे। चौकी पर खुले बदन बैठकर पैरो को अगल-बगल टब के बाहर रखना चाहिये। अब बैठे-बैठे एक कपडे के टुकडे को पानी मे भिगो-भिगोकर उससे मूत्रेन्द्रिय के घूघट को बाएं हाथ की अगुलियो से बीच मे पकडकर उसकी खाल के अग्रभाग को दाहिने हाथ से धीरे-धीरे मलना चाहिये। यह क्रिया १० से २० मिनट तक की जा सकती है। इस स्नान के लिये स्त्रियो को भगोष्ठ के दोनो तरफ के ओठो को धीरे-धीरे धोना चाहिये।

इस स्नान के बाद भी कटि-स्नान की तरह शरीर को गरम कर लेना चाहिये।

जिन व्यक्तियो के घूघट की यह त्वचा नही रहती जैसे मुसलमानो मे, वहा सीवन, अण्डकोष के इर्द-गिर्द और रीढ के निचले भाग को मलना चाहिये।

कमजोर रोगियो और स्त्रियो को इस स्नान से सर्वाधिक लाभ पहुँचता है। आधे घटे तक मेहन-स्नान करने से भयानक श्वास-रोग भी कम पड सकता है। दमा, न्यूमोनिया, डिफ्थीरिया और कैंसर आदि रोगो मे भयकर श्वास-कष्ट इस स्नान से बडी जल्दी बद हो जाता है। सभी प्रकार के स्नायविक रोगो मे इससे बहुत ही लाभ होता है। मानसिक विकार, अनिन्द्रा-रोग, स्नायु-शूल, साइटिका-रोग, उन्माद तथा हिस्टीरिया आदि रोगो की यह स्नान एक ही दवा है।

भीगी चादर की लपेट—

खाट पर ३-४ कम्बल पूरे-पूरे बिछाइये। कम्बल के ऊपर ठडे पानी मे भिगोई और निचोडी एक चादर फैला दीजिये। पीठ की जगह एक भीगा और निचोडा कपडे का टुकडा रख दीजिये। कमर के लगोट या वस्त्र को भी गीला कर लीजिये। तत्पश्चात् चादर से सिर

को बाहर रखते हुये रोगी को उस चादर पर चित लेटा दीजिये। रोगी के हाथो को बाहर रखकर पहले उस छोटे से भीगे कपड़े को जो छाती पर लपेटने के लिये रखा था कसकर लपेट दीजिये। उसके बाद चादर को इस तरह शरीर के इधर-उधर लपेटें कि शरीर का हर हिस्सा उससे लिपट जाय। चादर की लपेट ढीली न रहे बल्कि चमडे मे चिपकी रहे। बाद मे कम्बलो को ऊपर से एक-एक करके लपेट दीजिये।

चादर लपेटने के पहले रोगी का चेहरा और सिर ठडे पानी से भली भाति धो देना चाहिये और एक गिलास गर्म पानी उसे पिला देना चाहिये। चादर की इस लपेट के समय एक ठडा भीगा गमछा सिर पर रखना चाहिये और उसे बदलते रहना चाहिये।

४५ मिनट से एक घटा तक इस लपेट को रखा जा सकता है। जब पसीना बह निकले या रोगी बेचैनी का अनुभव करने लगे तो लपेट खोल देना चाहिये। लपेट के कपडो को एक-एक करके आहिस्ते-आहिस्ते खोलना चाहिये। फिर समशीतोष्ण जल मे गमछा भिगो कर रोगी के बदन को पोंछ कर साफ करना चाहिये। बाद सूखी मालिश आदि से उसके शरीर को गरम कर देना चाहिये।

शरीर को दोषरहित करने की यह प्रणाली सर्वोत्तम है। ज्वर, पीलिया-रोग, पुराना मलेरिया, चेचक, मोटापा, सर्व प्रकार के स्नायविक रोग, अनिद्रा- रोग, टायफायड, हृदय-रोग, तथा बहुमूत्र आदि रोगो मे यह प्रयोग जादू का काम करता है।

वाष्प स्नान—

इस स्नान के लिये बेत की बुनी बेंच या मामूली मूज की बुनी नगी खाट पर नगे होकर लेटना चाहिये। ऊपर से कम्बल डाल लेना चाहिये। खाट के नीचे के हिस्से को कम्बल आदि से घेर कर ऐसा इन्तजाम करना चाहिये कि खाट के नीचे भाप का बर्तन रखने पर भाप इधर उधर न जाकर सीधे रोगी के बदन पर लगे। अब चार ढक्कनदार पतीलियो मे पानी उबालें। जब भाप निकलने लगे तो उठाकर खाट के नीचे ले जाना चाहिए और एक को पैरो के नीचे तथा दूसरी को पीठ के नीचे रख, कर उनके ढक्कन धीरे-धीरे खोलना चाहिए ताकि शरीर मे भाप लगे। भाप कम हो जाने पर पहली पतीलियो को दूसरी भाप निकलती हुई पतीलियो से बदल देना चाहिये। इस स्नान के पहले सिर, गर्दन व मुख को ठण्डे पानी से अच्छी तरह से धो लेना चाहिये। उसके बाद एक गिलास पानी पीकर भाप के लेने लिये लेटना चाहिए। सिर मुख को कम्बल के बाहर रखना चाहिये तथा सिर पर ठण्डे पानी मे डुबोया और बिना निचोडा एक गमछा सिर पर रखना चाहिये और उसे तर करते रहना चाहिये। उसी वक्त एक दूसरी ठडे जल से भीगी तौलिया हृदय पर रखनी चाहिये।

१५ से २० मिनट तक यह स्नान काफी होता है। उसके बाद समूचे शरीर के पसीने को कम्बल के अन्दर ही अन्दर भीगी तौलिया से पोंछना चाहिये। सबके अन्त मे १० मिनट का एक कटि-स्नान लेना चाहिये।

वाष्प-स्नान को प्राकृतिक चिकित्सा मे सर्व व्याधि नाशक कहा गया है। क्योकि इस स्नान से थोडा बहुत लगभग सभी रोगो मे लाभ होता है। सभी अजीर्ण रोगो मे यह नवजीवन ला देता है। वात रोगो की तो यह एक रामबाण औषधि है। इसके अलावा मूत्रग्रन्थि की सूजन, चर्म रोगों, मूत्रविकार, पथरी, गर्मी, सूजाक, दमा, हड्डी के रोग, लीवर व पित्ताशय के रोग तथा हर प्रकार के ट्युमर आदि मे यह स्नान बडा लाभ करता है।

पावो का गरम स्नान—

किसी स्टूल या कुर्सी पर बैठकर पैरो को गरम पानी की बाल्टी मे रखना चाहिये। शुरू मे बाल्टी मे पानी इतना हो कि पानी टखनो से कुछ ऊपर तक रहे। पानी हल्का गरम हो। पानी ज्यो-ज्यो ठण्डा होता जाय बाल्टी मे तेज तेज गरम पानी थोडा थोडा मिलाते रहना चाहिए। स्टूल पर बैठने के बाद एक कम्बल इस प्रकार ओढना चाहिये कि सारा शरीर ढका रहे और बाल्टी भी कम्बल के अन्दर आजाय। सिर पर ठण्डे पानी से भीगा तौलिया रखना चाहिये जिसे हमेशा तर करते रहना चाहिए। स्नान के आरम्भ मे थोडा गरम पानी पी लेना चाहिए। १० से २० मिनट यह स्नान ले। बाद मे पैरो को ठडे पानी से धोकर पोंछ देना चाहिए। पसीना आगया हो तो सारे शरीर को जल से भीगे और निचोडे तौलिये से पोंछ देना चाहिये और कपडे पहन लें।

रात को सोते समय यह स्नान अधिक लाभप्रद है।

इस स्नान से आतो, मूत्राशय, तथा पेड्ह के रोग शान्त होते हैं। मासिक की गडबडी मे इस स्नान से बड़ा लाभ होता है। सिर दर्द, पाव का दर्द, पाव का घाव, पावो का ठण्डा पडना तथा वात रोगो मे भी यह स्नान लाभकारी है।

गरम ठण्डी सेक—

एक बाल्टी मे ठडा जल और दूसरे मे काफी गरम जल रखिये। दोनो मे एक एक तौलिया चौपंत कर डाल दीजिये। अब शरीर के जिस भाग पर सेक देना है उस पर एक सूखा कपड़ा बिछा दीजिये। उसके बाद पहले गरम जल वाले तौलिये को निकालकर और निचोडकर शरीर के आक्रान्त भाग पर सूखे कपडे के ऊपर फैलाइये। फिर २-३ मिनट बाद ठडे जल वाले तौलिये को निकालकर और निचोड कर गरम तौलिये को हटालेने के बाद उसकी जगह फैलाइये। २ मिनट बाद इस ठडे तौलिये को भी हटा लीजिये और पुन गरम तौलिये को निचोड कर उसकी जगह फेलाइये। इसी तरह बारी बारी से आध घटे या इससे भी अधिक समय तक गरम-ठडी सेक कीजिये। यह सेक गरम से आरम्भ किया जाता है और शीत सेक से समाप्त किया जाता है।

यह सेक पीडा व दर्द वाली लगभग सभी व्याधियो को शात करती है। यह सब प्रकार के लेप व मरहमो से कही श्रेष्ठ है।

जल-पान—

भोजन करने के पहले और भोजन करने के दो घटे बाद थोडा-थोडा करके प्रचुर मात्रा मे जल पीना कब्ज मे गुणकारी है। यदि नियमपूर्वक दिन भर मे ८ गिलास पानी पिया जाय तो कुछ ही दिनो मे मधुमेह जैसा भयानक रोग भी अच्छा हो जाता है। अधिक जल पीने से रक्त शुद्ध होता है, पेशाब खुलकर आता है, खाना शीघ्र पचता है, तथा स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। लू के दिनों मे पेट जल से भरा रखने से लू से रक्षा होती है।

शाम को ताम्र पात्र मे रखा जल प्रात काल उठते ही धीरे धीरे पेट भर पीना उष पान कहलाता है। इस उष पान के अनगिनित लाभ है। उष पान अमृत-पान का पर्यायवाची है। इससे पेट साफ रहता है, पित्त-जनित रोग नही सताते, और रक्त शुद्ध होकर उससे हृदय, मस्तिष्क एव स्नायु मंडल को बल प्राप्त होता है। उष पान से मनुष्य कभी बीमार नही पडता, बुढापा नही सताता, १०० वर्ष से पहले आदमी मरता नही, बवासीर, सूजन, सग्रहणी, ज्वर, मोटापा, वाक् रोग, नेत्र रोग आदि लगभग सभी रोग दूर हो जाते है, ऐसा वैद्यक की किताबो मे उल्लेख है। एक श्लोक यह है।—

अर्शः शोथ ग्रहण्यो ज्वर जठर जरा कोष्ठ मेदो विकारा·।
मूत्राघातास्रपित्त श्रवण गल शिर· श्रोणि शूलाक्षिरोगा·॥
ये चान्ये वातपित्त क्षतज कफकृता व्याधय· संति जन्तो–
स्तांस्तानभ्यास योगादय हरित पय· पीतामते निशायाः॥

जुकाम-खासी मे यदि रात को सोते वक्त और सवेरे जागने पर केवल १ गिलास गरम पानी २-३ दिनो तक पीलिया जाय तो जुकाम-खासी अवश्य अच्छी हो जाती है। गरम जल पीने से पेट के दर्द और मरोड़ मे लाभ होता है।

एनिमा—

किसी तख्त पर उसके पैताने को सिरहाने से दो इच ऊचा रखकर सीधे लेट कर लेना चाहिये। एनिमा का बर्तन लेटने की जगह से चार फीट की ऊचाई से अधिक ऊचा नही होना चाहिये। बर्तन मे लगभग ढाई सेर गुनगुना पानी भरना चाहिये। ८-१० बूद कागजी नीबू का रस जल मे मिला देना चाहिए। एनिमा के नोजल को खोलकर थोडा पानी निकाल देना चाहिये ताकि हवा बाहर निकल जाय। गुदा मे डालने वाली नली को चिकनाई से चुपड़ लेना चाहिये तब उसे गुदा मे धीरे-धीरे प्रवेश कर पेट मे पानी जाने देना चाहिये। भीतर पानी जाते समय पेडू को मलते रहना चाहिए। जब पानी पेट मे जा चुके तो थोड़ी देर रुक कर पाखाने जाना चाहिये।

एनिमा से कब्ज, गर्मी, सुजाक, मथर ज्वर, आतो के रोग दूर होते है।

जलनेति—

एक गिलास स्वच्छ ताजा जल लीजिये। जो नथुना चल रहा हो उसे खुला रखिये और दूसरे का अगुली से बद कर दीजिये। गिलास को खुले नथुने के पास लेजा

कर धीरे धीरे सास खीचिये ताकि पानी साम के साथ उपर चढकर मुह मे आजाय, अब सास वन्द कर दीजिए और पानी को मुह से बाहर डाल दीजिये। ५-७ बूंद पानी एक नथुने से चढाकर फिर उतना ही दूसरे से चढाइये। यदि जल चढाने मे कुछ कठिनाई हो तो उस जल मे थोडा सेधा नमक मिला लीजिये, पानी तुरन्त चढने लगेगा। यही जल नेति है। इससे गर्दन के ऊपर के सारे रोग मिट जाते है। कहा भी है—

कान, नाक, अरु दांत का रोग न व्यापै कोय।
उज्ज्वल होवे नैन ही नित नेति कर सोय॥

गणेश–क्रिया या गुदा-स्नान—

एक बर्तन मे जल लेकर और उसमे थोडा जल हाथ से उठाकर ठीक पाखाना करने के मोकाम पर फेंकना चाहिये। तत्पश्चात् उस जगह को हाथ से खूब रगडना चाहिये। इस क्रिया को २ से ५ मिनट तक बार बार दोहराना चाहिये। उसके बाद एक अगुली को ठडे पानी मे भिगो-भिगोकर बार-बार पाखाना के मोकाम के भीतर प्रविष्ट करना और निकालना चाहिये। यह क्रिया १ मिनट तक करनी चाहिये।

इस क्रिया से पाखाना खुलासा होने लगता है और कब्ज टूटता है।

योनि स्नान—

योनि-वस्ति की नली को एनिमा के नोजल मे चढाकर और एनिमा यन्त्र मे जल भर कर एनिमा लेने की भाति ही योनि-मार्ग को धोया जाता हैं। इसी को योनि स्नान कहते है।

इस क्रिया से स्त्रियो की योनि की ताकत बढती है, तथा गर्भाशय की स्थिति सुधारी जाती है। योनि सम्बन्धी समस्त बीमारियो मे इस स्नान से बडा लाभ होता है।

मेढ् स्नान—

योनि-स्नान की भाति ही जब पुरुष जननेन्द्रिय के छिद्र मे ठडे जल का धार डालकर उसे धोया जाता है तो उसे मेढ्र-वस्ति कहते है। इस स्नान मे पुरुष जननेन्द्रिय और मूत्राशय की समस्त व्याधिया दूर की जाती है।

गजकरणी—

प्रात काल शौचादि से निवृत हो इच्छाभर जल पीजिये। मुंह मे उगली डालकर फिर उल्टी कर दीजिये। यही गजकरणी है।

अजीर्ण, धूप मे भ्रमण, पित्त वृद्धि, जीर्ण कफ व्याधि, रक्तविकार, आमवात, त्वचा-रोग, दमा आदि मे यह क्रिया अधिक लाभदायक है। कहा है—

गज कर्म यह जानिये पियै पेट भर नीर।
फेरि युक्ति सो काढिये रोग न होय शरीर॥

उपर्युक्त के अतिरिक्त जल के अन्य और कितने ही प्रयोग हैं जिनसे रोगो को दूर करने मे मदद ली जाती है, पर उन सबका विवरण विस्तारभय के कारण इस छोटे से लेख मे देना शक्य नही है। उनमे से कुछ प्रयोगो के नाम ये है—

गरम जल-स्नान, एप्समसाल्ट बाथ, न्युटरल फुल बाथ, सतत गरम जल स्नान, काक स्नान (Shollaw Bath) क्रम वर्धमान स्नान (Graduated Bath), गर्म जल का तरेरा (Affusion), गरम बैठक स्नान, गरम ठडा बैठक स्नान, तौलिया स्नान (Sponge Bath), ठढा-गरम तौलिया स्नान, जापानी गरम स्नान, औषजन स्नान, भूसी स्नान, नीम स्नान, गरम जल से सेक (Fomentetuin), शखप्रक्षालन, वर्षाजल-स्नान, समुद्र स्नान, तैर कर स्नान, खनिज जल स्नान, झरना-स्नान, (Shower Bath), झंप स्नान, बैडस्नान, प्राकृतिक स्नान (ए० जुस्ट), रीढ-स्नान (Spinal Bath), नेत्र स्नान, ठडा जल पट्टी, गरम जल पट्टी, आचमन तथा कर्ण-स्नान आदि।

—श्री गगाप्रसाद गौड 'नाहर' एन० डी०
प्राकृतिक चिकित्सा आचार्य, रजना-निवासी,
उदयगज, बाग आइना बीवी, लखनऊ

तृतीय पुरस्कार प्राप्त—

मिट्टी पानी द्वारा विभिन्न रोगों की चिकित्सा

श्री आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायन खरे ए०, एम० डी० एस०

मैं इस साधारण औषधि मिट्टी के उपयोगो का उल्लेखन कर रहा हूँ जिससे कि प्रत्येक भारतीय मिट्टी का प्रयोग करके अपने शरीर को रोगमुक्त कर स्वास्थ्य प्राप्त करे। मिट्टी का प्रत्येक आयु वाला प्राणी प्रत्येक ऋतु मे किसी भी समय प्रयोग कर सकता है। इसमे कोई भय नही है।

आयुर्वेद शास्त्र मे मिट्टी के भेद निम्न प्रकार से है-

१–खडिया मिट्टी	४–गेरूमिट्टी
२–काली मिट्टी	५–तालाब का कीचड
३–पीली मिट्टी	६–बालू रेत

खडिया मिट्टी—यह मिट्टी शीतल, मधुर लेखन है। दाह, रक्तविकार, विपप्रकोप, शोप, कफ वृद्धि और नेत्र विकार नाशक है। इसको दातो पर मलने से दात स्वच्छ होते है।

गोपी चन्दन—यह भी सफेद मिट्टी जैसा होता है। यह कासीस के विप और उदर में कोच का चूर्ण जाने पर मट्ठा के साथ पिलाया जाता है। मुह के छालो मे या विप स्पर्श से त्वचा पर छाले हो तो इसको घाव पर घिसकर लगाने से लाभ होता है।

सोना गेरू–यह बालको के उदर रोगो मे उपयोगी है। यदि बालक का उदर मिट्टी खाने से बढ गया हो तो सोनागेरू को घी मे सेककर शहद मिलाकर खिलाने से पेट की मिट्टी निकल जाती है। भुने हुये सोनागेरू के चूर्ण को शहद के साथ खाने से हिचकी शान्त हो जाती है तथा श्वेत-रक्त प्रदर में लाभ होता है।

काली मिट्टी–खेतो मे जो मिट्टी चिकनी एव काली होती है वह अधिक उपयोगी होती है। यह मिट्टी शीतल, विपघ्न, शोथहर एव पीडा को नष्ट करती है। रक्त विकार, दाह, क्षत, मूत्रकृच्छ, उदरशूल, जहरीले फोडे और खुजली मे लाभदायक है। यह मधुमक्षिका, ततैया और मकड़ी आदि के विप का शोषण करती है।

काली मिट्टी के प्रयोग—

इस मिट्टी का प्रयोग विविध रोगो मे इस प्रकार से किया जाता है—

१ सर्पदंश पर—जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो उसी समय उसके ऊपर रस्सी से उस भाग को बाध दे। इसके बाद काली मिट्टी की लुगदी को सर्पदंश के स्थान पर बाध देना चाहिये। इससे विप मिट्टी मे खिच जाता है। सुना जाता है कि एक बार जर्मनी डाक्टर एडोल्फ ज्यूरेट ने मिट्टी का प्रयोग करके सर्प विप से बेहोश लडकी को जीवनदान दिया था। डाक्टर ने जर्मन मे गढ्ढे को जल से आर्द्र करके कण्ठ तक लडकी को दबा दिया। चौबीस घण्टे होने पर सर्प विप का शोपण जमीन मे हो गया था।

२ आघातज शोथ—इसमे मिट्टी का गर्म लेप चढाने से सूजन कम हो जाती है।

३ नेत्र रोग—आखो मे जलन होने, जल गिरने और नेत्र शूल होने पर मिट्टी की पुल्टिस बाधने मे शीघ्र लाभ मिलता है। मिट्टी आख के अन्दर न जावे। इससे कभी कभी फूली जाला भी दूर हो जाता है।

४ विद्रधि—यदि फोडा उठ रहा हो और उसमे जलन, लालामी और पीडा अधिक हो तो मिट्टी का लेप प्रति घण्टे पर करना चाहिये। इस प्रकार मिट्टी का उपयोग करने से विद्रधि पक नही पाती है। यदि फोडा पक गया हो तो मिट्टी की पुल्टिस बाधने से फोडा फूट जाता है और पूय बाहर निकल सूखने लगता है।

५ हैजा—काली मिट्टी को ३२ गुने जल मे डाल-कर मिट्टी निथारा हुआ जल १-१ तोला पीने से वमन और दस्त दोनो बन्द हो जाते है।

६ मूत्रावरोध—नाभि के नीचे मूत्राशय पर मिट्टी का लेप एक अगुल मोटा कर देना चाहिये।

७ गर्भस्राव पर—चोट लगकर या उष्णता बढकर गर्भस्राव हो तो कुम्हार के चाक की मिट्टी या सोनागेरू

५-५ तोला को ४० तोला जल मे मिलाकर छानकर एक दो बार प्रयोग करने से गर्भस्राव रुक जाता है ।

८ तेज धार अस्त्र का घाव—शुद्ध मिट्टी का लेप कर देने से रक्तस्राव वन्द हो जाता है । शुद्ध मिट्टी का प्रयोग करना चाहिये ।

९. शिर शूल पर—इसमे गीली चिकिनी मिट्टी का लेप करना चाहिये । प्रात साय पट्टी बदलनी चाहिये । यदि वेदना तीव्र हो तो पट्टी १-१ घंटे मे बदलनी चाहिये ।

१० विप प्रकोप—इसमे पट्टी प्रति आध घण्टे मे वदलनी चाहिये ।

११ कर्ण रोग पर—इसमे गीली चिकिनी मिट्टी को कान की जड़ मे और ऊपर से भर देना चहिए । कान के अन्दर की पीडा, फुन्सी, घाव आदि सभी मे लाभकारी है । कान के अन्दर मिट्टी को न जाने दें ।

१२ दन्त वेष्टक मे शोथ—यदि मसूढो मे सूजन आ गई हो और पीडा हो तो विकृत स्थान के बाहरी गाल पर गीली मिट्टी का लेप करे ।

१३ दमा-खासी पर—मिट्टी की उष्ण पट्टी गले के और छाती के चारो ओर बाधनी चाहिये । इससे कफ ढीला होकर वाहर निकल जायगा और श्वास का दौरा कम हो जाता है ।

१४ कण्ठरोग पर—मिट्टी की पट्टी गले के चारो ओर बाधनी चाहिये । इसको दिन मे तीन वार बदलनी चाहिये । इस रोग में केवल दूध पीना चाहिये ।

१५ स्त्रियो की स्तन-पीडा—यदि स्तन मे फोडा, सूजन या घाव हो तो साफ मिट्टी की पुल्टिस वाधनी चाहिये । इससे पीडा और शोथ कम हो जाती है ।

१६ उदर-विद्रधि—यदि पेट मे फोडा उठ रहा हो तो मिट्टी की पुल्टिस उस स्थान पर वाधनी चाहिये । पट्टी दिन मे चार वार बदलनी चाहिये । इसीसे विद्रधि का शमन हो जाता है ।

१७ प्रसव कष्ट—यदि वच्चा गर्भाशय से न निकल रहा हो तो गीली मिट्टी को पेट पर वाधने से प्रसव हो जाता है । यदि वच्चा मर भी गया हो तो मिट्टी की पट्टी वाधने से गोले के समान वाहर आ जावेगा ।

१८ त्वचा रोग पर—छाजन, फोडा फुन्सी इत्यादि रोगो मे मिट्टी की पट्टी प्रतिदिन नियमित रूप से वाधने से शीघ्र लाभ होता है ।

१९ वृश्चिक ततैया दश—दश के स्थान पर चिकनी गीली मिट्टी की पुल्टिस वाधने से विष मिट्टी मे आ जाता है और पीड़ा नष्ट हो जाती है ।

पीली मिट्टी एवं उसके प्रयोग—

यह शीतल, रक्तस्तम्भक, ग्राही सशमन और लेखन है । यह विष प्रकोप को दूर करती है । नक्सीर, मूत्र मे रक्त आना और सगर्भा के रजोदर्शन को वन्द करने को इसका जल पिलाया जाता है ।

कोष्ठवद्धता और आतो की वायु नष्ट करने के लिये इसका लेप उदर पर किया जाता है । पेचिस, रक्तातिसार, रक्त पूयमय अतिसार आदि रोगो मे भी उदर पर इसका १-१ अगुल मोटा लेप करे ।

१ आत्र ज्वर—इस रोग मे तीव्र शिर शूल और कोष्ठवद्धता होने पर इस मिट्टी का लेप उदर पर और कपाल पर किया जाता है ।

२ नक्सीर—नाक से रक्त आने पर इसकी एक-एक अगुल मोटी तह शिर पर वाधने से रक्तस्राव वन्द हो जाता है ।

३ वालको की नाभि का शोथ—इस मिट्टी को गर्म कर इस पर दूध डालने से जो वाष्प निकले उस वाष्प से नाभि को सेकने से सूजन दूर हो जाती है ।

४ खुजली—पीली मिट्टी को दही या नारियल के तेल मे घिसकर मालिश करने से खुजली नष्ट हो जाती है ।

५ फोडा-व्रण—देहातो मे इस मिट्टी को पोतनी मिट्टी कहते है । इसको शीतल जल मे घोलकर फोड़ा के ऊपर गाढा लेप करने से ४-५ दिन मे पूर्ण लाभ मिल जाता है ।

कीचड़—तालाव के कीचड को शीतल, दाह, विष और वेदनानाशक कहा है । स्वच्छ मिट्टी को लेकर उसका कीचड वना लेना चाहिये क्योकि तालाव के कीचड मे विभिन्न प्रकार के कीटाणु होते हैं ।

वालुका—यह लेखन, शीतल, व्रणहर है तथा

दुर्गन्धहर और उदर शोधक है। नदी तट की बालू को लेकर एक तवे पर नमक के साथ डालकर चूल्हे पर गर्म कर देनी चाहिये। इससे वायु शुद्ध हो जाती है और कीटाणु नष्ट हो जाते है।

जीर्ण कोष्ठवद्धता—इसमे ३ माशे बालू जल के साथ दिन मे तीन बार सेवन करने से आतो मे चिपका हुआ पुराना मल निकल जाता है। आते मुलायम हो जाती हैं।

मिट्टी के प्रयोग में आवश्यक सूचना—

१ मिट्टी हमेशा खेत की लेनी चाहिये। खेत को एक हाथ गहरा खोदकर नीचे की मिट्टी प्रयोग में लायें।

२ मिट्टी मे एक भी ककड नही होना चाहिये और मल-मूत्रादि दूषित पदार्थ नही मिले होने चाहिये।

३ नेत्र और कान के अन्दर मिट्टी का प्रयोग करने के पहले उन्हे पतले कपडे से ढक देना चाहिये।

पृथ्वी का एक अनुभूत प्रयोग—यदि किसी स्थान पर शरीर मे पीडा हो तो उसे निम्न विधि द्वारा सेक करने से तुरन्त लाभ करता है—

जितने स्थान की सेंक करना हो तो उतनी ही प्रमाण की पृथ्वी पर उपलो की अग्नि जलादे। जव तक कि पृथ्वी गर्म होकर लाल न हो जावे। इसके बाद अग्नि को वहा से हटाकर झाड देवें। फिर मट्ठा मे हल्दी डालकर उसे पृथ्वी पर छिड़क दे तथा चार अ गुल ऊचे नीम के पत्तो को विछा देवें। इसके वाद शरीर का पीडित भाग वहा रक्खें और कम्वल से ढक दिया जाय जिससे हवा न लगने पावे। इस विधि से उस विकृत स्थान का स्वेदन हो जावेगा जिससे पीडा नष्ट हो जावेगी। स्वत ठण्डा होने पर पीडित स्थान के स्वेद को कपडे से साफ कर लेवें। इस विधि से वडी से वडी वात व्याधिया नष्ट हो जाती हैं।

जल के प्रयोग

अव हम लेख में जल के उपयोगो का उल्लेख किया जारहा है। इनके द्वारा भी अनेको रोगो मे आश्चर्य जनक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अत हम भारतीयों को इसी प्रकार की साधारण औषधियो द्वारा रोगोन्मुक्त होना चाहिये और इनको रोग की आरम्भिक अवस्था मे ही प्रयोग मे लाना चाहिए जिससे कोई भी रोग अपना भयङ्कर रूप धारण न कर सके।

आधुनिक दृष्टि से स्नान का प्रयोग बहुत महत्व-पूर्ण है। यह स्नान (Bath) ४ प्रकार का माना गया है—

(अ) शीत स्नान (Col bath)
(ब) उष्ण स्नान (Warm bath)
(स) वाष्प स्नान (Vapour bath)
(द) औषधि स्नान (Medicated bath)

शीत स्नान (Cold bath)

इस प्रकार के स्नान के लिये जल का तापमान ५०-५५ F होना चाहिये। इसका शरीर के ऊपर वल्य प्रभाव पडता है। इससे पाचन (Digestion) तथा रक्त पाकवस्थित क्रिया (Metabolism) मे उत्तेजना मिलती है एव शरीर का भार बढ जाता है। इस स्नान के निम्न रूप है—

१ शीत आसेक (Cold Affusion)—जब रोगी मूर्च्छा, आक्षेप, अ शुघात (Sunstrock) या लू लगना एव योषापस्मार (Hysteria) से पीडित हो तो उस समय उसके शिर एव छाती पर थोडी ऊ चाई से ठण्डा जल डाला जाता हैं। इससे उपरोक्त रोग ठीक हो जाते है।

२ शीतलावेष्ठन (Cold wet sheet Pack)—इसका अर्थ है कि रोगी को शीतल जल की चादर से लपेटना। इसका प्रयोग अतिताप (Hyperpyrexia) की अवस्था मे जब शरीर का तापक्रम १०४ F से ज्यादा हो जाता है उस समय किया जाता है। इससे तापक्रम घट जाता है।

विधि—चारपाई पर दो कम्वल बिछा दे। फिर ठण्डे जल मे भली प्रकार भीगी चादर बिछा दी जाती है। रोगी को इस पर लिटा देना चाहिये तथा रोगी के शरीर के सभी वस्त्र उतार दिये जाते है। इसके बाद ऊपर से फिर एक ठण्डे जल की चादर और दो कम्वल लपेट देना चाहिये। फिर कम्वल दवा दिये जावे। रोगी का शरीर ढका हुआ और शिर खुला रहना चाहिये। इससे पसीना

काफी निकलकर तापमान कम हो जाता है तथा प्रलाप (Delirium) एवं क्षोभ की अवस्था मे शाति मिलती है। १-१।। घण्टे के बाद रोगी के शरीर को सूखे तौलिये से पोछकर रोगी को सूखे वस्त्र पहनाकर यथा-पूर्व लिटा देना चाहिए।

३ वर्फ की थैली (Ice bag)—तीव्र ज्वर मे ताप-क्रम कम करने के लिए रबर की थैली मे वर्फ भरकर सिर पर अथवा वक्ष पर रक्खी जाती है जिससे तापक्रम कम हो जाता है।

उष्ण स्नान (warm bath)—

गर्म पानी से किसी अङ्ग का स्नान कराने से उस जगह का रक्त प्रवाह बढ जाता है और प्रत्येक प्रकार के शूल मे लाभ होता है। इसका प्रयोग नष्टार्तव, मूत्रकृच्छ और प्रत्येक प्रकार के शोथ मे किया जाता हे।

वाष्प स्नान (Vapour bath)—

किसी बैत की कुर्सी पर रोगी को बिठाकर या किसी अन्य खाली चारपाई पर रोगी का सिर खुला रहना चाहिये। इसके बाद चारपाई या कुर्सी के नीचे अगीठी जलाकर उस पर जल को किसी चौडे मुह के बर्तन मे रख देना चाहिये। जल जब गरम हो जावेगा, तब उसमें से वाष्प निकलने लगेगी। इस वाष्प के द्वारा शरीर की सेक (स्वेदन) की जाती है। इससे अमवात ज्वर, वातरक्त, चर्मरोगो और अन्य वात रोगो मे लाभ होता है।

औषधि स्नान (Medicated bath)—

इस प्रकार के स्नानो के लिए ठण्डे अथवा गर्म जल मे औषधि द्रव्य मिला दिए जाते है। चर्म रोगो के लिए जैसे नीम के पत्तो को जल मे उवालकर स्नान कराए।

इस प्रकार हम देखते है कि जल जो दैनिक प्रयोग की वस्तु है इतनी उपयोगी है। इसको निम्न रोगो मे इस प्रकार प्रयोग किया जाता है—

१ शोथ—यदि किसी स्थान पर सूजन हो तो उस स्थान को गर्म जल से सेकना चाहिए। इससे वहा का रक्त प्रवाह वढकर शोथ कम हो जाता है।

२ गले के रोगो मे—गले मे शोथ, लालामी और पीड़ा पर गर्म जल मे थोडा नमक डालकर कवल (कुल्ला) धारण करना चाहिए।

३ मूत्रकृच्छ—यदि किसी रोगी की पेशाब निकलना बन्द हो जावे या वूद-वूद मूत्र निकले तो गर्म जल मे कपडा भिगोकर पेडू के ऊपर उस कपडे से सेक करना चाहिए। इससे मूत्र अच्छी तरह से निकलने लगता है। रोगी को कोई कष्ट प्रतीत नही होता है।

४ उदरशूल—रोगी के पेट की सेक करना चाहिये। आध्मान मे भी इस सेक से लाभ होता है।

५ शिरदर्द—यदि शिर शूल ज्यादा हो तो ठण्डे जल मे कपड़ा भिगोकर उसको शिर पर वाधना चाहिये।

६ नासिका से रक्त निकलने पर—रक्त के निकलने पर रोगी के शिर पर ठण्डे जल का कपडा बाधे।

७. मूर्च्छा—इस रोग से पीडित रोगी के शिर एव बदन पर शीतल जल के छीटे मारने चाहिये।

८ विद्रधि—फोडा उठते समय उस स्थान पर गर्म जल से सेक करना चाहिए। इससे सूजन भी कम होती है और पीडा भी कम हो जाती है तथा फोडा पक भी नही पाता है।

९ ग्रीष्मऋतु कालीन मुख पिडिका—इस रोग से ग्रस्त रोगी को अपना मुख प्रतिदिन शीतल वासे जल से प्रात काल धोना चाहिए। इस शीतल जल से मुख पिडिका ठीक हो जाती हैं।

१० मुख शोधन के लिये—यदि किसी दिन दन्त-धावन् प्राप्य न हो सके तो उसके स्थान पर शुद्ध जल से वारह कुल्ला (कवल) करें।

११ नेत्र रोगो मे—प्रतिदिन प्रात काल शीतल जल को आखो पर छिडकने से नेत्रो की ज्योति वढती है और नेत्र-रोग नही होते है।

१२. नेत्र मे शोथ और लालामी हो तो पानी मे बोरिक एसिड का पाउडर डालकर जल को थोड़ा गर्म करके सेंकना चाहिये। इससे नेत्रो का शोथ और लालामी ठीक हो जाती है।

१३. श्वास-खासी पर—इससे पीड़ित रोगी को कुछ गर्म पानी पीना चाहिये। इससे कफ पतला और ढीला होकर वाहर निकल जाता है। श्वास कास का वेग शात हो जाता है। श्वास के रोगी को अपने पैर उष्णजल मे

रखना चाहिए। इससे श्वास का वेग कम हो जाता है।

१४. ज्वर—साधारण ज्वर मे एक या दो दिन का उपवास करके कुछ गर्म जल पीने से शरीर के प्रकुपित दोष स्वत शात हो जाते हैं।

१५ अजीर्ण—यदि ज्यादा खाने से अजीर्ण या गले मे जलन उत्पन्न हो तो ठण्डा पानी पीना चाहिये। खाना नही खाना चाहिये।

१६ कोष्ठबद्धता-यदि कब्जियत रहती हो तो रात को सोते समय खूब जल पीकर सो जाना चाहिए और प्रात काल मे शौच जाने से पहले एक गिलास ठण्डा पानी सेवन करने से कोष्ठबद्धता नष्ट हो जाती है।

१७ मूत्रकृच्छ—इस रोग मे अधिक पानी पीने से पेशाब ज्यादा होने लगता है।

१८ प्रजनन सस्थान—जो स्त्री नष्टार्तव या कष्टार्तव रोग से पीड़ित हो उसको एक गरम पानी के टब मे कमर तक उष्ण जल से स्नान करना चाहिये।

१९ तृषा—जल प्यास लगने पर पिलाया जाता है क्योकि यह प्राणो को धारण करता है। अर्थात् प्यास लगने पर गर्म करके शीतल जल पिलाना चाहिये।

२० वमन—उलटी (कै) होने पर वर्फ को मुंह मे मे रखकर चूमना चाहिये। इमसे वमन वन्द हो जाती है।

२१ लू लगना—अधिक पानी पीकर धूप मे निकलने से कभी ग्रीष्म ऋतु मे लू नही लगती है।

अस्तु यह सभी प्रयोगो का उल्लेख इस लेख मे किया गया। जल व मिट्टी एक ऐसी वस्तु है जो प्रत्येक व्यक्ति को हर समय हर स्थान पर प्राप्त हो सकती है। आज के इस सकटकालीन युग मे हम भारतीयो का कर्त्तव्य है कि इन रक्त धारण योगो द्वारा अपने शरीर को रोगोन्मुक्त करें एव जन-धन की रक्षा करे।

—आयुर्वेदाचार्य श्री डा० सत्यनारायण
खरे, ए०, एम० बी० एस
ककवारा (झासी) यू०